नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरुभ्यो नमः

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

भाग 08



आगम - ०५

'भगवति' मूलं एवं वृत्तिः [१]

मूल संशोधक :- पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

अभिनव-संकलनकर्ता :- आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

पूज्य शासनप्रभावक आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से

'वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था' पालिताणा

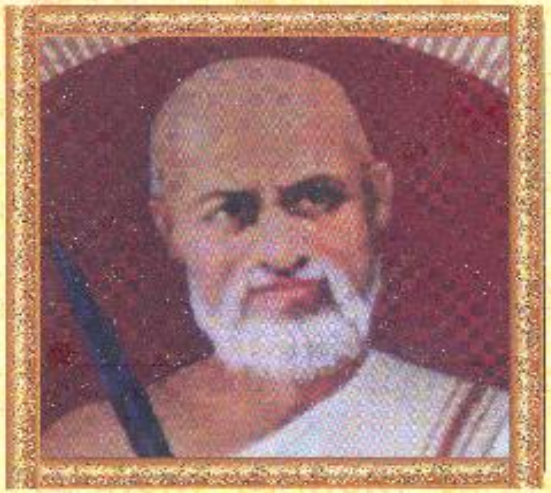
ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता



नमो नमो निम्मलदंसणस्स

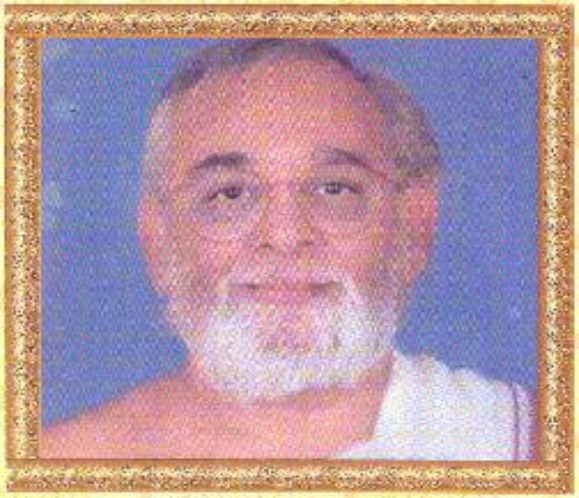
सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता



आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदावाद Mo 9825598855 / 9825306275


आगम
वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

“भगवती” मूलं एवं वृत्ति: [भाग-1]

(अपरनाम- “व्याख्याप्रज्ञप्ति”)

[मूलं एवं अभयदेवसूरि रचित वृत्ति:]

[आद्य संपादक: - पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म॰ सा॰]

(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

पुन: संकलनकर्ता→ मुनि दीपरत्नसागर (M.Com., M.Ed., Ph.D.)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५ **‘सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि’ श्रेणि भाग-६**

श्री आगमोद्धारक-वाचना-शताब्दी-वर्ष-निमित्त ‘आगम-वृत्ति-मुद्रण-प्रोजेक्ट’

सामाचारी-संरक्षक, ज्ञानधनी, आगम-संशोधक, तीव्र-मेधावी, समाधिमृत्यु-प्राप्त, बहुमुखीप्रतिभाधारक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

◆ जिन्होने शुद्ध-श्रद्धा, सम्यक्-श्रुत आराधना, यथाख्यातचारित्र के प्रति गति और अंत समय देह-ममत्व के त्याग के द्वारा कायोत्सर्ग नामक अभ्यंतर-तप कि मिशाल कायम कि है ऐसे बहुश्रुत आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराज का परिचय कराना मेरे लिए नामुमकिन है, फ़िर भी गुरुभक्ति बुद्धि से श्रद्धांजली स्वरुप एक मामुली सी झलक पैस करने का यह प्रयास मात्र है |

◆ चारित्र-ग्रहण के बाद अल्प कालमे जो अपने गुरुदेव की छत्रछाया से दूर हो गये, तो भी गुरुदेव के स्वर्ग-गमन को सिर्फ़ कर्मो का प्रभाव मानकर अपने संयम के लक्ष्य प्रति स्थिर रहते हुए अकेले ज्ञान-मार्ग कि साधना के पथ पर चले | पढाई के लिए ही कितने महिनो तक रोज एकासणा तप के साथ बारह किल्लोमिटर पैदल विहार भी किया | लेकिन अपने मंझिल पे डटे रहे, और परिणाम स्वरुप संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का, प्राचीन लिपिओ का, व्याकरण-न्याय-साहित्य आदि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया | जैन आगमशास्त्रो के समुद्र को भी पार कर गए|

◆ एक अकेला आदमी भी क्या नहीं कर शकता? इस प्रश्न का उत्तर हमें इस महापुरुष के जीवन और कवन से मिल गया, जब वे चल पड़े देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के स्थापित पथ पर. बिना किसी सहाय लिए हुए सिर्फ अकेले ही "जैन-आगम-शास्त्रो" को दीर्घजीवी बनाने के लिए अनेक हस्तप्रतो से शुद्ध-पाठ तैयार किये | दो वैकल्पिक आगम, कल्पसूत्र और निर्युक्तिओ को जोड़कर ४५ आगम-शास्त्रो को संशोधित कर के संपादित किया | फिर पालीताणामें आगम मंदिर बनवाकर आरस-पत्थर के ऊपर ये सभी आगम-साहित्य को कंडारा, सूरतमें ताम्रपत्र पर भी अंकित करवाए और "आगम मंजूषा" नाम से मुद्रण भी करवा के बड़ी बड़ी पेटीमें रखवा के गाँव गाँव भेज दिए | वर्तमानकालमे सर्व प्रथमबार ऐसा कार्य हुआ |

◆ सिर्फ मूल आगम के कार्य से ही उन के कदम रुके नही थे, उन्होंने आगमो की वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति, अवचूरी, संस्कृत-छाया आदि का भी संशोधन-सम्पादन किया | उपयोगी विषयो के लिए उन्होंने एक लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत नए ग्रंथो की रचना भी की | कितने ही ग्रंथो की प्रस्तावना भी लिखी | ये सम्यक्-श्रुत मुद्रित करवाने के लिए आगमोदय समिति, देवचंद लालभाई इत्यादि विभिन्न संस्था की स्थापना भी की |

◆ ज्ञानमार्ग के अलावा सम्मेतशिखर, अंतरीक्षजी, केशरियाजी आदि तीर्थरक्षा कर के सम्यक-दर्शन-आराधना का परिचय भी दिया | राजाओं को प्रतिबोध कर के और वाचनाओ द्वारा अपनी प्रवचन-प्रभावकता भी उजागर करवाई | बालदिक्षा, देवद्रव्य-संरक्षण, तिथि-प्रश्न इत्यादि विषयोमे सत्य-पक्षमें अंत तक दृढ़ रहे | जैनशासन के लिए जब जरुरत पड़ी तब अदालती कारवाईंओ का सामना भी बड़ी निडरता से किया था |

◆ सागरानंदजी के नाम से मशहूर हो चुके पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजीने अपने परिवार स्वरुप ७०० साधू-साध्वीजी भी शासन को भेट किये |

...ये थे हमारे गुरुदेव "सागरजी"... ***.....मुनि दीपरत्नसागर...***

संयमैकलक्षी, उपधान-तप-प्रेरक, चारित्र-मार्ग-रागी, प्रवचन-पटु, सुपरिवार-युक्त

पूज्य गच्छाधिपतिआचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

*** परमपूज्य आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी के पाट-परंपरामे हुए तिसरे गच्छाधिपति थे पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी, जो एक पून्यवान् आत्मा थे, दीक्षा ग्रहण के बाद अल्पकालमे ही एक शिष्य के गुरु बन गये | फ़िर क्या ! शिष्यो कि संख्या बढती चली, बढ़ते हुए पुन्य के साथ-साथ वे आखिर 'गच्छाधिपति' पद पे आरूढ़ हो गए | इस महात्मा का पुन्य सिर्फ शिष्यों तक सिमित नही था, वे जहा कहीं भी 'उपधान-तप' की प्रेरणा करते थे, तुरंत ही वहां 'उपधान' हो जाते थे | प्रवचनपटुता एवं पर्षदापुन्य के कारण उन के उपदेश-प्राप्त बहोत आत्माओने संयम-मार्ग का स्वीकार किया | खुद भी संयमैकलक्षी होने के कारण चारित्रमार्ग के रागी तो थे ही, साथसाथ ज्ञानमार्ग का स्पर्श भी उन का निरंतर रहेता था | आप कभी भी दुपहर को चले जाइए, वे खुद अकेले या शिष्य-परिवार के साथ कोई भी ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापनमें रत दिखाई देंगे |

*** ये तो हमने उनके जीवन के दो-तीन पहेलु दिखाए | एक और भी अनुसरणीय बात उन के जीवनमें देखने को मिली थी- 'आराधना-प्रेम'. कैसी भी शारीरिक स्थिति हो, मगर उन्होंने दोनों शाश्वती ओलीजी, [पोष}दशमी, शुक्ल पंचमी, त्रिकाल देववंदन, पर्व या पर्वतिथि के देववंदन आदि आराधना कभी नहीं छोड़ी | आखरी सालोमें जब उन को एहसास हो गया की अब 'अंतिम-आराधना' का अवसर नजदीक है, तब उन के मुहमें एक ही रटण बारबार चालु हो गया- "*अरिहंतनुं शरण, सिद्धनुं शरण, साधुनुं शरण, केवली भगवंते भाखेला धर्मनुं शरण* " इसी चार शरणो के रटण के साथ ही वे समाधि-मृत्यु-रूप सम्यक् निद्रा को प्राप्त हुए थे | ऐसे महान् सूरिवर को भावबरी वंदना |

*** मुनि दीपरत्नसागर...

◆◆◆ श्री वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था, पालिताणा ◆◆◆

पूज्यपाद आनंदसागर-सूरीश्वरजी की बौद्धिक-प्रतिभा का मूर्तिमंत स्वरुप ऐसी इस संस्था की स्थापना विक्रम-संवत १९९९ मे महा-वद ५ को हुइ| *पूज्य आचार्य हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से* जिन की तरफ़ से इस *सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि* के लिए संपूर्ण द्रव्य-सहाय की प्राप्ति हुइ |

शिल्प-स्थापत्य, शिलोत्कीर्ण आगम और समवसरण स्थित नयनरम्य ४५ चौमुख जिन-प्रतिमाजी से सुशोभित ऐसा ये 'आगममंदिर' है, जो शत्रुंजय-गिरिराज कि तलेटीमे स्थित है | वर्तमान २४ जिनवर, २० विहरमान जिनवर और १ शाश्वत मिलाकर ४५ चौमुखजी यहा बिराजमान है | जहां ४० समवसरण की रचना मेरु पर्वत के तिनो काण्ड के वर्णो के अनुसार चार अलग-अलग रंगो के आरस-पत्थर से बना है, देवो द्वारा रचित समवसरण के शास्त्र वर्णन-अनुसार आगम-मंदिर कि समवसरण का स्थापत्य है | ऐसी अनेक विशेषता से युक्त ये आगममंदिर है |

**** मुनि दीपरत्नसागर...*

'सागर-समुदाय-एकता-संरक्षक, तीर्थ-उद्धार-कार्य-प्रवृत्त, गुणानुरागी'

इस "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग १ से ४० के संपूर्ण अनुदान के प्रेरणादाता

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी महाराज साहेब

पूज्यपाद स्व॰ गच्छाधिपति देवेन्द्रसागर-सूरीश्वरजी के विनयी शिष्य एवं दो गच्छाधिपतिओ के मुख्य सहायक के रुपमे 'सागर समुदाय' के सुचारु संचालक पूज्य हर्षसागरसूरिजी, जिन की प्रेरणा से ये "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि" के मुद्रण के लिए संपूर्ण द्रव्यराशि प्राप्त हुई , उनका अत्यल्प परिचय यहां करेंगे| समुदाय-एकता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हुए ये महात्मा *समुदाय के साधु-साध्वीजी* की आवश्यकताओकी पूर्ती के लिए भी प्रवृत्त रहेते है, प्राचीन-अर्वाचीन तीर्थो के जीर्णोद्धार एवं विकाश के लिए भी उत्साहित रहेते है, ज्ञान-क्षेत्र अछूता न रहे इसीलिए अनुमोदना, अनुदान एवं समय मिलने पर शास्त्र-वांचनमें भी रूचि रखते है | समुदाय के जरूरतमंद साध्वीजी भगवंतो के आवास का विषय हो या साध्वीजी के विहारमें मजदूर का वेतन चुकाना हो, ऐसे छोटे-छोटे कार्यो के प्रति भी उन का लक्ष्य रहेता है | दर्शन-शुद्धि के लिए जब उन्होंने समग्र भारतवर्ष के १०० साल तक के पुराने जिनालयो में १८ अभिषेक की प्रेरणा की, उस वक्त लगभग सभी अभिषेक-सामग्री की द्रव्य-शुद्धि का ख़याल रखते हुए अपनी मेधावी बुद्धि का परिचय दिया था, साथमे अनुकंपा भाव से पुजारी या विधि करानेवाले को यत्किंचित् बहुमान प्रगट करते हुए कुछ धन-राशि प्रदान करवाई |

ऐसे बहुगुण-संपन्न महात्मा पूज्य आचार्यश्री हर्षसागर-सूरिजी को हम भावभरी वंदना करते हुए इस श्रुतकार्य का प्रारंभ करने जा रहे है |

**** मुनि दीपरत्नसागर*

[कात्रेज]पूना, शंखेश्वर, कपडवंज, प्रभासपाटण आदि स्थानोमे आगममंदिर के प्रेरक, कर्मग्रंथ अभ्यासु, निस्पृह महात्मा

पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य श्री दौलतसागर-सूरीश्वरजी महाराज साहेब

(एवं) अजातशत्रु, स्वाध्याय-रसिक, प्रशांतमूर्ती और अपने गुरु के प्रीतिपात्र

परम पूज्य आचार्य श्री नंदीवर्धनसागर-सूरिजी महाराज साहेब

इस पवित्र श्रुत-कार्यमे दोनो सूरिवरो का स्मरण करते हुए कोटि कोटि वंदना के साथ

.....मुनि दीपरत्नसागर

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती" मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

॥ अर्हम् ॥

श्रीमत्सुधर्मस्वामिगणभृत्प्ररूपितं श्रीमद्गौतमगणधारिवाचनानुगतं श्रीमच्चन्द्रकुला-
लङ्कारश्रीमदभयदेवसूरिसूत्रितविवरणयुतं

श्रीमद्भगवतीसूत्रम् । (प्रथमो विभागः)

प्रकाशयित्री–श्रीमत्सुरतबन्दरवास्तव्यश्रेष्ठिवर्यमूलचन्द्रात्मजसुपुत्रोत्तमचन्द्राभयचन्द्रविहितपूर्ण-
द्रव्यसाहाय्येन शाह वेणीचन्द्र सुरचन्द्रद्वारा श्रीआगमोदयसमितिः

मुद्रितं मोहमय्यां निर्णयसागरमुद्रणयन्त्रे रा० रा० रामचन्द्र येसू शेडगेद्वारा

वीरसंवत्. २४४४ विक्रमसंवत्. १९७४ क्राइष्ट. १९१८

प्रतयः १००० पण्यं ३–४–० सपादंनं रूप्यकत्रयं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	भगवती-(अङ्ग)सूत्रस्य मूल "टाइटल पेज"

मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:	मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:	मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:
♦	शतकं - १	०११	..♦	.....शतकं - ३	---	..♦	.....शतकं - ५	----
००१	उद्देशक: ०१ चलन	०२२	१७०	उद्देशक: ०२ चमरोत्पात	३४७	२६४	उद्देशक: ०९ राजगृह	५००
०२६	उद्देशक: ०२ दु:ख	०८५	१७८	उद्देशक: ०३ क्रिया	३७०	२७१	उद्देशक: १० चन्द्रमा	५०७
०३४	उद्देशक: ०३ कांक्षाप्रदोष	११३	१८४	उद्देशक: ०४ यान	३८०	♦	शतकं - ६	५०८
०४६	उद्देशक: ०४ कर्मप्रकृति	१३४	१८९	उद्देशक: ०५ स्त्री	३८८	२७२	उद्देशक: ०१ वेदना	५०८
०५२	उद्देशक: ०५ पृथ्वी	१४४	१९१	उद्देशक: ०६ नगर	३९१	२७७	उद्देशक: ०२ आहार	५१३
०६९	उद्देशक: ०६ यावंत	१६४	१९३	उद्देशक: ०७ लोकपाल	३९३	२७८	उद्देशक: ०३ महा-आश्रव	५१३
०७९	उद्देशक: ०७ नैरयिक	१७७	२०१	उद्देशक: ०८ देवाधिपति	४०९	२८६	उद्देशक: ०४ सप्रदेशक	५२७
०८५	उद्देशक: ०८ बाल	१९०	२०५	उद्देशक: ०९ इन्द्रिय	४११	२९१	उद्देशक: ०५ तमस्काय	५४३
०९४	उद्देशक: ०९ गुरुत्व	१९९	२०६	उद्देशक: १० परिषद्	४१२	३००	उद्देशक: ०६ भव्य	५५३
१०२	उद्देशक: १० चलत	२१४	♦	शतकं - ४	४१४	३०२	उद्देशक: ०७ शाली	५५६
♦	शतकं - २	२२६	२०७	उद्देशका: १-४ लोकपाल-विमान	४१४	३१३	उद्देशक: ०८ पृथ्वी	५६४
१०५	उद्देशक: ०१ स्कंदक	२२६	२१०	उद्देशका: ५-८लोकपालराजधानी	४१५	३१७	उद्देशक: ०९ कर्म	५७३
११८	उद्देशक: ०२ समुद्घात	२६६	२११	उद्देशक: ०९ नैरयिक	४१७	३२०	उद्देशक: १० अन्ययूथिक	५७७
११९	उद्देशक: ०३ पृथ्वी	२६४	२१२	उद्देशक: १० लेश्या	४१८	♦..	शतकं - ७....	
१२२	उद्देशक: ०४ इन्द्रिय	२६६	♦..	शतकं - ५.....	४२१	३२७	उद्देशक: ०१ आहार	
१२३	उद्देशक: ०५ अन्यतीर्थिक	२७१	२१५	उद्देशक: ०१ रवि	४२१	३३९	उद्देशक: ०२ विरति	
१३८	उद्देशक: ०६ भाषा	२९२	२२०	उद्देशक: ०२ वायु	४३१	३४५	उद्देशक: ०३ स्थावर	
१३९	उद्देशक: ०७ देव	२९३	२२३	उद्देशक: ०३ जालग्रंथिका	४३६	३५१	उद्देशक: ०४ जीव	
१४०	उद्देशक: ०८ चमरचंचा	२९४	२२५	उद्देशक: ०४ शब्द	४४०	३५३	उद्देशक: ०५ पक्षी	
१४१	उद्देशक: ०९ समयक्षेत्र	३०१	२४१	उद्देशक: ०५ छद्मस्थ	४५७	३५५	उद्देशक: ०६ आयु	
१४२	उद्देशक: १० अस्तिकाय	३०३	२४४	उद्देशक: ०६ आयु	४५९	३६१	उद्देशक: ०७ अनगार	
♦..	शतकं - ३.....	३१४	२५३	उद्देशक: ०७ पुद्गल	४७२	३६५	उद्देशक: ०८ छद्मस्थ	
१५१	उद्देशक: ०१ चमरविकुर्वणा	३१४	२६२	उद्देशक: ०८ निर्ग्रन्थीपुत्र	४८८	३७१	उद्देशक: ०९ असंवृत	

मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:	मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:	मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:
..♦	.....शतकं - ७		..♦	.....शतकं - १०		..♦	.....शतकं - १२	
३७७	उद्देशक: १० अन्यतीर्थिक		४८२	उद्देशक: ०३ आत्मऋद्धि		५४२	उद्देशक: ०५ अतिपात	
♦	शतकं - ८		४८७	उद्देशक: ०४ श्यामहस्ती		५४६	उद्देशक: ०६ राहु	
३८१	उद्देशक: ०१ पुद्गल		४८८	उद्देशक: ०५ देव		५५०	उद्देशक: ०७ लोक	
३८९	उद्देशक: ०२ आशीविष		४९०	उद्देशक: ०६ सभा		५५२	उद्देशक: ०८ नाग	
३९७	उद्देशक: ०३ वृक्ष		४९३	उद्देशका: ०७-३४ अंतर्द्वीप		५५४	उद्देशक: ०९ देव	
४००	उद्देशक: ०४ क्रिया		♦	शतकं - ११		५६०	उद्देशक: १० आत्मा	
४०१	उद्देशक: ०५ आजीविक		४९४	उद्देशक: ०१ उत्पल		♦	शतकं - १३	
४०५	उद्देशक: ०६ प्रासुकआहार		४९९	उद्देशक: ०२ शालूक		५६३	उद्देशक: ०१ पृथ्वी	
४१०	उद्देशक: ०७ अदत्तादान		५००	उद्देशक: ०३ पलाश		५६७	उद्देशक: ०२ देव	
४१२	उद्देशक: ०८ प्रत्यनिक		५०१	उद्देशक: ०४ कुम्भिक		५६८	उद्देशक: ०३ नरक	
४२२	उद्देशक: ०९ प्रयोगबन्ध		५०२	उद्देशक: ०५ नालिक		५६९	उद्देशक: ०४ पृथ्वी	
४३०	उद्देशक: १० आराधना		५०३	उद्देशक: ०६ पद्म		५८४	उद्देशक: ०५ आहार	
♦	शतकं - ९		५०४	उद्देशक: ०७ कर्णिक		५८५	उद्देशक: ०६ उपपात	
४३८	उद्देशक: ०१ जम्बू		५०५	उद्देशक: ०८ नलिन		५८९	उद्देशक: ०७ भाषा	
४४०	उद्देशक: ०२ ज्योतिष्क		५०६	उद्देशक: ०९ शिवराजर्षि		५९३	उद्देशक: ०८ कर्मप्रकृति	
४४४	उद्देशका: ०३-३० अंतर्द्विप		५१०	उद्देशक: १० लोक		५९४	उद्देशक: ०९ अनगारवैक्रिय	
४४५	उद्देशक: ३१ असोच्चा		५१४	उद्देशक: ११ काल		५९५	उद्देशक: १० समुद्घात	
४५१	उद्देशक: ३२ गांगेय		५२५	उद्देशक: १२ आलभिका		♦..	शतकं - १४.....	
४६०	उद्देशक: ३३ कुण्डग्राम		♦..	शतकं - १२.....		५९६	उद्देशक: ०१ चरम	
४७१	उद्देशक: ३४ पुरुषघातक		५२९	उद्देशक: ०१ शंख		६००	उद्देशक: ०२ उन्माद	
♦..	शतकं - १०.....		५३४	उद्देशक: ०२ जयंति		६०३	उद्देशक: ०३ शरीर	
४७३	उद्देशक: ०१ दिशा		५३७	उद्देशक: ०३ पृथ्वी		६०७	उद्देशक: ०४ पुद्गल	
४७७	उद्देशक: ०२ संवृतअनगार		५३८	उद्देशक: ०४ पुद्गल		६१२	उद्देशक: ०५ अग्नि	

मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:	मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:	मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:
..♦	.....शतकं - १४		..♦	.....शतकं - १७		..♦	.....शतकं - १९	
६१५	उद्देशक: ०६ आहार		७०६	उद्देशक: ०४ क्रिया		७७०	उद्देशक: ०८ निर्वृत्ति	
६१८	उद्देशक: ०७ संश्लिष्ट		७०८	उद्देशका: ६-११ पृथ्व्यादिकाय		७७४	उद्देशक: ०९ करण	
६२४	उद्देशक: ०८ अंतर		७१५	उद्देशक: १२ एकेन्द्रिय		७७५	उद्देशक: १० व्यंतर	
६३१	उद्देशक: ०९ अनगार		७१६	उद्देशका:१३-१७ नागादिकुमार		♦	शतकं - २०	
६३६	उद्देशक: १० केवली		♦	शतकं - १८		७७९	उद्देशक: ०१ बेईन्द्रिय	
♦	शतकं - १५		७२१	उद्देशक: ०१ प्रथम		७८१	उद्देशक: ०२ आकाश	
६३७	--गोशालक		७२७	उद्देशक: ०२ विशाखा		७८३	उद्देशक: ०३ प्राणवध	
♦	शतकं - १६		७२८	उद्देशक: ०३ माकंदीपुत्र		७८५	उद्देशक: ०४ उपचय	
६६०	उद्देशक: ०१ अधिकरण		७३३	उद्देशक: ०४ प्राणातिपात		७८६	उद्देशक: ०५ परमाणु	
६६६	उद्देशक: ०२ जरा		७३६	उद्देशक: ०५ असुरकुमार		७८९	उद्देशक: ०६ अंतर	
६७०	उद्देशक: ०३ कर्म		७४०	उद्देशक: ०६ गुडवर्णादि		७९२	उद्देशक: ०७ बन्ध	
६७२	उद्देशक: ०४ जावंतिय		७४२	उद्देशक: ०७ केवली		७९३	उद्देशक: ०८ भूमि	
६७३	उद्देशक: ०५ गंगदत्त		७४९	उद्देशक: ०८ अनगारक्रिया		८०१	उद्देशक: ०९ चारण	
६७७	उद्देशक: ०६ स्वप्न		७५०	उद्देशक: ०९ भव्यद्रव्य		८०३	उद्देशक: १० आयु	
६८२	उद्देशक: ०७ उपयोग		७५३	उद्देशक: १० सोमिल		♦	शतकं - २१	
६८३	उद्देशक: ०८ लोक		♦..	शतकं - १९.....		८०६	वर्ग्ग: १ शाली-आदि	
६८७	उद्देशक: ०९ बलिन्द्र		७५८	उद्देशक: ०१ लेश्या		८१५	वर्ग्गा:२-८ मूलअलसी, वंश,	
६८८	उद्देशक: १० अवधि		७६०	उद्देशक: ०२ गर्भ			इक्षु,सेडिय, अम्मरुह, तुलसी	
६८९	उद्देशक: ११-१४ द्विपादि०		७६१	उद्देशक: ०३ पृथ्वी		♦	शतकं - २२	
♦..	शतकं - १७.....		७६५	उद्देशक: ०४ महाश्रव		८२२	वर्ग्गा:१-६ताड़,निम्ब,अगस्ति	
६९३	उद्देशक: ०१ कुंजर		७६६	उद्देशक: ०५ चरम			वेंगन, सिरियक,पुष्पकलिका	
६९९	उद्देशक: ०२ संयत		७६८	उद्देशक: ०६ द्वीप		♦	शतकं - २३	
७०३	उद्देशक: ०३ शैलेशी		७६९	उद्देशक: ०७ भवन		८२९	वर्ग्गा:१-४आलू,लोही,आय,पाठा	

मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक	मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:	मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:
♦	शतकं - २४		♦	शतकं - २८		♦	शतकं - ३५	
८३५	उद्देशक: ०१ नैरयिक		९९२	उद्देशका: १-११ जीव आदि--		१०४४	एकेन्द्रिय शतकानि-१२	
८४३	उद्देशक: ०२ परिमाण			जाव २६ शतक		♦	शतकं - ३६	
८४४	उद्देशक: ०३-११नागादिकुमारा		♦	शतकं - २९		१०५८	बेन्द्रिय शतकानि-१२	
८४६	उद्देशक: १२-१६ पृथ्व्यादि		९९५	उद्देशका: १-११ जीव आदि--		♦	शतकं - ३७	
८५३	उद्देशक: १७-२० बेईन्द्रियादि			जाव २६ शतक		१०६१	त्रिन्द्रिय शतक	
८५७	उद्देशक: २१-२४ मनुष्यादि		♦	शतकं - ३०		♦	शतकं - ३८	
♦	शतकं - २५		९९८	उद्देशका: १-११ समवसरण,		१०६२	चतुरिन्द्रिय शतक	
८६१	उद्देशका: १-१२ लेश्या, द्रव्य,			लेश्या आदि		♦	शतकं - ३९	
	संस्थान, युग्म,पर्यव, निर्गन्थ		♦	शतकं - ३१		१०६३	असंज्ञीपंचेन्द्रिय शतकानि	
	संयत, ओघ, भव्य, अभव्य,		१००३	उद्देशका: १-२८ युग्म, नरक,		♦	शतकं - ४०	
	सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि			उपपात आदि विषयका:		१०६४	संज्ञीपंचेन्द्रिय शतकानि	
♦	शतकं - २६		♦	शतकं - ३२		♦	शतकं - ४१	
९७५	उद्देशका: १-११ जीव, लेश्या,		१०१६	उद्देशका: १-२८ नारक्स्य---		१०६८ से	उद्देशका: १-१९६ राशियुग्म,	
	पखिय, दृष्टि, अज्ञान, ज्ञान,			उद्वर्तन, उपपात, लेश्यादि		---१०७९	त्र्योजराशि, द्वापरयुग्मराशि	
	संज्ञा,वेद,कषाय,उपयोग,योग		♦	शतकं - ३३			कल्योजराशि इत्यादि	
♦	शतकं - २७		१०१८	एकेन्द्रिय शतकानि-१२			----------	
९९१	उद्देशका: १-११ जीव आदि--		♦	शतकं - ३४		१०८० से	उपसंहार गाथा	
	जाव २६ शतक		१०३३	एकेन्द्रिय शतकानि-१२		---१०८६	परिसमाप्त:	

[भगवती- मूलं एवं वृत्ति:] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत सबसे पहले "(श्रीमद्) भगवतीसूत्र" के नामसे सन १९१८ (विक्रम संवत १९७४) में आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित हुई, इस के संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब |

इसी प्रत को फिर से दुसरे पूज्यश्रीओने अपने-अपने नामसे भी छपवाई, जिसमे उन्होंने खुदने तो कुछ नहीं किया, मगर इसी प्रत को ऑफसेट करवा के, अपना एवं अपनी प्रकाशन संस्था का नाम छाप दिया. जिसमे किसीने पूज्यपाद् सागरानंदसूरिजी के नाम को आगे रखा, और अपनी वफादारी दिखाई, तो किसीने स्वयं को ही इस पुरे कार्य का कर्ता बता दिया और श्रीमद्सागरानंदसूरिजी तथा प्रकाशक का नाम ही मिटा दिया |

✣ हमारा ये प्रयास क्यों? ✣ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले, ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोमे १२५०० से ज्यादा पृष्ठोमें प्रकाशित करवाए है, किन्तु लोगो की पूज्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरुप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक स्पेशियल फोरमेट बनवाया, जिसमे बीचमे पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी, ऊपर शीर्षस्थानमे आगम का नाम, फिर शतक-वग्र्ग-उद्देशक-मूलसूत्र- आदि के नंबर लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा शतक, उद्देशक आदि चल रहे है उसका सरलता से ज्ञान हो शके, बायीं तरफ आगम का क्रम और इसी प्रत का सूत्रक्रम दिया है, उसके साथ वहाँ 'दीप अनुक्रम' भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर शके | हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढते हुए ही है, इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए है, मगर प्रत में गाथा और सूत्रों के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ कौंस [-] दिए है और जहां गाथा है वहाँ ||-|| ऐसी दो लाइन खींची है|

हमने एक अनुक्रमणिका भी बनायी है, जिसमे प्रत्येक शतक, वग्र्ग एवं उद्देशक लिख दिये है और साथमें इस सम्पादन के पृष्ठांक भी दे दिए है, जिससे अभ्यासक व्यक्ति अपने चहिते शतक या विषय तक आसानी से पहुँच शकता है | अनेक पृष्ठ के नीचे विशिष्ठ फूटनोट भी लिखी है, जिसमे उस पृष्ठ पर चल रहे ख़ास विषयवस्तु की, मूल प्रतमें रही हुई कोई-कोई मुद्रण-भूल की या क्रमांकन सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होती है |

शासनप्रभावक पूज्य आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी म०सा० की प्रेरणासे और श्री वर्धमान जैन आगममंदिर, पालिताणा की संपूर्ण द्रव्य सहाय से ये 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' भाग-८ का मुद्रण हुआ है, हम उन के प्रति हमारा आभार व्यक्त करते है |

.....मुनि दीपरत्नसागर.

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

॥ अर्हम् ॥

नवाङ्गवृत्तिकारकश्रीमदभयदेवसूरिविहितविवरणयुता

श्रीमद्गणधरवरसुधर्मस्वामिप्रणीता ।

व्याख्याप्रज्ञप्तिः ।

सर्वज्ञमीश्वरमनन्तमसङ्गमैड्यं, सार्व्वीयमस्मरमनीशमनीहमिर्द्धम् ।
सिद्धं शिवं शिवकरं करणव्यपेतं, श्रीमज्जिनं जितरिपुं प्रयतः प्रणौमि ॥ १ ॥
नत्वा श्रीवर्द्धमानाय, श्रीमते च सुधर्म्मणे । सर्वानुयोगवृद्धेभ्यो, वाण्यै सर्वविदस्तथा ॥ २ ॥
एतट्टीकाचूर्णी जीवाभिगमादिवृत्तिलेशांश्च । संयोज्य पञ्चमाङ्गं विवृणोमि विशेषतः किञ्चित् ॥ ३ ॥

१ अनन्तार्थगोचरानन्तकालगोचरज्ञानाव्यतिरेकात् । २ रागधनादिसङ्गरहितं । ३ प्रधानम् । ४ सर्वेभ्यो हितम् । ५ वेदोदयरहितं । ६ स्वयम्बुद्धत्वात्परमपरमेष्ठित्वान्नास्यान्य ईशः । ७ ईहा स्पृहा विकल्पो वा । ८ अन्तर्ज्ञानलक्ष्म्या तपस्तेजसा वा बहिः शरीरतेजसा दीप्तं । ९ आगमसिद्धमर्थतो द्वादशाङ्गीप्रणयनात् निष्ठितार्थं वा मङ्गलरूपं वा । १० रोगाद्युपद्रवाभाववन्तं । ११ इन्द्रियै रहितं, निरुपयोगत्वात्तेषाम्, हेतुहेतुमद्भावः सर्वत्र । १२ स्वरूपविशेषणं भावजिनत्वादेव पूर्वोक्तरूपस्य जिनस्य ।

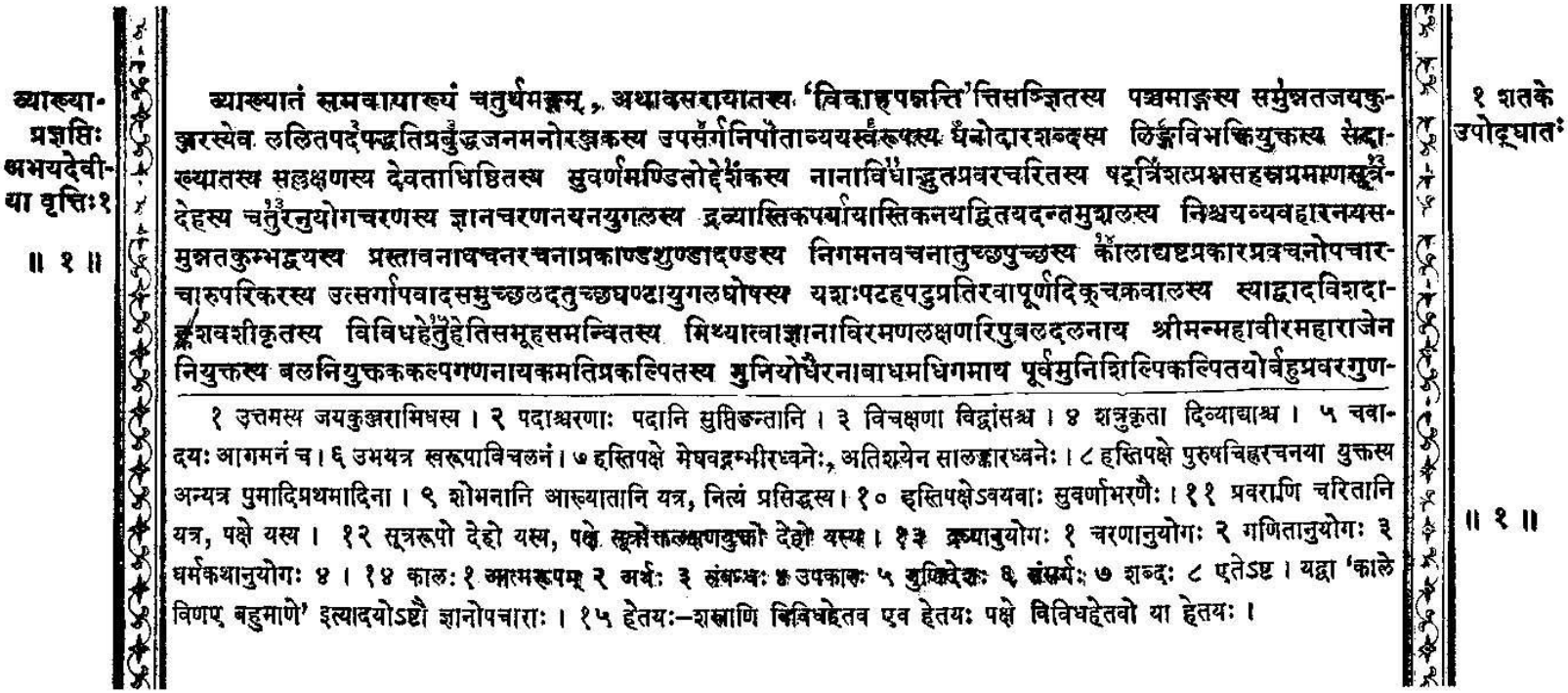
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वृत्तिकार-रचिता आरंभिक-गाथा:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्ति:



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१

॥ १ ॥

व्याख्यातं समवायाख्यं चतुर्थमङ्गम्, अथावसरायातस्य 'विवाहपन्नत्ति'त्तिसञ्ज्ञितस्य पञ्चमाङ्गस्य समुन्नतजयकुञ्जरस्येव ललितपदपद्धतिप्रबुद्धजनमनोरञ्जकस्य उपसर्गनिपातान्ययस्वरूपस्य धैर्योदारशब्दस्य लिङ्गविभक्तियुक्तस्य सदाख्यातस्य सल्लक्षणस्य देवताधिष्ठितस्य सुवर्णमण्डितोद्देशकस्य नानाविधाद्भुतप्रवरचरितस्य षट्त्रिंशत्प्रश्नसहस्रप्रमाणसूत्रदेहस्य चतुरनुयोगचरणस्य ज्ञानचरणनयनयुगलस्य द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकनयद्वितयदन्तमुशलस्य निश्चयव्यवहारनयसमुन्नतकुम्भद्वयस्य प्रस्तावनावचनरचनाप्रकाण्डशुण्डादण्डस्य निगमनवचनातुच्छपुच्छस्य कालाद्यष्टप्रकारप्रवचनोपचारचारुपरिकरस्य उत्सर्गापवादसमुच्छलदतुच्छघण्टायुगलघोषस्य यशःपटहपटुप्रतिरवापूर्णदिक्चक्रवालस्य स्याद्वादविशदाङ्कुशवशीकृतस्य विविधहेतुहेतिसमूहसमन्वितस्य मिथ्यात्वाज्ञानाविरमणलक्षणरिपुबलदलनाय श्रीमन्महावीरमहाराजेन नियुक्तस्य बलनियुक्तककल्पगणनायकमतिप्रकल्पितस्य मुनियोधैरनाबाधमधिगमाय पूर्वमुनिशिल्पिकल्पितयोर्बहुप्रवरगुण-

१ उत्तमस्य जयकुञ्जरामिधस्य । २ पदाश्चरणाः पदानि सुप्तिङन्तानि । ३ विचक्षणा विद्वांसश्च । ४ शत्रुकृता दिव्याद्याश्च । ५ चवादयः आगमनं च । ६ उभयत्र स्वरूपाविचलनं । ७ हस्तिपक्षे मेघवद्गम्भीरध्वनेः, अतिशयेन सालङ्कारध्वनेः । ८ हस्तिपक्षे पुरुषचिह्नरचनया युक्तस्य अन्यत्र पुमादिप्रथमादिना । ९ शोभनानि आख्यातानि यत्र, नित्यं प्रसिद्धस्य । १० हस्तिपक्षेऽवयवाः सुवर्णाभरणैः । ११ प्रवराणि चरितानि यत्र, पक्षे यस्य । १२ सूत्ररूपो देहो यस्य, पक्षे सूत्रेसकलक्षणयुक्तो देहो यस्य । १३ द्रव्यानुयोगः १ चरणानुयोगः २ गणितानुयोगः ३ धर्मकथानुयोगः ४ । १४ कालः १ आत्मरूपम् २ अर्थः ३ संबन्धः ४ उपकारः ५ युक्तिदेशः ६ संग्रहः ७ शब्दः ८ एतेऽष्ट । यद्वा 'काले विणए बहुमाणे' इत्यादयोऽष्टौ ज्ञानोपचाराः । १५ हेतयः–शस्त्राणि विविधहेतव एव हेतयः पक्षे विविधहेतवो या हेतयः ।

१ शतके उपोद्घातः

॥ १ ॥

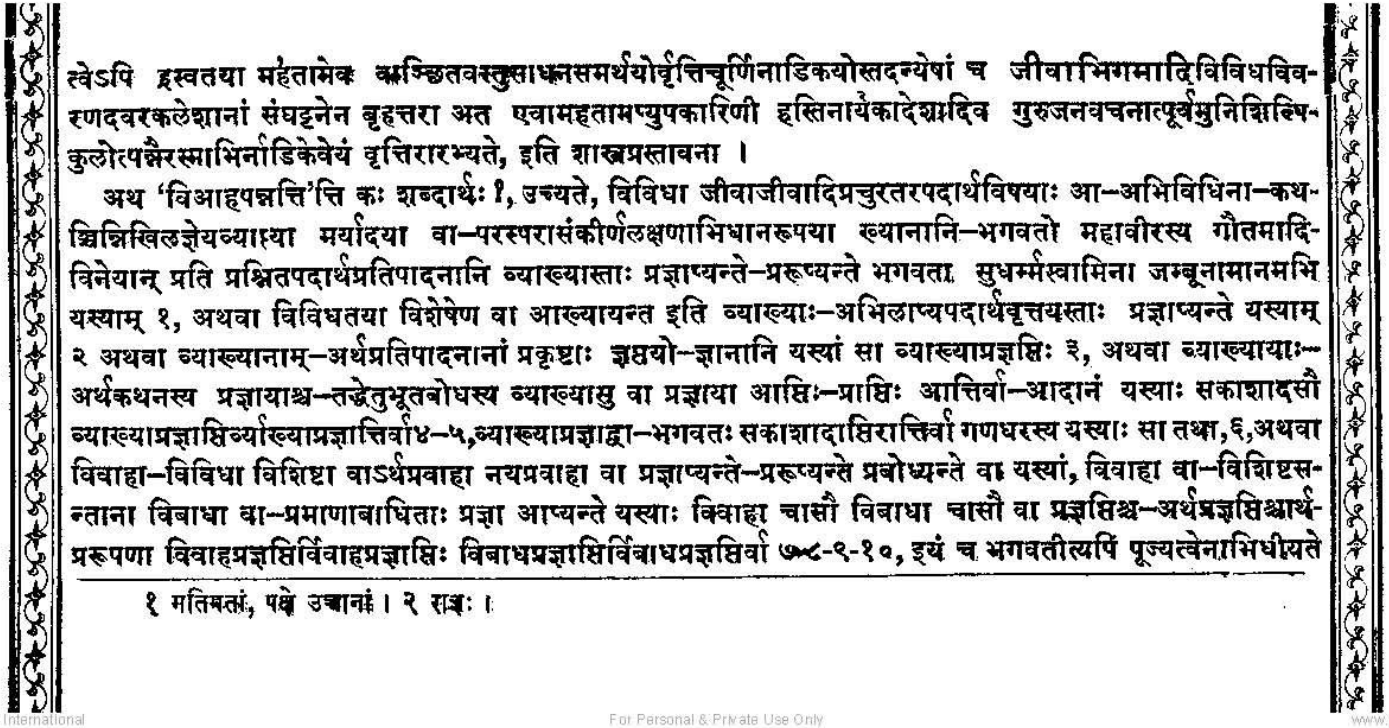
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वृत्तिकारेण कृता जयकुंजर-हस्तिना सह अस्य 'विवाहपन्नत्ति' सूत्रस्य तुलना

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः



स्वेऽपि हस्वतया महतामेव वाञ्छितवस्तुसाधनसमर्थयोर्वृत्तिचूर्णिनाडिकयोस्तदन्येषां च जीवाभिगमादिविविधविवरणदवरकलेशानां संघट्टनेन बृहत्तरा अत एवामहतामप्युपकारिणी हस्तिनायैकादेशवदिव गुरुजनवचनात्पूर्वमुनिशिष्यकुलोत्पन्नैरस्माभिर्नाडिकेवेयं वृत्तिरारभ्यते, इति शास्त्रप्रस्तावना ।

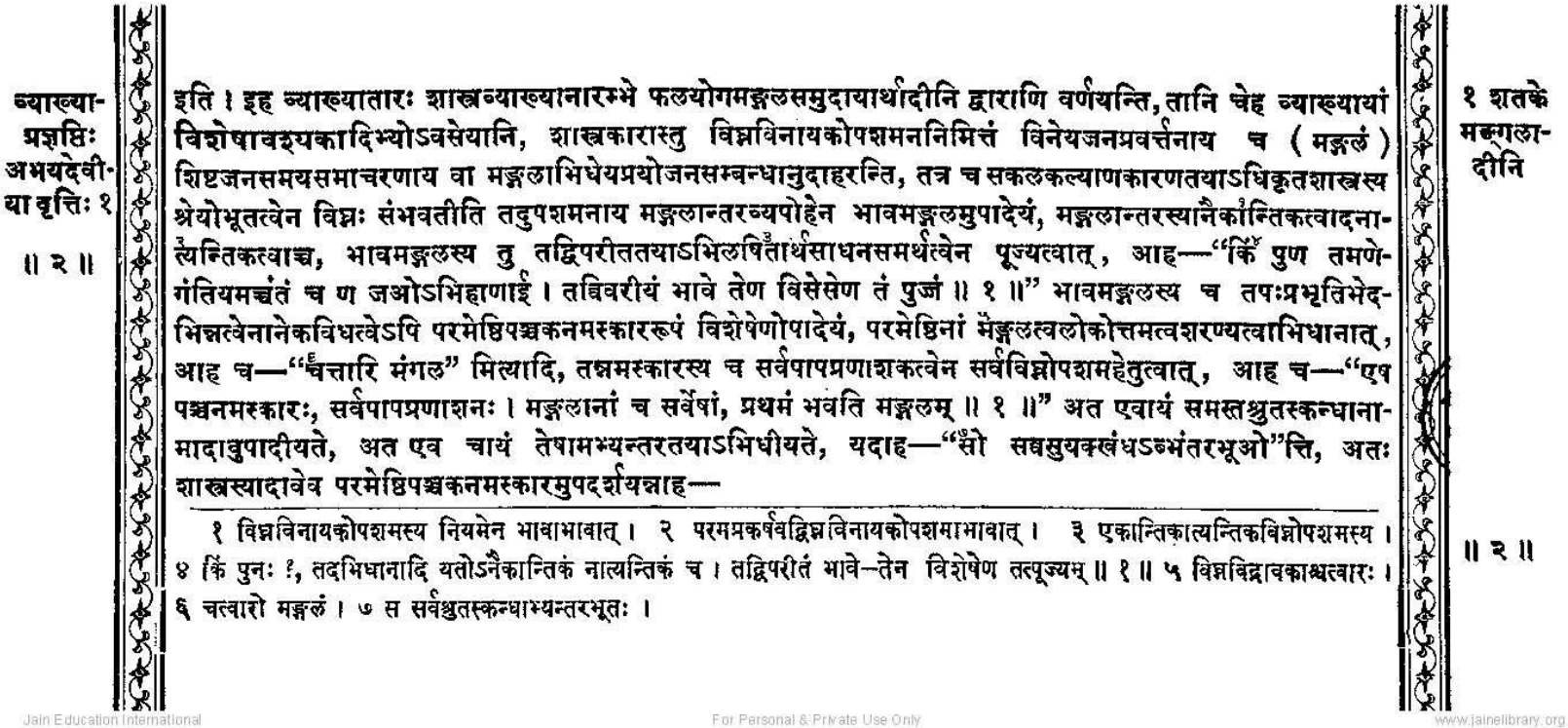
अथ 'विआहपन्नत्ति'त्ति कः शब्दार्थः १, उच्यते, विविधा जीवाजीवादिप्रचुरतरपदार्थविषयाः आ–अभिविधिना–कथञ्चिन्निखिलज्ञेयव्याप्त्या मर्यादया वा–परस्परासंकीर्णलक्षणाभिधानरूपया ख्यानानि–भगवतो महावीरस्य गौतमादिविनेयान् प्रति प्रश्नितपदार्थप्रतिपादनानि व्याख्यास्ताः प्रज्ञाप्यन्ते–प्ररूप्यन्ते भगवता सुधर्म्मस्वामिना जम्बूनामानमभि यस्याम् १, अथवा विविधतया विशेषेण वा आख्यायन्त इति व्याख्याः–अभिलाप्यपदार्थवृत्तयस्ताः प्रज्ञाप्यन्ते यस्याम् २ अथवा व्याख्यानाम्–अर्थप्रतिपादनानां प्रकृष्टाः ज्ञप्तयो–ज्ञानानि यस्यां सा व्याख्याप्रज्ञप्तिः ३, अथवा व्याख्यायाः–अर्थकथनस्य प्रज्ञायाश्च–तद्धेतुभूतबोधस्य व्याख्यासु वा प्रज्ञाया आप्तिः–प्राप्तिः आत्तिर्वा–आदानं यस्याः सकाशादसौ व्याख्याप्रज्ञाप्तिर्व्याख्याप्रज्ञात्तिर्वा४–५,व्याख्याप्रज्ञाद्वा–भगवतः सकाशादाप्तिरात्तिर्वा गणधरस्य यस्याः सा तथा,६,अथवा विवाहा–विविधा विशिष्टा वाऽर्थप्रवाहा नयप्रवाहा वा प्रज्ञाप्यन्ते–प्ररूप्यन्ते प्रबोध्यन्ते वा यस्यां, विवाहा वा–विशिष्टसन्ताना विबाधा वा–प्रमाणाबाधिताः प्रज्ञा आप्यन्ते यस्याः विवाहा चासौ विबाधा चासौ वा प्रज्ञप्तिश्च–अर्थप्रज्ञप्तिश्चार्थप्ररूपणा विवाहप्रज्ञप्तिर्विवाहप्रज्ञाप्तिः विबाधप्रज्ञाप्तिर्विबाधप्रज्ञप्तिर्वा ७८-९-१०, इयं च भगवतीत्यपि पूज्यत्वेनाभिधीयते

१ मतिमतां, पक्षे उद्यानां । २ राज्ञः ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एतत् 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' सूत्रस्य विविधा व्याख्याः

प्रत सूत्रांक [-] दीप अनुक्रम [-]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः



व्याख्याप्रज्ञप्तिः अभयदेवीया वृत्तिः १ ॥ २ ॥

१ शतके मङ्गलादीनि

इति । इह व्याख्यातारः शास्त्रव्याख्यानारम्भे फलयोगमङ्गलसमुदायार्थादीनि द्वाराणि वर्णयन्ति, तानि चेह व्याख्यायां विशेषावश्यकादिभ्योऽवसेयानि, शास्त्रकारास्तु विघ्नविनायकोपशमननिमित्तं विनेयजनप्रवर्त्तनाय च (मङ्गलं) शिष्टजनसमयसमाचरणाय वा मङ्गलाभिधेयप्रयोजनसम्बन्धानुदाहरन्ति, तत्र च सकलकल्याणकारणतयाऽधिकृतशास्त्रस्य श्रेयोभूतत्वेन विघ्नः संभवतीति तदुपशमनाय मङ्गलान्तरव्यपोहेन भावमङ्गलमुपादेयं, मङ्गलान्तरस्यानैकान्तिकत्वादनात्यन्तिकत्वाच्च, भावमङ्गलस्य तु तद्विपरीततयाऽभिलषितार्थसाधनसमर्थत्वेन पूज्यत्वात्, आह—"किं पुण तमणेगंतियमच्चंतं च ण जओऽभिहाणाई । तविवरीयं भावे तेण विसेसेण तं पुज्जं ॥ १ ॥" भावमङ्गलस्य च तपःप्रभृतिभेदभिन्नत्वेनानेकविधत्वेऽपि परमेष्ठिपञ्चकनमस्काररूपं विशेषेणोपादेयं, परमेष्ठिनां मङ्गलत्वलोकोत्तमत्वशरण्यत्वाभिधानात्, आह च—"चत्तारि मंगल" मित्यादि, तन्नमस्कारस्य च सर्वपापप्रणाशकत्वेन सर्वविघ्नोपशमहेतुत्वात्, आह च—"एष पञ्चनमस्कारः, सर्वपापप्रणाशनः । मङ्गलानां च सर्वेषां, प्रथमं भवति मङ्गलम् ॥ १ ॥" अत एवायं समस्तश्रुतस्कन्धानामादावुपादीयते, अत एव चायं तेषामभ्यन्तरतयाऽभिधीयते, यदाह—"सो सव्वसुयक्खंधऽब्भंतरभूओ"त्ति, अतः शास्त्रस्यादावेव परमेष्ठिपञ्चकनमस्कारमुपदर्शयन्नाह—

१ विघ्नविनायकोपशमस्य नियमेन भावाभावात् । २ परमप्रकर्षवद्विघ्नविनायकोपशमाभावात् । ३ एकान्तिकात्यन्तिकविघ्नोपशमस्य । ४ किं पुनः ?, तदभिधानादि यतोऽनैकान्तिकं नात्यन्तिकं च । तद्विपरीतं भावे–तेन विशेषेण तत्पूज्यम् ॥ १ ॥ ५ विघ्नविद्रावकाश्चत्वारः । ६ चत्वारो मङ्गलं । ७ स सर्वश्रुतस्कन्धाभ्यन्तरभूतः ।

॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	अस्य सूत्रस्य 'मंगल' आदि

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [१]

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं (सू० १)॥

तत्र नम इति नैपातिकं[1] पदं द्रव्यभावसङ्कोचार्थम्, आह च—"नेवाइयं पयं० दव्वभावसंकोयण पयत्थो" 'नमः' करचरणमस्तकसुप्रणिधानरूपो नमस्कारो भवत्वित्यर्थः, केभ्य इत्याह–'अर्हद्भ्यः' अमरवरविनिर्मिताशोकादिमहाप्रातिहार्यरूपां पूजामर्हन्तीत्यर्हन्तः, यदाह—"अरिहंति वंदणनमंसणाणि अरिहंति पूयसक्कारं[2]। सिद्धिगमणं च अरहा अरहंता तेण वुच्चंति ॥ १॥" अतस्तेभ्यः, इह च चतुर्थ्यर्थे षष्ठी प्राकृतशैलीवशात्, अविद्यमानं वा रहः–एकान्तरूपो देशः अन्तश्च–मध्यं गिरिगुहादीनां सर्ववेदितया समस्तवस्तुस्तोमगतप्रच्छन्नत्वस्याभावेन येषां ते अरहोऽन्तरः अतस्तेभ्योऽरहोऽन्तर्भ्यः, अथवा–अविद्यमानो रथः–स्यन्दनः सकलपरिग्रहोपलक्षणभूतोऽन्तश्च–विनाशो जराद्युपलक्षणभूतो येषां ते अरथान्ता अतस्तेभ्यः, अथवा 'अरहंताणं'ति क्वचिदप्यासक्तिमगच्छद्भ्यः[3] क्षीणरागत्वात्, अथवा अरहयद्भ्यः–प्रकृष्टरागादिहेतुभूतमनोज्ञेतरविषयसंपर्केऽपि वीतरागत्वादिकं स्वं स्वभावमत्यजद्भ्य इत्यर्थः, 'अरिहंताणं'ति पाठान्तरं, तत्र कर्मारिहन्तृभ्यः, आह च—"अट्ठविहंपि य कम्मं अरिभूयं होइ सयलजीवाणं[4]। तं कम्ममरिं हंता अरिहंता तेण वुच्चंति ॥ १ ॥" 'अरुहंताण'मित्यपि पाठान्तरं, तत्र 'अरोहद्भ्यः' अनुपजायमानेभ्यः, क्षीणकर्म्मबीजत्वात्, आह च—"दग्धे

१ नैपातिकं पदं, द्रव्यभावसंकोचनं पदार्थः। २ वन्दननमस्यनानि अर्हन्ति पूजासत्कारौ चार्हन्ति। सिद्धिगमनस्यार्हाश्च तेनार्हन्त उच्यन्ते॥१॥ ३ देशीभाषया। ४ सर्वजीवानामप्यष्टविधञ्च कर्म्म अरिभूतं भवति। तं कर्म्मारिं यतो घातयति तेनारिहन्तार उच्यन्ते॥१॥ ५ "सव्व" इत्यपि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

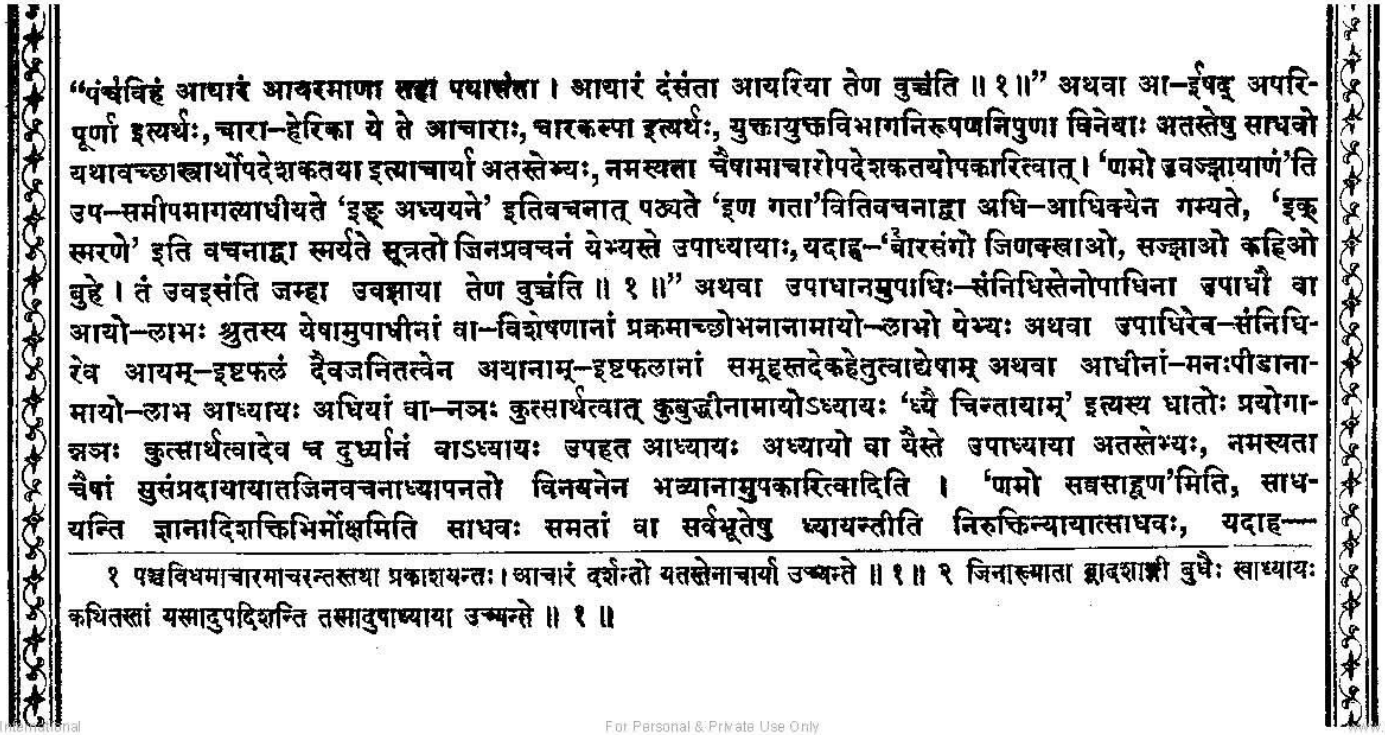
पञ्च परमेष्ठी-नमस्कारम् एवं ते पञ्चानाम व्याख्या:

बीजे यथाऽत्यन्तं, प्रादुर्भवति नाङ्कुरः । कर्म्मबीजे तथा दग्धे, न रोहति भवाङ्कुरः ॥ १ ॥" नमस्करणीयता चैषां भीम-भवगहनभ्रमणभीतभूतानामनुपमानन्दरूपपरमपदपुरपथप्रदर्शकत्वेन परमोपकारित्वादिति । 'णमो सिद्धाणं' ति, सितं–बद्धमष्टप्रकारं कर्म्मेन्धनं ध्मातं–दग्धं जाज्वल्यमानशुक्लध्यानानलेन यैस्ते निरुक्तविधिना सिद्धाः, अथवा 'षिधु गतौ' इति वचनात् सेधन्ति स्म–अपुनरावृत्त्या निर्वृतिपुरीमगच्छन्, अथवा 'षिधु संराद्धौ' इतिवचनात् सिद्ध्यन्ति स्म–निष्ठितार्था भवन्ति स्म, अथवा 'षिधूञ् शास्त्रे माङ्गल्ये च' इतिवचनात् सेधन्ति स्म–शासितारोऽभूवन् मङ्गल्यरूपतां चानुभवन्ति स्मेति सिद्धाः, अथवा सिद्धाः–नित्याः, अपर्यवसानस्थितिकत्वात् , प्रख्याता वा भव्यैरुपलब्धगुणसन्दोहत्वात्, आह च—"ध्मातं सितं येन पुराणकर्म्म, यो वा गतो निर्वृतिसौधमूर्ध्नि । ख्यातोऽनुशास्ता परिनिष्ठितार्थो, यः सोऽस्तु सिद्धः कृतमङ्गलो मे ॥ १ ॥" अतस्तेभ्यो नमः, नमस्करणीयता चैषामविप्रणाशिज्ञानदर्शनसुखवीर्यादिगुणयुक्ततया स्वविषयप्रमोदप्रकर्षोत्पादनेन भव्यानामतीवोपकारहेतुत्वादिति । 'णमो आयरियाणं'ति, आ–मर्यादया तद्विषयविनयरूपया चर्यन्ते–सेव्यन्ते जिनशासनार्थोपदेशकतया तदाकाङ्क्षिभिरित्याचार्याः, उक्तञ्च–"सुत्तत्थविऊ लक्खणजुत्तो गच्छस्स मेढिभूओ य । गणतत्तिविप्पमुक्को अत्थं वाएइ आयरिओ ॥ १ ॥"त्ति, अथवा–आचारो–ज्ञानाचारादिः पञ्चधा आ–मर्यादया वा चारो–विहार आचारस्तत्र साधवः स्वयंकरणात् प्रभाषणात् प्रदर्शनाच्चेत्याचार्याः, आह च–

१ सूत्रार्थविलक्षणयुक्तो गच्छस्यासम्बनभूतश्च । गणतत्तिविप्रमुक्तः सत्यर्थं वाचयत्याचार्यः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'अरिहंत' आदि पञ्च परमेष्ठिनाम व्याख्या:



"पंचविहं आयारं आयरमाणा तहा पयासेता । आयारं दंसंता आयरिया तेण वुच्चंति ॥ १ ॥" अथवा आ–ईषद् अपरिपूर्णा इत्यर्थः, चारा–हेरिका ये ते आचाराः, चारकल्पा इत्यर्थः, युक्तायुक्तविभागनिरूपणनिपुणा विनेयाः अतस्तेषु साधवो यथावच्छास्त्रार्थोपदेशकतया इत्याचार्या अतस्तेभ्यः, नमस्यता चैषामाचारोपदेशकतयोपकारित्वात्। 'णमो उवज्झायाणं'ति उप–समीपमागत्याधीयते 'इङ् अध्ययने' इतिवचनात् पठ्यते 'इण गता'वितिवचनाद्वा अधि–आधिक्येन गम्यते, 'इक् स्मरणे' इति वचनाद्वा स्मर्यते सूत्रतो जिनप्रवचनं येभ्यस्ते उपाध्यायाः, यदाह–'बारसंगो जिणक्खाओ, सज्झाओ कहिओ बुहे। तं उवइसंति जम्हा उवझाया तेण वुच्चंति ॥ १ ॥" अथवा उपाधानमुपाधिः–संनिधिस्तेनोपाधिना उपाधौ वा आयो–लाभः श्रुतस्य येषामुपाधीनां वा–विशेषणानां प्रक्रमाच्छोभनानामायो–लाभो येभ्यः अथवा उपाधिरेव–संनिधिरेव आयम्–इष्टफलं दैवजनितत्वेन अयानाम्–इष्टफलानां समूहस्तदेकहेतुत्वाद्येषाम् अथवा आधीनां–मनःपीडानामायो–लाभ आध्यायः अधियां वा–नञः कुत्सार्थत्वात् कुबुद्धीनामायोऽध्यायः 'ध्यै चिन्तायाम्' इत्यस्य धातोः प्रयोगान्नञः कुत्सार्थत्वादेव च दुर्ध्यानं वाऽध्यायः उपहत आध्यायः अध्यायो वा यैस्ते उपाध्याया अतस्तेभ्यः, नमस्यता चैषां सुसंप्रदायायातजिनवचनाध्यापनतो विनयनेन भव्यानामुपकारित्वादिति । 'णमो सव्वसाहूण'मिति, साधयन्ति ज्ञानादिशक्तिभिर्मोक्षमिति साधवः समतां वा सर्वभूतेषु ध्यायन्तीति निरुक्तिन्यायात्साधवः, यदाह–

१ पञ्चविधमाचारमाचरन्तस्तथा प्रकाशयन्तः। आचारं दर्शन्तो यतस्तेनाचार्या उच्यन्ते ॥ १ ॥ २ जिनास्माता द्वादशाङ्गी बुधैः स्वाध्यायः कथितस्तां यस्मादुपदिशन्ति तस्मादुपाध्याया उच्यन्ते ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'अरिहंत' आदि पञ्च परमेष्ठिनाम् व्याख्या:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [१]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ४ ॥

"निव्वाणसाहए जोए, जम्हा साहेंति साहुणो। समा य सव्वभूएसु, तम्हा ते भावसाहुणो॥१॥" साहायकं वा संयमकारिणां धारयन्तीति साधवः, निरुक्तेरेव, सर्वे च ते सामायिकादिविशेषणाः प्रमत्तादयः पुलाकादयो वा जिनकल्पिकप्रतिमाकल्पिकयथालन्दकल्पिकपरिहारविशुद्धिकल्पिकस्थविरकल्पिकस्थितकल्पि (कास्थितकल्पि) कस्थितास्थितकल्पिककल्पातीतभेदाःप्रत्येकबुद्धस्वयम्बुद्धबुद्धबोधितभेदाः भारतादिभेदाः सुषमदुष्षमादिविशेषिता वा साधवः सर्वसाधवः, सर्वग्रहणं च सर्वेषां गुणवतामविशेषनमनीयताप्रतिपादनार्थम्, इदं चार्हदादिपदेष्वपि बोद्धव्यं, न्यायस्य समानत्वादिति, अथवा–सर्वेभ्यो जीवेभ्यो हिताः सार्वास्ते च ते साधवश्च सार्वस्य वा–अर्हतो न तु बुद्धादेः साधवः सार्वसाधवः, सर्वान् वा शुभयोगान् साधयन्ति–कुर्वन्ति सार्वान् वा–अर्हतः साधयन्ति–तदाज्ञाकरणादाराधयन्ति प्रतिष्ठापयन्ति वा दुर्नयनिराकरणादिति सर्वसाधवः सार्वसाधवो वा, अथवा–श्रव्येषु–श्रवणार्हेषु वाक्येषु, अथवा सव्यानि–दक्षिणान्यनुकूलानि यानि कार्याणि तेषु साधवो–निपुणाः श्रव्यसाधवः सव्यसाधवो वाऽतस्तेभ्यः, 'नमो लोए सवसाहूणं'ति क्वचित्पाठः, तत्र सर्वशब्दस्य देशसर्वतायामपि दर्शनादपरिशेषसर्वतोपदर्शनार्थमुच्यते 'लोके' मनुष्यलोके न तु गच्छादौ ये सर्वसाधवस्तेभ्यो नम इति, एषां च नमनीयता मोक्षमार्गसाहायककरणेनोपकारित्वात्, आह च–"[२]असहाए सहायत्तं करेंति मे संयमं करेंतस्स। एएण कारणेणं णमामिऽहं सवसाहूणं॥१॥" ति। ननु यद्ययं सङ्क्षेपेण नमस्कारस्तदा सिद्धसाधूनामेव युक्तः, तद्ग्रहणेऽन्येषाम-

१ निर्वाणसाधकान् योगान् यस्मात्साधयन्ति ततः साधवः। सर्वभूतेषु समाश्च तस्मात्ते भावसाधवः ॥ १ ॥ २ यतोऽसहायस्य मे संयमं कुर्वतः साहायं कुर्वन्ति, एतेन कारणेन सर्वसाधूनमाम्यहम् ॥ १ ॥

१ शतके पञ्चपरमेष्ठिनतिः

॥ ४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'अरिहंत' आदि पञ्च परमेष्ठिनाम व्याख्या:

प्यर्हदादीनां ग्रहणात्, यतोऽर्हदादयो न साधुत्वं व्यभिचरन्ति, अथ विस्तरेण तदा ऋषभादिव्यक्तिसमुच्चारणतोऽसौ वाच्यः स्यादिति, नैवं, यतो न साधुमात्रनमस्कारेऽर्हदादिनमस्कारफलमवाप्यते, मनुष्यमात्रनमस्कारे राजादिनमस्कारफलवदिति कर्त्तव्यो विशेषतोऽसौ, प्रतिव्यक्ति तु नासौ वाच्योऽशक्यत्वादेवेति। ननु यथाप्रधानन्यायमङ्गीकृत्य सिद्धादिरानुपूर्वीं युक्ताऽत्र, सिद्धानां सर्वथा कृतकृत्यत्वेन सर्वप्रधानत्वात्, नैवम्, अर्हदुपदेशेन सिद्धानां ज्ञायमानत्वादर्हतामेव च तीर्थप्रवर्त्तनेनात्यन्तोपकारित्वादित्यर्हदादिरेव सा, नन्वेवमाचार्यादिः सा प्राप्नोति, क्वचित्काले आचार्येभ्यः सकाशादर्हदादीनां ज्ञायमानत्वात्, अत एव च तेषामेवात्यन्तोपकारित्वात्, नैवम्, आचार्याणामुपदेशदानसामर्थ्यमर्हदुपदेशत एव, न हि स्वतन्त्रा आचार्यादय उपदेशतोऽर्थज्ञापकत्वं प्रतिपद्यन्ते, अतोऽर्हन्त एव परमार्थेन सर्वार्थज्ञापकाः, तथा अर्हत्परिषद्रूपा एवाचार्यादयोऽतस्तान् नमस्कृत्यार्हन्नमस्करणमयुक्तम्, उक्तं च—"[1]ण य कोइवि परिसाए पणमित्ता पणवए रन्नो"त्ति एवं तावत्परमेष्ठिनो नमस्कृत्याधुनातनजनानां श्रुतज्ञानस्यात्यन्तोपकारित्वात् तस्य च द्रव्यभावश्रुतरूपत्वात् भावश्रुतस्य च द्रव्यश्रुतहेतुकत्वात्सञ्ज्ञाऽक्षररूपं द्रव्यश्रुतं नमस्कुर्वन्नाह—

णमो बंभीए लिवीए (सू०)॥

लिपिः—पुस्तकादावक्षरविन्यासः, सा चाष्टादशप्रकाराऽपि श्रीमन्नाभेयजिनेन स्वसुतायाः ब्राह्मीनामिकायाः दर्शिता ततो ब्राह्मीत्यभिधीयते, आह च—"[2]लेहं लिवोविहाणं जिणेण बंभीइ दाहिणकरेणं"इत्यतो ब्राह्मीतिस्वरूपविशेषणं लिपेरिति॥ननु

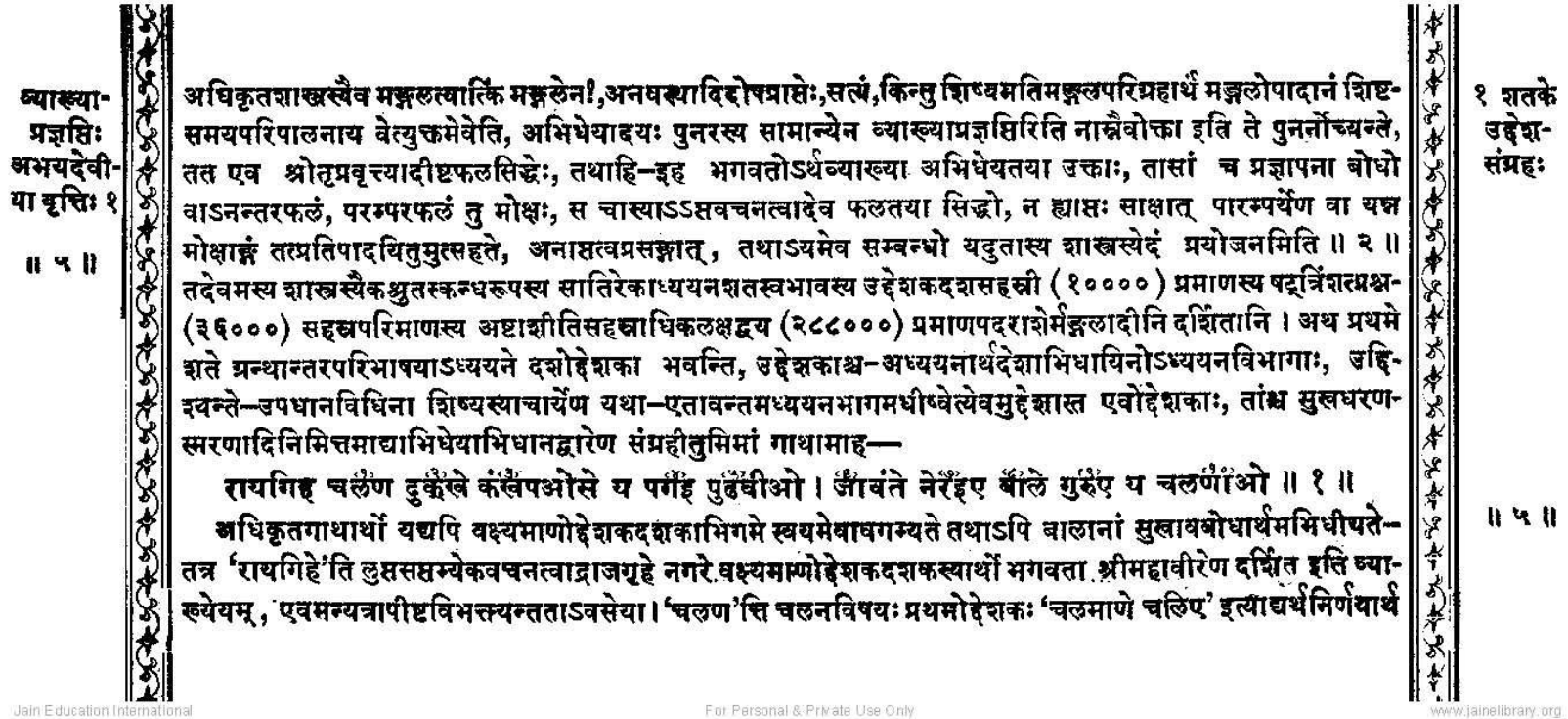
१ न च कोऽपि पर्षद्यन्यं प्रणम्य राजानं प्रणमेत्। २ लेखो लिपिविधानं तद्दक्षिणहस्तेन जिनेन ब्राह्म्या (दर्शितम्)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२]

दीप अनुक्रम [२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ५ ॥

अधिकृतशास्त्रस्यैव मङ्गलत्वात्किं मङ्गलेन?,अनवस्थादिदोषप्राप्तेः,सत्यं,किन्तु शिष्यमतिमङ्गलपरिग्रहार्थं मङ्गलोपादानं शिष्ट-समयपरिपालनाय वेत्युक्तमेवेति, अभिधेयादयः पुनरस्य सामान्येन व्याख्याप्रज्ञप्तिरिति नाम्नैवोक्ता इति ते पुनर्नोच्यन्ते, तत एव श्रोतृप्रवृत्त्यादीष्टफलसिद्धेः, तथाहि–इह भगवतोऽर्थव्याख्या अभिधेयतया उक्ताः, तासां च प्रज्ञापना बोधो वाऽनन्तरफलं, परम्परफलं तु मोक्षः, स चास्याऽऽप्तवचनत्वादेव फलतया सिद्धो, न ह्याप्तः साक्षात् पारम्पर्येण वा यन्न मोक्षाङ्गं तत्प्रतिपादयितुमुत्सहते, अनाप्तत्वप्रसङ्गात्, तथाऽयमेव सम्बन्धो यदुतास्य शास्त्रस्येदं प्रयोजनमिति ॥ २ ॥ तदेवमस्य शास्त्रस्यैकश्रुतस्कन्धरूपस्य सातिरेकाध्ययनशतस्वभावस्य उद्देशकदशसहस्री (१००००) प्रमाणस्य षट्त्रिंशत्प्रश्न-(३६०००) सहस्रपरिमाणस्य अष्टाशीतिसहस्राधिकलक्षद्वय (२८८०००) प्रमाणपदराशेर्मङ्गलादीनि दर्शितानि । अथ प्रथमे शते ग्रन्थान्तरपरिभाषयाऽध्ययने दशोद्देशका भवन्ति, उद्देशकाश्च–अध्ययनार्थदेशाभिधायिनोऽध्ययनविभागाः, उद्दि-श्यन्ते–उपधानविधिना शिष्यस्याचार्येण यथा–एतावन्तमध्ययनभागमधीष्वेत्येवमुद्देशास्त एवोद्देशकाः, तांश्च सुखधरण-स्मरणादिनिमित्तमाद्याभिधेयाभिधानद्वारेण संग्रहीतुमिमां गाथामाह—

रायगिह चलणे दुक्खे कंखपओसे य पगई पुढवीओ । जावंते नेरइए बाले गुरुए य चलणाओ ॥ १ ॥

अधिकृतगाथार्थो यद्यपि वक्ष्यमाणोद्देशकदशकाभिगमे स्वयमेवावगम्यते तथाऽपि बालानां सुखावबोधार्थमभिधीयते–तत्र 'रायगिहे'ति लुप्तसप्तम्येकवचनत्वाद्राजगृहे नगरे.वक्ष्यमाणोद्देशकदशकस्यार्थो भगवता श्रीमद्वीरेण दर्शित इति व्या-ख्येयम्, एवमन्यत्रापीष्टविभक्त्यन्ततोऽवसेया। 'चलण'त्ति चलनविषयः प्रथमोद्देशकः 'चलमाणे चलिए' इत्याद्यर्थनिर्णयार्थ

१ शतके उद्देश-संग्रहः

॥ ५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उद्देशक-अधिकारस्य गाथा एवं तत् व्याख्या:

इत्यर्थः १, 'दुक्खे'त्ति दुःखविषयो द्वितीयः 'जीवो भदन्त ! स्वयंकृतं दुःखं वेदयती'त्यादिप्रश्ननिर्णयार्थ इत्यर्थः २, 'कंख-पओसे'त्ति काङ्क्षा–मिथ्यात्वमोहनीयोदयसमुत्थोऽन्यान्यदर्शनग्रहरूपो जीवपरिणामः स एव प्रकृष्टो दोषो–जीवदूषणं काङ्क्षा-प्रदोषस्तद्विषयस्तृतीयः, 'जीवेन भदन्त ! काङ्क्षामोहनीयं कर्म्म कृतमित्याद्यर्थनिर्णयार्थ इत्यर्थः ३, चकारः समुच्चये, 'पगइ'त्ति प्रकृतयः–कर्म्मभेदाश्चतुर्थोद्देशकस्यार्थः, 'कति भदन्त ! कर्म्मप्रकृतयः ?' इत्याविश्रासौ ४, 'पुढवीओ'त्ति रत्नप्रभादिपृथिव्यः पञ्चमे वाच्याः, 'कति भदन्त ! पृथिव्यः ?' इत्यादि च सूत्रमस्य ५, 'जावंते'त्ति यावच्छब्दोपलक्षितः षष्ठः 'यावतो भदन्त ! अवकाशान्तरात्सूर्य' इत्यादिसूत्रश्चासौ ६, 'नेरइए'त्ति नैरयिकशब्दोपलक्षितः सप्तमः, 'नैरयिको भदन्त ! निरये उत्पद्यमान' इत्यादि च तत्सूत्रं ७, 'बाले'त्ति बालशब्दोपलक्षितोऽष्टमः, 'एकान्तबालो भदन्त ! मनुष्य' इत्यादिसूत्रश्चासौ ८, 'गुरुए'त्ति गुरुकविषयो नवमः, कथं भदन्त ! जीवा गुरुकत्वमागच्छन्ति ?' इत्यादि च सूत्रमस्य ९, चः समुच्चयार्थः, 'चलणाओ'त्ति बहुव चननिर्देशाच्चलनाद्यादशमोद्देशकस्यार्थाः, तत्सूत्रं चैवम्–'अन्ययूथिका भदन्त ! एवमाख्यान्ति–चलद् अचलितमित्यादी'ति प्रथमशतोद्देशकसङ्ग्रहणिगाथार्थः ॥ १ ॥ तदेवं शास्त्रोद्देशे कृतमङ्गलादिकृत्योऽपि प्रथमशतस्यादौ विशेषतो मङ्गलमाह—

नमो सुयस्स ॥ सू० ३ ॥

'नमो सुयस्स'त्ति नमस्कारोऽस्तु 'श्रुताय' द्वादशाङ्गीरूपायार्हत्प्रवचनाय, नन्विष्टदेवतानमस्कारो मङ्गलार्थो भवति, न च श्रुतमिष्टदेवतेति कथमयं मङ्गलार्थ इति ?, अत्रोच्यते, श्रुतमिष्टदेवतैव, अर्हतां नमस्करणीयत्वात्, सिद्धवत्, नमस्कु-र्वन्ति च श्रुतमर्हन्तो, 'नमस्तीर्थाये'ति भणनात्, तीर्थं च श्रुतं संसारसागरोत्तरणासाधारणकारणत्वात्, तदाधारत्वेनैव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३]

दीप अनुक्रम [४]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥ ६ ॥

च सङ्घस्य तीर्थशब्दाभिधेयत्वात्, तथा सिद्धानपि मङ्गलार्थमर्हन्तो नमस्कुर्वन्त्येव–"काऊण नमोक्कारं सिद्धाणमभिग्गहं तु सो गिण्हे" इति वचनादिति ॥ ३ ॥ एवं तावत्प्रथमशतोद्देशकाभिधेयार्थलेशः प्रागदर्शितः, ततश्च 'यथोद्देशं निर्देश' इति न्यायमाश्रित्यादितः प्रथमोद्देशकार्थप्रपञ्चो वाच्यः, तस्य च गुरुपर्वक्रमलक्षणं सम्बन्धमुपदर्शयन् भगवान् सुधर्म्मस्वामी जम्बूस्वामिनमाश्रित्येदमाह—

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था, वण्णओ, तस्स णं रायगिहस्स बहिया नगरस्स उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए गुणसिलए नामं चेइए होत्था, सेणिए राया, चेल्लणा देवी ॥ सू० ४ ॥

अथ कथमिदमवसीयते यदुत–सुधर्म्मस्वामी जम्बूस्वामिनमभि संबन्धग्रन्थमुक्तवानिति ?, उच्यते, सुधर्म्मस्वामिवाचनाया एवानुवृत्तत्वात्, आह च—"तित्थं च सुहम्माओ निरवच्चा गणहरा सेसा" सुधर्म्मस्वामिनश्च जम्बूस्वाम्येव प्रधानः शिष्योऽतस्तमाश्रित्येयं वाचना प्रवृत्तेति, तथा षष्ठाङ्गे उपोद्घात एवं दृश्यते–यथा किल सुधर्म्मस्वामिनं प्रति जम्बूनामा प्राह—"जइ णं भंते ! पंचमस्स अंगस्स विवाहपन्नत्तीए समणेणं भगवया महावीरेणं अयमट्ठे पन्नत्ते, छट्ठस्स णं भंते ! के अट्ठे पन्नत्ते ?"त्ति, तत एवमिहापि सुधर्म्मैव जम्बूनामानं प्रत्युपोद्घातमवश्यमभिहितवानित्यवसीयत इति । अयं चोपोद्घातग्रन्थो मूलटीकाकृता समस्तं शास्त्रमाश्रित्य व्याख्यातोऽप्यस्माभिः प्रथमोद्देशकमाश्रित्य व्याख्यास्यते,

१ सिद्धानां नमस्कारं कृत्वा एव सोऽभिग्रहं गृह्णाति । २ सुधर्म्मणस्तीर्थं च शेषा गणधरा निरपत्याः (सिद्धाः) । ३ यदि भदन्त ! पञ्चमस्याङ्गस्य व्याख्याप्रज्ञप्तेः श्रमणेन भगवता महावीरेणायमर्थः प्रज्ञप्तः षष्ठस्य भदन्त ! कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ?। ४ जम्बूस्वामिनो वाचनामाश्रित्य ।

१ शतके उद्देशः १उ-पोद्घातः

॥ ६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिशतं प्रत्युद्देशकमुपोद्घातस्येह शास्त्रेऽनेकधाऽभिधानादिति, अयं च प्राग् व्याख्यातो नमस्कारादिको ग्रन्थो वृत्तिकृता न व्याख्यातः कुतोऽपि कारणादिति । 'ते णं काले णं'ति, ते इति–प्राकृतशैलीवशात्तस्मिन् यत्र तन्नगरमासीत्, णंकारोऽन्यत्रापि वाक्यालङ्कारार्थो यथा "इमा णं भंते ! पुढवी" त्यादिषु 'काले' अधिकृतावसर्प्पिणीचतुर्थविभागलक्षण इति, 'ते णं'ति तस्मिन् यत्रासौ भगवान् धर्मकथामकरोत् 'समए णं'ति समये–कालस्यैव विशिष्टे विभागे, अथवा तृतीयैवेयं, ततस्तेन कालेन हेतुभूतेन तेन समयेन हेतुभूतेनैव 'रायगिहे'त्ति एकारः प्रथमैकवचनप्रभवः "कयरे आगच्छइ दित्तरूवे" इत्यादाविव, ततश्च राजगृहं नाम नगरं 'होत्थ'त्ति अभवत् । नन्विदानीमपि तन्नगरमस्तीत्यतः कथमुक्तमभवदिति ?, उच्यते, वर्णकग्रन्थोक्तविभूतियुक्तं तदैवाभवत् न तु सुधर्म्मस्वामिनो वाचनादानकाले, अवसर्पिणीत्वात्कालस्य तदीयशुभभावानां हानिभावात् । 'वन्नओ'त्ति इह स्थानके नगरवर्णको वाच्यः, ग्रन्थगौरवभयादिह तस्यालिखितत्वात्, स चैवम्—"रिद्धत्थिमियसमिद्धे"ऋद्धं–पुरभवनादिभिर्वृद्धं स्तिमितं–स्थिरं स्वचक्रपरचक्रादिभयवर्जितत्वात् समृद्धं–धनधान्यादिविभूतियुक्तत्वात्, ततः पदत्रयस्य कर्म्मधारयः, 'पमुइयजणजाणवए' प्रमुदिता–हृष्टाः प्रमोदकारणवस्तूनां सद्भावाज्जना–नगरवास्तव्यलोका जानपदाश्च–जनपदभवास्तत्रायताः सन्तो यत्र तत् प्रमुदितजनजानपदमित्यादिरौपपातिकात्[1] सव्याख्यानोऽत्र दृश्यः । 'तस्स णं'ति षष्ठ्याः पञ्चम्यर्थत्वात्तस्माद्राजगृहान्नगरात् 'बहिय'त्ति बहिस्तात् 'उत्तरपुरच्छिमे'त्ति उत्तरपौरस्त्ये 'दिसीभाए'त्ति दिशां भागो दिग्रूपो वा भागो गगनमण्डलस्य दिग्भागस्तत्र 'गुण-

१ कतर आगच्छति दीप्तरूपः । २ (औप० सू० १) ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४]

दीप अनुक्रम [५]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१ ॥ ७ ॥

सिलकं' नाम 'चेइयं'ति चितेर्लेप्यादिचयनस्य भावः कर्म्म वेति चैत्यं–सज्ज्ञाशब्दत्वाद्देवबिम्बं तदाश्रयत्वात्तद्गृहमपि चैत्यं, तच्चेह व्यन्तरायतनं न तु भगवतामर्हतामायतनं 'होत्थ'त्ति बभूव, इह च यन्न व्याख्यास्यते तत्प्रायः सुगमत्वादित्यवसेयमिति ॥ ४ ॥

ते णं काले णं तेणं समए णं समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थगरे सहसंबुद्धे पुरिसुत्तमे पुरिससीहे पुरिसवरपुंडरीए पुरिसवरगंधहत्थीए लोगुत्तमे लोगनाहे लोगप्पदीवे लोगपज्जोयगरे अभयदए चक्खुदए मग्गदए सरणदए धम्मदेसए* धम्मसारहीए धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी अप्पडिहयवरनाणदंसणधरे विअट्टछउमे जिणे जाणए बुद्धे बोहए मुत्ते मोयए सव्वन्नू सव्वदरिसी सिवमयलमरुयमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावत्तयं सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपाविउकामे जाव समोसरणं ॥ सू० ॥ ५ ॥

'समणे'त्ति 'श्रमु तपसि खेदे चे'ति वचनात् श्राम्यति–तपस्यतीति श्रमणः, अथवा सह शोभनेन मनसा वर्त्तत इति समनाः, शोभनत्वं च मनसो व्याख्यातं स्तवप्रस्तावात्, मनोमात्रसत्त्वस्यास्तवत्वात्, संगतं वा–यथा भवत्येवमणति–भाषते समो वा सर्वभूतेषु सन् अणति–अनेकार्थत्वाद्धातूनां प्रवर्त्तत इति समणो निरुक्तिवशाद् भवति, 'भगवं'ति भगवान्–ऐश्वर्यादियुक्तः पूज्य इत्यर्थः, 'महावीरे'त्ति वीरः 'सूर वीर विक्रान्ताविं'तिवचनात् रिपुनिराकरणतो विक्रान्तः, स च चक्रवर्त्त्यादिरपि स्यादतो विशेष्यते–महांश्चासौ दुर्जयान्तररिपुनिरस्करणाद्वीरश्चेति महावीरः, एतच्च

* धम्मदए इति पा० ।

१ शतके उद्देशः १ राजगृहवर्णनम् सू० ४

॥ ७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'श्रमण' 'भगवन' 'महावीर' शब्दानाम एवं भगवत: विशेषणानाम व्याख्या: / (शक्रस्तवस्य व्याख्या)

देवैर्भगवतो गौणं नाम कृतं, यदाह—"अयले भयभेरवाणं खंतिखमे परिसहोवसग्गाणं। देवेहिं (से नामं) कयं (समणे भगवं) महावीरेत्ति," 'आदिकरे'त्ति आदौ–प्रथमतः श्रुतधर्मम्–आचारादिग्रन्थात्मकं करोति–तदर्थप्रणायकत्वेन प्रणयतीत्येवंशील आदिकरः, आदिकरत्वाच्चासौ त्रिविध इत्याह–'तित्थयरे'त्ति तरन्ति तेन संसारसागरमिति तीर्थं–प्रवचनं तदव्यतिरेकाच्चेह सङ्घस्तीर्थं तत्करणशीलत्वात्तीर्थकरः, तीर्थकरत्वं चास्य नान्योपदेशपूर्वकमित्यत आह–'सहसंबुद्धे'त्ति, सह–आत्मनैव सार्द्धमनन्योपदेशत इत्यर्थः, सम्यग्–यथावद् बुद्धो–हेयोपादेयोपेक्षणीयवस्तुतत्त्वं विदितवानिति सहसंबुद्धः। सहसंबुद्धत्वं चास्य न प्राकृतस्य सतः, पुरुषोत्तमत्वादित्यत आह–'पुरिसोत्तमो'त्ति, पुरुषाणां मध्ये तेन तेन रूपादिनाऽतिशयेनोद्भूतत्वादूर्ध्ववर्त्तित्वादुत्तमः पुरुषोत्तमः, अथ पुरुषोत्तमत्वमेवास्य सिंहाद्युपमानत्रयेण समर्थयन्नाह–'पुरिससीहे'त्ति, सिंह इव सिंहः पुरुषश्चासौ सिंहश्चेति पुरुषसिंहः लोकेन हि सिंहे शौर्यमतिप्रकृष्टमभ्युपगतमतः शौर्ये स उपमानं कृतः, शौर्यं तु भगवतो वास्ये प्रत्यनीकदेवेन भाष्यमानस्याप्यभीतत्वात् कुलिशकठिनमुष्टिप्रहारप्रहतिप्रवर्द्धमानामरशरीरकुब्जताकरणाच्चेति, तथा 'पुरिसवरपुंडरीए'त्ति, वरपुण्डरीकं–प्रधानधवलसहस्रपत्रं पुरुष एव वरपुण्डरीकमिवेति पुरुषवरपुण्डरीकं, धवलत्वं चास्य भगवतः सर्वाशुभमलीमसरहितत्वात् सर्वैश्च शुभानुभावैः शुद्धत्वात्, अथवा पुरुषाणां–तत्सेवकजीवानां वरपुण्डरीकमिव–वरच्छत्रमिव यः सन्तापातपनिवारणसमर्थत्वात् भूषाकारणत्वाच्च स पुरुषवरपुण्डरीकमिति, तथा–'पुरिसवरगंधहत्थि'त्ति पुरुष एव वरगन्धहस्ती पुरुषवरगन्धहस्ती, यथा गन्धहस्तिनो गन्धेनापि

१ अचलो भयभैरवयोः क्षान्तिक्षमः परीषहोपसर्गाणां। देवैः (तस्य नाम) कृतं (श्रमणो भगवान्) महावीर इति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ८ ॥

समस्तेतरहस्तिनो भज्यन्ते तथा भगवतस्तद्देशविहरणेन ईतिपरचक्रदुर्भिक्षडमरमरकादीनि दुरितानि नश्यन्तीति पुरुषवर-गन्धहस्तीत्युच्यत इत्यत उपमात्रयात्पुरुषोत्तमोऽसौ। न चायं पुरुषोत्तम एव, किन्तु ?, लोकस्याप्युत्तमो, लोकनाथत्वाद्, एतदेवाह–'लोगणाहे'त्ति, लोकस्य–सञ्ज्ञिभव्यलोकस्य नाथः–प्रभुर्लोकनाथः, नाथत्वं च योगक्षेमकारित्वं, 'योगक्षेम-कृन्नाथ' इति वचनात्, तच्चास्याप्राप्तस्य सम्यग्दर्शनादेर्योगकरणेन लब्धस्य च परिपालनेनेति, लोकनाथत्वं च यथाऽव-स्थितसमस्तवस्तुस्तोमप्रदीपनादेवेत्यत आह–'लोगपईवे'त्ति लोकस्य–विशिष्टतिर्यङ्नरामररूपस्याऽऽन्तरतिमिरनिराकरणेन प्रकृष्टप्रकाशकारित्वात्प्रदीप इव प्रदीपः, इदं विशेषणं द्रष्टृलोकमाश्रित्योक्तम्, अथ दृश्यं लोकमाश्रित्याह–'लोगपज्जोय-गरे'त्ति, लोकस्य–लोक्यत इति लोकः अनया व्युत्पत्त्या लोकालोकस्वरूपस्य समस्तवस्तुस्तोमस्वभावस्याखण्डमार्त्तण्ड-मण्डलमिव निखिलभावस्वभावावभाससमर्थकेवलालोकपूर्वकप्रवचनप्रभापटलप्रवर्त्तनेन प्रद्योतं–प्रकाशं करोतीत्येवंशीलो लोकप्रद्योतकरः। उक्तविशेषणोपेतश्च 'मिहिरहरिहरहिरण्यगर्भादिरपि तत्तीर्थिकमतेन भवतीति कोऽस्य विशेष इत्या-शङ्कायां तद्विशेषाभिधानायाह–'अभयदए'त्ति, न भयं दयते–ददाति प्राणापहरणरसिकेऽप्युपसर्गकारिणि प्राणिनीत्य-भयदयः, अभया वा–सर्वप्राणिभयपरिहारवती दया–अनुकम्पा यस्य सोऽभयदयः, हरिहरमिहिरादयस्तु नैवमिति विशेषः, न केवलमसावपकारिणां तदन्येषां वाऽनर्थपरिहारमात्रं करोति अपि त्वर्थप्राप्तिमपि करोतीति दर्शयन्नाह— 'चक्खुदये'त्ति, चक्षुरिव चक्षुः–श्रुतज्ञानं शुभाशुभार्थविभागोपदर्शकत्वात्, यदाह—"चक्षुष्मन्तस्त एवेह, ये श्रुतज्ञान-चक्षुषा। सम्यक् सदैव पश्यन्ति, भावान् हेयेतरान्नराः ॥ १ ॥" तद्दयत इति चक्षुर्दयः यथा हि लोके कान्तारगतानां

१ शतके उद्देशः १ वीरवर्ण-नादि सू० ५

॥ ८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'श्रमण' 'भगवन' 'महावीर' शब्दानाम एवं भगवत: विशेषणानाम व्याख्या: / (शक्रस्तवस्य व्याख्या)

प्रत सूत्रांक [५]

दीप अनुक्रम [६]

चौरैर्विलुप्तधनानां बद्धचक्षुषां चक्षुरुद्घाटनेन चक्षुर्दत्त्वा वाञ्छितमार्गदर्शनेनोपकारी भवति, एवमयमपि संसारारण्यवर्त्तिनां रागादिचौरविलुप्तधर्मधनानां कुवासनाऽऽच्छादितसज्ज्ञानलोचनानां तदपनयनेन श्रुतचक्षुर्दत्त्वा निर्वाणमार्गं यच्छन्नुपकारीति दर्शयन्नाह—'मग्गदए'त्ति, मार्गं–सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकं परमपदपुरपथं दयत इति मार्गदयः, यथा हि लोके चक्षुरुद्घाटनं मार्गदर्शनं च कृत्वा चौरादिविलुप्तान् निरुपद्रवं स्थानं प्रापयन् परमोपकारी भवतीत्येवमयमपीति दर्शयन्नाह—'सरणदए'त्ति शरणं–त्राणं नानाविधोपद्रवोपद्रुतानां तद्रक्षास्थानं, तच्च परमार्थतो निर्वाणं तद्दयत इति शरणदयः, शरणदायकत्वं चास्य धर्मदेशनयैवेत्यत आह—'धम्मदेसए'त्ति, धर्मं–श्रुतचारित्रात्मकं देशयतीति धर्म्मदेशकः, 'धम्मदये'त्ति पाठान्तरं, तत्र च धर्म्मं–चारित्ररूपं दयत इति धर्म्मदयः, धर्मदेशनामात्रेणापि धर्मदेशक उच्यत इत्यत आह–'धम्मसारहि'त्ति धर्म्मरथस्य प्रवर्त्तकत्वेन सारथिरिव धर्मसारथिः, यथा रथस्य सारथी रथं रथिकमश्वांश्च रक्षति एवं भगवान् चारित्रधर्माङ्गानां–संयमात्मप्रवचनाख्यानां रक्षणोपदेशाद्धर्मसारथिर्भवतीति, तीर्थान्तरीयमतेनान्येऽपि धर्मसारथयः सन्तीति विशेषयन्नाह–'धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी'ति, त्रयः समुद्राश्चतुर्थश्च हिमवान् एते चत्वारोऽन्ताः–पृथिव्यन्ताः एतेषु स्वामितया भवतीति चातुरन्तः स चासौ चक्रवर्त्ती च चातुरन्तचक्रवर्त्ती वरश्चासौ चातुरन्तचक्रवर्त्ती च वरचातुरन्तचक्रवर्त्ती–राजातिशयः, धर्मविषये वरचातुरन्तचक्रवर्त्ती धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्त्ती, यथा हि पृथिव्यां शेषराजातिशायी वरचातुरन्तचक्रवर्त्ती भवति तथा भगवान् धर्मविषये शेषप्रणेतॄणां मध्ये सातिशयत्वात्तथोच्यत इति, अथवा धर्म एव वरमितरचक्रापेक्षया कपिलादिधर्मचक्रापेक्षया वा चतुरन्तं–दानादिभेदेन चतुर्विभागं चतसृणां वा नरनारका-

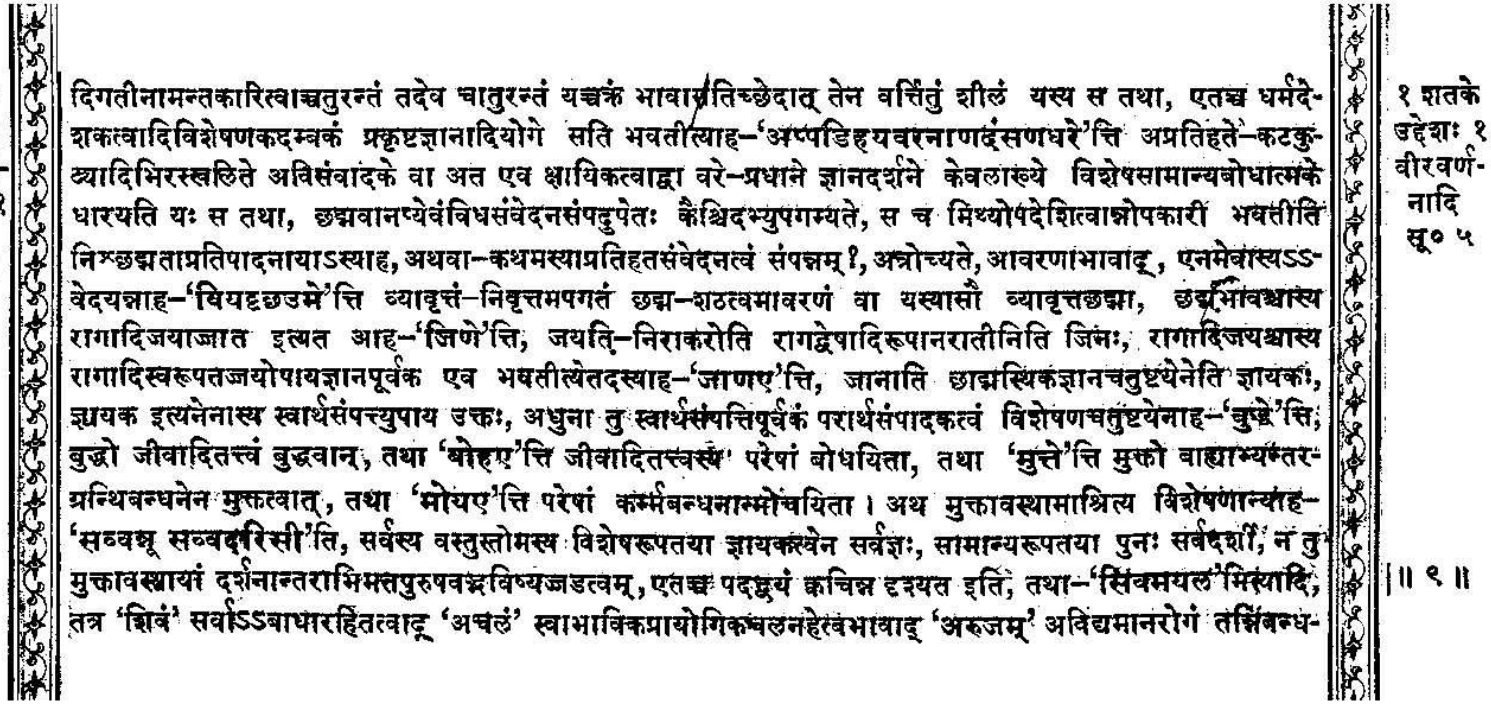
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'श्रमण' 'भगवन' 'महावीर' शब्दानाम एवं भगवतः विशेषणानाम व्याख्याः / (शक्रस्तवस्य व्याख्या)

प्रत सूत्रांक [५]

दीप अनुक्रम [६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ९ ॥

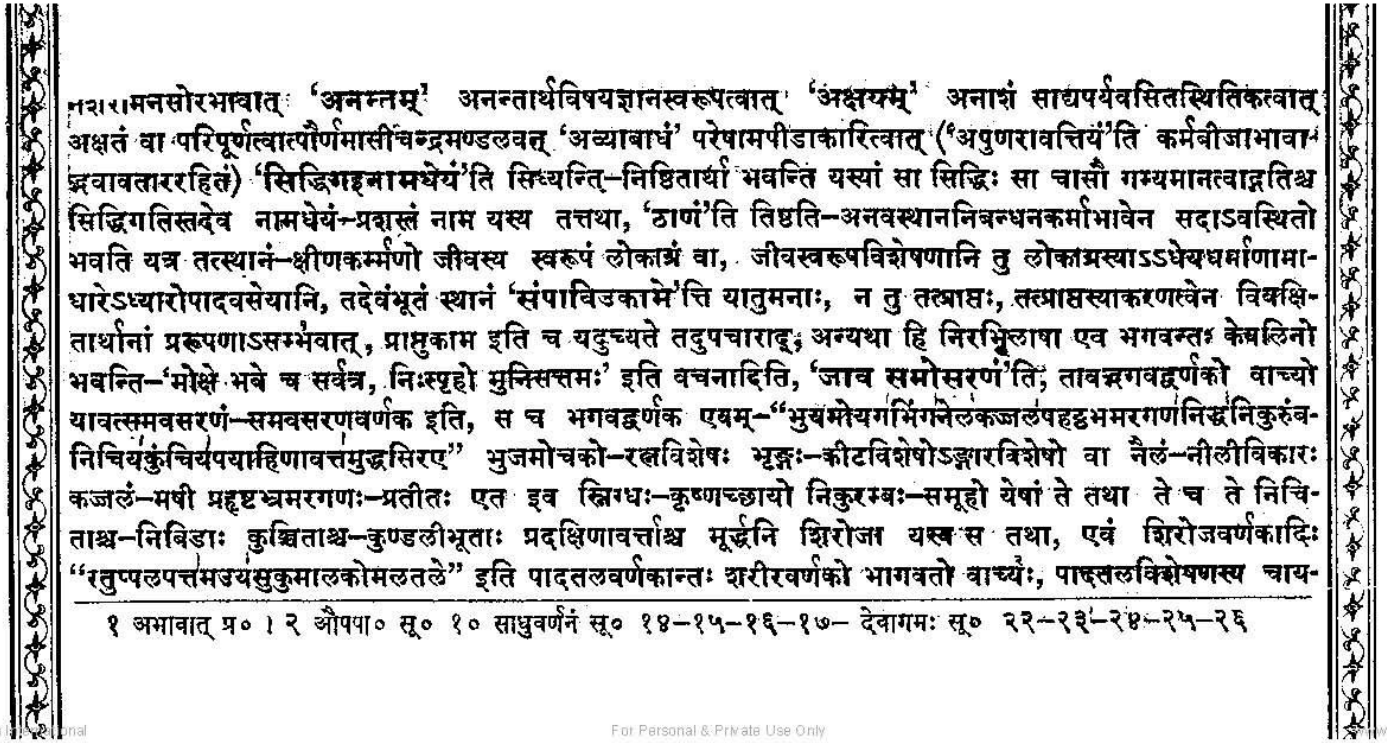
दिगतीनामन्तकारित्वाच्चतुरन्तं तदेव चातुरन्तं यच्चक्रं भावारातिच्छेदात् तेन वर्त्तितुं शीलं यस्य स तथा, एतच्च धर्मदेशकत्वादिविशेषणकदम्बकं प्रकृष्टज्ञानादियोगे सति भवतीत्याह–'अप्पडिहयवरनाणदंसणधरे'त्ति अप्रतिहते–कटकुड्यादिभिरस्खलिते अविसंवादके वा अत एव क्षायिकत्वाद्वा वरे–प्रधाने ज्ञानदर्शने केवलाख्ये विशेषसामान्यबोधात्मके धारयति यः स तथा, छद्मवानप्येवंविधसंवेदनसंपदुपेतः कैश्चिदभ्युपगम्यते, स च मिथ्योपदेशित्वान्नोपकारी भवतीति निश्छद्मतामतिपादनायाऽऽह, अथवा–कथमस्याप्रतिहतसंवेदनत्वं संपन्नम्?, अत्रोच्यते, आवरणाभावाद्, एतमेवास्याऽऽवेदयन्नाह–'वियट्टछउमे'त्ति व्यावृत्तं–निवृत्तमपगतं छद्म–शठत्वमावरणं वा यस्यासौ व्यावृत्तछद्मा, छद्मभावश्चास्य रागादिजयाज्जात इत्यत आह–'जिणे'त्ति, जयति–निराकरोति रागद्वेषादिरूपानरातीनिति जिनः, रागादिजयश्चास्य रागादिस्वरूपतज्जयोपायज्ञानपूर्वक एव भवतीत्येतदस्याह–'जाणए'त्ति, जानाति छाद्मस्थिकज्ञानचतुष्टयेनेति ज्ञायकः, ज्ञायक इत्यनेनास्य स्वार्थसंपत्त्युपाय उक्तः, अधुना तु स्वार्थसंपत्तिपूर्वकं परार्थसंपादकत्वं विशेषणचतुष्टयेनाह–'बुद्धे'त्ति; बुद्धो जीवादितत्त्वं बुद्धवान्, तथा 'बोहए'त्ति जीवादितत्त्वस्य परेषां बोधयिता, तथा 'मुत्ते'त्ति मुक्तो बाह्याभ्यन्तरग्रन्थिबन्धनेन मुक्तत्वात्, तथा 'मोयए'त्ति परेषां कर्म्मबन्धनान्मोचयिता। अथ मुक्तावस्थामाश्रित्य विशेषणान्याह–'सव्वण्णू सव्वदरिसी'ति, सर्वस्य वस्तुस्तोमस्य विशेषरूपतया ज्ञायकत्वेन सर्वज्ञः, सामान्यरूपतया पुनः सर्वदर्शी, न तु मुक्तावस्थायां दर्शनान्तराभिमतपुरुषवद्भविष्यज्जडत्वम्, एतच्च पदद्वयं क्वचिन्न दृश्यत इति, तथा–'सिवमयल'मित्यादि, तत्र 'शिवं' सर्वाऽऽबाधारहितत्वाद् 'अचलं' स्वाभाविकप्रायोगिकचलनहेत्वभावाद् 'अरुजम्' अविद्यमानरोगं तन्निबन्ध-

१ शतके उद्देशः १ वीरवर्ण-नादि सू० ५

॥ ९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'श्रमण' 'भगवन' 'महावीर' शब्दानाम एवं भगवत: विशेषणानाम व्याख्या: / (शक्रस्तवस्य व्याख्या)



मनसोरभावात् 'अनन्तम्' अनन्तार्थविषयज्ञानस्वरूपत्वात् 'अक्षयम्' अनाशं साद्यपर्यवसितस्थितिकत्वात् अक्षतं वा परिपूर्णत्वात्पौर्णमासीचन्द्रमण्डलवत् 'अव्याबाधं' परेषामपीडाकारित्वात् ('अपुणरावत्तियं'ति कर्मबीजाभावाद्भवावताररहितं) 'सिद्धिगइनामधेयं'ति सिध्यन्ति–निष्ठितार्था भवन्ति यस्यां सा सिद्धिः सा चासौ गम्यमानत्वाद्गतिश्च सिद्धिगतिस्तदेव नामधेयं–प्रशस्तं नाम यस्य तत्तथा, 'ठाणं'ति तिष्ठति–अनवस्थाननिबन्धनकर्माभावेन सदाऽवस्थितो भवति यत्र तत्स्थानं–क्षीणकर्म्मणो जीवस्य स्वरूपं लोकाग्रं वा, जीवस्वरूपविशेषणानि तु लोकाग्रस्याऽऽधेयधर्माणामाधारेऽध्यारोपादवसेयानि, तदेवंभूतं स्थानं 'संपाविउकामे'त्ति यातुमनाः, न तु तत्प्राप्तः, तत्प्राप्तस्याकरणत्वेन विवक्षितार्थानां प्ररूपणाऽसम्भवात्, प्राप्तुकाम इति च यदुच्यते तदुपचारात्; अन्यथा हि निरभिलाषा एव भगवन्तः केवलिनो भवन्ति–'मोक्षे भवे च सर्वत्र, निःस्पृहो मुनिसत्तमः' इति वचनादिति, 'जाव समोसरणं'ति, तावद्भगवद्वर्णको वाच्यो यावत्समवसरणं–समवसरणवर्णक इति, स च भगवद्वर्णक एवम्–"भुयमोयगभिंगनेलकज्जलपहट्ठभमरगणनिद्धनिकुरुंबनिचियकुंचियपयाहिणावत्तमुद्धसिरए" भुजमोचको–रत्नविशेषः भृङ्गः–कीटविशेषोऽङ्गारविशेषो वा नैलं–नीलीविकारः कज्जलं–मषी प्रहृष्टभ्रमरगणः–प्रतीतः एत इव स्निग्धः–कृष्णच्छायो निकुरम्बः–समूहो येषां ते तथा ते च ते निचिताश्च–निबिडाः कुञ्चिताश्च–कुण्डलीभूताः प्रदक्षिणावर्त्ताश्च मूर्द्धनि शिरोजा यस्य स तथा, एवं शिरोजवर्णकादिः "रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालकोमलतले" इति पादतलवर्णकान्तः शरीरवर्णको भागवतो वाच्यः, पाद्तलविशेषणस्य चाय-

१ अभावात् प्र० । २ औपपा० सू० १० साधुवर्णनं सू० १४–१५–१६–१७– देवागमः सू० २२–२३–२४–२५–२६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	'श्रमण' 'भगवन' 'महावीर' शब्दानाम एवं भगवतः विशेषणानाम व्याख्याः / (शक्रस्तवस्य व्याख्या)

मर्थः–रक्तं–लोहितम् उत्पलपत्रवत्–कमलदलवत् मृदुकम्–अस्तब्धं सुकुमालानां मध्ये कोमलं च तलं–पादतलं यस्य स तथा, तथा–"अट्ठसहस्सवरपुरिसलक्खणधरे आगासगएणं चक्केणं आगासगएणं छत्तेणं आगासगयाहिं चामराहिं आगासफलिहामएणं सपायपीढेणं सीहासणेणं' आकाशस्फटिकम्–अतिस्वच्छस्फटिकविशेषस्तन्मयेन उपलक्षित इति गम्यं, 'धम्मज्झएणं पुरओ पकड्ढिज्जमाणेणं' देवैरिति गम्यते 'चउदसहिं समणसाहस्सीहिं छत्तीसाए अज्जियासाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे' साहस्रीशब्दः सहस्रपर्यायः सार्द्धं सह, तेषां विद्यमानतयाऽपि सार्द्धमिति स्यादत उच्यते–संपरिवृतः–परिकरित इति, 'पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे' न पश्चानुपूर्व्यादिना 'गामाणुगामं दूइज्जमाणे' ग्रामश्च प्रतीतः अनुग्रामश्च–तदनन्तरं ग्रामो ग्रामानुग्रामं तद् 'द्रवन्' गच्छन् 'सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव रायगिहे नगरे जेणेव गुणसिलए चेइए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता अहापडिरूवं उग्गहं ओगिण्हइ ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ'त्ति । समवसरणवर्णके च 'समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे समणा भगवंतो अप्पेगइया उग्गपव्वइया' इत्यादि साध्वादिवर्णको वाच्यः, तथाऽसुरकुमाराः शेषभवनपतयो व्यन्तरा ज्योतिष्का वैमानिका देवा(देव्य)श्च भगवतः समीपमागच्छन्तो वर्णयितव्याः ॥ ५ ॥

परिसा निग्गया, धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया (सू० ६) ॥

"परिसा निग्गय"त्ति राजगृहाद्राजादिलोको भगवतो वन्दनार्थं निगतः, तन्निर्गमश्चैवम्–"तए णं रायगिहे नगरे सिंघाडगतिगचउक्कचच्चरचउम्मुहमहापहपहेसु बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ ४–एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं

॥ १०॥

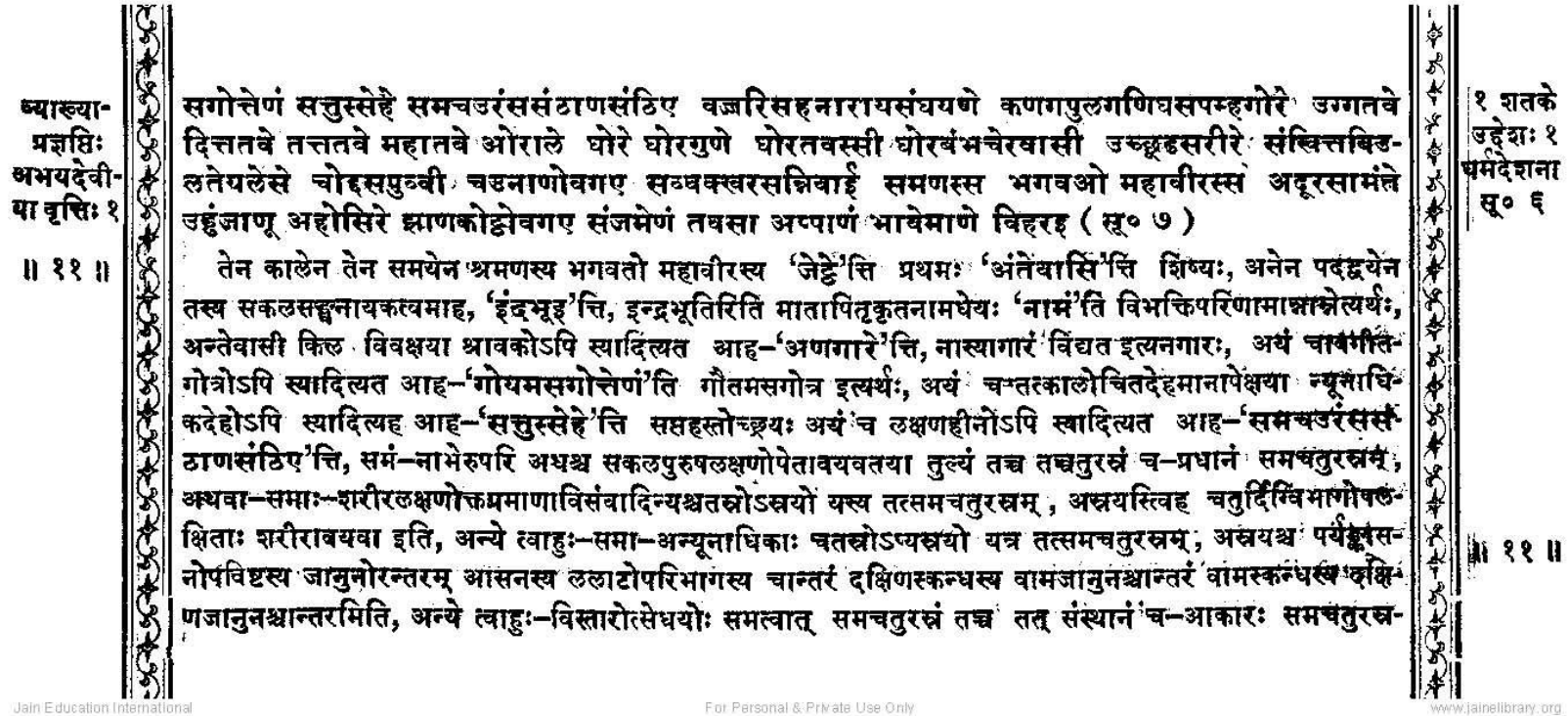
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महावीरे इह गुणसिलए चेइए अहापडिरूवं उग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तं सेयं खलु तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नामगोयस्सवि सवणयाए किमंग पुण वंदणणमंसणयाए? त्तिकट्टु बहवे उग्गा उग्गपुत्ता" इत्यादिर्वाच्यो यावद्भगवन्तं नमस्यन्ति पर्युपासते चेति, एवं राजनिर्गमोऽन्तःपुरनिर्गमश्च तत्पर्युपासना चौपपातिकवद्वाच्या। 'धम्मो कहिओ'त्ति, धर्मकथेह भगवतो वाच्या, सा चैवं–'तए णं समणे भगवं महावीरे सेणियस्स रन्नो चिल्लणापमुहाण य देवीणं तीसे य महतिमहालियाए परिसाए सवभासाणुगामिणीए सरस्सईए धम्मं परिकहेइ, तंजहा–अत्थि लोए अत्थि अलोए एवं जीवा अजीवा बंधे मोक्खे' इत्यादि। तथा "जह णरगा गम्मंती जे णरया जा य वेयणा णरए। सारीरमाणसाइं दुक्खाइं तिरिक्खजोणीए ॥१॥" इत्यादि। 'पडिगया परिस'त्ति लोकः स्वस्थानं गतः, प्रतिगमश्च तस्या एवं वाच्यः–'तए णं सा महइमहालिया महच्चपरिसा' महाऽतिमहती आलप्रत्ययस्य स्वार्थिकत्वादतिशयातिशयगुर्वी महत्या पर्षत्–प्रशस्ता प्रधानपरिषत्, महार्चानां वा–सत्पूजानां महार्चा वा पर्षत् महार्चपर्षदिति, 'समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ करेत्ता वंदइ नमंसइ २ एवं वयासी–सुयक्खाए णं भंते! निग्गंथे पावयणे, णत्थि णं अन्ने केइ समणे वा माहणे वा एरिसं धम्ममाइक्खित्तए, एवं वइत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगय'त्ति ॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूती नामं अणगारे गोयम-

१ औपपातिके सू०–२७–२८–२९–३०–३१–३२–३३। २ औप० सू० ३४–। ३ औप० सू० ३५–३६–३७

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥ ११ ॥

सगोत्तेणं सत्तुस्सेहे समचउरंससंठाणसंठिए वज्जरिसहनारायसंघयणे कणगपुलगणिघसपम्हगोरे उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे ओराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्तविउलतेयलेसे चोद्दसपुव्वी चउनाणोवगए सव्वक्खरसन्निवाई समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ (सू० ७)

तेन कालेन तेन समयेन श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य 'जेट्ठे'त्ति प्रथमः 'अंतेवासि'त्ति शिष्यः, अनेन पदद्वयेन तस्य सकलसङ्घनायकत्वमाह, 'इंदभूइ'त्ति, इन्द्रभूतिरिति मातापितृकृतनामधेयः 'नामं'ति विभक्तिपरिणामान्नाम्नेत्यर्थः, अन्तेवासी किल विवक्षया श्रावकोऽपि स्यादित्यत आह–'अणगारे'त्ति, नास्यागारं विद्यत इत्यनगारः, अयं चावगोत्रोऽपि स्यादित्यत आह–'गोयमसगोत्तेणं'ति गौतमसगोत्र इत्यर्थः, अयं चन्तत्कालोचितदेहमानापेक्षया न्यूनाधिकदेहोऽपि स्यादित्यह आह–'सत्तुस्सेहे'त्ति सप्तहस्तोच्छ्रयः अयं च लक्षणहीनोऽपि स्यादित्यत आह–'समचउरंससंठाणसंठिए'त्ति, समं–नाभेरुपरि अधश्च सकलपुरुषलक्षणोपेतावयवतया तुल्यं तच्च तच्चतुरस्रं च–प्रधानं समचतुरस्रम्, अथवा–समाः–शरीरलक्षणोक्तप्रमाणाविसंवादिन्यश्चतस्रोऽस्रयो यस्य तत्समचतुरस्रम्, अस्रयश्चित्वह चतुर्दिग्विभागोपलक्षिताः शरीरावयवा इति, अन्ये त्वाहुः–समा–अन्यूनाधिकाः चतस्रोऽप्यस्रयो यत्र तत्समचतुरस्रम्, अस्रयश्च पर्यङ्कासनोपविष्टस्य जानुनोरन्तरम् आसनस्य ललाटोपरिभागस्य चान्तरं दक्षिणस्कन्धस्य वामजानुनश्चान्तरं वामस्कन्धस्य दक्षिणजानुनश्चान्तरमिति, अन्ये त्वाहुः–विस्तारोत्सेधयोः समत्वात् समचतुरस्रं तच्च तत् संस्थानं च–आकारः समचतुरस्र-

१ शतके उद्देशः १ धर्मदेशना सू० ६

॥ ११ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

***अत्र मूल-सम्पादन-अवसरे मुद्रण दोषात् सूत्र-क्रम ६ लिखितं, (इस प्रत की दायी तरफ ऊपर सू० ६ लिखा है वो भूल है, यहाँ सू० '७' होना चाहिए

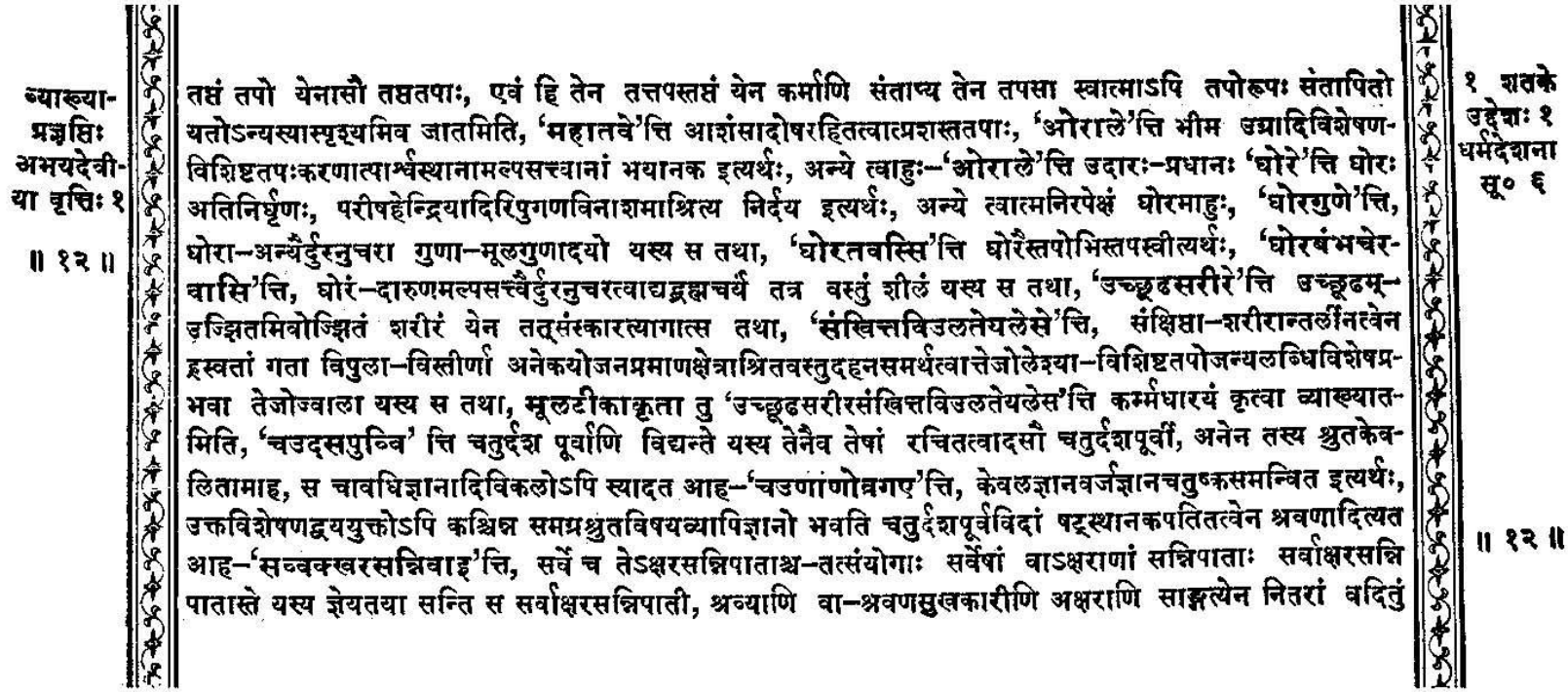
गौतमस्वामिनः वर्णनं

संस्थानं तेन संस्थितो–व्यवस्थितो यः स तथा, अयं च हीनसंहननोऽपि स्यादित्यत आह–'वज्जरिसहनारायसंघयणे' त्ति, इह संहननम्–अस्थिसञ्चयविशेषः, इह वज्रादीनां लक्षणमिदम्–"रिसहो य होइ पट्टो वज्जं पुण कीलियं वियाणाहि । उभओ मक्कडबंधो नारायं तं वियाणाहि ॥ १ ॥" त्ति, तत्र वज्रं च तत् कीलिकाकीलितकाष्ठसंपुटोपमसामर्थ्ययुक्तत्वात् ऋषभश्च लोहादिमयपट्टबद्धकाष्ठसंपुटोपमसामर्थ्यान्वितत्वाद् वज्रर्षभः स चासौ नाराचं च उभयतो मर्कटबन्धनिबद्धकाष्ठसंपुटोपमसामर्थ्योपेतत्वाद् वज्रर्षभनाराचं(तच्च)तत् संहननम्–अस्थिसञ्चयविशेषोऽनुपमसामर्थ्ययोगाद् यस्यासौ वज्रर्षभनाराचसंहननः, अन्ये तु कीलिकादिमत्त्वमस्यामेव वर्णयन्ति, अयं च निन्द्यवर्णोऽपि स्यादित्यत आह–'कणगपुलगनिहसपम्हगोरे' कनकस्य–सुवर्णस्य 'पुलगं'ति यः पुलको–लवस्तस्य यो निकषः–कषपट्टके रेखालक्षणः, तथा 'पम्ह'त्ति-पद्मपक्ष्माणि–केशराणि तद्वद्गौरो यः स तथा, वृद्धव्याख्या तु–कनकस्य न लोहादेर्यः पुलकः–सारो वर्णातिशयस्तत्प्रधानो, यो निकषो–रेखा तस्य यत्पक्ष्म–बहलत्वं तद्वद्गौरो यः स तथा, अथवा–कनकस्य यः पुलको–द्रुतत्वे सति बिन्दुस्तस्य निकषो–वर्णतः सदृशो यः स तथा, 'पम्ह'त्ति पद्मं तस्य चेह प्रस्तावात्केशराणि गृह्यन्ते ततः पद्मवद्गौरो यः स तथा, ततः पदद्वयस्य कर्म्मधारयः, अयं च विशिष्टचरणरहितोऽपि स्यादित्यत आह–'उग्गतवे'त्ति उग्रम्–अप्रधृष्यं तपः–अनशनादि यस्य स उग्रतपाः, यदन्येन प्राकृतपुंसा न शक्यते चिन्तयितुमपि तद्विधेन तपसा युक्त इत्यर्थः, 'दित्ततवे' त्ति, दीप्तं–जाज्वल्यमानदहन इव कर्म्मवनगहनदहनसमर्थतया ज्वलितं तपो–धर्म्मध्यानादि यस्य स तथा, 'तत्ततवे'त्ति

१ ऋषभो भवति पट्टो वज्रं पुनः कीलिकां विजानीहि । उभयतो मर्कटबन्धस्तु नाराचं विजानीहि ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गौतमस्वामिनः वर्णनं



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥ १२ ॥

तप्तं तपो येनासौ तप्ततपाः, एवं हि तेन तप्तपस्तप्तं येन कर्माणि संताप्य तेन तपसा स्वात्माऽपि तपोरूपः संतापितो यतोऽन्यस्यास्पृश्यमिव जातमिति, 'महातवे'त्ति आशंसादोषरहितत्वात्प्रशस्ततपाः, 'ओराले'त्ति भीम उग्रादिविशेषण-विशिष्टतपःकरणात्पार्श्वस्थानामल्पसत्त्वानां भयानक इत्यर्थः, अन्ये त्वाहुः–'ओराले'त्ति उदारः–प्रधानः 'घोरे'त्ति घोरः अतिनिर्घृणः, परीषहेन्द्रियादिरिपुगणविनाशमाश्रित्य निर्दय इत्यर्थः, अन्ये त्वात्मनिरपेक्षं घोरमाहुः, 'घोरगुणे'त्ति, घोरा–अन्यैर्दुरनुचरा गुणा–मूलगुणादयो यस्य स तथा, 'घोरतवस्सि'त्ति घोरैस्तपोभिस्तपस्वीत्यर्थः, 'घोरबंभचेर-वासि'त्ति, घोरं–दारुणमल्पसत्त्वैर्दुरनुचरत्वाद्यद्ब्रह्मचर्यं तत्र वस्तुं शीलं यस्य स तथा, 'उच्छूढसरीरे'त्ति उच्छूढम्–उज्झितमिवोज्झितं शरीरं येन तत्संस्कारत्यागात्स तथा, 'संखित्तविउलतेयलेसे'त्ति, संक्षिप्ता–शरीरान्तर्लीनत्वेन ह्रस्वतां गता विपुला–विस्तीर्णा अनेकयोजनप्रमाणक्षेत्राश्रितवस्तुदहनसमर्थत्वात्तेजोलेश्या–विशिष्टतपोजन्यलब्धिविशेषप्र-भवा तेजोज्वाला यस्य स तथा, मूलटीकाकृता तु 'उच्छूढसरीरसंखित्तविउलतेयलेसे'त्ति कर्म्मधारयं कृत्वा व्याख्यात-मिति, 'चउद्दसपुव्वि' त्ति चतुर्दश पूर्वाणि विद्यन्ते यस्य तेनैव तेषां रचितत्वादसौ चतुर्दशपूर्वी, अनेन तस्य श्रुतकेव-लितामाह, स चावधिज्ञानादिविकलोऽपि स्यादत आह–'चउणाणोवगए'त्ति, केवलज्ञानवर्जज्ञानचतुष्कसमन्वित इत्यर्थः, उक्तविशेषणद्वययुक्तोऽपि कश्चिन्न समग्रश्रुतविषयव्यापिज्ञानो भवति चतुर्दशपूर्ववेदिनां षट्स्थानकपतितत्वेन श्रवणादित्यत आह–'सव्वक्खरसन्निवाइ'त्ति, सर्वे च तेऽक्षरसन्निपाताश्च–तत्संयोगाः सर्वेषां वाऽक्षराणां सन्निपाताः सर्वाक्षरसन्नि-पातास्ते यस्य ज्ञेयतया सन्ति स सर्वाक्षरसन्निपाती, श्रव्याणि वा–श्रवणसुखकारीणि अक्षराणि साङ्गत्येन नितरां वदितुं

१ शतके उद्देशः १ धर्मदेशना सू० ६

॥ १२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	***अत्र मूल-सम्पादन-अवसरे मुद्रण दोषात् सूत्र-क्रम ६ लिखितं, (इस प्रत की दायी तरफ ऊपर सू० ६ लिखा है वो भूल है, यहाँ सू० '७' होना चाहिए गौतमस्वामिनः वर्णनं

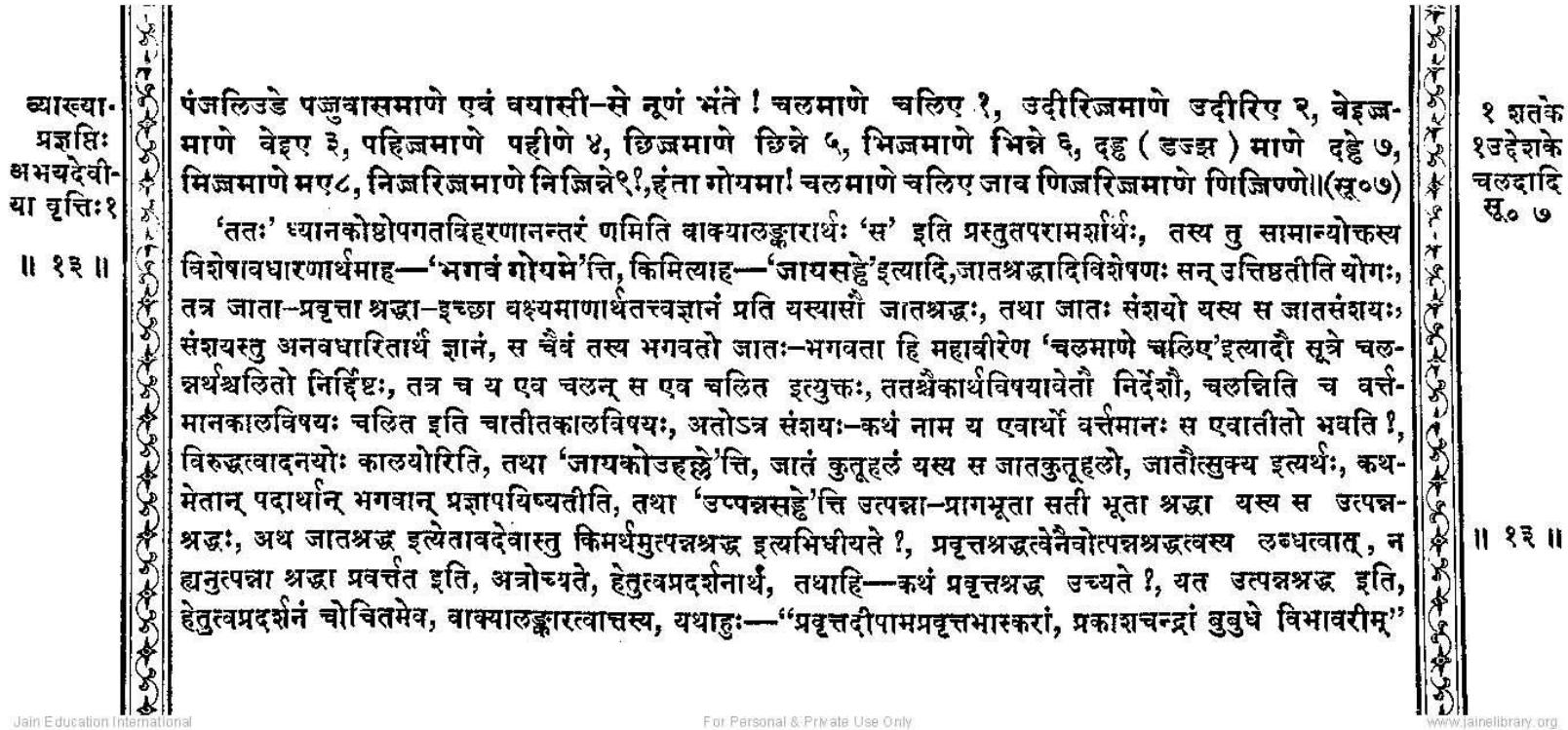
शीलमस्येति श्रव्याक्षरसंनिवादी, स चैवंगुणविशिष्टो भगवान् विनयराशिरिव साक्षादितिकृत्वा शिष्याचारत्वाच्च 'समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते विहरती' ति योगः' तत्र दूरं च–विप्रकृष्टं सामन्तं च–संनिकृष्टं तन्निषेधादूरसामन्तं तत्र, नातिदूरे नातिनिकट इत्यर्थः, किंविधः संस्तत्र विहरतीत्याह–'उड्ढंजाणु'त्ति, ऊर्द्धं जानुनी यस्यासावूर्द्धजानुः शुद्धपृथिव्यासनवर्जनादौपग्रहिकनिषद्याया अभावाच्चोत्कुटुकासन इत्यर्थः, 'अहोसिरे'त्ति अधोमुखः नोर्द्धं तिर्यग्वा विक्षिप्तदृष्टिः, किन्तु नियतभूभागनियमितदृष्टिरिति भावः, 'झाणकोट्ठोवगए'त्ति, ध्यानं–धर्म्यं शुक्लं वा तदेव कोष्ठः–कुशूलो ध्यानकोष्ठस्तमुपगतः–तत्र प्रविष्टो ध्यानकोष्ठोपगतः, यथा हि कोष्ठके धान्यं प्रक्षिप्तमविप्रसृतं भवति एवं स भगवान् ध्यानतोऽविप्रकीर्णेन्द्रियान्तःकरणवृत्तिरिति, 'संजमेणं'ति संवरेण 'तवस'त्ति अनशनादिना, चशब्दः समुच्चयार्थो लुप्तोऽत्र द्रष्टव्यः, संयमतपोग्रहणं चानयोः प्रधानमोक्षाङ्गत्वख्यापनार्थं, प्रधानत्वं च संयमस्य नवकर्मानुपादानहेतुत्वेन तपसश्च पुराणकर्मनिर्जरणहेतुत्वेन, भवति चाभिनवकर्मानुपादानात् पुराणकर्मक्षपणाच्च सकलकर्मक्षयलक्षणो मोक्ष इति, 'अप्पाणं भावेमाणे विहरइ'त्ति, आत्मानं वासयंस्तिष्ठतीत्यर्थः ॥

तए णं से भगवं गोयमे जायसड्ढे जायसंसए जायकोउहल्ले उप्पन्नसड्ढे उप्पन्नसंसए उप्पन्नकोउहल्ले संजायसड्ढे संजायसंसए संजायकोउहल्ले समुप्पन्नसड्ढे समुप्पन्नसंसए समुप्पन्नकोउहल्ले उट्ठाए उट्ठेइ उट्ठाए उट्ठेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ २ त्ता वंदइ नमंसइ २ त्ता णच्चासन्ने णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७]

दीप अनुक्रम [९]



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१

॥ १३ ॥

पंजलिउडे पज्जुवासमाणे एवं वयासी–से नूणं भंते ! चलमाणे चलिए १, उदीरिज्जमाणे उदीरिए २, वेइज्ज-माणे वेइए ३, पहिज्जमाणे पहीणे ४, छिज्जमाणे छिन्ने ५, भिज्जमाणे भिन्ने ६, दड्ढे (डज्झ) माणे दड्ढे ७, मिज्जमाणे मए८, निज्जरिज्जमाणे निज्जिन्ने९?,हंता गोयमा! चलमाणे चलिए जाव णिज्जरिज्जमाणे णिज्जिण्णे॥(सू०७)

'ततः' ध्यानकोष्ठोपगतविहरणानन्तरं णमिति वाक्यालङ्कारार्थः 'स' इति प्रस्तुतपरामर्शार्थः, तस्य तु सामान्योक्तस्य विशेषावधारणार्थमाह—'भगवं गोयमे'त्ति, किमित्याह—'जायसड्ढे'इत्यादि,जातश्रद्धादिविशेषणः सन् उत्तिष्ठतीति योगः, तत्र जाता–प्रवृत्ता श्रद्धा–इच्छा वक्ष्यमाणार्थतत्त्वज्ञानं प्रति यस्यासौ जातश्रद्धः, तथा जातः संशयो यस्य स जातसंशयः, संशयस्तु अनवधारितार्थं ज्ञानं, स चैवं तस्य भगवतो जातः–भगवता हि महावीरेण 'चलमाणे चलिए'इत्यादौ सूत्रे चल-न्नर्थश्चलितो निर्दिष्टः, तत्र च य एव चलन् स एव चलित इत्युक्तः, ततश्चैकार्थविषयावेतौ निर्देशौ, चलन्निति च वर्त्त-मानकालविषयः चलित इति चातीतकालविषयः, अतोऽत्र संशयः–कथं नाम य एवार्थो वर्त्तमानः स एवातीतो भवति ?, विरुद्धत्वादनयोः कालयोरिति, तथा 'जायकोउहल्ले'त्ति, जातं कुतूहलं यस्य स जातकुतूहलो, जातौत्सुक्य इत्यर्थः, कथ-मेतान् पदार्थान् भगवान् प्रज्ञापयिष्यतीति, तथा 'उप्पन्नसड्ढे'त्ति उत्पन्ना–प्रागभूता सती भूता श्रद्धा यस्य स उत्पन्न-श्रद्धः, अथ जातश्रद्ध इत्येतावदेवास्तु किमर्थमुत्पन्नश्रद्ध इत्यभिधीयते ?, प्रवृत्तश्रद्धत्वेनैवोत्पन्नश्रद्धत्वस्य लब्धत्वात्, न ह्यनुत्पन्ना श्रद्धा प्रवर्त्तत इति, अत्रोच्यते, हेतुत्वप्रदर्शनार्थं, तथाहि—कथं प्रवृत्तश्रद्ध उच्यते ?, यत उत्पन्नश्रद्ध इति, हेतुत्वप्रदर्शनं चोचितमेव, वाक्यालङ्कारत्वात्तस्य, यथाहुः—"प्रवृत्तदीपामप्रवृत्तभास्करां, प्रकाशचन्द्रां बुबुधे विभावरीम्"

१ शतके १उद्देशके चलदादि सू० ७

॥ १३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

***मुद्रण-दोषात् अत्र मूल-संपादने सूत्र-क्रम '७' द्विवारान् लिखितम् (इसके पहले सूत्र ७ था, यहाँ फिरसे "सू० ७" लिखा है.

इह यद्यपि प्रवृत्तदीपत्वादेवाप्रवृत्तभास्करत्वमवगतं तथाऽप्यप्रवृत्तभास्करत्वं प्रवृत्तदीपत्वादेर्हेतुतयोपन्यस्तमिति, 'उप्पन्नसंसए उप्पन्नकोउहल्ले'त्ति प्राग्वत्, तथा 'संजायसड्ढे'इत्यादि पदषट्कं प्राग्वत्, नवरमिह संशब्दः प्रकर्षादिवचनो, यथा—"संजातकामो बलभिद्विभूत्यां, मानात् प्रजाभिः प्रतिमाननाच्च ।" (संजातकामः–) ऐन्द्रैश्वर्ये प्रकर्षेण जातेच्छः कार्त्तवीर्य इति । अन्ये तु 'जायसड्ढे'इत्यादि विशेषणद्वादशकमेवं व्याख्यान्ति–जाता श्रद्धा यस्य प्रष्टुं स जातश्रद्धः, किमिति जातश्रद्धः? इत्यत आह–यस्माज्जातसंशयः, इदं वस्त्वेवं स्यादेवं वेति, अथ जातसंशयोऽपि कथमित्यत आह–यस्माज्जातकुतूहलः कथं नामास्यार्थमवभोत्स्ये ? इत्यभिप्रायवानिति, एतच्च विशेषणत्रयमवग्रहापेक्षया द्रष्टव्यम्, एवमुत्पन्नसंजातसमुत्पन्नश्रद्धत्वादय ईहापायधारणाभेदेन वाच्याः, अन्ये त्वाहुः–जातश्रद्धत्वाद्यपेक्षयोत्पन्नश्रद्धत्वादयः समानार्था विवक्षितार्थस्य प्रकर्षवृत्तिप्रतिपादनाय स्तुतिमुखेन ग्रन्थकृतोक्ताः, न चैवं पुनरुक्तं दोषाय, यदाह—"वक्ता हर्षभयादिभिराक्षिप्तमनाः स्तुवंस्तथा निन्दन् । यत्पदमसकृद् ब्रूते तत्पुनरुक्तं न दोषाय ॥ १ ॥" इति । 'उट्ठाए उट्ठेइ'त्ति उत्थानमुत्था–ऊर्द्ध्वं वर्त्तनं तया उत्थया 'उत्तिष्ठति' ऊर्द्ध्वो भवति, 'उट्ठेइ' इत्युक्ते क्रियारम्भमात्रमपि प्रतीयते यथा वक्तुमुत्तिष्ठते इति ततस्तद्व्यवच्छेदायोक्तमुत्थयेति, 'उट्ठाए उट्ठित्त'त्ति उपागच्छतीत्युत्तरक्रियाऽपेक्षया उत्थानक्रियायाः पूर्वकालताऽभिधानाय उत्थयोत्थायेति क्त्वाप्रत्ययेन निर्द्देशतीति । 'जेणेव'त्यादि, इह प्राकृतप्रयोगादव्ययत्वाद्वा येनेति यस्मिन्नेवदिग्भागे श्रमणो भगवान् महावीरो वर्त्तते 'तेणेव'त्ति तस्मिन्नेव दिग्भागे उपागच्छति, तत्कालापेक्षया वर्त्तमानत्वादागमनक्रियाया वर्त्तमानविभक्त्या निर्देशः कृतः, उपागतवानित्यर्थः, उपागम्य च श्रमणं ३ कर्मतापन्नं 'तिक्खुत्तो'त्ति त्रीन्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वारान् त्रिकृत्वः 'आयाहिणपयाहिणं करेइ'त्ति आदक्षिणाद्–दक्षिणहस्तादारभ्य प्रदक्षिणः–परितो भ्राम्यतो दक्षिण एव आदक्षिणप्रदक्षिणोऽतस्तं करोतीति, 'वंदइ'त्ति 'वन्दते' वाचा स्तौति 'नमंसइ'त्ति 'नमस्यति' कायेन प्रणमति 'नच्चासन्ने'त्ति,'न' नैव 'अत्यासन्नः' अतिनिकटः, अवग्रहपरिहारात्, नात्यासन्ने वा स्थाने, वर्त्तमान इति गम्यं, 'णाइदूरे' त्ति 'न' नैव 'अतिदूरः' अतिविप्रकृष्टः, अनौचित्यपरिहारात्, नातिदूरे वा स्थाने, 'सुस्सूसमाणे'त्ति भगवद्वचनानि श्रोतुमिच्छन्, 'अभिमुहे'त्ति, अभि–भगवन्तं लक्ष्यीकृत्य मुखमस्येत्यभिमुखः, तथा 'विणएणं'ति विनयेन हेतुना 'पंज-लिउडे'त्ति प्रकृष्टः–प्रधानो ललाटतटघटितत्वेनाञ्जलिः–हस्तन्यासविशेषः कृतो–विहितो येन सोऽभ्याहितादिदर्शनात् प्राञ्जलिकृतः 'पज्जुवासमाणे'त्ति 'पर्युपासीनः' सेवमानः, अनेन च विशेषणकदम्बकेन श्रवणविधिरुपदर्शितः, आह च– "णिद्दाविगहापरिवज्जिएहि गुत्तेहि पंजलिउडेहिं। भत्तिबहुमाणपुवं उवउत्तेहिं सुणेयवं ॥ १ ॥" ति। 'एवं वयासि'त्ति 'एवं' वक्ष्यमाणप्रकारं वस्तु 'अवादीत्' उक्तवान्–'से' इति तद् यदुक्तं पूज्यैः 'चलच्चलित'मित्यादि, 'णूणं' ति एवमर्थे, तत्र तत्रास्यैवं व्याख्यातत्वात्, अथवा 'से' इतिशब्दो मागधदेशीप्रसिद्धोऽथशब्दार्थे वर्त्तते, अथशब्दस्तु वाक्योपन्यासार्थः परिप्रश्नार्थो वा, यदाह–"अथ प्रक्रियाप्रश्नानन्तर्यमङ्गलोपन्यासप्रतिवचनसमुच्चयेषु" 'नून'मिति निश्चितं 'भंते'त्ति गुरोराम-न्त्रणं, ततश्च हे भदन्त !–कल्याणरूप ! सुखरूप ! इति वा 'भदि कल्याणे सुखे च' इति वचनात्, प्राकृतशैल्या वा भवस्य–संसारस्य भयस्य वा–भीतेरन्तहेतुत्वाद्भवान्तो भयान्तो वा तस्यामन्त्रणं हे भवान्त ! हे भयान्त ! वा, भान् वा–ज्ञानादिभिर्दीप्य-

१ परिवर्जितनिद्राविकथैर्गुप्तैः कृतप्राञ्जलिभिरुपयुक्तैर्भक्तिबहुमानपूर्वं श्रोतव्यम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

***मुद्रण-दोषात् अत्र मूल-संपादने सूत्र-क्रम '७' द्विवारान् लिखितम् (इसके पहले सूत्र ७ था, यहाँ फिरसे "सू० ७" लिखा है.

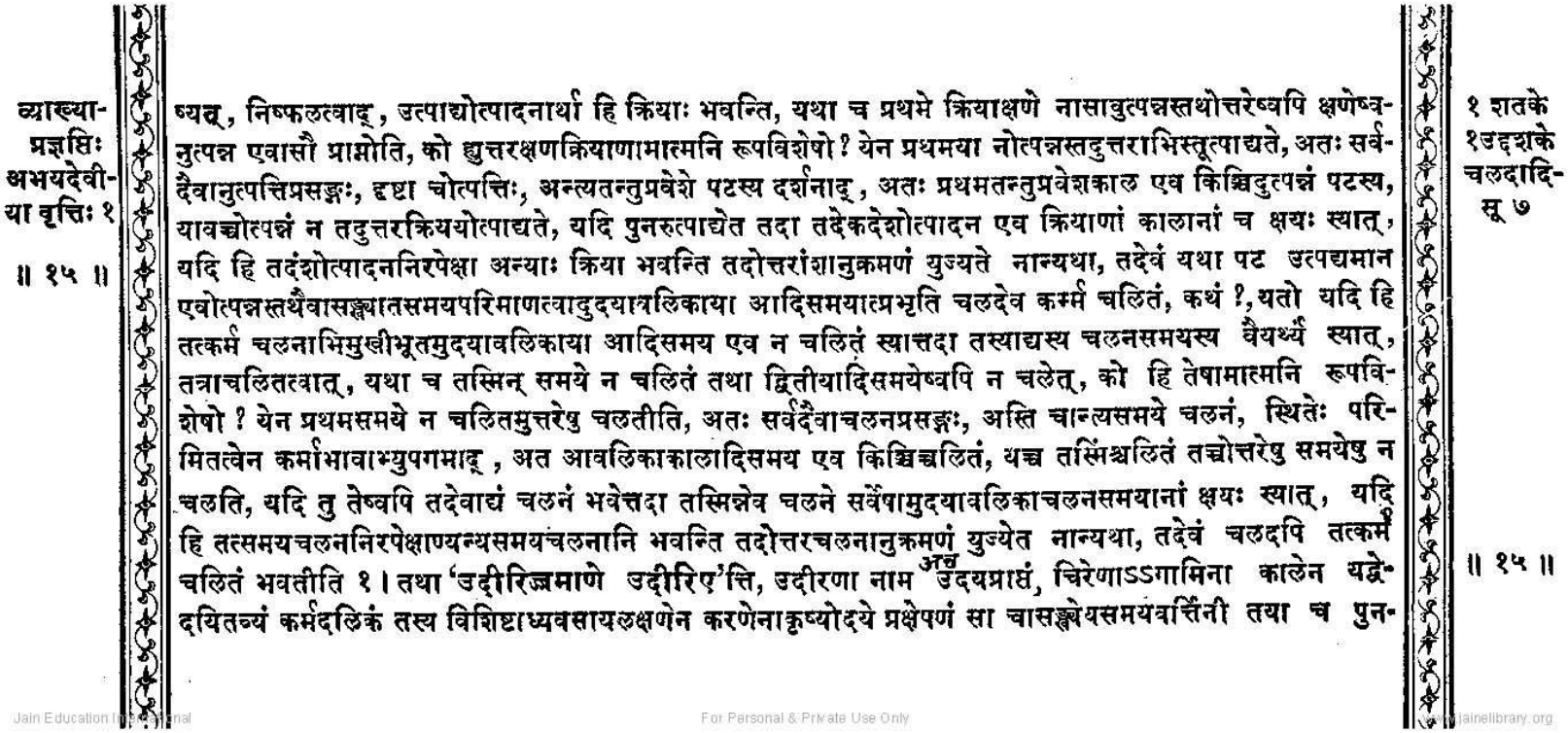
मान ! 'भा दीप्तौ' इति वचनात्, भ्राजमान ! वा–दीप्यमान ! 'भ्राज् दीप्तौ' इति वचनात् ॥ अयं च आदित आरभ्य 'भंते'त्ति पर्यन्तो ग्रन्थो भगवता सुधर्म्मस्वामिना पञ्चमाङ्गस्य प्रथमशतस्य प्रथमोद्देशकस्य सम्बन्धार्थमभिहितः । अथानेन सम्बन्धेनायातस्य पञ्चमाङ्गप्रथमशतप्रथमोद्देशकस्येदमादिसूत्रम्—'चलमाणे चलिए' इत्यादि, अथ केनाभिप्रायेण भगवता सुधर्म्मस्वामिना पञ्चमाङ्गस्य प्रथमशतप्रथमोद्देशकस्यार्थानुकथनं कुर्वतैवमर्थवाचकं सूत्रमुपन्यस्तं नान्यानीति ?, अत्रोच्यते, इह चतुर्षु पुरुषार्थेषु मोक्षाख्यः पुरुषार्थो मुख्यः, सर्वातिशायित्वात्, तस्य च मोक्षस्य साध्यस्य साधनानां च सम्यग्दर्शनादीनां साधनत्वेनाव्यभिचारिणामुभयनियमस्य शासनाच्छास्त्रं सद्भिरिष्यते, उभयनियमश्चैवं–सम्यग्दर्शनादीनि मोक्षस्यैव साध्यस्य साधनानि नान्यस्यार्थस्य, मोक्षश्च तेषामेव साधनानां साध्यो नान्येषामिति, स च मोक्षो विपक्षक्षयात्, तद्विपक्षश्च बन्धः, स च मुख्यः कर्मभिरात्मनः सम्बन्धः, तेषां तु कर्मणां प्रक्षयेऽयमनुक्रम उक्तः 'चलमाणे' इत्यादि तत्र 'चलमाणे'त्ति चलत्–स्थितिक्षयादुदयमागच्छद् विपाकाभिमुखीभवद्यत्कर्मेति प्रकरणगम्यं तच्चलितम्-उदितमिति व्यपदिश्यते,चलनकालो हि उदयावलिका, तस्य च कालस्यासङ्ख्येयसमयत्वादादिमध्यान्तयोगित्वं, कर्मपुद्गलानामप्यनन्ताः स्कन्धा अनन्तप्रदेशाः ततश्च ते क्रमेण प्रतिसमयमेव चलन्ति, तत्र योऽसावाद्यश्चलनसमयस्तस्मिंश्चलदेव तच्चलितमुच्यते, कथं पुनस्तद्वर्त्तमानं सदतीतं भवतीति ?, अत्रोच्यते–यथा पट उत्पद्यमानकाले प्रथमतन्तुप्रवेशे उत्पद्यमान एवोत्पन्नो भवतीति, उत्पद्यमानत्वं च तस्य प्रथमतन्तुप्रवेशकालादारभ्य पट उत्पद्यते इत्येवं व्यपदेशदर्शनात् प्रसिद्धमेव, उत्पन्नत्वं तूपपत्त्या प्रसाध्यते, तथाहि–उत्पत्तिक्रियाकाल एव प्रथमतन्तुप्रवेशेऽसावुत्पन्नः, यदि पुनर्नोत्पन्नोऽभविष्यत्तदा तस्याः क्रियाया वैयर्थ्यमभवि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७]

दीप अनुक्रम [९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ १५ ॥

ष्यद्, निष्फलत्वाद्, उत्पाद्योत्पादनार्था हि क्रियाः भवन्ति, यथा च प्रथमे क्रियाक्षणे नासावुत्पन्नस्तथोत्तरेष्वपि क्षणेष्व-नुत्पन्न एवासौ प्राप्नोति, को ह्युत्तरक्षणक्रियाणामात्मनि रूपविशेषो? येन प्रथमया नोत्पन्नस्तदुत्तराभिस्तूत्पाद्यते, अतः सर्व-दैवानुत्पत्तिप्रसङ्गः, दृष्टा चोत्पत्तिः, अन्त्यतन्तुप्रवेशे पटस्य दर्शनाद्, अतः प्रथमतन्तुप्रवेशकाल एव किञ्चिदुत्पन्नं पटस्य, यावच्चोत्पन्नं न तदुत्तरक्रिययोत्पाद्यते, यदि पुनरुत्पाद्येत तदा तदेकदेशोत्पादन एव क्रियाणां कालानां च क्षयः स्यात्, यदि हि तदंशोत्पादननिरपेक्षा अन्याः क्रिया भवन्ति तदोत्तरांशानुक्रमणं युज्यते नान्यथा, तदेवं यथा पट उत्पद्यमान एवोत्पन्नस्तथैवासङ्ख्यातसमयपरिमाणत्वादुदयावलिकाया आदिसमयात्प्रभृति चलदेव कर्म्म चलितं, कथं?, यतो यदि हि तत्कर्म चलनाभिमुखीभूतमुदयावलिकाया आदिसमय एव न चलितं स्यात्तदा तस्याद्यस्य चलनसमयस्य वैयर्थ्यं स्यात्, तत्राचलितत्वात्, यथा च तस्मिन् समये न चलितं तथा द्वितीयादिसमयेष्वपि न चलेत्, को हि तेषामात्मनि रूपवि-शेषो? येन प्रथमसमये न चलितमुत्तरेषु चलतीति, अतः सर्वदैवाचलनप्रसङ्गः, अस्ति चान्यसमये चलनं, स्थितेः परि-मितत्वेन कर्माभावाभ्युपगमाद्, अत आवलिकाकालादिसमय एव किञ्चिच्चलितं, यच्च तस्मिंश्चलितं तच्चोत्तरेषु समयेषु न चलति, यदि तु तेष्वपि तदेवाद्यं चलनं भवेत्तदा तस्मिन्नेव चलने सर्वेषामुदयावलिकाचलनसमयानां क्षयः स्यात्, यदि हि तत्समयचलननिरपेक्षाण्यन्यसमयचलनानि भवन्ति तदोत्तरचलनानुक्रमणं युज्येत नान्यथा, तदेवं चलदपि तत्कर्म चलितं भवतीति १। तथा 'उदीरिज्जमाणे उदीरिए'त्ति, उदीरणा नाम अत्र उदयप्राप्तं, चिरेणाऽऽगामिना कालेन यद्वेद-यितव्यं कर्मदलिकं तस्य विशिष्टाध्यवसायलक्षणेन करणेनाकृष्योदये प्रक्षेपणं सा चासङ्ख्येयसमयवर्त्तिनी तया च पुन-

१ शतके १उद्देशके चलदादि-सू ७

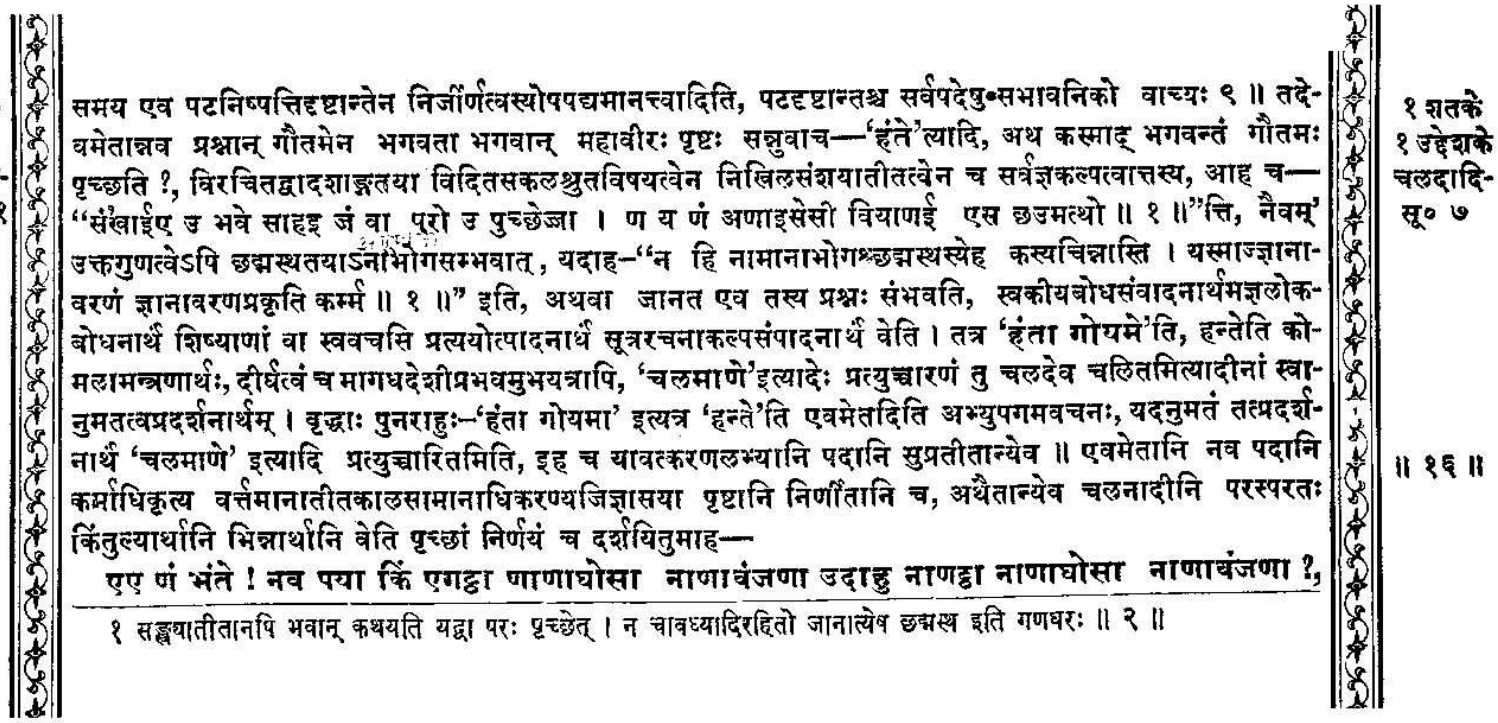
॥ १५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

***मुद्रण-दोषात् अत्र मूल-संपादने सूत्र-क्रम '७' द्विवारान् लिखितम् (इसके पहले सूत्र ७ था, यहाँ फिरसे "सू० ७" लिखा है.

रुदीरणया उदीरणाप्रथमसमय एवोदीर्यमाणं कर्म्म पूर्वोक्तपटदृष्टान्तेनोदीरितं भवतीति २। तथा 'वेइज्जमाणे वेइए'त्ति, वेदनं–कर्मणो भोगः, अनुभव इत्यर्थः, तच्च वेदनं स्थितिक्षयादुदयप्राप्तस्य कर्मण उदीरणाकरणेन वोदयमुपनीतस्य भवति, तस्य च वेदनाकालस्यासङ्ख्येयसमयत्वादाद्यसमये वेद्यमानमेव वेदितं भवतीति ३। तथा 'पहिज्जमाणे पहीणे'त्ति, प्रहाणं तु–जीवप्रदेशैः सह संश्लिष्टस्य कर्मणस्तेभ्यः पतनम्, एतदप्यसङ्ख्येयसमयपरिमाणमेव, तस्य तु प्रहाणस्यादिसमये प्रहीयमाणं कर्म प्रहीणं स्यादिति ४। तथा 'छिज्जमाणे छिन्ने'त्ति, छेदनं तु–कर्मणो दीर्घकालानां स्थितीनां ह्रस्वताकरणं, तच्चापवर्त्तनाभिधानेन करणविशेषेण करोति, तदपि च छेदनमसङ्ख्येयसमयमेव, तस्य त्वादिसमये स्थितितस्तच्छिद्यमानं कर्म्म छिन्नमिति ५। तथा 'भिज्जमाणे भिन्ने'त्ति भेदस्तु–कर्म्मणः शुभस्याशुभस्य वा तीव्ररसस्यापवर्त्तनाकरणेन मन्दताकरणं, मन्दस्य चोद्वर्त्तनाकरणेन तीव्रताकरणं, सोऽपि चासङ्ख्येयसमय एव, ततश्च तदाद्यसमये रसतो भिद्यमानं कर्म्म भिन्नमिति ६। तथा 'डज्झमाणे दड्ढे'त्ति, दाहस्तु–कर्म्मदलिकदारूणां ध्यानाग्निना तद्रूपापनयनमकर्म्मत्वजननमित्यर्थः, यथा हि काष्ठस्याग्निना दग्धस्य काष्ठरूपापनयनं भस्मात्मना च भवनं दाहस्तथा कर्म्मणोऽपीति, तस्याप्यन्तर्मुहूर्त्तवर्त्तित्वेनासङ्ख्येयसमयस्यादिसमये दह्यमानं कर्म दग्धमिति ७। तथा 'मिज्जमाणे मडे' म्रियमाणमायुःकर्म्ममृतमिति व्यपदिश्यते, मरणं ह्यायुःपुद्गलानां क्षयः तच्चासङ्ख्येयसमयवर्त्ति भवति, तस्य च जन्मनः प्रथमसमयादारभ्यावीचिकमरणेनानुक्षणं मरणस्य भावान्म्रियमाणं मृतमिति ८। तथा 'निज्जरिज्जमाणे निज्जिण्ण'त्ति, निर्जीर्यमाणं–नितरामपुनर्भावेन क्षीयमाणं कर्म निर्जीर्णं–क्षीणमिति व्यपदिश्यते, निर्जरणस्यासङ्ख्येयसमयभावित्वेन तत्प्रथम-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥ १६ ॥

समय एव पटनिष्पत्तिदृष्टान्तेन निर्जीर्णत्वस्योपपद्यमानत्वादिति, पटदृष्टान्तश्च सर्वपदेषु-सभावनिको वाच्यः ९ ॥ तदेवमेतान्नव प्रश्नान् गौतमेन भगवता भगवान् महावीरः पृष्टः सन्नुवाच—'हंते'त्यादि, अथ कस्माद् भगवन्तं गौतमः पृच्छति ?, विरचितद्वादशाङ्गतया विदितसकलश्रुतविषयत्वेन निखिलसंशयातीतत्वेन च सर्वज्ञकल्पत्वात्तस्य, आह च—"संखाईए उ भवे साहइ जं वा पुरो उ पुच्छेज्जा । ण य णं अणाइसेसी वियाणई एस छउमत्थो ॥ १ ॥"त्ति, नैवम्' उक्तगुणत्वेऽपि छद्मस्थतयाऽनाभोगसम्भवात्, यदाह—"न हि नामानाभोगश्छद्मस्थस्येह कस्यचिन्नास्ति । यस्माज्ज्ञानावरणं ज्ञानावरणप्रकृति कर्म्म ॥ १ ॥" इति, अथवा जानत एव तस्य प्रश्नः संभवति, स्वकीयबोधसंवादनार्थमज्ञलोकबोधनार्थं शिष्याणां वा स्ववचसि प्रत्ययोत्पादनार्थं सूत्ररचनाकल्पसंपादनार्थं वेति । तत्र 'हंता गोयमे'ति, हन्तेति कोमलामन्त्रणार्थः, दीर्घत्वं च मागधदेशीप्रभवमुभयत्रापि, 'चलमाणे'इत्यादेः प्रत्युच्चारणं तु चलदेव चलितमित्यादीनां स्वानुमतत्वप्रदर्शनार्थम् । वृद्धाः पुनराहुः–'हंता गोयमा' इत्यत्र 'हन्ते'ति एवमेतदिति अभ्युपगमवचनः, यदनुमतं तत्प्रदर्शनार्थं 'चलमाणे' इत्यादि प्रत्युच्चारितमिति, इह च यावत्करणलभ्यानि पदानि सुप्रतीतान्येव ॥ एवमेतानि नव पदानि कर्माधिकृत्य वर्त्तमानातीतकालसामानाधिकरण्यजिज्ञासया पृष्टानि निर्णीतानि च, अथैतान्येव चलनादीनि परस्परतः किंतुल्यार्थानि भिन्नार्थानि वेति पृच्छां निर्णयं च दर्शयितुमाह—

एए णं भंते ! नव पया किं एगट्ठा णाणाघोसा णाणावंजणा उदाहु णाणट्ठा णाणाघोसा णाणावंजणा ?,

१ सङ्ख्यातीतानपि भवान् कथयति यद्वा परः पृच्छेत् । न चावध्यादिरहितो जानात्येष छद्मस्थ इति गणधरः ॥ २ ॥

१ शतके १ उद्देशके चलदादि-सू० ७

॥ १६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

***मुद्रण-दोषात् अत्र मूल-संपादने सूत्र-क्रम '७' द्विवारान् लिखितम् (इसके पहले सूत्र ७ था, यहाँ फिरसे "सू० ७" लिखा है.)

गोयमा ! चलमाणे चलिए १ उदीरिज्जमाणे उदीरिए २ वेइज्जमाणे वेइए ३ पहिज्जमाणे पहीणे ४ ते एए णं चत्तारि पया एगट्ठा नाणाघोसा नाणावंजणा उप्पन्नपक्खस्स, छिज्जमाणे छिन्ने भिज्जमाणे भिन्ने दड्ढ–(डज्झ)–माणे दड्ढे मिज्जमाणे मडे निज्जरिज्जमाणे निज्जिण्णे एए णं पंच पया णाणट्ठा नाणाघोसा नाणावंजणा विगयपक्खस्स (सू० ८) ॥

व्यक्तं, नवरम् 'एगट्ठ'त्ति 'एकार्थानि' अनन्यविषयाणि एकप्रयोजनानि वा 'नाणाघोस'त्ति इह घोषाः–उदात्तादयः 'नाणावंजण'त्ति इह व्यञ्जनानि–अक्षराणि 'उदाहु'त्ति उताहो निपातो विकल्पार्थः 'नाणट्ठ'त्ति भिन्नाभिधेयानि, इह च चतुर्भङ्गी पदेषु दृष्टा, तत्र कानिचिदेकार्थानि एकव्यञ्जनानि यथा क्षीरं क्षीरमित्यादीनि १, तथाऽन्यानि एकार्थानि नानाव्यञ्जनानि यथा क्षीरं पय इत्यादीनि २, तथाऽन्यान्यनेकार्थान्येकव्यञ्जनानि यथाऽर्कगव्यमाहिषाणि क्षीराणि ३, तथाऽन्यानि नानार्थानि नानाव्यञ्जनानि यथा घटपटलकुटादीनि ४। तदेवं चतुर्भङ्गीसंभवेऽपि द्वितीयचतुर्थभङ्गकौ प्रश्नसूत्रे गृहीतौ, परिदृश्यमाननानाव्यञ्जनता तदन्ययोरसम्भवात्, निर्वचनसूत्रे तु चलनादीनि चत्वारि पदान्याश्रित्य द्वितीयः, छिद्यमानादीनि तु पञ्च पदान्याश्रित्य चतुर्थ इति। नन्वु चलनादीनामर्थानां व्यक्तभेदत्वात् कथमाद्यानि चत्वारि पदान्येकार्थानि ? इत्याशङ्क्याह–'उप्पन्नपक्खस्स'त्ति उत्पन्नमुत्पादो, भावे क्तीबे क्तप्रत्ययविधानात्, तस्य पक्षः–परिग्रहोऽङ्गीकारः 'पक्ष परिग्रहे' इति धातुपाठादिति उत्पन्नपक्षः, इह च षष्ठ्यास्तृतीयार्थत्वाद् उत्पन्नपक्षेण–उत्पादाङ्गीकारेण–उत्पादाख्यं पर्यायं परिगृह्य एकार्थान्येतान्युच्यन्ते, अथवा 'उत्पन्नपक्षस्य' उत्पादाख्यवस्तुविकल्पस्याभिधाय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कानीति शेषः, सर्वेषामेषामुत्पादमाश्रित्यैकार्थकारित्वादेकान्तर्मुहूर्त्तमध्यभावित्वेन तुल्यकालत्वाच्चैकार्थिकत्वमिति भावः, स पुनरुत्पादाख्यः पर्यायो विशिष्टः केवलोत्पाद एव, यतः कर्मचिन्तायां कर्मणः प्रहाणेः फलद्वयं केवलज्ञानमोक्षप्राप्ती, तत्रैतानि पदानि केवलोत्पादविषयत्वादेकार्थान्युक्तानि, यस्मात् केवलज्ञानपर्यायो जीवेन न कदाचिदपि प्राप्तपूर्वः यस्माच्च प्रधानस्तत्तत्पदार्थ एव पुरुषप्रयासः, तस्मात्स एव केवलज्ञानोत्पत्तिपर्यायोऽभ्युपगतः, एषां च पदानामेकार्थानामपि सतामयमर्थः सामर्थ्यप्रापितक्रमः, ~~वत्~~पूर्वं तच्चलति–उदेतीत्यर्थः, उदितं च वेद्यते, अनुभूयत इत्यर्थः तच्च द्विधा–स्थितिक्षयादुदयप्राप्तमुदीरणया चोदयमुपनीतं, ततश्चानुभवानन्तरं तत् प्रहीयते, दत्तफलत्वाज्जीवादपयातीत्यर्थः, ~~एतच्च टीकाकारमतेन व्याख्यातम्~~, अन्ये तु व्याख्यान्ति–स्थितिबन्धाद्यविशेषितसामान्यकर्माश्रयत्वादेकार्थिकान्येतानि केवलोत्पादपक्षस्य च साधकानीति, चत्वारि चलनादीनि पदान्येकार्थिकानीत्युक्ते शेषाण्यनेकार्थिकानीति सामर्थ्यादवगतमपि सुखावबोधाय साक्षात्प्रतिपादयितुमाह–'छिज्जमाणे' इत्यादि, व्यक्तं, नवरं 'णाणट्ठ'त्ति नानार्थानि, नानार्थत्वं त्वेवं–~~छिद्यमानं छिन्नमित्येतत्पदं~~ स्थितिबन्धाश्रयं, यतः सयोगिकेवली अन्तकाले योगनिरोधं कर्त्तुकामो वेदनीयनामगोत्राख्यानां तिसृणां प्रकृतीनां दीर्घकालस्थितिकानां सर्वापवर्त्तनयाऽऽन्तर्मौहूर्त्तिकं स्थितिपरिमाणं करोति । तथा 'भिद्यमानं भिन्न'मित्येतत्पदमनुभागबन्धाश्रयं, तत्र च यस्मिन् काले स्थितिघातं करोति तस्मिन्नेव काले रसघातमपि करोति, केवलं रसघातः स्थितिखण्डकेभ्यः क्रमप्रवृत्तेभ्योऽनन्तगुणाभ्यधिकः, अतोऽनेन रसघातकरणेन पूर्वस्माद्भिन्नार्थं पदं भवति। तथा 'दह्यमानं दग्ध'मित्येतत्पदं प्रदेशबन्धाश्रयं, प्रदेशबन्धस्त्वनन्तानन्तप्रदेशानां स्कन्धानां कर्म्मत्वापादनं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तस्य च प्रदेशबन्धकर्म्मणः सत्कानां पञ्चह्रस्वाक्षरोच्चारणकालपरिमाणयाऽसङ्ख्यातसमयया गुणश्रेणीरचनया पूर्वरचितानां शैलेश्यवस्थाभाविसमुच्छिन्नक्रियध्यानाग्निना प्रथमसमयादारभ्य यावदन्त्यसमयस्तावत्प्रतिसमयं क्रमेणासङ्ख्येयगुणवृद्धानां कर्मपुद्गलानां दहनं–दाहः, अनेन च दहनार्थेनेदं पूर्वस्मात्पदाद्भिन्नार्थं पदं भवति, दाहश्चान्यत्रान्यथा रूढोऽपीह मोक्षचिन्ताऽधिकारान्मोक्षसाधन उक्तलक्षणकर्मविषय एव ग्राह्य इति। तथा 'म्रियमाणं मृतं'मित्येतत्पदमायुःकर्म्मविषयं, यत आयुष्कपुद्गलानां प्रतिसमयं क्षयो मरणम् , अनेन च मरणार्थेन पूर्वपदेभ्यो भिन्नार्थत्वाद्भिन्नार्थं पदं भवति। तथा 'म्रियमाणं मृत'मित्यनेनायुः कर्मैवोक्तं, यतः कर्मैव तिष्ठज्जीवतीत्युच्यते, कर्मैव च जीवादपगच्छत् म्रियत इत्युच्यते, तच्च मरणं सामान्येनोक्तमपि विशिष्टमेवाभ्युपगन्तव्यं, यतः संसारवर्त्तीनि मरणानि अनेकशोऽनुभूतानि दुःखरूपाणि चेति किं तैः?, इह पुनः पदेऽपुनर्भवमरणमन्त्यं सर्वकर्म्मक्षयसहचरितमपवर्गहेतु भूतं विवक्षितमिति । तथा 'निर्जीर्यमाणं निर्जीर्ण'मित्येतत्पदं सर्वकर्माभावविषयं, यतः सर्वकर्मनिर्जरणं न कदाचिदप्यनुभूतपूर्वं जीवेनेति, अतोऽनेन सर्वकर्माभावरूपनिर्जरणार्थेन पूर्वपदेभ्यो भिन्नार्थत्वाद्भिन्नार्थं पदं भवति । अथैतानि पदानि विशेषतो नानार्थान्यपि सन्ति सामान्यतः कस्य पक्षस्याभिधायकतया प्रवृत्तानीत्यस्यामाशङ्कायामाह–'विगयपक्खस्स'त्ति, विगतं विगमो–वस्तुनोऽवस्थान्तरापेक्षया विनाशः, स एव पक्षो–वस्तुधर्मः, तस्य वा पक्षः–परिग्रहो विगतपक्षस्तस्य विगतपक्षस्य वाचकानीति शेषः, विगतत्वं त्विहाशेषकर्म्माभावोऽभिमतो, जीवेन तस्याप्राप्तपूर्वतयाऽत्यन्तमुपादेयत्वात्, तदर्थत्वाच्च पुरुषप्रयासस्येति, एतानि चैवं विगतार्थानि भवन्ति, छिद्यमानपदे हि स्थितिखण्डनं विगम उक्तः, भिद्यमानपदे त्वनुभावभेदो विगमः, दह्यमानपदे .त्वकर्मताभवनं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ १८ ॥

विगमः, म्रियमाणपदे पुनरायुःकर्माभावो विगमः, निर्जीर्यमाणपदे त्वशेषकर्माभावो विगमः उक्तः, तदेवमेतानि विगत-पक्षस्य प्रतिपादकानीत्युच्यन्ते । एवं च यत्पञ्चमाङ्गादिसूत्रोपन्यासे प्रेरितं, यदुत–केनाभिप्रायेणेदं सूत्रमुपन्यस्तमिति, तत् केवलज्ञानोत्पादसर्वकर्मविगमाभिधानरूपसूत्राभिप्रायव्याख्यानेन निर्णीतमिति । एतत्सूत्रसंवादिसिद्धसेनाचार्यो-ऽप्याह–"उप्पज्जमाणकालं उप्पण्णं विगयथं विगच्छंतं । दवियं पण्णवयंतो तिकालविसयं विसेसेइ ॥ १ ॥" इति, 'उत्प-द्यमानकाल'मित्यनेनाद्यसमयादारभ्योत्पत्त्यन्तसमयं यावदुत्पद्यमानत्वस्येष्टत्वाद्वर्त्तमानभविष्यत्कालविषयं द्रव्यमुक्तम्, उ-त्पन्नमित्यनेन त्वतीतकालविषयम्, एवं विगतं विगच्छदित्यनेनापीति, ततश्चोत्पद्यमानादि प्रज्ञापयन् स भगवान् द्रव्यं विशेषयति, कथं ?, त्रिकालविषयं यथा भवतीति संवादगाथार्थः । अन्ये तु कर्मेतिपदस्य सूत्रेऽनभिधानाच्चलनादिपदानि सामान्येन व्याख्यान्ति, न कर्म्मापेक्षयैव, तथाहि–'चलमाणे चलिए'त्ति, इह चलनम्–अस्थिरत्वपर्यायेण वस्तुन उत्पादः । 'वेइज्जमाणे वेइए'त्ति 'व्येजमानं' कम्पमानं 'व्येजितं' कम्पितम्, 'एजृ कम्पने' इति वचनात्, व्येजनमपि तद्रूपापेक्षयोत्पाद एव । 'उदीरिज्जमाणे उदीरिए'त्ति, इहोदीरणं स्थिरस्य सतः प्रेरणं, तदपि चलनमेव, 'पहिज्जमाणे पहीणे'त्ति 'प्रहीयमाणं' प्रभ्रश्यत् परिपतदित्यर्थः 'प्रहीणं' प्रभ्रष्टं परिपतितमित्यर्थः, इहापि प्रहाणं चलनमेव, चलनादीनां चैकार्थत्वं सर्वेषां गत्यर्थत्वात् । 'उप्पन्नपक्खस्स'त्ति चलत्वादिना पर्यायेणोत्पन्नत्वलक्षणपक्षस्याभिधायकान्येतानीति ।

१ उत्पद्यमानकालमुत्पन्नं विगतं विगच्छत् । द्रव्यं प्रज्ञापयंस्त्रिकालविषयं विशेषयति ॥ १ ॥

१ शतके १ उद्देशः चलदाद्ये कार्थादिवि-चारः सूत्रं८

॥ १८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तथा छेदभेददाहमरणनिर्जरणान्यकर्म्मार्थान्यपि व्याख्येयानि, तद्व्याख्यानं च प्रतीतमेव, भिन्नार्थता पुनरेषामेवं–कुठारादिना लतादिविषयश्छेदः, तोमरादिना शरीरादिविषयो भेदः, अग्निना दार्वा[द्यर्था]दिविषयो दाहः, मरणं तु प्राणत्यागः निर्जरा तु अतिपुराणीभवनमिति, 'विगयपक्खस्स'त्ति भिन्नार्थान्यपि सामान्यतो विनाशाभिधायकान्येतानीत्यर्थः, न च वक्तव्यं–किमेतैश्चलनादिभिरिह निरूपितैः ?, अतत्त्वरूपत्वादेषाम्, अतत्त्वरूपत्वस्यासिद्धत्वात्, तदसिद्धिश्च निश्चयनयमतेन वस्तुस्वरूपस्य प्रज्ञापयितुमारब्धत्वात्, तथाहि–व्यवहारनयश्चलितमेव चलितमिति मन्यते, निश्चयस्तु चलदपि चलितमिति, अत्र च बहुवक्तव्यं तच्च विशेषावश्यकादिहैवाभिधास्यमानजमालिचरिताद्वाऽवसेयमिति॥ इहाद्ये प्रश्नोत्तरसूत्रद्वये मोक्षतत्त्वं चिन्तितं, मोक्षः पुनर्जीवस्य, जीवाश्च नारकादयश्चतुर्विंशतिविधाः, यदाह–"नेरइया १ असुराई १० पुढवाई ५ बेंदियादओ ३ चेव। पंचिंदियतिरिय १ नरा १ वंतर १ जोइसिय १ वेमाणी १ (२४) ॥ १ ॥" तत्र नारकांस्तावत् स्थित्यादिभिश्चिन्तयन्नाह—

नेरइयाणं भंते ! केवइकालं ठिई पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता १। नेरइयाणं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा ?, जहा ऊसासपए २। नेरइया णं भंते आहारट्ठी ?, जहा पन्नवणाए पढमए आहारुद्देसए तहा

१ नैरयिकाः १ असुरादयः १० पृथ्व्यादयः ५ द्वीन्द्रियादयः ३ पञ्चेन्द्रियतिर्यग्नरौ व्यन्तराज्योतिष्का वैमानिकाः । * विशेषा० गा–४१४–४२६ पर्यन्तं ॥

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥ १९ ॥

भाणियव्वं ३। ठिइ उस्सासाहारे किं वाऽऽहारेंति ३६ सव्वओ वावि ३७। कतिभागं ? ३८ सव्वाणि व ३९ कीस व भुज्जो परिणमंति ? ४० ॥ १ ॥ (सू० ९)

निर्गतमयम्–इष्टफलं कर्म येभ्यस्ते निरयास्तेषु भवा नैरयिका नारकास्तेषां नैरयिकाणां 'भंते'त्ति भदन्त ! 'केवइकालं' ति कियांश्चासौ कालश्चेति कियत्कालस्तं कियत्कालं यावत् 'ठिइ'त्ति आयुःकर्मवशान्नरकेऽवस्थानं 'पन्नत्त'त्ति 'प्रज्ञप्ता' प्ररूपिता ? भगवद्भिरन्यतीर्थकरैश्चेति प्रश्नः, 'गोयमे'त्यादि निर्वचनं व्यक्तमेव, नवरं 'दस वाससहस्साइं'ति प्रथमपृथिवीप्रथमप्रस्तटापेक्षया 'तेत्तीसं सागरोवमाइं'ति सप्तमपृथिव्यपेक्षयेति,मध्यमा तु जघन्यापेक्षया समयाद्यधिका सामर्थ्यगम्येति॥ अनन्तरं नारकाणां स्थितिरुक्ता, ते चोच्छ्वासादिमन्त इत्युच्छ्वासादिनिरूपणायाह—'नेरइयाण'मित्यादि व्यक्तं, नवरं केवइकालस्स'त्ति प्राकृतशैल्या कियत्कालात् कियता कालेनेत्यर्थः, 'आणमंति'त्ति आनन्ति 'अन प्राणने' इति धातुपाठात् मकारस्यागमिकत्वात्, 'पाणमंति'त्ति प्राणन्ति, वाशब्दौ समुच्चयार्थौ, एतदेव पदद्वयं क्रमेणार्थतः स्पष्टयन्नाह—'ऊससंति वा नीससंति व'त्ति यदेवोक्तमानन्ति तदेवोक्तमुच्छ्वसन्तीति, तथा यदेवोक्तं प्राणन्ति तदेवोक्तं निःश्वसन्तीति, अथवा आनमन्ति प्राणमन्तीति 'णमु प्रह्वत्वे' इत्येतस्यानेकार्थत्वेन श्वसनार्थत्वात्, अन्ये त्वाहुः–'आनन्ति वा प्राणन्ति वा' इत्यनेनाध्यात्मक्रिया परिगृह्यते, 'उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा' इत्यनेन च बाह्येति। 'जहा ऊसासपए'त्ति, एतस्य प्रश्नस्य निर्वचनं यथा उच्छ्वासपदे प्रज्ञापनायाः सप्तमपदे तथा वाच्यं, तच्चेदम्–'गोयमा ! सययं संतयामेव आणमंति वा पाणमंति वा ऊससन्ति वा नीससंति वा' इति, तत्र 'सततम्' अनवरतम्, अतिदुःखिता हि ते, अतिदुःखव्याप्तस्य च

१ शतके १उद्देशके नारकाणां स्थित्यादि सू० ९ ॥ १९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नैरयिकाणाम 'स्थिति' आदिनाम वर्णनं

प्रत सूत्रांक [९] + गाथा

दीप अनुक्रम [११-१२]

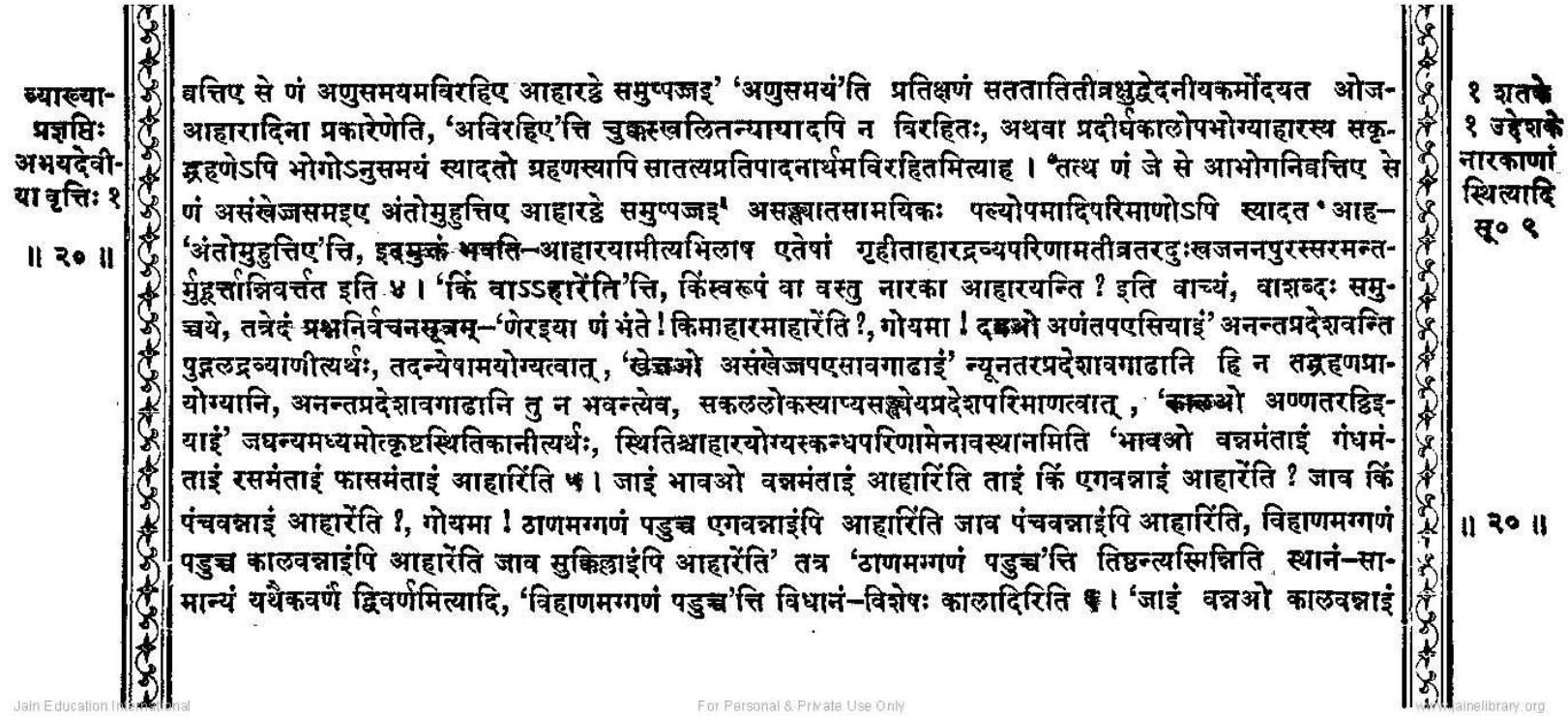
निरन्तरमेवोच्छ्वासनिःश्वासौ दृश्येते, सततत्वं च प्रायोवृत्त्याऽपि स्यादित्यत आह–'संतयामेव'त्ति सन्ततमेव नैकसमयेऽपि तद्विरहोऽस्तीति भावः, दीर्घत्वं चेह प्राकृतत्वात् , आनमन्तीत्यादेः पुनरुच्चारणं शिष्यवचने आदरोपदर्शनार्थं, गुरुभिरादृियमाणवचना हि शिष्याः सन्तोषवन्तो भवन्ति, तथा च पौनःपुन्येन प्रश्नश्रवणार्थनिर्णयादिषु घटन्ते लोके चादेयवचना भवन्ति, तथा च भव्योपकारस्तीर्थाभिवृद्धिश्चेति ॥ अथ तेषामेवाहारं प्रश्नयन्नाह—'णेरइयाण'मित्यादि व्यक्तं, नवरम् 'आहारट्ठि'त्ति आहारमर्थयन्ते–प्रार्थयन्त इत्येवंशीलाः अर्थो वा–प्रयोजनमेषामस्तीत्यर्थिनः,आहारेण–भोजनेनार्थिन आहारार्थिनः,आहारस्य–भोजनस्य वाऽर्थिन आहारार्थिनः,'जहा पन्नवणाए'त्ति 'आहारट्ठी' इत्येतत्पदप्रभृति यथा प्रज्ञापनायाश्चतुर्थोपाङ्गस्य 'पढमए'त्ति आद्ये 'आहारउद्देसए'त्ति आहारपदस्याष्टाविंशतितमस्योद्देशकः पदशब्दलोपाच्चाहारोद्देशकः तत्र भणितं 'तहा भाणियव्वं'ति तेन प्रकारेण वाच्यमिति। तत्र च नारकाहारवक्तव्यतायां बहूनि द्वाराणि भवन्ति, तत्सङ्ग्रहार्थं पूर्वोक्तस्थित्युच्छ्वासलक्षणद्वारद्वयदर्शनपूर्विकां गाथामाह–'ठिइगाहा' व्याख्या, स्थितिर्नारकाणां वाच्या, उच्छ्वासश्च, तौ चोक्तावेव । तथा 'आहारे'त्ति आहारविषयो विधिर्वाच्यः, स चैवम्–'णेरइयाणं भंते ! आहारट्ठी ?, हंता आहारट्ठी [illegible] णेरइयाणं भंते ! केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?, 'आहारार्थः' आहारप्रयोजनमाहारार्थित्वमित्यर्थः, 'गोयमा ! णेरइयाणं दुविहे आहारे पन्नत्ते' अभ्यवहारक्रियेत्यर्थः 'तंजहा–आभोगनिवत्तिए य अणाभोगनिवत्तिए य' तत्राभोगः–अभिसन्धिस्तेन निर्वर्त्तितः–कृत आभोगनिर्वर्त्तितः, आहारयामीतीच्छापूर्वक इत्यर्थः, अनाभोगनिर्वर्त्तितस्तु आहारयामीति विशिष्टेच्छामन्तरेणापि, प्रावृट्काले प्रचुरतरप्रश्रवणाद्यभिव्यङ्ग्यशीतपुद्गलाद्याहारवत् , 'तत्थ णं जे से अणाभोगनि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नैरयिकाणाम 'स्थिति' आदिनाम वर्णनं

प्रत सूत्रांक [९] + गाथा

दीप अनुक्रम [११-१२]



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवीया वृत्तिः १

॥ २० ॥

वत्तिए से णं अणुसमयमविरहिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ' 'अणुसमयं'ति प्रतिक्षणं सततातितीव्रक्षुद्वेदनीयकर्मोदयत ओज-आहारादिना प्रकारेणेति, 'अविरहिए'त्ति चुक्कस्खलितन्यायादपि न विरहितः, अथवा प्रदीर्घकालोपभोग्याहारस्य सकृद्ग्रहणेऽपि भोगोऽनुसमयं स्यादतो ग्रहणस्यापि सातत्यप्रतिपादनार्थमविरहितमित्याह । "तत्थ णं जे से आभोगनिवत्तिए से णं असंखेज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ' असङ्ख्यातसामयिकः पल्योपमादिपरिमाणोऽपि स्यादत आह–'अंतोमुहुत्तिए'त्ति, इदमुक्तं भवति–आहारयामीत्यभिलाष एतेषां गृहीताहारद्रव्यपरिणामतीव्रतरदुःखजननपुरस्सरमन्तर्मुहूर्त्तान्निवर्त्तत इति ४ । 'किं वाऽऽहारेंतिं'त्ति, किंस्वरूपं वा वस्तु नारका आहारयन्ति ? इति वाच्यं, वाशब्दः समुच्चये, तत्रेदं प्रश्ननिर्वचनसूत्रम्–'णेरइया णं भंते ! किमाहारमाहारेंति ?, गोयमा ! दव्वओ अणंतपएसियाइं' अनन्तप्रदेशवन्ति पुद्गलद्रव्याणीत्यर्थः, तदन्येषामयोग्यत्वात्, 'खेत्तओ असंखेज्जपएसावगाढाइं' न्यूनतरप्रदेशावगाढानि हि न तद्ग्रहणप्रायोग्यानि, अनन्तप्रदेशावगाढानि तु न भवन्त्येव, सकललोकस्याप्यसङ्ख्येयप्रदेशपरिमाणत्वात्, 'कालओ अण्णतरट्ठिइयाइं' जघन्यमध्यमोत्कृष्टस्थितिकानीत्यर्थः, स्थितिश्चाहारयोग्यस्कन्धपरिणामेनावस्थानमिति 'भावओ वन्नमंताइं गंधमंताइं रसमंताइं फासमंताइं आहारिंति ५ । जाइं भावओ वन्नमंताइं आहारिंति ताइं किं एगवन्नाइं आहारेंति ? जाव किं पंचवन्नाइं आहारेंति ?, गोयमा ! ठाणमग्गणं पडुच्च एगवन्नाइंपि आहारिंति जाव पंचवन्नाइंपि आहारिंति, विहाणमग्गणं पडुच्च कालवन्नाइंपि आहारेंति जाव सुक्किलाइंपि आहारेंति' तत्र 'ठाणमग्गणं पडुच्च'त्ति तिष्ठन्त्यस्मिन्निति स्थानं–सामान्यं यथैकवर्णं द्विवर्णमित्यादि, 'विहाणमग्गणं पडुच्च'त्ति विधानं–विशेषः कालादिरिति ६ । 'जाइं वन्नओ कालवन्नाइं

१ शतके १ उद्देशके नारकाणां स्थित्यादि सू० ९

॥ २० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नैरयिकाणाम 'स्थिति' आदिनाम वर्णनं

प्रत सूत्रांक [९] + गाथा

दीप अनुक्रम [११-१२]

आहारेंति ताइं किं एगगुणकालाइं आहारेंति जाव दसगुणकालाइं आहारेंति संखेज्जगुणकालाइं असंखेज्जगुणकालाइं अनंतगुणकालाइं आहारेंति ?, गोयमा ! एकगुणकालाइंपि आहारेंति जाव अनन्तगुणकालाइंपि आहारेंति ७, एवं जाव सुक्किलाइं १५, एवं गंधओवि १७ रसओवि १८ । जाइं भावओ फासमंताइं ठाणमग्गणं पडुच्च नो एगफासाइं आहारेंति नो दुफासाइंपि आहारेंति नो तिफासाइंपि आहारेंति' एकस्पर्शनामसम्भवादन्येषां चाल्पप्रदेशिकतासूक्ष्मपरिणामाभ्यां ग्रहणायोग्यत्वात्, 'चउफासाइंपि आहारेंति जाव अट्ठफासाइंपि आहारेंति' बहुप्रदेशिकताबादरपरिणामाभ्यां ग्रहणयोग्यत्वादिति, 'विहाणमग्गणं पडुच्च कक्खडाइंपि आहारेंति जाव लुक्खाइंपि आहारेंति १९ । जाइं फासओ कक्खडाइंपि आहारेंति ताइं किं एगगुणकक्खडाइं आहारेंति जाव अनन्तगुणकक्खडाइंपि आहारेंति? गोयमा ! एगगुणकक्खडाइंपि आहारेंति जाव अणंतगुणकक्खडाइंपि आहारेंति २०, एवं अट्ठवि फासा भाणियवा जाव अणंतगुणलुक्खाइंपि आहारेंति २७ । जाइं भंते ! अणंतगुणलुक्खाइं आहारेंति ताइं किं पुट्ठाइं आहारेंति अपुट्ठाइं आहारेंति ?, गोयमा ! पुट्ठाइं आहारेंति नो अपुट्ठाइं आहारेंति २८' 'पुट्ठाइं'ति आत्मप्रदेशस्पर्शवन्ति, तत्पुनरात्मप्रदेशस्पर्शनमवगाढक्षेत्राद्बहिरपि भवति अत उच्यते–'जाइं भंते ! पुट्ठाइं आहारेंति ताइं किं ओगाढाइं आहारेंति अणोगाढाइं आहारेंति ?, गोयमा ! ओगाढाइं नो अणोगाढाइं 'अवगाढानी'ति आत्मप्रदेशैः सहैकक्षेत्रावगाढानीत्यर्थः २९ । जाइं भंते ! ओगाढाइं आहारेंति ताइं किं अणंतरोगाढाइं आहारेंति परंपरोगाढाइं आहारेंति ?, गोयमा ! अणंतरोगाढाइं आहारेंति नो परंपरोगाढाइं आहारेंति' 'अनन्तरावगाढानी'ति येषु प्रदेशेष्वात्माऽवगाढस्तेष्वेव यान्यवगाढानि तान्यनन्तरावगाढानि अन्तराऽभावेनावगाढत्वात्,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नैरयिकाणाम 'स्थिति' आदिनाम वर्णनं

प्रत सूत्रांक [९] + गाथा

दीप अनुक्रम [११-१२]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ २१ ॥

१ शतके १उद्देशके नारकाणां स्थित्यादि सू० ९

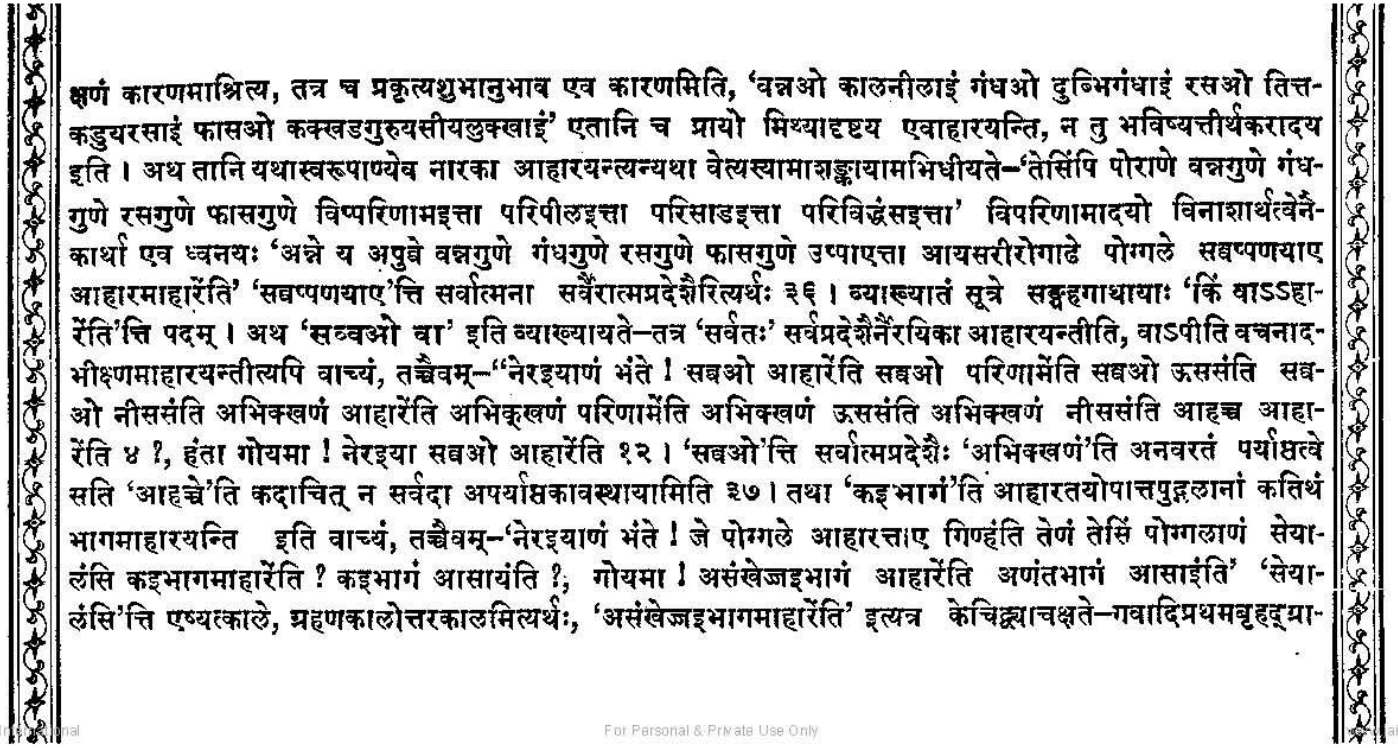
थानि च तदन्तरवर्त्तीनि तान्यवगाढसम्बन्धात्परम्परावगाढानीति ३० । 'जाइं भंते ! अणंतरोगाढाइं आहारेंति ताइं किं अणूइं आहारेंति बायराइं आहारेंति ?, गोयमा ! अणूइंपि आहारेंति बायराइंपि आहारेंति' तत्राणुत्वं बादरत्वं चापेक्षिकं तेषामेवाहारयोग्यानां स्कन्धानां प्रदेशवृद्ध्या वृद्धानामवसेयम् ३१ । जाइं भंते ! अणूइंपि आहारेंति बायराइंपि आहारेंति ताइं किं उड्ढंपि आहारेंति ? एवं अहेवि तिरियंपि ?, गोयमा ! उड्ढंपि आहारेंति एवं अहेवि तिरियंपि ३२ । जाइं भंते ! उड्ढंपि आहारेंति अहेवि तिरियंपि आहारेंति ताइं किं आइं आहारेंति मज्झे आहारेंति पज्जवसाणे आहारेंति ?, गोयमा ! तिहावि' अयमर्थः–आभोगनिर्वर्त्तितस्याहारस्यान्तर्मौहूर्त्तिकस्यादिमध्यावसानेषु सर्वत्राहारयन्तीति ३३ । 'जाइं भंते ! आइं मज्झे अवसाणेवि आहारेंति ताइं किं सविसए आहारेंति अविसए आहारेंति ?, गोयमा ! सविसए नो अविसए आहारेंति' तत्र स्वः–स्वकीयो विषयः स्पृष्टावगाढानन्तरावगाढाख्यः स्वविषयस्तस्मिन्नाहारयन्ति ३४ । 'जाइं भंते ! सविसए आहारेंति ताइं किं आणुपुविं आहारेंति अणाणुपुविं आहारेंति ?, गोयमा ! आणुपुविं आहारेंति नो अणाणुपुविं आहारेंति' तत्रानुपूर्व्या यथाऽऽसन्नं, नातिक्रम्य ३५ । 'जाइं भंते ! आणुपुविं आहारेंति ताइं किं तिदिसिं आहारेंति जाव छद्दिसिं आहारेंति ? गोयमा ! नियमा छद्दिसिं आहारेंति' इह नारकाणां लोकमध्यवर्त्तित्वेन षण्णामप्यूर्द्ध्वादिदिशामलोकेनानावृतत्वात् षट्सु दिक्ष्वाहारग्रहणमस्ति तत उक्तं–नियमात् षड्दिशि, दिक्त्रयादिविकल्पास्तु लोकान्तवर्त्तिषु पृथिवीकायिकादिषु दिशां त्रयस्य द्वयस्य एकस्याश्चालोकेनावरणे भवन्तीति । यद्यपि वर्णतः पञ्चवर्णानीत्याद्युक्तं तथापि प्राचुर्येण यद्वर्णगन्धादियुतानि द्रव्याण्याहारयन्ति तद् दर्शयति–'ओसन्नं कारणं पडुच्च'त्ति बाहुल्यल-

॥ २१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नैरयिकाणाम 'स्थिति' आदिनाम वर्णनं

प्रत सूत्रांक [९] + गाथा दीप अनुक्रम [११-१२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः



क्षणं कारणमाश्रित्य, तत्र च प्रकृत्यशुभानुभाव एव कारणमिति, 'वन्नओ कालनीलाइं गंधओ दुब्भिगंधाइं रसओ तित्त-कडुयरसाइं फासओ कक्खडगुरुयसीयलुक्खाइं' एतानि च प्रायो मिथ्यादृष्टय एवाहारयन्ति, न तु भविष्यत्तीर्थकरादय इति । अथ तानि यथास्वरूपाण्येव नारका आहारयन्त्यन्यथा वेत्यस्यामाशङ्कायामभिधीयते–'तेसिंपि पोराणे वन्नगुणे गंध-गुणे रसगुणे फासगुणे विप्परिणामइत्ता परिपीलइत्ता परिसाडइत्ता परिविद्धंसइत्ता' विपरिणामादयो विनाशार्थत्वेनै-कार्था एव ध्वनयः 'अन्ने य अपुव्वे वन्नगुणे गंधगुणे रसगुणे फासगुणे उप्पाएत्ता आयसरीरोगाढे पोग्गले सव्वप्पणयाए आहारमाहारेंति' 'सव्वप्पणयाए'त्ति सर्वात्मना सर्वैरात्मप्रदेशैरित्यर्थः ३६ । व्याख्यातं सूत्रे सङ्ग्रहगाथायाः 'किं वाऽऽहा-रेंति'त्ति पदम् । अथ 'सव्वओ वा' इति व्याख्यायते–तत्र 'सर्वतः' सर्वप्रदेशैर्नैरयिका आहारयन्तीति, वाऽपीति वचनाद-भीक्ष्णमाहारयन्तीत्यपि वाच्यं, तच्चैवम्–"नेरइयाणं भंते ! सव्वओ आहारेंति सव्वओ परिणामेंति सव्वओ ऊससंति सव्व-ओ नीससंति अभिक्खणं आहारेंति अभिक्खणं परिणामेंति अभिक्खणं ऊससंति अभिक्खणं नीससंति आहच्च आहा-रेंति ४ ?, हंता गोयमा ! नेरइया सव्वओ आहारेंति १२ । 'सव्वओ'त्ति सर्वात्मप्रदेशैः 'अभिक्खणं'ति अनवरतं पर्याप्तत्वे सति 'आहच्चे'ति कदाचित् न सर्वदा अपर्याप्तकावस्थायामिति ३७ । तथा 'कइभागं'ति आहारतयोपात्तपुद्गलानां कतिथं भागमाहारयन्ति इति वाच्यं, तच्चैवम्–'नेरइयाणं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गिण्हंति तेणं तेसिं पोग्गलाणं सेया-लंसि कइभागमाहारेंति ? कइभागं आसायंति ?, गोयमा ! असंखेज्जइभागं आहारेंति अणंतभागं आसाइंति' 'सेया-लंसि'त्ति एष्यत्काले, ग्रहणकालोत्तरकालमित्यर्थः, 'असंखेज्जइभागमाहारेंति' इत्यत्र केचिद्व्याचक्षते–गवादिप्रथमबृहद्ग्रा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	नैरयिकाणाम 'स्थिति' आदिनाम वर्णनं

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ २२ ॥

सग्रहण इव कांश्चिद्गृहीतासङ्ख्येयभागमात्रान् पुद्गलानाहारयन्ति तदन्ये तु पतन्तीति। अन्ये त्वाचक्षते–ऋजुसूत्रनयदर्शनात्स्वशरीरतया परिणतानामसङ्ख्येयभागमाहारयन्ति, ऋजुसूत्रो हि गवादिप्रथमबृहद्ग्रासग्रहण इव गृहीतानां शरीरत्वेनापरिणतानामाहारतां नेच्छति, शरीरतया परिणतानामपि केषाञ्चिदेव विशिष्टाहारकार्यकारिणां तामभ्युपगच्छति, शुद्धनयत्वात्तस्येति। अन्ये पुनरित्थमभिदधति–'असंखेज्जइभागमाहारेंति'त्ति शरीरतया परिणमन्ति, शेषास्तु किट्टीभूय मनुष्याभ्यवहृताहारवन्मलीभवन्ति, न शरीरत्वेन परिणमन्तीत्यर्थः। 'अणंतभागं आसाइंति'त्ति आहारतया गृहीतानामनन्तभागमास्वादयन्ति, तद्रसादीन् रसनादीन्द्रियद्वारेणोपलभन्ते इत्यर्थः। 'सव्वाणि व'त्ति दारं, तत्र सर्वाण्येवाहारद्रव्याण्याहारयन्तीति वाच्यं, वाशब्दः समुच्चये, तच्चैवम्–'नेरइयाणं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए परिणमेंति ते किं सबे आहारेंति णो सबे आहारेंति ?, गोयमा ! सबे अपरिसेसिए आहारेंति' इह विशिष्टग्रहणगृहीता आहारपरिणामयोग्या एव ग्राह्याः, उज्झितशेषा इत्यर्थः, अन्यथा पूर्वापरसूत्रयोर्विरोधः स्यात्, इष्टा चैवं व्याख्या, यदाह—"जं जह सुत्ते भणियं तहेव जइ तं वियालणा नत्थि। किं कालियाणुओगो दिट्ठो दिट्ठिप्पहाणेहिं ?॥ ३९ ॥" 'कीस व भुज्जो २ परिणमंति'त्ति द्वारगाथापदं, तत्र 'कीस'त्ति पदावयवे पदसमुदायोपचारात् 'कीसत्ताए'त्ति द्रष्टव्यं, किंस्वतया–किंस्वभावतया कीदृशतया वा केन प्रकारेण किंस्वरूपतयेत्यर्थः, वाशब्दः समुच्चये, 'भुज्जो'त्ति 'भूयो भूयः' पुनः पुनः परिणमन्ति आहारद्रव्याणीति प्रकृतमित्येतदत्र वाच्यं, तच्चैवम्—'नेरइया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति ते णं

१ सूत्रे यद्यथा भणितं तत्तथैव यदि विचारणा नास्ति। किं कालिकानुयोगो दृष्टः दृष्टिप्रधानैः ?॥ १ ॥

१ शतके १ उद्देशके नारकाणां स्थित्यादि सू० ९

॥ २२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	नैरयिकाणाम 'स्थिति' आदिनाम वर्णनं

तेसिं पोग्गला कीसत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति ?, गोयमा ! सोइंदियत्ताए जाव फासिंदियत्ताए अणिट्ठत्ताए अकंतत्ताए अप्पियत्ताए अमणुन्नत्ताए अमणामत्ताए अणिच्छियत्ताए अभिज्झियत्ताए अहत्ताए नो उड्ढत्ताए दुक्खत्ताए नो सुहत्ताए एएसिं भुज्जो भुज्जो परिणमंति' तत्र 'अनिष्टतया' सदैव तेषां [नारकाणां] सामान्येनावलभतया, तथा 'अकान्ततथा' सदैव तद्भावेनाकमनीयतया, तथा 'अप्रियतया' सर्वेषामेव द्वेष्यतया, तथा 'अमनोज्ञतया' कथयाऽप्यमनोरमतया, तथा 'अमनोऽम्यतया' चिन्तयाऽपि अमनोगम्यतया, तथा 'अनीप्सिततया' आप्तुमनिष्टतया, एकार्थाश्चैते शब्दाः, 'अहिज्झियत्ताए'त्ति अभिध्येयतया तृष्नेरनुत्पादकत्वेन पुनः पुनरप्यभिलाषनिमित्ततया, अहृद्यत्वेनेत्यन्ये, अशुभत्वेनेत्यर्थः, 'अहत्ताए'त्ति गुरुपरिणामतया 'नो उड्ढत्ताए'त्ति नो लघुपरिणामतयेति सङ्ग्रहगाथार्थः ४० ॥ इदं च सङ्ग्रहणिगाथाविवरणसूत्रं क्वचित् सूत्रपुस्तक एव दृश्यत इति ॥ अथ नैरयिकाऽऽहाराधिकारात्तद्विषयमेव प्रश्नचतुष्टयमाह—

नेरइयाणं भंते ! पुव्वाहारिया पोग्गला परिणया १ ?, आहारिया आहारिज्जमाणा पोग्गला परिणया २ ?, अणाहारिया आहारिज्जिस्समाणा पोग्गला परिणया ३ ?, अणाहारिया अणाहारिज्जिस्समाणा पोग्गला परिणया ? ४, गोयमा ! नेरइयाणं पुव्वाहारिया पोग्गला परिणया १, आहारिज्जमाणा पोग्गला परिणया परिणमंति य २, अणाहारिया आहारिज्जिस्समाणा पोग्गला नो परिणया परिणमिस्संति ३, अणाहारिया अणाहारिज्जिस्समाणा पोग्गला नो परिणता णो परिणमिस्संति ४ ॥ (सू० १०) नेरइयाणं भंते ! पुव्वाहारिया पोग्गला चिया पुच्छा, जहा परिणया तहा चियावि, एवं चिया उवचिया उदीरिया वेइया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ २३ ॥

निज्जिन्ना, गाहा—परिणय चिया उवचिय उदीरिया वेइया य निज्जिन्ना। एक्केक्कंमि पदंमि (मी) चउव्विहा पोग्गला होंति ॥ १ ॥ (सू० ११)

'पुव्वाहारिय'त्ति ये पूर्वमाहृताः–पूर्वकाल एकीकृताः संगृहीता इतियावत् अभ्यवहृता वा 'पोग्गले'ति स्कन्धाः 'परिणय'त्ति ते 'परिणताः' पूर्वकाले शरीरेण सह संपृक्ताः परिणतिं गता इत्यर्थः, इति प्रथमः प्रश्नः १, इह च सर्वत्र प्रश्नत्वं काकुपाठादवगम्यते। तथा 'आहारिय'त्ति पूर्वकाले 'आहृताः' संगृहीता–अभ्यवहृता वा, 'आहरिज्जमाण'त्ति, ये च वर्त्तमानकाले 'आहियमाणाः' सङ्गृह्यमाणा अभ्यवहियमाणा वा पुद्गलाः 'परिणय'त्ति ते परिणता इति द्वितीयः २। तथा 'अणाहारिय'त्ति येऽतीतकालेऽनाहृताः 'आहारिज्जिस्समाणे'त्ति ये चानागते काले आहरिष्यमाणाः पुद्गलास्ते परिणता इति तृतीयः ३। तथा 'अणाहारिया अणाहारिज्जिस्समाणा' इत्यादि अतीतानागताहरणक्रियानिषेधाच्चतुर्थः ४। इह च यद्यपि चत्वार एव प्रश्ना उक्तास्तथाऽप्येते त्रिषष्टिः संभवन्ति, यतः पूर्वाहृता आहियमाणा आहरिष्यमाणा अनाहृता अनाहियमाणा अनाहरिष्यमाणाश्चेति षट् पदानीह सूचितानि, तेषु चैकैकपदाश्रयणेन षड्, द्विकयोगे पञ्चदश, त्रिकयोगे विंशतिः, चतुष्कयोगे पञ्चदश, पञ्चकयोगे षट्, षड्योगे एक इति ॥ अत्रोत्तरमाह—'गोयमे'त्यादि व्यक्तं, नवरं ये पूर्वमाहृतास्ते पूर्वकाल एव परिणताः, ग्रहणानन्तरमेव परिणामभावात् १। ये पुनराहृता आहियमाणाश्च ते परिणताः, आहृतानां परिणामभावादेव, परिणमन्ति च आहियमाणानां परिणामभावस्य वर्त्तमानत्वादिति २। वृत्तिकृता तु द्वितीयप्रश्नोत्तरविकल्प एवंविधो दृष्टः–यदुत आहृता आहरिष्यमाणाः पुद्गलाः परि-

१ शतके १ उद्देशके नारकाणा माहारप-रिणतचि-तादि सू ११

॥ २३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णताः परिणंस्यन्ते च, यतोऽयं तेनैवं व्याख्यातः–यदुत ये पुनराहृता आहरिष्यन्ते पुनस्तेषां केचित्परिणताः परिणताश्च ये संपृक्ताः शरीरेण सह, ये तु न तावत्संपृच्यन्ते कालान्तरे तु संपृक्ष्यन्ते ते परिणंस्यन्त इति २। ये पुनरनाहृता आहरिष्यन्ते पुनस्ते नो परिणताः, अनाहृतानां संपर्कभावेन परिणामाभावात्, यस्मात्त्वाहरिष्यन्ते ततः परिणंस्यन्ते, आहृतस्यावश्यं परिणामभावादिति ३। चतुर्थस्त्वतीतभविष्यदाहरणक्रियाया अभावेन परिणामाभावादवसेय इति ४। एतदनुसारेणैव प्राग्दर्शितविकल्पानामुत्तरसूत्राणि वाच्यानीति ॥ अथ शरीरसंपर्कलक्षणपरिणामात्पुद्गलानां चयादयो भवन्तीति तद्दर्शनार्थं प्रश्नयन्नाह—'नेरइयाण'मित्यादि चयादिसूत्राणि परिणामसूत्रसमानीतिकृत्वाऽतिदेशतोऽधीतानीति, तथाहि—'जहा परिणया तहा चियावी'त्यादि, इह च पुस्तकेषु वाचनाभेदो दृश्यते तत्र न संमोहः कार्यः, सर्वत्राभिधेयस्य तुल्यत्वात्, केवलं परिणतसूत्रानुसारेण प्रश्नसूत्राणि व्याकरणानि च मतिमताऽध्येयानीति, तत्र 'चिताः' शरीरे चयं गताः, 'उपचिताः' पुनर्बहुशः प्रदेशसामीप्येन शरीरे चिता एवेति, उदीरितास्तु स्वभावतोऽनुदितान् पुद्गलानुदयप्राप्ते कर्मदलिके करणविशेषेण प्रक्षिप्य यान् वेदयते, उदीरणा लक्षणं चेदम्—"[१]जं करणेणाकड्ढिय उदए दिज्जइ उदीरणा एसा।" तथा 'वेदिताः' स्वेन रसविपाकेन प्रतिसमयमनुभूयमानाः अपरिसमाप्ताशेषानुभावा इति। तथा 'निर्जीर्णाः' कात्स्न्र्येनानुसमयमशेषतद्विपाकहानियुक्ता इति। 'गाह'त्ति परिणतादिसूत्राणां संग्रहणाय गाथा भवति, सा चेयम्—'परिणये'त्यादि व्याख्यातार्था, नवरम्–एकैकस्मिन् पदे परिणतचितोपचितादौ चतुर्विधाः आहृताः १ आहृता

१ अध्यवसायेनाकृष्टा यदुदयमानीयते कर्म्म एषोदीरणा ॥ * कर्मप्रकृति उदीर० गा० १

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११] + गाथा

दीप अनुक्रम [१४-१५]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ २४ ॥

आहियमाणाश्च २ अनाहृता आहरिष्यमाणाश्च ३ अनाहृता अनाहरिष्यमाणाश्च ४, इत्येवं चतूरूपाः पुद्गला भवन्ति, प्रश्ननिर्वचनविषयाः स्युरिति ॥ पुद्गलाधिकारादेवेमामष्टादशसूत्रीमाह—

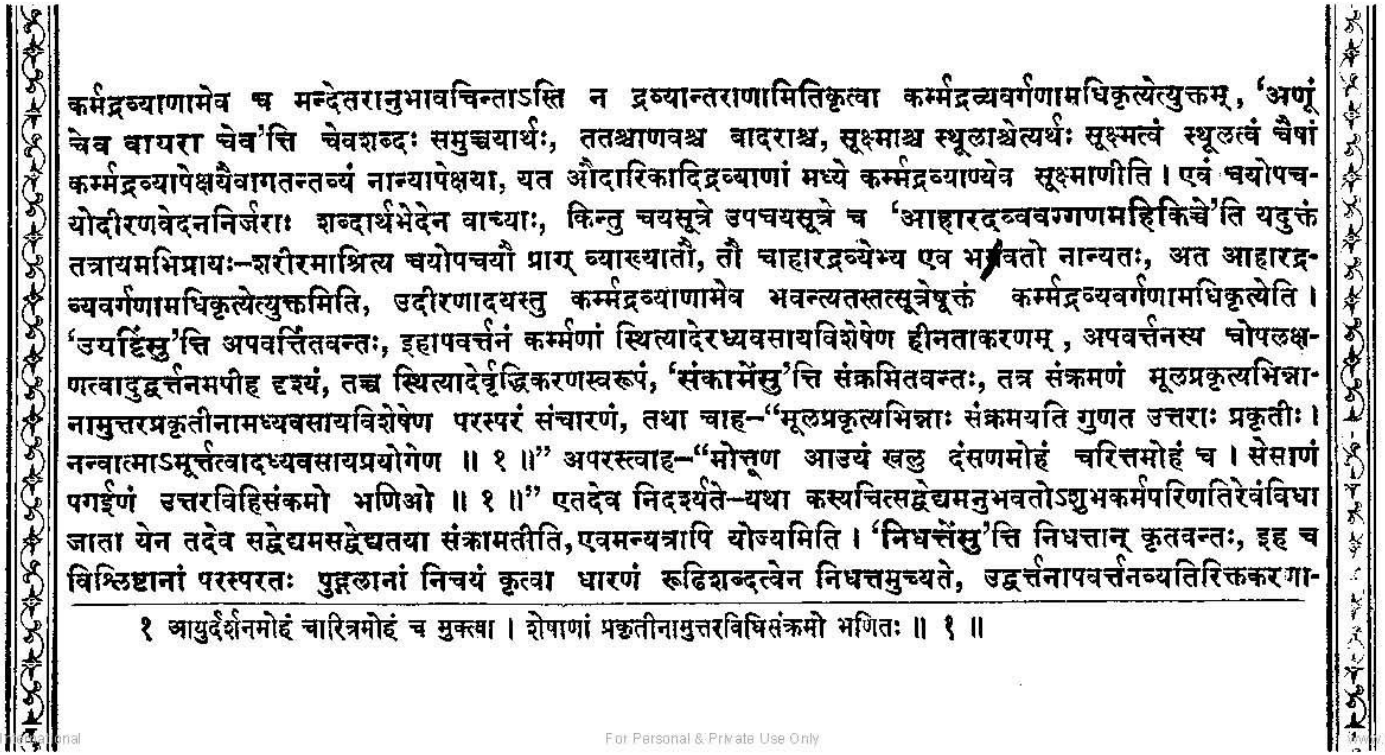
नेरइयाणं भंते ! कइविहा पोग्गला भिज्जंति ?, गोयमा ! कम्मदव्ववग्गणमहिकिच्च दुविहा पोग्गला भिज्जंति, तंजहा—अणू चेव बायरा चेव १। नेरइयाणं भंते ! कतिविहा पोग्गला चिज्जंति ?, गोयमा ! आहारदव्ववग्गणमहिकिच्च दुविहा पोग्गला चिज्जंति, तंजहा–अणू चेव बायरा चेव २। एवं उवचिज्जंति ३। नेर० क० पो० उदीरेंति ?, गोयमा ! कम्मदव्ववग्गणमहिकिच्च दुविहे पोग्गले उदीरेंति, तंजहा—अणूं चेव बायरा चेव, सेसावि एवं चेव भाणियव्वा, एवं वेदेंति ५ निज्जरेंति ६ उयट्टिंसु ७ उव्वट्टेंति ८ उव्वट्टिस्संति ९ संकामिंसु १० संकामेंति ११ संकामिस्संति १२ निहत्तिंसु १३ निहत्तेंति १४ निहत्तिस्संति १५ निकायंसु १६ निकायंति १७ निकाइस्संति १८, सव्वेसुवि कम्मदव्ववग्गणमहिकिच्च गाहा–भेइयचिया उवचिया उदीरिया वेइया य निज्जिन्ना। उयट्टणसंकामणनिहत्तणनिकायणे तिविह कालो ॥ १ ॥ (सू० १२)

'नेरइयाणं भंते ! कइविहा पोग्गला भिज्जंती' त्यादि व्यक्तं, नवरं 'भिज्जंति'त्ति तीव्रमन्दमध्यतयाऽनुभागभेदेन भेदवन्तो भवन्ति, उद्वर्त्तनकरणापवर्त्तनकरणाभ्यां मन्दरसास्तीव्ररसाः तीव्ररसास्तु मन्दरसा भवन्तीत्यर्थः, उत्तरम्– 'कम्मदव्ववग्गणमहिकिच्च'त्ति समानजातीयद्रव्याणां राशिर्द्रव्यवर्गणा, सा चौदारिकादिद्रव्याणामप्यस्तीत्यत आह– कर्म्मरूपा द्रव्यवर्गणा कर्म्मद्रव्याणां वा वर्गणा कर्म्मद्रव्यवर्गणा तामधिकृत्य–तामाश्रित्य, कर्म्मद्रव्यवर्गणासत्का इत्यर्थः,

१ शतके १ उद्देशके नारकाणां पुद्गलभेदादिः सू १२

॥ २४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



कर्मद्रव्याणामेव च मन्देतरानुभावचिन्ताऽस्ति न द्रव्यान्तराणामितिकृत्वा कर्म्मद्रव्यवर्गणामधिकृत्येत्युक्तम्, 'अणूं चेव बायरा चेव'त्ति चेवशब्दः समुच्चयार्थः, ततश्चाणवश्च बादराश्च, सूक्ष्माश्च स्थूलाश्चेत्यर्थः सूक्ष्मत्वं स्थूलत्वं चैषां कर्म्मद्रव्यापेक्षयैवागतन्तव्यं नान्यापेक्षया, यत औदारिकादिद्रव्याणां मध्ये कर्म्मद्रव्याण्येव सूक्ष्माणीति। एवं चयोपचयोदीरणवेदननिर्जराः शब्दार्थभेदेन वाच्याः, किन्तु चयसूत्रे उपचयसूत्रे च 'आहारदव्ववग्गणमहिकिच्चे'ति यदुक्तं तत्रायमभिप्रायः–शरीरमाश्रित्य चयोपचयौ प्राग् व्याख्यातौ, तौ चाहारद्रव्येभ्य एव भवतो नान्यतः, अत आहारद्रव्यवर्गणामधिकृत्येत्युक्तमिति, उदीरणादयस्तु कर्म्मद्रव्याणामेव भवन्त्यतस्तत्सूत्रेषूक्तं कर्म्मद्रव्यवर्गणामधिकृत्येति। 'उयट्टिंसु'त्ति अपवर्त्तितवन्तः, इहापवर्त्तनं कर्म्मणां स्थित्यादेरध्यवसायविशेषेण हीनताकरणम्, अपवर्त्तनस्य चोपलक्षणत्वादुद्वर्त्तनमपीह दृश्यं, तच्च स्थित्यादेर्वृद्धिकरणस्वरूपं, 'संकामेंसु'त्ति संक्रमितवन्तः, तत्र संक्रमणं मूलप्रकृत्यभिन्नानामुत्तरप्रकृतीनामध्यवसायविशेषेण परस्परं संचारणं, तथा चाह–"मूलप्रकृत्यभिन्नाः संक्रमयति गुणत उत्तराः प्रकृतीः। नन्वात्माऽमूर्त्तत्वादध्यवसायप्रयोगेण ॥ १ ॥" अपरस्त्वाह–"मोत्तूण आउयं खलु दंसणमोहं चरित्तमोहं च। सेसाणं पगईणं उत्तरविहिसंकमो भणिओ ॥ १ ॥" एतदेव निदर्श्यते–यथा कस्यचित्सद्वेद्यमनुभवतोऽशुभकर्मपरिणतिरेवंविधा जाता येन तदेव सद्वेद्यमसद्वेद्यतया संक्रामतीति, एवमन्यत्रापि योज्यमिति। 'निधत्तेंसु'त्ति निधत्तान् कृतवन्तः, इह च विश्लिष्टानां परस्परतः पुद्गलानां निचयं कृत्वा धारणं रूढिशब्दत्वेन निधत्तमुच्यते, उद्वर्त्तनापवर्त्तनव्यतिरिक्तकरणा-

१ आयुर्दर्शनमोहं चारित्रमोहं च मुक्त्वा। शेषाणां प्रकृतीनामुत्तरविधिसंक्रमो भणितः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१

॥ २५ ॥

नामविषयत्वेन कर्म्मणोऽवस्थानमिति । **'निकाइंसु'**त्ति निकाचितवन्तः, नितरां बद्धवन्त इत्यर्थः निकाचनं चैषामेव पुद्गलानां परस्परविश्लिष्टानामेकीकरणमन्योऽन्यावगाहिता अग्निप्रतप्तप्रतिहन्यमानशुचीकलापस्येव, सकलकरणानाम-विषयतया कर्मणो व्यवस्थापनमितियावत् । **'भिज्जंती'** त्यादिपदानां संग्रहणी यथा–'भेइय' इत्यादिगाथा गतार्था, नवरम्–अपवर्त्तनसंक्रमनिधत्तनिकाचनपदेषु त्रिविधः कालो निर्देष्टव्यः, अतीतवर्त्तमानानागतकालनिर्देशेन तानि वाच्यानीत्यर्थः इह चापवर्त्तनादीनामिव भेदादीनामपि त्रिकालता युक्ता, न्यायस्य समानत्वात्, केवलमविवक्षणान्न तन्नि-र्देशः सूत्रे कृत इति ॥ अथ पुद्गलाधिकारादिदं सूत्रचतुष्टयमाह—

नेरइयाणं भंते ! जे पोग्गले तेयाकम्मत्ताए गेण्हंति ते किं तीतकालसमए गेण्हंति ? पडुप्पन्नकालसमए गेण्हंति ? अणा० का० समए गेण्हंति ?, गोयमा ! नो तीयकालसमए गेण्हंति पडुप्पन्नकालसमए गेण्हंति नो अणा० समए गिण्हंति १ । नेरइयाणं भंते ! जे पोग्गला तेयाकम्मत्ताए गहिए उदीरेंति ते किं तीय-कालसमयगहिए पोग्गले उदीरेंति पडुप्पन्नकालसमए घेप्पमाणे पोग्गले उदीरेंति गहणसमयपुरक्खडे पोग्गले उदीरेंति ?, गोयमा ! अतीयकालसमयगहिए पोग्गले उदीरेंति नो पडुप्पन्नकालसमए घेप्पमाणे पोग्गले उदीरेंति नो गहणसमयपुरक्खडे पोग्गले उदीरेंति २, एवं वेदेंति ३ निज्जरेंति ॥ (सू० १३)

'नेरइयाण'मित्यादि व्यक्तं, नवरं **'तेयाकम्मत्ताए'**त्ति तेजःशरीरकार्म्मणशरीरतया, तद्रूपतयेत्यर्थः, **'अतीतका-लसमए'**त्ति कालरूपः समयो न तु समाचाररूपः कालोऽपि समयरूपो न तु वर्णादिस्वरूप इति परस्परेण विशेषणात्

१ शतके १ उद्देशके नैरयिकाणां ग्रहणोदीरणवेदननिर्जराः सू० १३

॥ २५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कालसमयः अतीतः कालसमयः (अतीतकालसमयः) अतीतकालस्य चोत्सर्पिण्यादेः समयः–परमनिकृष्टोऽंशोऽतीतकालसमयस्तत्र 'पडुप्पन्न'त्ति प्रत्युत्पन्नो–वर्त्तमानः, नोऽतीतकालेत्यादौ अतीतानागतकालविषयग्रहणप्रतिषेधो विषयातीतत्वात्, विषयातीतत्वं च तयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वेनासत्त्वादिति, प्रत्युत्पन्नत्वेऽप्यभिमुखान् गृह्णाति नान्यान्, 'गहणसमयपुरक्खडे'त्ति ग्रहणसमयः पुरस्कृतो–वर्त्तमानसमयस्य पुरोवर्त्ती येषां ते ग्रहणसमयपुरस्कृताः, प्राकृतत्वादेवं निर्देशः, अन्यथा पुरस्कृतग्रहणसमया इति स्याद् , ग्रहीष्यमाणा इत्यर्थः १, उदीरणा च पूर्वकालगृहीतानामेव भवति, ग्रहणपूर्वकत्वादुदीरणायाः, अत उक्तम्–अतीतकालसमयगृहीतानुदीरयन्तीति, गृह्यमाणानां ग्रहीष्यमाणानां चागृहीतत्वादुदीरणाऽभावस्तत उक्तं–'नो पडुप्पन्ने' त्यादि २। वेदनानिर्जरासूत्रयोरप्येषैवोपपत्तिरिति ॥ ३–४॥ अथ कर्माधिकारादेवेयमष्टसूत्री—

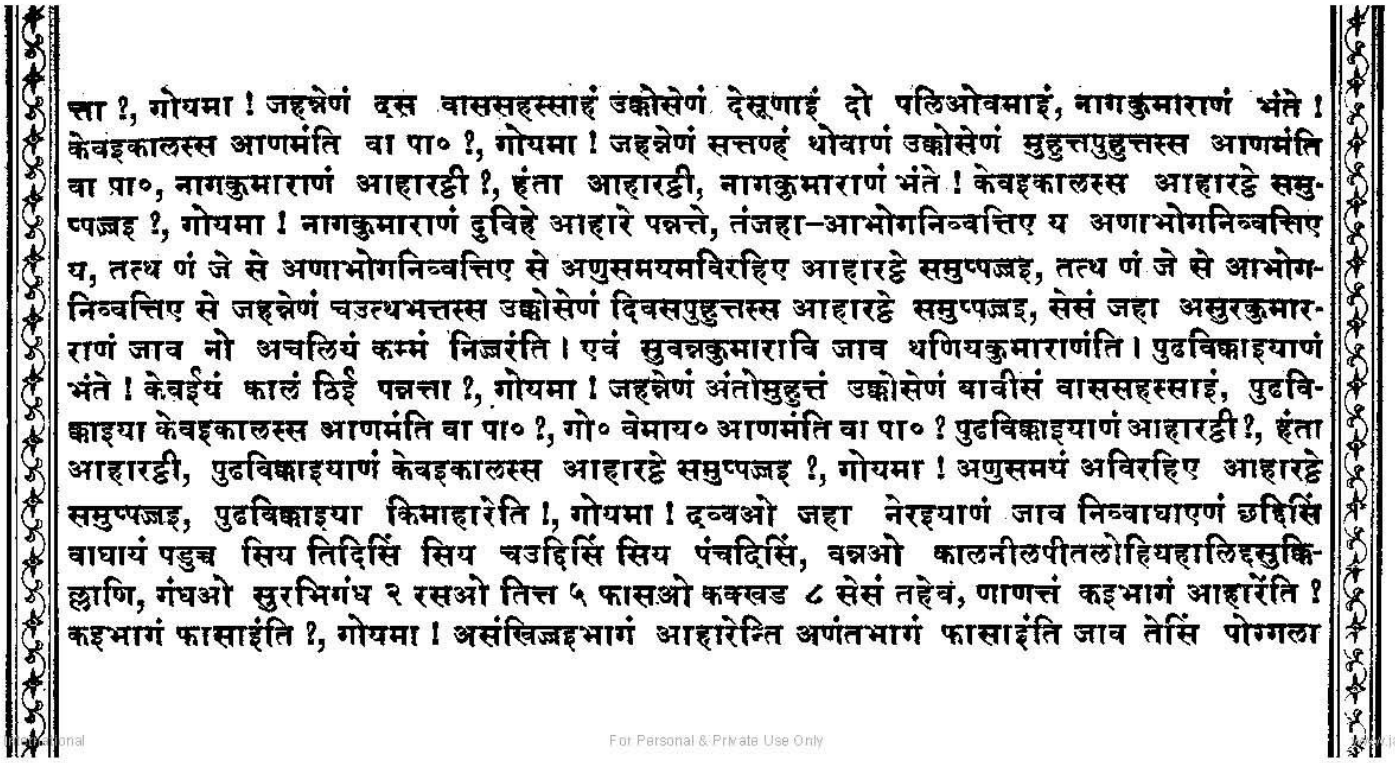
नेरइयाणं भंते ! जीवाओ किं चलियं कम्मं बंधंति अचलियं कम्मं बंधंति ?, गोयमा ! नो चलियं कम्मं बंधंति अचलियं कम्मं बंधंति १। नेरइयाणं भंते ! जीवाओ किं चलियं कम्मं उदीरेंति अचलियं कम्मं उदीरेंति ?, गोयमा ! नो चलियं कम्मं उदीरेंति अचलियं कम्मं उदीरेंति २। एवं वेदेंति ३ उयट्टेंति ४ संकामेंति ५ निहत्तेंति ६ निकायेंति ७, सव्वेसु अचलियं नो चलियं । नेरइयाणं भंते ! जीवाओ किं चलियं कम्मं निज्जरेंति अचलियं कम्मं निज्जरेंति ?, गोयमा ! चलियं कम्मं निज्जरेंति नो अचलियं कम्मं निज्जरेंति ८, गाहा–बंधोदयवेदोयट्टसंकमे तह निहत्तणनिकाये। अचलियं कम्मं तु भवे चलियं जीवाउ निज्जरए ॥ १ ॥ (सू० १४) एवं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ठिई आहारो य भाणियव्वो, ठिती–जहा ठितिपदे तहा भाणियव्वा, सव्वजीवाणं आहारोऽवि जहा पन्नवणाए पढमे आहारुद्देसए तहा भाणियव्वो, एत्तो आढत्तो–नेरइयाणं भंते ! आहारट्ठी ? जाव दुक्खत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति, गोयमा !० । असुरकुमाराणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?, जहन्नेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं सातिरेगं सागरोवमं, असुरकुमाराणं भंते ! केवइयं कालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ?, गोयमा ! जहन्नेणं सत्तण्हं थोवाणं उक्कोसेणं साइरेगस्स पक्खस्स आणमंति वा पाणमंति वा, असुरकुमाराणं भंते ! आहारट्ठी ?, हंता आहारट्ठी, असुरकुमाराणं भंते ! केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?, गोयमा ! असुरकुमाराणं दुविहे आहारे पन्नत्ते, तंजहा–आभोगनिव्वत्तिए य अणाभोगनिव्वत्तिए य, तत्थ णं जे से अणाभोगनिव्वत्तिए से अणुसमयं अविरहिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ, तत्थ णं जे से आभोगनिव्वत्तिए से जहन्नेणं चउत्थभत्तस्स उक्कोसेणं साइरेगस्स वाससहस्सस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ, असुरकुमाराणं भंते ! किमाहारमाहारेंति ?, गोयमा ! दव्वओ अणंतपएसियाइं दव्वाइं खित्तकालभावपन्नवणागमेणं सेसं जहा नेरइयाणं जाव तेणं तेसिं पोग्गला कीसत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति ?, गोयमा ! सोइंदियत्ताए सुरूवत्ताए सुवन्नत्ताए ४ इट्ठत्ताए इच्छियत्ताए भिज्झियत्ताए उड्ढत्ताए णो अहत्ताए सुहत्ताए णो दुहत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति, असुरकुमारा णं पुव्वाहारिया पुग्गला परिणया असुरकुमाराभिलावेण जहा नेरइयाणं जाव नो अचलियं कम्मं निज्जरंति । नागकुमाराणं भंते ! केवइयं कालं ठिती पन्न-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४,१५] + गाथा दीप अनुक्रम [१९-२१]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः



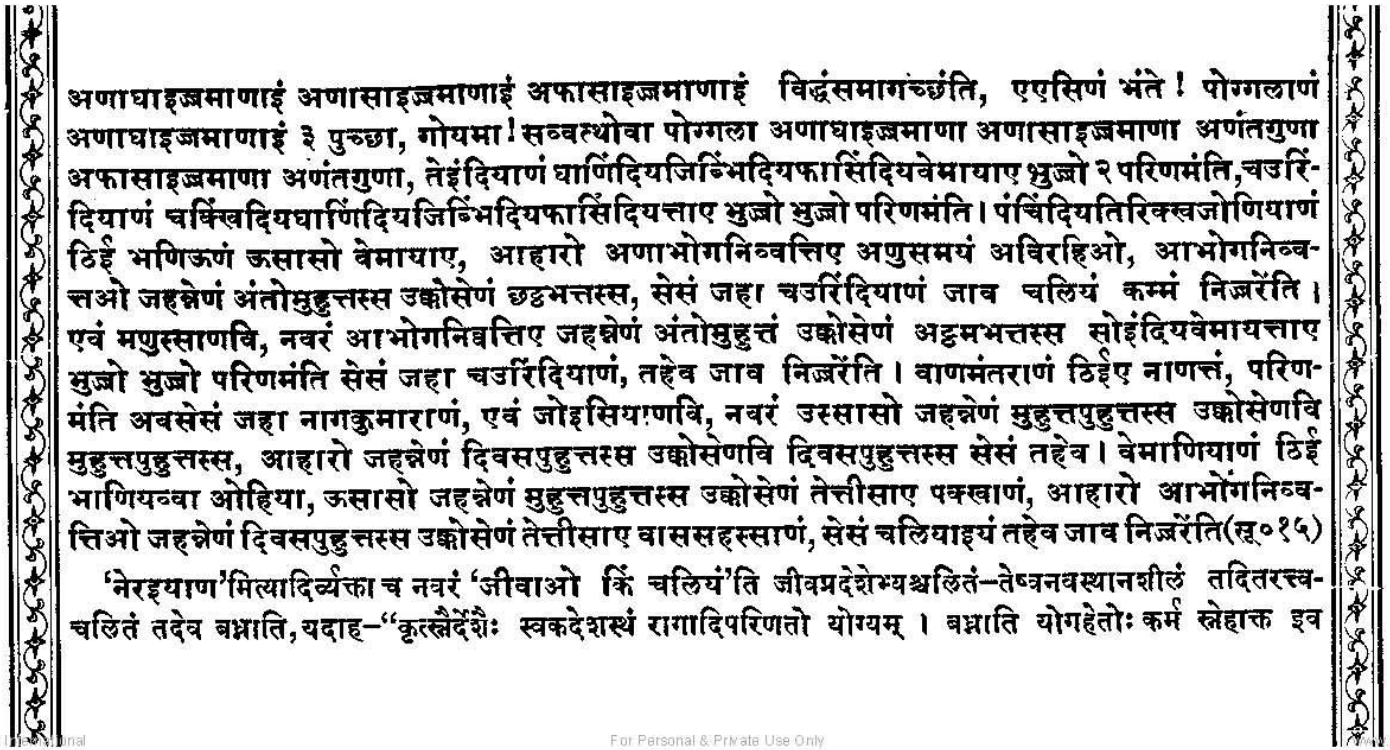
त्ता ?, गोयमा ! जहन्नेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं, नागकुमाराणं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा पा० ?, गोयमा ! जहन्नेणं सत्तण्हं थोवाणं उक्कोसेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स आणमंति वा पा०, नागकुमाराणं आहारट्ठी ?, हंता आहारट्ठी, नागकुमाराणं भंते ! केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?, गोयमा ! नागकुमाराणं दुविहे आहारे पन्नत्ते, तंजहा–आभोगनिव्वत्तिए य अणाभोगनिव्वत्तिए य, तत्थ णं जे से अणाभोगनिव्वत्तिए से अणुसमयमविरहिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ, तत्थ णं जे से आभोगनिव्वत्तिए से जहन्नेणं चउत्थभत्तस्स उक्कोसेणं दिवसपुहुत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ, सेसं जहा असुरकुमाराणं जाव नो अचलियं कम्मं निज्जरंति। एवं सुवन्नकुमारावि जाव थणियकुमाराणंति। पुढविक्काइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं, पुढविक्काइया केवइकालस्स आणमंति वा पा० ?, गो० वेमाय० आणमंति वा पा० ? पुढविक्काइयाणं आहारट्ठी ?, हंता आहारट्ठी, पुढविक्काइयाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?, गोयमा ! अणुसमयं अविरहिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ, पुढविक्काइया किमाहारेंति ?, गोयमा ! दव्वओ जहा नेरइयाणं जाव निव्वाघाएणं छद्दिसिं वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं सिय चउद्दिसिं सिय पंचदिसिं, वन्नओ कालनीलपीतलोहियहालिद्दसुक्किल्लाणि, गंधओ सुरभिगंध २ रसओ तित्त ५ फासओ कक्खड ८ सेसं तहेव, णाणत्तं कइभागं आहारेंति ? कइभागं फासाइंति ?, गोयमा ! असंखिज्जइभागं आहारेन्ति अणंतभागं फासाइंति जाव तेसिं पोग्गला

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कीसत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति ?, गोयमा ! फासिंदियवेमायत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति, सेसं जहा नेरइयाणं जाव नो अचलियं कम्मं निज्जरंति । एवं जाव वणस्सइकाइयाणं, नवरं ठिती वन्नेयव्वा जाव (इया) जस्स, उस्सासो वेमायाए । बेइंदियाणं ठिई भाणियव्वा ऊसासो वेमायाए, बेइंदियाणं आहारे पुच्छा, गोयमा ! आभोगनिव्वत्तिए य अणाभोगनिव्वत्तिए य तहेव, तत्थ णं जे से आभोगनिव्वत्तिए से णं असंखेज्जसमए अंतोमुहुत्तिए वेमायाए आहारट्ठे समुप्पज्जइ, सेसं तहेव जाव अणंतभागं आसायंति, बेइंदियाणं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति ते किं सव्वे आहारेंति णो सव्वे आहारेंति ?, गोयमा ! बेइंदियाणं दुविहे आहारे पन्नत्ते, तंजहा–लोमाहारे पक्खेवाहारे य, जे पोग्गले लोमाहारत्ताए गिण्हंति ते सव्वे अपरिसेसिए आहारेंति, जे पोग्गले पक्खेवाहारत्ताए गिण्हंति तेसिणं पोग्गलाणं असंखिज्जइभागं आहारेंति अणेगाइं च णं भागसहस्साइं अणासाइज्जमाणाइं अफासिज्जमाणाइं विद्धंसमागच्छंति, एएसि णं भंते ! पोग्गलाणं अणासाइज्जमाणाणं अफासाइज्जमाणाण य कयरे कयरे अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?, गोयमा ! सव्वत्थोवा पुग्गला अणासाइज्जमाणा अफासाइज्जमाणा अणंतगुणा, बेइंदियाणं भंते ! जे पोग्गला आहारत्ताए गिण्हंति ते णं तेसिं पुग्गला कीसत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति ?, गोयमा ! जिब्भिंदियफासिंदियवेमायत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति, बेइंदियाणं भंते ! पुव्वाहारिया पुग्गला परिणया तहेव जाव चलियं कम्मं निज्जरंति। तेइंदियचउरिंदियाणं णाणत्तं ठिइए जाव णेगाइं च णं भागसहस्साइं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४,१५] + गाथा दीप अनुक्रम [१९-२१]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः



अणाघाइज्जमाणाइं अणासाइज्जमाणाइं अफासाइज्जमाणाइं विद्धंसमागच्छंति, एएसिणं भंते ! पोग्गलाणं अणाघाइज्जमाणाइं ३ पुच्छा, गोयमा ! सव्वत्थोवा पोग्गला अणाघाइज्जमाणा अणासाइज्जमाणा अणंतगुणा अफासाइज्जमाणा अणंतगुणा, तेइंदियाणं घाणिंदियजिब्भिंदियफासिंदियवेमायाए भुज्जो २ परिणमंति, चउरिंदियाणं चक्खिंदियघाणिंदियजिब्भिंदियफासिंदियत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति। पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं ठिई भणिऊणं ऊसासो वेमायाए, आहारो अणाभोगनिव्वत्तिए अणुसमयं अविरहिओ, आभोगनिव्वत्तिओ जहन्नेणं अंतोमुहुत्तस्स उक्कोसेणं छट्ठभत्तस्स, सेसं जहा चउरिंदियाणं जाव चलियं कम्मं निज्जरेंति। एवं मणुस्साणवि, नवरं आभोगनिवत्तिए जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अट्ठमभत्तस्स सोइंदियवेमायत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति सेसं जहा चउरिंदियाणं, तहेव जाव निज्जरेंति। वाणमंतराणं ठिईए नाणत्तं, परिणमंति अवसेसं जहा नागकुमाराणं, एवं जोइसियाणवि, नवरं उस्सासो जहन्नेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स उक्कोसेणवि मुहुत्तपुहुत्तस्स, आहारो जहन्नेणं दिवसपुहुत्तस्स उक्कोसेणवि दिवसपुहुत्तस्स सेसं तहेव। वेमाणियाणं ठिई भाणियव्वा ओहिया, ऊसासो जहन्नेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स उक्कोसेणं तेत्तीसाए पक्खाणं, आहारो आभोगनिव्वत्तिओ जहन्नेणं दिवसपुहुत्तस्स उक्कोसेणं तेत्तीसाए वाससहस्साणं, सेसं चलियाइयं तहेव जाव निज्जरेंति(सू०१५)

'नेरइयाण'मित्यादिर्व्यक्ता च नवरं 'जीवाओ किं चलियं'ति जीवप्रदेशेभ्यश्चलितं–तेष्वनवस्थानशीलं तदितरत्त्वचलितं तदेव बध्नाति, यदाह–"कृत्स्नैर्देशैः स्वकदेशस्थं रागादिपरिणतो योग्यम् । बध्नाति योगहेतोः कर्म स्नेहाक्त इव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ २८ ॥

च मलम् ॥ १ ॥" इति । एवमुदीरणावेदनाऽपवर्त्तनासंक्रमणनिधत्तनिकाचनानि भाव्यानि, निर्जरा तु पुद्गलानां निरनुभावीकृतानामात्मप्रदेशेभ्यः सातनं, सा च नियमाच्चलितस्य कर्म्मणो नाचलितस्येति, इह सङ्ग्रहणीगाथा–'बंधोदये' त्यादिर्भावितार्था, केवलमुदयशब्देनोदीरणा गृहीतेति । उक्ता नारकवक्तव्यता, अथ चतुर्विंशतिदण्डकक्रमागतामसुरकुमारवक्तव्यतामाह–'असुरकुमाराण'मित्यादि, तत्रासुरकुमारवक्तव्यता नारकवक्तव्यतावज्ञेया, यतः 'ठिइऊसासाहारे'–त्यादिगाथोक्तानि सूत्राणि ४० 'परिणयचिए' इत्यादिगाथागृहीतानि ६ 'भेइयचिए' इत्यादिगाथागृहीतानि १८ 'बंधोदये' त्यादिगाथागृहीतानि ८, तदेवं द्विसप्ततिः सूत्राणि नारकप्रकरणोक्तानि त्रयोविंशतावसुरादिप्रकरणेषु समानि, नवरं विशेषोऽयम्–'उक्कोसेणं साइरेगं सागरोवम'मिति यदुक्तं तद्बलिसञ्ज्ञमसुरकुमारराजमाश्रित्योक्तं, यदाह— "चमर १ बलि २ सार महियं'ति, 'सत्तण्हं थोवाणं'ति सप्तानां स्तोकानामुपरीति गम्यते, स्तोकलक्षणं चैवमाचक्षते–"[1]हट्ठस्स अणवगल्लस्स, निरुवकिट्ठस्स जंतुणो । एगे ऊसासनीसासे, एस पाणुत्ति वुच्चइ ॥ १ ॥ सत्तपाणूणि से थोवे, सत्त थोवाणि से लवे । लवाणं सत्तहत्तरिए, एस मुहुत्ते विधाहिए ॥ २ ॥" इदं जघन्यमुच्छ्वासादिमानं जघन्यस्थितिकानाश्रित्यावगन्तव्यम्, उत्कृष्टं चोत्कृष्टस्थितिकानाश्रित्येति । 'चउत्थभत्तस्स'त्ति चतुर्थभक्तमित्येकोपवासस्य सञ्ज्ञा ततस्तस्योपरि, एकत्र दिने भुक्त्वाऽहोरात्रं चातिक्रम्य तृतीये भुञ्जत इति भावः। नागकुमारवक्तव्यतायाम् 'उक्को-

१ चमरबलिनोः सागरमधिकं च ॥ २ हृष्टस्यानवगल्लस्य निरुपकृष्टस्य जन्तोरेक उच्छ्वासनिःश्वासो य एष प्राण इत्युच्यते ॥ १ ॥ सप्त प्राणास्ते स्तोकः सप्त स्तोका अथ लवः । लवानां या सप्तसप्ततिरेष मुहूर्त्त इति व्याख्यातः ॥

१ शतके १ उद्देशके असुरादीनामाहारादिस्थित्यादि सू० १५

॥ २८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं'ति यदुक्तं तदुत्तरश्रेणिमाश्रित्यावसेयं, यदाह–"[1]दाहिण दिवड्ढपलियं दो देसूणुत्तरिल्लाणं" इति 'मुहुत्तपुहुत्तस्स'त्ति, मुहूर्त्त उक्तलक्षण एव, पृथक्त्वं तु द्विप्रभृतिरानवभ्यः सङ्ख्याविशेषः समये प्रसिद्धः, एवं 'सुवण्णकुमाराणं'त्ति नागकुमाराणामिव सुपर्णकुमाराणामपि स्थित्यादि वाच्यम्, इदं च कियद्दूरं यावद्वाच्यम्? इत्याह–'जाव थणियकुमाराणं'ति यावत्करणाद् विद्युत्कुमारादिपरिग्रहः, एषां चेहायं क्रमोऽवसेयः–[2]असुरा १ नाग २ सुवण्ण ३ विज्जू ४ अग्गी य ५ दीव ६ उदही य ७। दिसि ८ वाऊ ९ थणियावि य १० दस भेया भवणवासीणं ॥ १ ॥" अथ भवनपतिवक्तव्यताऽनन्तरं दण्डकक्रमादेव पृथिव्यादीनां स्थित्यादि निरूपयन्नाह–'पुढवी'त्यादि व्यक्तमावनस्पतिसूत्रात्, नवरम्–'अंतोमुहुत्त'न्ति मुहूर्त्तस्यान्तरन्तर्मुहूर्त्तं, भिन्नमुहूर्त्तमित्यर्थः, 'उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं'ति यदुक्तं तत् खरपृथिवीमाश्रित्यावगन्तव्यं, यदाह–"[3]सण्हा य १ सुद्ध १२ वालुय १४ मणोसिला १६ सक्करा य १८ खरपुढवी २२। एगं बारस चोद्दस सोलस अट्ठार बावीसा ॥ १ ॥" इति। 'वेमायाए'त्ति विषमा विविधा वा मात्रा–कालविभागो विमात्रा तया, इदमुक्तं भवति–विषमकाला पृथिवीकायिकानामुच्छ्वासादिक्रिया–इयत्कालादिति न निरूपयितुं शक्यते, 'जहा नेरइयाण'मित्यतिदेशात्, खेत्तओ असंखेज्जपएसोगाढाइं कालओ अन्नयरठिइयाइं'

१ दाक्षिणात्यानां सार्द्धपल्यमुत्तरत्यानां देशोने द्वे ॥ ४ असुराः १ नागाः २ सुपर्णाः ३ विद्युतः ४ अग्नयश्च ५ द्वीपा ६ उदधयश्च ७ दिशः ८ वायवः ९ स्तनिताः १० अपि च भवनवासिनां दश भेदाः ॥ १ ॥ ३ श्लक्ष्णा च शुद्धा वालुका मनःशिला शर्करा च खरपृथ्वी। एतासां क्रमत एकं द्वादश चतुर्दश षोडशाष्टादश द्वाविंशतिः सहस्राणि ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४,१५] + गाथा

दीप अनुक्रम [१९-२१]

इत्यादि दृश्यं, 'निव्वाघाएणं छद्दिसिं'ति व्याघात आहारस्य लोकान्तनिष्कुटेषु संभवति नान्यत्र, [पू.] ततो निष्कुटेभ्योऽन्यत्र षट्सु दिक्षु, कथं ?–चतसृषु पूर्वादिदिक्षु ऊर्ध्वमधश्च पुद्गलग्रहणं करोति, तस्य स्थापना– [उ. ऊर्ध्व अध द.], 'वाघायं पडुच्च'त्ति व्याघातं प्रतीत्य, व्याघातश्च निष्कुटेषु, तत्र च 'सिय तिदिसिं'ति स्यात्–कदाचित्तिसृषु [प. दिक्षु आहारमहणं भवति, कथं ?, यदा पृथिवीकायिकोऽधस्तने उपरितने वा कोणेऽवस्थितः स्यात्तदाऽधस्तादलोकः पूर्वदक्षिणयोश्चालोक इत्येवं तिसृणामलोकेनाऽऽवृतत्वात्तदन्यासु तिसृषु पुद्गलग्रहणम्, एवमुपरितनकोणेऽपि वाच्यं, यदा पुनरध उपरि चालोको भवति तदा चतसृषु [दिक्षु], यदा तु पूर्वादीनां षण्णां दिशामन्यतरस्यामलोको भवति तदा पञ्चस्विति, 'फासओ कक्खडाइं'ति इह कर्कशादयो रूक्षान्ताः स्पर्शा दृश्याः, 'सेसं तहेव'त्ति शेषं–भणितावशेषं तथैव यथा नारकाणां तथा पृथिवीकायिकानामपि, तच्चेदम्–"जाइं भंते ! लुक्खाइं आहारेंति ताइं किं पुट्ठाइं अपुट्ठाइं ?, जइ पुट्ठाइं किं ओगाढाइं अणोगाढाइं ?" इत्यादि । 'नाणत्तं'ति नानात्वं भेदः पुनः पृथिवीकायिकानां नारकापेक्षयाऽऽहारं प्रतीदं यथा 'कइभाग'मित्यादि तत्र 'फासाइंति'त्ति स्पर्शं कुर्वन्ति स्पर्शयन्ति–स्पर्शनेन्द्रियेणाहारपुद्गलानां कतिभागं स्पृशन्तीत्यर्थः, अथवा स्पर्शेनास्वादयन्ति प्राकृतशैल्या फासायंति, स्पर्शेन वाऽऽददति–गृह्णन्ति उपलभन्त इति 'फासाइंति, इदमुक्तं भवति–यथा रसनेन्द्रियपर्याप्तिपर्याप्तका रसनेन्द्रियद्वारेणाहारमुपभुञ्जाना आस्वादयन्तीति व्यपदिश्यन्ते एवमेते स्पर्शनेन्द्रियद्वारेणेति, 'सेसं जहा नेरइयाणं'ति, तच्चैवम्–'पुढविकाइयाणं भंते ! पुव्वाहारिया पोग्गला परिण-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

या'इत्यादि, प्राग्वच्च व्याख्येयमिति। एवं 'जाव वणस्सइकाइयाणं'ति, अनेन पृथिवीकायिकसूत्रमिवाप्कायिकादिसूत्राणि समानीत्युक्तं, स्थितौ पुनर्विशेषोऽत एवाह–नवरं 'ठिई वण्णेयव्वा जा जस्स'त्ति, तत्र जघन्या सर्वेषामन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कृष्टा त्वपां सप्त वर्षसहस्राणि तेजसामहोरात्रत्रयं वायूनां त्रीणि वर्षसहस्राणि वनस्पतीनां दशेति, उक्ता चेयं पृथिव्यादिक्रमेण–"[1]बावीसाइं सहस्सा १ सत्त सहस्साइं २ तिन्निऽहोरत्ता ३। वाए तिन्नि सहस्सा ४ दस वाससहस्सिया रुक्खे ५ ॥ १ ॥"ति। 'बेइंदियाणं ठिइ भणिऊण ऊसासो वेमायाए'त्ति वक्तव्य इति शेषः, स्थितिश्च द्वीन्द्रियाणां द्वादश वर्षाणि, द्वीन्द्रियाणामाहारसूत्रे यदुक्तम्–'तत्थ णं जे से आभोगनिव्वत्तिए से णं असंखेज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए वेमायाए आहारट्ठे समुप्पज्जइ'त्ति, तस्यायमर्थः–असङ्ख्यातसामयिक आहारकालो भवति, स चावसर्पिण्यादिरूपोऽप्यस्तीत्यत उच्यते–आन्तर्मौहूर्त्तिकः, तत्रापि विमात्रया अन्तर्मुहूर्त्ते समयासङ्ख्यातत्वस्यासङ्ख्येयभेदत्वादिति। 'बेइंदियाणं, दुविहे आहारे पन्नत्ते, लोमहारे पक्खेवाहारे य'त्ति, तत्र लोमाहारः खल्वोघतो वर्षादिषु यः पुद्गलप्रवेशः स मूत्राद्यम्यत इति, प्रक्षेपाहारस्तु कावलिकः, तत्र प्रक्षेपाहारे बहवोऽस्पृष्टा एव शरीरादन्तर्बहिश्च विध्वंसन्ते स्थौल्यसौक्ष्म्याभ्याम्, अत एवाह–'जे पोग्गले पक्खेवाहारत्ताए गिण्हंती'त्यादि 'अणेगाइं च णं भागसहस्साइं'ति असङ्ख्येया भागा इत्यर्थः, 'अणासाइज्जमाणाइं'ति रसनेन्द्रियतः 'अफासाइज्जमाणाइं'ति स्पर्शनेन्द्रियतः 'कयरे'इत्यादि यत्पदं तदेवं दृश्यम्–'कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया व'त्ति व्यक्तं च 'सव्वत्थोवा

१ द्वाविंशतिः सहस्राणि सप्त सहस्राणि त्रीण्यहोरात्राणि। वायौ त्रीणि सहस्राणि वृक्षे दश वर्षसहस्राणि ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥ ३० ॥

पोग्गला अणासाइज्जमाणे'त्यादि, येऽनास्वाद्यमानाः केवलं रसनेन्द्रियविषयास्ते श्लोकाः, अस्पृश्यमाणानामनन्तभाग-वर्त्तिन इत्यर्थः, ये त्वस्पृश्यमाणाः केवलं स्पर्शनविषयास्तेऽनन्तगुणा रसनेन्द्रियविषयेभ्यः सकाशादिति, 'तेइंदियचउरिं-दियाणं नाणत्तं ठिईए'त्ति, तच्चेदम्–'जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेइंदियाणं एगूणपन्नासं राइंदियाइं चउरिंदियाणं छम्मासा' तथाऽऽहारेऽपि नानात्वं, तत्र च 'तेइंदियाणं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति' इत्यत आरभ्य तावत्सूत्रं वाच्यं यावत् 'अणेगाइं च णं भागसहस्साइं अणाघाइज्जमाणाइं' इत्यादि, इह च द्वीन्द्रियसूत्रापेक्षयाऽनाघ्रायमा-णानीत्यतिरिक्तमतो नानात्वम्, एवमल्पबहुत्वसूत्रे परिणामसूत्रे च, चतुरिन्द्रियसूत्रेषु तु परिणामसूत्रे 'चक्खिंदिय-त्ताए घाणिंदियत्ताए' इत्यधिकमिति नानात्वमिति । पञ्चेन्द्रियतिर्यक्सूत्रे 'ठिइं भणिऊणं'ति जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं'ति इत्येतद्रूपां स्थितिं भणित्वा 'उस्सासो'त्ति उच्छ्वासो विमात्रया वाच्य इति, तथा तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणामाहारार्थं प्रति यदुक्तम्–'उक्कोसेणं छट्ठभत्तस्स'त्ति तदेवकुरूत्तरकुरुतिर्यक्षु लभ्यते । मनुष्यसूत्रे यदुक्तम् 'अट्ठमभत्तस्से'ति तदेवकुर्वादिमिथुनकनरानाश्रित्य समवसेयमिति । 'वाणमंतराण'मित्यादि, वाणमन्तराणां स्थितौ नानात्वम्, 'अवसेसं'ति स्थितेरवशेषमायुष्कवर्जमित्यर्थः, प्रागुक्तमाहारादि वस्तु यथा नागकुमाराणां तथा द्रष्टव्यं, व्यन्तराणां नागकुमाराणां च प्रायः समानधर्मत्वात्, तत्र व्यन्तराणां स्थितिर्जघन्येन दश वर्षसहस्राणि, उत्कर्षेण तु पल्योपममिति । 'जोइसियाणंपी'त्यादि, ज्योतिष्काणामपि स्थितेरवशेषं तथैव यथा नागकुमाराणां, तत्र ज्योतिष्काणां स्थितिर्जघन्येन पल्योपमाष्टभागः उत्कर्षेण पल्योपमं वर्षलक्षाधिकमिति, नवरम् 'उस्सास'त्ति केवलमुच्छ्वासस्तेषां न नाग-

१ शतके १ उद्देशके असुरादी-नामाहारा-दिस्थित्या-दि सू १५

॥ ३० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुमारसमानः किन्तु वक्ष्यमाणः, तथा चाह–'जहन्नेणं मुहुत्तपुहुत्तस्से'त्यादि, पृथक्त्वं द्विप्रभृतिरानवभ्यः, तत्र यज्जघन्यं मुहूर्त्तपृथक्त्वं तद्वित्रा मुहूर्त्ताः, यच्चोत्कृष्टं तदष्टौ नव वेति, आहारोऽपि विशेषित एव, तथा चाह—'आहारो' इत्यादि, 'वेमाणियाणं ठिई भाणियव्वा' 'ओहिय'त्ति औधिकी–सामान्या, सा च पल्योपमादिका त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमान्ता, तत्र जघन्या सौधर्ममाश्रित्य, उत्कृष्टा चानुत्तरविमानानीति, उच्छ्वासप्रमाणं तु जघन्यं जघन्यस्थितिकदेवानाश्रित्य इतरत्तूत्कृष्टस्थितिकानाश्रित्येत्यर्थः, अत्र गाथा–"[१]जस्स जइ सागराइं तस्स ठिई तत्तिएहिं पक्खेहिं । ऊसासो देवाणं वाससहस्सेहिं आहारो ॥१॥" त्ति । तदेतावता ग्रन्थेनोक्ता चतुर्विंशतिदण्डकवक्तव्यता, इयं च केषुचित्सूत्रपुस्तकेषु 'एवं ठिई आहारो' इत्यादिनाऽतिदेशवाक्येन दर्शिता, सा चेतो विवरणग्रन्थादवसेयेति ॥ उक्ता नारकादिधर्मवक्तव्यता, इयं चारम्भपूर्विकेति आरम्भनिरूपणायाह—

जीवा णं भंते ! किं आयारंभा परारंभा तदुभयारंभा अनारम्भा ?, गोयमा ! अत्थेगइया जीवा आयारंभावि परारंभावि तदुभयारंभावि नो अणारंभा अत्थेगइया जीवा नो आयारंभा नो परारंभा नो तदुभयारंभा अणारंभा ॥ से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुचइ–अत्थेगइया जीवा आयारंभावि ? एवं पडिउच्चारेयव्वं, गोयमा ! जीवा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–संसारसमावन्नगा य असंसारसमावन्नगा य, तत्थ णं जे ते असंसारसमावन्नगा ते णं सिद्धा, सिद्धा णं नो आयारंभा जाव अणारम्भा, तत्थ णं जे ते

१ यस्य यावन्ति सागरोपमाणि स्थितिस्तस्य तावद्भिः पक्षैरुच्छ्वासस्तावद्भिर्वर्षसहस्रैः आहारस्तु देवानाम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संसारसमावन्नगा ते दुविहा पन्नत्ता, तंजहा–संजया य असंजया य, तत्थ णं जे ते संजया ते दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–पमत्तसंजया य अप्पमत्तसंजया य, तत्थ णं जे ते अप्पमत्तसंजया ते णं नो आयारंभा नो परारंभा जाव अणारंभा, तत्थ णं जे ते पमत्तसंजया ते सुहं जोगं पडुच्च नो आयारंभा नो परारंभा जाव अणारंभा, असुभं जोगं पडुच्च आयारंभावि जाव नो अणारंभा, तत्थ णं जे ते असंजया ते अविरतिं पडुच्च आयारंभावि जाव नो अणारंभा, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–अत्थेगइया जीवा जाव अणारंभा॥ नेरइयाणं भंते! किं आयारंभा परारंभा तदुभयारंभा अणारंभा?, गोयमा! नेरइया आयारंभावि जाव नो अणारंभा, से केणट्ठेणं भन्ते एवं वुच्चइ?, गोयमा! अविरतिं पडुच्च, से तेणट्ठेणं जाव नो अणारंभा, एवं जाव असुरकुमाराणवि जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणिया, मणुस्सा जहा जीवा, नवरं सिद्धविरहिया भाणियव्वा, वाणमंतरा जाव वेमाणिया जहा नेरइया। सलेस्सा जहा ओहिया, कण्हलेसस्स नीललेसस्स काउलेसस्स जहा ओहिया जीवा, नवरं पमत्तअप्पमत्ता न भाणियव्वा, तेउलेसस्स पम्हलेसस्स सुक्कलेसस्स जहा ओहिया जीवा, नवरं सिद्धा न भाणियव्वा॥ (सू० १६)

आरम्भो–जीवोपघातः, उपद्रवणमित्यर्थः, सामान्येन वाऽऽश्रवद्वारप्रवृत्तिः, तत्र चात्मानमारभन्ते आत्मना वा स्वयमारभन्त इत्यात्मारम्भाः, तथा परमारभन्ते परेण वाऽऽरम्भय'तीति परारम्भाः, तदुभयम्–आत्मपररूपं, तदुभयेन वाऽऽरम्भन्त इति तदुभयारम्भाः, आत्मपरोभयारम्भवर्जितास्त्वनारम्भा इति प्रश्नः, अत्रोत्तरं स्फुटमेव, नवरम्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अस्तिशब्दस्याव्ययत्वेन बहुत्वार्थत्वाद् 'अस्ति' विद्यन्ते सन्तीत्यर्थः, अथवाऽस्ति अयं पक्षो यदुत 'एगइय'त्ति एकका एके केचनेत्यर्थः जीवाः, आत्मारम्भा अपीत्यादावपिशब्द उत्तरपदापेक्षया समुच्चये, स चात्मारम्भत्वादिधर्मा-णामेकाश्रयताप्रतिपादनार्थः भिन्नाश्रयताप्रतिपादनार्थो वा, एकाश्रयत्वं च कालभेदेनावगन्तव्यं, तथाहि–कदाचि-दात्मारम्भाः कदाचित्परारम्भाः कदाचित्तदुभयारम्भाः, अत एव नो अनारम्भाः, भिन्नाश्रयत्वं त्वेवम्–एके जीवा असंयता इत्यर्थः आत्मारम्भा वा परारम्भा वेत्यादि। अथैकस्वभावत्वाज्जीवानां भेदमसंभावयन्नाह—'से केणट्ठेणं'ति अथ केन कारणेनेत्यर्थः, 'दुविहा पन्नत्त'त्ति मयाऽन्यैश्च केवलिभिः, अनेन समस्तसर्वविदां मताभेदमाह, मतभेदे तु विरोधिवचनतया तेषामसत्यवचनतापत्तिः, पाटलीपुत्रस्वरूपाभिधायकविरुद्धवचनपुरुषकदम्बकवदिति, प्रमत्तसंयतस्य हि शुभोऽशुभश्च योगः स्यात् संयतत्वात्प्रमादपरत्वाच्च इत्यत आह—'सुभं जोगं पडुच्च'त्ति शुभयोगः–उपयुक्ततया प्रत्युपेक्षणादिकरणम्, अशुभयोगस्तु तदेवानुपयुक्ततया, आह च—"पुढवी आउक्काए तेऊवाऊवणस्सइतसाणं। पडि लेहणापमत्तो छण्हंपि विराहओ होइ ॥ १ ॥" तथा "सव्वो पमत्तजोगो समणस्स उ होइ आरंभो" त्ति अतः शुभा-शुभौ योगावात्मा (ना) रम्भादिकारणमिति। 'अविरइं पडुच्च'त्ति, इहायं भावः–यद्यप्यसंयतानां सूक्ष्मैकेन्द्रियादीनां नात्मारम्भकादित्वं साक्षादस्ति तथाऽप्यविरतिं प्रतीत्य तदस्ति तेषां, न हि ते ततो निवृत्ताः, अतोऽसंयतानामविरति-

१ प्रतिलेखनाप्रमत्तः (कुम्भकारशालादिस्थितः) पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसानां षण्णामपि विराधको भवति ॥१॥ २ श्रमणस्य तु सर्वः प्रमत्तयोग आरम्भो भवति ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१६]

दीप अनुक्रम [२२]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥ ३२ ॥

१ शतके आत्मार-म्भा सू १६

स्तत्र कारणमिति, निवृत्तानां तु कथञ्चिदात्माद्यारम्भकत्वेऽप्यनारम्भकत्वं, यदाह—"[1]जा जयमाणस्स भवे विराहणा सुत्तविहिसमग्गस्स । सा होइ निज्जरफला अज्झत्थविसोहिजुत्तस्स ॥ १ ॥"त्ति । 'से तेणट्ठेणं'ति अथ तेन कारणेनेत्यर्थः ॥ अथात्मारम्भकत्वादित्वमेव नारकादिचतुर्विंशतिदण्डकैर्निरूपयन्नाह—'नेरइयाण'मित्यादि व्यक्तं, नवरं—'मणुस्से'त्यादौ अयमर्थः—मनुष्येषु संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तभेदाः पूर्वोक्ताः सन्ति ततस्ते यथा जीवास्तथाऽध्येतव्याः किन्तु संसारसमापन्नाः, इतरे च ते न वाच्याः, भववर्त्तित्वादेव तेषामिति, एतदेवाह—'सिद्धविरहिए'त्यादि । व्यन्तरादयो यथा नारकास्तथाऽध्येयाः, असंयतत्वसाधर्म्यादिति ॥ आत्मारम्भकत्वादिभिर्द्धर्मैर्जीवा निरूपिताः ते च सलेश्याश्चालेश्याश्च भवन्तीति सलेश्यांस्तांस्तैरेव निरूपयन्नाह—'सलेसा जहा ओहिय'त्ति, लेश्या—कृष्णादिद्रव्यसान्निध्यजनितो जीवपरिणामो, यदाह—"कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात्, परिणामो य आत्मनः । स्फटिकस्येव तत्रायं, लेश्याशब्दः प्रयुज्यते ॥ १ ॥" तत्र 'सलेश्याः' लेश्यावन्तो जीवाः 'जहा ओहिय'त्ति यथा नारकादिविशेषणवर्जिता जीवा अधीताः, 'जीवा णं भंते ! किं आयारंभा परारंभे'त्यादिना दण्डकेन तथा सलेश्या जीवा अपि वाच्याः, सलेश्यानामसंसारसमापन्नत्वस्यासम्भवेन संसारसमापन्नेत्यादिविशेषणवर्जितानां शेषाणां संयतादिविशेषणानां तेष्वपि युज्यमानत्वात्, तत्र चायं पाठक्रमः—'सलेसा णं भंते ! जीवा किं आयारंभे'त्यादि तदेव सर्वं, नवरं—जीवस्थाने सलेश्या इति वाच्यमिति, अयमेको दण्डकः, कृष्णादिलेश्याभेदात्तदन्ये षट्, तदेवमेते सप्त, तत्र 'कण्हलेसस्से'त्यादि, कृष्णलेश्यस्य नीललेश्यस्य

॥ ३२ ॥

१ सूत्रोक्तविधिसमग्रस्य यतमानस्य या विराधना भवेत् साऽपि निर्जरफलाऽध्यात्म (परिणाम) विशुद्धियुक्तस्य ॥ १ ॥

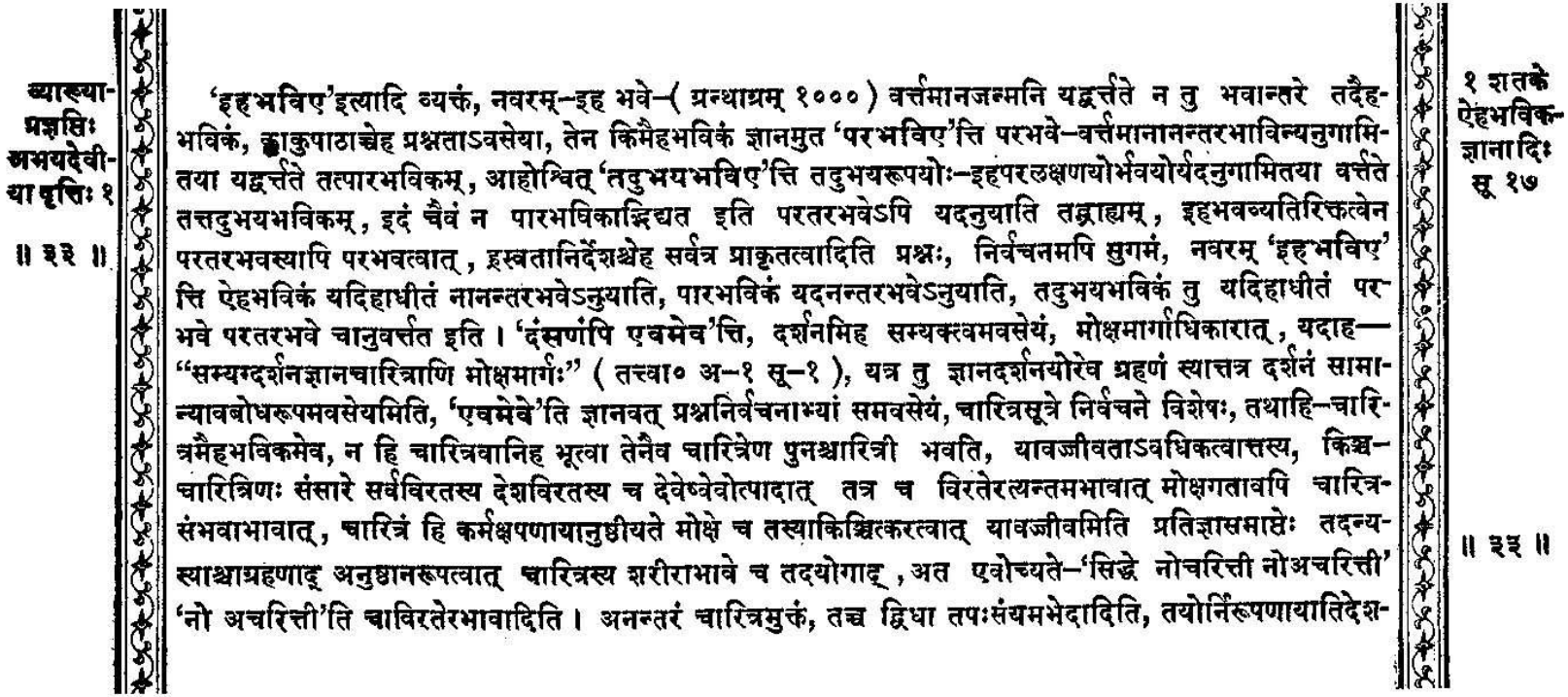
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कापोतलेश्यस्य च जीवराशेर्दण्डको यथा औधिकजीवदण्डकस्तथाऽध्येतव्यः–प्रमत्ताप्रमत्तविशेषणवर्जः, कृष्णादिषु हि अप्रशस्तभावलेश्यासु संयतत्वं नास्ति, यच्चोच्यते–"पुव्वपडिवण्णओ पुण अन्नयरीए उ लेसाए"त्ति, तद्द्रव्यलेश्यां प्रतीत्येति मन्तव्यं, ततस्तासु प्रमत्ताद्यभावः, तत्र सूत्रोच्चारणमेवम्–"कण्हलेसाणं भंते ! जीवा किं आयारंभा परारंभा तदुभयारंभा अनारंभा ४ ?, गोयमा ! आयारंभावि जाव नो अणारंभा, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! अविरइं पडुच्च" एवं नीलकापोतलेश्यादण्डकावपीति, तथा तेजोलेश्यादेर्जीवराशेर्दण्डकाः ३ यथा औधिका जीवास्तथा वाच्याः, नवरं तेषु सिद्धा न वाच्याः, सिद्धानामलेश्यत्वात्, तच्चैवम्–'तेउलेस्साणं भंते ! जीवा किं आयारंभा ४ ?, गोयमा ! अत्थेगइया आयारंभावि जाव नो अणारंभा, अत्थेगइया नो आयारंभा जाव अणारंभा, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! दुविहा तेउलेस्सा पन्नत्ता, तंजहा–संजया य असंजया ये'त्यादि ॥ भवहेतुभूतमारम्भं निरूप्य भवाभावहेतुभूतं ज्ञानादिधर्मकदम्बकं निरूपयन्नाह—

इहभविए भंते ! नाणे परभविए नाणे तदुभयभविए नाणे ?, गोयमा ! इहभविएवि नाणे परभविएवि नाणे तदुभयभविएवि नाणे । दंसणंपि एवमेव । इहभविए भंते ! चरित्ते परभविए चरित्ते तदुभयभविए चरित्ते ?, गोयमा ! इहभविए चरित्ते नो परभविए चरित्ते नो तदुभयभविए चरित्ते । एवं तवे संजमे ॥१(सू० १७)

१ पूर्वप्रतिपन्नचारित्रः पुनरन्यतरस्यां लेश्यायाम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ३३ ॥

'इहभविए'इत्यादि व्यक्तं, नवरम्–इह भवे–(ग्रन्थाग्रम् १०००) वर्त्तमानजन्मनि यद्वर्त्तते न तु भवान्तरे तदैह-भविकं, ङाकुपाठाच्चेह प्रश्नताऽवसेया, तेन किमैहभविकं ज्ञानमुत 'परभविए'त्ति परभवे–वर्त्तमानानन्तरभाविन्यनुगामि-तया यद्वर्त्तते तत्पारभविकम्, आहोस्वित् 'तदुभयभविए'त्ति तदुभयरूपयोः–इहपरलक्षणयोर्भवयोर्यदनुगामितया वर्त्तते तत्तदुभयभविकम्, इदं चैवं न पारभविकाद्भिद्यत इति परतरभवेऽपि यदनुयाति तद्ग्राह्यम्, इहभवव्यतिरिक्तत्वेन परतरभवस्यापि परभवत्वात्, ह्रस्वतानिर्देशश्चेह सर्वत्र प्राकृतत्वादिति प्रश्नः, निर्वचनमपि सुगमं, नवरम् 'इहभविए' त्ति ऐहभविकं यदिहाधीतं नानन्तरभवेऽनुयाति, पारभविकं यदनन्तरभवेऽनुयाति, तदुभयभविकं तु यदिहाधीतं पर-भवे परतरभवे चानुवर्त्तत इति। 'दंसणंपि एवमेव'त्ति, दर्शनमिह सम्यक्त्वमवसेयं, मोक्षमार्गाधिकारात्, यदाह— "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" (तत्त्वा० अ–१ सू–१), यत्र तु ज्ञानदर्शनयोरेव ग्रहणं स्यात्तत्र दर्शनं सामा-न्यावबोधरूपमवसेयमिति, 'एवमेवे'ति ज्ञानवत् प्रश्ननिर्वचनाभ्यां समवसेयं, चारित्रसूत्रे निर्वचने विशेषः, तथाहि–चारि-त्रमैहभविकमेव, न हि चारित्रवानिह भूत्वा तेनैव चारित्रेण पुनश्चारित्री भवति, यावज्जीवताऽवधिकत्वात्तस्य, किञ्च– चारित्रिणः संसारे सर्वविरतस्य देशविरतस्य च देवेष्वेवोत्पादात् तत्र च विरतेरत्यन्तमभावात् मोक्षगतावपि चारित्र-संभवाभावात्, चारित्रं हि कर्मक्षपणायानुष्ठीयते मोक्षे च तस्याकिञ्चित्करत्वात् यावज्जीवमिति प्रतिज्ञासमाप्तेः तदन्य-स्याश्चाग्रहणाद् अनुष्ठानरूपत्वात् चारित्रस्य शरीराभावे च तदयोगाद्, अत एवोच्यते–'सिद्धे नोचरित्ती नोअचरित्ती' 'नो अचरित्ती'ति चाविरतेरभावादिति। अनन्तरं चारित्रमुक्तं, तच्च द्विधा तपःसंयमभेदादिति, तयोर्निरूपणायातिदेश-

१ शतके ऐहभविक-ज्ञानादिः सू १७

॥ ३३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

माह–'एवं तवे संजमे'त्ति प्रश्ननिर्वचनाभ्यां चारित्रवत्तपःसंयमौ वाच्यौ, चारित्ररूपत्वात्तयोरिति। ननु सत्यपि ज्ञानादेर्मोक्षहेतुत्वे दर्शन एव यतितव्यं, तस्यैव मोक्षहेतुत्वात्, यदाह–"भट्ठेण चरित्ताओ सुट्ठुयरं दंसणं गहेयव्वं। सिज्झंति चरणरहिया दंसणरहिया न सिज्झंति ॥ १ ॥"[1] इति यो मन्यते तं शिक्षयितुं प्रश्नयन्नाह—

असंवुडे णं भंते ! अणगारे किं सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ?, गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे। से केणट्ठेणं जाव नो अंतं करेइ ?, गोयमा ! असंवुडे अणगारे आउयवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ सिढिलबंधणबद्धाओ धणियबंधणबद्धाओ पकरेइ हस्सकालट्ठिइयाओ दीहकालट्ठिइयाओ पकरेइ मंदाणुभावाओ तिव्वाणुभावाओ पकरेइ अप्पपएसग्गाओ बहुप्पएसग्गाओ पकरेइ आउयं च णं कम्मं सिय बंधइ सिय नो बंधइ अस्सायावेयणिज्जं च णं कम्मं भुज्जो भुज्जो उवचिणाइ अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरियट्टइ, से एएणट्ठेणं गोयमा ! असंवुडे अणगारे णो सिज्झइ ५। संवुडे णं भंते ! अणगारे सिज्झइ ५ ?, हंता सिज्झइ जाव अंतं करेइ, से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! संवुडे अणगारे आउयवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ धणियबंधणबद्धाओ सिढिलबंधणबद्धाओ पकरेइ दीहकालट्ठिइयाओ हस्सकालट्ठिइयाओ पकरेइ तिव्वाणुभावाओ मंदाणुभावाओ पकरेइ बहुप्पएसग्गाओ अप्पपएसग्गाओ पकरेइ, आउयं च णं कम्मं न बंधइ, अस्सायावेयणिज्जं च णं कम्मं नो भुज्जो भुज्जो उवचिणाइ, अणाइयं च णं

१ चारित्राद्भ्रष्टेनापि दर्शनं सुष्ठुतरं गृहीतव्यम्। चरणरहिताः सिध्यन्ति दर्शनरहिता न सिध्यन्ति ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥ १४ ॥

अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं वीइवयइ, से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुचइ–संवुडे अणगारे सिज्झइ जाव अंतं करेइ ॥ (सू० १८)

'असंवुडे ण'मित्यादि व्यक्तं, नवरम् 'असंवुडे णं'ति 'असंवृतः' अनिरुद्धाश्रवद्वारः 'अणगारे'त्ति अविद्यमानगृहः, साधुरित्यर्थः 'सिज्झइ'त्ति 'सिध्यति' अवासचरमभवतया सिद्धिगमनयोग्यो भवति 'बुज्झइ'त्ति स एव यदा समुत्पन्नकेवलज्ञानतया स्वपरपर्यायोपेताञ्निखिलान् जीवादिपदार्थान् जानाति तदा बुध्यत इति व्यपदिश्यते 'मुचइ'त्ति स एव संजातकेवलबोधो भवोपग्राहिकर्म्मभिः प्रतिसमयं विमुच्यमानो मुच्यत इत्युच्यते 'परिनिव्वाइ'त्ति स एव तेषां कर्मपुद्गलानामनुसमयं यथा यथा क्षयमाप्नोति तथा तथा शीतीभवन् परिनिर्वातीति प्रोच्यते 'सव्वदुक्खाणमंतं करेइ'त्ति स एव चरमभवायुषोऽन्तिमसमये क्षपिताशेषकर्मांशः सर्वदुःखानामन्तं करोतीति भण्यते इति प्रश्नः, उत्तरं तु कण्ठ्यं, नवरं 'नो इणट्ठे समट्ठे'त्ति 'नो' नैव 'इणट्ठे'त्ति 'अयम्' अनन्तरोक्तत्वेन प्रत्यक्षः 'अर्थः' भावः 'समर्थः' बलवान्, वक्ष्यमाणदूषणमुद्गरप्रहारजर्जरितत्वात्, 'आउयवज्जाओ'त्ति यस्मादेकत्र भवग्रहणे सकृदेवान्तर्मुहूर्त्तमात्रकाले एवायुषो बन्धस्तत उक्तमायुर्वर्जा इति 'सिढिलबंधणबद्धाओ'त्ति श्लथबन्धनं–स्पृष्टता वा बद्धता वा निधत्तता वा तेन बद्धाः–आत्मप्रदेशेषु संबन्धिताः पूर्वावस्थायामशुभतरपरिणामस्य कथञ्चिद्भावादिति शिथिलबन्धनबद्धाः, एताश्चाशुभा एव द्रष्टव्याः, असंवृतभावस्य निन्दाप्रस्तावात्, ताः किमित्याह—'धणियबंधणबद्धाओ पकरेंति'त्ति गाढतरबन्धना बद्धावस्था वा निधत्तावस्था वा निकाचिता वा 'प्रकरोति' प्रशब्दस्यादिकर्मार्थत्वात्कर्त्तुमारभते, असंवृतत्वस्याशुभयोगरूपत्वेन

१ शतके असंवृतेतर-सिद्ध्यादिः सू १८

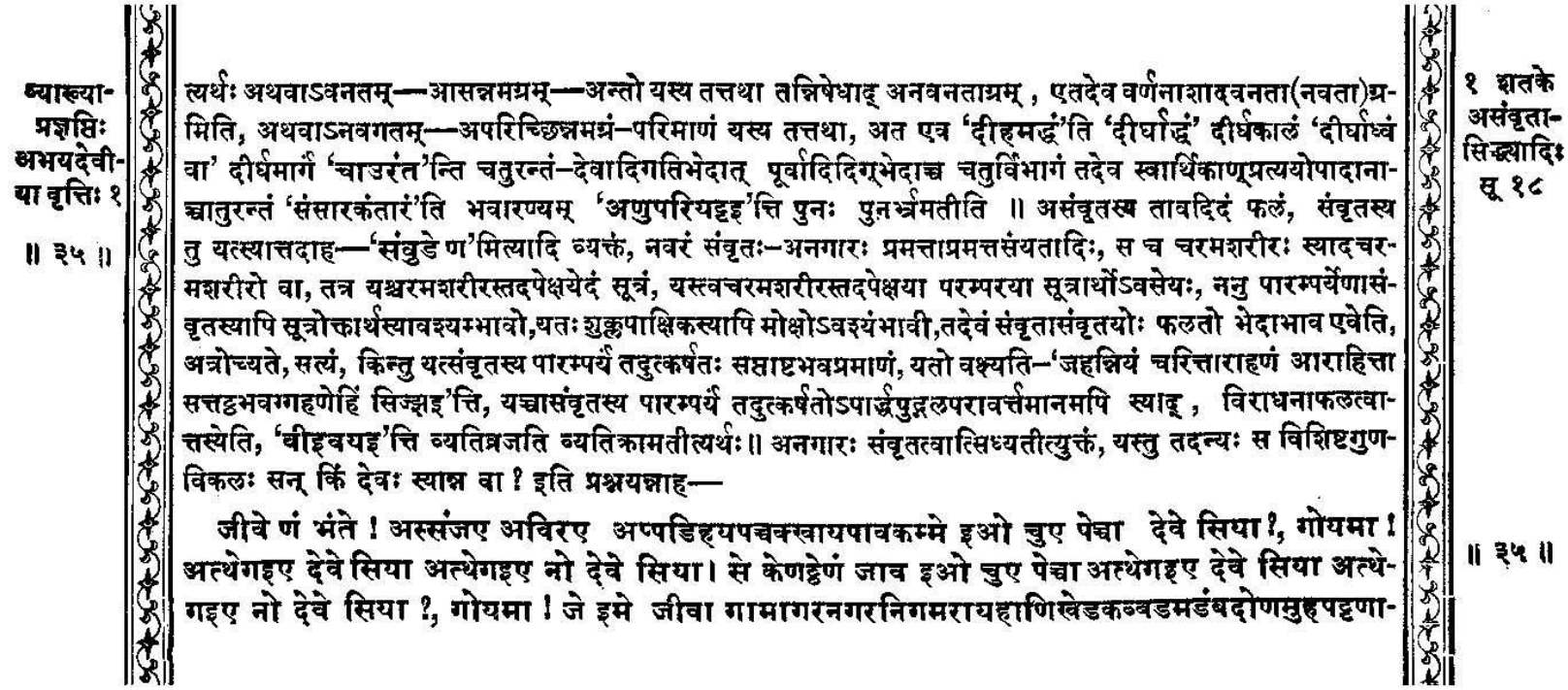
॥ १४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गाढतरप्रकृतिबन्धहेतुत्वात् , आह च—"जोगा पयडिपएसं"ति, पौनःपुन्यभावे त्वसंवृतत्वस्य ताः करोत्येवेति, तथा ह्रस्वकालस्थितिका दीर्घकालस्थितिकाः प्रकरोति, तत्र स्थितिः–उपात्तस्य कर्म्मणोऽवस्थानं तामल्पकालां महतीं करोतीत्यर्थः, असंवृतत्वस्य कषायरूपत्वेन स्थितिबन्धहेतुत्वात् , आह च—"ठिईमणुभागं कसायओ कुणइ"त्ति । तथा 'मंदाणुभावे-' त्यादि, इहानुभावो विपाको रसविशेष इत्यर्थः, ततश्च मन्दानुभावाः–परिपेलवरसाः सतीर्गाढरसाः प्रकरोति, असंवृत-त्वस्य कषायरूपत्वादेव अनुभागबन्धस्य च कषायप्रत्ययत्वादिति, 'अप्पपएसे'त्यादि, अल्पं–स्तोकं प्रदेशाग्रं–कर्म-दलिकपरिमाणं यासां ताः तथा ता बहुप्रदेशाग्राः प्रकरोति, प्रदेशबन्धस्यापि योगप्रत्ययत्वाद्, असंवृतत्वस्य च योग-रूपत्वादिति, 'आउयं चे'त्यादि, आयुः पुनः कर्म्म स्यात् कदाचिद्बध्नाति स्यात् कदाचिद् न बध्नाति, यस्मात्त्रिभागा-द्यवशेषायुषः परभवायुः प्रकुर्वन्ति, तेन यदा त्रिभागादिस्तदा बध्नाति, अन्यदा न बध्नातीति, तथा 'असाए'त्यादि असातवेदनीयं च–दुःखवेदनीयं कर्म पुनः 'भूयो भूयः' पुनः पुनः 'उपचिनोति' उपचितं करोति , ननु कर्मसङ्गकान्तवर्त्ति-त्वादसातवेदनीयस्य पूर्वोक्तविशेषणेभ्य एव तदुपचयप्रतिपत्तेः किमेतद्ग्रहणेन ? इति,अत्रोच्यते, असंवृतोऽत्यन्तदुःखितो भव-तीति प्रतिपादनेन भयजननादसंवृतत्वपरिहारार्थमिदमित्यदुष्टमिति, 'अणाइयं'ति अविद्यमानादिकम् अज्ञातिकं वा–अवि-द्यमानस्वजनम् ऋणं–वाऽतीतम् ऋणजन्यदुःस्थताऽतिक्रान्तं दुःस्थतानिमित्ततयेति ऋणातीतम् , अणं वाऽणकं–पापमति-शयेनेतं–गतमणातीतम् , 'अणवयग्गं'ति, 'अवयग्गं'ति देशीवचनोऽन्तवाचकस्ततस्तन्निषेधाद् अणवयग्गम् , अनन्तमि-

१ योगात्प्रकृतिप्रदेशबन्धौ ॥ २ कषायतः स्थित्यनुभागबन्धं करोति ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥ ३५ ॥

त्यर्थः अथवाऽवनतम्—आसन्नमग्रम्—अन्तो यस्य तत्तथा तन्निषेधाद् अनवनताग्रम् , एतदेव वर्णनाशादवनता(नवता)ग्र-मिति, अथवाऽनवगतम्—अपरिच्छिन्नमग्रं–परिमाणं यस्य तत्तथा, अत एव 'दीहमद्धं'ति 'दीर्घाद्धं' दीर्घकालं 'दीर्घाध्वं वा' दीर्घमार्गं 'चाउरंत'न्ति चतुरन्तं–देवादिगतिभेदात् पूर्वादिदिग्भेदाच्च चतुर्विभागं तदेव स्वार्थिकाणूप्रत्ययोपादाना-च्चातुरन्तं 'संसारकंतारं'ति भवारण्यम् 'अणुपरियट्टइ'त्ति पुनः पुनर्भ्रमतीति ॥ असंवृतस्य तावदिदं फलं, संवृतस्य तु यत्स्यात्तदाह—'संवुडे ण'मित्यादि व्यक्तं, नवरं संवृतः–अनगारः प्रमत्ताप्रमत्तसंयतादिः, स च चरमशरीरः स्यादचर-मशरीरो वा, तत्र यश्चरमशरीरस्तदपेक्षयेदं सूत्रं, यस्त्वचरमशरीरस्तदपेक्षया परम्परया सूत्रार्थोऽवसेयः, ननु पारम्पर्येणासं-वृतस्यापि सूत्रोक्तार्थस्यावश्यम्भावो,यतः शुक्लपाक्षिकस्यापि मोक्षोऽवश्यंभावी,तदेवं संवृतासंवृतयोः फलतो भेदाभाव एवेति, अत्रोच्यते, सत्यं, किन्तु यत्संवृतस्य पारम्पर्यं तदुत्कर्षतः सप्ताष्टभवप्रमाणं, यतो वक्ष्यति–'जहन्नियं चरित्ताराहणं आराहित्ता सत्तट्ठभवग्गहणेहिं सिज्झइ'त्ति, यच्चासंवृतस्य पारम्पर्यं तदुत्कर्षतोऽपार्द्धपुद्गलपरावर्त्तमानमपि स्याद् , विराधनाफलत्वा-त्तस्येति, 'वीइवयइ'त्ति व्यतिव्रजति व्यतिक्रामतीत्यर्थः॥ अनगारः संवृतत्वात्सिध्यतीत्युक्तं, यस्तु तदन्यः स विशिष्टगुण-विकलः सन् किं देवः स्यान्न वा ? इति प्रश्नयन्नाह—

१ शतके असंवृता-सिद्ध्यादिः सू १८

जीवे णं भंते ! असंजए अविरए अप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्मे इओ चुए पेच्चा देवे सिया ?, गोयमा ! अत्थेगइए देवे सिया अत्थेगइए नो देवे सिया। से केणट्ठेणं जाव इओ चुए पेच्चा अत्थेगइए देवे सिया अत्थे-गइए नो देवे सिया ?, गोयमा ! जे इमे जीवा गामागरनगरनिगमरायहाणिखेडकव्वडमडंबदोणमुहपट्टणा-

॥ ३५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समसन्निवेसेसु अकामतण्हाए अकामछुहाए अकामबंभचेरवासेणं अकामसीतातवदंसमसगअण्हाणगसेयजल्लमलपंकपरिदाहेणं अप्पतरं वा भुज्जतरं वा कालं अप्पाणं परिकिलेसंति अप्पाणं परिकिलेसित्ता कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु वाणमंतरेसु देवलोगेसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति ॥ केरिसाणं भंते ! तेसिं वाणमंतराणं देवाणं देवलोगा पण्णत्ता ?, गोयमा ! से जहानामए–इहं मणुस्सलोगंमि असोगवणे इ वा सत्तवन्नवणे इ वा चंपयवणे इ वा चूयवणे इ वा तिलगवणे इ वा लाउयवणे इ वा निग्गोयवणे इ वा छत्तोववणे इ वा असणवणे इ वा सणवणे इ वा अयसिवणे इ वा कुसुंभवणे इ वा सिद्धत्थवणे इ वा बंधुजीवगवणे इ वा णिचं कुसुमियमाइयलवइयथवइयगुलइयगुच्छियजमलियजुवलियविणमियपणमियसुविभत्तपिंडिमंजरिवडेंसगधरे सिरीए अतीव अतीव उवसोभेमाणे उवसोभेमाणे चिट्ठइ, एवामेव तेसिं वाणमंतराणं देवाणं देवलोगा जहन्नेणं दसवाससहस्सट्ठितीएहिं उक्कोसेणं पलिओवमट्ठितीएहिं बहूहिं वाणमंतरेहिं देवेहिं तद्देवीहि य आइण्णा वितिकिण्णा उवत्थडा संथडा फुडा अवगाढगाढसिरीए अतीव अतीव उवसोभेमाणा चिट्ठंति, एरिसगाणं गोयमा ! तेसिं वाणमंतराणं देवाणं देवलोगा पण्णत्ता, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–जीवे णं असंजए जाव देवे सिया । सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति वंदइत्ता नमंसइत्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरति ॥ (सू० १९) ॥

॥ पढमे सए पढमो उद्देसो समत्तो ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ३६ ॥

'जीवे ण'मित्यदि व्यक्तं, नवरम् 'असंजए'त्ति असाधुः संयमरहितो वा, 'अविरए'त्ति प्राणातिपातादिविरतिरहितः विशेषेण वा तपसि रतो यो न भवति सोऽविरतः, 'अप्पडिहए'त्यादि, प्रतिहतं–निराकृतमतीतकालकृतं निन्दादिकरणेन प्रत्याख्यातं च वर्जितमनागतकालविषयं पापकर्म–प्राणातिपातादि येन स प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा तन्निषेधादप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा, अनेनातीतानागतपापकर्मानिषेध उक्तः, असंयतोऽविरतश्चेत्यनेन वर्त्तमानपापासंवरणमभिहितम्, अथवा 'न' नैव 'प्रतिहतं' तपोविधानेन मरणकालाद् आरात्क्षपितं प्रत्याख्यातं च मरणकालेऽप्याश्रवनिरोधेन पापकर्म येन स तथा, अथवा 'न' नैव प्रतिहतं सम्यग्दर्शनप्रतिपत्तितः प्रत्याख्यातं च सर्वविरत्यङ्गीकरणतः पापकर्म–ज्ञानावरणाद्यशुभं कर्म येन स तथा, 'इओ'त्ति इतः प्रज्ञापकप्रत्यक्षात्तिर्यग्भवान्मनुष्यभवाद्वा च्युतो–भ्रूतः 'पेच्च'त्ति जन्मान्तरे देवः स्यात् ? इति प्रश्नः, 'जे इमे जीवे'त्ति ये इमे प्रत्यक्षासन्नाः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो मनुष्या वा 'गामे'त्यादि ग्रामादिष्वधिकरणभूतेषु, तत्र ग्रामो–जनपदप्रायजनाश्रितः स्थानविशेषः, आकरो लोहाद्युत्पत्तिस्थान नकरं–कररहितं निगमो–वणिग्जनप्रधानं स्थानं राजधानी–यत्र राजा स्वयं वसति खेटं–धूलिप्राकारं कर्वटं–कुनगरं मडम्बं–सर्वतो दूरवर्त्ति सन्निवेशान्तरं द्रोणमुखं–जलपथस्थलपथोपेतं पत्तनं–विविधदेशागतपण्यस्थानं, तच्च द्विधा–जलपत्तनं स्थलपत्तनं चेति, रत्नभूमिरित्यन्ये, आश्रमं–तापसादिस्थानं सन्निवेशो–घोषादिः, एषां द्वन्द्वस्ततस्तेषु, अथवा ग्रामादयो ये सन्निवेशास्ते तथा तेषु 'अकामतण्हाए'त्ति अकामानां–निर्जराद्यनभिलाषिणां सतां तृष्णा–तृड् अकामतृष्णा तया, एवमकामक्षुधा, 'अकामबंभचेरवासेणं'ति अकामानां–निर्जराद्यनभिलाषिणां सताम् अकामो वा–निरभिप्रायो ब्रह्मचर्येण–

१ शतके असंयतदेवत्वं सू १९

॥ ३६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्त्र्यादिपरिभोगाभावमात्रलक्षणेन वासो–रात्रौ शयनमकामब्रह्मचर्यवासोऽतस्तेन, 'अकामअण्हाणगसेयजल्लमलपंकपरिदाहेणं'ति अकामा येऽस्नानकादयस्तेभ्यो यः परिदाहः स तथा तेन, तत्र स्वेदः–प्रस्वेदः याति च लगति चेति जल्लो–रजोमात्रं मलः–कठिनीभूतं रज एव पङ्को–मल एव स्वेदेनार्द्रीभूत इति, 'अप्पतरो वा भुज्जतरो वा कालं'ति प्राकृतत्वेन विभक्तिविपरिणामादल्पतरं वा भूयस्तरं वा बहुतरं कालं यावत्, वाशब्दौ देवत्वं प्रत्यल्पेतरकालयोः समताऽभिधानार्थौ, केवलं देवत्वे सामान्यतः सत्यपि अल्पतरकालमकामनिर्जरावतामविशिष्टं तत्स्याद् इतरेषां तु विशिष्टमिति, 'अप्पाणं परिकिलेसंति'त्ति विबाधयन्ति, 'कालमासे'त्ति कालो–मरणं तस्य मासः–प्रक्रमादवसरः कालमासस्तत्र 'कालं किच्च'त्ति मृत्वा 'वाणमंतरेसु'त्ति वनान्तरेषु–वनविशेषेषु भवा अवर्णागमकरणाद् वानमन्तराः, अन्ये त्वाहुः–वनेषु भवा वानास्ते च ते व्यन्तराश्चेति वानव्यन्तरास्तेषामेते वानमन्तरा वानव्यन्तरा वाऽतस्तेषु 'देवलोकेषु' देवाश्रयेषु 'देवत्ताए उववत्तारो भवंति'त्ति ये इमे इत्यत्र यच्छब्दोपादानात्ते देवतयोपपत्तारो भवन्तीति द्रष्टव्यम् ॥ 'तेसिं'ति ये देवलोकेष्वकामनिर्जरावन्तो देवतयोत्पद्यन्ते तेषामिति 'से जहानामए'त्ति 'से'त्ति अथ 'यथा' येन प्रकारेण नामेति संभावने वाक्यालङ्कारे वा 'ए' इत्यामन्त्रणार्थोऽलङ्कारार्थ एव वा 'इहं'ति इह मर्त्यलोके 'असोगवणे इ व'त्ति अशोकवनम्, इतिशब्द उपप्रदर्शने, अनुस्वारलोपः सन्धिश्च प्राकृतत्वात्, 'वा' इति विकल्पार्थः, अथवा 'असोगवणे' इत्यत्र प्रथमैकवचनकृत एकारः, इवशब्दस्तु वाक्यालङ्कारे, अशोकादयस्तु प्रसिद्धा एव नवरं 'सत्तवन्न'त्ति सप्तपर्णः सप्तच्छद इत्यर्थः 'कुसुमिय'त्ति संजातकुसुमं 'माइय'त्ति मयूरितं संजातपुष्पविशेषमित्यर्थः, 'लवइय'त्ति लव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कितं संजातपल्लवलवमङ्कुरवदित्यर्थः, 'थवइय'त्ति स्तबकितं संजातपुष्पस्तबकमित्यर्थः, 'गुलइय'त्ति संजातगुल्मकं, गुल्मं च लतासमूहः, 'गुच्छिय'त्ति संजातगुच्छं, गुच्छश्च पत्रसमूहः, यद्यपि च स्तबकगुच्छयोरविशेषो नामकोशेऽधीतस्तथाऽपीह पुष्पपत्रकृतो विशेषो भावनीयः, 'जमलिय'त्ति यमलतया–समश्रेणितया तत्तरूणां व्यवस्थितत्वात् संजातयमलत्वेन यमलितं, 'जुवलिय'त्ति युगलतया तत्तरूणां संजातत्वेन युगलितं, 'विणमिय'त्ति विशेषेण पुष्पफलभरेण नमितमितिकृत्वा विनमितं, 'पणमिय'त्ति तेनैव नमयितुमारब्धत्वात्प्रणमितं प्रशब्दस्यादिकर्मार्थत्वादिति, तथा 'सुविभत्ता' अतिविभक्ताः सुनिष्पन्नतया पिण्ड्यो–लुम्ब्यो मञ्जर्यश्च प्रतीतास्ता एवावतंसका–शेखरकास्तान् धारयति यत्तत्सुविभक्तपिण्डीमञ्जर्यवतंसकधरं, ततः कुसुमितादीनां कर्मधारय इति, 'सिरीए'त्ति श्रिया–वनलक्ष्म्या 'उवसोभेमाणे२'त्ति इह द्विर्वचनमाभीक्ष्ण्ये भृशत्वे इत्यर्थः, 'आइन्न'त्ति क्वचित्प्रदेशे देवानां देवीनां च वृन्दैरात्मीयात्मीयावा§§समर्यादानुल्लङ्घनेन व्याप्ताः, आङ्शब्दोऽत्र मर्यादावृत्तिः, तथा क्वचित्तु 'विइइन्न'त्ति तैरेव वृन्दैर्निजावाससीमोल्लङ्घनेन व्याप्ताः, विशब्दो विशेषवाची, 'उवत्थड'त्ति उपस्तीर्णाः, उपशब्दः सामीप्यार्थः, स्तृञ् च आच्छादनार्थस्ततश्चोत्पतद्भिर्निपतद्भिश्चानवरतक्रीडासक्तैरुपर्युपरि च्छादिताः, 'संथड'त्ति संस्तीर्णाः, संशब्दः परस्परसंश्लेषार्थः, ततश्च क्वचित्तैरेव क्रीडमानैरन्योऽन्यस्पर्द्धया समन्ततश्चलद्भिराच्छादिता इति, 'फुड'त्ति 'स्पृष्टाः' आसनशयनरमणपरिभोगद्वारेण परिभुक्ताः स्फुटा वा–प्रकाशा व्यन्तरसुरनिकरकिरणविसरनिराकृतान्धकारतया, 'अवगाढगाढ'त्ति गाढं–बाढमवगाढास्तैरेव सकलक्रीडास्थानपरिभोगनिहितमनोभिरधोऽपि व्याप्ताः, गाढावगाढा इति वाच्ये प्राकृतत्वादवगाढगाढाः, इह च देवत्वयोग्यस्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवस्याभिधानेन तदयोग्यः सामर्थ्यादवसीयत एवेति 'अत्थेगइए नो देवे सिया' इत्येतस्यादावुक्तस्य पक्षस्य निर्वचनं कृतं द्रष्टव्यमिति ॥ अथोद्देशकनिगमनार्थमाह—'सेवं भंते सेवं भंते'त्ति, यन्मया पृष्टं तद्भगवद्भिः प्रतिपादितं तदेवमित्थमेव भदन्त ! नान्यथा, अनेन भगवद्वचने बहुमानं दर्शयति, द्विर्वचनं चेह भक्तिसंभ्रमकृतमिति, एवं कृत्वा भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति चेति ॥

॥ प्रथमशते प्रथमोद्देशकविवरणं समाप्तमिति ॥

व्याख्यातः प्रथमोद्देशकः, अथ द्वितीय आरभ्यते, अस्य चैवं संबन्धः–प्रथमोद्देशके चलनादिधर्मकं कर्म्म कथितं तदेवेह निरूप्यते, तथोद्देशकार्थसङ्ग्रहिण्यां 'दुक्खे'त्ति यदुक्तं तदिहोच्यते, तत्प्रस्तावनार्थं च पूर्वोक्तमेव ग्रन्थं स्मरन्नाह—

रायगिहे नगरे समोसरणं, परिसा निग्गया जाव एवं वयासी–जीवे णं भंते ! सयंकडं दुक्खं वेदेइ ?, गोयमा ! अत्थेगइयं वेएइ अत्थेगइयं नो वेएइ, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—अत्थेगइयं वेदेइ अत्थेगइयं नो वेएइ ?, गोयमा ! उदिन्नं वेएइ अणुदिन्नं नो वेएइ, से तेणट्ठेणं एवं वुच्चइ–अत्थेगइयं वेएइ अत्थेगतियं नो वेएइ, एवं चउव्वीसदंडएणं जाव वेमाणिए ॥ जीवा णं भंते ! सयंकडं दुक्खं वेएन्ति ?, गोयमा ! अत्थेगइयं वेयन्ति अत्थेगइयं णो वेयन्ति, से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! उदिन्नं वेयन्ति नो अणुदिन्नं वेयन्ति, से तेणट्ठेणं, एवं जाव वेमाणिया ॥ जीवे णं भंते ! सयंकडं आउयं वेएइ ? गोयमा ! अत्थेगइयं वेएइ अत्थेगइयं नो वेएइ जहा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र प्रथम-शतके प्रथमो उद्देशकः समाप्तः

अथ प्रथम-शतके द्वितीय-उद्देशकः आरब्धः

दुक्खेणं दो दंडगा तहा आउएणवि दो दंडगा एगत्तपुहुत्तिया, एगत्तेणं जाव वेमाणिया पुहुत्तेणवि तहेव ॥ (सू० २०)

'रायगिहे'इत्यादि पूर्ववत्, 'जीवे ण'मित्यादि तत्र 'सयंकडं दुक्खं'ति यत्परकृतं तन्न वेदयतीति प्रतीतमेवातः स्वयंकृतमिति पृच्छति स्म 'दुक्खं'ति सांसारिकं सुखमपि वस्तुतो दुःखमिति दुःखहेतुत्वाद् 'दुःखं' कर्म वेदयतीति, काकुपाठात् प्रश्नः, निर्वचनं तु यदुदीर्णं तद्वेदयति, अनुदीर्णस्य हि कर्मणो वेदनमेव नास्ति तस्मादुदीर्णं वेदयति नानुदीर्णं, न च बन्धानन्तरमेवोदेति अतोऽवश्यं वेद्यमप्येकं वेदयत्येकं न वेदयति इत्येवं व्यपदिश्यते, अवश्यं वेद्यमेव च कर्म "कँडाण कम्माण ण मोक्खो अत्थि" इति वचनादिति । एवं 'जाव वेमाणिए' इत्यनेन चतुर्विंशतिदण्डकः सूचितः, स चैवम्–'नेरइए णं भंते ! सयंकड'मित्यादि । एवमेकत्वेन दण्डकः, तथा बहुत्वेनान्यः, स चैवम्—'जीवा णं भंते ! सयंकडं दुक्खं वेदेंती'त्यादि तथा 'नेरइया णं भंते ! सयंकडं दुक्ख'मित्यादि, नन्वेकत्वे योऽर्थो बहुत्वेऽपि स एवेति किं बहुत्वप्रश्नेन ? इति, अत्रोच्यते, क्वचिद्वस्तुनि एकत्वबहुत्वयोरर्थविशेषो दृष्टो यथा सम्यक्त्वादेः एकं जीवमाश्रित्य षट्षष्टिसागरोपमाणि साधिकानि स्थितिकाल उक्तो नानाजीवानाश्रित्य पुनः सर्वाद्धा इति, एवमत्रापि संभवेदिति शङ्कायां बहुत्वप्रश्नो न दुष्टः अव्युत्पन्नमतिशिष्यव्युत्पादनार्थत्वाद्वेति ॥ अथायुःप्रधानत्वान्नारकादिव्यपदेशस्यायुराश्रित्य दण्डकद्वयम्—एतस्य चेयं वृद्धोक्तभावना–यदा सप्तमक्षितावायुर्बद्धं पुनश्च कालान्तरे परिणामविशेषात्तृती-

१ कृतानां कर्मणां मोक्षो नैवास्ति ॥

॥ ३८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यधरणीप्रायोग्यं निर्वर्त्तितं वासुदेवेनेव तत्तादृशमङ्गीकृत्योच्यते–पूर्वबद्धं कश्चिन्न वेदयति, अनुदीर्णत्वात्तस्य, यदा पुनर्यत्रैव बद्धं तत्रैवोत्पद्यते तदा वेदयतीत्युच्यते, तथैव तस्योदितत्वादिति ॥ अथ चतुर्विंशतिदण्डकमाहारादिभिर्निरूपयन्नाह—

नेरइया णं भंते ! सव्वे समाहारा सव्वे समसरीरा सव्वे समुस्सासनीसासा ?, गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुचइ–नेरइया नो सव्वे समाहारा नो सव्वे समसरीरा नो सव्वे समुस्सासनिस्सासा ?, गोयमा ! नेरइया दुविहा पन्नत्ता, तंजहा–महासरीरा य अप्पसरीरा य, तत्थ णं जे ते महासरीरा ते बहुतराए पोग्गले आहारेंति बहुतराए पोग्गले परिणामेंति बहुतराए पोग्गले उस्ससंति बहुतराए पोग्गले नीससंति अभिक्खणं आहारेंति अभिक्खणं परिणामेंति अभिक्खणं ऊससंति अभिक्खणं नी०, तत्थ णं जे ते अप्पसरीरा ते णं अप्पतराए पुग्गले आहारेंति अप्पतराए पुग्गले परिणामेंति अप्पतराए पोग्गले उस्ससंति अप्पतराए पोग्गले नीससंति आहच्च आहारेंति आहच्च परिणामेंति आहच्च उस्ससंति आहच्च नीससंति, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुचइ–नेरइया नो सव्वे समाहारा जाव नो सव्वे समुस्सासनिस्सासा ॥ नेरइया णं भंते ! सव्वे समकम्मा ?, गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! नेरइया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–पुव्वोववन्नगा य पच्छोववन्नगा य, तत्थ णं जे ते पुव्वोववन्नगा ते णं अप्पकम्मतरागा, तत्थ णं जे ते पच्छोववन्नगा ते णं महाकम्मतरागा, से तेणट्ठेणं गोयमा !० ॥ नेर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इया णं भंते ! सव्वे समवन्ना ?, गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठेणं तहेव ? गोयमा ! जे ते पुव्वोववन्नगा ते णं विसुद्धवन्नतरागा, तत्थ णं जे ते पच्छोववन्नगा ते णं अविसुद्धवन्नतरागा तहेव से तेणट्ठेणं एवं० ॥ नेरइया णं भंते ! सव्वे समलेस्सा ?, गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठेणं जाव नो सव्वे समलेस्सा ?, गोयमा ! नेरइया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–पुव्वोववन्नगा य पच्छोववन्नगा य, तत्थ णं जे ते पुव्वोववन्नगा ते णं विसुद्धलेस्सतरागा, तत्थ णं जे ते पच्छोववन्नगा ते णं अविसुद्धलेस्सतरागा, से तेणट्ठेणं० ॥ नेरइया णं भंते ! सव्वे समवेयणा ?, गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! नेरइया दुविहा पन्नत्ता, तंजहा–सन्निभूया य असन्निभूया य, तत्थ णं जे ते सन्निभूया ते णं महावेयणा, तत्थ णं जे ते असन्निभूया ते णं अप्पवेयणतरागा, से तेणट्ठेणं गोयमा !० ॥ नेरइया सव्वे समकिरिया ?, गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! नेरइया तिविहा पण्णत्ता, तंजहा–सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छदिट्ठी, तत्थ णं जे ते सम्मदिट्ठी तेसि णं चत्तारि किरियाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—आरंभिया १ परि० २ माया० ३ अप्पच्च० ४, तत्थ णं जे ते मिच्छादिट्ठी तेसि णं पंच किरियाओ कज्जंति–आरंभिया जाव मिच्छादंसणवत्तिया, एवं सम्मामिच्छादिट्ठीणंपि, से तेणट्ठेणं गोयमा !० ॥ नेरइया णं भंते ! सव्वे समाउया सव्वे समोववन्नगा ?, गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! नेरइया चउव्विहा पन्नत्ता, तंजहा–अत्थेगइया समाउया समोववन्नगा १ अत्थेगइया समाउया विसमोववन्नगा २ अत्थेगइया विसमाउया समोववन्नगा ३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्थेगइया विसमाउया विसमोववन्नगा ४ से तेणट्ठेणं गोयमा !० ॥ असुरकुमारा णं भंते ! सव्वे समाहारा सव्वे समसरीरा, जहा नेरइया तहा भाणियव्वा, नवरं कम्मवन्नलेस्साओ परिवण्णेयव्वाओ, पुव्वोववन्नगा महाकम्मतरागा अविसुद्धवन्नतरागा अविसुद्धलेसतरागा, पच्छोववन्नगा पसत्था, सेसं तहेव, एवं जाव थणियकुमाराणं। पुढविक्काइयाणं आहारकम्मवन्नलेस्सा जहा नेरइयाणं ॥ पुढविक्काइया णं भंते ! सव्वे समवेयणा ?, हंता समवेयणा, से केणट्ठेणं भंते ! समवेयणा ?, गोयमा ! पुढविकाइया सव्वे असन्नी असन्निभूया अणिदाए वेयणं वेदेंति से तेणट्ठेणं ॥ पुढविक्काइया णं भंते ! सव्वे समकिरिया ?, हंता समकिरिया, से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! पुढविक्काइया सव्वे माई मिच्छादिट्ठी ताणं णियया ओ पंच किरियाओ कज्जंति, तंजहा–आरंभिया जाव मिच्छादंसणवत्तिया, से तेणट्ठेणं समाउया समोववन्नगा, जहा नेरइया तहा भाणियव्वा, जहा पुढविक्काइया तहा जाव चउरिंदिया। पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहा नेरइया नाणत्तं किरियासु, पंचिंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! सव्वे समकिरिया ?, गो०, णो ति०, सेकेणट्ठेणं, गो० पंचिंदियतिरिक्खजोणिया तिविहा पन्नत्ता, तंजहा–सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी, तत्थ णं जे ते सम्मद्दिट्ठी ते दुविहा पन्नत्ता, तंजहा–अस्संजया य संजयासंजया य, तत्थ णं जे ते संजयासंजया तेसिणं तिन्नि किरियाओ कज्जंति, तंजहा–आरंभिया परिग्गहिया मायावत्तिया, असंजयाणं चत्तारि, मिच्छादिट्ठीणं पंच, सम्मामिच्छादिट्ठीणं पंच, मणुस्सा जहा नेरइया नाणत्तं जे महासरीरा ते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ४० ॥

बहुतराए पोग्गले आहारेंति आहच्च आहारेंति जे अप्पसरीरा ते अप्पतराए आहारेंति अभिक्खणं आहारेंति सेसं जहा नेरइयाणं जाव वेयणा । मणुस्सा णं भंते ! सव्वे समकिरिया ?, गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! मणुस्सा तिविहा पन्नत्ता, तंजहा–सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी, तत्थ णं जे ते सम्मदिट्ठी ते तिविहा पण्णत्ता, तंजहा–संजया अस्संजया संजयासंजया य, तत्थ णं जे ते संजया ते दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–सरागसंजया य वीयरागसंजया य, तत्थ णं जे ते वीयरागसंजया ते णं अकिरिया, तत्थ णं जे ते सरागसंजया ते दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–पमत्तसंजया य अपमत्तसंजया य, तत्थ णं जे ते अप्पमत्तसंजया तेसिणं एगा मायावत्तिया किरिया कज्जइ, तत्थ णं जे ते पमत्तसंजया तेसिणं दो किरियाओ कज्जंति, तं०–आरंभिया य मायावत्तिया य, तत्थ णं जे ते संजयासंजया तेसि णं आइल्लाओ तिन्नि किरियाओ कज्जंति, तंजहा–आरंभिया १ परिग्गहिया २ मायावत्तिया ३, अस्संजयाणं चत्तारि किरियाओ कज्जंति– आरं० १ परि० २ मायावत्ति० ३ अप्पच्च० ४, मिच्छादिट्ठीणं पंच–आरंभि० १ परि० २ माया० ३ अप्पच्च० ४ मिच्छादंसण० ५, सम्मामिच्छदिट्ठीणं पंच ५ । वाणमंतरजोतिसवेमाणिया जहा असुरकुमारा, नवरं वेयणाए नाणत्तं–मायिमिच्छादिट्ठीउववन्नगा य अप्पवेदणतरा अमायिसम्मदिट्ठीउववन्नगा य महावेयणतरागा भाणियव्वा, जोतिसवेमाणिया ॥ सलेस्सा णं भंते ! नेरइया सव्वे समाहारगा ?, ओहिया णं सलेस्साणं सुक्कलेस्साणं, एएसि णं तिण्हं एक्को गमो, कण्हलेस्साणं नीललेस्साणंपि एक्को गमो नवरं वेदणाए

१ शतक उद्देशः २ समशरीरादि सू २१

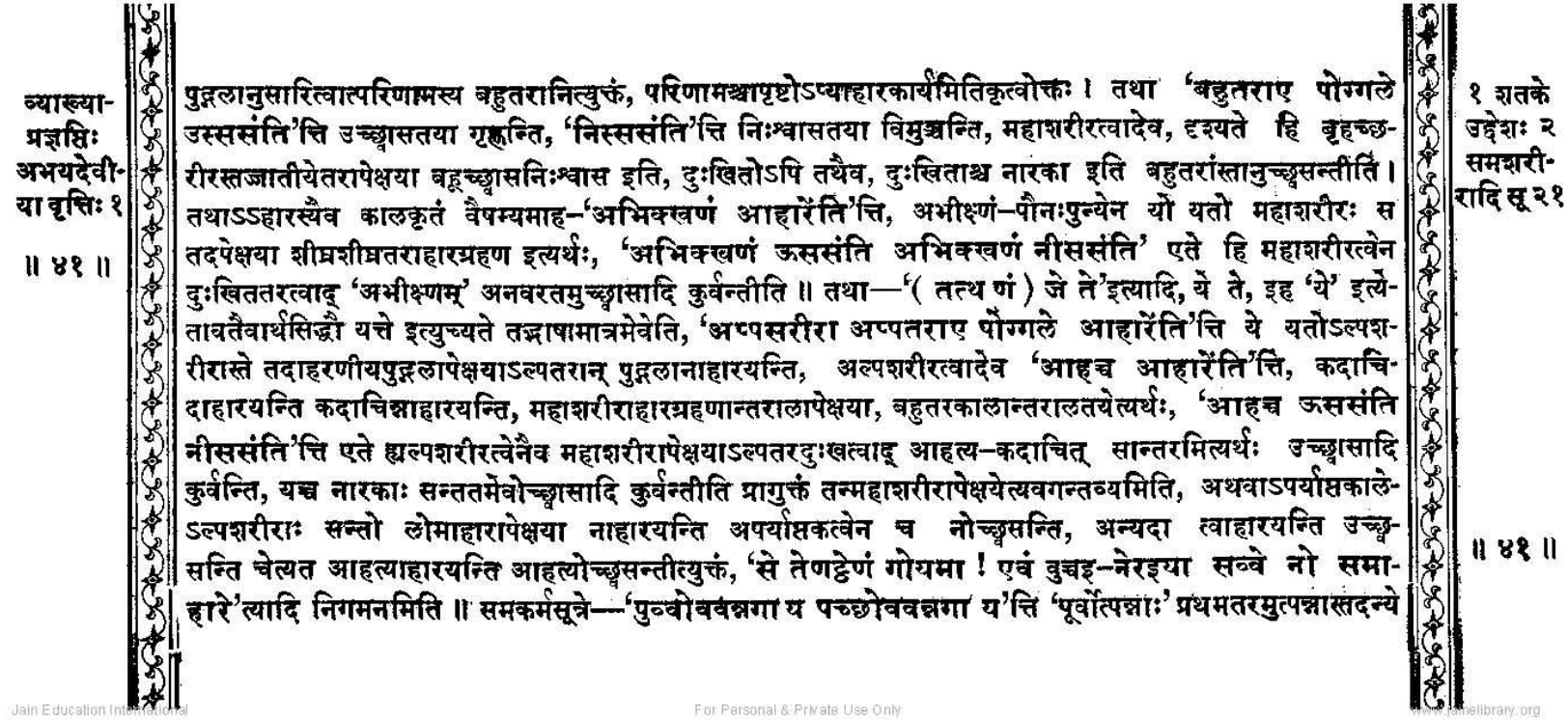
॥ ४० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मायिमिच्छादिट्ठीउववन्नगा य अमायिसम्मदिट्ठीउवव० भाणियव्वा । मणुस्सा किरियासु सरागवीयरागपमत्तापमत्ता ण भाणियव्वा । काउलेसाएवि एसेव गमो, नवरं नेरइए जहा ओहिए दंडए तहा भाणियव्वा, तेउलेस्सा पम्हलेस्सा जस्स अत्थि जहा ओहिओ दंडओ तहा भाणियव्वा नवरं मणुस्सा सरागा वीयरागा य न भाणियव्वा, गाहा–दुक्खाउए उदिन्ने आहारे कम्मवन्नलेस्सा य। समवेयणसमकिरिया समाउए चेव बोद्धव्वा ॥ १ ॥ (सू० २१)

'नेरइए'इत्यादि व्यक्तं, नवरं 'महासरीरा य अप्पसरीरा ये'त्यादि, इहाल्पत्वं महत्त्वं चापेक्षिकं, तत्र जघन्यम्–अल्पत्वमङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रत्वम्, उत्कृष्टं तु महत्त्वं पञ्चधनुःशतमानत्वम्, एतच्च भवधारणीयशरीरापेक्षया, उत्तरवैक्रियापेक्षया तु जघन्यमङ्गुलसङ्ख्यातभागमात्रत्वम्, इतरत्तु धनुःसहस्रमानत्वमिति, एतेन च किं समशरीरा इत्यत्र प्रश्ने उत्तरमुक्तं, शरीरविषमताऽभिधाने सत्याहारोच्छ्वासयोर्वैषम्यं सुखप्रतिपाद्यं भवतीति शरीरप्रश्नस्य द्वितीयस्थानोक्तस्यापि प्रथमं निर्वचनमुक्तम् ॥ अथाहारोच्छ्वासप्रश्नयोर्निर्वचनमाह—'तत्थ ण'मित्यादि ये यतो महाशरीरास्ते तदपेक्षया बहुतरान् पुद्गलान् आहारयन्ति, महाशरीरत्वादेव, दृश्यते हि लोके बृहच्छरीरो बह्वाशी स्वल्पशरीरश्चाल्पभोजी, हस्तिशशकवत्, बाहुल्यापेक्षं चेदमुच्यते, अन्यथा बृहच्छरीरोऽपि कश्चिदल्पमश्नाति अल्पशरीरोऽपि कश्चिद्भूरि भुङ्क्ते, तथाविधमनुष्यवत्, न पुनरेवमिह, बाहुल्यपक्षस्यैवाश्रयणात्, ते च नारका उपपातादिसद्वेद्यानुभवादन्यत्रासद्वेद्योदयवर्त्तित्वेनैकान्तेन यथा महाशरीरा दुःखितास्तीव्राहाराभिलाषाश्च भवन्तीति । 'बहुतराए पोग्गले परिणामेंति'त्ति आहार-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ४१ ॥

पुद्गलानुसारित्वात्परिणामस्य बहुतरानित्युक्तं, परिणामश्चापृष्टोऽप्याहारकार्यमितिकृत्वोक्तः। तथा 'बहुतराए पोग्गले उस्ससंति'त्ति उच्छ्वासतया गृह्णन्ति, 'निस्ससंति'त्ति निःश्वासतया विमुञ्चन्ति, महाशरीरत्वादेव, दृश्यते हि बृहच्छरीरस्तज्जातीयेतरापेक्षया बहूच्छ्वासनिःश्वास इति, दुःखितोऽपि तथैव, दुःखिताश्च नारका इति बहुतरांस्तानुच्छ्वसन्तीति। तथाऽऽहारस्यैव कालकृतं वैषम्यमाह–'अभिक्खणं आहारेंति'त्ति, अभीक्ष्णं–पौनःपुन्येन यो यतो महाशरीरः स तदपेक्षया शीघ्रशीघ्रतराहारग्रहण इत्यर्थः, 'अभिक्खणं ऊससंति अभिक्खणं नीससंति' एते हि महाशरीरत्वेन दुःखिततरत्वाद् 'अभीक्ष्णम्' अनवरतमुच्छ्वासादि कुर्वन्तीति॥ तथा—'(तत्थ णं) जे ते'इत्यादि, ये ते, इह 'ये' इत्येतावतैवार्थसिद्धौ यत्ते इत्युच्यते तद्भाषामात्रमेवेति, 'अप्पसरीरा अप्पतराए पोग्गले आहारेंति'त्ति ये यतोऽल्पशरीरास्ते तदाहरणीयपुद्गलापेक्षयाऽल्पतरान् पुद्गलानाहारयन्ति, अल्पशरीरत्वादेव 'आहच्च आहारेंति'त्ति, कदाचिदाहारयन्ति कदाचिन्नाहारयन्ति, महाशरीराहारग्रहणान्तरालापेक्षया, बहुतरकालान्तरालतयेत्यर्थः, 'आहच्च ऊससंति नीससंति'त्ति एते ह्यल्पशरीरत्वेनैव महाशरीरापेक्षयाऽल्पतरदुःखत्वाद् आहत्य–कदाचित् सान्तरमित्यर्थः उच्छ्वासादि कुर्वन्ति, यच्च नारकाः सन्ततमेवोच्छ्वासादि कुर्वन्तीति प्रागुक्तं तन्महाशरीरापेक्षयेत्यवगन्तव्यमिति, अथवाऽपर्याप्तकालेऽल्पशरीराः सन्तो लोमाहारापेक्षया नाहारयन्ति अपर्याप्तकत्वेन च नोच्छ्वसन्ति, अन्यदा त्वाहारयन्ति उच्छ्वसन्ति चेत्यत आहत्याहारयन्ति आहत्योच्छ्वसन्तीत्युक्तं, 'से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–नेरइया सव्वे नो समाहारे'त्यादि निगमनमिति॥ समकर्मसूत्रे—'पुव्वोववन्नगा य पच्छोववन्नगा य'त्ति 'पूर्वोत्पन्नाः' प्रथमतरमुत्पन्नास्तदन्ये

१ शतके उद्देशः २ समशरीरादि सू २१

॥ ४१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तु पश्चादुत्पन्नाः, तत्र पूर्वोत्पन्नानामायुषस्तदन्यकर्मणां च बहुतरवेदनादल्पकर्मत्वं, पश्चादुत्पन्नानां च नारकाणामायुष्कादीनामल्पतराणां वेदितत्वात् महाकर्म्मत्वम्, एतच्च सूत्रं समानस्थितिका ये नारकास्तानङ्गीकृत्य प्रणीतम्, अन्यथा हि रत्नप्रभायामुत्कृष्टस्थितेर्नारकस्य बहुन्यायुषि क्षयमुपगते पल्योपमावशेषे च तिष्ठति तस्यामेव रत्नप्रभायां दशवर्षसहस्रस्थितिर्नारकोऽन्यः कश्चिदुत्पन्न इतिकृत्वा प्रागुत्पन्नं पल्योपमायुष्कं नारकमपेक्ष्य किं वक्तुं शक्यं महाकर्म्मेति ? ॥ एवं वर्णसूत्रे पूर्वोत्पन्नस्याल्पं कर्म ततस्तस्य विशुद्धो वर्णः, पश्चादुत्पन्नस्य च बहुकर्मत्वादविशुद्धतरो वर्ण इति ॥ एवं लेश्यासूत्रेऽपि, इह च लेश्याशब्देन भावलेश्या ग्राह्याः, बाह्यद्रव्यलेश्या तु वर्णद्वारेणैवोक्तेति ॥ **'समवेयण'**त्ति 'समवेदनाः' समानपीडाः 'सन्निभूय'त्ति सञ्ज्ञा–सम्यग्दर्शनं तद्वन्तः सञ्ज्ञिनः सञ्ज्ञिनो भूताः–सञ्ज्ञित्वं गताः सञ्ज्ञिभूताः, अथवाऽसञ्ज्ञिनः सञ्ज्ञिनो भूताः सञ्ज्ञिभूताः, च्विप्रत्ययलोपात्, मिथ्यादर्शनमपहाय सम्यग्दर्शनजन्मना समुत्पन्ना इत्यावत्, तेषां च पूर्वकृतकर्मविपाकमनुस्मरतामहो महद्दुःखसङ्कटमिदमकस्मादस्माकमापतितं न कृतो भगवदर्हत्प्रणीतः सकलदुःखक्षयकरो विषयविषमविषपरिभोगविप्रलब्धचेतोभिर्द्धर्म इत्यतो महद्दुःखं मानसमुपजायतेऽतो महावेदनास्ते, असञ्ज्ञिभूतास्तु मिथ्यादृष्टयः, ते तु स्वकृतकर्मफलमिदमित्येवमजानन्तोऽनुपतप्तमानसा अल्पवेदनाः स्युरित्येके, अन्ये त्वाहुः–सञ्ज्ञिनः–सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियाः सन्तो भूता–नारकत्वं गताः सञ्ज्ञिभूताः, ते महावेदनाः, तीव्राशुभाध्यवसायेनाशुभतरकर्मबन्धनेन महानरकेषूत्पादात्, असञ्ज्ञिभूतास्त्वनुभूतपूर्वासञ्ज्ञिभवाः, ते चासञ्ज्ञित्वादेवात्यन्ताशुभाध्यवसायाभावा-

१ सायभावात् प्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

॥ ४२ ॥

द्रल्लप्रभायामनतितीव्रवेदननरकेषूत्पादादल्पवेदनाः, अथवा 'सञ्ज्ञिभूताः' पर्याप्तकीभूताः, असञ्ज्ञिनस्तु–अपर्याप्तकाः, ते च क्रमेण महावेदना इतरे च भवन्तीति प्रतीयत एवेति ॥ 'समकिरिय'त्ति, समाः–तुल्याः क्रियाः–कर्म्मनिबन्धनभूता आरम्भिक्यादिका येषां ते समक्रियाः, 'आरंभिय'त्ति आरम्भः–पृथिव्याद्युपमर्दः स प्रयोजनं–कारणं यस्याः साऽऽरम्भिकी १, 'परिग्गहिय'त्ति, परिग्रहो–धर्मोपकरणवर्जवस्तुस्वीकारो धर्मोपकरणमूर्च्छा च स प्रयोजनं यस्याः सा पारिग्रहिकी २, 'मायावत्तिय'त्ति, माया–अनार्जवं उपलक्षणत्वात्क्रोधादिरपि च सा प्रत्ययः–कारणं यस्याः सा मायाप्रत्यया ३, 'अप्पच्चक्खाणकिरिय'त्ति अप्रत्याख्यानेन–निवृत्त्यभावेन क्रिया–कर्मबन्धादिकरणमप्रत्याख्यानक्रियेति ४ 'पंच किरियाओ कज्जंति'त्ति क्रियन्ते, कर्मकर्त्तरि प्रयोगोऽयं तेन भवन्तीत्यर्थः, 'मिच्छादंसणवत्तिय'त्ति मिथ्यादर्शनं प्रत्ययो–हेतुर्यस्याः सा मिथ्यादर्शनप्रत्यया, ननु मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगाः कर्मबन्धहेतव इति प्रसिद्धिः इह तु आरम्भादयस्तेऽभिहिता इति कथं न विरोधः ?, उच्यते, आरम्भपरिग्रहशब्दाभ्यां योगपरिग्रहो, योगानां तद्भूत्वात्, शेषपदैस्तु शेषबन्धहेतुपरिग्रहः प्रतीयत एवेति, तत्र सम्यग्दृष्टीनां चतस्र एव, मिथ्यात्वाभावात्, शेषाणां तु पञ्चापि, सम्यग्मिथ्यात्वस्य मिथ्यात्वेनैवेह विवक्षितत्वादिति ॥ 'सव्वे समाउया'इत्यादिप्रश्नस्य निर्वचनचतुर्भङ्ग्या भावना क्रियते, निबद्धदशवर्षसहस्रप्रमाणायुषो युगपज्जोत्पन्ना इति प्रथमभङ्गः १, तेष्वेव दशवर्षसहस्रस्थितिषु नरकेष्वेके प्रथमतरमुत्पन्ना अपरे तु पश्चादिति द्वितीयः, अन्यैर्विषममायुर्निबद्धं कैश्चिद्दशवर्षसहस्रस्थितिषु कैश्चिच्च पञ्चदशवर्षसहस्रस्थितिषु उत्पत्तिः पुनर्युगपदिति तृतीयः ३, केचित्सागरोपमस्थितयः केचित्तु दशवर्षसहस्रस्थितय इत्येवं विषमा-

॥ ४२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

युषो विषममेव चोत्पन्ना इति चतुर्थः ४, इह सङ्ग्रहगाथा—"[1]आहाराईसु समा कम्मे वन्ने तहेव लेसाए। वियणाए किरियाए आउयउववत्तिचउभंगी ॥ १ ॥" 'असुरकुमारा णं भंते !'इत्यादिनाऽसुरकुमारप्रकरणमाहारादिपदनवकोपेतं सूचितं, तच्च नारकप्रकरणवन्नेयम्, एतदेवाह–'जहा नेरइया'इत्यादि, तत्राहारकसूत्रे नारकसूत्रसमानेऽपि भावना विशेषेण लिख्यते–असुरकुमाराणामल्पशरीरत्वं भवधारणीयशरीरापेक्षया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमानत्वं, महाशरीरत्वं तूत्कर्षतः सप्तहस्तप्रमाणत्वम्, उत्तरवैक्रियापेक्षया त्वल्पशरीरत्वं जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभागमानत्वं महाशरीरत्वं तूत्कर्षतो योजनलक्षमानमिति, तत्रैते महाशरीरा बहुतरान् पुद्गलानाहारयन्ति, मनोभक्षणलक्षणाहारापेक्षया, देवानां ह्यसौ स्यात् प्रधानश्च, प्रधानापेक्षया च शास्त्रे निर्देशो वस्तूनां विधीयते, ततोऽल्पशरीरग्राह्याहारपुद्गलापेक्षया बहुतरांस्ते तानाहारयन्तीत्यादि प्राग्वत्, अभीक्ष्णमाहारयन्ति अभीक्ष्णमुच्छ्वसन्ति च इत्यत्र ये चतुर्थादेरुपर्याहारयन्ति स्तोकसप्तकादेश्चोपर्युच्छ्वसन्ति तानाश्रित्याभीक्ष्णमित्युच्यते, उत्कर्षतो ये सातिरेकवर्षसहस्रस्योपरि आहारयन्ति सातिरेकपक्षस्य चोपर्युच्छ्वसन्ति तानङ्गीकृत्य एतेषामल्पकालीनाहारोच्छ्वासत्वेन पुनः पुनराहारयन्तीत्यादिव्यपदेशविषयत्वादिति, तथाऽल्पशरीरा अल्पतरान् पुद्गलानाहारयन्ति उच्छ्वसन्ति च अल्पशरीरत्वादेव, यत्पुनस्तेषां कादाचित्कत्वमाहारोच्छ्वासयोस्तन्महाशरीराहारोच्छ्वासान्तरालापेक्षया बहुतमान्तरालत्वात्, तत्र हि अन्तराले ते नाहारादि कुर्वन्ति तदन्यत्र कुर्वन्तीत्येवं विवक्षणादिति, महाशरीराणामप्याहारोच्छ्वासयोरन्तरालमस्ति किन्तु तदल्पमित्यविवक्षणादेवाभीक्ष्णमित्युक्तं, सिद्धं च महाशरीराण

१ आहारादिषु समाः कर्मणि वर्णे तथैव लेश्यायाम्। वेदनायां क्रियायामायुरुपपत्तिचतुर्भङ्गी ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवीया वृत्तिः १

॥ ४३ ॥

तेषामाहारोच्छ्वासयोरल्पान्तरत्वम् अल्पशरीराणां तु महान्तरत्वं, यथा सौधर्मदेवानां सप्तहस्तमानतया महाशरीराणां तयोरन्तरं क्रमेण वर्षसहस्रद्वयं पक्षद्वयं च, अनुत्तरसुराणां च हस्तमानतया अल्पशरीराणां त्रयस्त्रिंशद्भर्षसहस्राणि त्रयस्त्रिंशदेव च पक्षा इति, एषां च महाशरीराणामभीक्ष्णाहारोच्छ्वासाभिधानेनाल्पस्थितिकत्वमवसीयते, इतरेषां तु विपर्ययो वैमानिकवदेवेति, अथवा लोमाहारापेक्षयाऽभीक्ष्णम्–अनुसमयमाहारयन्ति महाशरीराः पर्याप्तकावस्थायाम्, उच्छ्वासस्तु यथोक्तमानेनापि भवन् परिपूर्णभवापेक्षया पुनः पुनरित्युच्यते, अपर्याप्तकावस्थायां त्वल्पशरीरा लोमाहारतो नाहारयन्ति ओजाहारत एवाहरणात् इति कदाचित्ते आहारयन्तीत्युच्यते, उच्छ्वासापर्याप्तकावस्थायां च नोच्छ्वसन्त्यन्यदा तूच्छ्वसन्तीत्युच्यते आहत्योच्छ्वसन्तीति । 'कम्मवन्नलेस्साओ परिवन्नेयव्वाओ'त्ति कर्म्मादीनि नारकापेक्षया विपर्ययेण वाच्यानि, तथाहि–नारका ये पूर्वोत्पन्नास्तेऽल्पकर्मकशुद्धतरवर्णशुभतरलेश्या उक्ताः असुरास्तु ये पूर्वोत्पन्नास्ते महाकर्माणोऽशुद्धवर्णा अशुभतरलेश्याश्चेति, कथम् ?, ये हि पूर्वोत्पन्ना असुरास्तेऽतिकन्दर्पदर्पाध्मातचित्तत्वान्नारकाननेकप्रकारया यातनया यातयन्तः प्रभूतमशुभं कर्म संचिन्वन्तीत्यतोऽभिधीयन्ते ते महाकर्माणः, अथवा ये बद्धायुषस्ते तिर्यगादिप्रायोग्यकर्म्मप्रकृतिबन्धनान्महाकर्म्माणः तथाऽशुभवर्णा अशुभलेश्याश्च ते, पूर्वोत्पन्नानां हि क्षीणत्वात् शुभकर्मणः शुभवर्णादयः–शुभो वर्णो लेश्या च इसतीति, पश्चादुत्पन्नास्त्वबद्धायुषोऽल्पकर्माणो बहुतरकर्मणामबन्धनादशुभकर्म्मणामक्षीणत्वाच्च शुभवर्णादयः स्युरिति ॥ वेदनासूत्रं च यद्यपि नारकाणामिवासुरकुमाराणामपि तथाऽपि तद्भावनायां विशेषः, स चायम्–ये सञ्ज्ञिभूतास्ते महावेदनाः, चारित्रविराधनाजन्यचित्तसन्तापात्, अथवा सञ्ज्ञिभूताः सञ्ज्ञिपू-

१ शतके उद्देशके २ असुरादीनां समायुष्कतादिविचारः सू २१

॥ ४३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

र्वभवाः पर्याप्ता वा ते शुभवेदनामाश्रित्य महावेदना इतरे त्वल्पवेदना इति । एवं नागकुमारादयोऽपि ९ औचित्येन वाच्याः ॥ 'पुढविक्काइया णं भंते ! आहारकम्मवन्नलेस्सा जहा नेरइयाणं'ति चत्वार्यपि सूत्राणि नारकसूत्राणीव पृथिवीकायिकाभिलापेनाधीयन्त इत्यर्थः, केवलमाहारसूत्रे भावनैवं–पृथिवीकायिकानामङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रशरीरत्वेऽप्यल्पशरीरत्वम् इतरच्चेत आगमवचनादवसेयम् 'पुढविक्काइयस्स ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए'त्ति, ते च महाशरीरा लोमाहारतो बहुतरान् पुद्गलानाहारयन्तीति(न्ति) उच्छ्वसन्ति च अभीक्ष्णं महाशरीरत्वादेव,अल्पशरीराणामल्पाहारोच्छ्वासत्वमल्पशरीरत्वादेव, कादाचित्कत्वं च तयोः पर्याप्तकेतरावस्थापेक्षमवसेयम् ॥ तथा कर्मादिसूत्रेषु पूर्वपश्चादुत्पन्नानां पृथिवीकायिकानां कर्मवर्णलेश्याविभागो नारकैः सम एव,वेदनाक्रिययोस्तु नानात्वमत एवाह–'असन्नि'त्ति मिथ्यादृष्टयोऽमनस्का वा 'असन्निभूय'त्ति असञ्ज्ञिभूता असञ्ज्ञिनां या जायते तामित्यर्थः, एतदेव व्यनक्ति–'अणिदाए'त्ति अनिर्द्धारणया वेदनां वेदयन्ति, वेदनामनुभवन्तोऽपि न पूर्वोपात्ताशुभकर्मपरिणतिरियमिति मिथ्यादृष्टित्वादवगच्छन्ति,विमनस्कत्वाद्वा मत्तमूर्च्छितादिवदिति भावना। 'माईमिच्छादिट्ठि'त्ति मायावन्तो हि तेषु प्रायेणोत्पद्यन्ते, यदाह–"[१]उम्मग्गदेसओ मग्गणासओ गूढहियय माइल्लो । सढसीलो य ससल्लो तिरियाउं बंधए जीवो ॥ १ ॥"त्ति, ततस्ते मायिन उच्यन्ते, अथवा मायेहानन्तानुबन्धिकषायोपलक्षणम् अतोऽनन्तानुबन्धिकषायोदयवन्तोऽत एव मिथ्यादृष्टयो–मिथ्यात्वोदयवृत्तय इति। 'ताणं

१ पृथ्वीकायिकः पृथ्वीकायिकस्य शरीरापेक्षया चतुःस्थानपतितः (अनन्तभागानन्तगुणवर्ज्ये) ॥ २ उन्मार्गदेशको मार्गनाशको गूढहृदयो मायावी । शठस्वभावः सशल्यश्च जीवस्तिर्यगायुर्बध्नाति ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२१] + गाथा

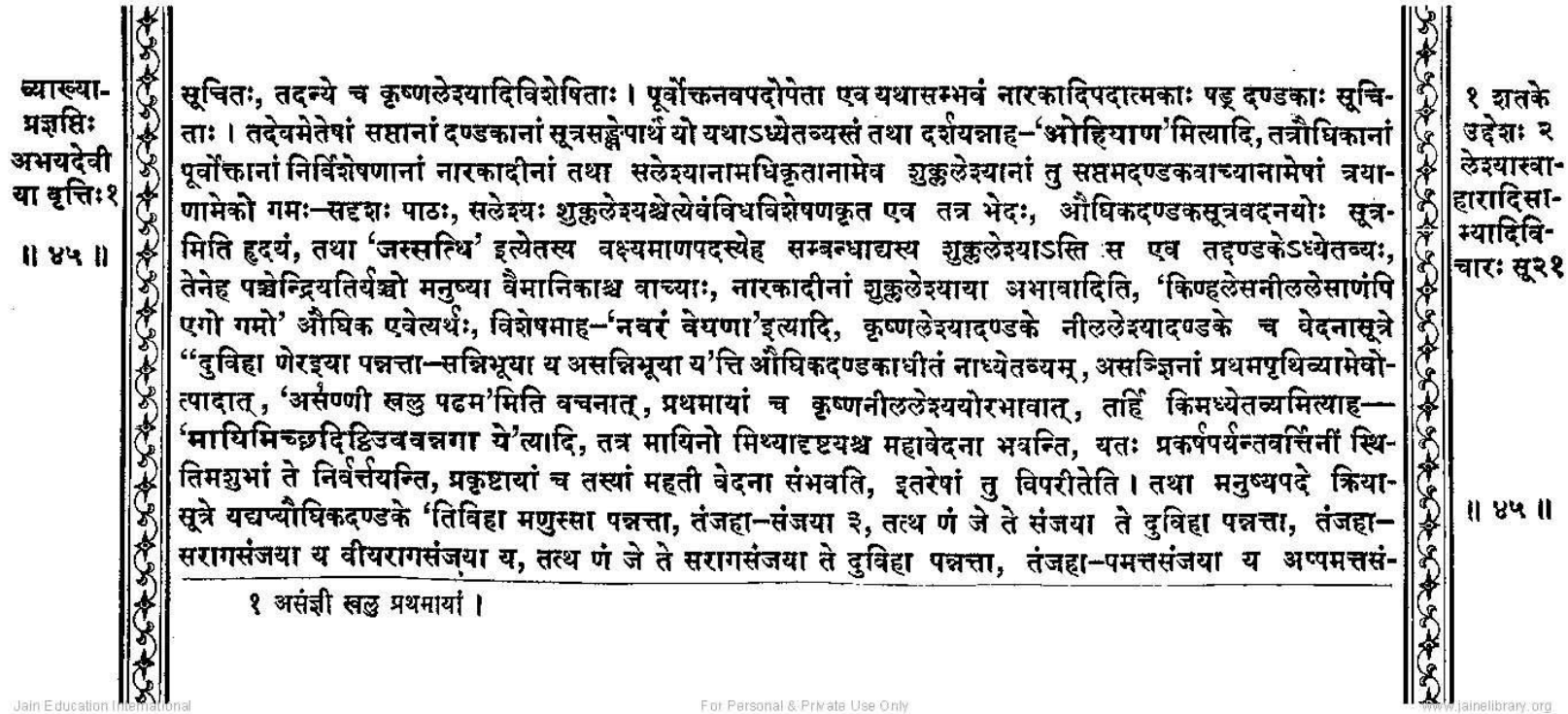
दीप अनुक्रम [२७-२८]

णियइयाओ'त्ति तेषां पृथिवीकायिकानां नैयतिक्यो–नियता न तु त्रिप्रभृतय इति, पञ्चैवेत्यर्थः, 'से तेणट्ठेणं समकिरिय'त्ति निगमनं, 'जाव चउरिंदिय'त्ति, इह महाशरीरत्वमितरच्च स्वस्वावगाहनाऽनुसारेणावसेयम्, आहारश्च द्वीन्द्रियादीनां प्रक्षेपलक्षणोऽपीति । 'पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहा नेरइय'त्ति प्रतीतं, नवरमिह महाशरीरा अभीक्ष्णमाहारयन्ति उच्छ्वसन्ति चेति यदुच्यते तत्सङ्ख्यातवर्षायुषोऽपेक्ष्येत्यवसेयं, तथैव दर्शनात्, नासङ्ख्यातवर्षायुषः, तेषां प्रक्षेपाहारस्य षष्ठस्योपरि प्रतिपादितत्वात्, अल्पशरीराणां त्वाहारोच्छ्वासयोः कादाचित्कत्वं वचनप्रामाण्यादिति, लोमाहारापेक्षया तु सर्वेषामप्यभीक्ष्णमिति घटत एव, अल्पशरीराणां तु यत्कादाचित्कत्वं तदपर्याप्तकत्वे लोमाहारोच्छ्वासयोरभवनेन पर्याप्तकत्वे च तद्भावेनावसेयमिति ॥ तथा कर्मसूत्रे यत्पूर्वोत्पन्नानामल्पकर्म्मत्वमितरेषां तु महाकर्मत्वं तदायुष्कादितद्भववेद्यकर्मापेक्षयाऽवसेयम् ॥ तथा वर्णलेश्यासूत्रयोर्यत्पूर्वोत्पन्नानां शुभवर्णाद्युक्तं तत्तारुण्यात् पश्चादुत्पन्नानां चाशुभवर्णादि बाल्यादवसेयं, लोके तथैव दर्शनादिति । तथा 'संजयासंजय'त्ति देशविरताः स्थूलात् प्राणातिपातादेर्निवृत्तत्वादितरस्मादनिवृत्तत्वाच्चेति । 'मणुस्सा जहा नेरइय'त्ति तथा वाच्या इति गम्यं, 'नाणत्तं'ति नानात्वं भेदः पुनरयं, तत्र 'मणुस्सा णं भंते ! सव्वे समाहारगा ?'इत्यादि प्रश्नः, 'नो इणट्ठे समट्ठे' इत्याद्युत्तरं 'जाव दुविहा मणुस्सा पन्नत्ता, तंजहा–महासरीरा य अप्पसरीरा य, तत्थ णं जे ते महासरीरा ते बहुतराए पोग्गले आहारेंति, एवं 'परिणामेंति ऊससंति नीससंति' ॥ इह स्थाने नारकसूत्रे 'अभिक्खणं आहारेंती'त्यधीतम्, इह तु 'आहच्चे'त्यधीयते, महाशरीरा हि देवकुर्वादिमिथुनकाः, ते च कदाचिदेवाहारयन्ति कावलिकाहारेण, 'अट्ठमभत्तस्स आहारो'त्ति-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वचनात्, अल्पशरीरास्त्वभीक्ष्णमल्पं च, बालानां तथैव दर्शनात् संमूर्च्छिममनुष्याणामल्पशरीराणामनवरतमाहारसम्भवाच्च, यच्चेह पूर्वोत्पन्नानां शुद्धवर्णादि तत्तारुण्यात् संमूर्च्छिमापेक्षया वेति। 'सरागसंजय'त्ति अक्षीणानुपशान्तकषायाः 'वीयरागसंजय'त्ति उपशान्तकषायाः क्षीणकषायाश्च, 'अकिरिय'त्ति वीतरागत्वेनारम्भादीनामभावादक्रियाः, 'एगा मायावत्तिय'त्ति अप्रमत्तसंयतानामेकैव मायाप्रत्यया 'किरिया कज्जइ'त्ति क्रियते–भवति कदाचिदुड्डाहरक्षणप्रवृत्तानामक्षीणकषायत्वादिति, 'आरंभिय'त्ति प्रमत्तसंयतानां च 'सर्वः प्रमत्तयोग आरम्भ' इतिकृत्वाऽऽरम्भिकी स्यात्, अक्षीणकषायत्वाच्च मायाप्रत्ययेति। 'वाणमंतरजोइसवेमाणिया जहा असुरकुमार'त्ति, तत्र शरीरस्याल्पत्वमहत्त्वे स्वावगाहनानुसारेणावसेये। तथा वेदनायामसुरकुमाराः 'सन्निभूया य असन्निभूया य, सन्निभूया महावेयणा असन्निभूया अप्पवेयणा' इत्येवमधीताः, व्यन्तरा अपि तथैवाध्येतव्याः, यतोऽसुरादिषु व्यन्तरान्तेषु देवेषु असञ्ज्ञिन उत्पद्यन्ते, यतोऽत्रैवोद्देशके वक्ष्यति–'असन्नी णं जहन्नेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं वाणमंतरेसु'त्ति, ते चासुरकुमारप्रकरणोक्तयुक्तेरल्पवेदना भवन्तीत्यवसेयं, यत्तु प्रागुक्तं सञ्ज्ञिनः सम्यग्दृष्टयोऽसञ्ज्ञिनस्त्वितरे इति तद्भूद्धव्याख्यानुसारेणैवेति, ज्योतिष्कवैमानिकेषु त्वसञ्ज्ञिनो नोत्पद्यन्तेऽतो वेदनापदे तेष्वधीयते 'दुविहा जोतिसिया-मायिमिच्छदिट्ठी उववन्नगा ये' त्यादि, तत्र मायिमिथ्यादृष्टयोऽल्पवेदना इतरे च महावेदनाः शुभवेदनामाश्रित्येति, एतदेव दर्शयन्नाह–नवरं 'वेयणाए'इत्यादि॥ अथ चतुर्विंशतिदण्डकमेव लेश्याभेदविशेषणमाहारादिपदैर्निरूपयन् दण्डकसप्तकमाह–'सलेस्साणं भंते! नेरइया सव्वे समाहारग'त्ति अनेनाहारशरीरोच्छ्वासकर्म्मवर्णलेश्यावेदनाक्रियोपपातास्यपूर्वोक्तनवपदोपेतनारकादिचतुर्विंशतिपददण्डको लेश्यापदविशेषितः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः१

॥ ४५ ॥

सूचितः, तदन्ये च कृष्णलेश्यादिविशेषिताः। पूर्वोक्तनवपदोपेता एव यथासम्भवं नारकादिपदात्मकाः षड् दण्डकाः सूचिताः। तदेवमेतेषां सप्तानां दण्डकानां सूत्रसङ्केपार्थं यो यथाऽध्येतव्यस्तं तथा दर्शयन्नाह–'ओहियाण'मित्यादि, तत्रौधिकानां पूर्वोक्तानां निर्विशेषणानां नारकादीनां तथा सलेश्यानामधिकृतानामेव शुक्ललेश्यानां तु सप्तमदण्डकवाच्यानामेषां त्रयाणामेको गमः–सदृशः पाठः, सलेश्यः शुक्ललेश्यश्चेत्येवंविधविशेषणकृत एव तत्र भेदः, औधिकदण्डकसूत्रवदनयोः सूत्रमिति हृदयं, तथा 'जस्सत्थि' इत्येतस्य वक्ष्यमाणपदस्येह सम्बन्धाद्यस्य शुक्ललेश्याऽस्ति स एव तद्दण्डकेऽध्येतव्यः, तेनेह पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो मनुष्या वैमानिकाश्च वाच्याः, नारकादीनां शुक्ललेश्याया अभावादिति, 'किण्हलेसनीललेसाणंपि एगो गमो' औधिक एवेत्यर्थः, विशेषमाह–'नवरं वेयणा'इत्यादि, कृष्णलेश्यादण्डके नीललेश्यादण्डके च वेदनासूत्रे "दुविहा णेरइया पन्नत्ता–सन्निभूया य असन्निभूया य'त्ति औधिकदण्डकाधीतं नाध्येतव्यम्, असञ्ज्ञिनां प्रथमपृथिव्यामेवोत्पादात्, 'असण्णी खलु पढम'मिति वचनात्, प्रथमायां च कृष्णनीललेश्ययोरभावात्, तर्हि किमध्येतव्यमित्याह—'मायिमिच्छदिट्ठिउववन्नगा ये'त्यादि, तत्र मायिनो मिथ्यादृष्टयश्च महावेदना भवन्ति, यतः प्रकर्षपर्यन्तवर्त्तिनीं स्थितिमशुभां ते निर्वर्त्तयन्ति, प्रकृष्टायां च तस्यां महती वेदना संभवति, इतरेषां तु विपरीतेति। तथा मनुष्यपदे क्रियासूत्रे यद्यप्यौधिकदण्डके 'तिविहा मणुस्सा पन्नत्ता, तंजहा–संजया ३, तत्थ णं जे ते संजया ते दुविहा पन्नत्ता, तंजहा–सरागसंजया य वीयरागसंजया य, तत्थ णं जे ते सरागसंजया ते दुविहा पन्नत्ता, तंजहा–पमत्तसंजया य अप्पमत्तसं-

१ असंज्ञी खलु प्रथमायां।

१ शतके उद्देशः २ लेश्यास्वाहारादिसाम्यादिविचारः सू२१

॥ ४५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जया य'त्ति पठितं, तथाऽपि कृष्णनीललेश्यादण्डकयोर्नाध्येतव्यं, कृष्णनीललेश्योदये संयमस्य निषिद्धत्वात्, यच्चोच्यते 'पुव्वपडिवन्नओ पुण अन्नयरीए उ लेस्साए'त्ति तत्कृष्णादिद्रव्यरूपां द्रव्यलेश्यामङ्गीकृत्य न तु कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यजनितात्मपरिणामरूपां भावलेश्याम्, एतच्च प्रागुक्तमिति, एतदेव दर्शयन्नाह–'मणुस्से'त्यादि, तथा कापोतलेश्यादण्डकोऽपि नीलादिलेश्यादण्डकवदध्येतव्यो, नवरं नारकपदे वेदनासूत्रे नारका औधिकदण्डकवदेव वाच्याः, ते चैवम्–'नेरइया दुविहा पन्नत्ता,तंजहा–सन्निभूया य असन्निभूया य'त्ति,असञ्ज्ञिनां प्रथमपृथिव्युत्पादेन कापोतलेश्यासम्भवादत आह–'काउलेस्सा-णवी'त्यादि । तथा तेजोलेश्या पद्मलेश्या च यस्य जीवविशेषस्यास्ति तमाश्रित्य यथौधिको दण्डकस्तथा तयोर्दण्डकौ भणितव्यौ, तदस्तिता चैवम्–नारकाणां विकलेन्द्रियाणां तेजोवायूनां चाद्यास्तिस्र एव, भवनपतिपृथिव्यम्बुवनस्पति-व्यन्तराणामाद्याश्चतस्रः, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्याणां षट्, ज्योतिषां तेजोलेश्या, वैमानिकानां तिस्रः प्रशस्ता इति, आह च—"किण्हानीलाकाऊतेउलेसा य भवणवंतरिया । जोइससोहम्मीसाण तेउलेसा मुणेयव्वा ॥ १ ॥ कप्पे सणंकुमारे माहिंदे चेव बंभलोगे य । एएसु पम्हलेसा तेण परं सुक्कलेस्सा उ ॥ २ ॥" तथा–"पुढवीआउवणस्सइबायरपत्तेय लेस चत्तारि [तेजोलेश्यान्ताः] गब्भयतिरियनरेसु छल्लेसा तिन्नि सेसाणं ॥ ३ ॥" केवलमौधिकदण्डके क्रियासूत्रे मनुष्याः

१ भवनव्यन्तराः कृष्णनीलकापोततेजोलेश्याः, ज्योतिष्कसौधर्मेशानास्तेजोलेश्या ज्ञातव्याः ॥ १ ॥ सनत्कुमारे कल्पे माहेन्द्रे ब्रह्मलोके चैव । एतेषु पद्मलेश्या ततः परं शुक्ललेश्यैव ॥ २ ॥ पृथिव्यब्वनस्पतिबादरप्रत्येकानां चतस्रो लेश्याः (तेजोऽन्ताः) । गर्भजतिर्यङ्नराणां षड् लेश्याः शेषाणां तिस्रः ॥ ३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ४६ ॥

सरागवीतरागविशेषणा अधीताः इह तु तथा न वाच्याः, तेजःपद्मलेश्ययोर्वीतरागत्वासम्भवात् शुक्ललेश्यायामेव तत्स-म्भवात्, प्रमत्ताप्रमत्तास्तूच्यन्त इति, एतदेव दर्शयन्नाह–'तेउलेसा पम्हलेसे'त्यादि । 'गाह'त्ति, उद्देशकादितः सूत्रा-र्थसङ्ग्रहगाथा गतार्थाऽपि सुखबोधार्थमुच्यते–दुःखमायुश्चोदीर्णं वेदयतीत्येकत्वबहुत्वाभ्यां दण्डकचतुष्टयमुक्तं, तथा 'आहारे'त्ति नेरइया किं समाहारा ?' इत्यादि, तथा 'किं समकम्मा ?' तथा 'किं समवन्ना ?' तथा 'किं समलेसा ?' तथा 'किं समवेयणा ?' तथा 'किं समकिरिया ?' तथा 'किं समाउया समोववन्नग'त्ति गाथार्थः ॥ प्राक् सलेश्या नारका इत्यु-क्तमथलेश्या निरूपयन्नाह—

कइ णं भंते ! लेस्साओ पन्नत्ताओ ?, गोयमा ! छल्लेस्साओ पन्नत्ता, तंजहा–लेसाणं बीयओ उद्देसओ भाणियव्वो जाव इड्ढी ॥ (सू० २२ ॥

तत्रात्मनि कर्मपुद्गलानां लेशनात्–संश्लेषणाल्लेश्या, योगपरिणामश्चैताः, योगनिरोधे लेश्यानामभावात् , योगश्च शरी-रनामकर्मपरिणतिविशेषः, 'लेस्साणं बीओ उद्देसओ'त्ति प्रज्ञापनायां लेश्यापदस्य चतुरुद्देशकस्येह द्वितीयोद्देशको लेश्यास्वरूपावगमाय भणितव्यः, प्रथम इति क्वचिद्दृश्यते सोऽपपाठ इति । अथ कियद्दूरं यावदित्याह–'जाव इड्ढी' ऋद्धि-वक्तव्यतां यावत्, स चायं सङ्क्षेपतः–'कइ णं भंते ! लेसाओ पन्नत्ताओ ?, गोयमा ! छलेसाओ पन्नत्ताओ, तंजहा— कण्हलेसा ६, एवं सर्वत्र प्रश्न उत्तरं च वाच्यं, 'नेरइयाणं तिन्नि कण्हलेस्सा ३, तिरिक्खजोणियाणं ६, एगिंदियाणं ४, पुढविआउवणस्सईणं ४, तेउवाउबेइंदियतेइंदियचउरिंदियाणं ३, पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं ६' इत्यादि बहु वाच्यं

१ शतके उद्देशः २ लेश्याधि-कारः सू२२

॥ ४६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२२]

दीप अनुक्रम [२९]

यावत् 'एएसि णं भंते ! जीवाणं कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साणं कयरे२हिंतो अप्पड्ढिया वा महड्ढिया वा ?, गोयमा ! कण्हलेस्सेहिंतो नीललेसा महड्ढिया, नीललेसेहिंतो काउलेसे'त्यादि ॥ अथ पशवः पशुत्वमश्नुवते इत्यादिवचनविप्रलम्भाद् यो मन्यतेऽनादावपि भवे एकधैव जीवस्यावस्थानमिति तद्बोधनार्थं प्रश्नयन्नाह—

जीवस्स णं भंते ! तीतद्धाए आदिट्ठस्स कइविहे संसारसंचिट्ठणकाले पण्णत्ते ?, गोयमा ! चउव्विहे संसारसंचिट्ठणकाले पण्णत्ते, तंजहा–णेरइयसंसारसंचिट्ठणकाले तिरिक्ख० मणुस्स० देवसंसारसंचिट्ठणकाले य पण्णत्ते ॥ नेरइयसंसारसंचिट्ठणकाले णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?, गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तंजहा–सुन्नकाले असुन्नकाले मिस्सकाले ॥ तिरिक्खजोणियसंसार पुच्छा, गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–असुन्नकाले य मिस्सकाले य, मणुस्साण य देवाण य जहा नेरइयाणं ॥ एयस्स णं भंते ! नेरइयसंसारसंचिट्ठणकालस्स सुन्नकालस्स असुन्नकालस्स मीसकालस्स य कयरे२हिंतो अप्पा वा बहुए वा तुल्ले वा विसेसाहिए वा ?, गोयमा ! सव्व० असुन्नकाले मिस्सकाले अणंतगुणे सुन्नका० अणं० गुणे ॥ तिरि० जो० भंते ! सव्व० असुन्नकाले मिस्सकाले अणंतगुणे, मणुस्सदेवाण य जहा नेरइयाणं ॥ एयस्स णं भंते ! नेरइयस्स संसारसंचिट्ठणकालस्स जाव देवसंसारसंचिट्ठणजावविसेसाहिए वा ?, गोयमा ! सव्वत्थोवे मणुस्ससंसारसंचिट्ठणकाले, नेरइयसंसारसंचिट्ठणकाले असंखेज्जगुणे, देवसंसारसंचिट्ठणकाले असंखेज्जगुणे, तिरिक्खजोणिए अणंतगुणे ॥ (सू० २३)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२३]

दीप अनुक्रम [३०]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ४७ ॥

'जीवस्स ण'मित्यादि व्यक्तं, नवरं किंविधस्य जीवस्य ? इत्याह–'आदिष्टस्य' अमुष्य नारकादेरित्येवं विशेषितस्य 'तीतद्धाए'त्ति अनादावतीते काले 'कतिविधः' उपाधिभेदात्कतिभेदः संसारस्य–भवाभ्रवान्तरे संचरणलक्षणस्य संस्थानम्–अवस्थितिक्रिया तस्य कालः–अवसरः संसारसंस्थानकालः, अमुष्य जीवस्यातीतकाले कस्यां कस्यां गतावस्थानमासीत् ? इत्यर्थः, अत्रोत्तरं–चतुर्विध उपाधिभेदादिति भावः, तत्र नारकभवानुगसंसारावस्थानकालस्त्रिधा–शून्यकालोऽशून्यकालो मिश्रकालश्चेति, तिरश्चां शून्यकालो नास्तीति तेषां द्विविधः, मनुष्यदेवानां त्रिविधोऽप्यस्ति, आह च–"[1]सुन्नासुन्नो मीसो तिविहो संसारचिट्ठणाकालो। तिरियाण सुन्नवज्जो सेसाणं होइ तिविहोवि ॥ १ ॥" तत्राशून्यकालस्तावदुच्यते, अशून्यकालस्वरूपपरिज्ञाने हि सतीतरौ सुज्ञानौ भविष्यत इति, तत्र वर्त्तमानकाले सप्तसु पृथिवीषु ये नारका वर्त्तन्ते तेषां मध्याद्यावन्न कश्चिदुद्वर्त्तते न चान्य उत्पद्यते तावन्मात्रा एव ते आसते स कालस्तान्नारकानङ्गीकृत्याशून्य इति भण्यते, आह च–"[2]आइट्ठसमइयाणं नेरइयाणं न जाव एक्कोवि। उव्वट्टइ अन्नो वा उववज्जइ सो असुन्नो उ ॥ १ ॥" मिश्रकालस्तु तेषामेव नारकाणां मध्यादेकादय उद्वृत्ताः यावदेकोऽपि शेषस्तावन्मिश्रकालः, शून्यकालस्तु यदा त एवादिष्टसामयिका नारकाः सामस्त्येनोद्वृत्ता भवन्ति नैकोऽपि तेषां शेषोऽस्ति स शून्यकालः इति, आह च–"[3]उव्वट्टे

१ शून्योऽशून्यो मिश्रस्त्रिविधः संसारस्थानकालः। तिरश्चां शून्यवर्ज्यः शेषाणां भवति त्रिविधोऽपि ॥ १ ॥ २ आदिष्टसामयिकानां नैरयिकाणां यावदेकोऽपि नोद्वर्त्तते अन्यो वोत्पद्यते सोऽशून्य एव ॥ १ ॥ ३–एकस्मिन्नप्युद्वृत्ते यावदेकोऽपि तिष्ठति तावन्मिश्रः। वर्त्तमानेषु सर्वेषु निर्लेपितेषु शून्यस्तु ॥ १ ॥

१ शतके उद्देशः २ संसारावस्थानं सू२३

॥ ४७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक्कंमिवि ता मीसो धरइ जाव एक्कोवि । निल्लेविएहिं सव्वेहिं वट्टमाणेहिं सुन्नो उ ॥ १ ॥" इदं च मिश्रनारकसंसारावस्थानकालचिन्तासूत्रं न तमेव वार्त्तमानिकनारकभवमङ्गीकृत्य प्रवृत्तम्, अपि तु वार्त्तमानिकनारकजीवानां गत्यन्तरगमने तत्रैवोत्पत्तिमाश्रित्य, यदि पुनस्तमेव नारकभवमङ्गीकृत्येदं सूत्रं स्यात्तदाऽशून्यकालापेक्षया मिश्रकालस्यानन्तगुणता सूत्रोक्ता न स्यात्, आह च–"एयं पुण ते जीवे पडुच्च सुत्तं न तब्भवं चेव । जइ होज्ज तब्भवं तो अनन्तकालो ण संभवइ ॥ १ ॥" कस्मात् ? इति चेद् उच्यते, ये वार्त्तमानिका नारकास्ते स्वायुष्ककालस्यान्ते उद्वर्त्तन्ते, असङ्ख्यातमेव च तदायुः, अत उत्कर्षतो द्वादशमौहूर्त्तिकाशून्यकालापेक्षया मिश्रकालस्यानन्तगुणत्वाभावप्रसङ्गादिति, आह च— "किं[२] कारणमाइट्ठा नेरइया जे इमम्मि समयम्मि । ते ठिइकालस्संते जम्हा सव्वे खविज्जंति ॥ १ ॥" इति । 'सव्वत्थोवे असुन्नकाले'त्ति नारकाणामुत्पादोद्वर्त्तनाविरहकालस्योत्कर्षतोऽपि द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणत्वात्, 'मीसकाले अणंतगुणे'त्ति मिश्राख्यो विवक्षितनारकजीवनिर्लेपनाकालोऽशून्यकालापेक्षयाऽनन्तगुणो भवति, यतोऽसौ नारकेतरेष्वागमनगमनकालः, स च त्रसवनस्पत्यादिस्थितिकालमिश्रितः सन्ननन्तगुणो भवति, त्रसवनस्पत्यादिगमनागमनानामनन्तत्वात्, स च नार-

१–एतत्सूत्रं पुनस्तान् जीवान् प्रतीत्य, नैव तद्भवं, यदि तद्भवं प्रतीत्य भवेत्तदाऽनन्तकालो न संभवति (असङ्ख्यातसमयस्थितिकालात्)॥ १ ॥ २–किं कारणमसम्भवे ? अस्मिन् समये ये नैरयिका आदिष्टाः स्थितिकालस्यान्ते ते सर्वे यस्मादुद्वर्त्तिष्यन्ते ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कनिर्लेपनाकालो वनस्पतिकायस्थितेरनन्तभागे वर्त्तत इति, उक्तं च—"थोवो असुन्नकालो सो उक्कोसेण बारसमुहुत्तो । तत्तो य अणंतगुणो मीसो निल्लेवणाकालो ॥ १ ॥ आगमणगमणकालो तसाइतरुमीसिओ अणंतगुणो । अह निल्लेवणकालो अणंतभागे वणद्धाए ॥ २ ॥" त्ति । 'सुन्नकाले अणंतगुणे'त्ति सर्वेषां विवक्षितनारकजीवानां प्रायो वनस्पतिष्वनन्तानन्तकालमवस्थानात्, एतदेव वनस्पतिष्वनन्तानन्तकालावस्थानं जीवानां नारकभवान्तरकाल उत्कृष्टो देशितः समय इति, उक्तं च—"सुन्नो य अणंतगुणो सो पुण पायं वणस्सइगयाणं । एयं चेव य नारयभवंतरं देसियं जेट्ठं ॥ १ ॥" ति । 'तिरिक्खजोणियाणं सव्वत्थोवे असुन्नकाले'त्ति, स चान्तर्मुहूर्त्तमात्रः, अयं च यद्यपि सामान्येन तिरश्चामुक्तस्तथाऽपि विकलेन्द्रियसंमूर्च्छिमानामेवावसेयः, तेषामेवान्तर्मुहूर्त्तमानस्य विरहकालस्योक्तत्वात्, यदाह—"भिन्नमुहुत्तो विगलिंदिएसु सम्मुच्छिमेसुवि स एव" एकेन्द्रियाणां तूद्वर्त्तनोपपातविरहाभावेनाशून्यकालाभाव एव, आह च—"एगो असंखभागो वट्टइ उव्वट्टणोववायंमि । एगनिगोए निच्चं एवं सेसेसुवि स एव ॥ १ ॥" पृथिव्यादिषु पुनः 'अणुसमयमसंखेज्ज'त्ति वचनाद्विरहाभाव इति, 'मिस्सकाले अणंतगुणे'त्ति नारकवत्, शून्यकालस्तु तिरश्चां नास्त्येव, यतो वार्त्त-

१–अशून्यकालः स्तोकः स उत्कृष्टेन द्वादशमुहूर्त्तः । ततश्चानन्तगुणो मिश्रो निर्लेपनाकालः ॥ १ ॥ आगमनगमनकालस्त्रसादितरुमिश्रितोऽनन्तगुणः । अथ च निर्लेपनकालोऽनन्तभागे वनकालस्य ॥ २ ॥ २–शून्यश्चानन्तगुणः स पुनः प्रायो वनस्पतिगतानाम् । एतदेव चोत्कृष्टं नारकभवान्तरं दर्शितं ज्येष्ठम् (अस्ति) ॥ ३–विकलेन्द्रियेषु भिन्नमुहूर्त्तः संमूर्च्छिमेष्वपि स एव (कालः ॥) ४–एकस्मिन्निगोदे एकोऽसङ्ख्यातभागो नित्यमुद्वर्त्तनोपपातयोर्वर्त्तते शेषनिगोदेष्वप्येवं स एव (असङ्ख्यातभागः ॥)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२३]

दीप अनुक्रम [३०]

मानिकसाधारणवनस्पतीनां तत उद्वृत्तानां स्थानमन्यन्नास्ति, 'मणुस्सदेवाणं जहा नेरइयाणं'ति, अशून्यकालस्यापि द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणत्वात्, अत्र गाथा—"एवं नरामराणवि तिरियाणं नवरि नत्थि सुन्नद्धा । जं निग्गयाण नेसिं भायणमन्नं तओ नत्थि ॥ १ ॥" इति । 'एयस्से'त्यादि व्यक्तम् । किं संसार एवावस्थानं जीवस्य स्यादुत मोक्षेऽपि ? इति शङ्कायां पृच्छामाह—

जीवे णं भंते ! अंतकिरियं करेज्जा ?, गोयमा ! अत्थेगतिया करेज्जा अत्थेगतिया नो करेज्जा, अंतकिरियापयं नेयव्वं ॥ (सू० २४)

'जीवे ण'मित्यादि व्यक्तं, नवरम् 'अंतकिरियं'ति अन्त्या च सा पर्यन्तवर्त्तिनी क्रिया चान्त्यक्रिया, अन्त्यस्य वा–कर्मान्तस्य क्रिया अन्तक्रिया, कृत्स्नकर्मक्षयलक्षणां मोक्षप्राप्तिमित्यर्थः ।'अंतकिरियापयं नेयव्वं'ति, तच्च प्रज्ञापनायां विंशतितमं, तच्चैवम्–'जीवे णं भंते ! अंतकिरियं करेज्जा ?, गोयमा ! अत्थेगइए करेज्जा अत्थेगइए णो करेज्जा, एवं नेरइए जाव वेमाणिए' भव्यः कुर्यान्नेतर इत्यर्थः, 'नेरइया णं भंते ! नेरइएसु वट्टमाणे अंतं करेज्जा ?, गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे'इत्यादि नवरं 'मणुस्सेसु अंतं करेज्जा' मनुष्येषु वर्त्तमानो नारको मनुष्यीभूत इत्यर्थः ॥ कर्मलेशादन्तक्रियाया अभावे केचिज्जीवा देवेषूत्पद्यन्तेऽतस्तद्विशेषाभिधानायाह—

अह भंते ! असंजयभवियदव्वदेवाणं १ अविराहियसंजमाणं २ विराहियसं० ३ अविराहियसंजमासं-

१ एवं–नारकवन्नरामराणां, तिरश्चामपि, परं तिरश्चां न शून्यकालः, यस्माच्चतो निर्गतानां तेषामन्यत्रस्थानं नास्ति (अनन्तानन्तत्वात्)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज० ४ विराहियसंजमासं० ५ असन्नीणं ६ तावसाणं ७ कंदप्पियाणं ८ चरगपरिव्वायगाणं ९ किब्विसि-याणं १० तेरिच्छियाणं ११ आजीवियाणं १२ आभिओगियाणं १३ सलिंगीणं दंसणवावन्नगाणं १४ एएसि णं देवलोगेसु उववज्जमाणाणं कस्स कहिं उववाए पण्णत्ते ?, गोयमा ! असंजयभवियदव्वदेवाणं जहन्नेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं उवरिमगेविज्जएसु १, अविराहियसंजमाणं जहन्नेणं सोहम्मे कप्पे उक्कोसेणं सव्वट्ठ-सिद्धे विमाणे २, विराहियसंजमाणं जहन्नेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं सोहम्मे कप्पे ३, अविराहियसंजमा० २ णं जह० सोहम्मे कप्पे उक्कोसेणं अच्चुए कप्पे ४, विराहियसंजमासं० जहन्नेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं जोतिसिएसु ५, असन्नीणं जहन्नेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं वाणमंतरेसु ६, अवसेसा सव्वे जह० भवणवा० उक्कोसगं वोच्छामि–तावसाणं जोतिसिएसु, कंदप्पियाणं सोहम्मे, चरगपरिव्वायगाणं बंभलोए कप्पे, कि-ब्विसियाणं लंतगे कप्पे, तेरिच्छियाणं सहस्सारे कप्पे, आजीवियाणं अच्चुए कप्पे, आभिओगियाणं अच्चुए कप्पे, सलिंगीणं दंसणवावन्नगाणं उवरिमगेवेज्जएसु १४ ॥ (सू ०२५)

'अह भंते' इत्यादि व्यक्तं, नवरम् 'अथे'ति परिप्रश्नार्थः 'असंजयभवियदव्वदेवाणं'ति इह प्रज्ञापनाटीका लि-ख्यते–असंयताः–चरणपरिणामशून्याः भव्याः–देवत्वयोग्या अत एव द्रव्यदेवाः, समासश्चैवं–असंयताश्च ते भव्यद्र-व्यदेवाश्चेति असंयतभव्यद्रव्यदेवाः, तत्रैतेऽसंयतसम्यग्दृष्टयः किलेत्येके, यतः किलोक्तम्–"[1]अणुव्वयमहव्वएहि य बाल-

१ अणुव्रतैर्महाव्रतैर्बालतपसाऽकामनिर्जरया च । देवायुर्निबध्नाति यश्च जीवः सम्यग्दृष्टिः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तवोऽकामनिज्जराए य । देवाउयं निबंधइ सम्मद्दिट्ठी य जो जीवो ॥ १ ॥" एतच्चायुक्तं, यतोऽमीषामुत्कृष्टत उपरिमग्रैवेयकेषूपपात उक्तः, सम्यग्दृष्टीनां तु देशविरतानामपि न तत्रासौ विद्यते, देशविरतश्रावकाणामच्युतादूर्ध्वमगमनात्, नाप्येते निह्नवाः, तेषामिहैव भेदेनाभिधानात्, तस्मान्मिथ्यादृष्टय एवाभव्या भव्या वा असंयतभव्यद्रव्यदेवाः श्रमणगुणधारिणो निखिलसामाचार्यनुष्ठानयुक्ता द्रव्यलिङ्गधारिणो गृह्यन्ते, ते ह्यखिलकेवलक्रियाप्रभावत एवोपरिमग्रैवेयकेषूत्पद्यन्त इति, असंयताश्च ते सत्यप्यनुष्ठाने चारित्रपरिणामशून्यत्वात्, ननु कथं तेऽभव्या भव्या वा श्रमणगुणधारिणो भवन्ति ? इति, अत्रोच्यते, तेषां हि महामिथ्यादर्शनमोहप्रादुर्भावे सत्यपि चक्रवर्त्तिप्रभृत्यनेकभूपतिप्रवरपूजासत्कारसम्मानदानान् साधून् समवलोक्य तदर्थं प्रव्रज्याक्रियाकलापानुष्ठानं प्रति श्रद्धा जायते, ततश्च ते यथोक्तक्रियाकारिण इति । तथा 'अविराहियसंजमाणं'ति प्रव्रज्याकालादारभ्याभग्नचारित्रपरिणामानां संज्वलनकषायसामर्थ्यात् प्रमत्तगुणस्थानकसामर्थ्याद्वा स्वल्पमायादिदोषसम्भवेऽप्यनाचरितचरणोपघातानामित्यर्थः, तथा 'विराहियसंजमाणं'ति उक्तविपरीतानाम्, 'अविराहियसंजमासंजमाणं'ति प्रतिपत्तिकालादारभ्याखण्डितदेशविरतिपरिणामानां श्रावकाणां, 'विराहियसंजमासंजमाणं'ति उक्तव्यतिरेकिणाम् 'असन्नीणं'ति मनोलब्धिरहितानामकामनिर्जरावतां, तथा 'तावसाणं'ति पतितपत्राद्युपभोगवतां बालतपस्विनां, तथा 'कन्दप्पियाणं'ति कन्दर्पः–परिहासः स येषामस्ति तेन वा ये चरन्ति ते कन्दर्पिकाः कान्दर्पिका वा–व्यवहारतश्चरणवन्त एव कन्दर्प्पकौकुच्यादिकारकाः, तथाहि—"कंहकहकहस्स

१–कहकहकहेन हसनं कन्दर्पः अनिभृताश्लोलापाः । कन्दर्पकथाकथनं कन्दर्पोपदेशः कन्दर्पप्रशंसा च ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हसनं कंदप्पो अणिहुया य उल्लावा । कंदप्पकहाकहणं कंदप्पुवएस संसा य ॥ १ ॥ [1]भुमनयणवयणदसणच्छदेहिं करपायकम्मइहिं । तं तं करेइ जह जह हसइ परो अत्तणा अहसं ॥ २ ॥ वाया कुक्कुइओ पुण तं जंपइ जेण हस्सए अन्नो । नाणाविहजीवरुए कुवइ मुहतूरए चेव ॥ ३ ॥" इत्यादि, "[2]जो संजओवि एयासु अप्पसत्थासु भावणं कुणइ । सो तविहेसु गच्छइ सुरेसु भइओ चरणहीणो ॥ १ ॥"त्ति, अतस्तेषां कन्दर्पिकाणां, 'चरगपरिव्वायगाणं'ति चरकपरिव्राजकाचरकाः–धाटिभैक्ष्योपजीविनस्त्रिदण्डिनः, अथवा चरकाः–कच्छोटकादयः परिव्राजकास्तु–कपिलमुनिसूनवोऽतस्तेषां, 'किब्बिसियाणं'ति किल्बिषं–पापं तदस्ति येषां ते किल्बिषिकाः, ते च व्यवहारतश्चरणवन्तोऽपि ज्ञानाद्यवर्णवादिनः, यथोक्तम्–"[3]णाणस्स केवलीणं धम्मायरियस्स सव्वसाहूणं । माई अवन्नवाई किब्बिसियं भावणं कुणइ ॥ १ ॥" अतस्तेषां, तथा 'तेरिच्छियाणं'ति 'तिरश्चां' गवाश्वादीनां देशविरतिभाजाम् 'आजीवियाणं'ति पाषण्डिविशेषाणां नाग्न्यधारिणां, मोशालकशिष्याणामित्यन्ये, आजीवन्ति वा येऽविवेकिलोकतो लब्धिपूजाख्यात्यादिभिस्तपश्चरणादीनि ते आजीविकाऽस्तित्वेनाजीविका अतस्तेषां, तथा 'आभिओगियाणं'ति अभियोजनं–विद्यामन्त्रादिभिः परेषां वशीकरणाद्यभियोगः, स

१ भ्रूनयनवदनदन्तोष्ठेन करपादकर्णादिकैस्तत्तत्करोति यथा यथा परो हसति आत्मना अहसन् ॥ २ ॥ वाचा कुत्कुचितः पुनस्तज्जल्पति येनान्यो हसति । नानाविधजीवरुतान् मुखतूर्याणि च करोति ॥ ३ ॥ २ यः संयतोऽप्येतास्वप्रशस्तासु वासनां करोति स तथाविधेषु सुरेषु मच्छति चरणहीनस्तु भक्तः (स्याद्वा न वा) ॥ ३ ज्ञानस्य केवलिनां धर्माचार्यस्य सर्वसाधूनां चावर्णवादी मायी च किल्बिषिकीभावनां करोति ॥ ३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

च द्विधा, यदाह–"[1]दुविहो खलु अभिओगो दव्वे भावे य होइ नायव्वो। दव्वंमि होंति जोगा विज्जा मंता य भावंमि ॥ १ ॥" इति, सोऽस्ति येषां तेन वा चरन्ति ये तेऽभियोगिका आभियोगिका वा, ते च व्यवहारतश्चरणवन्त एव मन्त्रादिप्रयोक्तारः, यदाह–"[2]कोउयभूईकम्मे पसिणापसिणे निमित्तमाजीवी । इड्ढिरससायगरुओ अहिओगं भावणं कुणइ ॥ १ ॥" इति, [कौतुकं–सौभाग्याद्यर्थं स्नपनकं भूतिकर्म–ज्वरितादिभूतिदानं प्रश्नाप्रश्नं च–स्वप्नविद्यादि,] 'सलिंगीणं'ति रजोहरणादिसाधुलिङ्गवतां किंविधानामित्याह–'दंसणवावन्नगाणं'ति दर्शनं–सम्यक्त्वं व्यापन्नं–भ्रष्टं येषां ते तथा तेषां, निह्नवानामित्यर्थः । 'एएसि णं देवलोएसु उववज्जमाणाणं'ति, अनेन देवत्वादन्यत्रापि केचिदुत्पद्यन्त इति प्रतिपादितं, 'विराहियसंजमाणं जहन्नेणं भवणवईसु उक्कोसेणं सोहम्मे कप्पे'त्ति, इह कश्चिदाह–विराधितसंयमानामुत्कर्षेण सौधर्मे कल्पे इति यदुक्तं तत्कथं घटते ?, द्रौपद्याः सुकुमालिकाभवे विराधितसंयमाया ईशाने उत्पादश्रवणात् इति, अत्रोच्यते, तस्याः संयमविराधना उत्तरगुणविषया बकुशत्वमात्रकारिणी न तु मूलगुणविराधनेति, सौधर्मोत्पादश्च विशिष्टतरसंयमविराधनायां स्यात्, यदि पुनर्विराधनमात्रमपि सौधर्मोत्पत्तिकारकं स्यात्तदा बकुशादीनामुत्तरगुणादिप्रतिसेवावतां कथमच्युतादिषूत्पत्तिः स्यात् ?, कथञ्चिद्विराधकत्वात्तेषामिति । 'असन्नीणं जहन्नेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं वाणमंतरेसु'त्ति इह यद्यपि 'चमरबलि सारमहिय'मित्यादिवचनादसुरादयो महर्द्धिकाः 'पलिओवममु-

१ अभियोगः खलु द्विविधो द्रव्यतो भावतश्च भवति ज्ञातव्यः । द्रव्यतश्चूर्णादयो योगा भावतो योगा विद्या मन्त्राश्च ॥ १ ॥
२ स्नपनकं भूतिदानं प्रश्नाप्रश्नादिनिमित्ताजीवी च । ऋद्धिरससातगौरवितोऽभियोगिकां भावनां करोति ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः१ ॥ ५१ ॥

कोसं वंतरियाणं'ति इति वचनाच्च व्यन्तरा अल्पर्द्धिकास्तथाऽप्यत एव वचनादवसीयते–सन्ति व्यन्तरेभ्यः सकाशाद-ल्पर्द्धयो भवनपतयः केचनेति ॥ असञ्ज्ञी देवेषूत्पद्यत इत्युक्तं स चायुषा इति तदायुर्निरूपयन्नाह—

कतिविहे णं भंते ! असन्नियाउए पण्णत्ते ?, गोयमा ! चउव्विहे असन्निआउए पण्णत्ते, तंजहा–नेरइयअ-सन्निआउए तिरिक्ख० मणुस्स० देव० । असन्नी णं भंते ! जीवे किं नेरइयाउयं पकरेइ तिरि० मणु० देवाउयं पकरेइ ?, हंता गोयमा! नेरइयाउयंपि पकरेइ तिरि० मणु० देवाउयंपि पकरेइ, नेरइयाउयं पकरेमाणे जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पकरेति तिरिक्खजोणियाउयं पकरेमाणे जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पकरेइ, मणुस्साउएवि एवं चेव, देवाउयं जहा नेर-इया ॥ एयस्स णं भंते ! नेरइयअसन्निआउयस्स तिरि० मणु० देवअसन्निआउयस्स कयरे कयरे जाव विसेसाहिए वा ?, गोयमा ! सव्वत्थोवे देवअसन्निआउए, मणुस्स० असंखेज्जगुणे, तिरिय० असंखेज्जगुणे, नेरइए० असंखेज्जगुणे । सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ॥ (सू० २६) ॥ बितिओ उद्देसओ समत्तो ॥

'कइविहे ण'मित्यादि व्यक्तं, नवरम् 'असन्निआउए'त्ति असञ्ज्ञी सन् यत्परभवयोग्यमायुर्बध्नाति तदस-ञ्ज्ञायुः, 'नेरइयअसन्निआउए'त्ति नैरयिकप्रायोग्यमसञ्ज्ञायुर्नैरयिकासञ्ज्ञायुः, एवमन्यान्यपि ॥ एतच्चास-ञ्ज्ञायुः संबन्धमात्रेणापि भवति यथा भिक्षोः पात्रम्, अतस्तत्कृतत्वलक्षणसंबन्धविशेषनिरूपणायाह—'असन्नी'-त्यादि व्यक्तं, नवरं 'पकरेइ'त्ति वक्ष्यति 'दसवाससहस्साइं'ति रत्नप्रभाप्रथमप्रतरमाश्रित्य 'उक्कोसेणं पलि-

१ शतके उद्देशः २ असंज्ञ्यायुः सू २६

॥ ५१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२६]

दीप अनुक्रम [३३]

ओवमस्स असंखिज्जइभागं'ति रत्नप्रभाचतुर्थप्रतरे मध्यमस्थितिकं नारकमाश्रित्येति, कथम् ?, यतः प्रथमप्रस्तटे दश वर्षाणां सहस्राणि जघन्या स्थितिरुत्कृष्टा नवतिः सहस्राणि, द्वितीये तु दश लक्षाणि जघन्या इतरा तु नवतिर्लक्षाणि, एषैव तृतीये जघन्या इतरा तु पूर्वकोटी, एषैव चतुर्थे जघन्या इतरा तु सागरोपमस्य दशभागः एवं चात्र पल्योपमासङ्ख्येयभागो मध्यमा स्थितिर्भवति, तिर्यक्सूत्रे यदुक्तं 'पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं'ति तन्मिथुनकतिरश्चोऽधिकृत्येति । 'मणुस्साउए वि एवं चेव'त्ति जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पल्योपमासङ्ख्येयभाग इत्यर्थः, तत्र चासङ्ख्येयभागो मिथुनकनरानाश्रित्य । 'देवा जहा नेरइय'त्ति, देवा इति असञ्ज्ञिविषयं देवायुरुपचारात्तथा वाच्यं 'जहा नेरइय 'त्ति यथाऽसञ्ज्ञिविषयं नारकायुः, तच्च प्रतीतमेव, नवरं भवनपतिव्यन्तरानाश्रित्य तदवसेयमिति ॥ 'एयस्स णं भंते !'इत्यादिना यदसञ्ज्ञ्यायुषोऽल्पबहुत्वमुक्तं तदस्य ह्रस्वदीर्घत्वमाश्रित्येति ॥

॥ प्रथमशतके द्वितीय उद्देशकः ॥ २ ॥

द्वितीयोद्देशकान्तिमसूत्रेष्वायुर्विशेषो निरूपितः, स च मोहदोषे सति भवतीत्यतो मोहनीयविशेषं निरूपयन्नादौ च सङ्ग्रहगाथायां यदुक्तं 'कंखपओसे'त्ति तद्दर्शयन्नाह—

जीवाणं भंते ! कंखामोहणिज्जे कम्मे कडे ?, हंता कडे ॥ से भंते ! किं देसेणं देसे कडे ? १ देसेणं सव्वे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र प्रथम-शतके द्वितीय-उद्देशकः समाप्तः

अथ प्रथम-शतके तृतीय-उद्देशकः आरब्धः

कडे ? २ सव्वेणं देसे कडे ? ३ सव्वेणं सव्वे कडे ? ४, गोयमा ! नो देसेणं देसे कडे १ नो देसेणं सव्वे कडे २ नो सव्वेणं देसे कडे ३ सव्वेणं सव्वे कडे ४॥ नेरइया णं भंते ! कंखामोहणिज्जे कम्मे कडे ?, हंता कडे, जाव सव्वेणं सव्वे कडे ४। एवं जाव वेमाणियाणं दंडओ भाणियव्वो (सू० २७)

'जीवाण'मित्यादि व्यक्तं, नवरं जीवानां सम्बन्धि यत् 'कंखामोहणिज्जे'त्ति मोहयतीति मोहनीयं कर्म तच्च चारित्रमोहनीयमपि भवतीति विशिष्यते—काङ्क्षा—अन्यान्यदर्शनग्रहः, उपलक्षणत्वाच्चास्य शङ्कादिपरिग्रहः, ततः काङ्क्षायां मोहनीयं काङ्क्षामोहनीयं, मिथ्यात्वमोहनीयमित्यर्थः, 'कडे'त्ति कृतं क्रियानिष्पाद्यमिति प्रश्नः, उत्तरं तु 'हंता कडे'त्ति अकृतस्य कर्मत्वानुपपत्तेः॥ इह च वस्तुनः करणे चतुर्भङ्गी दृष्टा, यथा देशेन हस्तादिना वस्तुनो देशस्याच्छादनं करोति १ अथवा हस्तादिदेशेनैव समस्तस्य वस्तुनः २ अथवा सर्वात्मना वस्तुदेशस्य ३ अथवा सर्वात्मना सर्वस्य वस्तुनः ४ इत्येतां काङ्क्षामोहनीयकरणं प्रति प्रश्नयन्नाह—'से'त्ति तस्य कर्मणः भदन्त! 'किम्' इति प्रश्ने 'देशेन' जीवस्यांशेन 'देशः' काङ्क्षामोहनीयस्य कर्मणोऽंशः कृतः ? इत्येको भङ्गः १, अथ 'देशेन' जीवांशेनैव सर्वं काङ्क्षामोहनीयं कृतम् ? इति द्वितीयः २ उत 'सर्वेण' सर्वात्मना देशः काङ्क्षामोहनीयस्य कृतः ? इति तृतीयः ३ उताहो ! 'सर्वेण' सर्वात्मना सर्वं कृतम् ? इति चतुर्थः ४। अत्रोत्तरं—'सव्वेणं सव्वे कडे'त्ति जीवस्वाभाव्यात् सर्वस्वप्रदेशावगाढतदेकसमयबन्धनीयकर्म्मपुद्गलबन्धने सर्वजीवप्रदेशानां व्यापार इत्यत उच्यते—सर्वात्मना 'सर्वं' तदेककालकरणीयं काङ्क्षामोहनीयं कर्म 'कृतं' कर्मतया बद्धम्, अत एव च भङ्गत्रयप्रतिषेध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कांक्षा-मोहनीय कर्म विशेषस्य व्याख्या

इति, अत एवोक्तम्–"एगपएसोगाढं सवपएसेहिं कम्मुणो जोग्गं । बंधइजहुत्तहेउं"ति, ['एगपएसोगाढं'ति जीवापेक्षया कर्म्मद्रव्यापेक्षया च ये एके प्रदेशास्तेष्ववगाढं], सर्वजीवप्रदेशव्यापारत्वाच्च तदेकसमयबन्धनार्हं सर्वमिति गम्यम् । अथवा सर्वं यत्किञ्चित् काङ्क्षामोहनीयं तत्सर्वात्मना कृतं न देशेनेति ॥ जीवानामिति सामान्योक्तौ विशेषो नावगम्यत इति विशेषावगमाय नारकादिदण्डकेन प्रश्नयन्नाह—'नेरइयाण'मित्यादि भावितार्थमेव ॥ क्रियानिष्पाद्यं कर्मोक्तं, तत्क्रिया च त्रिकालविषयाऽतस्तां दर्शयन्नाह—

जीवा णं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं करिंसु ?, हंता करिंसु । तं भंते ! किं देसेणं देसं करिंसु ?, एएणं अभिलावेणं दंडओ भाणियव्वो जाव वेमाणियाणं, एवं करेंति एत्थवि दंडओ जाव वेमाणियाणं, एवं करेस्संति, एत्थवि दंडओ जाव वेमाणियाणं ॥ एवं चिए चिणिंसु चिणंति चिणिस्संति, उवचिए उवचिणिंसु उवचिणंति उवचिणिस्संति, उदीरेंसु उदीरेंति उदीरिस्संति, वेदिंसु वेदंति वेदिस्संति, निज्जरेंसु निज्जरेंति निज्जरिस्संति, गाहा–कडचिया उवचिया उदीरिया वेदिया य निज्जिन्ना । आदितिए चउभेदा तियभेदा पच्छिमा तिन्नि ॥ १ ॥ (सू० २८)

'जीवा ण'मित्यादि व्यक्तं, नवरं 'करिंसु'त्ति अतीतकाले कृतवन्तः, उत्तरं तु हन्त ! अकार्षुः, तदकरणेऽनादिसं-

१ स्वावगाढप्रदेशावगाढं यथोक्तहेतोः सकाशाद् योग्यं कर्म बध्नाति सर्वात्मप्रदेशैः ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ५३ ॥

साराभावप्रसङ्गात् । एवं 'करेंति' सम्प्रति कुर्वन्ति, एवं 'करिस्संति' अनेन च भविष्यत्कालता करणस्य दर्शितेति ॥ कृतस्य च कर्म्मणश्चयादयो भवन्तीति तान् दर्शयन्नाह—

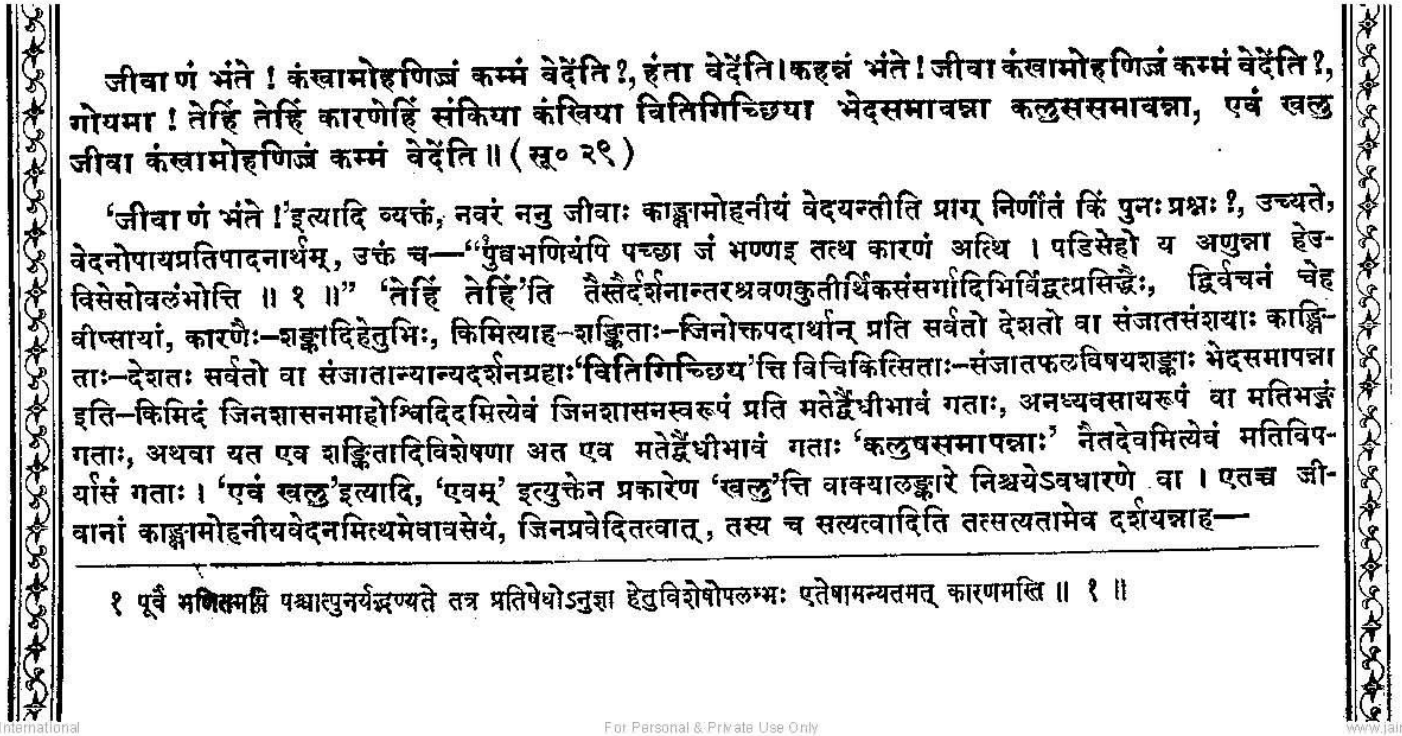
'एवं चिए'इत्यादि व्यक्तं, नवरं चयः—प्रदेशानुभागादेर्वर्द्धनम् उपचयस्तदेव पौनःपुन्येन, अन्ये त्वाहुः—चयनं—कर्म्म-पुद्गलोपादानमात्रम् उपचयनं तु चितस्याबाधाकालं मुक्त्वा वेदनार्थं निषेकः, स चैवम्—प्रथमस्थितौ बहुतरं कर्मदलिकं निषिञ्चति ततो द्वितीयायां विशेषहीनम् एवं यावदुत्कृष्टायां विशेषहीनं निषिञ्चति, उक्तं च—"मोत्तूण सगमबाहं पढ-माइ ठिईइ बहुतरं दव्वं । सेसं विसेसहीणं जावुक्कोसंति सव्वासिं ॥ १ ॥"ति । उदीरणम्—अनुदितस्य करणविशेषादुदयप्र-वेशनं, वेदनम्—अनुभवनं, निर्जरणं—जीवप्रदेशेभ्यः कर्मप्रदेशानां शातनमिति । इह च सूत्रसङ्ग्रहगाथा भवति, सा च गाहा—'कडचिए'त्यादि, भावितार्था च, नवरम् 'आइतिए'त्ति कृतचितोपचितलक्षणे 'चउभेय'त्ति सामान्यक्रियाका-लत्रयक्रियाभेदात्, 'तियभेय'त्ति सामान्यक्रियाविरहात्, 'पच्छिम'त्ति उदीरितवेदितनिर्जीर्णा मोहपुद्गला इति शेषः, 'तिन्नि'त्ति त्रयस्त्रिविधा इत्यर्थः । नन्वाद्ये सूत्रत्रये कृतचितोपचितान्युक्तानि उत्तरेषु कस्मान्नोदीरितवेदितनिर्जीर्णानि ? इति, उच्यते, कृतं चितमुपचितं च कर्म चिरमप्यवतिष्ठत इति करणादीनां त्रिकालक्रियामात्रातिरिक्तं चिरावस्थानलक्षण-कृतत्वाद्याश्रित्य कृतादीन्युक्तानि, उदीरणानां तु न चिरावस्थानमस्तीति त्रिकालवर्त्तिना क्रियामात्रेणैव तान्यभिहिता-नीति ॥ जीवाः काङ्क्षामोहनीयं कर्म वेदयन्तीत्युक्तम्, अथ तद्वेदनकारणप्रतिपादनाय प्रस्तावयन्नाह—

१ स्वकीयामबाधां मुक्त्वा प्रथमायां स्थितौ बहुतरं द्रव्यं स्थापयति, शेषायां क्रमशो विशेषहीनं यावत् सर्वासामुत्कृष्टा ॥ १ ॥

१ उद्दे कृत पचि सू

॥ ५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



जीवा णं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति ?, हंता वेदेंति। कहन्नं भंते ! जीवा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति ?, गोयमा ! तेहिं तेहिं कारणेहिं संकिया कंखिया वितिगिच्छिया भेदसमावन्ना कलुससमावन्ना, एवं खलु जीवा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति ॥ (सू० २९)

'जीवा णं भंते !'इत्यादि व्यक्तं, नवरं ननु जीवाः काङ्क्षामोहनीयं वेदयन्तीति प्राग् निर्णीतं किं पुनः प्रश्नः ?, उच्यते, वेदनोपायप्रतिपादनार्थम्, उक्तं च—"पुव्वभणियंपि पच्छा जं भण्णइ तत्थ कारणं अत्थि । पडिसेहो य अणुन्ना हेउविसेसोवलंभोत्ति ॥ १ ॥" 'तेहिं तेहिं'ति तैस्तैर्दर्शनान्तरश्रवणकुतीर्थिकसंसर्गादिभिर्विद्वत्प्रसिद्धैः, द्विर्वचनं चेह वीप्सायां, कारणैः—शङ्कादिहेतुभिः, किमित्याह—शङ्किताः—जिनोक्तपदार्थान् प्रति सर्वतो देशतो वा संजातसंशयाः काङ्क्षिताः—देशतः सर्वतो वा संजातान्यान्यदर्शनग्रहाः'वितिगिच्छिय'त्ति विचिकित्सिताः—संजातफलविषयशङ्काः भेदसमापन्ना इति—किमिदं जिनशासनमाहोश्विदिदमित्येवं जिनशासनस्वरूपं प्रति मतेर्द्वैधीभावं गताः, अनध्यवसायरूपं वा मतिभङ्गं गताः, अथवा यत एव शङ्कितादिविशेषणा अत एव मतेर्द्वैधीभावं गताः 'कलुषसमापन्नाः' नैतदेवमित्येवं मतिविपर्यासं गताः । 'एवं खलु'इत्यादि, 'एवम्' इत्युक्तेन प्रकारेण 'खलु'त्ति वाक्यालङ्कारे निश्चयेऽवधारणे वा । एतच्च जीवानां काङ्क्षामोहनीयवेदनमित्थमेवावसेयं, जिनप्रवेदितत्वात्, तस्य च सत्यत्वादिति तत्सत्यतामेव दर्शयन्नाह—

१ पूर्वं भणितमपि पश्चात्पुनर्यद्भण्यते तत्र प्रतिषेधोऽनुज्ञा हेतुविशेषोपलम्भः एतेषामन्यतमत् कारणमस्ति ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३०]

दीप अनुक्रम [३८]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ५४ ॥

से नूणं भंते ! तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं ?, हंता गोयमा ! तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेदितं ॥ (सू० ३०)

'से णूण'मित्यादि व्यक्तं, नवरं 'तदेव' न पुरुषान्तरैः प्रवेदितं, रागाद्युपहतत्वेन तत्प्रवेदितस्यासत्यत्वसम्भवात्, 'सत्यं' सूनृतं, तच्च व्यवहारतोऽपि स्यादत आह–'निःशङ्कम्' अविद्यमानसन्देहमिति ॥ अथ जिनप्रवेदितं सत्यमित्यभिप्रायवान् यादृशो भवति तद्दर्शयन्नाह—

से नूणं भंते ! एवं मणं धारेमाणे एवं पकरेमाणे एवं चिट्ठेमाणे एवं संवरेमाणे आणाए आराहए भवति ?, हंता गोयमा ! एवं मणं धारेमाणे जाव भवइ ॥ (सू० ३१)

'से नूण'मित्यादि व्यक्तं, नवरं 'नूनं'निश्चितम् 'एवं मणं धारेमाणे'त्ति 'तदेव सत्यं निःशङ्कं यज्जिनैः प्रवेदित'मित्यनेन प्रकारेण मनो–मानसमुत्पन्नं सत् धारयन्–स्थिरीकुर्वन् 'एवं पकरेमाणे'त्ति उक्तरूपेणानुत्पन्नं सत् प्रकुर्वन्–विदधानः 'एवं चिट्ठेमाणे'त्ति उक्तन्यायेन मनश्चेष्टयन् नान्यमतानि सत्यानीत्यादिचिन्तायां व्यापारयन् चेष्टमानो वा विधेयेषु तपोध्यानादिषु 'एवं संवरेमाणे'त्ति उक्तवदेव मनः संवृण्वन्–मतान्तरेभ्यो निवर्त्तयन् प्राणातिपातादीन् वा प्रत्याचक्षाणो जीव इति गम्यते, 'आणाए'त्ति आज्ञायाः–ज्ञानाद्यासेवारूपजिनोपदेशस्य 'आराहए'त्ति आराधकः–पालयिता भवतीति ॥ अथ कस्मात्तदेव सत्यं यज्जिनैः प्रवेदितम् ? इति, अत्रोच्यते, यथावद्वस्तुपरिणामाभिधानादिति तमेव दर्शयन्नाह—

१ श उद्देश काङ्क्षा नीयहे सू ३ जिनो त्यता आरा मनो णादि

॥ ५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३२]

दीप अनुक्रम [४०]

से नूणं भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ ?, हंता गोयमा ! जाव परिणमइ ॥ जण्णं भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ तं किं पयोगसा वीससा ?, गोयमा ! पयोगसावि तं वीससावि तं ॥ जहा ते भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ तहा ते नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ ? जहा ते नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ तहा ते अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ ?, हंता गोयमा ! जहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ तहा मे नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ, जहा मे नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ तहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ ॥ से णूणं भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्जं जहा परिणमइ दो आलावगा तहा ते इह गमणिज्जेणवि दो आलावगा भाणियव्वा जाव जहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्जं ॥ (सू० ३२)

'से णूणमि'त्यादि 'अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ'त्ति, अस्तित्वं–अङ्गुल्यादेः अङ्गुल्यादिभावेन सत्त्वम्, उक्तञ्च—"सर्वमस्ति स्वरूपेण, पररूपेण नास्ति च । अन्यथा सर्वभावानामेकत्वं संप्रसज्यते ॥ १ ॥" तच्चेह ऋजुत्वादिपर्यायरूपमवसेयम्, अङ्गुल्यादिद्रव्यास्तित्वस्य कथञ्चिदृजुत्वादिपर्यायाव्यतिरिक्तत्वात् अस्तित्वे–अङ्गुल्यादेरेवाङ्गुल्यादिभावेन सत्त्वे वक्रत्वादिपर्याये इत्यर्थः 'परिणमति' तथा भवति, इदमुक्तं भवति–द्रव्यस्य प्रकारान्तरेण सत्ता प्रकारान्तरसत्तायां वर्त्तते यथा मृद्द्रव्यस्य पिण्डप्रकारेण सत्ता घटप्रकारसत्तायामिति । 'नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ'त्ति नास्तित्वम्–अङ्गुल्यादेरङ्गुष्ठादिभावेनासत्त्वं तच्चाङ्गुष्ठादिभाव एव, ततश्चाङ्गुल्यादेर्नास्तित्वमङ्गुष्ठाद्यस्तित्वरूपमङ्गुल्यादेर्नास्तित्वे अङ्गुष्ठादेः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अस्ति नास्ति आदि परिणामस्य वर्णनं

पर्यायान्तरेणास्तित्वरूपे परिणमति, यथा मृदो नास्तित्वं तन्त्वादिरूपं मृन्नास्तित्वरूपे पटे इति, अथवाऽस्तित्वमिति–धर्म-धर्मिणोरभेदात् सद्वस्तु अस्तित्वे–सत्त्वे परिणमति, तत्सदेव भवति, नात्यन्तं विनाशि स्याद्, विनाशस्य पर्यायान्तरगम-नमात्ररूपत्वात्, दीपादिविनाशस्यापि तमिस्रादिरूपतया परिणामात्, तथा **'नास्तित्वम्'** अत्यन्ताभावरूपं यत् खरवि-षाणादि तत् **'नास्तित्वे'** अत्यन्ताभाव एव वर्त्तते, नात्यन्तमसतः सत्त्वमस्ति, खरविषाणस्येवेति, उक्तं च—"नासतो जायते भावो, नाभावो जायते सतः।" अथवाऽस्तित्वमिति धर्मभेदात् सद् **'अस्तित्वे'** सत्त्वे वर्त्तते, यथा पटः पटत्व एव, नास्तित्वं चासत् **'नास्तित्वे'** असत्त्वे वर्त्तते, यथा अपटोऽपटत्व एवेति ॥ अथ परिणामहेतुदर्शनायाह— **'जं न'**मित्यादि **'अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ'**त्ति पर्यायः पर्यायान्तरतां यातीत्यर्थः **'नत्थित्तं नत्थित्ते परिण-मइ'**त्ति वस्त्वन्तरस्य पर्यायस्तत्पर्यायान्तरतां यातीत्यर्थः, **'पओगस'**त्ति सकारस्यागमिकत्वात् **'प्रयोगेण'** जीवव्यापारेण **'वीसस'**त्ति यद्यपि लोके विश्रसाशब्दो जरापर्यायतया रूढस्तथाऽपीह स्वभावार्थो दृश्यः, इह प्राकृतत्वाद् **'वीससाए'**त्ति वाच्ये **'वीससा'** इत्युक्तमिति, अत्रोत्तरम्–**'पओगसावि तं'**ति प्रयोगेणापि तद्–अस्तित्वादि, यथा कुलालव्यापारान्मृ-त्पिण्डो घटतया परिणमति, अङ्गुलिऋजुता वा वक्रतयेति, **'अपिः'** समुच्चये, **'वीससावि तं'**ति, यथा शुभ्राभ्रमशु-भ्राभ्रतया, नास्तित्वस्यापि नास्तित्वपरिणामे प्रयोगविश्रसयोरेतान्येवोदाहरणानि, वस्त्वन्तरापेक्षया मृत्पिण्डादेरस्तित्वस्य नास्तित्वात्, सत्सदेव स्यादिति व्याख्यानान्तरेऽप्येतान्येवोदाहरणानि पूर्वोत्तरावस्थयोः सद्रूपत्वादिति, यदपि–'अभा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	अस्ति नास्ति आदि परिणामस्य वर्णनं

वोऽभाव एव स्याद्' इति व्याख्यातं तत्रापि प्रयोगेणापि तथा विस्रसयाऽपि अभावोऽभाव एव स्यात् न प्रयोगादेः साफल्यमिति व्याख्येयमिति ॥ अथोक्तहेत्वोरुभयत्र समतां भगवदभिमततां च दर्शयन्नाह— 'जहा ते'इत्यादि, 'यथा' प्रयोगविश्रसाभ्यामित्यर्थः 'ते'इति तव मतेन अथवा सामान्येनास्तित्वमास्तित्वपरिणामः प्रयोगविश्रसाजन्य उक्तः, सामान्यश्च विधिः क्वचिदतिशयवति वस्तुन्यन्यथाऽपि स्याद् अतिशयवांश्च भगवानिति तमाश्रित्य परिणामान्यथात्वमाशङ्कमान आह–'जहा ते'इत्यादि, 'ते'इति तव सम्बन्धि अस्तित्वं, शेषं तथैवेति ॥ अथोक्तस्वरूपस्यैवार्थस्य सत्यत्वेन प्रज्ञापनीयतां दर्शयितुमाह—'से णूण'मित्यादि, अस्तित्वमस्तित्वे गमनीयं सद्वस्तु सत्त्वेनैव प्रज्ञापनीयमित्यर्थः, 'दो आलावग'त्ति 'से णूणं भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्ज'मित्यादि 'पओगसावि तं वीससावि तं' इत्येतदन्त एकः, परिणामभेदाभिधानात्, 'जहा ते भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्ज'मित्यादि 'तहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्ज' मित्येतदन्तस्तु द्वितीयोऽस्तित्वनास्तित्वपरिणामयोः समताऽभिधायीति ॥ एवं वस्तुप्रज्ञापनाविषयां समभावतां भगवतोऽभिधायाथ शिष्यविषयां तां दर्शयन्नाह—

जहा ते भंते ! एत्थ गमणिज्जं तहा ते इहं गमणिज्जं, जहा ते इहं गमणिज्जं तहा ते एत्थं गमणिज्जं ?, हंता ! गोयमा !, जहा ! मे एत्थं गमणिज्जं जाव तहा मे एत्थं (इहं) गमणिज्जं ॥ (सू० ३२)

'जहा ते'इत्यादि 'यथा' स्वकीयपरकीयताऽनपेक्षतया समत्वेन विहितमितिप्रवृत्त्या उपकारबुद्ध्या वा 'ते' तव भद-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ५६ ॥

न्त ! 'एत्थं'ति एतस्मिन् मयि संनिहिते स्वशिष्ये गमनीयं–वस्तु प्रज्ञापनीयं 'तथा' तेनैव समतालक्षणप्रकारेण उपकारिधिया वा 'इह'ति 'इह' अस्मिन् गृहिपाषण्डिकादौ जने गमनीयं ? वस्तु प्रकाशनीयमिति प्रश्नः । अथवा 'एत्थं'ति स्वात्मनि यथा गमनीयं सुखप्रियत्वादि तथा 'इह' परात्मनि, अथवा यथा प्रत्यक्षाधिकरणार्थतया 'एत्थ'मित्येतच्छब्दरूपं गमनीयं तथा 'इह'मित्येतच्छब्दरूपमिति ?, समानार्थत्वाद् द्वयोरपीति ॥ काङ्क्षामोहनीयकर्मवेदनं सप्रसङ्गमुक्तम्, अथ तस्यैव बन्धमभिधातुमाह—

जीवाणं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं बंधंति ?, हंता बंधंति । कहं णं भंते ! जीवा कंखामोहणिज्जं कम्मं बंधंति ?, गोयमा ! पमादपच्चया जोगनिमित्तं च ॥ से णं भंते ! पमाए किंपवहे ?, गोयमा ! जोगप्पवहे । से णं भंते ! जोए किंपवहे ?, गोयमा ! वीरियप्पवहे । से णं भंते वीरिए किंपवहे ?, गोयमा ! सरीरप्पवहे । से णं भंते ! सरीरे किंपवहे ?, गोयमा ! जीवप्पवहे । एवं सति अत्थि उट्ठाणे ति वा कम्मे ति वा बले इ वा वीरिए इ वा पुरिसक्कारपरक्कमे इ वा ॥ (सू० ३४)

'जीवाणं भंते ! कंखे'त्यादि 'पमायपच्चय'त्ति 'प्रमादप्रत्ययात्' प्रमत्ततालक्षणाद्धेतोः प्रमादश्च मद्यादिः, अथवा प्रमादग्रहणेन मिथ्यात्वाविरतिकषायलक्षणं बन्धहेतुत्रयं गृहीतम्, इष्यते च प्रमादेऽन्तर्भावोऽस्य, यदाह–"पमाओ य

१ प्रमादश्च मुनीन्द्रैरष्टभेदो भणितः । अज्ञानं संशयश्चैव मिथ्याज्ञानं तथैव च ॥ १ ॥ रागो द्वेषो मतिभ्रंशो धर्मे चानादरः । योगानां दुष्प्रणिधानमष्टधाऽपि वर्जयितव्यः ॥ २ ॥

१ शतके उद्देशः ३ अत्रेइसम-गमनी-यता सू. ३३ काङ्क्षामोह-हेतवः सू. ३४

॥ ५६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कांक्षा-मोहनियस्य हेतवः, 'प्रमाद' शब्दस्य विविध अर्थाः

प्रत सूत्रांक [३४]

दीप अनुक्रम [४२]

मुणिंदेहिं, भणिओ अट्ठभेयओ। अण्णाणं संसओ चेव, मिच्छानाणं तहेव य ॥ १ ॥ रागो दोसो मइब्भंसो, धम्मंमि य अणायरो। जोगाणं दुप्पणीहाणं, अट्ठहा वज्जियव्वओ ॥ २ ॥" त्ति। तथा 'योगनिमित्तं च' योगाः–मनःप्रभृतिव्यापाराः ते निमित्तं–हेतुर्यत्र तत्तथा बध्नन्तीति, क्रियाविशेषणं चेदम्, एतेन च योगाख्यश्चतुर्थः कर्मबन्धहेतुरुक्तः, चशब्दः समुच्चये। अथ प्रमादादेरेव हेतुफलभावं दर्शनायाह—'से ण'मित्यादि 'पमाए किंपवहे'त्ति प्रमादोऽसौ कस्मात् प्रवहति–प्रवर्त्तत इति किंप्रवहः ?, पाठान्तरेण किंप्रभवः ?, 'जोगप्पवहे'त्ति योगो–मनःप्रभृतिव्यापारः, तत्प्रवहत्वं च प्रमादस्य मद्याद्यासेवनस्य मिथ्यात्वादित्रयस्य च मनःप्रभृतिव्यापारसद्भावे भावात्, 'वीरियप्पवहे'त्ति वीर्यं नाम वीर्यान्तरायकर्मक्षयक्षयोपशमसमुत्थो जीवपरिणामविशेषः, 'सरीरप्पवहे'त्ति वीर्यं द्विधा–सकरणमकरणं च, तत्रालेश्यस्य केवलिनः कृत्स्नयोर्ज्ञेयदृश्ययोः केवलं ज्ञानं दर्शनं चोपयुञ्जानस्य योऽसावपरिस्पन्दोऽप्रतिघो जीवपरिणामविशेषस्तदकरणं तदिह नाधिक्रियते, यस्तु मनोवाक्कायकरणसाधनः सलेश्यजीवकर्तृको जीवप्रदेशपरिस्पन्दात्मको व्यापारोऽसौ सकरणं वीर्यं तच्च शरीरप्रवहं, शरीरं विना तदभावादिति। 'जीवप्पवहे'त्ति इह यद्यपि शरीरस्य कर्मापि कारणं न केवलमेव जीवस्तथाऽपि कर्मणो जीवकृतत्वेन जीवप्राधान्यात् जीवप्रवहं शरीरमित्युक्तम्। अथ प्रसङ्गतो गोशालकमतं निषेधयन्नाह—'एवं सइ'त्ति, 'एवम्' उक्तन्यायेन जीवस्य काङ्क्षामोहनीयकर्मबन्धकत्वे सति 'अस्ति' विद्यते नतु नास्ति, यथा गोशालकमते नास्ति जीवानामुत्थानादि, पुरुषार्थासाधकत्वात्, नियतित एव पुरुषार्थसिद्धेः, यदाह–"प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थः सोऽवश्यं भवति नृणां शुभो-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कांक्षा-मोहनियस्य हेतवः, 'प्रमाद' शब्दस्य विविध अर्थाः

ऽशुभो वा । भूतानां महति कृतेऽपि हि प्रयत्ने, नाभाव्यं भवति न भाविनोऽस्ति नाशः ॥ १ ॥" इति । एवं हि अप्रामाणिकाया नियतेरभ्युपगमः कृतो भवति अध्यक्षसिद्धपुरुषकारापलापश्च स्यादिति । 'उट्ठाणे इ व'त्ति उत्थानमिति वेति वाच्ये प्राकृतत्वात्सन्धिलोपाभ्यामेवं निर्देशः, तत्र 'उत्थानम्' ऊर्ध्वीभवनम् 'इतिः' उपप्रदर्शने वाशब्दो विकल्पे समुच्चये वा 'कम्मे इ व'त्ति कर्म–उत्क्षेपणापक्षेपणादि 'बले इ व'त्ति बलं–शारीरः प्राणः 'वीरिए इ व'त्ति वीर्यं–जीवोत्साहः 'पुरिसक्कारपरक्कमे इ व'त्ति पुरुषकारश्च पौरुषाभिमानः पराक्रमश्च स एव साधिताभिमतप्रयोजनः पुरुषकारपराक्रमः अथवा पुरुषकारः–पुरुषक्रिया सा च प्रायः स्त्रीक्रियातः प्रकर्षवती भवतीति तत्स्वभावत्वादिति विशेषेण तद्ग्रहणं, पराक्रमस्तु शत्रुनिराकरणमिति ॥ काङ्क्षामोहनीयस्य वेदनं बन्धश्च सहेतुक उक्तः, अथ तस्यैवोदीरणामन्यच्च तद्गतमेव दर्शयन्नाह—

से णूणं भंते ! अप्पणा चेव उदीरेइ अप्पणा चेव गरहइ अप्पणा चेव संवरइ ?, हंता ! गोयमा ! अप्पणा चेव तं चेव उच्चारेयव्वं ३ ॥ जं तं भंते ! अप्पणा चेव उदीरेइ अप्पणा चेव गरहेइ अप्पणा चेव संवरेइ तं किं उदिन्नं उदीरेइ १ अणुदिन्नं उदीरेइ २ अणुदिन्नं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ ३ उदयाणंतरपच्छाकडं कम्मं उदीरेइ ४ ?, गोयमा ! नो उदिण्णं उदीरेइ १ नो अणुदिन्नं उदीरेइ २ अणुदिन्नं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ ३ णो उदयाणंतरपच्छाकडं कम्मं उदीरेइ ४ ॥ जं तं भंते ! अणुदिन्नं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ तं किं उट्ठाणेणं कम्मेणं बलेणं वीरिएणं पुरिसक्कारपरक्कमेणं अणुदिन्नं उदीरणाभवियं क० उदी० ? उदाहु तं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणुट्ठाणेणं अकम्मेणं अबलेणं अवीरियेणं अपुरिसक्कारपरक्कमेणं अणुदिन्नं उदीरणाभवियं कम्मं उदी० ?, गोयमा ! तं० उट्ठाणेणवि कम्मे० बले० वीरिए० पुरिसक्कारपरक्कमेणवि अणुदिन्नं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ, णो तं अणुट्ठाणेणं अकम्मेणं अबलेणं अवीरियेणं अपुरिसक्कार० अणुदिन्नं उदी० भ० क० उदी०, एवं सति अत्थि उट्ठाणे इ वा कम्मे इ वा बले इ वा वीरिए इ वा पुरिसक्कारपरक्कमे इ वा ॥ से नूणं भंते ! अप्पणा चेव उवसामेइ अप्पणा चेव गरहइ अप्पणा चेव संवरइ ?, हंता गोयमा ! एत्थ वि तहेव भाणियव्वं, नवरं अणुदिन्नं उवसामेइ सेसा पडिसेहेयव्वा तिन्नि ॥ जं तं भंते ! अणुदिन्नं उवसामेइ तं किं उट्ठाणेणं जाव पुरिसक्कारपरक्कमेति वा, से नूणं भंते ! अप्पणा चेव वेदेइ अप्पणा चेव गरहइ?, एत्थवि सचेव परिवाडी, नवरं उदिन्नं वेएइ नो अणुदिन्नं वेएइ, एवं जाव पुरिसक्कारपरिक्कमे इ वा । से नूणं भंते ! अप्पणा चेव निज्जरेति अप्पणा चेव गरहइ, एत्थवि सचेव परिवाडी नवरं उदयाणंतरपच्छाकडं कम्मं निज्जरेइ एवं जाव परिक्कमेइ वा ॥ (सू० ३५)

'अप्पणा चेव'त्ति 'आत्मनैव' स्वयमेव जीवः, अनेन कर्मणो बन्धादिषु मुख्यवृत्त्याऽऽत्मन एवाधिकारः उक्तो, नाप-रस्य, आह च–"[1]अणुमेत्तोवि न कस्सइ बंधो परवत्थुपच्चया भणिओ "त्ति । 'उदीरेइति'करणविशेषेणाकृष्य भवि-

१ परवस्तुप्रत्ययिकोऽणुमात्रोऽपि बन्धो न कस्यापि भणितः ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यत्कालवेद्यं कर्म क्षपणायोदयावलिकायां प्रवेशयति। तथा 'गरहइ'त्ति आत्मनैव गर्हते निन्दतीत्यतीतकालकृतं कर्म स्वरूपतः तत्कारणगर्हणद्वारेण वा जातविशेषबोधः सन्। तथा 'संवरइ'त्ति संवृणोति न करोति वर्त्तमानकालिकं कर्म स्वरूपतस्तद्धेतुसंवरणद्वारेण वेति, गर्हादौ च यद्यपि गुर्वादीनामपि सहकारित्वमस्ति तथाऽपि न तेषां प्राधान्यं जीववीर्यस्यैव तत्र कारणत्वात्, गुर्वादीनां च वीर्योल्लासनमात्र एव हेतुत्वादिति ॥ अथोदीरणामेवाश्रित्याह— 'जं तं भंते !' इत्यादि व्यक्तं, नवरम् अथोदीरयतीत्यादिपदत्रयोद्देशेऽपि कस्मात् 'तं किं उदिन्नं उदीरेइ'इत्यादिनाऽऽद्यपदस्यैव निर्देशः कृतः ?, उच्यते—उदीरणादिके कर्मविशेषणचतुष्टये उदीरणामेवाश्रित्य विशेषणस्य सद्भावाद् इतरयोस्तु तदभावाद्, एवं तर्हि उद्देशसूत्रे गर्हिते संवृणोतीत्येतत् पदद्वयं कस्मादुपात्तम् ? उत्तरत्रानिर्देक्ष्यमाणत्वात्तस्येति, उच्यते—कर्मण उदीरणायां गर्हासंवरणे प्राय उपायावित्यभिधानार्थम्, एवमुत्तरत्रापि वाच्यमिति। प्रश्नार्थश्चेहोत्तरव्याख्यानाद्बोद्धव्यः, तत्र 'नो उदिन्नं उदीरेइ'त्ति १ उदीर्णत्वादेव, उदीर्णस्याप्युदीरणे उदीरणाऽविरामप्रसङ्गात्। 'नो अणुदिन्नं उदीरेइ'त्ति २ इहानुदीर्णं—चिरेण भविष्यदुदीरणम् अभविष्यदुदीरणं च तन्नोदीरयति तद्विषयोदीरणायाः सम्प्रत्यनागतकाले चाभावात्। 'अणुदिन्नं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ'त्ति ३ अनुदीर्णं स्वरूपेण किन्त्वनन्तरसमय एव यदुदीरणाभविकं तदुदीरयति, विशिष्टयोग्यताप्राप्तत्वात्, तत्र भविष्यतीति भवा सैव भविका उदीरणा भविका यस्येति प्राकृतत्वाद् उदीरणाभविकम्, अन्यथा भविकोदीरणमिति स्यात्, उदीरणायां वा भव्यं—योग्यमुदीरणाभव्यमिति। 'नो उदयाणंतरपच्छाकडं'न्ति ४ उदयेनानन्तरसमये पश्चात्कृतम्—अतीततां नीतं यत्तत्तथा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तदपि नोदीरयति, तस्यातीतत्वात् अतीतस्य चासत्त्वाद् असतश्चानुदीरणीयत्वादिति ॥ इह च यद्यप्युदीरणादिषु कालस्वभावादीनां कारणत्वमस्ति तथाऽपि प्राधान्येन पुरुषवीर्यस्यैव कारणत्वमुपदर्शयन्नाह—'जं त'मित्यादि व्यक्तं, नवरम् उत्थानादिनोदीरयतीत्युक्तं, तत्र च यदापन्नं तदाह–'एवं सइ'त्ति 'एवम्' उत्थानादिसाध्ये उदीरणे सतीत्यर्थः, शेषं तथैव ॥ काङ्क्षामोहनीयस्योदीरणोक्ता, अथ तस्यैवोपशमनमाह—'से णूण' मित्यादि, उपशमनं मोहनीयस्यैव, यदाह–"[१]मोहस्सेवोवसमो खाओवसमो चउण्ह घाईणं । उदयक्खयपरिणामा अट्ठण्हवि होंति कम्माणं ॥ १ ॥" उपशमश्चोदीर्णस्य क्षयः अनुदीर्णस्य च विपाकतः प्रदेशतश्चाननुभवनं, सर्वथैव विष्कम्भितोदयत्वमित्यर्थः, अयं चानादिमिथ्यादृष्टेरौपशमिकसम्यक्त्वलाभे उपशमश्रेणिगतस्य चेति, 'अणुदिन्नं उवसामेति'त्ति उदीर्णस्य त्ववश्यं वेदनादुपशमनाभाव इति । उदीर्णं सद्वेद्यते इति वेदनसूत्रं, तत्र 'उदिन्नं वेएइ'त्ति अनुदीर्णस्य वेदनाभावात्, अथानुदीर्णमपि वेदयति तर्हि उदीर्णानुदीर्णयोः को विशेषः स्यात् ? इति। वेदितं सन्निर्जीर्यत इति निर्जरासूत्रं, तत्र 'उदयाणंतरपच्छाकडं'ति उदयेनानन्तरसमये यत्पश्चात्कृतम्–अतीततां गमितं तत्तथा तत् 'निर्जरयति' प्रदेशेभ्यः शातयति, नान्यद्, अननुभूतरसत्वादिति । उदीरणोपशमवेदनानिर्जरणसूत्रोक्तार्थसङ्ग्रहगाथा–"[२]तइएण उदीरेंति

१ उपशमो मोहस्यैव क्षयोपशमो घातिनां चतुर्णाम् । उदयक्षयपरिणामा अष्टानामपि कर्मणां भवन्ति ॥ १ ॥ २ तृतीयेनोदीरयन्ति उपशमयन्ति च पुनरपि द्वितीयेन । वेदयन्ति निर्जरयन्ति च प्रथमचतुर्थयोः सर्वेऽपि ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ५९ ॥

उवसामेंति य पुणोवि बीएणं । वेइंति निजरंति य पढमचउत्थेहिं सव्वेऽवि ॥ १ ॥" अथ काङ्क्षामोहनीयवेदनादिकं निर्जरान्तं सूत्रप्रपञ्चं नारकादिचतुर्विंशतिदण्डकैर्निर्योजयन्नाह—

नेरइयाणं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं वेएइ?, जहा ओहिया जीवा तहा नेरइया, जाव थणियकुमारा ॥ पुढविक्काइयाणं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं वेइंति, हंता वेइंति, कहण्णं भंते ! पुढविक्का० कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति ?, गोयमा ! तेसिणं जीवाणं णो एवं तक्का इ वा सण्णा इ वा पण्णा इ वा मणे इ वा वइ त्ति वा—अम्हे णं कंखामोहणिज्जं कम्मं वेएमो, वेएंति पुण ते । से णूणं भंते ! तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं, सेसं तं चेव, जाव पुरिसक्कारपरिक्कमेइ वा । एवं जाव चउरिंदियाणं पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जाव वेमाणिया जहा ओहिया जीवा ॥ (सू० ३६)

इह च 'जहा ओहिया जीवा'इत्यादिना 'हंता वेयंति, कहन्नं भंते ! नेरइयाणं कङ्खामोहणिज्जं कम्मं वेयंति ?, गोयमा ! तेहिं तेहिं कारणेहिं' इत्यादिसूत्रं निर्जरासूत्रान्तं स्तनितकुमारप्रकरणान्तेषु प्रकरणेषु सूचितं, तेषु च यत्र यत्र जीवपदं प्रागधीतं तत्र तत्र नारकादिपदमध्येयमिति । पञ्चेन्द्रियाणामेव शङ्कितत्वादयः काङ्क्षामोहनीयवेदनप्रकारा घटन्ते नैकेन्द्रियादीनाम्, अतस्तेषां विशेषेण तद्वेदनप्रकारदर्शनायाह—'पुढविक्काइयाण'मित्यादि व्यक्तं, नवरम्–'एवं तक्का इ व'त्ति एवं–वक्ष्यमाणोल्लेखेन तर्को–विमर्शः, स्त्रीलिङ्गनिर्देशश्च प्राकृतत्वात्, 'सन्नाइ व'त्ति सञ्ज्ञा–अर्थावग्रहरूपं ज्ञानं, 'पण्णा इ व'त्ति प्रज्ञा–अशेषविशेषविषयं ज्ञानमेव,

१ शतके उद्देशः ३ काङ्क्षामोह-नीयवेदनं सू ३६

॥ ५९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	कांक्षा-मोहनियस्य वेदनं

'मणे इ व'त्ति मनः स्मृत्यादिशेषमतिभेदरूपं, 'वइ इ व'त्ति वाग्–वचनं, 'सेसं तं चेव'त्ति शेषं तदेव यथा औधिक-प्रकरणेऽधीतं, तच्चेदम्–'हंता गोयमा ! तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं । से णूणं भंते ! एवं मणं धारेमाणे'इत्यादि तावद्वाच्यं यावत् 'से णूणं भंते ! अप्पणा चेव निज्जरेइ अप्पणा चेव गरहइ' इत्यादेः सूत्रस्य 'पुरिसक्कारपरक्कमेइ व'त्ति पदम् । 'एवं जाव चउरिंदिय'त्ति पृथिवीकायप्रकरणवदप्कायादिप्रकरणानि चतुरिन्द्रियप्रकरणान्तान्यध्येयानि, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रकरणादीनि तु वैमानिकप्रकरणान्तानि औधिकजीवप्रकरणवत्तदभिलापेनाध्येयानीति, अत एवाह— 'पंचेदिए'त्यादि ॥ भवतु नाम शेषजीवानां काङ्क्षामोहनीयवेदनं निर्ग्रन्थानां पुनस्तन्न संभवति जिनागमावदातबुद्धित्वात्तेषामिति प्रश्नयन्नाह—

अत्थि णं भंते ! समणावि निग्गंथा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेएइ ?, हंता अत्थि, कहन्नं भंते ! समणा निग्गंथा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेएइ ?, गोयमा ! तेहिं २ नाणंतरेहिं दंसणंतरेहिं चरित्तंतरेहिं लिंगंतरेहिं पवयणंतरेहिं पावयणंतरेहिं कप्पंतरेहिं मग्गंतरेहिं मतंतरेहिं भंगंतरेहिं णयंतरेहिं नियमंतरेहिं पमाणंतरेहिं संकिया कंखिया वितिगिच्छिया भेयसमावन्ना कलुससमावन्ना, एवं खलु समणा निग्गंथा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेइंति, से नूणं भंते ! तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं, हंता गोयमा ! तमेव सच्चं नीसंकं, जाव पुरिसक्कारपरक्कमेइ वा सेवं भंते सेवं भंते ! ॥ (सू० ३७) पढमसए ततिओ ॥ १–३ ॥

'अत्थि ण'मित्यादि काङ्काऽध्येयम् 'अस्ति'विद्यतेऽयं पक्षः–यदुत 'श्रमणाः' व्रतिनः, अपिशब्दः श्रमणानां काङ्क्षा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कांक्षा-मोहनियस्य वेदनं

मोहनीयस्यावेदनसंभावनार्थः, ते च शाक्यादयोऽपि भवन्तीत्याह–'निर्ग्रन्थाः' सबाह्याभ्यन्तरग्रन्थान्निर्गताः, साधव इत्यर्थः, 'णाणंतरेहिं'ति एकस्माज्ज्ञानादन्यानि ज्ञानानि ज्ञानान्तराणि तैर्ज्ञानविशेषैर्ज्ञानविशेषेषु वा शङ्किता इत्यादिभिः संबन्धः, एवं सर्वत्र, तेषु चैवं शङ्कादयः स्युः–यदि नाम परमाण्वादिसकलरूपिद्रव्यावसानविषयग्राहकत्वेन सङ्ख्यातीतरूपा प्यवधिज्ञानानि सन्ति तत्किमपरेण मनःपर्यायज्ञानेन ?, तद्विषयभूतानां मनोद्रव्याणामवधिनैव दृष्टत्वात्, उच्यते चा-गमे मनःपर्यायज्ञानमिति किमत्र तत्त्वमिति ज्ञानतः शङ्का, इह समाधिः–यद्यपि मनोविषयमप्यवधिज्ञानमस्ति तथाऽपि न मनःपर्यायज्ञानमवधावन्तर्भवति, भिन्नस्वभावत्वात्, तथाहि–मनःपर्यायज्ञानं मनोमात्रद्रव्यग्राहकमेवादर्शनपूर्वकं च, अवधिज्ञानं तु किञ्चिन्मनोव्यतिरिक्तद्रव्यग्राहकं किञ्चिच्चोभयग्राहकं दर्शनपूर्वकं च न तु केवलमनोद्रव्यग्राहकम् इत्या-दि बहु वक्तव्यमतोऽवधिज्ञानातिरिक्तं भवति मनःपर्यायज्ञानमिति । तथा दर्शनं–सामान्यबोधः, तत्र यदि नामेन्द्रियानि-न्द्रियनिमित्तः सामान्यार्थविषयो बोधो दर्शनं तदा किमेकश्चक्षुर्दर्शनमन्यस्त्वचक्षुर्दर्शनम्, अथेन्द्रियानिन्द्रियभेदाद् भेदस्तदा चक्षुष इव श्रोत्रादीनामपि दर्शनभावात् षडिन्द्रियनोइन्द्रियजानि दर्शनानि स्युर्न द्वे एवेति, अत्र समाधिः—सामान्य-विशेषात्मकत्वाद्वस्तुनः क्वचिद्विशेषतस्तन्निर्देशः क्वचिच्च सामान्यतः, तत्र चक्षुर्दर्शनमिति विशेषतः अचक्षुर्दर्शनमिति च सामान्यतः, यच्च प्रकारान्तरेणापि निर्देशस्य सम्भवे चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनं चेत्युक्तं तदिन्द्रियाणामप्राप्तकारित्वप्राप्तकारि-त्वविभागात्, मनसस्त्वप्राप्तकारित्वेऽपि प्राप्तकारीन्द्रियवर्गस्य तदनुसरणीयस्य बहुत्वात्तद्दर्शनस्याचक्षुर्दर्शनशब्देन ग्रहण-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कांक्षा-मोहनियस्य वेदनं

मिति । अथवा दर्शनं–सम्यक्त्वं तत्र च शङ्का–"मिच्छत्तं जमुदिन्नं तं खीणं अणुदियं च उवसंतं" । इत्येवंलक्षणं क्षायोपशमिकम्, औपशमिकमप्येवंलक्षणमेव, यदाह–"खीणम्मि उइन्नम्मी अणुदिज्जंते य सेसमिच्छत्ते । अंतोमुहुत्तमेत्तं उवसमसम्मं लहइ जीवो ॥ १ ॥" ततोऽनयोर्न विशेषः उक्तश्चासाविति, समाधिश्च–क्षयोपशमो हि उदीर्णस्य क्षयोऽनुदीर्णस्य च विपाकानुभवापेक्षयोपशमः, प्रदेशानुभवस्तूदयोऽस्त्येव, उपशमे तु प्रदेशानुभवोऽपि नास्तीति, उक्तं च–"[१]वेएइ संतकम्मं खओवसमिएसु नाणुभावं सो । उवसंतकसाओ पुण वेदेइ ण संतकम्मं ति (पि) ॥ १ ॥" तथा चारित्रं–चरणं तत्र यदि सामायिकं सर्वसावद्यविरतिलक्षणं छेदोपस्थापनीयमपि तल्लक्षणमेव, महाव्रतानामवद्यविरतिरूपत्वात्, तत्कोऽनयो भेदः ? उक्तश्चासाविति, अत्र समाधिः–ऋजुजडवक्रजडानां प्रथमचरमजिनसाधूनामाश्वासनाय छेदोपस्थापनीयमुक्तं, व्रतारोपणे हि मनाक् सामायिकाशुद्धावपि व्रताखण्डनाच्चारित्रिणो वयं चारित्रस्य व्रतरूपत्वादिति बुद्धिः स्यात्, सामायिकमात्रे तु तदशुद्धौ भग्नं नश्चारित्रं चारित्रस्य सामायिकमात्रत्वादित्येवमनाश्वासस्तेषां स्यादिति, आह च— "[२]रिउवक्कजडा पुरिमेयराण सामाइए वयारुहणं । मणयमसुद्धेवि जओ सामइए हुंति हु वयाइं ॥ १ ॥" इति । तथा

१ यन्मिथ्यात्वमुदीर्णं तत्क्षीणमनुदितं चोपशान्तम् ॥ २ उदीर्णे क्षीणेऽनुदीर्थमाणे च शेषमिथ्यात्वेऽन्तर्मुहूर्त्तमात्रमुपशमसम्यक्त्वं जीवो लभते ॥ १ ॥ ३ क्षायोपशमिकेषु भावेषु स सत्कर्म वेदयति अनुभावं न, उपशान्तकषायः पुनः सत्कर्मापि न वेदयति (प्रदेशतोऽपि) ॥ १ ॥ ४ पूर्वपश्चिमजिनानामृजुवक्रजडाः साधव इति सामायिके सत्यपि व्रतारोहः, यतः सामायिके मनागशुद्धेऽपि व्रतानि भवन्ति ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लिङ्गं–साधुवेषः, तत्र च यदि मध्यमजिनैर्यथालब्धवस्त्ररूपं लिङ्गं साधूनामुपदिष्टं तदा किमिति प्रथमचरमजिनाभ्यां सप्रमाणधवलवसनरूपं तदेवोक्तं ?, सर्वज्ञानामविरोधिवचनत्वादिति, अत्रापि ऋजुजडवक्रजडऋजुप्रज्ञशिष्यानाश्रित्य भगवतां तस्योपदेशः, तथैव तेषामुपकारसम्भवादिति समाधिः । तथा प्रवचनमत्रागमः, तत्र च यदि मध्यमजिनप्रवचनानि चतुर्यामधर्मप्रतिपादकानि कथं प्रथमेतरजिनप्रवचने पञ्चयामधर्मप्रतिपादके ? सर्वज्ञानामविरुद्धवचनत्वात्, अत्रापि समाधिः–चतुर्यामोऽपि तत्त्वतः पञ्चयाम एवासौ, चतुर्थव्रतस्य परिग्रहेऽन्तर्भूतत्वात्, योषा हि नापरिगृहीता भुज्यते इति न्यायादिति । तथा प्रवचनमधीते वेत्ति वा प्रावचनः–कालापेक्षया बह्वागमः पुरुषः, तत्रैकः प्रावचनिक एवं कुरुते अन्यस्त्वेवमिति किमत्र तत्त्वमिति, समाधिश्चेह–चारित्रमोहनीयक्षयोपशमविशेषेण उत्सर्गापवादादिभावितत्वेन च प्रावचनिकानां विचित्रा प्रवृत्तिरिति नासौ सर्वथाऽपि प्रमाणम्, आगमाविरुद्धप्रवृत्तेरेव प्रमाणत्वादिति । तथा कल्पो–जिनकल्पिकादिसमाचारः, तत्र यदि नाम जिनकल्पिकानां नाग्न्यादिरूपो महाकष्टः कल्पः कर्म्मक्षयाय तदा स्थविरकल्पिकानां वस्त्रपात्रादिपरिभोगरूपो यथाशक्तिकरणात्मकोऽकष्टस्वभावः कथं कर्मक्षयायेति, इह च समाधिः—द्वावपि कर्म्मक्षयहेतू, अवस्थाभेदेन जिनोक्तत्वात्, कष्टाकष्टयोश्च विशिष्टकर्मक्षयं प्रत्यकारणत्वादिति । तथा मार्गः–पूर्वपुरुषक्रमागता सामाचारी, तत्र केषाञ्चिद्द्वित्रैस्त्यवन्दनानेकविधकायोत्सर्गकरणादिकाऽऽवश्यकसामाचारी तदन्येषां तु न तथेति किमत्र तत्त्वमिति, समाधिश्च–गीतार्थाशठप्रवर्त्तिताऽसौ सर्वाऽपि न विरुद्धा, आचरितलक्षणोपेतत्वात्, आच-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कांक्षा-मोहनियस्य वेदनं

रितलक्षणं चेदम्–"[1]असढेण समाइन्नं जं कत्थइ केणई असावज्जं । न निवारियमन्नेहिं बहुमणुमयमेयमायरियं ॥ १ ॥" ति । तथा मतं–समान एवागमे आचार्याणामभिप्रायः, तत्र च सिद्धसेनदिवाकरो मन्यते–केवलिनो युगपद् ज्ञानं दर्शनं च, अन्यथा तदावरणक्षयस्य निरर्थकता स्यात्, जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणस्तु भिन्नसमये ज्ञानदर्शने, जीवस्वरूपत्वात्, तथा तदावरणक्षयोपशमे समानेऽपि क्रमेणैव मतिश्रुतोपयोगौ, न चैकतरोपयोगे इतरक्षयोपशमाभावः, तत्क्षयोपशमस्योत्कृष्टतः षट्षष्टिसागरोपमप्रमाणत्वादतः किं तत्त्वमिति, इह च समाधिः–यदेव मतमागमानुपाति तदेव सत्यमिति मन्तव्यमितरत्पुनरुपेक्षणीयम्, अथ चाबहुश्रुतेन नैतदवसातुं शक्यते तदैवं भावनीयम्–आचार्याणां संप्रदायादिदोषादयं मतभेदः, जिनानां तु मतमेकमेवाविरुद्धं च, रागादिविरहितत्वात्, आह च–"[2]अणुवकयपराणुग्गहपरायणा जं जिणा जुगप्पवरा । जियरागदोसमोहा य णण्णहावाइणो तेणं ॥ १ ॥"ति । तथा भङ्गाः–द्रव्यादिसंयोगभङ्गकाः, तत्र च द्रव्यतो नाम एका हिंसा न भावत इत्यादि चतुर्भङ्गयुक्ता, न च तत्र प्रथमोऽपि भङ्गो युज्यते, यतः किल द्रव्यतो हिंसा–ईर्यासमित्या गच्छतः पिपीलिकादिव्यापादनं, न चेयं हिंसा, तल्लक्षणायोगात्, तथाहि–"[3]जो उ पमत्तो पुरिसो तस्स उ जोगं पडुच्च जे सत्ता । वावज्जंती नियमा तेसिं सो हिंसओ होइ ॥ १ ॥"त्ति, उक्ता चेयमतः शङ्का, न चेयं युक्ता, एतद्भावो-

१ अशठेन समाचीर्णं यदसावद्यं केनापि कुत्रचित् । अन्यैर्न निवारितं बहुनुमतमेतदाचरितम् ॥ १ ॥ २ यतः अनुपकृतपरानुग्रहपरायणा युगप्रवरा जितरागद्वेषमोहाश्च जिनास्ततो नान्यथावादिनः ॥ २ ॥ ३ यस्तु प्रमत्तः पुरुषस्तस्यैव योगं प्रतीत्य ये सत्त्वा व्यापाद्यन्ते स नियमात्तेषां हिंसको भवति ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३७]

दीप अनुक्रम [४५]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ६२ ॥

१ शतके उद्देशः ३ श्रमणानां काङ्क्षा-वेदनं सू ३७

क्तहिंसालक्षणस्य द्रव्यभावहिंसाश्रयत्वात्, द्रव्यहिंसायास्तु मरणमात्रतया रूढत्वादिति। तथा नया–द्रव्यास्तिकादयः, तत्र यदि नाम द्रव्यास्तिकमतेन नित्यं वस्तु पर्यायास्तिकनयमतेन कथं तदेवानित्यं ? विरुद्धत्वात्, इति शङ्का, इयं चायुक्ता, द्रव्यापेक्षयैव तस्य नित्यत्वात्, पर्यायापेक्षया चानित्यत्वात्, दृश्यते चापेक्षयैकत्रैकदा विरुद्धानामपि धर्म्माणां समावेशो, यथा जनकापेक्षया य एव पुत्रः स एव पुत्रापेक्षया पितेति। तथा नियमः–अभिग्रहः, तत्र यदि नाम सर्वविरतिः सामायिकं तदा किमन्येन पौरुष्यादिनियमेन ? सामायिकेनैव सर्वगुणावाप्तेः, उक्तश्चासौ इति शङ्का, इयं चायुक्ता, यतः सत्यपि सामायिके युक्तः पौरुष्यादिनियमः, अप्रमादवृद्धिहेतुत्वादिति, आह च—"सामाइए वि हु सावज्जजोगरूवे उ गुणकरं एयं। अपमायवुड्ढिजणगत्तणेण आणाओ विन्नेयं ॥ १ ॥"ति। तथा प्रमाणं–प्रत्यक्षादि, तत्रागमप्रमाणम्–आदित्यो भूमेरुपरि योजनशतैरष्टाभिः संचरति चक्षुःप्रत्यक्षं च तस्य भुवो निर्गच्छतो ग्राहकमिति किमत्र सत्यमिति सन्देहः, अत्र समाधिः–न हि सम्यक् प्रत्यक्षमिदं, दूरतरदेशतो विभ्रमादिति ॥ प्रथमशते तृतीयोद्देशकः ॥ ३ ॥

अनन्तरोद्देशके कर्म्मण उदीरणवेदनाद्युक्तमिति तस्यैव भेदादीन् दर्शयितुं तथा द्वारगाथायां 'पगइ'त्ति यदुक्तं तच्चाभिधातुमाह—

कति णं भंते ! कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ ? गोयमा ! अट्ठ कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ, कम्मप्पगडीए

१ सर्वसावद्यत्यागरूपे सामायिके सत्यप्येतत्पौरुष्यादि गुणकरमप्रमादवृद्धिजनकत्वादाज्ञातो विज्ञेयम् ॥ १ ॥

॥ ६२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र प्रथम-शतके तृतीय-उद्देशकः समाप्तः

अथ प्रथम-शतके चतुर्थ-उद्देशकः आरब्धः

प्रत सूत्रांक [३८] + गाथा

दीप अनुक्रम [४६-४७]

पढमो उद्देसो नेयव्वो जाव अणुभागो सम्मत्तो। गाहा–कइ पयडी कह बंधइ कइहि व ठाणेहि बंधई पयडी। कइ वेदेइ य पयडी अणुभागो कइविहो कस्स ? ॥ १ ॥ (सू० ३८)

'कइ ण'मित्यादि व्यक्तं, नवरं 'कम्मपगडीए'त्ति प्रज्ञापनायां त्रयोविंशतितमस्य कर्मप्रकृत्यभिधानस्य पदस्य प्रथमोद्देशको नेतव्यः, एतद्वाच्यानां चार्थानां सङ्ग्रहगाथाऽस्तीत्यत आह–गाहा, सा चेयम्–'कई'त्यादि, तत्र 'कइप्पगडी'त्ति द्वारं, तच्चैवम्–'कइ णं भंते ! कम्मप्पगडीओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! अट्ठ, तंजहा–णाणावरणिज्ज'मित्यादि। 'कह बंधई' त्यादि द्वारमिदं चैवम्–'कहन्नं भंते ! जीवे अट्ठ कम्मपगडीओ बंधइ ? गोयमा ! णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं दंसणावरणिज्जं कम्मं निग (य) च्छइ' विशिष्टोदयावस्थं जीवस्तदासादयतीत्यर्थः 'दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं दंसणमोहणिज्जं कम्मं निग्गच्छइ' विपाकावस्थां करोतीत्यर्थः, 'दंसणमोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं मिच्छत्तं निग्गच्छइ, मिच्छत्तेणं उदिन्नेणं एवं खलु जीवे अट्ठकम्मप्पगडीओ वंधइ' इत्यादि, न चैवमिहेतरेतराश्रयदोषः, कर्मबन्धप्रवाहस्यानादित्वादिति। 'कइहि व ठाणेहि'त्ति द्वारं, तच्चैवम्–'जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं कइहिं ठाणेहिं वंधइ ? गोयमा ! दोहिं ठाणेहिं, तंजहा–रागेण य दोसेण य' इत्यादि। 'कइ वेएइ य'त्ति द्वारमिदं चैवम्–'जीवे णं भंते ! कइ कम्मप्पगडीओ वेएइ ? गोयमा ! अत्थेगइए वेएइ अत्थेगतिए नो वेएइ, जे वेएइ से ते अट्ठ'इत्यादि, 'जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेएइ ? गोयमा ! अत्थेगइए वेएइ अत्थेगतिए नो वेएइ' केवलिनोऽवेदनात्, 'णेरइए णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेएइ ? गोयमा ! नियमा वेएइ'इत्यादि। 'अणुभागो कइविहो कस्स'त्ति कस्य कर्मणः कति-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'कर्म-प्रकृति' तस्या भेदाः एवं वर्णनं

प्रत सूत्रांक [३८] + गाथा

दीप अनुक्रम [४६-४७]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः१ ॥ ६३ ॥

विधो रसः ? इति द्वारम्, इदं चैवम्–"णाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स कतिविहे अणुभागे पण्णत्ते ? गोयमा ! दसविहे अणुभागे पण्णत्ते, तंजहा–सोयावरणे सोयविन्नाणावरणे"इत्यादि, द्रव्येन्द्रियावरणो भावेन्द्रियावरणश्चेत्यर्थः ॥ अथ कर्मचिन्ताऽधिकारान्मोहनीयमाश्रित्याह—

जीवे णं भंते ! मोहणिज्जेणं कडेणं कम्मेणं उदिन्नेणं उवट्ठाएज्जा ? हंता उवट्ठाएज्जा । से भंते ! किं वीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा अवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा ? गोयमा ! वीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा नो अवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा, जइ वीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा किं बालवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा पंडियवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा बालपंडियवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा ?, गोयमा ! बालवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा णो पंडियवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा णो बालपंडियवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा। जीवे णं भंते ! मोहणिज्जेणं कडेणं कम्मेणं उदिन्नेणं अवक्कमेज्जा ? हंता अवक्कमेज्जा, से भंते ! जाव बालपंडियवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा ?, गोयमा ! बालवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा नो पंडियवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा, सिय बालपंडियवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा। जहा उदिन्नेणं दो आलावगा तहा उवसंतेणवि दो आलावगा भाणियव्वा, नवरं उवट्ठाएज्जा पंडियवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा बालपंडियवीरियत्ताए ॥ से भंते ! किं आयाए अवक्कमइ अणायाए अवक्कमइ ? गोयमा ! आयाए अवक्कमइ णो अणायाए अवक्कमइ, मोहणिज्जं कम्मं वेएमाणे से कहमेयं भंते ! एवं ? गोयमा ! पुव्विं से एयं एवं रोयइ इयाणिं से एयं एवं नो रोयइ एवं खलु एवं ॥ (सू० ३९)

१ शतके उद्देशः ४ कर्मणां प्रकृत्यादि-सू. ३८ मोहनीयोदयादुपस्थानादि सू ३९

॥ ६३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'मोहणिज्जेणं'ति मिथ्यात्वमोहनीयेन 'उदिण्णेणं'ति उदितेन 'उवट्ठाएज्ज'त्ति 'उपतिष्ठेत्' उपस्थानं–परलोकक्रियास्वभ्युपगमं कुर्यादित्यर्थः, 'वीरियत्ताए'त्ति वीर्ययोगाद्वीर्यः–प्राणी तद्भावो वीर्यता, अथवा वीर्यमेव स्वार्थिकप्रत्ययाद्वीर्यता वीर्याणां वा भावो वीर्यता, तया, 'अवीरियत्ताए'त्ति अविद्यमानवीर्यतया वीर्याभावेनेत्यर्थः, 'नो अवीरियत्ताए'त्ति वीर्यहेतुकत्वादुपस्थानस्येति । 'बालवीरियत्ताए'त्ति बालः–सम्यगर्थानवबोधात् सद्बोधकार्यविरत्यभावाच्च मिथ्यादृष्टिस्तस्य या वीर्यता–परिणतिविशेषः सा तथा तया । 'पंडियवीरियत्ताए'त्ति पण्डितः—सकलावद्यवर्जकस्तदन्यस्य परमार्थतो निर्ज्ञानत्वेनापण्डितत्वाद्, यदाह—"तज्ज्ञानमेव न भवति यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः । तमसः कुतोऽस्ति शक्तिर्दिनकरकिरणाग्रतः स्थातुम् ? ॥ १ ॥" इति, सर्वविरत इत्यर्थः । 'बालपंडियवीरियत्ताए'त्ति बालो देशे विरत्यभावात् पण्डितो देश एव विरतिसद्भावादिति बालपण्डितो–देशविरतः, इह मिथ्यात्वे उदिते मिथ्यादृष्टित्वाज्जीवस्य बालवीर्येणैवोपस्थानं स्यान्नेतराभ्याम् , एतदेवाह–'गोयमे'त्यादि ॥ उपस्थानविपक्षोऽपक्रमणमतस्तदाश्रित्याह—'जीवे णमि'त्यादि 'अवक्कमेज्ज'त्ति 'अपक्रामेत्' अपसर्पेत्, उत्तमगुणस्थानकाद् हीनतरं गच्छेदित्यर्थः, 'बालवीरियत्ताए अवक्कमेज्ज'त्ति मिथ्यात्वमोहोदये सम्यक्त्वात् संयमादेशसंयमाद्वा 'अपक्रामेत्' मिथ्यादृष्टिर्भवेदिति । 'णो पंडियवीरियत्ताए अवक्कमेज्ज'त्ति, नहि पण्डितत्वात्प्रधानतरं गुणस्थानकमस्ति यतः पण्डितवीर्येणापसर्पेत्, 'सिय बालपंडियवीरियत्ताए अवक्कमेज्ज'त्ति स्यात्—कदाचिच्चास्त्रिमोहनीयोदयेन संयमादपगत्य बालपण्डितवीर्येण देशविरतो भवेदिति । वाचनान्तरे त्वेवम्–'बालवीरियत्ताए नो पंडियवीरियत्ताए नो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बालपंडियवीरियत्ताए'त्ति, तत्र च मिथ्यात्वमोहोदये बालवीर्यस्यैव भावादितरवीर्यद्वयनिषेध इति । उदीर्णविपक्षत्वादुपशान्तस्येत्युपशान्तसूत्रद्वयं तथैव, नवरम् 'उवट्ठाएज्जा पंडियवीरियत्ताए'त्ति उदीर्णालापकापेक्षयोपशान्तालापकयोरयं विशेषः–प्रथमालापके सर्वथा मोहनीयेनोपशान्तेन सतोपतिष्ठेत क्रियासु पण्डितवीर्येण, उपशान्तमोहावस्थायां पण्डितवीर्यस्यैव भावादितरयोश्चाभावात्। वृद्धैस्तु काञ्चिद्वाचनामाश्रित्येदं व्याख्यातं–मोहनीयेनोपशान्तेन सता न मिथ्यादृष्टिर्जायते, साधुः श्रावको वा भवतीति। द्वितीयालापके तु 'अवक्कमेज्ज बालपंडियवीरियत्ताए'त्ति, मोहनीयेन हि उपशान्तेन संयतत्वाद्बालपण्डितवीर्येणापक्रामन् देशसंयतो भवति, देशतस्तस्य मोहोपशमसद्भावात्, न तु मिथ्यादृष्टिः, मोहोदय एव तस्य भावात्, मोहोपशमस्य चेहाधिकृतत्वादिति । अथापक्रामतीति यदुक्तं तत्र सामान्येन प्रश्नयन्नाह—'से भंते! किं'मित्यादि, 'से'त्ति असौ जीवः, अथार्थो वा सेशब्दः, 'आयाए'त्ति आत्मना 'अणायाए'त्ति अनात्मना, परत इत्यर्थः 'अपक्रामति' अपसर्प्पति, पूर्वं पण्डितत्वरुचिर्भूत्वा पश्चान्मिश्ररुचिर्मिथ्यारुचिर्वा भवतीति, कोऽसौ ? इत्याह–मोहनीयं कर्म मिथ्यात्वमोहनीयं चारित्रमोहनीयं वा वेदयन्, उदीर्णमोह इत्यर्थः । 'से' कहमेयं भंते !'त्ति अथ 'कथं' केन प्रकारेण 'एतद्' अपक्रमणम् 'एवं'ति मोहनीयं वेदयमानस्येति, इहोत्तरं–'गोयमे'त्यादि, 'पूर्वम्' अपक्रमणात् प्राग् 'असौ' अपक्रमणकारी जीवः 'एतद्' जीवादि अहिंसादि वा वस्तु 'एवं' यथा जिनैरुक्तं 'रोचते' श्रद्धत्ते करोति वा, 'इदानीं' मोहनीयोदयकाले 'सः' जीवः 'एतत्' जीवादि अहिंसादि वा 'एवं' यथा जिनैरुक्तं 'नो रोचते' न श्रद्धत्ते न करोति वा, 'एवं खलु' उक्तप्रकारेण 'एतद्' अपक्रमणम्, 'एवं' मोहनीयवेदने इत्यर्थः॥ मोहनीयकर्माधिकारात् सामान्यकर्म चिन्तयन्नाह–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से नूणं भंते ! नेरइयस्स वा तिरिक्खजोणियस्स वा मणूसस्स वा देवस्स वा जे कडे पावे कम्मे नत्थि तस्स अवेइयत्ता मोक्खो ?, हंता गोयमा ! नेरइयस्स वा तिरिक्ख०मणु०देवस्स वा जे कडे पावे कम्मे नत्थि तस्स अवेइत्ता मोक्खो । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति–नेरइयस्स वा जाव मोक्खो, एवं खलु मए गोयमा ! दुविहे कम्मे पण्णत्ते, तंजहा–पएसकम्मे य अणुभागकम्मे य, तत्थ णं जं तं पएसकम्मं तं नियमा वेएइ, तत्थ णं जं तं अणुभागकम्मं तं अत्थेगइयं वेएइ अत्थेगइयं नो वेएइ । णायमेयं अरहया सुयमेयं अरहया विन्नायमेयं अरहया इमं कम्मं अयं जीवे अज्झोवगमियाए वेयणाए वेदिस्सइ इमं कम्मं अयं जीवे उवक्कमियाए वेदणाए वेदिस्सइ, अहाकम्मं अहानिकरणं जहा जहा तं भगवया दिट्ठं तहा तहा तं विप्परिणमिस्सतीति, से तेणट्ठेणं गोयमा ! नेरइयस्स वा ४ जाव मोक्खो ॥ (सू० ४०)

'नेरइयास्स वे'त्यादौ नास्ति मोक्षः इत्येवं संबन्धात्षष्ठी, 'जे कडे'त्ति तैरेव यद्बद्धं 'पावे कम्मे'त्ति 'पापम्' अशुभं नरकगत्यादि, सर्वमेव वा 'पापं' दुष्टं, मोक्षव्याघातहेतुत्वात्, 'तस्स'त्ति तस्मात्कर्मणः सकाशात् 'अवेइयत्त'त्ति तत्कर्मानुभूय 'एवं खलु'त्ति वक्ष्यमाणप्रकारेण 'खलु' वाक्यालङ्कारे 'मए'त्ति मया, अनेन च वस्तुप्रतिपादने सर्वज्ञत्वेनात्मनः स्वातन्त्र्यं प्रतिपादयति,'पएसकम्मे य'त्ति प्रदेशाः–कर्मपुद्गला जीवप्रदेशेष्वोतप्रोतास्तद्रूपं कर्म्म प्रदेशकर्म 'अणुभागकम्मे य'त्ति अनुभागः–तेषामेव कर्म्मप्रदेशानां संवेद्यमानताविषयो रसस्तद्रूपं कर्मानुभागकर्म, तत्र यत्प्रदेशकर्म तन्नियमाद्वेदयति, विपाकस्याननुभवनेऽपि कर्मप्रदेशानामवश्यं क्षपणात्, प्रदेशेभ्यः प्रदेशान्नियमाच्छातयतीत्यर्थः, अनुभागकर्म च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तथाभावं वेदयति वा न वा, यथा मिथ्यात्वं तत्क्षयोपशमकालेऽनुभागकर्मतया न वेदयति प्रदेशकर्मतया तु वेदयत्येवेति । इह च द्विविधेऽपि कर्म्मणि वेदयितव्ये प्रकारद्वयमस्ति, तच्चार्हतैव ज्ञायते इति दर्शयन्नाह–'ज्ञातं' सामान्येनावगतम् 'एतद्' वक्ष्यमाणं वेदनाप्रकारद्वयम् 'अर्हता' जिनेन 'सुयं'ति 'स्मृतं' प्रतिपादितम् अनुचिन्तितं वा, तत्र स्मृतमिव स्मृतं केवलित्वेन स्मरणाभावेऽपि जिनस्यात्यन्तमव्यभिचारसाधर्म्यादिति, 'विण्णायं' ति विविधप्रकारैः–देशकालादिविभागरूपैर्ज्ञातं विज्ञातं, तदेवाह–'इमं कम्मं अयं जीवे'त्ति, अनेन द्वयोरपि प्रत्यक्षतामाह केवलित्वादर्हतः, 'अज्झोवगमियाए'त्ति प्राकृतत्वादभ्युपगमः–प्रव्रज्याप्रतिपत्तितो ब्रह्मचर्यभूमिशयनकेशलुञ्चनादीनामङ्गीकारस्तेन निर्वृत्ता आभ्युपगमिकी तथा 'वेयइस्सइ'त्ति भविष्यत्कालनिर्देशः भविष्यत्पदार्थो विशिष्टज्ञानवतामेव ज्ञेयः अतीतो वर्त्तमानश्च पुनरनुभवद्वारेणान्यस्यापि ज्ञेयः संभवतीति ज्ञापनार्थः, 'उवक्कमियाए'त्ति उपक्रम्यतेऽनेनेत्युपक्रमः–कर्मवेदनोपायस्तत्र भवा औपक्रमिकी–स्वयमुदीर्णस्योदीरणाकरणेन वोदयमुपनीतस्य कर्मणोऽनुभवस्तया औपक्रमिक्या वेदनया वेदयिष्यति, तथा च 'अहाकम्मं'ति यथाकर्म–बद्धकर्मानतिक्रमेण 'अहानिगरणं'ति निकरणानां–नियतानां देशकालादीनां करणानां–विपरिणामहेतूनामनतिक्रमेण यथा यथा तत्कर्म भगवता दृष्टं तथा तथा विपरिणंस्यतीति, इतिशब्दो वाक्यार्थसमाप्ताविति ॥ अनन्तरं कर्म्म चिन्तितं, तच्च पुद्गलात्मकमिति परमाण्वादिपुद्गलांश्चिन्तयन्नाह–अथवा परिणामाधिकारात्पुद्गलपरिणाममाह–

एस णं भंते ! पोग्गले तीतमणंतं सासयं समयं भुवीति वत्तव्वं सिया ?, हंता गोयमा ! एस णं पोग्गले अतीतमणंतं सासयं समयं भुवीति वत्तव्वं सिया । एस णं भंते ! पोग्गले पडुप्पन्नसासयं समयं भवतीति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वत्तव्वं सिया ?, हंता गोयमा ! तं चेव उच्चारेयव्वं । एस णं भंते ! पोग्गले अणागयमणंतं सासयं समयं भविस्सतीति वत्तव्वं सिया ?, हन्ता गोयमा ! तं चेव उच्चारेयव्वं । एवं खंधेणवि तिन्नि आलावगा, एवं जीवेणवि तिन्नि आलावगा भाणियव्वा ॥ (सू० ४१) ॥ छउमत्थे णं भंते ! मणूसे अतीतमणंतं सासयं समयं भुवीति केवलेणं संजमेणं केवलेणं संवरे० केवलेणं बंभचेरवासेणं केवलाहिं पवयणमाईहिं सिज्झिसु बुज्झिसु जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिंसु ? गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ तं चेव जाव अंतं करेंसु ? गोयमा ! जे केइ अंतकरा वा अंतिमसरीरिया वा सव्वदुक्खाणमंतं करेंसु वा करेंति वा करिस्संति वा सव्वे ते उप्पन्ननाणदंसणधरा अरहा जिणे केवली भवित्ता तओ पच्छा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंसु वा करेंति वा करिस्संति वा, से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेंसु०, पडुप्पन्नेऽवि एवं चेव नवरं सिज्झंति भाणियव्वं, अणागएवि एवं चेव, नवरं सिज्झिस्संति भाणियव्वं, जहा छउमत्थो तहा आहोहिओवि तहा परमाहोहिओऽवि तिन्नि तिन्नि आलावगा भाणियव्वा । केवली णं भंते ! मणूसे तीतमणंतं सासयं समयं जाव अंतं करेंसु ? हंता सिज्झिसु जाव अंतं करेंसु, एते तिन्नि आलावगा भाणियव्वा छउमत्थस्स जहा नवरं सिज्झिसु सिज्झंति सिज्झिस्संति । से णूणं भंते ! तीतमणंतं सासयं समयं पडुप्पन्नं वा सासयं समयं अणागयमणंतं वा सासयं समयं जे केइ अंतकरा वा अंतिमसरीरिया वा सव्वदुक्खाणमंतं करेंसु वा करेंति वा करिस्संति वा सव्वे ते उप्पन्ननाणदंसणधरा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४२]

दीप अनुक्रम [५१]

पूज्य आगमोद्धार कश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.. आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र-

अरहा जिणे केवली भवित्ता तओ पच्छा सिज्झंति जाव अंतं करेस्संति वा? हंता गोयमा! तीतमणंतं सासयं समयं जाव अंतं करेस्संति वा। से नूणं भंते! उप्पन्ननाणदंसणधरे अरहा जिणे केवलि अलमत्थुत्ति वत्तव्वं सिया? हंता गोयमा! उप्पन्ननाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली अलमत्थुत्ति वत्तव्वं सिया। सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति ॥ (सू० ४२) ॥ चउत्थो उद्देसो समत्तो ॥ १–४ ॥

'पोग्गले'त्ति परमाणुरुत्तरत्र स्कन्धग्रहणात् 'तीतं'ति अतीतम्, इह च सर्वेऽध्वभावकाला(अकर्मकधातुसंयोगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम्–वार्त्तिकम्) इत्यनेनाधारे द्वितीया, ततश्च सर्वस्मिन्नतीत इत्यर्थः, 'अणंतं'ति अपरिमाणम्, अनादित्वात्, 'सासयं'ति सदा विद्यमानं, न हि लोकोऽतीतकालेन कदाचिच्छून्य इति, 'समयं'ति कालं 'भुवि'त्ति अभूदिति, एतदुक्तव्यं स्यात्? सद्भूतार्थत्वात्, 'पडुप्पन्नं'ति प्रत्युत्पन्नं वर्त्तमानमित्यर्थः, वर्त्तमानस्यापि शाश्वतत्वं सदाभावाद्, एवमनागतस्यापीति। अनन्तरं स्कन्ध उक्तः, स्कन्धश्च स्वप्रदेशापेक्षया जीवोऽपि स्यादिति जीवसूत्रं, जीवाधिकाराच्च प्रायो यथोत्तरप्रधानजीववस्तुवक्तव्यतामुद्देशकान्तं यावदाह–'छउमत्थे ण'मित्यादि, इह छद्मस्थोऽवधिज्ञानरहितोऽवसेयो, न पुनरकेवलिमात्रम्, उत्तरत्रावधिज्ञानिनो वक्ष्यमाणत्वादिति, 'केवलेणं'ति असहायेन शुद्धेन वा परिपूर्णेन वाऽसाधारणेन वा, यदाह–"केवलमेगं सुद्धं सगलमसाहारणं अणंतं च" 'संजमेणं'ति पृथिव्यादिरक्षणरूपेण 'संवरेणं'ति इन्द्रियकषायनिरोधेन 'सिज्झिस्सु' इत्यादौ च बहुवचनं प्राकृतत्वादिति। एतच्च गौतमेनाने-

१ केवलमेकं शुद्धं सकलमसाधारणमनन्तं च ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नाभिप्रायेण पृष्टं–यदुत उपशान्तमोहाद्यवस्थायां सर्वविशुद्धाः संयमादयोऽपि भवन्ति विशुद्धसंयमादिसाध्या च सिद्धिरिति सा छद्मस्थस्यापि स्यादिति। 'अंतकरे' ति भवान्तकारिणः, ते च दीर्घतरकालापेक्षयाऽपि भवन्तीत्यत आह— 'अंतिमसरीरिया व'त्ति अन्तिमं शरीरं येषामस्ति तेऽन्तिमशरीरिकाः, चरमदेहा इत्यर्थः, वाशब्दौ समुच्चये। 'सव्वदुक्खाणमंतं करेंसु' इत्यादौ 'सिज्झिंसु सिज्झंती'त्याद्यपि द्रष्टव्यं, सिद्ध्याद्यविनाभूतत्वात् सर्वदुःखान्तकरणस्येति, 'उप्पन्ननाणदंसणधरे'ति उत्पन्ने ज्ञानदर्शने धारयन्ति ये ते तथा, न त्वनादिसंसिद्धज्ञानाः, अत एव 'अरह'त्ति पूजार्हाः 'जिण'त्ति रागादिजेतारः, ते च छद्मस्था अपि भवन्तीत्यत आह–'केवली'ति सर्वज्ञाः, 'सिज्झंती' त्यादिषु चतुर्षु पदेषु वर्त्तमाननिर्देशस्य शेषोपलक्षणत्वात् 'सिज्झिंसु सिज्झंति सिज्झिस्संती'त्येवमतीतादिनिर्देशो द्रष्टव्यः, अत एव 'सव्वदुक्खाण' मित्यादौ पञ्चमपदेऽसौ विहित इति। 'जहा छउमत्थो' इत्यादेरियं भावना–'आहोहिएणं भंते! मणूसेऽतीतमणंतं सासय' मित्यादि दण्डकत्रयं, तत्राधः–परमावधेरधस्ताद् योऽवधिः सोऽधोऽवधिस्तेन यो व्यवहरत्यसौ आधोऽवधिकः–परिमितक्षेत्रविषयावधिकः 'परमाहोहिओ'त्ति परम आधोऽवधिकाद् यः स परमाधोऽवधिकः, प्राकृतत्वाच्च व्यत्ययनिर्देशः, 'परमोहिओ'त्ति क्वचित्पाठो व्यक्तश्च, स च समस्तरूपिद्रव्यासङ्ख्यातलोकमात्रालोकखण्डासङ्ख्यातावसर्पिणीविषयावधिज्ञानः, 'तिन्नि आलावग'त्ति कालत्रयभेदतः, 'केवली ण'मित्यादि केवलिनोऽप्येते एव त्रयो दण्डकाः विशेषस्तु सूत्रोक्त एवेति। 'से णूण'मित्यादिषु कालत्रयनिर्देशो वाच्य एवेति, 'अलमत्थुत्ति वत्तव्वं सिय'त्ति 'अल-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ६७ ॥

मस्तु' पर्याप्तं भवतु नातः परं किञ्चिद् ज्ञानान्तरं प्राप्तव्यमस्यास्तीत्येतद्वक्तव्यं 'स्यात्' भवेत्, सत्यत्वादस्येति ॥ प्रथमशते चतुर्थोद्देशकः समाप्तः ॥ १–४ ॥

अनन्तरोद्देशकस्यान्तिमसूत्रेष्वर्हदादय उक्तास्ते च पृथिव्यां भवन्तीति अथवा पृथिवीतोऽप्युद्धृत्य मनुजत्वमवाप्ताः सन्तस्ते भवन्तीति पृथिवीप्रतिपादनायाह तथा 'पुढवि'त्ति यदुद्देशकसङ्ग्रहिण्यामुक्तं तत्प्रतिपादनाय चाह—

कति णं भंते ! पुढवीओ पन्नत्ताओ ?, गोयमा ! सत्त पुढवीओ पन्नत्ताओ, तंजहा–रयणप्पभा जाव तमतमा ॥ इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए कति निरयावाससयसहस्सा पन्नत्ता ?, गोयमा ! तीसं निरयावाससयसहस्सा पन्नत्ता, गाहा—तीसा य पन्नवीसा पन्नरस दसेव या सयसहस्सा । तिन्नेगं पंचूणं पंचेव अणुत्तरा निरया ॥ १ ॥ केवइया णं भंते ? असुरकुमारावाससयसहस्सा पन्नत्ता ?, एवं—चउसट्ठी असुराणं चउरासीई य होइ नागाणं । बावत्तरिं सुवन्नाण वाउकुमाराण छन्नउई ॥ १ ॥ दीवदिसाउदहीणं विज्जुकुमारिंदथणियमग्गीणं । छण्हंपि जुयलयाणं छावत्तरिमो सयसहस्सा ॥ २ ॥ केवइया णं भंते ! पुढविकाइयावाससयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा ! असंखेज्जा पुढविकाइयावाससयसहस्सा पण्णत्ता, गोयमा ! जाव असंखिज्जा जोतिसियविमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता । सोहम्मे णं भंते ! कप्पे केवइया विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?, गोयमा ! बत्तीसं विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता, एवं–बत्तीसट्ठावीसा बारस अट्ठ चउरो सयसहस्सा । पन्ना चत्तालीसा छच्च सहस्सा सहस्सारे ॥ १ ॥ आणयपाणयकप्पे चत्तारि सयाऽऽरणच्चुए

१ शतके उद्देशः ५ नारकादी-नामा-वासा सू ४३

॥ ६७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र प्रथम-शतके चतुर्थ-उद्देशकः समाप्तः

अथ प्रथम-शतके पंचम-उद्देशकः आरब्धः

प्रत सूत्रांक [४३]

दीप अनुक्रम [५२-६०]

तिन्नि। सत्त विमाणसयाइं चउसुवि एएसु कप्पेसुं ॥ २ ॥ एक्कारसुत्तरं हेट्ठिमेसु सत्तुत्तरं सयं च मज्झिमए। सयमेगं उवरिमए पंचेव अणुत्तरविमाणा ॥ ३ ॥ (सू० ४३)

तत्र 'रयणप्पभ'त्ति नरकवर्जं प्रायः प्रथमकाण्डे इन्द्रनीलादिबहुविधरत्नसम्भवात् रत्नानां प्रभा–दीप्तिर्यस्यां सा रत्नप्रभा, यावत्करणादिदं दृश्यं–शर्कराप्रभा वालुकाप्रभा पङ्कप्रभा धूमप्रभा तमःप्रभेति, शब्दार्थश्च रत्नप्रभावदिति, 'तमतम'त्ति तमस्तमःप्रभेत्यर्थः, तत्र प्रकृष्टं तमस्तमस्तमस्तस्येव प्रभा यस्याः सा तमस्तमःप्रभा ॥ एतासु च नरकावासा भवन्तीति तान् आवासाधिकाराच्च शेषजीवावासान् परिमाणतो दर्शयन्नाह–'इमीसे ण'मित्यादि, 'अस्यां' विनेयप्रत्यक्षायां 'नरयावाससयसहस्स'त्ति आवसन्ति येषु ते आवासाः नरकाश्च ते आवासाश्चेति नरकावासास्तेषां यानि शतसहस्राणि तानि तथेति । शेषपृथिवीसूत्राणि तु गाथाऽनुसारेणाध्येयानि, अत एवाह–'गाह'त्ति, सा चेयं–'तीसा य पन्नवीसा'इत्यादि, सूत्राभिलापश्च–'सक्करप्पभाए णं भंते! पुढवीए कइ निरयावाससयसहस्सा पन्नत्ता ?, गोयमा ! पणवीसं निरयावाससयसहस्सा पन्नत्ता' इत्यादिरिति। 'छण्हंपि जुयलयाणं'ति, दक्षिणोत्तरदिग्भेदेनासुरादिनिकायो द्विभेदो भवतीति युगलान्युक्तानि, तत्र षट्सु युगलेषु प्रत्येकं षट्सप्ततिर्भवनलक्षाणामिति । एषां चासुरादिनिकाययुगलानां दक्षिणोत्तरदिशोरयं विभागः–"[1]चउतीसा चउचत्ता अट्ठत्तीसं च सयसहस्साओ। पन्ना चत्तालीसा दाहिणओ

१ चतुस्त्रिंशच्चतुश्चत्वारिंशदष्टत्रिंशच्च शतसहस्राणि । पञ्चाशच्चत्वारिंशच्च दक्षिणस्यां भवनानि भवन्ति ॥ १ ॥ [४० लक्षाः षण्णां प्रत्येकम्]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नाराकादिनाम् नामानि एवं वर्षा:

प्रत सूत्रांक [४३]

दीप अनुक्रम [५२-६०]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ६८ ॥

हुंति भवणाइं ॥ १ ॥" 'चत्तालीस'त्ति द्वीपकुमारादीनां षण्णां प्रत्येकं चत्वारिंशद्भवनलक्षाः, "तीसा चत्तालीसा चोत्तीसं चेव सयसहस्साइं । छायाला छत्तीसा उत्तरओ होंति भवणाइं ॥ १ ॥" 'छत्तीस'त्ति द्वीपकुमारादीनां षण्णां प्रत्येकं षट्त्रिंशद्भवनलक्षाणीति ॥ अथाधिकृतोद्देशकार्थसङ्ग्रहाय गाथामाह—

पुढवि ठिति ओगा(२)हणसरीरसंघयण(६)मेव संठा(७)णे । लेस्सा (८) दिट्ठी (९)णाणे जोगु(१०)व ओगे य दस ठाणा ॥ १ ॥

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि नेरइयाणं केवइया ठितिठाणा पण्णत्ता ?, गोयमा ! असंखेज्जा ठितिठाणा पण्णत्ता, तंजहा—जहन्निया ठिती समयाहिया जहन्निया ठिई दुसमयाहिया जाव असंखेज्जसमयाहिया जहन्निया ठिई तप्पाउग्गुक्कोसिया ठिती ॥ इमीसे णं भंते रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि जहन्नियाए ठितीए वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता माणोवउत्ता मायोवउत्ता लोभोवउत्ता ?, गोयमा ! सव्वेवि ताव होज्जा कोहोवउत्ता १, अहवा कोहोवउत्ता य माणोवउत्ते य २, अहवा कोहोवउत्ता य माणोवउत्ता य ३, अहवा कोहोवउत्ता य मायोवउत्ते य ४, अहवा कोहोवउत्ता य मायोवउत्ता य ५, अहवा कोहोवउत्ता य लोभोवउत्ते य ६, अहवा कोहोवउत्ता य लोभोवउत्ता य ७ । अहवा कोहोवउत्ता य माणोवउत्ते य मायोवउत्ते य १, कोहोवउत्ता य माणोवउत्ते य मायोवउत्ता य २, कोहोवउत्ता य माणोवउत्ता

१ त्रिंशच्चत्वारिंशच्चतुस्त्रिंशच्चैव शतसहस्राणि षट्चत्वारिंशत् षण्णां प्रत्येकं षट्त्रिंशदुत्तरस्यां भवनानि भवन्ति ॥ १ ॥

१ शतके उद्देशः ५ स्थितौ क्रोधोपयुक्तादिः सू ४४

॥ ६८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४४]

दीप अनुक्रम [६१-६२]

य मायोवउत्ते य ३, कोहोवउत्ता य माणोवउत्ता य मायाउवउत्ता य ४ एवं कोहमाणलोभेणवि चउ ४, एवं कोहमायालोभेणवि चउ ४ एवं १२, पच्छा माणेण मायाए लोभेण य कोहो भइयव्वो, ते कोहं असुंचता ८, एवं सत्तावीसं भंगा णेयव्वा ॥ इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि समयाहियाए जहन्नट्ठितीए वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता माणोवउत्ता मायोवउत्ता लोभोवउत्ता ?, गोयमा ! कोहोवउत्ते य माणोवउत्ते य मायोवउत्ते य लोभोवउत्ते य, कोहोवउत्ता य माणोवउत्ता य मायोवउत्ता य लोभोवउत्ता य, अहवा कोहोवउत्ते य माणोवउत्ते य, अहवा कोहोवउत्ते य माणोवउत्ता य एवं असीति भंगा नेयव्वा, एवं जाव संखिज्जसमयाहिया ठिई असंखेज्जसमयाहियाए ठिईए तप्पाउग्गुक्कोसियाए ठिईए सत्तावीसं भंगा भाणियव्वा ॥ (सू० ४४)

'पुढवी'त्यादि, तत्र पुढवीति लुप्तविभक्तिकत्वान्निर्देशस्य पृथिवीषु, उपलक्षणत्वाच्चास्य पृथिव्यादिषु जीवावासेष्विति द्रष्टव्यमिति । 'ठिइ'त्ति 'सूचनात् सूत्र'मिति न्यायात् स्थितिस्थानानि वाच्यानीति शेषः । एवम् 'ओगाहणे'ति अवगाहनास्थानानि, शरीरादिपदानि तु व्यक्तान्येव, एकारान्तं च पदं प्रथमैकवचनान्तं द्रष्टव्यम्, इत्येवमेतानि स्थितिस्थानादीनि दश वस्तूनि इहोद्देशके विचारयितव्यानीति गाथासमासार्थः, विस्तरार्थं तु सूत्रकारः स्वयमेव वक्ष्यतीति, तत्र रत्नप्रभापृथिव्यां स्थितिस्थानानि तावत्प्ररूपयन्नाह–'इमीसे ण'मित्यादि व्यक्तं, नवरम् 'एगमेगंसि निरयावासंसि'त्ति प्रतिनरकावासमित्यर्थः 'ठितिठाण'त्ति आयुषो विभागाः 'असंखेज्ज'त्ति सङ्ख्यातीतानि, कथं ?, प्रथमपृथि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः१ ॥ ६९ ॥

व्यपेक्षया जघन्या स्थितिर्दश वर्षसहस्राणि उत्कृष्टा तु सागरोपमम्, एतस्यां चैकैकसमयवृद्ध्याऽसङ्ख्येयानि स्थितिस्थानानि भवन्ति, असङ्ख्येयत्वात्सागरोपमसमयानामिति, एवं नरकावासापेक्षयाऽप्यसङ्ख्येयान्येव तानि केवलं तेषु जघन्योत्कृष्टविभागो ग्रन्थान्तरादवसेयो, यथा प्रथमप्रस्तटनरकेषु जघन्या स्थितिर्दश वर्षसहस्राणि उत्कृष्टा तु नवतिरिति, एतदेव दर्शयन्नाह—'जहण्णिया ठिती'त्यादि, जघन्या स्थितिर्दशवर्षसहस्रादिका इत्येकं स्थितिस्थानं, तच्च प्रतिनरकं भिन्नरूपं, सैव समयाधिकेति द्वितीयम्, इदमपि विचित्रम्, एवं यावदसङ्ख्येयसमयाधिका सा, सर्वान्तिमस्थितिस्थानदर्शनायाह–'तप्पाउग्गुक्कोसिय'त्ति, उत्कृष्टा असावनेकविधेति विशेष्यते तस्य–विवक्षितनरकावासस्य प्रायोग्या–उचिता उत्कर्षिका तत्प्रायोग्योत्कर्षिका इत्यपरं स्थितिस्थानम्, इदमपि चित्रं, विचित्रत्वादुत्कर्षस्थितेरिति ॥ एवं स्थितिस्थानानि प्ररूप्य तेष्वेव क्रोधाद्युपयुक्तत्वान्नारकाणां विभागेन दर्शयन्निदमाह–इमीसे णं इत्यादि, 'जहन्नियाए ठिईए वट्टमाणस्स'त्ति या यत्र नरकावासे जघन्या तस्यां वर्त्तमानाः, 'किं कोहोवउत्ते'त्यादि प्रश्ने 'सव्वेवी'त्याद्युत्तरं, तत्र च प्रतिनरकं जघन्यस्थितिकानां सदैव भावात् तेषु च क्रोधोपयुक्तानां बहुत्वात्सप्तविंशतिभङ्गकाः, एकादिसङ्ख्यातसमयाधिकजघन्यस्थितिकानां तु कादाचित्कत्वात् तेषु च क्रोधाद्युपयुक्तानामेकत्वानेकत्वसम्भवादशीतिभङ्गकाः, एकेन्द्रियेषु तु सर्वकषायोपयुक्तानां प्रत्येकं बहूनां भावादभङ्गकम्, आह च–"संभवइ जहिं विरहो असीई भंगा तहिं करेज्जाहि । जहियं न होइ विरहो अभंगयं सत्तवीसा वा ॥ १ ॥" अयं च तत्सत्तापेक्षो विरहो द्रष्टव्यो, न तूत्पादापेक्षया, यतो रत्नप्रभायां चतुर्विंशति-

१–यत्र (एकादिसङ्ख्यातसमयाधिकादौ) विरहः संभवति तत्राशीतिं भङ्गानां कुर्यात्। यत्र न विरहो भवति तत्राभङ्गकं सप्तविंशतिर्वा ॥ १ ॥

१ शतके उद्देशः ५ स्थितौ क्रोधोपयुक्तादिः सू ४४

॥ ६९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुहूर्त्ता उत्पादविरहकाल उक्तः, ततश्च यत्र सप्तविंशतिर्भङ्गका उच्यन्ते तत्रापि विरहभावादशीतिः प्राप्नोति, सप्तविंशतेश्चाभाव एवेति, तत्र 'सव्वेवि ताव होज्ज कोहोवउत्त'त्ति, प्रतिनरकं स्वकीयस्वकीयस्थित्यपेक्षया जघन्यस्थितिकानां नारकाणां सदैव बहूनां सद्भावात् नारकभवस्य च क्रोधोदयप्रचुरत्वात्सर्व एव क्रोधोपयुक्ता भवेयुरित्येको भङ्गः १। 'अहवा'इत्यादिना द्वित्रिचतुःसंयोगभङ्गा दर्शिताः, तत्र द्विकसंयोगे बहुवचनान्तं क्रोधममुञ्चता षड् भङ्गाः कार्याः, तथाहि–क्रोधोपयुक्तश्च मानोपयुक्ताश्च १ तथा क्रोधोपयुक्ताश्च मानोपयुक्ताश्च २, एवं मायया एकत्वबहुत्वाभ्यां द्वौ, लोभेन च द्वौ, एवमेते द्विकसंयोगे षट्। त्रिकसंयोगे तु द्वादश भवन्ति १२, तथाहि—क्रोधे नित्यं बहुवचनं माननायायोरेकवचनमित्येकः १, मानैकत्वे मायाबहुत्वे च द्वितीयः २, माने बहुवचनं मायायामेकत्वमिति तृतीयः ३, मानबहुत्वे मायाबहुत्वे च चतुर्थः ४, पुनः क्रोधमानलोभैरित्थमेव चत्वारः ४, पुनः क्रोधमायालोभैरित्थमेव चत्वारः ४, एवमेते द्वादश १२। चतुष्कसंयोगे त्वष्टौ, तथाहि–क्रोधे बहुवचनेन मानमायालोभेषु चैकवचनेनैकः, एवमेव लोभे बहुवचनेन द्वितीयः, एवमेतावेकवचनान्तमायया जातौ, एवमेव बहुवचनान्तमायया ऽन्यौ द्वौ, एवमेते चत्वार एकवचनान्तमानेन जाताः, एवमेव बहुवचनान्तमानेन चत्वार इत्येवमष्टौ, एवमेते जघन्यस्थितिषु नारकेषु सप्तविंशतिर्भवन्ति, जघन्यस्थितौ हि बहवो नारका भवन्त्यतः क्रोधे बहुवचनमेव ॥ **'समयाहियाए जहन्नट्ठिईए वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता'** इत्यादि प्रश्नः, इहोत्तरम्–'कोहोवउत्ते य' इत्यादयोऽशीतिर्भङ्गाः, इह समयाधिकायां यावत्सङ्ख्येयसमयाधिकायां जघन्यस्थितौ नारका न भवन्त्यपि, भवन्ति चेदेको वाऽनेको वेति ततः क्रोधादि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥ ७० ॥

ष्वेकत्वेन चत्वारो विकल्पाः, बहुत्वेन चान्ये चत्वार एव ४, द्विकसंयोगे चतुर्विंशतिः, तथाहि—क्रोधमानयोरेकत्वबहुत्वाभ्यां चत्वारः ४, एवं क्रोधमाययोः ४, एवं क्रोधलोभयोः ४, एवं मानमाययोः ४, एवं मानलोभयोः ४, एवं मायालोभयोरिति ४ द्विकसंयोगे चतुर्विंशतिः । त्रिकसंयोगे द्वात्रिंशत्, तथाहि—क्रोधमानमायास्वेकत्वेनैकः, एष्वेव मायाबहुत्वेन द्वितीयः, एवमेतौ मानैकत्वेन, द्वावेवान्यौ तद्बहुत्वेन, एवमेते चत्वारः क्रोधैकत्वेन चत्वार एवान्ये क्रोधबहुत्वेनेत्येवमष्टौ क्रोधमानमायात्रिके जाताः, तथैवान्येऽष्टौ क्रोधमानलोभेषु, तथैवान्येऽष्टौ क्रोधमायालोभेषु, तथैवान्येऽष्टौ मानमायालोभेष्विति द्वात्रिंशत् । चतुष्कसंयोगे षोडश, तथाहि—क्रोधादिष्वेकत्वेनैको लोभस्य बहुत्वेन द्वितीयः, एवमेतौ मायैकत्वेन, तथाऽन्यौ मायाबहुत्वेन, एवमेते चत्वारो मानैकत्वेन, तथाऽन्ये चत्वार एव मानबहुत्वेन, एवमेतेऽष्टौ क्रोधैकत्वेन, एवमन्येऽष्टौ क्रोधबहुत्वेनेति षोड़श, एवमेते सर्व एवाशीतिरिति, एते च जघन्यस्थितौ एकादिसङ्ख्यातान्तसमयाधिकायां भवन्ति, असङ्ख्यातसमयाधिकायास्तु जघन्यस्थितेरारभ्योत्कृष्टस्थितिं यावत्सप्तविंशतिर्भङ्गास्त एव, तत्र नारकाणां बहुत्वादिति ॥ अथावगाहनाद्वारं तत्र—

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि नेरइयाणं केवइया ओगाहणाठाणा पन्नत्ता ?, गोयमा ! असंखेज्जा ओगाहणाठाणा पन्नत्ता, तंजहा—जहन्निया ओगाहणा, पदेसाहिया जहन्निया ओगाहणा, दुप्पएसाहिया जहन्निया ओगाहणा, जाव असंखिज्जपएसाहिया जहन्निया ओगाहणा, तप्पाउग्गुक्कोसिया ओगाहणा ॥ इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निर-

१ शतके उद्देशः ५ स्थितौ क्रोधोपयुक्तादिः सू ४४

॥ ७० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि जहन्नियाए ओगाहणाए वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता ?, असीइभंगा भाणियव्वा जाव संखिज्जपएसाहिया जहन्निया ओगाहणा, असंखेज्जपएसाहियाए जहन्नियाए ओगाहणाए वट्टमाणाणं तप्पाउग्गुक्कोसियाए ओगाहणाए वट्टमाणाणं नेरइयाणं दोसुवि सत्तावीसं भंगा ॥ इमीसे णं भंते ! रयण० जाव एगमेगंसि निरयावासंसि नेरइयाणं कइ सरीरया पण्णत्ता ?, गोयमा ! तिन्नि सरीरया पण्णत्ता, तंजहा—वेउव्विए तेयए कम्मए ॥ इमीसे णं भंते ! जाव वेउव्वियसरीरे वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता ? सत्तावीसं भंगा भाणियव्वा, एएणं गमएणं तिन्नि सरीरा भाणियव्वा ॥ इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढविए जाव नेरइयाणं सरीरया किंसंघयणी पन्नत्ता ?, गोयमा ! छण्हं संघयणाणं असंघयणी, नेवट्ठी नेव छिरा नेव ण्हारूणि जे पोग्गला अणिट्ठा अकंता अप्पिया असुहा अमणुन्ना अमणामा, एतेसिं सरीरसंघायत्ताए परिणमंति ॥ इमीसे णं भंते ! जाव छण्हं संघयणाणं असंघयणे वट्टमाणाणं नेरइया किं कोहोवउत्ता ? सत्तावीसं भंगा ॥ इमीसे णं भंते ! रयणप्पभा जाव सरीरिया किंसंठिया पन्नत्ता ?, गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता, तंजहा—भवधारणिज्जा य उत्तरविउव्विया य, तत्थ णं जे ते भवधारणिज्जा ते हुंडसंठिया पण्णत्ता, तत्थ णं जे ते उत्तरवेउव्विया तेवि हुंडसंठिया पण्णत्ता । इमीसे णं जाव हुंडसंठाणे वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता ? सत्तावीसं भंगा ॥ इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नेरइयाणं कति लेस्साओ पन्नत्ता ?, गोयमा ! एगा काउलेस्सा पण्णत्ता । इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए जाव काउलेस्साए वट्टमाणा सत्तावीसं भंगा ॥ (सू० ४५)

'ओगाहणाठाण'त्ति अवगाहन्ते–आसते यस्यां साऽवगाहना–तनुस्तदाधारभूतं वा क्षेत्रं तस्याः स्थानानि–प्रदेशवृद्ध्या विभागाः अवगाहनास्थानानि, तत्र 'जहन्निय'त्ति जघन्याऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रा सर्वनरकेषु 'तप्पाउग्गुक्कोसिय'त्ति तस्य विवक्षितनरकस्य प्रायोग्या या उत्कर्षिका सा तत्प्रायोग्योत्कर्षिका यथा त्रयोदशप्रस्तटे धनुःसप्तकं रत्नित्रयमङ्गुलषट्कं चेति । 'जहन्नियाए'इत्यादि जघन्यायां तस्यामेव चैकादिसङ्ख्यातान्तप्रदेशाधिकायामवगाहनायां वर्त्तमानानां नारकाणामल्पत्वात् क्रोधाद्युपयुक्त एकोऽपि लभ्यतेऽतोऽशीतिर्भङ्गाः । 'असंखेज्जपएसे'त्यादि, असङ्ख्यातप्रदेशाधिकायां तत्प्रायोग्योत्कृष्टायां च नारकाणां बहुत्वात् तेषु च बहूनां क्रोधोपयुक्तत्वेन क्रोधे बहुवचनस्य भावात् मानादिषु त्वेकत्वबहुत्वसम्भवात्सप्तविंशतिर्भङ्गा भवन्तीति । ननु ये जघन्यस्थितयो जघन्यावगाहनाश्च भवन्ति तेषां जघन्यस्थितिकत्वेन सप्तविंशतिर्भङ्गकाः प्राप्नुवन्ति जघन्यावगाहनत्वेन चाशीतिरिति विरोधः ?, अत्रोच्यते, जघन्यस्थितिकानामपि जघन्यावगाहनाकालेऽशीतिरेव, उत्पत्तिकालभावित्वेन जघन्यावगाहनानामल्पत्वादिति, या च जघन्यस्थितिकानां सप्तविंशतिः सा जघन्यावगाहनत्वमतिक्रान्तानामिति भावनीयम् ॥ शरीरद्वारे 'सत्तावीसं भंग'त्ति, अनेन यद्यपि वैक्रियशरीरे सप्तविंशतिर्भङ्गका उक्तास्तथाऽपि या स्थित्याश्रया अवगाहनाश्रया च भङ्गकप्ररूपणा सा तथैव दृश्या, निरवकाशत्वात्तस्याः, शरीराश्रयायाश्च सावकाशत्वात्, एवमन्यत्रापि विमर्शनीयमिति। 'एएणं गमेणं तिन्नि सरीरया भाणि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यव्व'त्ति, वैक्रियशरीरसूत्रपाठेन त्रीणि शरीरकाणि वैक्रियतैजसकार्मणानि भणितव्यानि, त्रिष्वपि भङ्गकाः सप्तविंशतिर्वाच्येत्यर्थः, ननु विग्रहगतौ केवले ये तैजसकार्मणशरीरे स्यातां तयोरल्पत्वेनाशीतिरपि भङ्गकानां संभवतीति कथमुच्यते ? तयोः सप्तविंशतिरेवेति, अत्रोच्यते, सत्यमेतत् केवलं वैक्रियशरीरानुगतयोस्तयोरिहाश्रयणं केवलयोश्चानाश्रयणमिति सप्तविंशतिरेवेति, यच्च द्वयोरेवातिदेश्यत्वे त्रीणीत्युक्तं तच्च त्रयाणामपि गमस्यात्यन्तसाम्योपदर्शनार्थमिति ॥ संहननद्वारे 'छण्हं संघयणाणं असंघयणि'त्ति, षण्णां संहननानां–वज्रर्षभनाराचादीनां मध्यादेकतरेणापि संहननेनासंहननानीति, कस्मादेवमित्यत आह—'नेवट्ठी'त्यादि, नैवास्थ्यादीनि तेषां सन्ति अस्थिसञ्चयरूपं च संहननमुच्यत इति, 'अनिट्ठ'त्ति इष्यन्ते स्मेतीष्टास्तन्निषेधादनिष्टाः, अनिष्टमपि किञ्चित्कमनीयं भवतीत्यत उच्यते–अकान्ताः, अकान्तमपि किञ्चित्कारणवशात् प्रीतये भवतीत्याह–(ग्रन्थाग्रम् २०००) 'अप्पिया' अप्रीतिहेतवः, अप्रियत्वं तेषां कुतः ?, यतः 'असुभ'त्ति अशुभस्वभावाः, ते च सामान्या अपि भवन्तीत्यतो विशेष्यते–'अमणुण्ण'त्ति न मनसाः–अन्तःसंवेदनेन शुभतया ज्ञायन्त इत्यमनोज्ञाः, अमनोज्ञता चैकदाऽपि स्यादत आह–'अमणाम'त्ति न मनसा अम्यन्ते—गम्यन्ते पुनः पुनः स्मरणतो ये ते अमनोऽमाः, एकार्थिका वैते शब्दाः अनिष्टताप्रकर्षप्रतिपादनार्था इति । 'एतेसिं सरीरसंघायत्ताए'त्ति सङ्घाततया, शरीररूपसञ्चयतयेत्यर्थः ॥ संस्थानद्वारे 'किंसंठिय'त्ति किं संस्थितं–संस्थानं येषां तानि किंसंस्थितानि, 'भवधारणिज्ज'त्ति, भवधारणं–निजजन्मातिवाहनं प्रयोजनं येषां तानि भवधारणीयानि, आज-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न्मधारणीयानीत्यर्थः, 'उत्तरवेउव्विय'त्ति पूर्ववैक्रियापेक्षयोत्तराणि–उत्तरकालभावीनि वैक्रियाणि उत्तरवैक्रियाणि, 'हुंडसंठिय'त्ति सर्वत्रासंस्थितानि ॥

इमीसे णं जाव किं सम्मद्दिट्ठी मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ?, तिन्निवि । इमीसे णं जाव सम्मद्दंसणे वट्टमाणा नेरइया सत्तावीसं भंगा, एवं मिच्छादंसणेवि, सम्मामिच्छादंसणे असीति भंगा ॥ इमीसे णं भंते ! जाव किं नाणी अन्नाणी ?, गोयमा ! णाणीवि अन्नाणीवि, तिन्नि नाणाइं नियमा, तिन्नि अन्नाणाइं भयणाए । इमीसे णं भंते ! जाव आभिणिबोहियनाणे वट्टमाणा सत्तावीसं भंगा, एवं तिन्नि नाणाइं तिन्नि अन्नाणाइं भाणियव्वाइं ॥ इमीसे णं जाव किं मणजोगी वइजोगी कायजोगी, ? तिन्निवि । इमीसे णं जाव मणजोए वट्टमाणा कोहोवउत्ता ?, सत्तावीसं भंगा । एवं वइजोए एवं कायजोए ॥ इमीसेणं जाव नेरइया किं सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता ?, गोयमा ! सागारोवउत्तावि अणागारोवउत्तावि । इमीसे णं जाव-सागारोवओगे वट्टमाणा किं कोहोवउत्ता ?, सत्तावीसं भंगा । एवं अणागारोवउत्तावि सत्तावीसं भंगा ॥ एवं सत्तवि पुढविओ नेयव्वाओ, णाणत्तं लेसासु गाहा—काऊ य दोसु तइयाए मीसिया नीलिया चउ-त्थीए । पंचमियाए मीसा कण्हा तत्तो परमकण्हा ॥ १ ॥ (सू० ४६)

दृष्टिद्वारे 'सम्मामिच्छादंसणे असीइभंग'त्ति मिश्रदृष्टीनामल्पत्वात्तद्भावस्यापि च कालतोऽल्पत्वादेकोऽपि लभ्यते इत्यशीतिर्भङ्गाः ॥ ज्ञानद्वारे 'तिन्नि णाणाइं नियम'त्ति ये ससम्यक्त्वा नरकेषूत्पद्यन्ते तेषां प्रथमसमयादारभ्य भव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४६] + गाथा

दीप अनुक्रम [६४-६५]

प्रत्ययस्यावधिज्ञानस्य भावात् त्रिज्ञानिन एव ते, ये तु मिथ्यादृष्टयस्ते सञ्ज्ञिभ्योऽसञ्ज्ञिभ्यश्चोत्पद्यन्ते, तत्र ये सञ्ज्ञिभ्यस्ते भवप्रत्ययादेव विभङ्गस्य भावात् त्र्यज्ञानिनः, ये त्वसञ्ज्ञिभ्यस्तेषामाद्यादन्तर्मुहूर्त्तात्परतो विभङ्गस्योत्पत्तिरिति तेषां पूर्वमज्ञानद्वयं पश्चाद्विभङ्गोत्पत्तावज्ञानत्रयमित्यत उच्यते—'तिन्नि अण्णाणाइं भयणाए'त्ति 'भजनया' विकल्पनया कदाचिद्वे कदाचित्त्रीणीत्यर्थः, अत्रार्थे गाथे स्याताम्–"सन्नी नेरइएसुं उरलपरिच्चायणंतरे समए। विब्भंगं ओहिं वा अविग्गहे विग्गहे लहइ ॥ १ ॥ अस्सन्नी नरएसुं पज्जत्तो जेण लहइ विब्भंगं। नाणा तिन्नेव तओ अन्नाणा दोन्नि तिन्नेव ॥ २ ॥" 'एवं तिन्नि णाणे'त्यादि, आभिनिबोधिकज्ञानवत् सप्तविंशतिभङ्गकोपेतानि आद्यानि त्रीणि ज्ञानानि अज्ञानानि चेति, इह च त्रीणि ज्ञानानीति यदुक्तं तदाभिनिबोधिकस्य पुनर्गणनेनान्यथा द्वे एव ते वाच्ये स्यातामिति। 'तिन्नि अन्नाणाइं' इत्यत्र यदि मत्यज्ञानश्रुताज्ञाने विभङ्गात्पूर्वकालभाविनी विवक्ष्येते तदाऽशीतिर्भङ्गा लभ्यन्ते, अल्पत्वात्तेषां, किन्तु जघन्यावगाहनास्ते ततो जघन्यावगाहनाश्रयेणैवाशीतिभङ्गकास्तेषामवसेया इति॥ योगद्वारे 'एवं कायजोए'त्ति, इह यद्यपि केवलकार्मणकाययोगेऽशीतिर्भङ्गाः संभवन्ति तथाऽपि तस्याविवक्षणात् सामान्यकाययोगाश्रयणाच्च सप्तविंशतिरुक्तेति ॥ उपयोगद्वारे 'सागारोवउत्त'त्ति, आकारो–विशेषांशग्रहणशक्तिस्तेन सहेति साकारः, तद्विकलोऽनाकारः सामान्यग्राहीत्यर्थः। 'पाणत्तं लेसासु'त्ति, रत्नप्रभापृथिवीप्रकरणवच्छेषपृथिवीप्रकरणान्यध्येयानि,केवलं लेश्यासु

१ सञ्ज्ञी औदारिकपरित्यागानन्तरसमयेऽविग्रहो विग्रहो वा नैरयिकेषु लभते विभङ्गमवधिं वा ॥ १ ॥ असञ्ज्ञी येन पर्याप्तः सन् विभङ्गं लभते नरकेषु। ततो ज्ञानानि त्रीणि अज्ञानानि त्रीणि द्वे वा ॥ २ ॥

For Personal & Private Use Only

प्रत सूत्रांक [४६] + गाथा

दीप अनुक्रम [६४-६५]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-यावृत्तिः १

॥ ७३ ॥

विशेषः, तासां भिन्नत्वाद्,अत एव तद्दर्शनाय गाथा–'काऊ' इत्यादि, तत्र 'तइयाए मीसिय'त्ति वालुकाप्रभाप्रकरणे उपरितननरकेषु कापोती अधस्तनेषु तु नीली भवतीति यथासम्भवं प्रश्नसूत्रे उत्तरसूत्रे चाध्येतव्य इत्यर्थः, यच्च सूत्राभिलापेषु नरकावाससङ्ख्यानानात्वं तत् 'तीसा य पन्नवीसा' इत्यादिना पूर्वप्रदर्शितेन समवसेयमिति, एवं सूत्राभिलापः कार्यः– 'सक्करप्पभाए णं भंते ! पुढवीए पणवीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एक्कमेक्कंसि निरयावासंसि कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ ?, गोयमा ! एगा काउलेस्सा पण्णत्ता । सक्करप्पभाए णं भंते ! जाव काउलेसाए वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता?' इत्यादि 'जाव सत्तावीसं भंगा' । एवं सर्वपृथिवीषु गाथाऽनुसारेण वाच्याः ॥

चउसट्ठीए णं भंते ! असुरकुमारावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि असुरकुमारावासंसि असुरकुमाराणं केवइया ठिइठाणा पण्णत्ता ?, गोयमा ! असंखेज्जा ठितिठाणा पण्णत्ता, जहन्निया ठिई जहा नेरइया तहा, नवरं पडिलोमा भंगा भाणियव्वा–सव्वेवि ताव होज्ज लोभोवउत्ता, अहवा लोभोवउत्ता य मायोवउत्ते य, अहवा लोभोवउत्ता य मायोवउत्ता य, एएणं गमेणं नेयव्वं जाव थणियकुमाराणं, नवरं णाणत्तं जाणियव्वं ॥ (सू० ४७) ॥

असुरकुमारप्रकरणे 'पडिलोमा भंग'त्ति, नारकप्रकरणे हि क्रोधमानादिना क्रमेण भङ्गकनिर्देशः कृतः, असुरकुमारादिप्रकरणेषु लोभमायादिनाऽसौ कार्य इत्यर्थः, अत एवाह–'सव्वेवि ताव होज्ज लोहोवउत्त'त्ति, देवा हि प्रायो लोभवन्तो भवन्ति तेन सर्वेऽप्यसुरकुमारा लोभोपयुक्ताः स्युः, द्विकसंयोगे तु लोभोपयुक्तत्वे बहुवचनमेव, मायोपयोगे त्वेकत्वबहुत्वाभ्यां द्वौ भङ्गकौ, एवं सप्तविंशतिर्भङ्गकाः कार्याः, 'नवरं णाणत्तं जाणियव्वं'ति नारकाणामसुरकुमारादीनां च

१ शतके उद्देशः ५ नारकस्थित्यदौक्रोधा सू ४३

॥ ७३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परस्परं नानात्वं ज्ञात्वा प्रश्नसूत्राणि उत्तरसूत्राणि चाध्येयानीति हृदयं, तच्च नारकाणामसुरकुमारादीनां च संहननसंस्थानलेश्यासूत्रेषु भवति, तच्चैवम्–'चउसट्ठीए णं भंते ! असुरकुमारावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि असुरकुमारावासंसि असुरकुमाराणं सरीरगा किंसंघयणी ?, गोयमा ! असंघयणी, जे पोग्गला इट्ठा कंता ते तेसिं संघायत्ताए परिणमंति, एवं संठाणेवि, नवरं भवधारणिज्जा समचउरंससंठिया उत्तरवेउव्विया अन्नयरसंठिया एवं लेसासुवि, नवरं कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ ?, गोयमा ! चत्तारि, तंजहा–किण्हा नीला काऊ तेऊलेसा, चउसट्ठीए णं जाव कण्हलेसाए वट्टमाणा किं कोहोवउत्ता ?, गोयमा ! सव्वेवि ताव होज्ज लोहोवउत्ता' इत्यादि, एवं 'नीलाकाऊतेऊवि' नागकुमारादिप्रकरणेषु तु 'चुलसीए नागकुमारावाससयसहस्सेसु' इत्येवं "चउसट्ठी असुराणं नागकुमाराण होइ चुलसीइ" इत्यादेर्वचनात् प्रश्नसूत्रेषु भवनसङ्ख्यानानात्वमवगम्य सूत्राभिलापः कार्य इति ॥

असंखेज्जेसु णं भंते ! पुढविकाइयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि पुढविकाइयावासंसि पुढविकाइयाणं केवतिया ठितिठाणा पण्णत्ता ?, गोयमा ! असंखेज्जा ठितिठाणा पण्णत्ता, तंजहा–जहन्निया ठिई जाव तप्पाउग्गुक्कोसिया ठिई । असंखेज्जेसु णं भंते ! पुढविकाइयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि पुढविकाइयावासंसि जहन्नियाए ठितीए वट्टमाणा पुढविकाइया किं कोहोवउत्ता माणोवउत्ता मायोवउत्ता लोभोवउत्ता ?, गोयमा ! कोहोवउत्तावि माणोवउत्तावि मायोवउत्तावि लोभोवउत्तावि, एवं पुढविकाइयाणं सव्वेसुवि ठाणेसु अभं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥ ७४ ॥

गयं, नवरं तेउलेस्साए असीति भंगा, एवं आउक्काइयावि, तेउक्काइयवाउक्काइयाणं सव्वेसुवि ठाणेसु अभंगयं ॥ वणस्सइकाइया जहा पुढविक्काइया ॥ (सू० ४८) ॥

'एवं पुढविक्काइयाणं सव्वेसु ठाणेसु अभंगयं'ति, पृथिवीकायिका एकैकस्मिन् कषाये उपयुक्ता बहवो लभ्यन्त इत्यभङ्गकं दशस्वपि स्थानेषु, नवरं 'तेउलेसाए असीई भंग'त्ति, पृथिवीकायिकेषु लेश्याद्वारे तेजोलेश्या वाच्या, सा च यदा देवलोकाच्च्युतो देव एकोऽनेको वा पृथिवीकायिकेषूत्पद्यते तदा भवति, ततश्च तदैकत्वादिभवनादशीतिर्भङ्गका भवन्तीति । इह पृथिवीकायिकप्रकरणे स्थितिस्थानद्वारं साक्षाल्लिखितमेवास्ति, शेषाणि तु नारकवद्वाच्यानि, तत्र च 'नवरं णाणत्तं जाणियव्वं' इत्येतस्यानुवृत्तेर्नानात्वमिह प्रश्नत उत्तरतश्चावसेयं, तच्च शरीरादिषु सप्तसु द्वारेष्विदम्–'असंखिज्जेसु णं भंते ! पुढविकाइयावाससयसहस्सेसु जाव पुढविकाइयाणं कइ सरीरा पन्नत्ता ?, गोयमा ! तिन्नि सरीरा, तंजहा–ओरालिए तेयए कम्मए' एतेषु च 'कोहोवउत्तावि माणोवउत्तावी' त्यादि वाच्यं, तथा 'असंखेज्जेसु णं जाव पुढविकाइयाणं सरीरगा किंसंघयणी ?' इत्यादि तथैव, नवरं 'पोग्गला मणुन्ना अमणुन्ना सरीरसंघायत्ताए परिणमंति' एवं संस्थानद्वारेऽपि, किन्तु उत्तरे 'हुंडसंठिया' एतावदेव वाच्यं न तु 'दुविहा सरीरगा पन्नत्ता, तंजहा–भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य' इत्यादि, पृथिवीकायिकानां तदभावादिति । लेश्याद्वारे पुनरेवं वाच्यं–'पुढविक्काइयाणं भंते ! कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ ?, गोयमा ! चत्तारि, तंजहा–कण्हलेसा जाव तेउलेसा' एतासु च तिसृष्वभङ्गकमेव, तेजोलेश्यायां त्वशीतिर्भङ्गकाः, एतच्च प्रागेवोक्तमिति । दृष्टिद्वारे इदं वाच्यम्–'असंखेज्जेसु जाव पुढविकाइया किं सम्मादिट्ठी मिच्छादिट्ठी

१ शतके उद्देशः ५ असुराणां-स्थित्यादौ को. ४७ पृ-ष्ठ्यादीनां सू ४८

॥ ७४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्मामिच्छादिट्ठी ?, गोयमा ! मिच्छादिट्ठी', शेषं तथैव । ज्ञानद्वारे तथैव, नवरं 'पुढविकाइया णं भंते ! किं णाणी अन्नाणी ?, गोयमा ! णो णाणी अन्नाणी नियमा दो अन्नाणी' । योगद्वारेऽपि तथैव, नवरं 'पुढविकाइया णं भंते ! किं मणजोगी वइजोगी कायजोगी ?, गोयमा ! नो मणजोगी नो वयजोगी कायजोगी' ॥ 'एवं आउक्काइयावि'त्ति पृथिवीकायिकवदप्कायिका अपि वाच्याः, ते हि दशस्वपि स्थानकेष्वभङ्गकाः, तेजोलेश्यायां चाशीतिभङ्गकवन्तो, यतस्तेष्वपि देव उत्पद्यत इति ।, 'तेउक्काइए' त्यादौ 'सव्वेसु ठाणेसु'त्ति स्थितिस्थानादिषु दशस्वप्यभङ्गकं, क्रोधाद्युपयुक्तानामेकदैव तेषु बहूनां भावात्, इह देवा नोत्पद्यन्त इति तेजोलेश्या तेषु नास्ति, ततस्तत्सम्भवान्नाशीतिरपीत्यभङ्गकमेवेति, एतेषु च सूत्राणि पृथिवीकायिकसमानि केवलं वायुकायसूत्रेषु शरीरद्वारे एवमध्येयम्–'असंखेज्जेसु णं भंते ! जाव वाउक्काइयाणं कइ सरीरा पन्नत्ता ?, गोयमा ! चत्तारि, तंजहा–ओरालिए वेउविए तेयए कम्मए'त्ति ॥ 'वणस्सइकाइए' त्यादि, वनस्पतयः पृथिवीकायिकसमाना वक्तव्याः, दशस्वपि स्थानकेषु भङ्गकाभावात्, तेजोलेश्यायां च तथैवाशीतिभङ्गकसद्भावादिति । ननु पृथिव्यम्बुवनस्पतीनां दृष्टिद्वारे सास्वादनभावेन सम्यक्त्वं कर्मग्रन्थेष्वभ्युपगम्यते, तत एव च ज्ञानद्वारे मतिज्ञानं श्रुतज्ञानं च, अल्पाश्चैते इत्येवमशीतिर्भङ्गाः सम्यग्दर्शनाभिनिबोधिकश्रुतज्ञानेषु भवन्तु, नैवं, पृथिव्यादिषु सास्वादनभावस्यात्यन्तविरलत्वेनाविवक्षितत्वात्, तत एवोच्यते–"[1]उभयाभावो पुढवाइएसु विगलेसु होज्ज उववण्णो ।" त्ति, 'उभयं' प्रतिपद्यमानपूर्वप्रतिपन्नरूपमिति ॥

१ पूर्वप्रतिपन्नप्रतिपद्यमानोभयाभावः पृथिव्यादिषु विकलेषूपपन्नो भवेत् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः१

॥ ७५ ॥

बेइंदियतेइंदियचउरिंदियाणं जेहिं ठाणेहिं नेरतियाणं असीइभंगा तेहिं ठाणेहिं असीइं चेव, नवरं अब्भहिया सम्मत्ते आभिणिबोहियनाणे सुयनाणे य, एएहिं असीइभंगा, जेहिं ठाणेहिं नेरतियाणं सत्तावीसं भंगा तेसु ठाणेसु सव्वेसु अभंगयं ॥ पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहा नेरइया तहा भाणियव्वा, नवरं जेहिं सत्तावीसं भंगा तेहिं अभंगयं कायव्वं जत्थ असीति तत्थ असीतिं चेव ॥ मणुस्साणवि जेहिं ठाणेहिं नेरइयाणं असीतिभंगा तेहिं ठाणेहिं मणुस्साणवि असीतिभंगा भाणियव्वा, जेसु ठाणेसु सत्तावीसा तेसु अभंगयं, नवरं मणुस्साणं अब्भहियं जहन्निया ठिई आहारए य असीति भंगा ॥ वाणमंतरजोइसवेमाणिया जहा भवणवासी, नवरं णाणत्तं जाणियव्वं जं जस्स, जाव अणुत्तरा, सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ॥ (सू० ४९)॥ पंचमो उद्देसो सम्मत्तो ॥ ५ ॥

'बेइंदिए'त्यादावेवमक्षरघटना–'जेहिं ठाणेहिं नेरइयाणं असीइभंगा तेहिं ठाणेहिं बेइंदियतेइंदियचउरिंदियाणं असीइं चेव'त्ति, तत्रैकादिसङ्ख्यातान्तसमयाधिकायां जघन्यस्थितौ १ तथा जघन्यायामवगाहनायां च २ तत्रैव च सङ्क्लेशान्तप्रदेशवृद्धायां ३ मिश्रदृष्टौ च नारकाणामशीतिर्भङ्गका उक्ताः, विकलेन्द्रियाणामप्येतेषु स्थानेषु मिश्रदृष्टिवर्जेष्वशीतिरेव, अल्पत्वात्तेषाम् एकैकस्यापि क्रोधाद्युपयुक्तस्य सम्भवात्, मिश्रदृष्टिस्तु विकलेन्द्रियेष्वेकेन्द्रियेषु च न संभवतीति न विकलेन्द्रियाणां तत्राशीतिभङ्गकसम्भव इति, वृद्धैस्त्विह सूत्रे कुतोऽपि वाचनाविशेषाद् यत्राशीतिस्तत्राप्यभङ्गकमिति व्याख्यातमिति । इहैव विशेषाभिधानायाह–नवरमित्यादि, अयमर्थः–दृष्टिद्वारे ज्ञानद्वारे च नार-

१ शतके उद्देशः ५ द्वीन्द्रिय-दिवैमानिकान्तानां सू ४९

॥ ७५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काणां सप्तविंशतिरुक्ता, विकलेन्द्रियाणां तु 'अब्भहिय'त्ति अभ्यधिकान्यशीतिर्भङ्गकानां भवति, क्व? इत्याह–सम्यक्त्वे, अल्पीयसां हि विकलेन्द्रियाणां सास्वादनभावेन सम्यक्त्वं भवति, अल्पत्वाच्चैतेषामेकत्वस्यापि सम्भवेनाशीतिर्भङ्गकानां भवति,एवमाभिनिबोधिके श्रुते चेति । तथा 'जेही' त्यादि, येषु स्थानकेषु नैरयिकाणां सप्तविंशतिर्भङ्गकास्तेषु स्थानेषु द्वि त्रि चतुरिन्द्रियाणां भङ्गकाभावः, तानि च प्रागुक्ताशीतिर्भङ्गकस्थानविशिष्टानि मन्तव्यानि, भङ्गकाभावश्च क्रोधाद्युपयुक्तानामेकदैव बहूनां भावादिति । विकलेन्द्रियसूत्राणि च पृथिवीकायिकसूत्राणीवाध्येयानि, नवरमिह लेश्याद्वारे–तेजोलेश्या नाध्येतव्या, दृष्टिद्वारे च 'बेइंदिया णं भंते ! किं सम्मद्दिट्ठी मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ?, गोयमा ! सम्मद्दिट्ठीवि मिच्छदिट्ठीवि नो सम्मामिच्छादिट्ठी, सम्मद्दंसणे वट्टमाणा बेइंदिया किं कोहोवउत्ता ?' इत्यादि प्रश्नोत्तरमशीतिर्भङ्गकाः । तथा ज्ञानद्वारे–'बेइंदिया णं भंते ! किं णाणी अन्नाणी ?, गोयमा ! णाणीवि अन्नाणीवि, जइ णाणी दुन्नाणी मइणाणी सुयणाणी य' शेषं तथैवाशीतिश्च भङ्गा इति । योगद्वारे 'बेइंदिया णं भंते ! किं मणजोगी वइजोगी कायजोगी ?, गोयमा ! णो मणजोगी वइजोगी कायजोगी य' शेषं तथैव । एवं त्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियसूत्राण्यपि ॥ 'पंचेदिये'त्यादि'जहिं सत्तावीसं भंग'त्ति, यत्र नारकाणां सप्तविंशतिर्भङ्गकास्तत्र पञ्चेन्द्रियतिरश्चामभङ्गकं, तच्च जघन्यस्थित्यादिकं पूर्वं दर्शितमेव, भङ्गकाभावश्च क्रोधाद्युपयुक्तानां बहूनामेकदैव तेषु भावादिति, सूत्राणि चेह नारकसूत्रवदध्येयानि, नवरं शरीरद्वारेऽयं विशेषः– 'असंखेज्जेसु णं भंते ! पंचिंदयतिरिक्खजोणियावासेसु पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं केवइया सरीरा पन्नत्ता ?, गोयमा ? चत्तारि, तंजहा–ओरालिए वेउव्विए तेयए कम्मए' सर्वत्र चाभङ्गकमिति । तथा संहननद्वारे 'पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

केवइया संघयणा पन्नत्ता ?, गोयमा ! छ संघयणा पं०, तंजहा–वइरोसहनारायं जाव छेवट्ठं'ति । एवं संस्थानद्वारेऽपि छ संठाणा पन्नत्ता, तंजहा–समचउरंसे ६ । एवं लेश्याद्वारे–'कइ लेसाओ पन्नत्ताओ ?, गोयमा ! छ लेस्सा प०, तंजहा–किण्ह-लेस्सा' ६ ॥ **'मणुस्साणवि'त्ति**, यथा नैरयिका दशसु द्वारेष्वभिहितास्तथा मनुष्या अपि भणितव्या इति प्रक्रमः, एत-देवाह–**'जेही'** त्यादि, तत्र नारकाणां जघन्यस्थितावेकादिसङ्ख्यातान्तसमयाधिकायां १ तथा जघन्यावगाहनायां २ तस्यामेव सङ्ख्यातान्तप्रदेशाधिकायां ३ मिश्रे च ४ अशीतिर्भङ्गका उक्ताः, मनुष्याणामप्येतेष्वशीतिरेव, तत्कारणं च तदल्पत्वमेवेति, नारकाणां मनुष्याणां च सर्वथा साम्यपरिहारायाह–**'जेसु सत्तावीसा'** इत्यादि, सप्तविंशतिर्भङ्गकस्था-नानि च नारकाणां जघन्यस्थित्यसङ्ख्यातसमयाधिकजघन्यस्थितिप्रभृतीनि, तेषु च जघन्यस्थितौ विशेषस्य वक्ष्यमाणत्वेन तद्वर्जेषु मनुष्याणामभङ्गकं, यतो नारकाणां बाहुल्येन क्रोधोदय एव भवति तेन तेषां सप्तविंशतिर्भङ्गका उक्तस्थानेषु युज्यन्ते, मनुष्याणां तु प्रत्येकं क्रोधाद्युपयोगवतां बहूनां भावान्न कषायोदये विशेषोऽस्ति, तेन तेषां तेषु स्थानेषु भङ्गका-भाव इति । इहैव विशेषाभिधानायाह–**नवरमित्यादि**, येषु स्थानेषु नारकाणामशीतिस्तेषु मनुष्याणामप्यशीतिः तथा **'जेसु सत्तावीसा तेसु अभंगय'** मित्युक्तं, केवलं मनुष्याणामिदमभ्यधिकं यदुत जघन्यस्थितौ तेषामशीतिर्न तु नारकाणां तत्र सप्तविंशतिरुक्तेत्यभङ्गकम् । तथाऽऽहारकशरीरे अशीतिराहारकशरीरवतां मनुष्याणामल्पत्वान्नारकाणां तन्नास्त्येवेत्ये-तदप्यभ्यधिकं मनुष्याणामिति, इह च नारकसूत्राणां मनुष्यसूत्राणां च प्रायः शरीरादिषु चतुर्षु ज्ञानद्वार एव च विशेषः, तथाहि–'असंखेज्जेसु णं भंते ! मणुस्सावासेसु मणुस्साणं कइ सरीरा पन्नत्ता ?, गोयमा! पंच, तंजहा–ओरालिए वेउव्विए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४९]

दीप अनुक्रम [६८]

आहारए तेयए कम्मए, असंखेज्जेसु णं जाव ओरालियसरीरे वट्टमाणा मणुस्सा किं कोहोवउत्ता ४ ?, गोयमा ! कोहोवउत्तावि ४, एवं सर्वशरीरकेषु नवरमाहारकेऽशीतिर्भङ्गकानां वाच्या । एवं संहननद्वारेऽपि नवरं 'मणुस्साणं भंते ! कइ संघयणा पण्णत्ता ?, गोयमा ! छस्संघयणा पण्णत्ता, तंजहा–वइरोसहनाराए जाव छेवट्ठे' । संस्थानद्वारे 'छ संठाणा पण्णत्ता, तंजहा–समचउरंसे जाव हुंडे' । लेश्याद्वारे 'छ लेसाओ, तंजहा–किण्हलेस्सा जाव सुक्कलेसा' । ज्ञानद्वारे 'मणुस्साणं भंते ! कइ णाणाणि ? गोयमा ! पंच, तंजहा–आभिणिबोहियणाणं जाव केवलणाणं' । एतेषु च केवलवर्जेष्वभङ्गकं, केवले तु कषायोदय एव नास्तीति ॥'वाणमंतरे'त्यादि, व्यन्तरादयो दशस्वपि स्थानेषु यथा भवनवासिनस्तथा वाच्याः, यत्रासुरादीनामशीतिर्भङ्गकाः यत्र च सप्तविंशतिस्तत्र च व्यन्तरादीनामपि ते तथैव वाच्याः, भङ्गकास्तु लोभमादौ विधायाध्येतव्याः, तत्र भवनवासिभिः सह व्यन्तराणां साम्यमेव, ज्योतिष्कादीनां तु न तथेति तैस्तेषां सर्वथा साम्यपरिहारसूचनायाह–'णवरं णाणत्तं जाणियव्वं जं जस्स'त्ति, 'यत्' लेश्यादिगतं 'यस्य' ज्योतिष्कादेः 'नानात्वम्' इतरापेक्षया भेदस्तद् ज्ञातव्यमिति, परस्परतो विशेषं ज्ञात्वैतेषां सूत्राण्यध्येयानीतिभावः । तत्र लेश्याद्वारे–ज्योतिष्काणामेकैव तेजोलेश्या वाच्या, ज्ञानद्वारे त्रीणि ज्ञानानि, अज्ञानान्यपि त्रीण्येव, असञ्ज्ञिनां तत्रोपपाताभावेन विभङ्गस्यापर्याप्तकावस्थायामपि भावात् । तथा वैमानिकानां लेश्याद्वारे तेजोलेश्यादयस्तिस्रो लेश्या वाच्याः । ज्ञानद्वारे च त्रीणि ज्ञानान्यज्ञानानि चेति, वैमानिकसूत्राणि चैवमध्येयानि–'संखेज्जेसु णं भंते ! वेमाणियावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि वेमाणियावासंसि केवइया ठिइठाणा पन्नत्ता ?' इत्येवमादीनि ॥ प्रथमशते पञ्चम उद्देशः समाप्तः १–५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र प्रथम-शतके पंचम-उद्देशकः समाप्तः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५०]

दीप अनुक्रम [६९]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ७७ ॥

अथ षष्ठो व्याख्यायते, तस्य चायं सम्बन्धः–अनन्तरोद्देशकेऽन्तिमसूत्रेषु 'असंखेज्जेसु णं भंते ! जाव जोतिसियवे-माणियावासेसु' तथा 'संखेज्जेसु णं भंते ! वेमाणियावाससयसहस्सेसु' इत्येतदधीतं, तेषु च ज्योतिष्कविमानावासाः प्रत्यक्षा एवेति तद्गतदर्शनं प्रतीत्य तथा 'जावंते' इति यदुक्तमादिगाथायां तच्च दर्शयितुमाह—

जावइयाओ य णं भंते ! उवासंतराओ उदयंते सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छति अत्थमंतेविय णं सूरिए तावतियाओ चेव उवासंतराओ चक्खुप्फासं हव्वमागच्छति ?, हंता ! गोयमा ! जावइयाओ णं उवासंत-राओ उदयंते सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छति अत्थमंतेवि सूरिए जाव हव्वमागच्छति । जावइयाणं भंते ! खित्तं उदयंते सूरिए आतावेणं सव्वओ समंता ओभासेइ उज्जोएइ तवेइ पभासेइ, अत्थमंतेविय णं सूरिए तावइयं चेव खित्तं आयावेणं सव्वओ समंता ओभासेइ उज्जोएइ तवेइ पभासेइ ?, हंता गोयमा ! जावतियण्णं खेत्तं जाव पभासेइ ॥ तं भंते ! किं पुट्ठं ओभासेइ अपुट्ठं ओभासेइ ?, जाव छद्दिसिं ओभा-सेति, एवं उज्जोवेइ तवेइ पभासेइ जाव नियमा छद्दिसिं ॥ से नूणं भंते ! सव्वंति सव्वावंति फुसमाणकालस-मयंसि जावतियं खेत्तं फुसइ तावतियं फुसमाणे पुट्ठेत्ति वत्तव्वं सिया ?, हंता ! गोयमा ! सव्वंति जाव वत्तव्वं सिया ॥ तं भंते ! किं पुट्ठं फुसइ अपुट्ठं फुसइ ? जाव नियमा छद्दिसिं ॥ (सू० ५०) ॥

'जावइयाओ' इत्यादि, यत्परिमाणात् 'उवासंतराओ'त्ति 'अवकाशान्तरात्' आकाशविशेषादवकाशरूपान्तरालाद्वा, यावत्यवकाशान्तरे स्थित इत्यर्थः 'उदयंते'त्ति 'उदयन्' उद्गच्छन् 'चक्खुप्फासं'ति, चक्षुषो–दृष्टेः स्पर्श इव स्पर्शो न

१ शतके उद्देशः ६ चक्षुः स्पर्शः स्पृ-ष्टतादिरव-भासस्य सू ५०

॥ ७७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ प्रथम-शतके षष्ठ-उद्देशकः आरभ्यते

तु स्पर्श एव चक्षुषोऽप्राप्तकारित्वादिति चक्षुःस्पर्शस्तं 'हव्वं'ति शीघ्रं, स च किल सर्वाभ्यन्तरमण्डले सप्तचत्वारिंशति योजनानां सहस्रेषु द्वयोः शतयोस्त्रिषष्टौ (४७२६३) च साधिकायां वर्त्तमान उदये दृश्यते, अस्तसमयेऽप्येवम्, एवं प्रतिमण्डलं दर्शने विशेषोऽस्ति, स च स्थानान्तरादवसेयः, **'सव्वओ समंत'**त्ति 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्तात्' विदिक्षु, एकार्थौ वैतौ,**'ओभासेई'**त्यादि 'अवभासयति'ईषत्प्रकाशयति यथा स्थूलतरमेव वस्तु दृश्यते 'उद्द्योतयति' भृशं प्रकाशयति यथा स्थूलमेव दृश्यते 'तपति' अपनीतशीतं करोति यथा वा सूक्ष्मं पिपीलिकादि दृश्यते तथा करोति **'प्रभासयति'** अतितापयोगाद्विशेषतोऽपनीतशीतं विधत्ते यथा वा सूक्ष्मतरं वस्तु दृश्यते तथा करोतीति ॥ एतत्क्षेत्रमेवाश्रित्याह-'तं भंते'त्यादि 'तं भंते'त्ति–यत् क्षेत्रमवभासयति यदुद्योतयति तपति प्रभासयति च'तत्' क्षेत्रं किं भदन्त ! स्पृष्टमवभासयति अस्पृष्टमवभासयति ?, इह यावत्करणादिदं दृश्यम्–'गोयमा ! पुट्ठं ओभासेइ नो अपुट्ठं, तं भंते ! ओगाढं ओभासेइ अणोगाढं ओभासेइ ?, गोयमा ! ओगाढं ओभासेइ नो अणोगाढं, एवं अणंतरोगाढं ओभासेइ नो परंपरोगाढं, तं भंते !, किं अणुं ओभासइ बायरं ओभासइ ?, गोयमा ! अणुंपि ओभासइ बायरंपि ओभासइ, तं भंते ! उड्ढं ओभासइ तिरियं ओभासइ अहे ओभासइ ?, गोयमा ! उड्ढंपि ३, तं भंते ! आइं ओभासइ मज्झे ओभासइ अंते ओभासइ ?, गोयमा ! आइं ३, तं भंते !, सविसए ओभासइ अविसए ओभासइ ?, गोयमा ! सविसए ओभासइ नो अविसए, तं भंते ! आणुपुव्विं ओभासेइ अणाणुपुव्विं ओभासइ ?, गोयमा ! आणुपुव्विं ओभासइ नो अणाणुपुव्विं, तं भंते ! कइदिसिं ओभासइ ?, गोयमा ! **नियमा छद्दिसिं**'ति । एतेषां च पदानां प्रथमोद्देशकनारकाहारसूत्र (वह्व्याख्या) दृश्येति । य एव **'ओभासइ'** इत्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नेन सह सूत्रप्रपञ्च उक्तः स एव 'उज्जोयई'त्यादिना पदत्रयेण वाच्य इति दर्शयन्नाह–एवं 'उज्जोवेई'त्यादि । स्पृष्टं क्षेत्रं प्रभासयतीत्युक्तम्, अथ स्पर्शनामेव दर्शयन्नाह–'सव्वंति'त्ति प्राकृतत्वात् 'सर्वतः सर्वासु दिक्षु 'सव्वावंति'त्ति प्राकृतत्वादेव सर्वात्मना सर्वेण वाऽऽतपेनापत्तिः–व्याप्तिर्यस्य क्षेत्रस्य तत्सर्वापत्तिः, अथवा सर्वं–क्षेत्रम्, इतिशब्दो विषयभूतं क्षेत्रं सर्वं न तु समस्तमेवेत्यस्यार्थस्योपप्रदर्शनार्थः, तथा सर्वेणातपेनापो–व्याप्तिर्यस्य क्षेत्रस्य तत्सर्वापम्, इतिशब्दः सामान्यतः सर्वेणातपेन व्याप्तिर्न तु प्रतिप्रदेशं सर्वेणेत्यस्यार्थस्योपप्रदर्शनार्थः, अथवा सह व्यापेन–आतपव्याप्त्या यत्तत्सव्यापम्, इतिशब्दस्तु तथैव । 'फुसमाणकालसमयं'ति स्पृश्यमानक्षणे, अथवा स्पृशतः–सूर्यस्य स्पर्शनायाः कालसमयः स्पृशत्कालसमयस्तत्र आतपेनेति गम्यते, यावत्क्षेत्रं स्पृशति सूर्य इति प्रकृतं तावत्क्षेत्रं स्पृश्यमानं स्पृष्टमिति वक्तव्यं स्यादिति प्रश्नः, इन्तेत्याद्युत्तरं, स्पृश्यमानस्पृष्टयोश्चैकत्वं प्रथमसूत्रादवगन्तव्यमिति ॥ स्पर्शनामेवाधिकृत्याह—

लोयंते भंते ! अलोयंतं फुसइ अलोयंतेवि लोयंतं फुसइ ?, हंता गोयमा ! लोयंते अलोयंतं फुसइ अलोयंतेवि लोयंतं फुसइ ३ । तं भंते ! किं पुट्ठं फुसइ अपुट्ठं फुसइ ? जाव नियमा छद्दिसिं फुसइ । दीवंते भंते ! सागरंतं फुसइ सागरंतेवि दीवंतं फुसइ ?, हंता जाव नियमा छद्दिसिं फुसइ, एवं एएणं अभिलावेणं उदयंते पोयंतं फुसइ छिद्दंते दूसंतं छायंते आयवंतं जाव नियमा छद्दिसिं फुसइ ॥ (सू० ५१) ॥

'लोयंते भंते ! अलोयंत'मित्यादि, लोकान्तः–सर्वतो लोकावसानम्, अलोकान्तस्तु तदनन्तर एवेति । इहापि 'पुट्ठं फुसइ' इत्यादिसूत्रप्रपञ्चो दृश्यः, अत एवोक्तं 'जाव नियमा छद्दिसिं'ति एतद्भावना चैवं–स्पृष्टमलोकान्तं लोकान्तः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्पृशति, स्पृष्टत्वं च व्यवहारतो दूरस्थस्यापि दृष्टं यथा चक्षुःस्पर्श इत्यत उच्यते–अवगाढम्–आसन्नमित्यर्थः, अवगाढत्वं चासत्तिमात्रमपि स्यादत उच्यते–अनन्तरावगाढम्–अव्यवधानेन संबद्धं, न तु परम्पराऽवगाढं–शृङ्खलाकटिका इव परम्परासम्बद्धं, तं चाणुं स्पृशति, अलोकान्तस्य क्वचिद्विवक्षया प्रदेशमात्रत्वेन सूक्ष्मत्वात्, बादरमपि स्पृशति, क्वचिद्विवक्षयैव बहुप्रदेशत्वेन बादरत्वात्, तमूर्ध्वमधस्तिर्यक् च स्पृशति, ऊर्ध्वादिदिक्षु लोकान्तस्यालोकान्तस्य च भावात्, तं चादौ मध्येऽन्ते च स्पृशति, कथम् ?, अधस्तिर्यगूर्ध्वलोकप्रान्तानामादिमध्यान्तकल्पनात्, तं च स्वविषये स्पृशति–स्पृष्टावगाढादौ, नाविषयेऽस्पृष्टादाविति, तं चानुपूर्व्या स्पृशति, आनुपूर्वी चेह प्रथमे स्थाने लोकान्तस्ततोऽनन्तरं द्वितीये स्थानेऽलोकान्त इत्येवमवस्थानतया स्पृशति, अन्यथा तु स्पर्शनैव न स्यात्, तं च षट्सु दिक्षु स्पृशति, लोकान्तस्य पार्श्वतः सर्वतोऽलोकान्तस्य भावात्, इह च विदिक्षु स्पर्शना नास्ति, दिशां लोकविष्कम्भप्रमाणत्वाद् विदिशां च तत्परिहारेण भावादिति । एवं द्वीपान्तसागरान्तादिसूत्रेषु स्पृष्टादिपदभावना कार्या, नवरं द्वीपान्तसागरान्तादिसूत्रे 'छद्दिसिं' इत्यस्यैवं भावना–योजनसहस्रावगाढा द्वीपाश्च समुद्राश्च भवन्ति, ततश्चोपरितनानधस्तनांश्च द्वीपसमुद्रप्रदेशानाश्रित्य ऊर्ध्वाधोदिग्द्वयस्य स्पर्शना वाच्या, पूर्वादिदिशां तु प्रतीतैव, समन्ततस्तेषामवस्थानात् । 'उदयंते पोयंत'न्ति नद्याद्युदकान्तः 'पोतान्तं' नौपर्यवसानम्, इहाप्युच्छ्रयापेक्षया ऊर्ध्वदिक्स्पर्शना वाच्या जलनिमज्जने वेति । 'छिद्दंते दूसंत'न्ति छिद्रान्तः 'दूष्यान्तं' वस्त्रान्तं स्पृशति, इहापि षड्दिक्स्पर्शनाभावना वस्त्रोच्छ्रयापेक्षया, अथवा कम्बलरूपवस्त्रपोट्टलिकायां तन्मध्योत्पन्नजीवभक्षणेन तन्मध्यरन्ध्रापेक्षया लोकान्तसूत्रवत् षड्दिक्स्पर्शना भावयितव्या। 'छायंते आयवंत'ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-यावृत्तिः १

॥ ७९ ॥

१ शतके उद्देशः ६ लोकान्ता-दिस्पर्शः सू ५१

इह छायाभेदेन षड्दिग्भावनैवम्–आतपे व्योमवर्त्तिपक्षिप्रभृतिद्रव्यस्य या छाया तदन्त आतपान्तं चतसृषु दिक्षु स्पृशति तथा तस्या एव छायाया भूमेः सकाशात्तद्द्रव्यं यावदुच्छ्रयोऽस्ति, ततश्च छायान्त आतपान्तमूर्ध्वमधश्च स्पृशति, अथवा प्रासादवरण्डिकादेर्या छाया तस्या भित्तेरवतरन्त्या आरोहन्त्या वाऽन्त आतपान्तमूर्ध्वमधश्च स्पृशतीति भावनीयम्, अथवा तयोरेव छायाऽऽतपयोः पुद्गलानामसङ्ख्येयप्रदेशावगाहित्वादुच्छ्रयसद्भावः, तत्सद्भावाच्चोर्ध्वाधोविभागः, ततश्च छायान्त आतपान्तमूर्ध्वमधश्च स्पृशतीति ॥ स्पर्शनाऽधिकारादेव च प्राणातिपातादिपापस्थानप्रभवकर्मस्पर्शनामधिकृत्याह—

अत्थि णं भंते ! जीवाणं पाणाइवाएणं किरिया कज्जइ ?, हंता अत्थि । सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ अपुट्ठा कज्जइ ?, जाव निव्वाघाएणं छद्दिसिं वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं सिय चउदिसिं सिय पंचदिसिं । सा भंते ! किं कडा कज्जइ अकडा कज्जइ ?, गोयमा ! कडा कज्जइ नो अकडा कज्जइ । सा भंते ! किं अत्तकडा कज्जइ परकडा कज्जइ तदुभयकडा कज्जइ ?, गोयमा ! अत्तकडा कज्जइ णो परकडा कज्जइ णो तदुभयकडा कज्जइ । सा भंते ! किं आणुपुव्विं कडा कज्जइ अणाणुपुव्विं कडा कज्जइ ?, गोयमा ! आणुपुव्विं कडा कज्जइ नो अणाणुपुव्विं कडा कज्जइ, जा य कडा जा य कज्जइ जा य कज्जिस्सइ सव्वा सा आणुपुव्विं कडा नो अणाणुपुव्विं कडत्ति वत्तव्वं सिया । अत्थि णं भंते ! नेरइयाणं पाणाइवायकिरिया कज्जइ ?, हंता अत्थि । सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ अपुट्ठा कज्जइ जाव नियमा छद्दिसिं कज्जइ, सा भंते ! किं कडा कज्जइ अकडा कज्जइ ?, तं चेव जाव नो अणाणुपुव्विं कडत्ति वत्तव्वं सिया, जहा नेरइया तहा एगिंदियवज्जा भाणियव्वा, जाव वेमा-

॥ ७९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५२]

दीप अनुक्रम [७१]

णिया, एगिंदिया जहा जीवा तहा भाणियव्वा, जहा पाणाइवाए तहा मुसावाए तहा अदिन्नादाणे मेहुणे परिग्गहे कोहे जाव मिच्छादंसणसल्ले, एवं एए अट्ठारस, चउवीसं दंडगा भाणियव्वा, सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं जाव विहरति ॥ (सू० ५२) ॥

'अत्थि' त्ति अस्त्ययं पक्षः–'किरिया कज्जइ'त्ति, क्रियत इति क्रिया–कर्म सा क्रियते–भवति, 'पुट्ठे' इत्यादेर्व्याख्या पूर्ववत् । 'कडा कज्जइ'त्ति कृता भवति, अकृतस्य कर्मणोऽभावात्, 'अत्तकडा कज्जइ'त्ति आत्मकृतमेव कर्म भवति, नान्यथा । 'अणाणुपुव्विं कडा कज्जइ'त्ति पूर्वपश्चाद्विभागो नास्ति यत्र तदनानुपूर्वीशब्देनोच्यत इति । 'जहा नेरइया तहा एगिंदियवज्जा भाणियव्व'त्ति नारकवदसुरादयोऽपि वाच्याः, एकेन्द्रियवर्जाः, ते त्वन्यथा, तेषां हि दिक्पदे 'निव्वाघाएणं छद्दिसिं वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं' इत्यादेर्विशेषाभिलापस्य जीवपदोक्तस्य भावात्, अत एवाह–'एगिंदिया जहा जीवा तहा भाणियव्व'त्ति 'जाव मिच्छादंसणसल्ले' इह यावत्करणात् 'माणे माया लोभे पेज्जे' अनभिव्यक्तमायालोभस्वभावमभिष्वङ्गमात्रं प्रेम 'दोसे' अनभिव्यक्तक्रोधमानस्वरूपमप्रीतिमात्रं द्वेषः 'कलहः' राटिः 'अब्भक्खाणे' असद्दोषाविष्करणं 'पेसुन्ने' प्रच्छन्नमसद्दोषाविष्करणं 'परपरिवाए' विप्रकीर्णं परेषां गुणदोषवचनम् 'अरइरई' अरतिः–मोहनीयोदयाच्चित्तोद्वेगस्तत्फला रतिः–विषयेषु मोहनीयोदयाच्चित्ताभिरतिररतिरतिः, 'मायामोसे' तृतीयकषायद्वितीयाश्रवयोः संयोगः, अनेन च सर्वसंयोगा उपलक्षिताः, अथवा वेषान्तरभाषान्तरकरणेन यत्परवञ्चनं तन्मायामृषेति, मिथ्या-

प्राणाति-पातादि-क्रियायाः स्पृष्टतादिः सू ५२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठारस पाप-स्थान--- नामानि एवं तेषाम् व्याख्या

दर्शनं शल्यमिव विविधव्यथानिबन्धनत्वान्मिथ्यादर्शनशल्यमिति ॥ एवं तावद्गौतमद्वारेण कर्म प्ररूपितं, तच्च प्रवाहतः शाश्वतमित्यतः शाश्वतानेव लोकादिभावान् रोहकाभिधानमुनिपुङ्गवद्वारेण प्ररूपयितुं प्रस्तावयन्नाह—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी रोहे नामं अणगारे पगइभद्दए पगइमउए पगइविणीए पगइउवसंते पगइपयणुकोहमाणमायालोभे मिउमद्दवसंपन्ने अल्लीणे भद्दए विणीए समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तए णं से रोहे नामं अणगारे जायसड्ढे जाव पज्जुवासमाणे एवं वदासी–पुव्विं भंते! लोए पच्छा अलोए पुव्विं अलोए पच्छा लोए ?, रोहा ! लोए य अलोए य पुव्विंपेते पच्छापेते दोवि एए सासया भावा, अणाणुपुव्वी एसा रोहा !। पुव्विं भंते ! जीवा पच्छा अजीवा पुव्विं अजीवा पच्छा जीवा ?, जहेव लोए य अलोए य तहेव जीवा य अजीवा य, एवं भवसिद्धीया य अभवसिद्धीया य सिद्धी असिद्धी सिद्धा असिद्धा, पुव्विं भंते ! अंडए पच्छा कुक्कुडी पुव्विं कुक्कुडी पच्छा अंडए ?, रोहा ! से णं अंडए कओ ?, भयवं ! कुक्कुडीओ, सा णं कुक्कुडी कओ ?, भंते ! अंडयाओ, एवामेव रोहा ! से य अंडए सा य कुक्कुडी, पुव्विंपेते पच्छापेते दुवेते सासया भावा, अणाणुपुव्वी एसा रोहा !। पुव्विं भंते ! लोयंते पच्छा अलोयंते पुव्वं अलोयंते पच्छा लोयंते !, रोहा ! लोयंते य अलोयंते य जाव अणाणुपुव्वी एसा रोहा !। पुव्विं भंते ! लोयंते पच्छा सत्तमे उवासंतरे पुच्छा, रोहा ! लोयंते य सत्तमे उवासंतरे पुव्विंपि दोवि एते जाव अणाणुपुव्वी एसा रोहा !। एवं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रोहक-अनगार कृत् विविध प्रश्नः एवं भगवतः उत्तराणि

लोयंते य सत्तमे य तणुवाए, एवं घणवाए घणोदहि सत्तमा पुढवी, एवं लोयंते एक्केक्केणं संजोएयव्वे इमेहिं ठाणेहिं–तंजहा–ओवासवायघणउदहि पुढवी दीवा य सागरा वासा। नेरइयाई अत्थिय समया कम्माइं लेस्साओ ॥ १ ॥ दिट्ठी दंसण णाणा सन्न सरीरा य जोग उवओगे। दव्वपएसा पज्जव अद्धा किं पुव्वि लोयंते? ॥ २ ॥ पुव्विं भंते ! लोयंते पच्छा सव्वद्धा ?। जहा लोयंतेणं संजोइया सव्वे ठाणा एते एवं अलोयंतेणवि संजोएयव्वा सव्वे। पुव्विं भंते ! सत्तमे उवासंतरे पच्छा सत्तमे तणुवाए ?, एवं सत्तमं उवासंतरं सव्वेहिं समं संजोएयव्वं जाव सव्वद्धाए। पुव्विं भंते ! सत्तमे तणुवाए पच्छा सत्तमे घणवाए, एयंपि तहेव नेयव्वं जाव सव्वद्धा, एवं उवरिल्लं एक्केक्कं संजोयंतेणं जो जो हिट्ठिल्लो तं तं छड्डेतेणं नेयव्वं जाव अतीयअणागयद्धा पच्छा सव्वद्धा जाव अणाणुपुव्वी एसा रोहा! सेवं भंते ! सेवं भंतेत्ति! जाव विहरइ॥ (सू.५३) भंतेत्ति भगवं गोयमे समणं जाव एवं वयासी–कतिविहा णं भंते ! लोयट्ठिती पण्णत्ता ?, गोयमा ! अट्ठविहा लोयट्ठिती पण्णत्ता, तंजहा–आगासपइट्ठिए वाए १ वायपइट्ठिए उदही २ उदहीपइट्ठिया पुढवी ३ पुढविपइट्ठिया तसा थावरा पाणा ४ अजीवा जीवपइट्ठिया ५ जीवा कम्मपइट्ठिया ६ अजीवा जीवसंगहिया ७ जीवा कम्मसंगहिया ८। से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ?–अट्ठविहा जाव जीवा कम्मसंगहिया ?, गोयमा ! से जहानामए–केइ पुरिसे वत्थिमाडोवेइ वत्थिमाडोवित्ता उप्पिं सितं बंधइ २ मज्झेणं गंठिं बंधइ २ उवरिल्लं गंठिं मुयइ २ उवरिल्लं देसं वामेइ २ उवरिल्लं देसं वामेत्ता उवरिल्लं देसं आउयायस्स पूरेइ २ उप्पिंसि तं बंधइ २ मज्झिल्लं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५३-५४] + गाथा: दीप अनुक्रम [७२-७६]

गंठिं मुयइ । से नूणं गोयमा ! से आउयाए तस्स वाउयायस्स उप्पिं उवरितले चिट्ठइ ?, हंता चिट्ठइ, से तेणट्ठेणं जाव जीवा कम्मसंगहिया, से जहा वा केइ पुरिसे वत्थिमाडोवेइ २ कडीए बंधइ २ अत्थाहमतारमपोरसियंसि उदगंसि ओगाहेज्जा, से नूणं गोयमा ! से पुरिसे तस्स आउयायस्स उवरिमतले चिट्ठइ ?, हंता चिट्ठइ, एवं वा अट्ठविहा लोयट्ठिई पण्णत्ता जाव जीवा कम्मसंगहिया ॥ (सू० ५४) ॥

'पगइभद्दए'त्ति स्वभावत एव परोपकारकरणशीलः 'पगइमउए'त्ति स्वभावत एव भावमार्दवविकः, अत एव 'पगइविणीए'त्ति तथा 'पगइउवसंते'त्ति क्रोधोदयाभावात् 'पगइपयणुकोहमाणमायालोभे' सत्यपि कषायोदये तत्कार्याभावात् प्रतनुक्रोधादिभावः 'मिउमद्दवसंपन्ने'त्ति मृदु यन्मार्दवम्–अत्यर्थमहङ्कृतिजयस्तत्संपन्नः–प्राप्तो गुरूपदेशाद् यः स तथा, 'आलीणे'त्ति गुरुसमाश्रितः संलीनो वा, 'भद्दए'त्ति अनुपतापको गुरुशिक्षागुणात्, 'विणीए'त्ति गुरुसेवागुणात् 'भवसिद्धीया य'त्ति भविष्यतीति भवा भवा सिद्धिः–निर्वृतिर्येषां ते भवसिद्धिकाः, भव्या इत्यर्थः, 'सत्तमे उवासंतरे'त्ति सप्तमपृथिव्या अधोवर्त्याकाशमिति । सूत्रसङ्ग्रहगाथे—के?, तत्र 'ओवासे'त्ति सप्तावकाशान्तराणि 'वाय'त्ति तनुवाताः घनवाताः 'घणउदहि'त्ति घनोदधयः सप्त 'पुढवि'त्ति नरकपृथिव्यः सप्तैव 'दीवा य'त्ति जम्बूद्वीपादयोऽसङ्ख्याताः असङ्ख्येया एव 'सागराः' लवणादयः 'वास'त्ति वर्षाणि भरतादीनि सप्तैव 'नेरइयाइ'त्ति चतुर्विंशतिदण्डकः 'अत्थि, य'त्ति अस्तिकायाः पञ्च 'समय'त्ति कालविभागाः कर्माण्यष्टौ लेश्याः षट्, दृष्टयो–मिथ्यादृष्ट्यादयस्तिस्रः, दर्शनानि चत्वारि ज्ञानानि पञ्च सञ्ज्ञाश्चतस्रः शरीराणि पञ्च योगास्त्रयः उपयोगौ द्वौ द्रव्याणि षट् प्रदेशा अनन्ताः पर्यवा अनन्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रोहक-अनगार कृत् विविध प्रश्न: एवं भगवत: उत्तराणि

एव 'अद्ध'त्ति अतीताद्धा अनागताद्धा सर्वाद्धा चेति, 'किं पुव्विं लोयंति'त्ति, अयं सूत्राभिलापनिर्देशः, तथैव पश्चिम-सूत्राभिलापं दर्शयन्नाह—'पुव्विं भंते! लोयंते पच्छा सव्वद्धे'त्ति। एतानि च सूत्राणि शून्यज्ञानादिवादनिरासेन विचित्रबाह्याध्यात्मिकवस्तुसत्ताऽभिधानार्थानि ईश्वरादिकृतत्वनिरासेन चानादित्वाभिधानार्थानीति। लोकान्तादिलोकपदार्थ-प्रस्तावादथ गौतममुखेन लोकस्थितिप्रज्ञापनायाह—अयं सूत्राभिलापः—आकाशप्रतिष्ठितो वायुः—तनुवातघनवातरूपः, तस्यावकाशान्तरोपरि स्थितत्वात्, आकाशं तु स्वप्रतिष्ठितमेवेति न तत्प्रतिष्ठाचिन्ता कृतेति। तथा वातप्रतिष्ठित उदधिः-घनोदधिस्तनुवातघनवातोपरि स्थितत्वात् २। तथा उदधिप्रतिष्ठिता पृथिवी, घनोदधीनामुपरि स्थितत्वात् रत्नप्रभादीनां, बाहुल्यापेक्षया चेदमुक्तम्, अन्यथा ईषत्प्राग्भारा पृथिवी आकाशप्रतिष्ठितैव। तथा पृथिवीप्रतिष्ठितास्त्रसस्थावराः प्राणाः, इदमपि प्रायिकमेव, अन्यथाऽऽकाशपर्वतविमानप्रतिष्ठिता अपि ते सन्तीति ४। तथाऽजीवाः—शरीरादिपुद्गलरूपा जीव-प्रतिष्ठिताः, जीवेषु तेषां स्थितत्वात् ५। तथा जीवाः कर्मप्रतिष्ठिताः, कर्मसु—अनुदयावस्थकर्मपुद्गलसमुदायरूपेषु संसारि-जीवानामाश्रितत्वात्, अन्ये त्वाहुः—जीवाः कर्मभिः प्रतिष्ठिताः—नारकादिभावेनावस्थिताः ६। तथा अजीवा जीवसंगृहीताः, मनोभाषादिपुद्गलानां जीवैः संगृहीतत्वात्, अथाजीवाः जीवप्रतिष्ठितास्तथाऽजीवा जीवसंगृहीता इत्येतयोः को भेदः?, उच्यते, पूर्वस्मिन् वाक्ये आधाराधेयभाव उक्तः, उत्तरे तु संग्राह्यसंग्राहकभाव इति भेदः, यच्च यस्य संग्राह्यं तत्तस्याधेय-मप्यर्थापत्तितः स्याद् यथाऽपूपस्य तैलमित्याधाराधेयभावोऽप्युत्तरवाक्ये दृश्य इति ७। तथा जीवाः कर्मसंगृहीताः, संसारिजीवानामुदयप्राप्तकर्मवशवर्त्तित्वात्, ये च यद्वशास्ते तत्र प्रतिष्ठिताः, यथा घटे रूपादय इत्येवमिहाप्याधाराधे-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५३-५४] + गाथा: दीप अनुक्रम [७२-७६]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ८२ ॥

यता दृश्येति । 'से जहानामए केइ'त्ति, स 'यथानामकः' यत्प्रकारनामा, देवदत्तादिनामेत्यर्थः, अथवा 'से' इति स 'यथा' इति दृष्टान्तार्थः 'नाम' इति संभावनायाम् 'ए' इति वाक्यालङ्कारे, 'वत्थि'ति 'बस्ति' दृतिं 'आडोवेइ'त्ति आटोपयेत् वायुना पूरयेत्, 'उप्पिं सियं बंधइ'त्ति उपरि सितं 'षिञ् बन्धने' इति वचनात् क्तप्रत्ययस्य च भावार्थत्वात् कर्मार्थत्वाद्वा बन्धं–ग्रन्थिमित्यर्थः 'बध्नाति' करोतीत्यर्थः, अथवा 'उप्पिंसि'त्ति उपरि 'त'मिति बस्तिं 'से आउयाए'त्ति, सोऽप्कायस्तस्य वायुकायस्य 'उप्पिं'ति उपरि, उपरिभावश्च व्यवहारतोऽपि स्यादित्यत आह–उपरितले सर्वोपरीत्यर्थः, यथा वायुराधारो जलस्य दृष्ट एवमाधाराधेयभावो भवति आकाशघनवातादीनामिति भावः, आधाराधेयभावश्च प्रागेव सर्वपदेषु व्यञ्जित इति । 'अत्थाहमतारमपोरुसियंसि'त्ति, अस्ताघम्–अविद्यमानस्ताघम्–अगाधमित्यर्थः, अस्ताधो वा निरस्ताधस्तलमिवेत्यर्थः, अत एवातारं–तरीतुमशक्यं, पाठान्तरेणापारं–पारवर्जितं पुरुषः प्रमाणमस्येति पौरुषेयं तत्प्रतिषेधादपौरुषेयं ततः कर्मधारयोऽतस्तत्र, मकारश्चेहालाक्षणिकः,'एवं वा' इत्यत्र वाशब्दो दृष्टान्तान्तरतासूचनार्थः ॥ लोकस्थित्यधिकारादेवेदमाह–'अत्थि ण'मित्यादि, अन्ये त्वाहुः–अजीवा जीवपइट्ठिया' इत्यादेः पदचतुष्टयस्य भावनार्थमिदमाह—

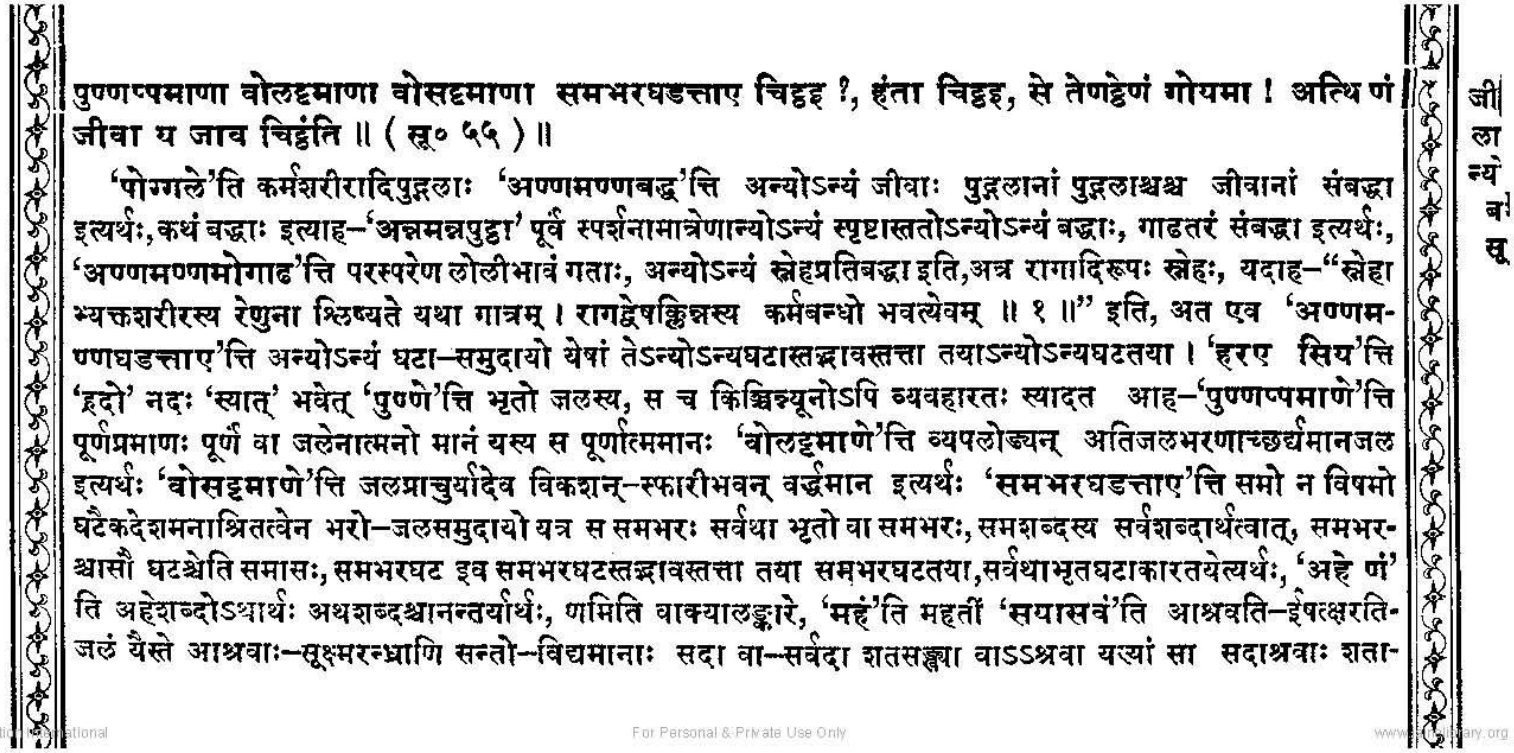
अत्थि णं भंते ! जीवा य पोग्गला य अन्नमन्नबद्धा अन्नमन्नपुट्ठा अन्नमन्नमोगाढा अन्नमन्नसिणेहपडिबद्धा अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति ?, हंता ! अत्थि । से केणट्ठेणं भंते ! जाव चिट्ठंति ?, गोयमा ! से जहानामए–हरदे सिया पुण्णे पुण्णप्पमाणे वोलट्टमाणे वोसट्टमाणे समभरघडत्ताए चिट्ठइ, अहे णं केइ पुरिसे तंसि हरदंसि एगं महं नावं सयासवं सयछिद्दं ओगाहेज्जा, से नूणं गोयमा ! सा णावा तेहिं आसवदारेहिं आपूरमाणी २ पुण्णा

१ शतके उद्देश ६ अष्टधा लोक-स्थितिः सू ५४

॥ ८२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रोहक-अनगार कृत् विविध प्रश्नः एवं भगवतः उत्तराणि



पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडत्ताए चिट्ठइ ?, हंता चिट्ठइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! अत्थि णं जीवा य जाव चिट्ठंति ॥ (सू० ५५) ॥

'पोग्गले'ति कर्मशरीरादिपुद्गलाः 'अण्णमण्णबद्ध'त्ति अन्योऽन्यं जीवाः पुद्गलानां पुद्गलाश्चश्च जीवानां संबद्धा इत्यर्थः, कथं बद्धाः इत्याह–'अन्नमन्नपुट्ठा' पूर्वं स्पर्शनामात्रेणान्योऽन्यं स्पृष्टास्ततोऽन्योऽन्यं बद्धाः, गाढतरं संबद्धा इत्यर्थः, 'अण्णमण्णमोगाढ'त्ति परस्परेण लोलीभावं गताः, अन्योऽन्यं स्नेहप्रतिबद्धा इति,अत्र रागादिरूपः स्नेहः, यदाह–"स्नेहाभ्यक्तशरीरस्य रेणुना श्लिष्यते यथा गात्रम् । रागद्वेषक्लिन्नस्य कर्मबन्धो भवत्येवम् ॥ १ ॥" इति, अत एव 'अण्णमण्णघडत्ताए'त्ति अन्योऽन्यं घटा–समुदायो येषां तेऽन्योऽन्यघटास्तद्भावस्तत्ता तयाऽन्योऽन्यघटतया । 'हरए सिय'त्ति 'ह्रदो' नदः 'स्यात्' भवेत् 'पुण्णे'त्ति भृतो जलस्य, स च किञ्चिन्यूनोऽपि व्यवहारतः स्यादत आह–'पुण्णप्पमाणे'त्ति पूर्णप्रमाणः पूर्णो वा जलेनात्मनो मानं यस्य स पूर्णात्ममानः 'वोलट्टमाणे'त्ति व्यपलोड्यन् अतिजलभरणाच्छर्द्यमानजल इत्यर्थः 'वोसट्टमाणे'त्ति जलप्राचुर्यादेव विकशन्–स्फारीभवन् वर्द्धमान इत्यर्थः 'समभरघडत्ताए'त्ति समो न विषमो घटैकदेशमनाश्रितत्वेन भरो–जलसमुदायो यत्र स समभरः सर्वथा भृतो वा समभरः, समशब्दस्य सर्वशब्दार्थत्वात्, समभरश्चासौ घटश्चेति समासः, समभरघट इव समभरघटस्तद्भावस्तत्ता तया समभरघटतया,सर्वथाभृतघटाकारतयेत्यर्थः, 'अहे णं'ति अहेशब्दोऽर्थार्थः अथशब्दश्चानन्तर्यार्थः, णमिति वाक्यालङ्कारे, 'महं'ति महतीं 'सयासवं'ति आश्रवति–ईषत्क्षरति-जलं यैस्ते आश्रवाः–सूक्ष्मरन्ध्राणि सन्तो–विद्यमानाः सदा वा–सर्वदा शतसङ्ख्या वाऽऽश्रवा यस्यां सा सदाश्रवाः शता-

जी ला न्ये बा सू

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रवा वाऽतस्ताम्, एवं 'सयछिड्डं' नवरं छिद्रं–महत्तरं रन्ध्रम्, 'ओगाहेज्ज'त्ति 'अवगाहयेत्' प्रवेशयेद् आसवदारेहिं'ति आश्रवच्छिद्रैः 'आपूरमाणी'त्ति आपूर्यमाणा जलेनेति शेषः, इह द्विर्वचनमाभीक्ष्ण्ये, 'पुण्णे'त्यादि प्राग्वन्नवरं 'वोसट्ट-माणा' इत्यादौ वृद्धैरयं विशेष उक्तः–'वोसट्टमाणा' भृता सती या तत्रैव निमज्जति सोच्यते 'समभरघडत्ताए'त्ति ह्रदक्षिप्तसमभरघटवद् ह्रदस्याधस्त्योदकेन सह तिष्ठतीत्यर्थः, यथा नौश्च ह्रदोदकं चान्योऽन्यावगाहेन वर्त्तते एवं जीवाश्च पुद्गलाश्चेति भावना ॥ लोकस्थितावेवेदमाह—

अत्थि णं भंते ! सया समियं सुहुमे सिणेहकाये पवडइ ?, हंता अत्थि । से भंते ! किं उड्ढे पवडइ अहे पवडइ तिरिए पवडइ?, गोयमा ! उड्ढेवि पवडइ अहे पवडइ तिरिएवि पवडइ, जहा से बादरे आउयाए अन्नम-न्नसमाउत्ते चिरंपि दीहकालं चिट्ठइ तहा णं सेवि?, नो इणट्ठे समट्ठे, से णं खिप्पामेव विद्धंसमागच्छइ। सेवं भंते! सेवं भंतेत्ति ! ॥ छट्ठो उद्देसो समत्तो ॥ १ । ६ ॥ (सू० ५६) ॥

'सदा' सर्वदा 'समियं'ति सपरिमाणं न बादराप्कायवदपरिमितमपि, अथवा 'सदा' इति सर्वर्त्तुषु 'समित'मिति रात्रौ दिवसस्य च पूर्वापरयोः प्रहरयोः, तत्रापि कालस्य स्निग्धेतरभावमपेक्ष्य बहुत्वमल्पत्वं चावसेयमिति, यदाह–"पढम-चरिमाउ सिसिरे गिम्हे अद्धं तु तासिं वज्जेत्ता । पायं ठवे सिणेहाइरक्खणट्ठा पवेसे वा ॥ १ ॥" लेपितपात्रं बहिर्न स्थाप-येत् स्नेहादिरक्षणार्थायेति, 'सूक्ष्मः स्नेहकाय' इति अप्कायविशेष इत्यर्थः 'उड्ढे'त्ति ऊर्ध्वलोके वर्त्तुलवैताढ्यादिषु 'अहे'त्ति

१ प्रथमचरमपौरुष्यौ शिशिरर्त्तौ ग्रीष्मे तु तयोरर्द्धे वर्जयित्वा स्नेहादिरक्षणार्थं लिप्तपात्राणि स्थापयेत् प्रविशेद्वा ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५६]

दीप अनुक्रम [७८]

अधोलोकग्रामेषु 'तिरियं'ति तिर्यग्लोके 'दीहकालं चिट्ठइ'त्ति तडागादिपूरणात्, 'विद्धंसमागच्छइ'त्ति स्वल्पत्वात्तस्येति ॥ प्रथमशते षष्ठः ॥ १ । ६ ॥

अथ सप्तम आरभ्यते, तस्य चैवं सम्बन्धः–विध्वंसमागच्छतीत्युक्तं प्राक् इह तु तद्विपर्यय उत्पादोऽभिधीयते, अथवा लोकस्थितिः प्रागुक्ता इहापि सैव, तथा 'नेरइए'त्ति यदुक्तं सङ्ग्रहिण्यां तच्चावसरायातमिहोच्यत इति, तत्रादिसूत्रम्—

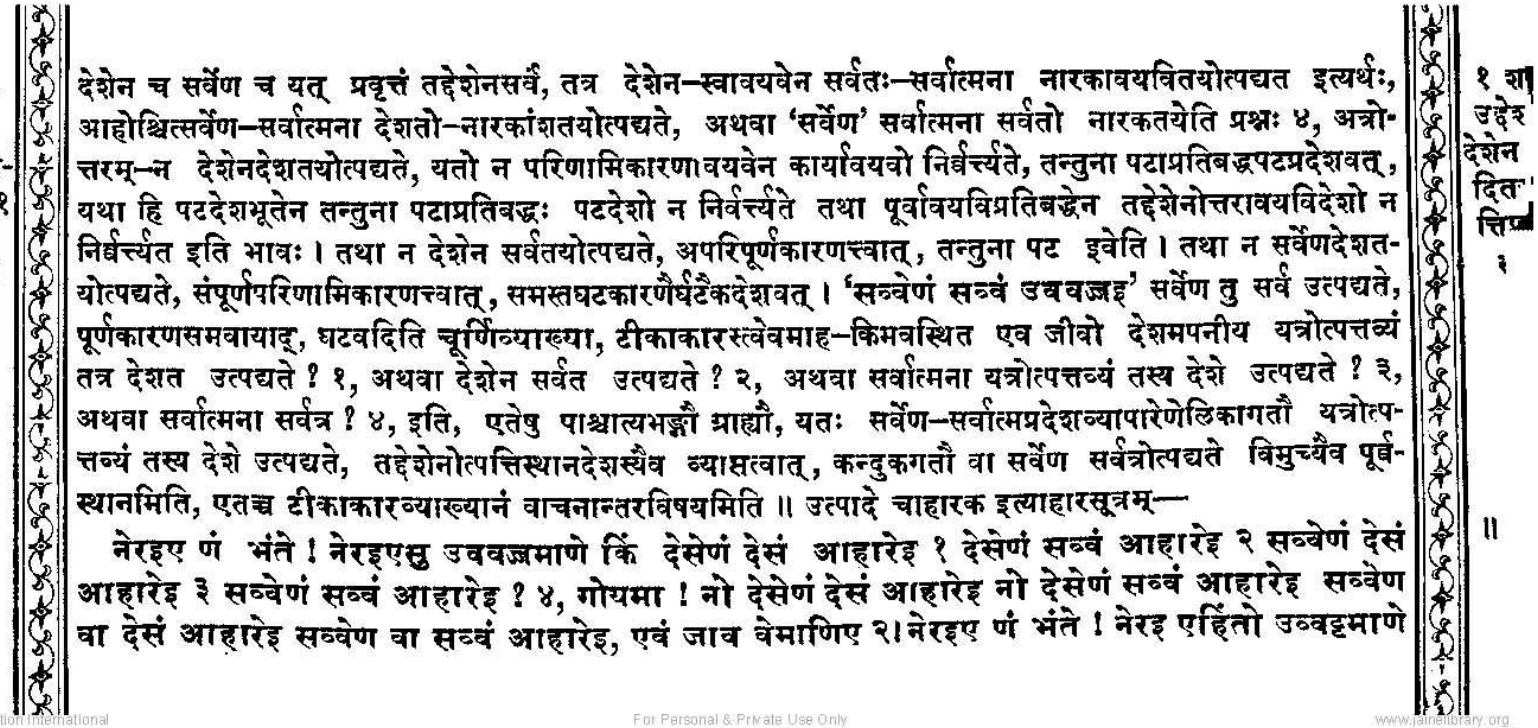
नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववज्जमाणे किं देसेणं देसं उववज्जइ देसेणं सव्वं उववज्जइ सव्वेणं देसं उववज्जइ सव्वेणं सव्वं उववज्जइ ?, गोयमा ! नो देसेणं देसं उववज्जइ नो देसेणं सव्वं उववज्जइ नो सव्वेणं देसं उववज्जइ सव्वेणं सव्वं उववज्जइ, जहा नेरइए एवं जाव वेमाणिए १ ॥ (सू० ५७) ॥

'नरइए णं भंते ! नेरइएसु उववज्जमाणे'त्ति, ननूत्पद्यमान एव कथं नारक इति व्यपदिश्यते?, अनुत्पन्नत्वात्, तिर्यगादिवद् इति, अत्रोच्यते, उत्पद्यमान उत्पन्न एव, तदायुष्कोदयात्, अन्यथा तिर्यगाद्यायुष्काभावान्नारकायुष्कोदयेऽपि यदि नारको नासौ तदन्यः कोऽसौ ? इति, 'किं देसेणं देसं उववज्जइ'त्ति देशेन च देशेन च यदुत्पादनं प्रवृत्तं तद्देशेनदेशं, छान्दसत्वाच्चाव्ययीभावप्रतिरूपः समासः, एवमुत्तरत्रापि, तत्र जीवः किं 'देशेन' स्वकीयावयवेन 'देशेन' नारकावयविनोऽंशतयोत्पद्यते अथवा 'देशेन' देशमाश्रित्योत्पादयित्वेति शेषः, एवमन्यत्रापि । तथा 'देसेणं सव्वं'ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र प्रथम-शतके षष्ठ-उद्देशकः समाप्तः

अथ प्रथम-शतके सप्तम-उद्देशकः आरभ्यते



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ८४ ॥

देशेन च सर्वेण च यत् प्रवृत्तं तद्देशेनसर्वं, तत्र देशेन–स्वावयवेन सर्वतः–सर्वात्मना नारकावयवितयोत्पद्यत इत्यर्थः, आहोश्चित्सर्वेण–सर्वात्मना देशतो–नारकांशतयोत्पद्यते, अथवा 'सर्वेण' सर्वात्मना सर्वतो नारकतयेति प्रश्नः ४, अत्रोत्तरम्–न देशेनदेशतयोत्पद्यते, यतो न परिणामिकारणावयवेन कार्यावयवो निर्वर्त्त्यते, तन्तुना पटाप्रतिबद्धपटप्रदेशवत्, यथा हि पटदेशभूतेन तन्तुना पटाप्रतिबद्धः पटदेशो न निर्वर्त्त्यते तथा पूर्वावयवविप्रतिबद्धेन तद्देशेनोत्तरावयविदेशो न निर्वर्त्त्यत इति भावः। तथा न देशेन सर्वतयोत्पद्यते, अपरिपूर्णकारणत्वात्, तन्तुना पट इवेति। तथा न सर्वेणदेशतयोत्पद्यते, संपूर्णपरिणामिकारणत्वात्, समस्तघटकारणैर्घटैकदेशवत्। 'सव्वेणं सव्वं उववज्जइ' सर्वेण तु सर्वं उत्पद्यते, पूर्णकारणसमवायाद्, घटवदिति चूर्णिव्याख्या, टीकाकारस्त्वेवमाह–किमवस्थित एव जीवो देशमपनीय यत्रोत्पत्तव्यं तत्र देशत उत्पद्यते ? १, अथवा देशेन सर्वत उत्पद्यते ? २, अथवा सर्वात्मना यत्रोत्पत्तव्यं तस्य देशे उत्पद्यते ? ३, अथवा सर्वात्मना सर्वत्र ? ४, इति, एतेषु पाश्चात्यभङ्गौ ग्राह्यौ, यतः सर्वेण–सर्वात्मप्रदेशव्यापारेणेलिकागतौ यत्रोत्पत्तव्यं तस्य देशे उत्पद्यते, तद्देशेनोत्पत्तिस्थानदेशस्यैव व्याप्तत्वात्, कन्दुकगतौ वा सर्वेण सर्वत्रोत्पद्यते विमुच्यैव पूर्वस्थानमिति, एतच्च टीकाकारव्याख्यानं वाचनान्तरविषयमिति ॥ उत्पादे चाहारक इत्याहारसूत्रम्—

नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववज्जमाणे किं देसेणं देसं आहारेइ १ देसेणं सव्वं आहारेइ २ सव्वेणं देसं आहारेइ ३ सव्वेणं सव्वं आहारेइ ? ४, गोयमा ! नो देसेणं देसं आहारेइ नो देसेणं सव्वं आहारेइ सव्वेण वा देसं आहारेइ सव्वेण वा सव्वं आहारेइ, एवं जाव वेमाणिए २। नेरइए णं भंते ! नेरइ एहिंतो उव्वट्टमाणे

१ श उद्देश देशेन दित्ति ३

॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किं देसेणं देसं उववट्टइ ? जहा उववज्जमाणे तहेव उववट्टमाणेऽवि दंडगो भाणियव्वो ३ । नेरइए णं भंते ! नेरइएहिंतो उववट्टमाणे किं देसेणं देसं आहारेइ तहेव जाव सव्वेण वा देसं आहारेइ ?, सव्वेण वा सव्वं आ० १, एवं जाव वेमाणिए ४ । नेरइ० भंते ! नेर० उववन्ने किं देसेणं देसं उववन्ने, एसोऽवि तहेव जाव सव्वेणं सव्वं उववन्ने ?, जहा उववज्जमाणे उववट्टमाणे य चत्तारि दंडगा तहा उववन्नेणं उव्वट्टणेवि चत्तारि दंडगा भाणियव्वा, सव्वेणं सव्वं उववन्ने सव्वेण वा देसं आहारेइ सव्वेण वा सव्वं आहारेइ, एएणं अभिलावेणं उववन्नेवि उव्वट्टणेवि नेयव्वं ८ ॥ नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववज्जमाणे किं अद्धेणं अद्धं उववज्जइ ? १ अद्धेणं सव्वं उववज्जइ ? २ सव्वेणं अद्धं उववज्जइ ? ३ सव्वेणं सव्वं उववज्जइ० ? ४, जहा पढमिल्लेणं अट्ठ दंडगा तहा अद्धेणवि अट्ठ दंडगा भाणियव्वा, नवरं जहिं देसेणं देसं उववज्जइ तहिं अद्धेणं अद्धं उववज्जइ इति भाणियव्वं, एयं णाणत्तं, एते सव्वेवि सोलसदंडगा भाणियव्वा ॥ (सू० ५८)

तत्र 'देशेन देश'मिति आत्मदेशेनाभ्यवहार्यद्रव्यदेशमित्येवं गमनीयम् । उत्तरम्–'सव्वेण वा देसमाहारेइ'त्ति, उत्पत्त्यनन्तरसमयेषु सर्वात्मप्रदेशैराहारपुद्गलान् कांश्चिदादत्ते कांश्चिद्विमुञ्चति, तप्ततापिकागततैलग्राहकविमोचकापूपवद्, अत उच्यते–देशमाहारयतीति, 'सव्वेण वा सव्वं'ति सर्वात्मप्रदेशैरुत्पत्तिसमये आहारपुद्गलानादत्ते एव प्रथमतः तैलभृततप्ततापिकाप्रथमसमयपतितापूपवदित्युच्यते–सर्वमाहारयतीति । उत्पादस्तदाहारेण सह प्राग्दण्डकाभ्यामुक्तः, अथोत्पादप्रतिपक्षत्वाद्वर्त्तमानकालनिर्देशसाधर्म्याच्चोद्वर्त्तनादण्डकस्तदाहारदण्डकेन सह ४ । तदनन्तरं च नोद्व-

Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-यावृत्तिः १ ॥ ८५ ॥

त्तेनाऽनुत्पन्नस्य स्यादित्युत्पन्नतदाहारदण्डकौ, उत्पन्नप्रतिपक्षत्वाच्चोद्वृत्ततदाहारदण्डकाविति । पुस्तकान्तरे तूत्पादतदाहारदण्डकानन्तरमुत्पादे सत्युत्पन्नः स्यादित्युत्पन्नतदाहारदण्डकौ, ततस्तूत्पादप्रतिपक्षत्वादुद्वर्त्तनाया उद्वर्त्तनातदाहारदण्डकौ, उद्वर्त्तनायां चोद्वृत्तः स्यादित्युद्वृत्ततदाहारदण्डकौ, कण्ठ्याश्चैत इति । एवं तावदष्टाभिर्दण्डकैर्देशसर्वाभ्यामुत्पादादि चिन्तितम्, अथाष्टाभिरेवार्द्धसर्वाभ्यामुत्पादाद्येव चिन्तयन्नाह—'नेरइएण'मित्यादि 'जहा पढमिल्लेणं'ति यथा देशेन, ननु देशस्य चार्धस्य च को विशेषः ?, उच्यते, देशस्त्रिभागादिरनेकधा, अर्द्धं त्वेकधैवेति ॥ उत्पत्तिरुद्वर्त्तना च प्रायो गतिपूर्विका भवतीति गतिसूत्राणि—

जीवे णं भंते ! किं विग्गहगतिसमावन्नए अविग्गहगतिसमावन्नए ?, गोयमा ! सिय विग्गहगइसमावन्नए सिय अविग्गहगतिसमावन्नगे, एवं जाव वेमाणिए । जीवा णं भंते ! किं विग्गहगइसमावन्नया अविग्गहगइसमावन्नगा ?, गोयमा ! विग्गहगइसमावन्नगावि अविग्गहगइसमावन्नगावि । नेरइया णं भंते ! किं विग्गहगतिसमावन्नया अविग्गहगतिसमावन्नगा ?, गोयमा ! सव्वेवि ताव होज्जा अविग्गहगतिसमावन्नगा १ । अहवा अविग्गहगतिसमावन्नगा य विग्गहगतिसमावन्ने य २ अहवा अविग्गहगतिसमावन्नगा य विग्गहगइसमावन्नगा य ३ ॥ एवं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो ॥ (सू० ५९)

'विग्गहगइसमावन्नए'त्ति विग्रहो–वक्रं तत्प्रधाना गतिर्विग्रहगतिः, तत्र यदा वक्रेण गच्छति तदा विग्रहगतिसमापन्न उच्यते, अविग्रहगतिसमापन्नस्तु ऋजुगतिकः स्थितो वा, विग्रहगतिनिषेधमात्राश्रयणात्, यदि चाविग्रहगतिसमापन्न

१ शतके उद्देशः ७ विग्रहेतरातिः सू ५९

॥ ८५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऋजुगतिक एवोच्यते तदा नारकादिपदेषु सर्वदैवाविग्रहगतिकानां यद्बहुत्वं वक्ष्यति तन्न स्याद्, एकादीनामपि तेषूत्पाद-श्रवणात्, टीकाकारेण तु केनाप्यभिप्रायेणाविग्रहगतिसमापन्न ऋजुगतिक एव व्याख्यात इति। 'जीवा णं भंते !' इत्यादि प्रश्नः, तत्र जीवानामानन्त्यात् प्रतिसमयं विग्रहगतिमतां तन्निषेधवतां च बहूनां भावादाह–'विग्गहगइ'इत्यादि। नारकाणां त्वल्पत्वेन विग्रहगतिमतां कदाचिदसम्भवात् सम्भवेऽपि चैकादीनामपि तेषां भावाद् विग्रहगतिप्रतिषेधवतां च सदैव बहूनां भावात् आह–'सव्वेवि ताव होज्ज अविग्गहे'त्यादि विकल्पत्रयम्, असुरादिषु एतदेवातिदेशत आह—'एव'मित्यादि जीवानां निर्विशेषाणामेकेन्द्रियाणां चोक्तयुक्त्या विग्रहगतिसमापन्नत्वे तत्प्रतिषेधे च बहुत्वमेवेति न भङ्गत्रयं, तदन्येषु तु त्रयमेवेति, 'तियभंगो'त्ति त्रिकरूपो भङ्गस्त्रिकभङ्गो, भङ्गत्रयमित्यर्थः॥ गत्यधिकाराच्चयवनसूत्रम्–

देवे णं भंते ! महिड्ढिए महज्जुईए महब्बले महायसे महासुक्खे महाणुभावे अविउक्कंतियं चयमाणे किंचिवि कालं हिरिवत्तियं दुगुंछावत्तियं परिसहवत्तियं आहारं नो आहारेइ, अहे णं आहारेइ, आहारिज्जमाणे आहारिए परिणामिज्जमाणे परिणामिए पहीणे य आउए भवइ जत्थ उववज्जइ तमाउयं पडिसंवेएइ, तंजहा—तिरिक्खजोणियाउयं वा मणुस्साउयं वा ?, हंता गोयमा ! देवे णं महिड्ढीए जाव मणुस्साउयं वा॥ (सू० ६०)॥

'महिड्ढिए'त्ति महर्द्धिको विमानपरिवाराद्यपेक्षया 'महज्जुइए'त्ति महाद्युतिकः शरीराभरणाद्यपेक्षया 'महब्बले'त्ति महाबलः शारीरप्राणापेक्षया 'महायसे'त्ति 'महायशाः' बृहत्प्रख्यातिः 'महेसक्खे'त्ति महेशो–महेश्वर इत्याख्या–अभिधानं यस्यासौ महेशाख्यः 'महासोक्खे'त्ति क्वचित् 'महाणुभावे'त्ति 'महानुभावः' विशिष्टवैक्रियादिकरणाचिन्त्यसामर्थ्यः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ८६ ॥

'अविउक्कंतियं चयमाणे'त्ति च्यवमानता किलोत्पत्तिसमयेऽप्युच्यत इत्यत आह–व्युत्क्रान्तिः–उत्पत्तिस्तन्निषेधादव्युत्क्रान्तिकम्, अथवा व्यवक्रान्तिः–मरणं तन्निषेधादव्यवक्रान्तिकं तद्यथा भवत्येवं च्यवमानो जीवमानो, जीवन्नेव मरणकाल इत्यर्थः, 'अविउक्कंतियं चयं चयमाणे'त्ति क्वचिद्दृश्यते, तत्र च 'चयं' शरीरं 'चयमाणे'त्ति त्यजन् 'किंचिवि कालं'ति कियन्तमपि कालं यावन्नाहारयेदिति योगः, कुतः ? इत्याह–'ह्रीप्रत्ययं' लज्जानिमित्तं, स हि च्यवनसमयेऽनुपक्रान्त एव पश्यत्युत्पत्तिस्थानमात्मनः, दृष्ट्वा च तद्देवभवविसदृशं पुरुषपरिभुज्यमानस्त्रीगर्भाशयरूपं जिह्रेति, ह्रिया च नाहारयति, तथा 'जुगुप्साप्रत्ययं' कुत्सानिमित्तं, शुक्रादेरुत्पत्तिकारणस्य कुत्साहेतुत्वात्, 'परीसहवत्तियं'ति इह प्रक्रमात् परीषहशब्देनारतिपरीषहो ग्राह्यः, ततश्चारतिपरीषहनिमित्तं, दृश्यते चारतिप्रत्ययालोकेऽप्याहारग्रहणवैमुख्यमिति, 'आहारं' मनसा तथाविधपुद्गलोपादानरूपम्, 'अहे णं'ति अथ लज्जादिक्षणानन्तरमाहारयति बुभुक्षावेदनीयस्य चिरं सोढुमशक्यत्वादिति, 'आहारिज्जमाणे आहारिए'इत्यादौ भावार्थः प्रथमसूत्रवत्, अनेन च क्रियाकालनिष्ठाकालयोरभेदाभिधानेन तदीयाऽऽहारकालस्याल्पतोक्ता, तदनन्तरं च 'पहीणे य आउए भवइ'त्ति 'चः' समुच्चये प्रक्षीणं प्रहीणं वाऽऽयुर्भवति, ततश्च यत्रोत्पद्यते मनुजत्वादौ 'तमाउयं'ति तस्य–मनुजत्वादेरायुस्तदायुः 'प्रतिसंवेदयति' अनुभवतीति ?, 'तिरिक्खजोणियाउयं वा'इत्यादौ देवनारकायुषोः प्रतिषेधो, देवस्य तत्रानुत्पादादिति ॥ उत्पत्त्यधिकारादिदमाह—

जीवे णं भंते गब्भं वक्कमाणे किं सइंदिए वक्कमइ अणिंदिए वक्कमइ ?, गोयमा ! सिय सइंदिए वक्कमइ सिय अणिंदिए वक्कमइ, से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! दव्विंदियाइं पडुच्च अणिंदिए वक्कमइ भाविंदियाइं पडुच्च

१ शतके उद्देशः ७ देवस्य ह्री-कुत्सादे-राहराभावः सू ६०

॥ ८६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [८३]

सइंदिए वक्कमइ, से तेणट्ठेणं०। जीवे णं भंते! गब्भं वक्कममाणे किं ससरीरी वक्कमइ असरीरी वक्कमइ?, गोयमा! सिय ससरीरी व० सिय असरीरी वक्कमइ, से केणट्ठेणं?, गोयमा! ओरालियवेउव्वियआहारयाइं पडुच्च असरीरी व० तेयाकम्मा० प० सस० वक्क० से तेणट्ठेणं गोयमा!०। जीवे णं भंते! गब्भं वक्कममाणे तप्पढमयाए किमाहारमाहारेइ?, गोयमा! माउओयं पिउसुक्कं तं तदुभयसंसिट्ठं कलुसं किब्बिसं तप्पढमयाए आहारमाहारेइ। जीवे णं भंते! गब्भगए समाणे किमाहारमाहारेइ?, गोयमा! जं से माया नाणाविहाओ रसविगईओ आहारमाहारेइ तदेक्कदेसेणं ओयमाहारेइ। जीवस्स णं भंते! गब्भगयस्स समाणस्स अत्थि उच्चारेइ वा पासवणेइ वा खेलेइ वा सिंघाणेइ वा वंतेइ वा पित्तेइ वा?, णो इणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठेणं?, गोयमा! जीवे णं गब्भगए समाणे जमाहारेइ तं चिणाइ तं सोइंदियत्ताए जाव फासिंदियत्ताए अट्ठिअट्ठिमिंजकेसमंसुरोमनहत्ताए, से तेणट्ठेणं०। जीवे णं भंते! गब्भगए समाणे पभू मुहेणं कावलियं आहारं आहारित्तए?, गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठेणं?, गोयमा! जीवे णं गब्भगए समाणे सव्वओ आहारेइ सव्वओ परिणामेइ सव्वओ उस्ससइ सव्वओ निस्ससइ अभिक्खणं आहारेइ अभिक्खणं परिणामेइ अभिक्खणं ऊससइ अभिक्खणं निस्ससइ आहच्च आहारेइ आहच्च परिणामेइ आहच्च उस्ससइ आहच्च नीससइ॥ माउजीवरसहरणी पुत्तजीवरसहरणी माउजीवपडिबद्धा पुत्तजीवं फुडा तम्हा आहारेइ तम्हा परिणामेइ, अवरावि य णं पुत्तजीवपडिबद्धा माउजीवफुडा तम्हा चिणाइ तम्हा उवचिणाइ से तेणट्ठेणं० जाव नो पभू

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः१ ॥ ८७ ॥

मुहेणं कावलियं आहारं आहारित्तए ॥ कइ णं भंते ! माइअंगा पण्णत्ता ?, गोयमा ! तओ माइयंगा पण्णत्ता, तंजहा–मंसे सोणिए मत्थुलुंगे । कइ णं भंते ! पिइयंगा पण्णत्ता ?, गोयमा ! तओ पिइयंगा पण्णत्ता, तंजहा–अट्ठि अट्ठिमिंजा केसमंसुरोमनहे । अम्मापिइए णं भंते ! सरीरए केवइयं कालं संचिट्ठइ ?, गोयमा ! जावइयं से कालं भवधारणिज्जे सरीरए अव्वावन्ने भवइ एवतियं कालं संचिट्ठइ, अहे णं समए समए वोक्कसिज्जमाणे २ चरमकालसमयंसि वोच्छिन्ने भवइ ॥ (सू० ६१) ॥

'गब्भं वक्कममाणे'त्ति, गर्भं व्युत्क्रामन् गर्भ उत्पद्यमान इत्यर्थः 'दव्विंदियाइं'ति निर्वृत्त्युपकरणलक्षणानि, तानि हीन्द्रियपर्याप्तौ सत्यां भविष्यन्तीत्यनिन्द्रिय उत्पद्यते, 'भाविंदियाइं'ति लब्ध्युपयोगलक्षणानि, तानि च संसारिणः सर्वावस्थाभावीनीति । 'ससरीरि'त्ति सह शरीरेणेति सशरीरी, इन्समासान्तभावात्, 'असरीरि'त्ति शरीरवान् शरीरी तन्निषेधादशरीरी 'वक्कमइ'त्ति व्युत्क्रामति, उत्पद्यत इत्यर्थः, 'तप्पढमयाए'त्ति तस्य–गर्भव्युत्क्रमणस्य प्रथमता तत्प्रथमता तया 'किं'मिति प्राकृतत्वात् कथम्?,'माउओयं'ति 'मातुरोजः' जनन्या आर्त्तवं, शोणितमित्यर्थः,'पिउसुक्कं'ति पितुः शुक्रम्, इह यदिति शेषः 'तं'ति आहारमिति योगः, 'तदुभयसंसिट्ठं'ति तयोरुभयं तदुभयं द्वयं तच्च तत् संश्लिष्टं च संसृष्टं वा–संसर्गवत् तदुभयसंश्लिष्टं तदुभयसंसृष्टं वा 'जं से'त्ति या तस्य गर्भसत्त्वस्य माता 'रसविगईओ'त्ति रसरूपा विकृतीः–दुग्धाद्या रसविकारास्ताः 'तदेगदेसेणं'ति तासां रसविकृतीनामेकदेशस्तदेकदेशस्तेन सह ओज आहारयतीति । 'उच्चारेइ व'त्ति उच्चारो–विष्ठा 'इति' उपप्रदर्शने 'वा' विकल्पे खेलो–निष्ठीवनं 'सिंघाणं'ति नासिकाश्लेष्मा

१ शतक उद्देशः ७ गर्भस्थेन्द्रियवक्तव्यताहारमातपित्रङ्गादि सू ६१ ॥ ८७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'केसमंसुरोमनहत्ताए'त्ति इह श्मश्रूणि–कूर्चकेशाः रोमाणि–कक्षादिकेशाः। 'जीवे ण' मित्यादि,'सव्वओ'त्ति सर्वात्मना 'अभिक्खणं'ति पुनः पुनः 'आहच्च'त्ति कदाचिदाहारयति कदाचिन्नाहारयति, तथास्वभावत्वात्, यतश्च सर्वत आहारयतीत्यादि ततो मुखेन न प्रभुः कावलिकमाहारमाहर्त्तुमिति भावः, अथ कथं सर्वत आहारयति ? इत्याह—'माउजीवरसहरणी'त्यादि, रसो ह्रियते–आदीयते यया सा रसहरणी नाभिनालमित्यर्थः, मातृजीवस्य रसहरणी मातृजीवरसहरणी, किमित्याह–'पुत्तजीवरसहरणी' पुत्रस्य रसोपादाने कारणत्वात्, कथमेवमित्याह–मातृजीवप्रतिबद्धा सती सा यतः 'पुत्तजीवं फुड'त्ति पुत्रजीवं स्पृष्टवती, इह च प्रतिबद्धता गाढसम्बन्धः, तदंशत्वात्, स्पृष्टता च सम्बन्धमात्रम्, अतदंशत्वात्, अथवा मातृजीवरसहरणी पुत्रजीवरसहरणी चेति द्वे नाड्यौ स्तः, तयोश्चाद्या मातृजीवप्रतिबद्धा पुत्रजीवस्पृष्टेति, 'तम्हे'ति यस्मादेवं तस्मान्मातृजीवप्रतिबद्धया रसहरण्या पुत्रजीवस्पर्शनादाहारयति। 'अवरावि य'त्ति पुत्रजीवरसहरण्यपि च पुत्रजीवप्रतिबद्धा सती मातृजीवं स्पृष्टवती 'तम्ह'त्ति यस्मादेवं तस्माच्चिनोति शरीरम्, उक्तं च तन्त्रान्तरे—"पुत्रस्य नाभौ मातुश्च, हृदि नाडी निबध्यते। ययाऽसौ पुष्टिमाप्नोति, केदार इव कुल्यया॥१॥" इति॥ गर्भाधिकारादेवेदमाह—'कइण'मित्यादि'माइअंग'त्ति आर्त्तवविकारबहुलानीत्यर्थः 'मत्थुलुंग'त्ति मस्तकभेजकम्, अन्ये त्वाहुः–मेदः फिप्फिसादि मस्तुलुङ्गमिति। 'पिइयंग'त्ति पैतृकाङ्गानि शुक्रविकारबहुलानीत्यर्थः, 'अट्ठिमिंज'त्ति अस्थिमध्यावयवः, केशादिकं बहुसमानरूपत्वादेकमेव, उभयव्यतिरिक्तानि तु शुक्रशोणितयोः समविकाररूपत्वात् मातापित्रोः साधारणानीति। 'अम्मापिइए णं'ति अम्बापैतृकं, शरीरावयवेषु शरीरोपचारात्, उक्तलक्षणानि मातापित्रङ्गानीत्यर्थः, 'जावइयं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [८३]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ८८ ॥

से कालं'ति यावन्तं कालं 'से'त्ति तत् तस्य वा जीवस्य 'भवधारणीयं' भवधारणप्रयोजनं मनुष्यादिभवोपग्राहकमि-त्यर्थः, 'अव्वावन्ने'त्ति अविनष्टम्, 'अहे णं'ति उपचयान्तिमसमयादनन्तरमेतद् अम्बापैतृकं शरीरं 'वोक्कसिज्जमाणे'त्ति व्यवकृष्यमाणं हीयमानं ॥ गर्भाधिकारादेवापरं सूत्रम्—

जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे नेरइएसु उववज्जेज्जा ?, गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा, से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! से णं सन्नी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए वीरियलद्धीए वेउव्वि-यलद्धीए पराणीएणं आगयं सोच्चा निसम्म पएसे निच्छुभइ नि० २ वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ समो० २ चाउरंगिणिं सेन्नं विउव्वइ चाउरंगिणीसेन्नं विउव्वेत्ता चाउरंगिणीए सेणाए पराणीएणं सद्धिं संगामं संगामेइ, से णं जीवे अत्थकामए रज्जकामए भोगकामए कामकामए अत्थकंखिए रज्जकंखिए भोगकंखिए कामकंखिए अत्थपिवासिए रज्जपिवासिए भोगपिवासिए कामपिवासिए तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणाभाविए एयंसि णं अंतरंसि कालं करेज्ज नेरइएसु उववज्जइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव अत्थेगइए उववज्जेज्जा अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा । जीवे णं भंते ! गब्भ-गए समाणे देवलोगेसु उववज्जेज्जा ?, गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा, से केण-ट्ठेणं ?, गोयमा ! से णं सन्नी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आयरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा निसम्म तओ भवइ संवेगजायसड्ढे तिव्वधम्माणुरागरत्ते,

१ शतके उद्देशः ७ गर्भस्य दे-वनरकयो-रुत्पादः जातस्या-देयतेतरे सू ६२

॥ ८८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से णं जीवे धम्मकामए पुण्णकामए सग्गकामए मोक्खकामए धम्मकंखिए पुण्णकंखिए सग्गमोक्खकं० धम्मपिवासिए पुण्णसग्गमोक्खपिवासिए तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणाभाविए एयंसि णं अंतरंसि कालं करे० देवलो० उव०, से तेणट्ठेणं गोयमा !० । जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे उत्ताणए वा पासिल्लए वा अंबखुज्जए वा अच्छेज्ज वा चिट्ठेज्ज वा निसीएज्ज वा तुयट्टेज्ज वा माऊए सुयमाणीए सुवइ जागरमाणीए जागरइ सुहियाए सुहिए भवइ दुहियाए दुहिए भवइ ?, हंता गोयमा ! जीवेणं गब्भगए समाणे जाव दुहियाए दुहिए भवइ, अहे णं पसवणकालसमयंसि सीसेण वा पाएहिं वा आगच्छइ सममागच्छइ तिरियमागच्छइ विणिहायमागच्छइ ॥ वण्णवज्झाणि य से कम्माइं बद्धाइं पुट्ठाइं निहत्ताइं कडाइं पट्ठवियाइं अभिनिविट्ठाइं अभिसमन्नागयाइं उदिन्नाइं नो उवसंताइं भवंति तओ भवइ दुरूवे दुव्वन्ने दुग्गंधे दूरसे दुप्फासे अणिट्ठे अकंते अप्पिए असुभे अमणुन्ने अमणामे हीणस्सरे दीणस्सरे अणिट्ठस्सरे अकंतस्सरे अप्पियस्सरे असुभस्सरे अमणुन्नस्सरे अमणामस्सरे अणाएज्जवयणे पच्चायाए यावि भवइ, वन्नवज्झाणि य से कम्माइं नो बद्धाइं पसत्थं नेयव्वं जाव आदेज्जवयणं पच्चायाए यावि भवइ, सेवं भंते ! सेवं भंते ! (सू० ६२) त्ति सत्तमो उद्देसो समत्तो ॥ १–७ ॥

'गब्भगए समाणे'त्ति गर्भगतः सन् मृत्वेति शेषः 'एगइए'त्ति सगर्वराजादिगर्भरूपः, सञ्ज्ञित्वादिविशेषणानि च गर्भस्थस्यापि नरकप्रायोग्यकर्मबन्धसम्भवाभिधायकतयोक्तानि, वीर्यलब्ध्या वैक्रियलब्ध्या संग्रामयतीति योगः, अथवा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वीर्यलब्धिको वैक्रियलब्धिकश्च सन्निति,'पराणीएणं'ति 'परानीकं' शत्रुसैन्यं 'सोच्च'त्ति आकर्ण्य 'निशम्य' मनसाऽवधार्य 'पएसे निच्छुभइ'त्ति (प्रदेशान्)गर्भदेशाद्बहिः क्षिपति 'समोहणइ'त्ति 'समवहन्ति' समवहतो भवति तथाविधपुद्गलग्रहणार्थं, 'सङ्गामं सङ्गामयति' युद्धं करोति, 'अत्थकामए'इत्यादि अर्थे–द्रव्ये कामो–वाञ्छामात्रं यस्यासावर्थकामः, एवमन्यान्यपि विशेषणानि, नवरं राज्यं–नृपत्वं भोगा–गन्धरसस्पर्शाः कामौ–शब्दरूपे काङ्क्षा–गृद्धिः, आसक्तिरित्यर्थः, अर्थे काङ्क्षा संजाताऽस्येत्यर्थकाङ्क्षितः, पिपासेव पिपासा–प्राप्तेऽप्यर्थेऽतृप्तिः, 'तच्चित्ते'त्ति तत्र–अर्थादौ चित्तं–सामान्योपयोगरूपं यस्यासौ तच्चित्तः, 'तम्मणे'त्ति तत्रैव–अर्थादौ मनो–विशेषोपयोगरूपं यस्य स तन्मनाः, 'तल्लेसे'त्ति लेश्या–आत्मपरिणामविशेषः, 'तदज्झवसिए'त्ति इहाध्यवसायोऽध्यवसितं, तत्र तच्चित्तादिभावयुक्तस्य सतस्तस्मिन्–अर्थादावेवाध्यवसितं–परिभोगक्रियासंपादनविषयमस्येति तदध्यवसितः, 'तत्तिव्वज्झवसाणे'त्ति तस्मिन्नेव–अर्थादौ तीव्रम्–आरम्भकालादारभ्य प्रकर्षयायि अध्यवसानं–प्रयत्नविशेषलक्षणं यस्य स तथा, 'तदट्ठोवउत्ते'त्ति तदर्थम्–अर्थादिनिमित्तमुपयुक्तः–अवहितस्तदर्थोपयुक्तः, 'तदप्पियकरणे'त्ति तस्मिन्नेव–अर्थादावर्पितानि–आहितानि करणानि–इन्द्रियाणि कृतकारितानुमतिरूपाणि वा येन स तथा, 'तब्भावणाभाविए'त्ति असकृदनादौ संसारे तद्भावनया–अर्थादिसंस्कारेण भावितो यः स तथा, 'एयंसि णं अंतरंसि'त्ति 'एतस्मिन्' सङ्गामकरणावसरे कालं–मरणमिति । 'तहारूवस्स'त्ति तथाविधस्य, उचितस्येत्यर्थः, 'श्रमणस्य' साधोः, वाशब्दो देवलोकोत्पादहेतुत्वं प्रति श्रमणमाहनवचनयोस्तुल्यत्वप्रकाशनार्थः, 'माहणस्स'त्ति मा हन इत्येवमादिशति स्वयं स्थूलप्राणातिपातादिनिवृत्तत्वाद्यः स माहनः, अथवा ब्राह्म-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णो–ब्रह्मचर्यस्य देशतः सद्भावाद् ब्राह्मणो देशविरतः तस्य वा 'अंतिए'त्ति समीपे एकमप्यास्तामनेकम् 'आर्यम्' आराद् यातं पापकर्मभ्य इत्यार्यम्, अत एव धार्मिकमिति, 'तओ'त्ति तदनन्तरमेव 'संवेगजायसड्ढे'त्ति संवेगेन–भवभयेन जाता श्रद्धा–श्रद्धानं धर्मादिषु यस्य स तथा 'तिव्वधम्माणुरागरत्ते'त्ति तीव्रो यो धर्मानुरागो–धर्मबहुमानस्तेन रक्त इव यः स तथा, 'धम्मकामए'त्ति धर्मः–श्रुतचारित्रलक्षणः पुण्यं–तत्फलभूतं शुभकर्मेति। 'अंबखुज्जए व'त्ति आम्रफलवत्कुब्जः 'अच्छेज्ज'ति आसीत सामान्यतः, एतदेव विशेषत उच्यते—'चिट्ठेज्ज'त्ति ऊर्द्धस्थानेन 'निसीएज्ज'त्ति निषदस्थानेन 'तुयट्टेज्ज'त्ति शयीत, 'सममागच्छइ'त्ति, समम्–अविषमं 'सम्मं'ति पाठे 'सम्यग्' अनुपघातहेतुत्वादागच्छति–मातुरुदराद् योन्या निष्क्रामति 'तिरियमागच्छइ'त्ति तिरश्चीनो भूत्वा जठरान्निर्गन्तुं प्रवर्त्तते यदि तदा 'विनिघातं' मरणमापद्यते, निर्गमाभावादिति। गर्भान्निर्गतस्य च यत्स्यात्तदाह—'वण्णवज्झाणि य'त्ति वर्णः–श्लाघा वध्यो–हन्तव्यो येषां तानि वर्णवध्यानि, अथवा वर्णाद्बाह्यानि वर्णबाह्यानि अशुभानीत्यर्थः, चशब्दो वाक्यान्तरत्वद्योतनार्थः, 'से'त्ति तस्य गर्भनिर्गतस्य 'बद्धाइं'ति सामान्यतो बद्धानि 'पुट्ठाइं'ति पोषितानि गाढतरबन्धतः 'निहत्ताइं'ति उद्वर्त्तनापवर्तनकरणवर्जशेषकरणायोग्यत्वेन व्यवस्थापितानीत्यर्थः, अथवा बद्धानि, कथम् ?–यतः पूर्वं स्पृष्टानीति,'कडाइं'ति निकाचितानि सर्वकरणायोग्यत्वेन व्यवस्थापितानीत्यर्थः,'पट्ठवियाइं'ति मनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजातित्रसादिनामकर्मादिना सहोदयत्वेन व्यवस्थापितानीत्यर्थः,'अभिनिविट्ठाइं'ति तीव्रानुभावतया निविष्टानि,'अभिसमन्नागयाइं'ति उदयाभिमुखीभूतानीति, ततश्च 'उदिन्नाइं'ति 'उदीर्णानि' स्वत उदीरणाकरणेन वोदितानि, व्यतिरेकमाह–'नो उवसंताइं'ति, अनिष्टादीनि व्याख्या-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तान्येवैकार्थानि वा, 'हीणस्सरे'त्ति अल्पस्वरः 'दीणस्सरे'त्ति दीनस्येव–दुःस्थितस्येव स्वरो यस्य स दीनस्वरः 'अणादेयवयणे पचायाए यावि'त्ति, इहैवमक्षरघटना–प्रत्याजातश्चापि–समुत्पन्नोऽपि चानादेयवचनो भवतीति ॥ प्रथमशते सप्तमः ॥ १–७ ॥

गर्भवक्तव्यता सप्तमोद्देशकस्यान्ते उक्ता, गर्भवासश्चायुषि सतीत्यायुर्निरूपणायाह, तथाऽऽदिगाथायां यदुक्तं 'बाले'त्ति तदभिधानाय चाष्टमोद्देशकसूचकसूत्रम्—

रायगिहे समोसरणं जाव एवं वयासी–एगंतबाले णं भंते! मणूसे किं नेरइयाउयं पकरेइ तिरिक्ख०मणु०देवा० पक०?, नेरइयाउयं किच्चा नेरइएसु उव० तिरियाउयं कि० तिरिएसु उवव० मणुस्साउयं० मणुस्से० उव० देवाउ० कि० देवलोएसु० उववज्जइ?, गोयमा! एगंतबाले णं मणुस्से नेरइयाउयंपि पकरेइ तिरि०मणु० देवाउयंपि पकरेइ, नेरइयाउयंपि किच्चा नेरइएसु उव० तिरि०मणु०देवाउयं किच्चा तिरि०मणु०देवलोएसु उववज्जइ ॥ (सू० ६३) ॥

'एगंतबाले'इत्यादि, 'एकान्तबालः' मिथ्यादृष्टिरविरतो वा, एकान्तग्रहणेन मिश्रतां व्यवच्छिनत्ति, यच्चैकान्तबालत्वे समानेऽपि नानाविधायुर्बन्धनं तन्महारम्भाद्युन्मार्गदेशनादितनुकषायत्वादिअकामनिर्जरादितद्धेतुविशेषवशादिति, अत एव बालत्वे समानेऽप्यविरतसम्यग्दृष्टिर्मनुष्यो देवायुरेव प्रकरोति न शेषाणि ॥ एकान्तबालप्रतिपक्षत्वादेकान्तपण्डितसूत्रं,तत्र च–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र प्रथम-शतके सप्तम-उद्देशक: समाप्त:

अथ प्रथम-शतके अष्टम-उद्देशक: आरभ्यते

एगंतपंडिए णं भंते ! मणुस्से किं नेर० पकरेइ जाव देवाउयं किच्चा देवलोएसु उवव० ?, गोयमा ! एगंतपंडिए णं मणुस्से आउयं सिय पकरेइ सिय नो पकरेइ, जइ पकरेइ नो नेरइया० पकरेइ नो तिरि० नो मणु० देवाउयं पकरेइ, नो नेरइयाउयं किच्चा नेर० उव० णो तिरि० णो मणुस्स०देवाउयं किच्चा देवेसु उव०, से केणट्ठेणं जाव देवा०किच्चा देवेसु उववज्जइ ?, गोयमा ! एगंतपंडियस्स णं मणुसस्स केवलमेव दो गईओ पन्नायंति, तंजहा—अंतकिरिया चेव कप्पोववत्तिया चेव, से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ ॥ बालपंडिएणं भंते ! मणुस्से किं नेरइयाउयं पकरेइ जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ ?, गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेइ जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ, से केणट्ठेणं जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ?, गोयमा ! बालपंडिए णं मणुस्से तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आयरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा निसम्म देसं उवरमइ देसं नो उवरमइ देसं पच्चक्खाइ देसं णो पच्चक्खाइ, से तेणट्ठेणं देसोवरमदेसपच्चक्खाणेणं नो नेरइयाउयं पकरेइ जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ, से तेणट्ठेणं जाव देवेसु उववज्जइ । (सू० ६४)

'एगंतपंडिए णं'ति एकान्तपण्डितः–साधुः 'मणुस्से'त्ति विशेषणं स्वरूपज्ञापनार्थमेव, अमनुष्यस्यैकान्तपण्डितत्वायोगात्, तदयोगश्च सर्वविरतेरन्यस्याभावादिति, 'एगंतपंडिए णं मणुस्से आउयं सिय पकरेइ सिय नो पकरेइ'त्ति, सम्यक्त्वसप्तके क्षपिते न बध्नात्यायुः साधुः अर्वाक् पुनर्बध्नातीत्यत उच्यते–स्यात्प्रकरोतीत्यादि, 'केवलमेव दो गईओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६४]

दीप अनुक्रम [८६]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१

॥ ९१ ॥

पन्नायंति'त्ति केवलशब्दः सकलार्थस्तेन साकल्येनैव(द्वे)गती 'प्रज्ञायेते' अवबुध्येते केवलिना, तयोरेव सत्त्वादिति 'अंत-किरिय'त्ति निर्वाणं 'कप्पोववत्तिय'त्ति कल्पेषु–अनुत्तरविमानान्तदेवलोकेषूपपत्तिः सैव कल्पोपपत्तिका, इह च कल्पशब्दः सामान्येनैव वैमानिकदेवाऽऽवासाभिधायकं इति ॥ एकान्तपण्डितद्वितीयस्थानवर्त्तित्वाद्बालपण्डितस्य अतो बालपण्डितसूत्रं, तत्र च—'बालपंडिए णं'ति श्रावकः 'देसं उवरमइ'त्ति विभक्तिविपरिणामादेशात् 'उपरमते' विरतो भवति, ततो 'देसं' स्थूलं प्राणातिपातादिकं 'प्रत्याख्याति' वर्जनीयतया प्रतिजानीते ॥ आयुर्बन्धस्य क्रियाः कारणमिति क्रियासूत्राणि पञ्च, तत्र

पुरिसे णं भंते ! कच्छंसि वा १ दहंसि वा २ उदगंसि वा ३ दवियंसि वा ४ वलयंसि वा ५ नूमंसि वा ६ गहणंसि वा ७ गहणविदुग्गंसि वा ८ पव्वयंसि वा ९ पव्वयविदुग्गंसि वा १० वणंसि वा ११ वणविदुग्गंसि वा १२ मियवित्तीए मियसंकप्पे मियपणिहाणे मियवहाए गंता एए मिएत्तिकाउं अन्नयरस्स मियस्स वहाए कूड-पासं उद्दाइ, ततो णं भंते ! से पुरिसे कतिकिरिए पण्णत्ते ?, गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे कच्छंसि वा १० (१२) जाव कूडपासं उद्दाइ तावं च णं से पुरिसे सिय तिकि० सिय चउ० सिय पंच०, से केणट्ठेणं सिय ति० सिय च० सिय पं० ?, गोयमा! जे भविए उद्दवणयाए णो बंधणयाए णो मारणयाए तावं च णं से पुरिसे काइयाए अहिगरणियाए पाउसियाए तिहिं किरियाहिं पुट्ठे, जे भविए उद्दवणयाएवि बंधणयाएवि णो मारणयाए तावं च णं से पुरिसे काइयाए अहिगरणियाए पाउसियाए पारियावणियाए चउहिं किरियाहिं पुट्ठे, जे भविए उद्दवणयाएवि बंधणयाएवि मारणया एवि तावं च णं से पुरिसे काइयाए अहिगरणियाए

१ शतके उद्देशः ८ पण्डितबा-लपण्डित-योरुत्पादः सू ६४

॥ ९१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाउसियाए जाव पंचहिं पुट्ठे, से तेणट्ठेणं जाव पंचकिरिए, सू० (६५) पुरिसे णं भंते ! कच्छंसि वा जाव वणविदुग्गंसि वा तणाइं ऊसविय २ अगणिकायं निस्सरइ तावं च णं से भंते ! से पुरिसे कतिकिरिए ?, गोयमा ! सिय तिकिरिए सिय चउकि० सिय पंच०, से केणट्ठेणं ?, गोयमा जे भविए उस्सवणयाए तिहिं, उस्सवणयाएवि निस्सिरणयाएवि नो दहणयाए चउहिं, जे भविए उस्सवणयाएवि निस्सिरणयाएवि दहणयाएवि तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, से तेण० गोयमा ! । (सू० ६६) ॥-पुरिसे णं भंते ! कच्छंसि वा जाव वणविदुग्गंसि वा मियवित्तीए मियसंकप्पे मियपणिहाणे मियवहाए गंता एए मिएत्तिकाउं अन्नयरस्स मियस्स वहाए उसुं निसिरइ, ततो णं भंते ! से पुरिसे कइकिरिए ?, गोयमा ! सिय तिकिरिए सिय चउकिरिए सिय पंचकिरिए, से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! जे भविए निस्सिरणयाए नो विद्धंसणयाएवि नो मारणयाए तिहिं, जे भविए निस्सिरणयाएवि विद्धंसणयाएवि नो मारणयाए चउहिं, जे भविए निस्सिरणयाएवि विद्धंसणयाएवि मारणयाएवि तावं च णं से पुरिसे जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, से तेणट्ठेणं गोयमा ! सिय तिकिरिए सिय चउकिरिए सिय पंच किरिए (सू०६७)। पुरिसे णं भंते ! कच्छंसि वा जाव अन्नयरस्स मियस्स वहाए आययकन्नायतं उसुं आयामेत्ता चिट्ठिज्जा, अन्नयरे पुरिसे मग्गओ आगम्म सयपाणिणा असिणा सीसं छिंदेज्जा से य उसुं ताए चेव पुव्वायामणयाए तं विंधेज्जा से णं भंते ! पुरिसे किं मियवेरेणं पुट्ठे पुरिसवेरेणं पुट्ठे ?, गोयमा ! जे मियं मारेइ से मियवेरेणं पुट्ठे, जे पुरिसं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥ ९२ ॥

मारेइ से पुरिसवेरेणं पुट्ठे, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुचइ जाव से पुरिसवेरेणं पुट्ठे ?, से नूणं गोयमा ! कज्जमाणे कडे संधिज्जमाणे संधिए निव्वत्तिज्जमाणे निव्वत्तिए निसिरिज्जमाणे निसिट्ठेत्ति वत्तव्वं सिया ?, हंता भगवं ! कज्जमाणे कडे जाव निसिट्ठेत्ति वत्तव्वं सिया, से तेणट्ठेणं गोयमा ! जे मियं मारेइ से मियवेरेणं पुट्ठे, जे पुरिसं मारेइ से पुरिसवेरेणं पुट्ठे ॥ अंतो छण्हं मासाणं मरइ काइयाए जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, बाहिं छण्हं मासाणं मरइ काइयाए जाव पारियावणियाए चउहिं किरियाहिं पुट्ठे (सू० ६८)। पुरिसे णं भंते ! पुरिसं सत्तीए समभिधंसेज्जा सयपाणिणा वा से असिणा सीसं छिंदेज्जा तओ णं भंते ! से पुरिसे कतिकिरिए ?, गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे तं पुरिसं सत्तीए अभिसंधेइ सयपाणिणा वा से असिणा सीसं छिंदइ तावं च णं से पुरिसे काइयाए अहिगरणि० जाव पाणाइवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, आसन्नवहएण य अणवकंखवत्तिएणं पुरिसवेरेणं पुट्ठे ॥ (सू० ६९)

'कच्छंसि व'त्ति 'कच्छे' नदीजलपरिवेष्टिते वृक्षादिमति प्रदेशे 'दहंसि व'त्ति ह्रदे प्रतीते 'उदगंसि व'त्ति उदके–जलाश्रयमात्रे 'दवियंसि व'त्ति 'द्रविके' तृणादिद्रव्यसमुदाये 'वलयंसि व'त्ति 'वलये' वृत्ताकारनद्याद्युदककुटिलगतियुक्तप्रदेशे 'नूमंसि व'त्ति 'नूमे' अवतमसे 'गहणंसि व'त्ति 'गहने' वृक्षवल्लीलतावितानवीरुत्समुदाये 'गहणविदुग्गंसि व'त्ति 'गहनविदुर्गे' पर्वतैकदेशावस्थितवृक्षवल्यादिसमुदाये 'पव्वयंसि व'त्ति पर्वते 'पव्वयविदुग्गंसि व'त्ति पर्वतसमुदाये 'वणंसि व'त्ति 'वने' एकजातीयवृक्षसमुदाये 'वणविदुग्गंसि व'त्ति नाना-

·१ शतके उद्देशः ८ मृगवधादौ क्रियाः सू ६४-६९

॥ ९२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विधवृक्षसमूहे 'मिगवित्तीए'त्ति मृगैः–हरिणैर्वृत्तिः–जीविका यस्य स मृगवृत्तिकः, स च मृगरक्षकोऽपि स्यादित्यत आह—'मियसंकप्पे'त्ति मृगेषु सङ्कल्पो–वधाध्यवसायः छेदनं वा यस्यासौ मृगसङ्कल्पः, स च चलचित्ततयाऽपि भवतीत्यत आह—'मियपणिहाणे'त्ति मृगवधैकाग्रचित्तः 'मिगवहाए'त्ति मृगवधाय 'गंत'त्ति गत्वा कच्छादाविति योगः 'कूडपासं'ति कूटं च–मृगग्रहणकारणं गर्त्तादि पाशश्च–तद्बन्धनमिति कूटपाशम् 'उद्दाइ'त्ति मृगवधायोद्ददाति, रचयतीत्यर्थः, 'तओ णं'ति ततः कूटपाशकरणात् 'कइकिरिए'त्ति कतिक्रियः ?, क्रियाश्च कायिक्यादिकाः, 'जे भविए'त्ति यो भव्यो योग्यः कर्त्तेतियावत् 'जावं च ण'मिति शेषः, यावन्तं कालमित्यर्थः, कस्याः कर्त्ता इत्याह–'उद्दवणयाए'त्ति कूटपाशधारणतायाः, ताप्रत्ययश्चेह स्वार्थिकः, 'तावं च णं'ति तावन्तं कालं 'काइयाए'त्ति गमनादिकायचेष्टारूपया 'अहिगरणियाए'त्ति अधिकरणेन–कूटपाशरूपेण निर्वृत्ता या सा तथा तया 'पाउसियाए'त्ति प्रद्वेषो–मृगेषु दुष्टभावस्तेन निर्वृत्ता प्राद्वेषिकी तया 'तिहिं किरियाहिं'ति क्रियन्त इति क्रियाः–चेष्टाविशेषाः, 'पारितावणियाए'त्ति परितापनप्रयोजना पारितापनिकी, सा च बद्धे सति मृगे भवति प्राणातिपातक्रिया च घातिते इति १ ॥ 'ऊसविए'त्ति उत्सर्पः ऊसिक्किऊणेत्यर्थः ऊर्द्धीकृत्येति वा 'निसिरइ'त्ति निसृजति–क्षिपति यावदिति शेषः २ ॥ 'उसुं'ति बाणम् 'आययकण्णायत्तं'ति कर्णं यावदायतः–आकृष्टः कर्णायतः आयतं–प्रयत्नवद् यथा भवतीत्येवं कर्णायत आयतकर्णायतस्तम् 'आयामेत्त'त्ति 'आयम्य' आकृष्य 'मग्गओ'त्ति पृष्ठतः 'सयपाणिण'त्ति 'स्वकपाणिना' स्वकहस्तेन 'पुव्वावामणयाए'त्ति पूर्वाकर्षणेण, 'से णं भंते ! पुरिसे'त्ति 'सः' शिरश्छेत्ता पुरुषः 'मियवेरेणं'ति इह वैरं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१

॥ ९३ ॥

वैरहेतुत्वाद् वधः पापं वा वैरं वैरहेतुत्वादिति, अथ शिरश्छेतृपुरुषहेतुकत्वादिषुनिपातस्य कथं धनुर्द्धरपुरुषो मृगवधेन स्पृष्ट इत्याकूतवतो गौतमस्य तदभ्युपगतमेवार्थमुत्तरतया प्राह–क्रियमाणं धनुःकाण्डादि कृतमिति व्यपदिश्यते ?, युक्तिस्तु प्रागूवत्, तथा सन्धीयमानं–प्रत्यञ्चायामारोप्यमाणं काण्डं धनुर्वाऽऽरोप्यमाणप्रत्यञ्चं 'सन्धितं' कृतसन्धानं भवति ?, तथा 'निर्वृत्त्यमानं' नितरां वर्त्तुलीक्रियमाणं प्रत्यञ्चाकर्षणेन निर्वृत्तितं–वृत्तीकृतं मण्डलाकारं कृतं भवति ?, तथा 'निसृज्यमानं'निक्षिप्यमाणं काण्डं निसृष्टं भवति ?, यदा च निसृष्टं तदा निसृज्यमानताया धनुर्द्धरेण कृतत्वात् तेन काण्डं निसृष्टं भवति, काण्डनिसर्गाच्च मृगस्तेनैव मारितः, ततश्चोच्यते–'जे मियं मारेइ' इत्यादीति ३ ॥ इह च क्रियाः प्रक्रान्ताः, ताश्चानन्तरोक्ते मृगादिवधे यावत्यो यत्र कालविभागे भवन्ति तावतीस्तत्र दर्शयन्नाह—'अन्तो छण्ह'मित्यादि, षण्मासान् यावत् प्रहारहेतुकं मरणं परतस्तु परिणामान्तरापादितमितिकृत्वा षण्मासादूर्ध्वं प्राणातिपातक्रिया न स्यादिति हृदयम्, एतच्च व्यवहारनयापेक्षया प्राणातिपातक्रियाव्यपदेशमात्रोपदर्शनार्थमुक्तम्, अन्यथा यदा कदाऽप्यधिकृतं प्रहारहेतुकं मरणं भवति तदैव प्राणातिपातक्रिया इति ४॥ 'सत्तीए'त्ति शक्त्या–प्रहरणविशेषेण 'समभिधंसेज्ज'त्ति हन्यात् 'सयपाणिण'त्ति स्वकहस्तेन 'से'त्ति तस्य 'काइयाए'त्ति 'कायिक्या' शरीरस्पन्दरूपया 'आधिकरणिक्या' शक्तिखड्गव्यापाररूपया 'प्राद्वेषिक्या' मनोदुष्प्रणिधानेन 'पारितापनिक्या' परितापनरूपया 'प्राणातिपातक्रियया' मारणरूपया 'आसन्ने'त्यादि शक्त्याऽभिध्वंसकः असिना वा शिरश्छेत्ता पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टः, तथा पुरुषवैरेण च स्पृष्टः, मारितपुरुषवैरभावेन किम्भूतेनेत्याह–आसन्नो वधो यस्माद्वैरात्तत्तथा तेनासन्नवधकेन, भवति च वैराद्वधो वधकस्य तमेव

१ शतके उद्देशः ८ मृगवधादौ क्रियाः सू ६५-६९

॥ ९३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वध्यमाश्रित्यान्यतो वा तत्रैव जन्मनि जन्मान्तरे वा, यदाह—'वहमारणअब्भक्खाणदाणपरधणविलोवणाईणं। सवज-हन्नो उदओ दसगुणिओ एक्कसिकयाणं ॥ १ ॥"ति, 'चः' समुच्चयेऽनवकाङ्क्षक्षणा–परप्राणनिरपेक्षा स्वगतापायपरिहार-निरपेक्षा वा वृत्तिः–वर्त्तनं यत्रैव वैरे तत्तथा तेनानवकाङ्क्षणवृत्तिकेनेति ५॥ क्रियाऽधिकार एवेदमाह—

दो भंते ! पुरिसा सरिसया सरित्तया सरिव्वया सरिसभंडमत्तोवगरणा अन्नमन्नेणं सद्धिं संगामं संगा-मेन्ति, तत्थ णं एगे पुरिसे पराइणइ एगे पुरिसे पराइज्जइ, से कहमेयं भंते ! एवं ?, गोयमा ! सवीरिए पराइ-णइ अवीरिए पराइज्जइ, से केणट्ठेणं जाव पराइज्जइ ?, गोयमा ! जस्स णं वीरियवज्झाइं कम्माइं णो बद्धाइं णो पुट्ठाइं जाव नो अभिसमन्नागयाइं नो उदिन्नाइं उवसंताइं भवंति से णं पराइणइ, जस्स णं वीरियवज्झाइं कम्माइं बद्धाइं जाव उदिन्नाइं नो उवसंताइं भवंति से णं पुरिसे पराइज्जइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-सवीरिए पराइणइ अवीरिए पराइज्जइ ॥ (सू० ७०) ॥

'सरिसय'त्ति सदृशकौ कौशलप्रमाणादिना 'सरित्तय'त्ति 'सदृक्त्वचौ' सदृशच्छवी 'सरिव्वय'त्ति सदृग्वयसौ समानयौवनाद्यवस्थौ 'सरिसभंडमत्तोवगरण'त्ति भाण्डं–भाजनं मृन्मयादि मात्रो–मात्रया युक्त उपधिः स च कांस्य-भाजनादिभोजनभण्डिका भाण्डमात्रा वा–गणिमादिद्रव्यरूपः परिच्छदः उपकरणानि–अनेकधाऽऽवरणप्रहरणादीनि

१ वधमारणाभ्याख्यानदानपरधनविलोपनादीनामेकशः कृतानामपि सर्वजघन्य उदयो दशगुणितः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७०]

दीप अनुक्रम [९२]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥ ९४ ॥

ततः सदृशानि भाण्डमात्रोपकरणानि ययोस्तौ तथा, अनेन च समानविभूतिकत्वं तयोरभिहितं, 'सवीरिए'त्ति सवीर्यः 'वीरियवज्झाइं'ति वीर्यं वध्यं येषां तानि तथा ॥ वीर्यप्रस्तावादिदमाह—

जीवा णं भंते ! किं सवीरिया अवीरिया ?, गोयमा ! सवीरियावि अवीरियावि, से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! जीवा दुविहा पन्नत्ता, तंजहा–संसारसमावन्नगा य असंसारसमावन्नगा य, तत्थ णं जे ते असंसारसमावन्नगा ते णं सिद्धा, सिद्धा णं अवीरिया, तत्थ णं जे ते संसारसमावन्नगा ते दुविहा पन्नत्ता, तंजहा–सेलेसिपडिवन्नगा य असेलेसिपडिवन्नगा य, तत्थ णं जे ते सेलेसिपडिवन्नगा ते णं लद्धिवीरिएणं सवीरिया करणवीरिएणं अवीरिया, तत्थ णं जे ते असेलेसिपडिवन्नगा ते णं लद्धिवीरिएणं सवीरिया करणवीरिएणं सवीरियावि अवीरियावि, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–जीवा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–सवीरियावि अवीरियावि। नेरइया णं भंते ! किं सवीरिया अवीरिया ?, गोयमा ! नेरइया लद्धिवीरिएणं सवीरिया करणवीरिएणं सवीरियावि अवीरियावि, से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! जेसि णं नेरइयाणं अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे ते णं नेरइया लद्धिवीरिएणवि सवीरिया करणवीरिएणवि सवीरिया, जेसि णं नेरइयाणं नत्थि उट्ठाणे जाव परक्कमे ते णं नेरइया लद्धिवीरिएणं सवीरिया करणवीरिएणं अवीरिया, से तेणट्ठेणं०, जहा नेरइया एवं जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणिया, मणुस्सा जहा ओहिया जीवा, नवरं सिद्धवज्जा भाणियव्वा, वाणमंतरजोइसवेमाणिया जहा नेरइया, सेवं भंते ! सेवं भंते !त्ति ॥ (सू०७०)॥ पढमसए अट्ठमो उद्देसो समत्तो ॥

१ शतके उद्देशः ८ जयपराज-यहेतुःसू७० वीर्यम् सू ७१

॥ ९४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

***अत्र सूत्र-क्रमस्य मूल-संपादने एक: मुद्रण-दोष: जात: *सू० ७० (यहाँ सू० ७१ होना चाहिए, मगर नीचे की लाइनमें सू० ७० लिखा है, वैसे उपर दाईं तरफ तो ७१ ही छपा है और इस सूत्र के बाद भी आगे के सूत्रमे सूत्र-क्रम ७२ ही दिया गया है ।)

प्रत सूत्रांक [७१]

दीप अनुक्रम [९३]

'सिद्धा णं अवीरिय'त्ति सकरणवीर्याभावादवीर्याः सिद्धाः,'सेलेसिपडिवन्नगा य'त्ति शीलेशः–सर्वसंवररूपचरणप्रभुस्तस्येयमवस्था शैलेशो वा–मेरुस्तस्येव याऽवस्था स्थिरतासाधर्म्यात्सा शैलेशी, सा च सर्वथा योगनिरोधे पञ्चह्रस्वाक्षरोच्चारकालमाना तां प्रतिपन्नका ये ते तथा, 'लद्धिवीरिएणं सवीरिय'त्ति वीर्यान्तरायक्षयक्षयोपशमतो या वीर्यस्य लब्धिः सैव तद्धेतुत्वाद्वीर्यं लब्धिवीर्यं तेन सवीर्याः, एतेषां च क्षायिकमेव लब्धिवीर्यं, 'करणवीरिएणं'ति लब्धिवीर्यकार्यभूता क्रिया करणं तद्रूपं करणवीर्यं, 'करणवीरिएणं सवीरियावि अवीरियावि'त्ति तत्र 'सवीर्याः' उत्थानादिक्रियावन्तः अवीर्यास्तूत्थानादिक्रियाविकलाः, ते चापर्याप्त्यादिकालेऽवगन्तव्या इति । 'नवरं सिद्धवज्जा भाणियव्व'त्ति, औधिकजीवेषु सिद्धाः सन्ति मनुष्येषु तु नेति, मनुष्यदण्डके वीर्यं प्रति सिद्धस्वरूपं नाध्येयमिति ॥ प्रथमशतेऽष्टमः॥१–८॥

अष्टमोद्देशकान्ते वीर्यमुक्तं, वीर्याच्च जीवा गुरुत्वाद्यासादयन्तीति गुरुत्वादिप्रतिपादनपरः तथा सङ्गहण्यां यदुक्तं 'गुरुए'त्ति तत्प्रतिपादनपरश्च नवमोद्देशकः, तत्र च सूत्रम्—

कहन्नं भंते ! जीवा गरुयत्तं हव्वमागच्छन्ति ?, गोयमा ! पाणाइवाएणं मुसावाएणं अदिन्ना०मेहुण०परि०कोह० माण०माया०लोभ०पे० दोस० कलह०अब्भक्खाण०पेसुन्न०रतिअरति० परपरिवाय०मायामोसमिच्छादंसणसल्लेणं, एवं खलु गोयमा ! जीवा गरुयत्तं हव्वमागच्छंति । कहन्नं भंते ! जीवा लहुयत्तं हव्वमागच्छंति ?, गोयमा ! पाणाइवायवेरमणेणं जाव मिच्छादंसणसल्लवेरमणेणं एवं खलु गोयमा ! जीवा लहुयत्तं हव्वमाग-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र प्रथम-शतके अष्टम-उद्देशकः समाप्तः

अथ प्रथम-शतके नवम-उद्देशकः आरभ्यते

च्छन्ति, एवं संसारं आउलीकरेंति एवं परित्तीकरेंति दीहीकरेंति हस्सीकरेंति एवं अणुपरियट्टंति एवं वीइ-वयंति–पसत्था चत्तारि अप्पसत्था चत्तारि ॥ (सू० ७२) ॥

'गरुयत्तं'ति 'गुरुकत्वम्' अशुभकर्मोपचयरूपमधस्ताद्गमनहेतुभूतं 'लघुकत्वं' गौरवविपरीतम्, एवम् 'आउलीकरिंति' त्ति, इहैवंशब्दः पूर्वोक्ताभिलापसंसूचनार्थः, स चैवम्–'कहन्नं भंते ! जीवा संसारं आउलीकरेंति ?, गोयमा ! पाणाइवा-एण'मित्यादि, एवमुत्तरत्रापि, तत्र 'आउलीकरेंति' प्रचुरीकुर्वन्ति कर्मभिरित्यर्थः, 'परित्तीकरेंति'त्ति स्तोकं कुर्वन्ति कर्मभिरेव, 'दीहीकरेंति'त्ति दीर्घं प्रचुरकालमित्यर्थः, 'हस्सीकरेंति'त्ति अल्पकालमित्यर्थः 'अणुपरियट्टंति'त्ति पौनः-पुन्येन भ्रमन्तीत्यर्थः, 'वीइवयंति'त्ति व्यतिव्रजन्ति व्यतिक्रामन्तीत्यर्थः, 'पसत्था चत्तारि'त्ति लघुत्वपरीतत्वह्रस्वत्व-व्यतिव्रजनदण्डकाः प्रशस्ताः मोक्षाङ्गत्वात्, 'अप्पसत्था चत्तारि'त्ति गुरुत्वाकुलत्वदीर्घत्वानुपरिवर्त्तनदण्डका अप्र-शस्ताः अमोक्षाङ्गत्वादिति ॥ गुरुत्वलघुत्वाधिकारादिदमाह—

सत्तमे णं भंते ओवासंतरे किं गुरुए लहुए गुरुयलहुए अगुरुयलहुए ?, गोयमा ! नो गुरुए नो लहुए नो गुरुयलहुए अगुरुयलहुए । सत्तमे णं भंते ! तणुवाए किं गुरुए लहुए गुरुयलहुए अगुरुयलहुए ?, गोयमा ! नो गुरुए नो लहुए गुरुयलहुए नो अगुरुयलहुए । एवं सत्तमे घणवाए सत्तमे घणोदही सत्तमा पुढवी, उवासंतराइं सव्वाइं जहा सत्तमे ओवासंतरे, (सेसा) जहा तणुवाए, एवं-ओवासवायघणउदहि पुढवी दीवा य सागरा वासा। नेरइया णं भंते ! किं गुरुया जाव अगुरुलहुया ?, गोयमा ! नो गुरुया नो लहुया गुरुयलहुयावि अगुरुलहुयावि,

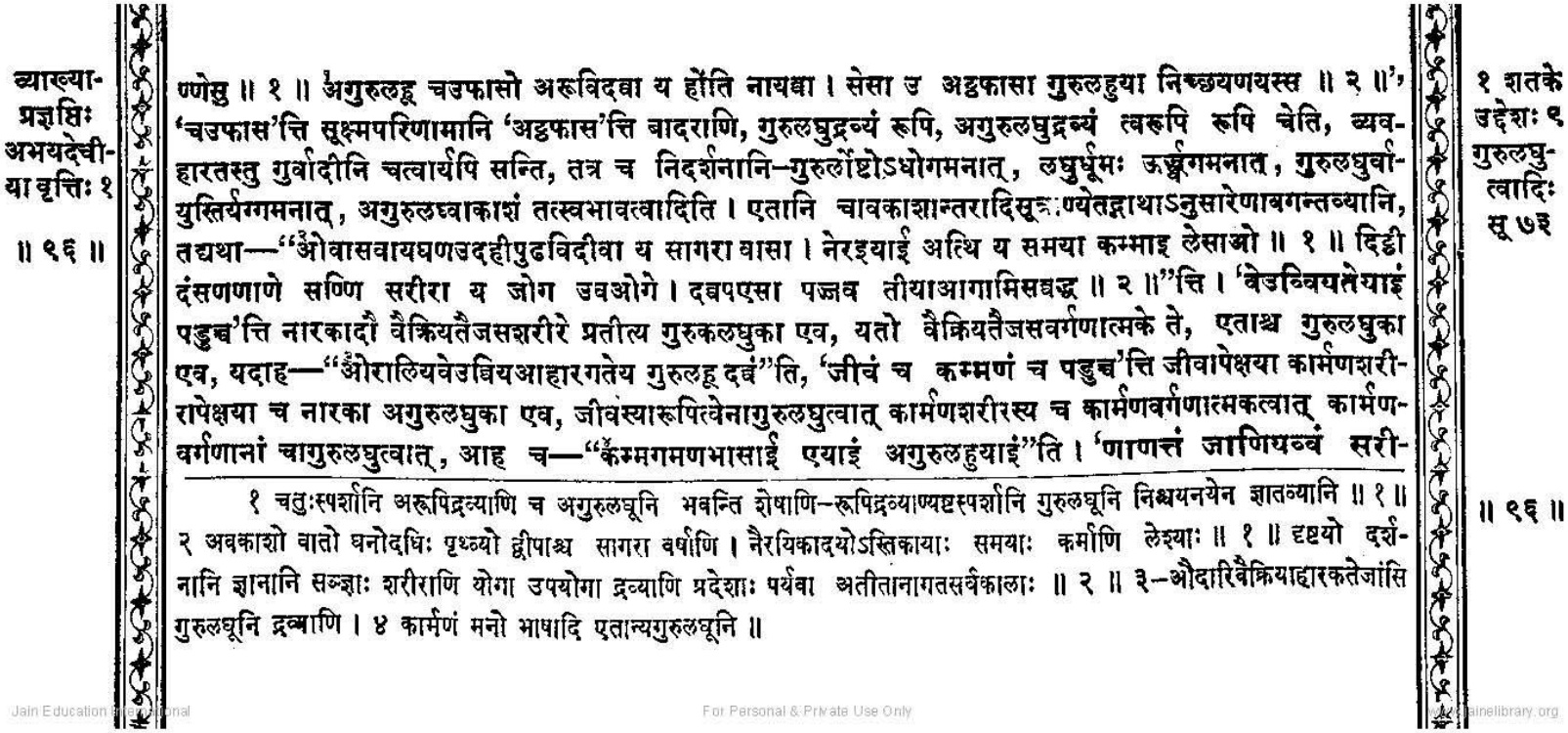
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! वेउव्वियतेयाइं पडुच्च नो गुरुया नो लहुया गुरुयलहुया नो अगुरुलहुया, जीवं च कम्मणं च पडुच्च नो गुरुया नो लहुया नो गुरुयलहुया अगुरुयलहुया, से तेणट्ठेणं जाव वेमाणिया, नवरं णाणत्तं जाणियव्वं सरीरेहिं। धम्मत्थिकाए जाव जीवत्थिकाए चउत्थपएणं। पोग्गलत्थिकाए णं भंते! किं गुरुए लहुए गुरुयलहुए अगुरुयलहुए ?, गोयमा ! णो गुरुए नो लहुए गुरुयलहुएवि अगुरुयलहुएवि, से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! गुरुयलहुयदव्वाइं पडुच्च नो गुरुए नो लहुए गुरुयलहुए नो अगुरुयलहुए, अगुरुयलहुयदव्वाइं पडुच्च नो गुरुए नो लहुए नो गुरुयलहुए अगुरुयलहुए, समया कम्माणि य चउत्थपदेणं। कण्हलेसा णं भंते ! किं गुरुया जाव अगुरुयलहुया ?, गोयमा ! नो गुरुया नो लहुया गुरुयलहुयावि अगुरुयलहुयावि, से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! दव्वलेसं पडुच्च ततियपदेणं भावलेसं पडुच्च चउत्थपदेणं, एवं जाव सुक्कलेसा, दिट्ठीदंसणनाणअन्नाणसण्णा चउत्थपदेणं णेयव्वाओ, हेट्ठिल्ला चत्तारि सरीरा नायव्वा ततियपदेणं, कम्म य चउत्थयपएणं, मणजोगो वइजोगो चउत्थएणं पदेणं, कायजोगो ततिएणं पदेणं, सागारोवओगो अणागारोवओगो चउत्थपदेणं, सव्वपदेसा सव्वदव्वा सव्वपज्जवा जहा पोग्गलत्थिकाओ, तीतद्धा अणागयद्धा सव्वद्धा चउत्थएणं पदेणं ॥ (सू० ७३)॥

इह चेयं गुरुलघुव्यवस्था—"निच्छयओ सव्वगुरुं सव्वलहुं वा न विज्जए दव्वं। ववहारओ उ जुज्जइ बायरखंधेसु नऽ-

१ निश्चयतः सर्वगुरु सर्वलघु वा द्रव्यं न विद्यते। व्यवहारतस्तु बादरस्कन्धेषु युज्यते गुरुत्वं लघुत्वं च नान्येषु ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥ ९६ ॥

ण्णेसु ॥ १ ॥ अगुरुलहू चउफासो अरूविदव्वा य होंति नायव्वा । सेसा उ अट्ठफासा गुरुलहुया निच्छयणयस्स ॥ २ ॥', 'चउफास'त्ति सूक्ष्मपरिणामानि 'अट्ठफास'त्ति बादराणि, गुरुलघुद्रव्यं रूपि, अगुरुलघुद्रव्यं त्वरूपि रूपि चेति, व्यवहारतस्तु गुर्वादीनि चत्वार्यपि सन्ति, तत्र च निदर्शनानि–गुरुर्लोष्टोऽधोगमनात्, लघुर्धूमः ऊर्ध्वगमनात्, गुरुलघुर्वायुस्तिर्यग्गमनात्, अगुरुलघ्वाकाशं तत्स्वभावत्वादिति । एतानि चावकाशान्तरादिसूत्राण्येतद्गाथाऽनुसारेणावगन्तव्यानि, तद्यथा—"ओवासवायघणउदहीपुढविदीवा य सागरा वासा । नेरइयाई अत्थि य समया कम्माइ लेसाओ ॥ १ ॥ दिट्ठी दंसणणाणे सण्णि सरीरा य जोग उवओगे । दव्वपएसा पज्जव तीयाआगामिसद्धं ॥ २ ॥"त्ति । 'वेउव्वियतेयाइं पडुच्च'त्ति नारकादौ वैक्रियतैजसशरीरे प्रतीत्य गुरुकलघुका एव, यतो वैक्रियतैजसवर्गणात्मके ते, एताश्च गुरुलघुका एव, यदाह—"ओरालियवेउव्वियआहारगतेय गुरुलहू दव्वं"ति, 'जीवं च कम्मणं च पडुच्च'त्ति जीवापेक्षया कार्मणशरीरापेक्षया च नारका अगुरुलघुका एव, जीवस्यारूपित्वेनागुरुलघुत्वात् कार्मणशरीरस्य च कार्मणवर्गणात्मकत्वात् कार्मणवर्गणानां चागुरुलघुत्वात्, आह च—"कम्मगमणभासाई एयाइं अगुरुलहुयाइं"ति । 'णाणत्तं जाणियव्वं सरी-

१ चतुःस्पर्शानि अरूपिद्रव्याणि च अगुरुलघूनि भवन्ति शेषाणि–रूपिद्रव्याण्यष्टस्पर्शानि गुरुलघूनि निश्चयनयेन ज्ञातव्यानि ॥ १ ॥ २ अवकाशो वातो घनोदधिः पृथ्व्यो द्वीपाश्च सागरा वर्षाणि । नैरयिकादयोऽस्तिकायाः समयाः कर्माणि लेश्याः ॥ १ ॥ दृष्टयो दर्शनानि ज्ञानानि सञ्ज्ञाः शरीराणि योगा उपयोगा द्रव्याणि प्रदेशाः पर्यवा अतीतानागतसर्वकालाः ॥ २ ॥ ३–औदारिवैक्रियाहारकतेजांसि गुरुलघूनि द्रव्याणि । ४ कार्मणं मनो भाषादि एतान्यगुरुलघूनि ॥

१ शतके उद्देशः ९ गुरुलघुत्वादिः सू ७३ ॥ ९६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रेहिं'ति, यस्य यानि शरीराणि भवन्ति तस्य तानि ज्ञात्वाऽसुरादिसूत्राण्यध्येयानीतिहृदयं, तत्रासुरादिदेवा नारकवद्वाच्याः, पृथिव्यादयस्तु औदारिकतैजसे प्रतीत्य गुरुलघवो जीवं कार्मणं च प्रतीत्यागुरुलघवः इति, वायवस्तु औदारिकवैक्रियतैजसानि प्रतीत्य गुरुलघवः, एवं पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोऽपि, मनुष्यास्त्वौदारिकवैक्रियतैजसाहारकाणि प्रतीत्येति। 'धम्मत्थिकाए'त्ति, इह यावत्करणाद् 'अहम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए'त्ति दृश्यं 'चउत्थपएणं'ति एते 'अगुरुलहु' इत्यनेन पदेन वाच्याः, शेषाणां तु निषेधः कार्यो, धर्मास्तिकायादीनामरूपितयाऽगुरुलघुत्वादिति ॥ पुद्गलास्तिकायसूत्रे उत्तरं निश्चयनयाश्रयम्, एकान्तगुरुलघुनोस्तन्मतेनाभावात् 'गरुलहुयदव्वाइं'ति औदारिकादीनि चत्वारि 'अगुरुलहुयदव्वाइं'ति कार्मणादीनि ३ ॥ 'समया कम्माणि य चउत्थपएणं'ति समयाः–अमूर्त्ताः कर्माणि च–कार्मणवर्गणात्मकानीत्यगुरुलघुत्वमेषां। 'दव्वलेसं पडुच्च तइयपएणं'ति द्रव्यतः कृष्णलेश्या औदारिकादिशरीरवर्णः औदारिकादिकं च गुरुलघ्वितिकृत्वाऽनेन तृतीयविकल्पेन व्यपदेश्या, भावलेश्या तु जीवपरिणतिस्तस्याश्चामूर्त्तत्वादगुरुलघ्वित्यनेन व्यपदेश इत्यत आह—'भावलेसं पडुच्च चउत्थपदेणं'ति। 'दिट्ठीदंसणे'त्यादि, दृष्ट्यादीनि जीवपर्यायत्वेनागुरुलघुत्वादगुरुलघुलक्षणेन चतुर्थपदेन वाच्यानि। अज्ञानपदं त्विह ज्ञानविपक्षत्वादधीतम्, अन्यथा द्वारेषु ज्ञानपदमेव दृश्यते। 'हेट्ठिल्लए'त्ति औदारिकादीनि 'तइयपएणं'ति गुरुलघुपदेन, गुरुलघुवर्गणात्मकत्वात्। 'कम्मय चउत्थपएणं'ति अगुरुलघुद्रव्यात्मकत्वात् कार्मणशरीराणां, मनोयोगवाग्योगौ चतुर्थपदेन वाच्यौ, तद्द्रव्याणामगुरुलघुत्वात्, काययोगः कार्मणवर्जस्तृतीयेन, गुरुलघुत्वात्तद्द्रव्याणामिति। 'सव्वदव्वे'त्यादि, 'सर्वद्रव्याणि' धर्मास्तिकायादीनि 'सर्वप्रदेशाः' तेषामेव निर्विभागा अंशाः 'सर्वपर्यवाः' वर्णोपयोगादयो द्रव्य-

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१

॥ ९७ ॥

धर्म्माः, एते पुद्गलास्तिकायवद् व्यपदेश्याः, गुरुलघुत्वेनागुरुलघुत्वेन चेत्यर्थः, यतः सूक्ष्माण्यमूर्त्तानि च द्रव्याण्यगुरुलघूनि, इतराणि तु गुरुलघूनि, प्रदेशपर्यवास्तु तत्तद्द्रव्यसम्बन्धित्वेन तत्तत्स्वभावा इति ॥ गुरुलघुत्वाधिकारादिदमाह—

से नूणं भंते ! लाघवियं अप्पिच्छा अमुच्छा अगेही अपडिबद्धया समणाणं णिग्गंथाणं पसत्थं ?, हंता गोयमा ! लाघवियं जाव पसत्थं ॥ से नूणं भंते ! अकोहत्तं अमाणत्तं अमायत्तं अलोभत्तं समणाणं निग्गंथाणं पसत्थं ?, हंता गोयमा ! अकोहत्तं अमाणत्तं जाव पसत्थं ॥ से नूणं भंते ! कंखापदोसे खीणे समणे निग्गंथे अंतकरे भवति अंतिमसारीरिए वा बहुमोहेवि य णं पुव्विं विहरित्ता अह पच्छा संवुडे कालं करेति तओ पच्छा सिज्झति ३ जाव अंतं करेइ ?, हंता गोयमा ! कंखापदोसे खीणे जाव अंतं करेति ॥ (सू० ७४)॥

'लाघवियं'ति लाघवमेव लाघविकम्–अल्पोपधिकम् 'अप्पिच्छ'त्ति अल्पोऽभिलाष आहारादिषु 'अमुच्छ'त्ति उपधावसंरक्षणानुबन्धः 'अगेहि'त्ति भोजनादिषु परिभोगकालेऽनासक्ति अप्रतिबद्धता–स्वजनादिषु स्नेहाभाव इत्येतत्पञ्चकमिति गम्यं, श्रमणानां निर्ग्रन्थानां 'प्रशस्तं' सुन्दरम्, अथवा लाघविकं प्रशस्तं, कथम्भूतमित्याह–'अप्पिच्छा' अल्पेच्छारूपमित्यर्थः, एवमितराण्यपि पदानि ॥ उक्ता लाघविकस्य प्रशस्तता, तच्च क्रोधाद्यभावाविनाभूतमिति क्रोधादिदोषाभावप्रशस्तताऽभिधानार्थं क्रोधादिदोषाभावाविनाभूतकाङ्क्षाप्रदोषक्षयकार्याभिधानार्थं च क्रमेण सूत्रे, व्यक्ते च, नवरं काङ्क्षा–दर्शनान्तरग्रहो गृद्धिर्वा सैव प्रकृष्टो दोषः काङ्क्षाप्रदोषः काङ्क्षाप्रद्वेषं वा, रागद्वेषाविति यर्थः॥ काङ्क्षाप्रदोषः प्रागुक्तः, प्रदोषत्वं च काङ्क्षायास्तद्विषयभूतदर्शनान्तरस्य विपर्यस्तत्वादिति दर्शनान्तरस्य विपर्यस्ततां दर्शयन्नाह—

१ शतके उद्देशः ९ गुरुलघुद्रव्या०सू७३ लाघविकंप्रशस्तं सू ७४

॥ ९७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अण्णउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति एवं भासेंति एवं पण्णवेंति एवं परूवेंति–एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो आउयाइं पकरेति, तंजहा–इहभवियाउयं च परभवियाउयं च, जं समयं इहभवियाउयं पकरेति तं समयं परभवियाउयं पकरेति, जं समयं परभवियाउयं पकरेति तं समयं इहभवियाउयं पकरेति, इहभवियाउयस्स पकरणयाए परभवियाउयं पकरेइ, परभवियाउयस्स पकरणयाए इहभवियाउयं पकरेति, एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो आउयाइं पकरेति, तं०–इहभवियाउयं च परभवियाउयं च, से कहमेवं भंते ! एवं ?, खलु गोयमा ! जण्णं ते अण्णउत्थिया एवमातिक्खंति जाव परभवियाउयं च, जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु, अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि–एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं आउयं पकरेति, तं०–इहभवियाउयं वा परभवियाउयं वा, जं समयं इहभवियाउयं पकरेति णो तं समयं परभवियाउयं पकरेति, जं समयं परभवियाउयं पकरेइ णो तं समयं इहभवियाउयं पकरेइ, इहभवियाउयस्स पकरणताए णो परभवियाउयं पकरेति, परभवियाउयस्स पकरणताए णो इहभवियाउयं पकरेति, एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं आउयं पकरेति, तं०–इहभवियाउयं वा परभवियाउयं वा, सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति भगवं गोयमे जाव विहरति ॥ (सू० ७५) ॥

'अण्णउत्थिए'इत्यादि, अन्ययूथं–विवक्षितसङ्घादपरः सङ्घस्तदस्ति येषां तेऽन्ययूथिकाः, तीर्थान्तरीया इत्यर्थः, 'एवम्'इति वक्ष्यमाणम् 'आइक्खंति'त्ति आख्यान्ति सामान्यतः 'भासंति'त्ति विशेषतः 'पण्णवेंति'त्ति उपपत्तिभिः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७५]

दीप अनुक्रम [९७]

'परूवेंति'ति भेदकथनतः, द्वयोर्जीवयोरेकस्य वा समयभेदेनायुर्द्वयकरणे नास्ति विरोध इत्युक्तम्—'एगे जीवे'इत्यादि, 'दो आउयाइं पकरेइ'त्ति जीवो हि स्वपर्यायसमूहात्मकः, स च यदैकमायुःपर्यायं करोति तदाऽन्यमपि करोति, स्वपर्यायत्वात्, ज्ञानसम्यक्त्वपर्यायवत्, स्वपर्यायकर्त्तृत्वं च जीवस्याभ्युपगन्तव्यमेव, अन्यथा सिद्धत्वादिपर्यायाणामनुत्पादप्रसङ्ग इति भावः, उक्तार्थस्यैव भावनार्थमाह–'जमि'त्यादि, विभक्तिविपरिणामाद् यस्मिन् समये इहभवो–वर्त्तमानभवो यत्रायुषि विद्यते फलतयैतदिहभवायुः, एवं परभवायुरपि, अनेन चेहभवायुःकरणसमये परभवायुःकरणं नियमितम्, अथ परभवायुःकरणसमये इहभवायुःकरणं नियमयन्नाह–'जं समयं परभवियाउयं'मित्यादि, एवमेकसमयकार्यतां द्वयोरप्यभिधायैककियाकार्यतामाह—'इहभवियाउयस्से'त्यादि, 'पकरणयाए'त्ति करणेन 'एवं खलु'इत्यादि निगमनं। 'जण्णं ते अण्णउत्थिया एवमाइक्खंती'त्याद्यनुवादवाक्यस्यान्ते तत् प्रतीतं न केवलमित्ययं वाक्यशेषो दृश्यः, 'जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु'त्ति तत्र 'आहंसु'त्ति उक्तवन्तः, यच्चायं वर्त्तमाननिर्देशेऽधिकृतेऽतीतनिर्देशः स सर्वो वर्त्तमानः (नका) कालोऽतीतो भवतीत्यस्यार्थस्य ज्ञापनार्थः, मिथ्यात्वं चास्यैवम्–एकेनाध्यवसायेन विरुद्धयोरायुषोर्बन्धायोगात्, यच्चोच्यते–पर्यायान्तरकरणे पर्यायान्तरं करोति, स्वपर्यायत्वादिति, तदनैकान्तिकं, सिद्धत्वकरणे संसारित्वाकरणादिति । टीकाकारव्याख्यानं त्विहभवायुर्यदा प्रकरोति–वेदयते इत्यर्थः परभवायुस्तदा प्रकरोति बध्नातीत्यर्थः, इहभवायुरुपभोगेन परभवायुर्बध्नातीत्यर्थः, मिथ्या चैतत्परमतं, यस्माज्जातमात्रो जीव इहभवा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७५]

दीप अनुक्रम [९७]

युर्वेदयते, तदैव तेन यदि परभवायुर्बद्धं तदा दानाध्ययनादीनां वैयर्थ्यं स्यादिति, एतच्चायुर्बन्धकालादन्यत्रावसेयम्, अन्यथाऽऽयुर्बन्धकाले इहभवायुर्वेदयते परभवायुस्तु प्रकरोत्येवेति ॥ अन्ययूथिकप्रस्तावादिदमाह—

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिज्जे कालासवेसियपुत्ते णामं अणगारे जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छति २ त्ता थेरे भगवंते एवं वयासी–थेरा सामाइयं ण जाणंति थेरा सामाइयस्स अट्ठं ण याणंति थेरा पच्चक्खाणं ण याणंति थेरा पच्चक्खाणस्स अट्ठं ण याणंति थेरा संजमं ण याणंति थेरा संजमस्स अट्ठं ण याणंति थेरा संवरं ण याणंति थेरा संवरस्स अट्ठं ण याणंति थेरा विवेगं ण याणंति थेरा विवेगस्स अट्ठं ण याणंति थेरा विउस्सग्गं ण याणंति थेरा विउस्सग्गस्स अट्ठं ण याणंति ६ । तए णं ते थेरा भगवंतो कालासवेसियपुत्तं अणगारं एवं वयासी–जाणामो ण अज्जो ! सामाइयं जाणामो णं अज्जो ! सामाइयस्स अट्ठं जाव जाणामो णं अज्जो ! विउस्सगस्स अट्ठं । तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते एवं वयासी— जति णं अज्जो ! तुब्भे जाणह सामाइयं जाणह सामाइयस्स अट्ठं जाव जाणह विउस्सग्गस्स अट्ठं किं भे अज्जो ! सामाइए किं भे अज्जो सामाइयस्स अट्ठे? जाव किं भे विउस्सगस्स अट्ठे ?, तए णं ते थेरा भगवंतो कालासवेसियपुत्तं अणगारं एवं वयासी–आया णे अज्जो ! सामाइए आया णे अज्जो ! सामाइयस्स अट्ठे जाव विउस्सग्गस्स अट्ठे । तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते एवं वयासी–'जति भे अज्जो ! आया सामाइए आया सामाइयस्स अट्ठे एवं जाव आया विउस्सग्गस्स अट्ठे अवहट्टु कोहमाणमायालोभे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कालासवैशिक-अनगारस्य प्रश्नाः एवं स्थवीरस्य उत्तराणि

किमट्ठं अज्जो ! गरहह ?, कालास० संजमट्ठयाए, से भंते ! किं गरहा संजमे अगरहा संजमे ?, कालास० गरहा संजमे नो अगरहासंजमे, गरहावि य णं सव्वं दोसं पविणेति सव्वं बालियं परिण्णाए, एवं खु णे आया संजमे उवहिए भवति, एवं खु णे आया संजमे उवचिए भवति, एवं खु णे आया संजमे उवट्ठिए भवति, एत्थ णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे संबुद्धे थेरे भगवंते वंदति णमंसति २ एवं वयासी–एएसि णं भंते ! पयाणं पुव्विं अण्णाणयाए असवणयाए अबोहियाए अणभिगमेणं अदिट्ठाणं असुयाणं असुयाणं अविण्णायाणं अव्वोगडाणं अव्वोच्छिन्नाणं अणिज्जूढाणं अणुवधारियाणं एयमट्ठं णो सद्दहिए णो पत्तिइए णो रोइए इयाणिं भंते ! एतेसिं पयाणं जाणणयाए सवणयाए बोहीए अभिगमेणं दिट्ठाणं सुयाणं सुयाणं विण्णायाणं वोगडाणं वोच्छिन्नाणं णिज्जूढाणं उवधारियाणं एयमट्ठं सद्दहामि पत्तियामि रोएमि एवमेयं से जहेयं तुब्भे वदह, तए णं ते थेरा भगवंतो कालासवेसियपुत्तं अणगारं एवं वयासी–सद्दहाहि अज्जो ! पत्तियाहि अज्जो ! रोएहि अज्जो ! से जहेयं अम्हे वदामो। तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंतो वंदइ नमंसइ २ एवं वदासी–इच्छामि णं भंते ! तुब्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए, अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं। तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणइ जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे मुंडभावे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कालासवैशिक-अनगारस्य प्रश्ना: एवं स्थवीरस्य उत्तराणि

प्रत सूत्रांक [७६]

दीप अनुक्रम [९८]

अण्हाणयं अदंतधुवणयं अच्छत्तयं अणोवाहणयं भूमिसेज्जा फलहसेज्जा कट्ठसेज्जा केसलोओ बंभचेरवासो परघरपवेसो लद्धावलद्धी उच्चावया गामकंटगा बावीसं परिसहोवसग्गा अहियासिज्जंति तमट्ठं आराहेइ २ चरिमेहिं उस्सासनीसासेहिं सिद्धे बुद्धे मुक्के परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे ॥ (सू० ७६) ॥

'पासावच्चिज्जे'त्ति पार्श्वापत्यानां–पार्श्वजिनशिष्याणामयं पार्श्वापत्यीयः 'थेरे'ति श्रीमन्महावीरजिनशिष्याः श्रुतवृद्धाः 'सामाइयं'ति समभावरूपं 'न याणंति'त्ति न जानन्ति, सूक्ष्मत्वात्तस्य, 'सामाइयस्स अट्ठं'ति प्रयोजनं कर्मानुपादाननिर्जरणरूपं, 'पच्चक्खाणं'ति पौरुष्यादिनियमं, तदर्थं च–आश्रवद्वारनिरोधं, 'संजमं'ति पृथिव्यादिसंरक्षणलक्षणं, तदर्थं च–अनाश्रवत्वं, 'संवरं'ति इन्द्रियनोइन्द्रियनिवर्त्तनं, तदर्थं तु–अनाश्रवत्वमेव, 'विवेगं'ति विशिष्टबोधं, तदर्थं च–त्याज्यत्यागादिकं, 'विउस्सग्गं'ति व्युत्सर्गं कायादीनां, तदर्थं चानभिष्वङ्गताम्, 'अज्जो!'त्ति हे आर्य!, ओकारान्तता सम्बोधने प्राकृतत्वात्, 'किं भे'त्ति किं भवतामित्यर्थः, 'आया णे'त्ति आत्मा नः–अस्माकं मते सामायिकमिति, यदाह–"जीवो गुणपडिवण्णो नयस्स दव्वट्ठियस्स सामइयं"ति, सामायिकार्थोऽपि जीव एव, कर्मानुपादानादीनां जीवगुणत्वात् जीवाव्यतिरिक्तत्वाच्च तद्गुणानामिति। एवं प्रत्याख्यानाद्यप्यवगन्तव्यम्। 'जइ भे अज्जो'त्ति यदि भवतां हे आर्याः! स्थविराः सामायिकमात्मा तदा 'अवहट्टु'त्ति अपहृत्य त्यक्त्वा क्रोधादीन् किमर्थं गर्हध्वे? 'निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि'इति वचनात् क्रोधादीनेव अथवा 'अवज्ज'मिति गम्यते, अयमभिप्रायः–यः सामायिकवान् त्यक्तक्रोधादिश्च स कथं किमपि निन्दति?, निन्दा हि

१ गुणप्रतिपन्नो जीवो द्रव्यार्थिकस्य नयस्य मतेन सामायिकम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कालासवैशिक-अनगारस्य प्रश्नाः एवं स्थवीरस्य उत्तराणि

किल द्वेषसम्भवेति, अत्रोत्तरं–संयमार्थमिति, अवद्ये गर्हिते संयमो भवति, अवद्यानुमतेर्व्यवच्छेदनात्, तथा गर्हा संयमः, तद्धेतुत्वात्, न केवलमसौ गर्हा कर्मानुपादानहेतुत्वात्संयमो भवति, 'गरहाविं'ति गर्हैव च सर्वं 'दोसं'ति दोषं–रागादिकं पूर्वकृतं पापं वा द्वेषं वा 'प्रविनयति' क्षपयति, किं कृत्वा? इत्याह–'सव्वं बालियं'ति बाल्यं–बालतां मिथ्यात्वमविरतिं च 'परिण्णाए'त्ति 'परिज्ञाय'ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया च प्रत्याख्यायेति, इह च गर्हायास्तद्धतश्चाभेदादेककर्तृकत्वेन परिज्ञायेत्यत्र क्त्वाप्रत्ययविधिरदुष्ट इति, 'एवं खु'त्ति एवमेव 'णे'इत्यस्माकम् 'आया संजमे उवहिए'त्ति उपहितः प्रक्षिप्तो न्यस्तो भवति, अथवाऽऽत्मरूपः संयमः 'उपहितः' प्राप्तो भवति, 'आया संजमे उवचिए'त्ति आत्मा संयम-विषये पुष्टो भवति आत्मरूपो वा संयम उपचितो भवति, 'उवट्ठिए'त्ति 'उपस्थितः' अत्यन्तावस्थायी ॥ 'एएसि णं भंते ! पयाणं'इत्यस्य 'अदिट्ठाणं'मित्यादिना सम्बन्धः, कथमदृष्टानामित्याह—'अन्नाणयाए'त्ति अज्ञानो–निर्ज्ञान-स्तस्य भावोऽज्ञानता तयाऽज्ञानतया, स्वरूपेणानुपलम्भादित्यर्थः, एतदेव कथमित्याह–'असवणयाए'त्ति अश्रवणः–श्रुतिवर्जितस्तद्भावस्तत्ता तया 'अबोहीए'त्ति अबोधिः–जिनधर्मानवाप्तिः, इह तु प्रक्रमान्महावीरजिनधर्मानवाप्तिस्तया, अथवौत्पत्तिक्यादिबुद्ध्यभावेन, 'अणभिगमेणं'ति विस्तरबोधाभावेन हेतुना 'अदृष्टानां' साक्षात्स्वयमनुपलब्धानाम् 'अश्रुतानाम्' अन्यतोऽनाकर्णितानाम् 'अस्मुयाणं'ति 'अस्मृतानां दर्शनाकर्णनाभावेनाननुध्यातानाम्, अत एव 'अवि-ज्ञातानां' विशिष्टबोधाविषयीकृतानाम्, एतदेव कुत इत्याह–'अव्वोकडाणं'ति अव्याकृतानां विशेषतो गुरुभिरना-ख्यातानाम्, 'अव्वोच्छिण्णाणं'ति विपक्षादव्यवच्छेदितानाम्, 'अनिज्जूहाणं'ति महतो ग्रन्थात्सुखावबोधाय सङ्क्षेप-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कालासवैशिक-अनगारस्य प्रश्नाः एवं स्थवीरस्य उत्तराणि

निमित्तमनुग्रहपरगुरुभिरनुद्भूतानाम्, अत एवास्माभिः 'अनुपधारितानाम्' अनवधारितानाम् 'एयमट्ठे'त्ति एवंप्रकारोऽर्थः अथवाऽयमर्थः 'नो सद्दहिए'त्ति न श्रद्धितः 'नो पत्तिए'त्ति 'नो' नैव 'पत्तियं'ति प्रीतिरुच्यते तद्योगात् 'पत्तिए'त्ति प्रीतः–प्रीतिविषयीकृतः, अथवा न प्रीतितः न प्रत्ययितो वा हेतुभिः,'नो रोइए'त्ति न चिकीर्षितः 'एवमेयं से जहेयं तुब्भे वयह'त्ति अथ यथैतद्वस्तु यूयं वदथ एवमेतद्वस्त्विति भावः। 'चाउज्जामाउ'त्ति चतुर्महाव्रतात्, पार्श्वनाथजिनस्य हि चत्वारि महाव्रतानि, नापरिगृहीता स्त्री भुज्यते इति मैथुनस्य परिग्रहेऽन्तर्भावादिति, 'सप्पडिक्कमणं' ति पार्श्वनाथधर्मो हि अप्रतिक्रमणः, कारण एव प्रतिक्रमणकरणादन्यथा त्वकरणात्, महावीरजिनस्य तु सप्रतिक्रमणः, कारणं विनाऽप्यवश्यं प्रतिक्रमणकरणादिति, 'देवाणुप्पिय'त्ति प्रियामन्त्रणं 'मा पडिबंधं'ति मा व्याघातं कुरुष्वेति गम्यम्। 'मुंडभावे'त्ति मुण्डभावो–दीक्षितत्वं 'फलगसेज्ज'त्ति प्रतलायतविष्कम्भवत्काष्ठरूपा 'कट्ठसेज्ज'त्ति असंस्कृतकाष्ठशयनं कष्टशय्या वाऽमनोज्ञा वसतिः 'लद्धावलद्धी'त्ति लब्धं च–लाभोऽपलब्धिश्च–अलाभोऽपरिपूर्णलाभो वा लब्धापलब्धिः 'उच्चावय'त्ति उच्चावचाः अनुकूलप्रतिकूला असमञ्जसा वा 'गामकंटय'त्ति ग्रामस्य–इन्द्रियसमूहस्य कण्टका इव कण्टका–बाधकाः शत्रवो ग्रामकण्टकाः, क एते इत्याह–'बावीसं परीसहोवसग्ग'त्ति परीषहाः–क्षुदादयस्त एवोपसर्गा–उपसर्जनात् धर्मभ्रंशनात् परीषहोपसर्गाः, अथवा द्वाविंशतिपरीषहाः, तथा उपसर्गा–दिव्यादयः ॥ कालस्यवैशिकपुत्रः प्रत्याख्यानक्रियया सिद्ध इति तद्विपर्ययभूताप्रत्याख्यानक्रियानिरूपणसूत्रम्—

भंतेत्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति २ एवं वदासी–से नूणं भंते ! सेट्ठियस्स य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥१०१॥

तणुयस्स य किवणस्स य खत्तियस्स य समं चेव अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ ?, हंता गोयमा ! सेट्ठियस्स य जाव अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ, से केणट्ठेणं भंते !?, गोयमा ! अविरतिं पडुच्च से तेण० गोयमा ! एवं वुच्-इ–सेट्ठियस्स य तणु० जाव कज्जइ ॥ (सू० ७७) ॥

तत्र 'भंते'त्ति हे भदन्त ! 'इति' एवमामन्त्र्येति शेषः, अथवा भदन्त ! इतिकृत्वा, गुरुरितिकृत्वेत्यर्थः, 'से-ट्ठियस्स'त्ति श्रीदेवताऽध्यासितसौवर्णपट्टविभूषितशिरोवेष्टनोपेतपौरजननायकस्य 'तणुयस्स'त्ति दरिद्रस्य 'किवणस्स'त्ति रङ्कस्य 'खत्तियस्स'त्ति राज्ञः 'अपच्चक्खाणकिरिय'त्ति प्रत्याख्यानक्रियाया अभावोऽप्रत्याख्यानजन्यो वा कर्म-बन्धः, 'अविरइं'ति इच्छाया अनिवृत्तिः, सा हि सर्वेषां समैवेति ॥ अप्रत्याख्यानक्रियायाः प्रस्तावादिदमाह—

आहाकम्मं भुंजमाणे समणे निग्गंथे किं बंधइ किं पकरेइ किं चिणाइ किं उवचिणाइ ?, गोयमा ! आहा-कम्मं णं भुंजमाणे आउयवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ सिढिलबंधणबद्धाओ धणियबंधणबद्धाओ पकरेइ जाव अणुपरियट्टइ, से केणट्ठेणं जाव अणुपरियट्टइ ?, गोयमा ! आहाकम्मं णं भुंजमाणे आयाए धम्मं अइक्कमइ आयाए धम्मं अइक्कममाणे पुढविक्कायं णावकंखइ जाव तसकायं णावकंखइ, जेसिंपि य णं जीवाणं सरीराइं आहारमाहारेइ तेवि जीवे नावकंखइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्इ–आहाकम्मं णं भुंजमाणे आउयवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ जाव अणुपरियट्टइ॥फासुएसणिज्जं भंते ! भुंजमाणे किं बंधइ जाव उवचिणाइ ?, गोयमा ! फासुएसणिज्जं णं भुंजमाणे आउयवज्जाओ सत्त कम्मपयडीओ धणियबंधणबद्धाओ सिढिलबंधणबद्धाओ पक-

१ शतके उद्देशः ९ अप्रत्याख्या नक्रियासा-म्यमीश्वरे तरयोः सू ७७

आधाकर्मे-तरभोगफ-लं सू ७८

॥१०१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आधाकर्म-भोग्यामाने दोषा:

रेइ जहा संवुडे णं, नवरं आउयं च णं कम्मं सिय बंधइ सिय नो बंधइ, सेसं तहेव जाव वीईवयइ, से केणट्ठेणं जाव वीईवयइ ?, गोयमा ! फासुएसणिज्जं भुंजमाणे समणे निग्गंथे आयाए धम्मं नो अइक्कमइ, आयाए धम्मं अणइक्कममाणे पुढविक्काइयं अवकंखति जाव तसकायं अवकंखइ, जेसिंपि य णं जीवाणं सरीराइं आहारेइ तेऽवि जीवे अवकंखति से तेणट्ठेणं जाव वीईवयइ ॥ (सू० ७८) ॥

'आहाकम्म'मित्यादि आधया–साधुप्रणिधानेन यत्सचेतनमचेतनं क्रियते अचेतनं वा पच्यते चीयते वा गृहादिकं व्यूयते वा वस्त्रादिकं तदाधाकर्म 'किं बंधइ'त्ति प्रकृतिबन्धमाश्रित्य सृष्टावस्थापेक्षया वा 'किं पकरेइ'त्ति स्थितिबन्धापेक्षया बद्धावस्थापेक्षया वा 'किं चिणाइ'त्ति अनुभागबन्धापेक्षया निधत्तावस्थाऽपेक्षया वा 'किं उवचिणाइ'त्ति प्रदेशबन्धापेक्षया निकाचनापेक्षया वेति, 'आयाए'त्ति आत्मना धर्मं श्रुतधर्मं चारित्रधर्मं वा 'पुढविकायं 'नावकंखइ'त्ति नापेक्षते, नानुकम्पत इत्यर्थः ॥ आधाकर्मविपक्षश्च प्रासुकैषणीयमिति प्रासुकैषणीयसूत्रम् ॥ अनन्तरसूत्रे संसारव्यतिव्रजनमुक्तं, तच्च कर्मणोऽस्थिरतया प्रलोटने सति भवतीत्यस्थिरसूत्रम्—

से नूणं भंते ! अथिरे पलोट्टइ नो थिरे पलोट्टति अथिरे भज्जइ नो थिरे भज्जइ सासए बालए बालियत्तं असासयं सासए पंडिए पंडियत्तं असासयं ?, हंता गोयमा ! अथिरे पलोट्टइ जाव पंडियत्तं असासयं सेवं भंते ! सेवं भंतेत्ति जाव विहरति ॥ (सू० ७९) ॥ नवमो उद्देसो समत्तो ॥ १–९ ॥

तत्र 'अथिरे'त्ति अस्थास्नु द्रव्यं लोष्टादि 'प्रलोटति' परिवर्त्तते अध्यात्मचिन्तायामस्थिरं कर्म तस्य जीवप्रदेशेभ्यः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिसमयचलनेनास्थिरत्वात् 'प्रलोटयति' बन्धोदयनिर्जरणादिपरिणामैः परिवर्त्तते 'स्थिरं' शिलादि न प्रलोटयति, अध्यात्मचिन्तायां तु स्थिरो जीवः, कर्मक्षयेऽपि तस्यावस्थितत्वात्, नासौ 'प्रलोटयति' उपयोगलक्षणस्वभावान्न परिवर्त्तते, तथा 'अस्थिरं' भङ्गुरस्वभावं तृणादि 'भज्यते' विदलयति, अध्यात्मचिन्तायामस्थिरं कर्म तद् 'भज्यते' व्यपैति, तथा 'स्थिरम्' अभङ्गुरमयःशलाकादि न भज्यते, अध्यात्मचिन्तायां स्थिरो जीवः स च न भज्यते शाश्वतत्वादिति। जीव-प्रस्तावादिदमाह–'सासए बालए'त्ति बालको व्यवहारतः शिशुर्निश्चयतोऽसंयतो जीवः स च शाश्वतो द्रव्यत्वात्, 'बालियत्तं'ति इहेकप्रत्ययस्य स्वार्थिकत्वाद्बालत्वं व्यवहारतः शिशुत्वं निश्चयतस्त्वसंयतत्वं तच्चाशाश्वतं पर्यायत्वादिति। एवं पण्डितसूत्रमपि, नवरं पण्डितो व्यवहारेण शास्त्रज्ञो जीवः निश्चयतस्तु संयत इति ॥ प्रथमशते नवमः ॥ १–९ ॥

अनन्तरोद्देशकेऽस्थिरं कर्मेत्युक्तं, कर्मादिषु च कुतीर्थिका विप्रतिपद्यन्ते अतस्तद्विप्रतिपत्तिनिरासप्रतिपादनार्थः तथ सङ्ग्रहण्यां'चलणाउ'त्ति यदुक्तं तत्प्रतिपादनार्थश्च दशमोद्देशको व्याख्यायते, तत्र च सूत्रं—

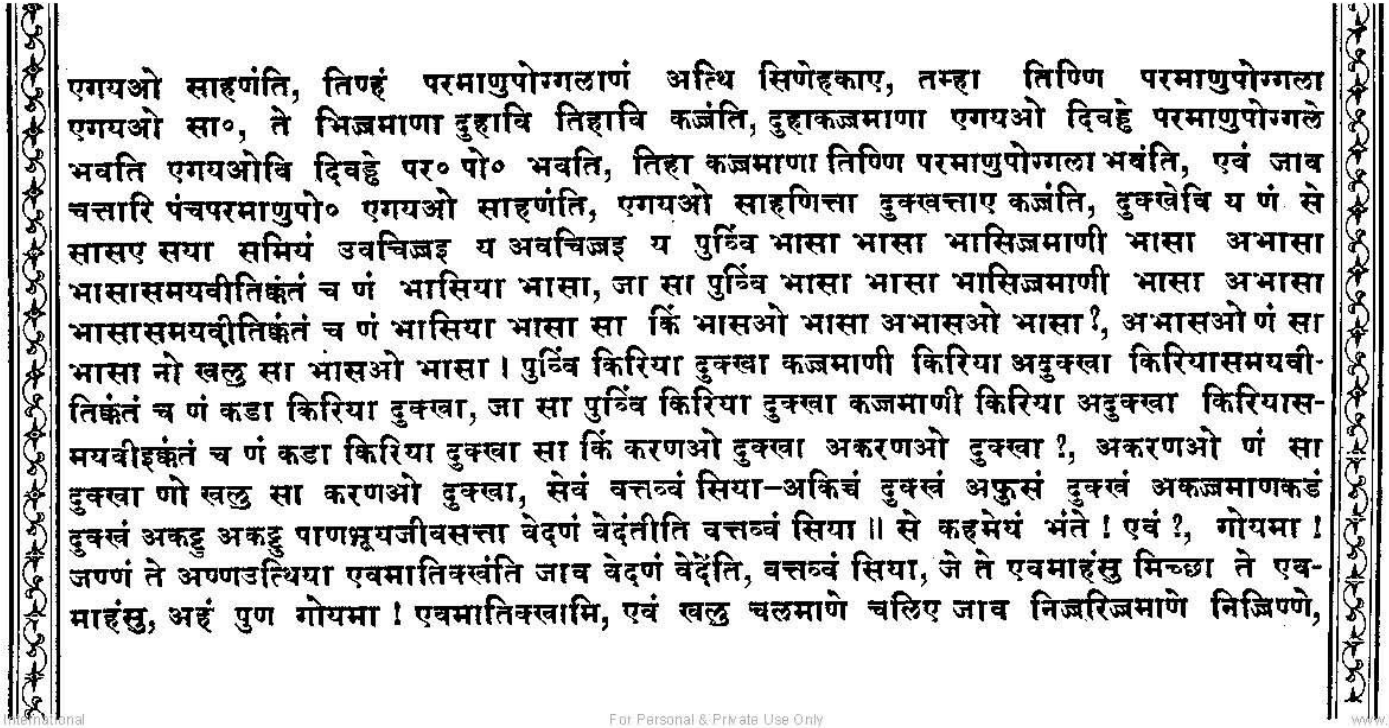
अन्नउत्थिया णं भंते! एवमाइक्खंति जाव एवं परूवेंति–एवं खलु चलमाणे अचलिए जाव निज्जरिज्जमाणे अणिज्जिण्णे, दो परमाणुपोग्गला एगयओ न साहणंति, कम्हा दो परमाणुपोग्गला एगततो न साहणंति?, दोण्हं परमाणुपोग्गलाणं नत्थि सिणेहकाए, तम्हा दो परमाणुपोग्गला एगयओ न साहणंति, तिन्नि परमाणुपोग्गला एगयओ साहणंति, कम्हा? तिन्नि परमाणुपोग्गला

॥१०२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

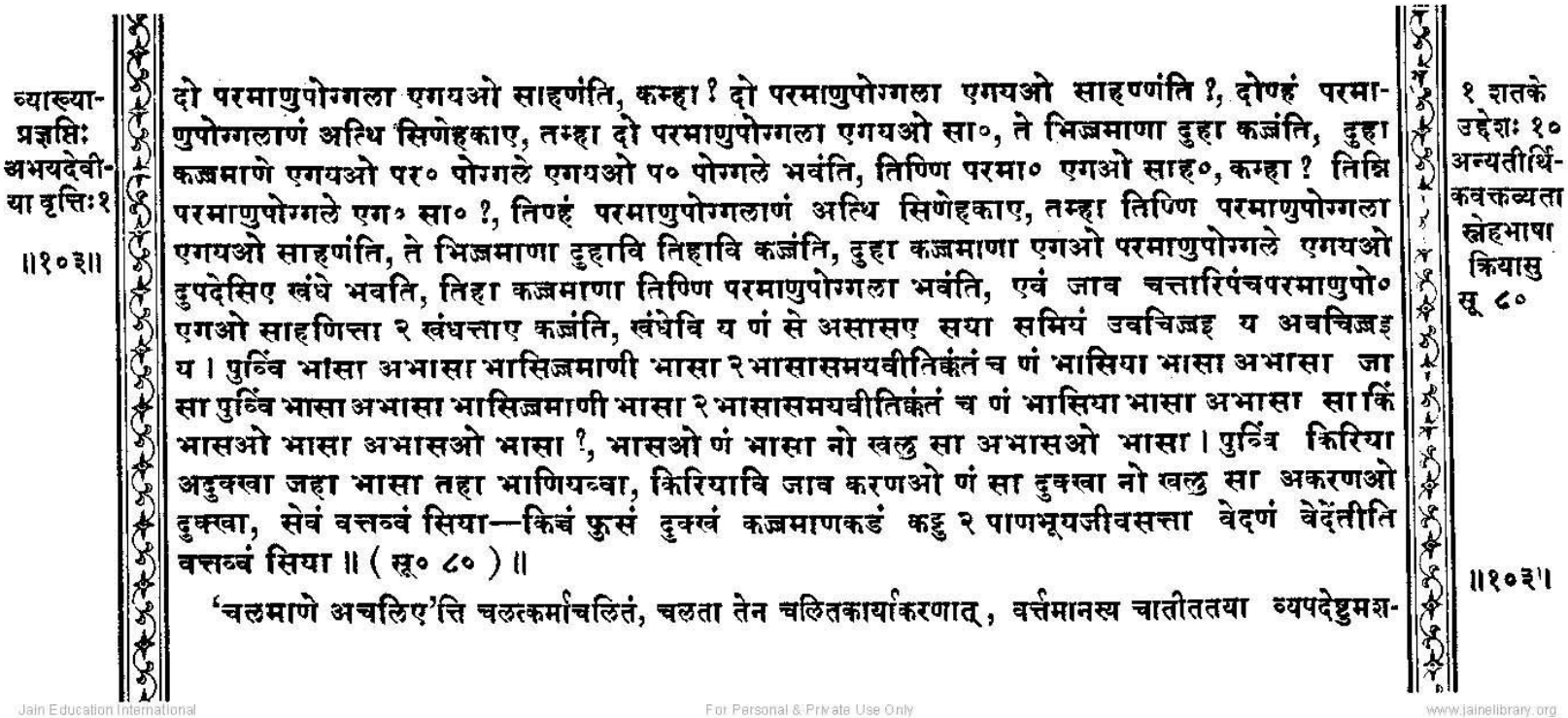
अत्र प्रथम-शतके नवम-उद्देशक: समाप्त:

अथ प्रथम-शतके दशम-उद्देशक: आरभ्यते



एगयओ साहणंति, तिण्हं परमाणुपोग्गलाणं अत्थि सिणेहकाए, तम्हा तिण्णि परमाणुपोग्गला एगयओ सा०, ते भिज्जमाणा दुहावि तिहावि कज्जंति, दुहाकज्जमाणा एगयओ दिवड्ढे परमाणुपोग्गले भवति एगयओवि दिवड्ढे पर० पो० भवति, तिहा कज्जमाणा तिण्णि परमाणुपोग्गला भवंति, एवं जाव चत्तारि पंचपरमाणुपो० एगयओ साहणंति, एगयओ साहणित्ता दुक्खत्ताए कज्जंति, दुक्खेवि य णं से सासए सया समियं उवचिज्जइ य अवचिज्जइ य पुव्विं भासा भासा भासिज्जमाणी भासा अभासा भासासमयवीतिक्कंतं च णं भासिया भासा, जा सा पुव्विं भासा भासा भासिज्जमाणी भासा अभासा भासासमयवीतिक्कंतं च णं भासिया भासा सा किं भासओ भासा अभासओ भासा?, अभासओ णं सा भासा नो खलु सा भासओ भासा। पुव्विं किरिया दुक्खा कज्जमाणी किरिया अदुक्खा किरियासमयवीतिक्कंतं च णं कडा किरिया दुक्खा, जा सा पुव्विं किरिया दुक्खा कज्जमाणी किरिया अदुक्खा किरियासमयवीइक्कंतं च णं कडा किरिया दुक्खा सा किं करणओ दुक्खा अकरणओ दुक्खा?, अकरणओ णं सा दुक्खा णो खलु सा करणओ दुक्खा, सेवं वत्तव्वं सिया–अकिच्चं दुक्खं अफुसं दुक्खं अकज्जमाणकडं दुक्खं अकट्टु अकट्टु पाणभूयजीवसत्ता वेदणं वेदंतीति वत्तव्वं सिया॥ से कहमेयं भंते! एवं?, गोयमा! जण्णं ते अण्णउत्थिया एवमातिक्खंति जाव वेदणं वेदेंति, वत्तव्वं सिया, जे ते एवमाहंसु मिच्छा ते एवमाहंसु, अहं पुण गोयमा! एवमातिक्खामि, एवं खलु चलमाणे चलिए जाव निज्जरिज्जमाणे निज्जिण्णे,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१ ॥१०३॥

दो परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति, कम्हा ? दो परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति ?, दोण्हं परमाणुपोग्गलाणं अत्थि सिणेहकाए, तम्हा दो परमाणुपोग्गला एगयओ सा०, ते भिज्जमाणा दुहा कज्जंति, दुहा कज्जमाणे एगयओ पर० पोग्गले एगयओ प० पोग्गले भवंति, तिण्णि परमा० एगओ साह०, कम्हा ? तिन्नि परमाणुपोग्गले एग० सा० ?, तिण्हं परमाणुपोग्गलाणं अत्थि सिणेहकाए, तम्हा तिण्णि परमाणुपोग्गला एगयओ साहणंति, ते भिज्जमाणा दुहावि तिहावि कज्जंति, दुहा कज्जमाणा एगओ परमाणुपोग्गले एगयओ दुपदेसिए खंधे भवति, तिहा कज्जमाणा तिण्णि परमाणुपोग्गला भवंति, एवं जाव चत्तारिपंचपरमाणुपो० एगओ साहणित्ता २ खंधत्ताए कज्जंति, खंधेवि य णं से असासए सया समियं उवचिज्जइ य अवचिज्जइ य । पुव्विं भासा अभासा भासिज्जमाणी भासा २ भासासमयवीतिक्कंतं च णं भासिया भासा अभासा जा सा पुव्विं भासा अभासा भासिज्जमाणी भासा २ भासासमयवीतिक्कंतं च णं भासिया भासा अभासा सा किं भासओ भासा अभासओ भासा ?, भासओ णं भासा नो खलु सा अभासओ भासा । पुव्विं किरिया अदुक्खा जहा भासा तहा भाणियव्वा, किरियावि जाव करणओ णं सा दुक्खा नो खलु सा अकरणओ दुक्खा, सेवं वत्तव्वं सिया—किंचं फुसं दुक्खं कज्जमाणकडं कट्टु २ पाणभूयजीवसत्ता वेदणं वेदेंतीति वत्तव्वं सिया ॥ (सू० ८०) ॥

'चलमाणे अचलिए'त्ति चलत्कर्माचलितं, चलता तेन चलितकार्याकरणात्, वर्त्तमानस्य चातीततया व्यपदेष्टुमश-

१ शतके उद्देशः १० अन्यतीर्थि-कवक्तव्यता स्नेहभाषा क्रियासु सू ८०

॥१०३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्यत्वात्, एवमन्यत्रापि वाच्यमिति ॥ 'एगयओ न साहणंति'त्ति एकत एकत्वेनैकस्कन्धतयेत्यर्थः 'न संहन्येते' न संहतौ–मिलितौ स्यातां, 'नत्थि सिणेहकाए'त्ति स्नेहपर्यवराशिर्नास्ति, सूक्ष्मत्वात्, त्र्यादियोगे तु स्थूलत्वात्सोऽस्ति। 'दुक्खत्ताए कज्जंति'त्ति पञ्च पुद्गलाः संहत्य दुःखतया–कर्मतया क्रियन्ते, भवन्तीत्यर्थः, 'दुक्खेऽवि य णं'ति कर्मापि च 'से'त्ति तत् शाश्वतमनादित्वात् 'सय'त्ति सर्वदा 'समियं'ति सम्यक् सपरिमाणं वा 'चीयते' चयं याति 'अपचीयते' अपचयं याति। तथा 'पुव्वं'ति भाषणात्प्राक् 'भास'त्ति वाग्द्रव्यसंहतिः 'भास'त्ति सत्यादिभाषा स्यात्, तत्कारणत्वात्, विभङ्गज्ञानित्वेन वा तेषां मतमात्रमेतत् निरुपपत्तिकमुन्मत्तकवचनवदतो नेहोपपत्तिरत्यर्थं गवेषणीया, एवं सर्वत्रापीति, तथा 'भासिज्जमाणी भासा अभास'त्ति निसृज्यमानवाग्द्रव्याणि अभाषा, वर्त्तमानसमयस्यातिसूक्ष्मत्वेन व्यवहारानङ्गत्वादिति, 'भासासमयविइक्कंतं च णं'ति इह क्तप्रत्ययस्य भावार्थत्वाद् विभक्तिविपरिणामाच्च भाषासमयव्यतिक्रमे च 'भासिय'त्ति निसृष्टा सती भाषा भवति, प्रतिपाद्यस्याभिधेये प्रत्ययोत्पादकत्वादिति, 'अभासओ णं भास'त्ति अभाषमाणस्य भाषा, भाषणात्पूर्वं पश्चाच्च तदभ्युपगमात्, 'नो खलु भासओ'त्ति भाष्यमाणायास्तस्या अनभ्युपगमादिति ॥ तथा—'पुव्वं किरिए'त्यादि, क्रिया कायिका सा यावन्न क्रियते तावत् 'दुक्ख'त्ति दुःखहेतुः, 'कज्जमाण'त्ति क्रियमाणा क्रिया 'न दुक्खा' न दुक्खहेतुः, क्रियासमयव्यतिक्रान्ते च क्रियायाः क्रियमाणताव्यतिक्रमे च कृता सती क्रिया दुःखेति, इदमपि तन्मतमात्रमेव निरुपपत्तिकम्, अथवा पूर्वं क्रिया दुःखा, अनभ्यासात्, क्रियमाणा क्रिया न दुःखा, अभ्यासात्, कृता क्रिया दुःखा, अनुतापश्रमादेः, 'करणओ दुक्ख'त्ति करणमाश्रित्य करण-

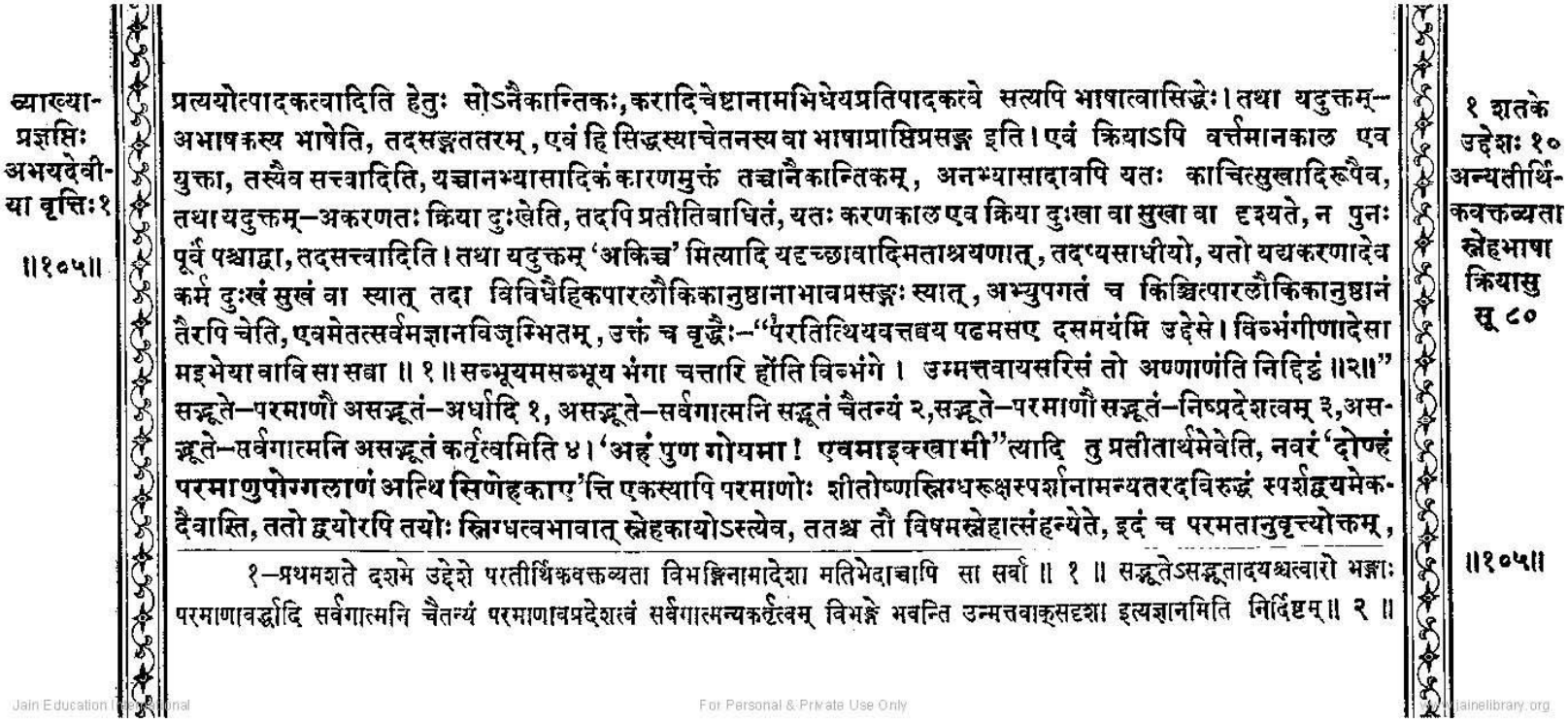
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काले कुर्वत इत्यर्थः 'अकरणओ दुक्ख'त्ति अकरणमाश्रित्याकुर्वत इतियावत्, 'नो खलु सा करणओ दुक्खत्ति' अक्रियमाणत्वे दुःखतया तस्या अभ्युपगमात्। 'सेवं वत्तव्वं सिया' अथैवं पूर्वोक्तं वस्तु वक्तव्यं स्यादुपपन्नत्वाद-स्येति । अथान्ययूथिकान्तरमतमाह—'अकृत्यम्' अनागतकालापेक्षयाऽनिर्वर्त्तनीयं जीवैरिति गम्यं 'दुःखम्'असातं तत्कारणं वा कर्म, तथाऽकृतत्वादेवास्पृश्यम्–अबन्धनीयं, तथा क्रियमाणं वर्त्तमानकाले कृतं चातीतकाले तन्निषेधा-दक्रियमाणकृतं, कालत्रयेऽपि कर्मणो बन्धनिषेधाद् अकृत्वाऽकृत्वा, आभीक्ष्ण्ये द्विर्वचनं, दुःखमिति प्रकृतमेव, के ? इत्याह–प्राणभूतजीवसत्त्वाः, प्राणादिलक्षणं चेदम्—"प्राणा द्वित्रिचतुः प्रोक्ताः, भूतास्तु तरवः स्मृताः । जीवाः पञ्चेन्द्रिया ज्ञेयाः, शेषाः सत्त्वा इतीरिताः ॥ १ ॥" 'वेयणं'ति शुभाशुभकर्म्मवेदनां पीडां वा 'वेदयन्ति' अनुभवन्ति, इत्येतद्वक्तव्यं स्यात्, एतस्यैवोपपद्यमानत्वाद्, यादृच्छिकं हि सर्वं लोके सुखदुःखमिति, यदाह–"अतर्कितोपस्थितमेव सर्वं, चित्रं जनानां सुखदुःखजातम् । काकस्य तालेन यथाऽभिघातो, न बुद्धिपूर्वोऽत्र वृथाऽभिमानः ॥ १ ॥" 'से कह-मेयं'ति अथ कथमेतद् भदन्त ! 'एवम् ?' अन्ययूथिकोक्तन्यायेन ? इति प्रश्नः 'जं णं ते अण्णउत्थिया' इत्याद्युत्तरं, व्याख्या चास्य प्राग्वत्, मिथ्या चैतदेवं–यदि चलदेव प्रथमसमये चलितं न भवेत्तदा द्वितीयादिष्वपि तदचलितमेवेति न कदाचनापि चलेत्, अत एव वर्त्तमानस्यापि विवक्षयाऽतीतत्वं न विरुद्धम्, एतच्च प्रागेव निर्णीतमिति न पुनरुच्यते, यच्चोच्यते–चलितकार्याकरणादचलितमेवेति, तदयुक्तं, यतः प्रतिक्षणमुत्पद्यमानेषु स्थासकोशादिवस्तुष्वन्त्यक्षणभावि वस्तु आद्यक्षणे स्वकार्यं न करोत्येव, असत्त्वाद्, अतो यदन्त्यसमयचलितं कार्यं विवक्षितं परेण तदाद्यसमयचलितं यदि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न करोति तदा क इव दोषोऽत्र ?, कारणानां स्वस्वकार्यकरणस्वभावत्वादिति । यच्चोक्तं–द्वौ परमाणू न संहन्येते, सूक्ष्मतया स्नेहाभावात्, तदयुक्तम्, एकस्यापि परमाणोः स्नेहसम्भवात्, सार्द्धपुद्गलस्य संहतत्वेन तैरेवाभ्युपगमाच्च, यत उक्तम्—"तिण्णि परमाणुपोग्गला एगयओ साहणंति ते भिज्जमाणा दुहावि तिहावि कज्जति, दुहा कज्जमाणा एगओ दिवड्ढे"त्ति, अनेन हि सार्द्धपुद्गलस्य संहतत्वाभ्युपगमेन तस्य स्नेहोऽभ्युपगत एवेत्यतः कथं परमाण्वोः स्नेहाभावेन सङ्घाताभाव इति, यच्चोक्तम्–एकतः सार्द्धं एकतः सार्द्धं इति, एतदप्यचारु, परमाणोरर्द्धीकरणे परमाणुत्वाभावप्रसङ्गात्, तथा यदुक्तं–पञ्च पुद्गलाः संहताः कर्मतया भवन्ति, तदप्यसङ्गतं, कर्मणोऽनन्तपरमाणुतयाऽनन्तस्कन्धरूपत्वात्, पञ्चाणुकस्य च स्कन्धमात्रत्वात्, तथा कर्म जीवावरणस्वभावमिष्यते, तच्च कथं पञ्चपरमाणुस्कन्धमात्ररूपं सदसङ्ख्यातप्रदेशात्मकं जीवमावृणुयादिति । तथा यदुक्तं–कर्म च शाश्वतं, तदपि असमीचीनं, कर्म्मणः शाश्वतत्वे क्षयोपशमाद्यभावेन ज्ञानादीनां हानेरुत्कर्षस्य चाभावप्रसङ्गात्, दृश्यते च ज्ञानादिहानिवृद्धी, तथा यदुक्तं–कर्म सदा चीयतेऽपचीयते चेति, तदप्येकान्तशाश्वतत्वे नोपपद्यत इति । यच्चोक्तं–भाषणात्पूर्वं भाषा, तद्धेतुत्वात्, तदयुक्तमेव, औपचारिकत्वात्, उपचारस्य च तत्त्वतोऽवस्तुत्वात्, किं च–उपचारस्तात्त्विके वस्तुनि सति भवतीति तात्त्विकी भाषाऽस्तीति सिद्धम्, यच्चोक्तं–भाष्यमाणाऽभाषा, वर्त्तमानसमयस्याव्यावहारिकत्वात्, तदप्यसम्यग्, वर्त्तमानसमयस्यैवास्तित्वेन व्यवहाराङ्गत्वाद् अतीतानागतयोश्च विनष्टानुत्पन्नतयाऽसत्त्वेन व्यवहारानङ्गत्वादिति, यच्चोक्तं–भाषासमयेत्यादि, तदप्यसाधु, भाष्यमाणभाषाया अभावे भाषासमय इत्यस्याभिलापस्याभावप्रसङ्गात्, यश्च प्रतिपाद्यस्याभिधेये

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१

॥१०५॥

प्रत्ययोत्पादकत्वादिति हेतुः सोऽनैकान्तिकः, करादिचेष्टानामभिधेयप्रतिपादकत्वे सत्यपि भाषात्वासिद्धेः। तथा यदुक्तम्–अभाषकस्य भाषेति, तदसङ्गततरम्, एवं हि सिद्धस्याचेतनस्य वा भाषाप्राप्तिप्रसङ्ग इति। एवं क्रियाऽपि वर्त्तमानकाल एव युक्ता, तस्यैव सत्त्वादिति, यच्चानभ्यासादिकं कारणमुक्तं तच्चानैकान्तिकम्, अनभ्यासादावपि यतः काचित्सुखादिरूपैव, तथा यदुक्तम्–अकरणतः क्रिया दुःखेति, तदपि प्रतीतिबाधितं, यतः करणकाल एव क्रिया दुःखा वा सुखा वा दृश्यते, न पुनः पूर्वं पश्चाद्वा, तदसत्त्वादिति। तथा यदुक्तम् 'अकिच्च' मित्यादि यदृच्छावादिमताश्रयणात्, तदप्यसाधीयो, यतो यद्यकरणादेव कर्म दुःखं सुखं वा स्यात् तदा विविधैहिकपारलौकिकानुष्ठानाभावप्रसङ्गः स्यात्, अभ्युपगतं च किञ्चित्पारलौकिकानुष्ठानं तैरपि चेति, एवमेतत्सर्वमज्ञानविजृम्भितम्, उक्तं च वृद्धैः–"पंरतित्थियवत्तव्वय पढमसए दसमयंमि उद्देसे। विब्भंगीणादेसा मइभेया वावि सा सव्वा ॥ १ ॥ सब्भूयमसब्भूय भंगा चत्तारि होंति विब्भंगे। उम्मत्तवायसरिसं तो अण्णाणंति निद्दिट्ठं ॥२॥" सद्भूते–परमाणौ असद्भूतं–अधोदि १, असद्भूते–सर्वगात्मनि सद्भूतं चैतन्यं २, सद्भूते–परमाणौ सद्भूतं–निष्प्रदेशत्वम् ३, असद्भूते–सर्वगात्मनि असद्भूतं कर्तृत्वमिति ४। 'अहं पुण गोयमा! एवमाइक्खामी" त्यादि तु प्रतीतार्थमेवेति, नवरं 'दोण्हं परमाणुपोग्गलाणं अत्थि सिणेहकाए' त्ति एकस्यापि परमाणोः शीतोष्णस्निग्धरूक्षस्पर्शानामन्यतरदविरुद्धं स्पर्शद्वयमेकदैवास्ति, ततो द्वयोरपि तयोः स्निग्धत्वभावात् स्नेहकायोऽस्त्येव, ततश्च तौ विषमस्नेहात्संहन्येते, इदं च परमतानुवृत्त्योक्तम्,

१–प्रथमशते दशमे उद्देशे परतीर्थिकवक्तव्यता विभङ्गिनामादेशा मतिभेदाचापि सा सर्वा ॥ १ ॥ सद्भूतेऽसद्भूतादयश्चत्वारो भङ्गाः परमाणावर्द्धादि सर्वगात्मनि चैतन्यं परमाणावप्रदेशत्वं सर्वगात्मन्यकर्तृत्वम् विभङ्गे भवन्ति उन्मत्तवाक्सदृशा इत्यज्ञानमिति निर्दिष्टम्॥ २ ॥

१ शतके उद्देशः १० अन्यतीर्थि-कवक्तव्यता स्नेहभाषा क्रियासु सू ८०

॥१०५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्यथा रूक्षावपि रूक्षत्ववैषम्ये संहन्येते एव, यदाह—"[1]समनिद्धयाए बंधो न होइ समलुक्खयाएवि न होइ। वेमायनिद्धलुक्खत्तणेण बंधो उ खंधाणं ॥१॥"ति। 'खंधेवि य णं से असासए'त्ति उपचयापचयिकत्वात्, अत एवाह—'सया समिय'मित्यादि 'पुव्विं भासा अभास'त्ति भाष्यत इति भाषा भाषणाच्च पूर्वं न भाष्यते इति न भाषेति 'भासिज्जमाणी भासा भास'त्ति शब्दार्थोपपत्तेः 'भासिया अभास'त्ति शब्दार्थवियोगात्। 'पुव्विं किरिया अदुक्ख'त्ति करणात्पूर्वं क्रियैव नास्तीत्यसत्त्वादेव च न दुःखा, सुखापि नासौ, असत्त्वादेव, केवलं परमतानुवृत्त्याऽदुःखेत्युक्तं 'जहा भास'त्ति वचनात्,'कज्जमाणी किरिया दुक्खा' सत्त्वात्, इहापि यत्क्रियमाणा क्रिया दुःखेत्युक्तं तत्परमतानुवृत्त्यैव, अन्यथा सुखाऽपि क्रियमाणैव क्रिया, तथा 'किरियासमयवितिक्कंतं च ण'मित्यादि दृश्यमिति। 'किच्चं दुक्ख'मित्यादि, अनेन च कर्म्मसत्ताऽऽवेदिता, प्रमाणसिद्धत्वादस्य, तथाहि–इह यद्वयोरिष्टशब्दादिविषयसुखसाधनसमेतयोरेकस्य दुःखलक्षणं फलमन्यस्येतरत् न तद्विशिष्टहेतुमन्तरेण संभाव्यते, कार्यत्वाद्, घटवत्, यश्चासौ विशिष्टो हेतुः स कर्मेति, आह च—"[2]जो तुल्लसाहणाणं फले विसेसो ण सो विणा हेउं। कज्जत्तणओ गोयम ! घडो व्व हेऊ य से कम्मं ॥ १ ॥"ति ॥ पुनरप्यन्ययूथिकान्तरमतमुपदर्शयन्नाह—

अण्णउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति जाव–एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पक-

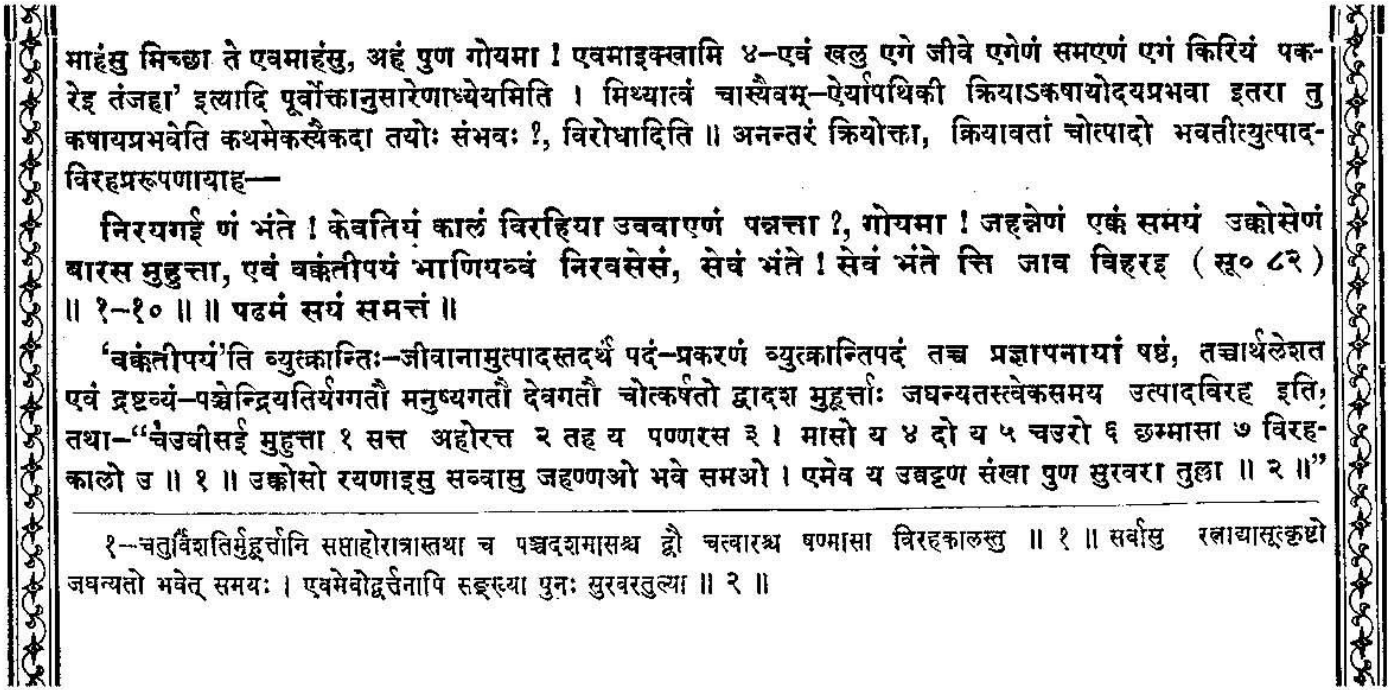
१ समस्निग्धतया न भवति समरूक्षतयाऽपि न भवति बन्धः, विमात्रस्निग्धरूक्षतया स्कन्धानां बन्धस्तु ॥ १ ॥ २ यस्तुल्यसाधनानां फले विशेषः कार्याणां न स हेतुं विना। कार्यत्वाद् घट इव तस्य हेतुश्च कर्म गौतम ! ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रेंति, तंजहा–इरियावहियं च संपराइयं च, [जं समयं इरियावहियं पकरेइ तं समयं संपराइयं पकरेइ, जं स-मयं संपराइयं पकरेइ तं समयं इरियावहियं पकरेइ, इरियावहियाए पकरणताए संपराइयं पकरेइ संपराइय-पकरणयाए इरियावहियं पकरेइ, एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेंति, तंजहा–इरि-यावहियं च संपराइयं च । से कहमेयं भंते एवं ?, गोयमा ! जं णं ते अण्णउत्थिया एवमाइक्खंति तं चेव जाव जे ते एवमाहंसु मिच्छा ते एवमाहंसु, अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि ४–एवं खलु एगे जीवे एग-समए एक्कं किरियं पकरेइ] परउत्थियवत्तव्वं णेयव्वं, ससमयवत्तव्वयाए नेयव्वं जाव इरियावहियं संपरा-इयं वा ॥ (सू० ८१)

तत्र च 'इरियावहियं'ति ईर्या–गमनं तद्विषयः पन्था–मार्ग ईर्यापथस्तत्र भवा ऐर्यापथिकी, केवलकाययोगप्रत्ययः कर्मबन्ध इत्यर्थः, 'संपराइयं च'त्ति संपरैति–परिभ्रमति प्राणी भवे एभिरिति संपरायाः–कषायास्तत्प्रत्यया या सा साम्परायिकी, कषायहेतुकः कर्मबन्ध इत्यर्थः । 'परउत्थियवत्तव्वं णेयव्वं'ति इह सूत्रेऽन्ययूथिकवक्तव्यं स्वयमुच्चार-णीयं, ग्रन्थगौरवभयेनालिखितत्वात्तस्य, तच्चेदम्–'जं समयं संपराइयं पकरेइ तं समयं इरियावहियं पकरेइ इरि-यावहियापकरणयाए संपराइयं पकरेइ संपराइयपकरणयाए इरियावहियं पकरेइ, एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेइ, तंजहा–इरियावहियं च संपराइयं चे'ति । 'ससमयवत्तव्वयाए णेयव्वं' सूत्रमिति गम्यं, सा चैवम्–'से कहमेयं भंते ! एवं ?, गोयमा ! जन्नं ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति जाव संपराइयं च जे ते एव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



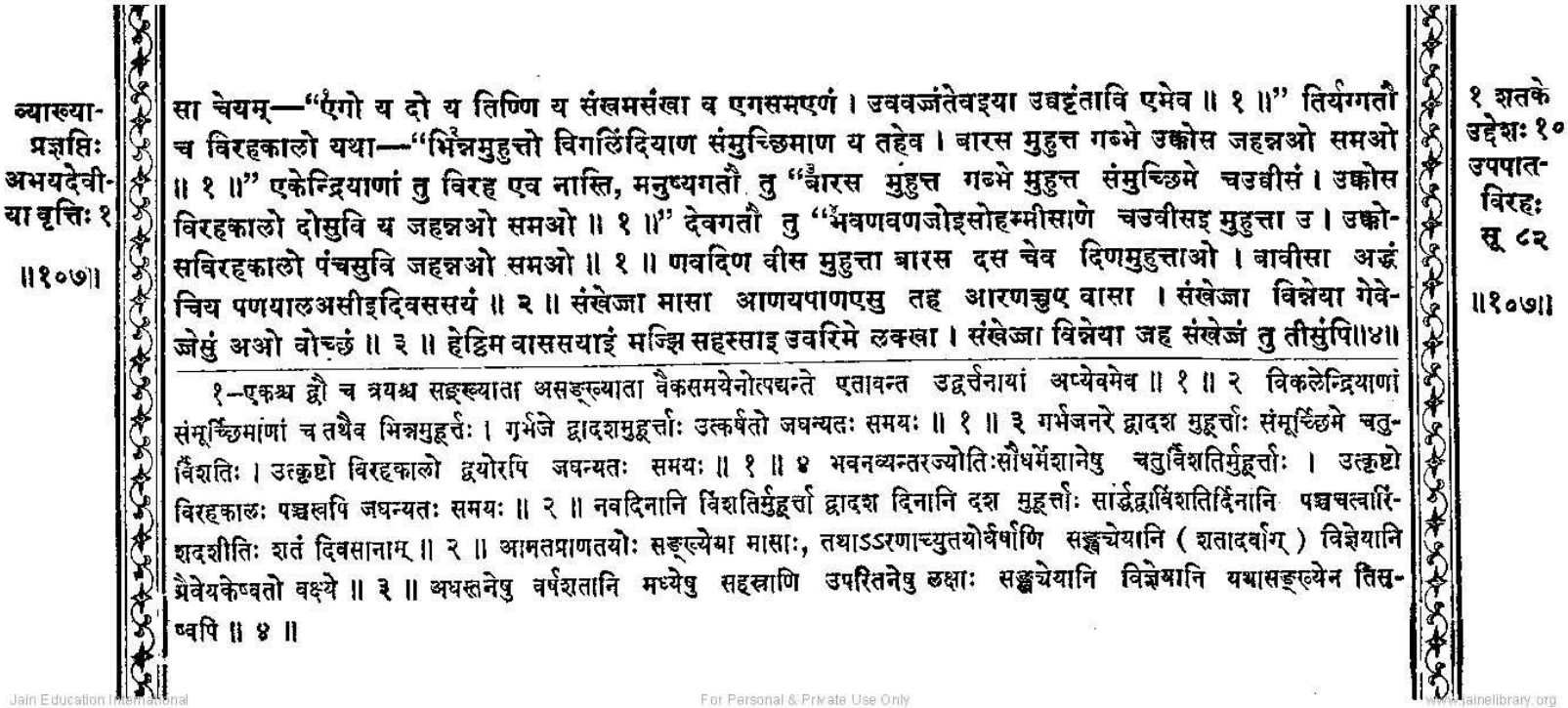
माहंसु मिच्छा ते एवमाहंसु, अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि ४–एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं किरियं पकरेइ तंजहा' इत्यादि पूर्वोक्तानुसारेणाध्येयमिति । मिथ्यात्वं चास्यैवम्–ऐर्यापथिकी क्रियाऽकषायोदयप्रभवा इतरा तु कषायप्रभवेति कथमेकस्यैकदा तयोः संभवः ?, विरोधादिति ॥ अनन्तरं क्रियोक्ता, क्रियावतां चोत्पादो भवतीत्युत्पादविरहप्ररूपणायाह—

निरयगई णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता, एवं वक्कंतीपयं भाणियव्वं निरवसेसं, सेवं भंते ! सेवं भंते त्ति जाव विहरइ (सू० ८२) ॥ १–१० ॥ ॥ पढमं सयं समत्तं ॥

'वक्कंतीपयं'ति व्युत्क्रान्तिः–जीवानामुत्पादस्तदर्थं पदं–प्रकरणं व्युत्क्रान्तिपदं तच्च प्रज्ञापनायां षष्ठं, तच्चार्थलेशत एवं द्रष्टव्यं–पञ्चेन्द्रियतिर्यग्गतौ मनुष्यगतौ देवगतौ चोत्कर्षतो द्वादश मुहूर्त्ताः जघन्यतस्त्वेकसमय उत्पादविरह इति, तथा–"चउवीसई मुहुत्ता १ सत्त अहोरत्त २ तह य पण्णरस ३ । मासो य ४ दो य ५ चउरो ६ छम्मासा ७ विरहकालो उ ॥ १ ॥ उक्कोसो रयणाइसु सव्वासु जहण्णओ भवे समओ । एमेव य उव्वट्टण संखा पुण सुरवरा तुल्ला ॥ २ ॥"[1]

१–चतुर्विंशतिर्मुहूर्त्तानि सप्ताहोरात्रास्तथा च पञ्चदशमासाश्च द्वौ चत्वारश्च षण्मासा विरहकालस्तु ॥ १ ॥ सर्वासु रत्नाद्यासूत्कृष्टो जघन्यतो भवेत् समयः । एवमेवोद्वर्त्तनापि सङ्ख्या पुनः सुरवरतुल्या ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥१०७॥

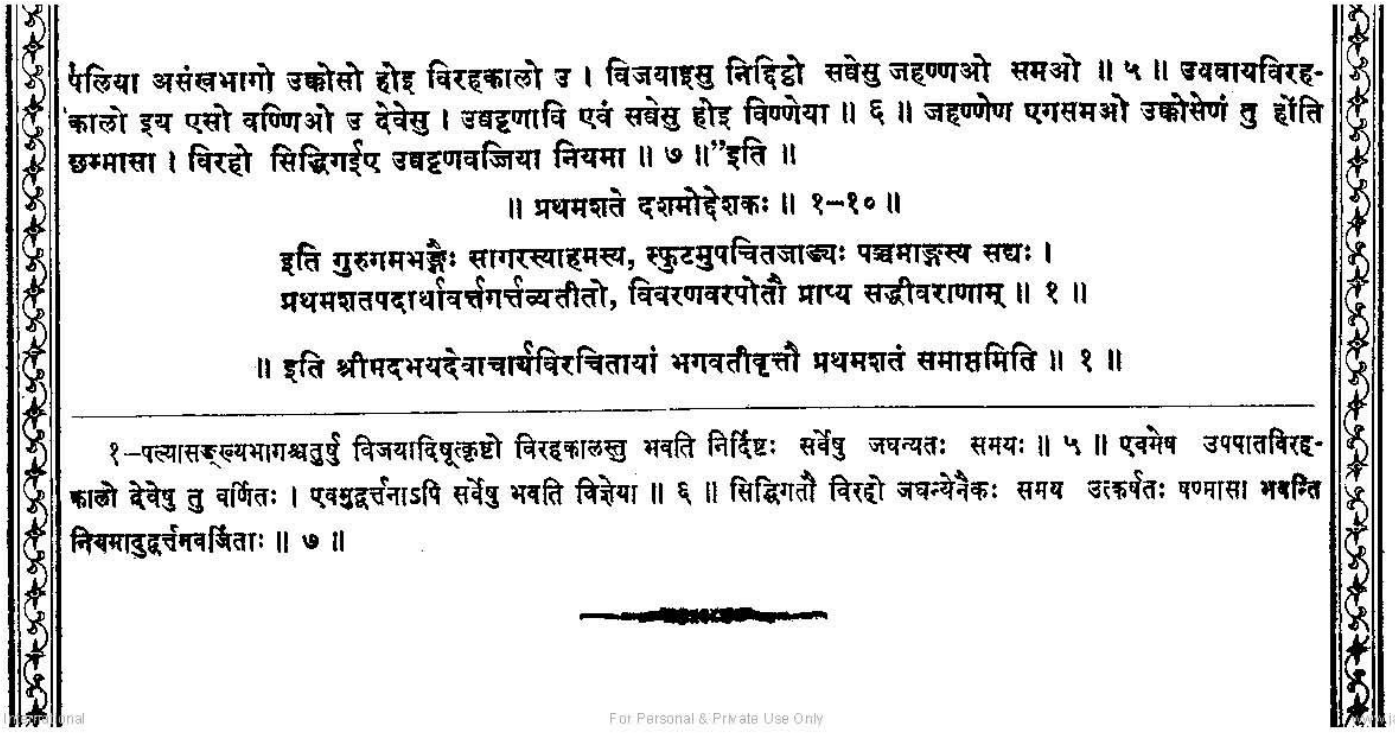
सा चेयम्—"एगो य दो य तिण्णि य संखमसंखा व एगसमएणं । उववज्जंतेवइया उवट्टंताविं एमेव ॥ १ ॥" तिर्यग्गतौ च विरहकालो यथा—"भिन्नमुहुत्तो विगलिंदियाण संमुच्छिमाण य तहेव । बारस मुहुत्त गब्भे उक्कोस जहन्नओ समओ ॥ १ ॥" एकेन्द्रियाणां तु विरह एव नास्ति, मनुष्यगतौ तु "बारस मुहुत्त गब्भे मुहुत्त संमुच्छिमे चउवीसं । उक्कोस विरहकालो दोसुवि य जहन्नओ समओ ॥ १ ॥" देवगतौ तु "भवणवणजोइसोहम्मीसाणे चउवीसइ मुहुत्ता उ । उक्कोसविरहकालो पंचसुवि जहन्नओ समओ ॥ १ ॥ णवदिण वीस मुहुत्ता बारस दस चेव दिणमुहुत्ताओ । बावीसा अद्धं चिय पणयालअसीइदिवससयं ॥ २ ॥ संखेज्जा मासा आणयपाणएसु तह आरणच्चुए वासा । संखेज्जा विन्नेया गेवेज्जेसुं अओ वोच्छं ॥ ३ ॥ हेट्ठिम वाससयाइं मज्झि सहस्साइ उवरिमे लक्खा । संखेज्जा विन्नेया जह संखेज्जं तु तीसुंपि॥४॥

१–एकश्च द्वौ च त्रयश्च सङ्ख्याता असङ्ख्याता वैकसमयेनोत्पद्यन्ते एतावन्त उद्वर्त्तनायां अप्येवमेव ॥ १ ॥ २ विकलेन्द्रियाणां संमूर्च्छिमानां च तथैव भिन्नमुहूर्त्तः । गर्भजे द्वादशमुहूर्त्ताः उत्कर्षतो जघन्यतः समयः ॥ १ ॥ ३ गर्भजनरे द्वादश मुहूर्त्ताः संमूर्च्छिमे चतुर्विंशतिः । उत्कृष्टो विरहकालो द्वयोरपि जघन्यतः समयः ॥ १ ॥ ४ भवनव्यन्तरज्योतिःसौधर्मेशानेषु चतुर्विंशतिर्मुहूर्त्ताः । उत्कृष्टो विरहकालः पञ्चस्वपि जघन्यतः समयः ॥ २ ॥ नवदिनानि विंशतिर्मुहूर्त्ता द्वादश दिनानि दश मुहूर्त्ताः सार्द्धद्वाविंशतिर्दिनानि पञ्चचत्वारिंशदशीतिः शतं दिवसानाम् ॥ २ ॥ आमतप्राणतयोः सङ्ख्येया मासाः, तथाऽऽरणाच्युतयोर्वर्षाणि सङ्ख्येयानि (शतादर्वाग्) विज्ञेयानि ग्रैवेयकेष्वतो वक्ष्ये ॥ ३ ॥ अधस्तनेषु वर्षशतानि मध्येषु सहस्राणि उपरितनेषु लक्षाः सङ्ख्येयानि विज्ञेयानि यथासङ्ख्येन तिसृष्वपि ॥ ४ ॥

१ शतके उद्देशः १० उपपात-विरहः सू ८२

॥१०७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



पलिया असंखभागो उक्कोसो होइ विरहकालो उ । विजयाइसु निद्दिट्ठो सवेसु जहण्णओ समओ ॥ ५ ॥ उववायविरह-कालो इय एसो वण्णिओ उ देवेसु । उवट्टणावि एवं सवेसु होइ विण्णेया ॥ ६ ॥ जहण्णेण एगसमओ उक्कोसेणं तु होंति छम्मासा । विरहो सिद्धिगईए उवट्टणवज्जिया नियमा ॥ ७ ॥"इति ॥

॥ प्रथमशते दशमोद्देशकः ॥ १–१० ॥

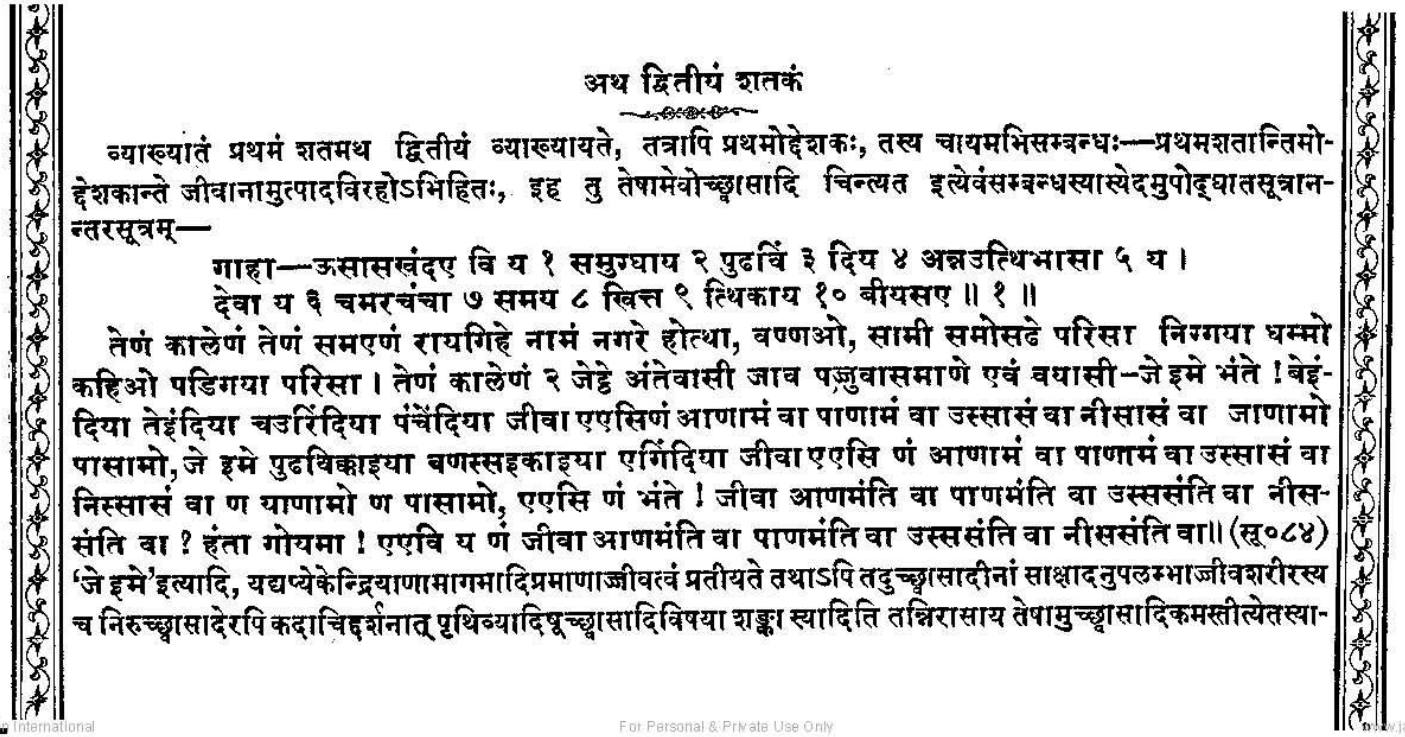
इति गुरुगमभङ्गैः सागरस्याहमस्य, स्फुटमुपचितजाड्यः पञ्चमाङ्गस्य सद्यः ।
प्रथमशतपदार्थावर्त्तगर्त्तव्यतीतो, विवरणवरपोतौ प्राप्य सद्धीवराणाम् ॥ १ ॥

॥ इति श्रीमदभयदेवाचार्यविरचितायां भगवतीवृत्तौ प्रथमशतं समाप्तमिति ॥ १ ॥

१–पल्यासङ्ख्यभागश्चतुर्षु विजयादिषूत्कृष्टो विरहकालस्तु भवति निर्दिष्टः सर्वेषु जघन्यतः समयः ॥ ५ ॥ एवमेष उपपातविरह-कालो देवेषु तु वर्णितः । एवमुद्वर्त्तनाऽपि सर्वेषु भवति विज्ञेया ॥ ६ ॥ सिद्धिगतौ विरहो जघन्येनैकः समय उत्कर्षतः षण्मासा भवन्ति नियमादुद्वर्त्तनवर्जिताः ॥ ७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र प्रथम-शतके दशम-उद्देशकः समाप्तः	**तत् समाप्ते प्रथमं शतकं अपि समाप्तं**



अथ द्वितीयं शतकं

व्याख्यातं प्रथमं शतमथ द्वितीयं व्याख्यायते, तत्रापि प्रथमोद्देशकः, तस्य चायमभिसम्बन्धः—प्रथमशतान्तिमोद्देशकान्ते जीवानामुत्पादविरहोऽभिहितः, इह तु तेषामेवोच्छ्वासादि चिन्त्यत इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदमुपोद्घातसूत्रानन्तरसूत्रम्—

गाहा—ऊसासखंदए वि य १ समुग्घाय २ पुढवि ३ दिय ४ अन्नउत्थिभासा ५ य ।
देवा य ६ चमरचंचा ७ समय ८ खित्त ९ त्थिकाय १० बीयसए ॥ १ ॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नगरे होत्था, वण्णओ, सामी समोसढे परिसा निग्गया धम्मो कहिओ पडिगया परिसा । तेणं कालेणं २ जेट्ठे अंतेवासी जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी–जे इमे भंते ! बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचेंदिया जीवा एएसिणं आणामं वा पाणामं वा उस्सासं वा नीसासं वा जाणामो पासामो, जे इमे पुढविक्काइया बणस्सइकाइया एगिंदिया जीवा एएसि णं आणामं वा पाणामं वा उस्सासं वा निस्सासं वा ण याणामो ण पासामो, एएसि णं भंते ! जीवा आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा ? हंता गोयमा ! एएवि य णं जीवा आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा॥ (सू०८४)

'जे इमे'इत्यादि, यद्यप्येकेन्द्रियाणामागमादिप्रमाणाज्जीवत्वं प्रतीयते तथाऽपि तदुच्छ्वासादीनां साक्षादनुपलम्भाज्जीवशरीरस्य च निरुच्छ्वासादेरपि कदाचिद्दर्शनात् पृथिव्यादिषूच्छ्वासादिविषया शङ्का स्यादिति तन्निरासाय तेषामुच्छ्वासादिकमस्तीत्येतस्या-

For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ द्वितीयं शतकं आरभ्यते

अत्र द्वितीय शतके प्रथम-उद्देशकः आरब्धः

सूत्रस्य क्रमांकने अत्र मुद्रण-दोषः सम्भाव्यते (यहाँ सूत्र-क्रम ८३ आना चाहिए मगर ८४ मुद्रित हुआ है, सम्भव है की गाथा के क्रमांक में गिन लिया हो

गमप्रमाणप्रसिद्धस्य प्रदर्शनपरमिदं सूत्रमवगन्तव्यमिति । उच्छ्वासाद्यधिकाराज्जीवादिषु पञ्चविंशतौ पदेषूच्छ्वासादिद्रव्या णां स्वरूपनिर्णयाय प्रश्नयन्नाह—

किण्णं भंते ! जीवा आण० पा० उ० नी० ?, गोयमा ! दव्वओ णं अणंतपएसियाइं दव्वाइं खेत्तओ णं असंखपएसोगाढाइं कालओ अन्नयरट्ठितीयाइं भावओ वण्णमंताइं गंधमंताइं रसमंताइं फासमंताइं आण-मंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा, जाइं भावओ वन्नमंताइं आण०पाण०ऊस०नीस० ताइं किं एगव-ण्णाइं आणमंति पाणमंति ऊस० नीस० ?, आहारगमो नेयव्वो जाव तिचउपंचदिसिं। किण्णं भंते ! नेरइया आ० पा० उ० नी० तं चेव जाव नियमा छद्दिसिं आ० पा० उ० नी० जीवा एगिंदिया वाघाया य निव्वाघाया य भाणियव्वा, सेसा नियमा छद्दिसिं ॥ वाउयाए णं भंते ! वाउयाए चेव आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा ?, हंता गोयमा ! वाउयाए णं जाव नीससंति वा ॥ (सू० ८५) ॥

'किण्णं भंते ! जीवे'त्यादि, किमित्यस्य सामान्यनिर्देशत्वात् 'कानि' किंविधानि द्रव्याणीत्यर्थः । 'आहारगमो नेयव्वो'त्ति प्रज्ञापनाया अष्टाविंशतितमाहारपदोक्तसूत्रपद्धतिरिहाध्येयेत्यर्थः, सा चेयम्—'दुवन्नाइं तिवण्णाइं जाव पंचवण्णाइंपि, जाइं वन्नओ कालाइं ताइं किं एगगुणकालाइं जाव अणंतगुणकालाइंपि' इत्यादिरिति ॥ 'जीवा एगिंदिए'-त्यादि, जीवा एकेन्द्रियाश्च 'वाघाया य निव्वाघाया य'त्ति मतुब्लोपाद् व्याघातनिर्व्याघातवन्तो भणितव्याः । इह चैवं पाठेऽपि निर्व्याघातशब्दः पूर्वं द्रष्टव्यः, तदभिलापस्य सूत्रे तथैव दृश्यमानत्वात् , तत्र जीवा निर्व्याघाताः सव्याघाताः सूत्रे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एव दर्शिताः, एकेन्द्रियास्त्वेवम्—'पुढविक्काइया णं भंते ! कइदिसं आणमंति ४ ?, गोयमा ! निव्वाघाएणं छद्दिसिं वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं'मित्यादि । एवमप्कायादिष्वपि, तत्र निर्व्याघातेन षड्दिशं षड्दिशो यत्रानमनादौ तत्तथा, व्याघातं प्रतीत्य स्यात्त्रिदिशं स्याच्चतुर्दिशं स्यात्पञ्चदिशमानमन्ति ४, यतस्तेषां लोकान्तवृत्तावलोकेन व्यादिदिक्षूच्छ्वासादिपुद्गलानां व्याघातः संभवतीति,'सेसा नियमा छद्दिसिं'ति शेषा नारकादित्रसाः षड्दिशमानमन्ति, तेषां हि त्रसनाड्यन्तर्भूतत्वात् षड्दिशमुच्छ्वासादिपुद्गलग्रहोऽस्त्येवेति ॥ अथैकेन्द्रियाणामुच्छ्वासादिभावादुच्छ्वासादेश्च वायुरूपत्वात् किं वायुकायिकानामप्युच्छ्वासादिना वायुनैव भवितव्यमुतान्येन केनापि पृथिव्यादीनामिव तद्विलक्षणेन ? इत्याशङ्क्यायां प्रश्नयन्नाह—'वाउयाए ण'मित्यादि, अथोच्छ्वासस्यापि वायुत्वादन्येनोच्छ्वासवायुना भाव्यं तस्याप्यन्येनैवमनवस्था, नैवमचेतनत्वात्तस्य • किंच योऽयमुच्छ्वासवायुः स वायुत्वेऽपि न वायुसंभाव्यौदारिकवैक्रियशरीररूपः तदीयपुद्गलानामानप्राणसञ्ज्ञितानामौदारिकवैक्रियशरीरपुद्गलेभ्योऽनन्तगुणप्रदेशत्वेन सूक्ष्मतयैतच्छरीरव्यपदेश्यत्वात्, तथा च प्रत्युच्छ्वासादीनामभाव इति नानवस्था ।

वाउयाए णं भंते ! वाउयाए चेव अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता २ तत्थेव भुज्जो भुज्जो पच्चायाति ?, हंता गोयमा ! जाव पच्चायाति । से भंते किं पुट्ठे उद्दाति अपुट्ठे उद्दाति ?, गोयमा ! पुट्ठे उद्दाइ नो अपुट्ठे उद्दाइ । से भंते ! किं ससरीरी निक्खमइ असरीरी निक्खमइ ?, गोयमा ! सिय ससरीरी निक्खमइ सिय असरीरी निक्खमइ । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ सिय ससरीरी निक्खमइ सिय असरीरी निक्खमइ ?,

१ परम्परया वायूनामुच्छ्वासादिप्रसङ्गस्याभावः ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा ! वाउयायस्स णं चत्तारि सरीरया पन्नत्ता, तंजहा–ओरालिए वेउव्विए तेयए कम्मए, ओरालिय-वेउव्वियाइं विप्पजहाय तेयकम्मएहिं निक्खमति, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुचइ–सिय ससरीरी सिय असरीरी निक्खमइ ॥ (सू० ८६) ॥ मडाई णं भंते नियंठे नो निरुद्धभवे नो निरुद्धभवपवंचे णो पहीणसंसारे णो पहीणसंसारवेयणिज्जे णो वोच्छिण्णसंसारे णो वोच्छिण्णसंसारवेयणिज्जे नो निट्ठियट्ठे नो निट्ठियट्ठकरणिज्जे पुणरवि इत्थत्तं हव्वमागच्छति ?, हंता गोयमा ! मडाई णं नियंठे जाव पुणरवि इत्थत्तं हव्वमागच्छइ ॥ (सू० ८७) ॥ से णं भंते ! किं वत्तव्वं सिया ? गोयमा ! पाणेति वत्तव्वं सिया भूतेति वत्तव्वं सिया जीवेत्ति वत्तव्वं० सत्तेत्ति वत्तव्वं विन्नूत्ति वत्तव्वं० वेदेति वत्तव्वं सिया पाणे भूए जीवे सत्ते विन्नू वेएति वत्तव्वं सिया, से केणट्ठेणं भंते ! पाणेत्ति वत्तव्वं सिया जाव वेदेति वत्तव्वं सिया ?, गोयमा ! जम्हा आ० पा० उ० नी० तम्हा पाणेत्ति वत्तव्वं सिया, जम्हा भूते भवति भविस्सति य तम्हा भूएत्ति वत्तव्वं सिया, जम्हा जीवे जीवइ जीवत्तं आउयं च कम्मं उवजीवइ तम्हा जीवेत्ति वत्तव्वं सिया, जम्हा सत्ते सुहासुहेहिं कम्मेहिं तम्हा सत्तेत्ति वत्तव्वं सिया, जम्हा तित्तकडुयकसायअंबिलमहुरे रसे जाणइ तम्हा विन्नूत्ति वत्तव्वं सिया, वेदेइ य सुहदुक्खं तम्हा वेदेति वत्तव्वं सिया, से तेणट्ठेणं जाव पाणेत्ति वत्तव्वं सिया जाव वेदेति वत्तव्वं सिया ॥ (सू० ८८) ॥ मडाई णं भंते ! नियंठे निरुद्धभवे निरुद्धभवपवंचे जाव निट्ठियट्ठकरणिज्जे णो पुणरवि इत्थत्तं हव्वमागच्छति ?, हंता गोयमा ! मडाई णं नियंठे जाव नो पुणरवि इत्थत्तं हव्वमाग-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

च्छति से णं भंते ! किंति वत्तव्वं सिया ?, गोयमा ! सिद्धेत्ति वत्तव्वं सिया बुद्धेत्ति वत्तव्वं सिया मुत्तेत्ति वत्तव्वं० पारगएत्ति व० परंपरगएत्ति व० सिद्धे बुद्धे मुत्ते परिनिव्वुडे अंतकडे सव्वदुक्खप्पहीणेत्ति वत्तव्वं सिया, सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरति ॥ (सू० ८९) ॥

'वाउकाए णं भंते'इति, अथं च प्रश्नो वायुकायप्रस्तावाद्विहितोऽन्यथा पृथिवीकायिकादीनामपि मृत्वा स्वकाये उत्पादोऽस्त्येव, सर्वेषामेषां कायस्थितेरसङ्ख्याततयाऽनन्ततया चोक्तत्वात्, यदाह—"[1]असङ्खोसप्पिणीउस्सप्पिणीओ एगिंदियाण उ चउण्हं । ता चेव ऊ अणंता वणस्सईए उ बोद्धव्वा ॥ १ ॥" तत्र वायुकायो वायुकाय एवानेकशतसहस्रकृत्वः 'उद्दाइत्त'त्ति 'अपहृत्य' मृत्वा 'तत्थेव'त्ति वायुकाय एव 'पच्चायाइ'त्ति 'प्रत्याजायते' उत्पद्यते । 'पुट्ठे उद्दाइ'त्ति स्पृष्टः स्वकायशस्त्रेण परकायशस्त्रेण वा 'अपद्रवति' म्रियते 'नो अपुट्ठे'त्ति सोपक्रमापेक्षमिदं, 'निक्खमइ'त्ति स्वकडेवरान्निःसरति, 'सिय ससरीरी'त्ति स्यात्–कथञ्चित् 'ओरालियवेउव्वियाइं विप्पजहाये'त्यादि, अयमर्थः–औदारिकवैक्रियापेक्षयाऽशरीरी तैजसकार्मणापेक्षया तु सशरीरी निष्क्रामतीति ॥ वायुकायस्य पुनः पुनस्तत्रैवोत्पत्तिर्भवतीत्युक्तम्, अथ कस्यचिन्मुनेरपि संसारचक्रापेक्षया पुनः पुनस्तत्रैवोत्पत्तिः स्यादिति दर्शयन्नाह—'मडाई णं भंते ! नियंठे'इत्यादि, मृतादी–प्रासुकभोजी, उपलक्षत्वादेषणीयादी चेति दृश्यं, 'निर्ग्रन्थः' साधुरित्यर्थः 'हव्वं' शीघ्रमागच्छतीति योगः ।

१ चतुर्णामेकेन्द्रियाणामसङ्ख्यातोत्सर्पिण्य एव ताश्चैव वनस्पतेः अनन्ता एव बोद्धव्याः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१ ॥१११॥

किंविधः सन् ? इत्याह–'नो निरुद्धभवे'त्ति अनिरुद्धाग्रेतनजन्मा, चरमभवाप्राप्त इत्यर्थः, अयं च भवद्वयप्राप्तव्यमोक्षोऽपि स्यादित्याह–'नो निरुद्धभवपवंचे'त्ति प्राप्तव्यभवविस्तार इत्यर्थः, अयं च देवमनुष्यभवप्रपञ्चापेक्षयाऽपि स्यादित्यत आह—'णो पहीणसंसारे'त्ति अप्रहीणचतुर्गतिगमन इत्यर्थः, यत एवमत एव 'नो पहीणसंसारवेयणिज्जे'त्ति अप्रक्षीणसंसारवेद्यकर्म्मा, अयं च सकृच्चतुर्गतिगमनतोऽपि स्यादित्यत आह–'नो वोच्छिन्नसंसारे'त्ति अव्युटितचतुर्गतिगमनानुबन्ध इत्यर्थः, अत एव 'नो वोच्छिन्नसंसारवेयणिज्जे'त्ति 'नो' नैव व्यवच्छिन्नम्–अनुबन्धव्यवच्छेदेन चतुर्गतिगमनवेद्यं कर्म यस्य स तथा, अत एव 'नो निट्ठियट्ठे'त्ति अनिष्ठितप्रयोजनः, अत एव 'नो निट्ठियट्ठकरणिज्जे' त्ति 'नो' नैव निष्ठितार्थानामिव करणीयानि–कृत्यानि यस्य स तथा, यत एवंविधोऽसावतः पुनरपीति, अनादौ संसारे पूर्वं प्राप्तमिदानीं पुनर्विशुद्धचरणावासेः सकाशादसम्भावनीयम् 'इत्थत्थं'ति 'इत्यर्थम्' एनमर्थम्–अनेकशस्तिर्यङ्नरनाकिनारकगतिगमनलक्षणम् 'इत्थत्त'मिति पाठान्तरं तत्रानेन प्रकारेणेत्थं तद्भाव इत्थत्वं, मनुष्यादित्वमिति भावः, अनुस्वारलोपश्च प्राकृतत्वात्, 'हव्वं'ति शीघ्रम् 'आगच्छइ'त्ति प्राप्नोति अभिधीयते च–कषायोदयात्प्रतिपतितचरणानां चारित्रवतां संसारसागरपरिभ्रमणं, यदाह—"जइ उवसंतकसाओ लहइ अणंतं पुणोवि पडिवायं"ति[1] । स च संसारचक्रगतो मुनिजीवः प्राणादिना नामषड्केन कालभेदेन युगपच्च वाच्यः स्यादिति बिभणिषुः प्रश्नयन्नाह—'से णमि'त्यादि, तत्र 'सः' निर्ग्रन्थजीवः किंशब्दः प्रश्ने सामान्यवाचित्वाच्च नपुंसकलिङ्गेन निर्दिष्टः 'इति' एवमन्वर्थयुक्ततयेत्यर्थः,

१ उपशान्तकषायोऽपि यद्यनन्तं कालं यावद्विप्रतिपातं लभते (तदा का वार्ताऽन्यस्य सकषायस्य ?) ॥

२ शतके उद्देशः १ मृतादिसाधोरित्थंतादिः सू ८७ ८८-८९

॥१११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८६-८९]

दीप अनुक्रम [१०८--१११]

वक्तव्यः स्यात्, प्राकृतत्वाच्च सूत्रे नपुसकलिङ्गताऽस्येति, अन्वर्थयुक्तशब्दैरुच्यमानः किमसौ वक्तव्यः स्यात्? इति भावः। अत्रोत्तरं–'पाणेत्ति वत्तव्वं'मित्यादि, तत्र प्राण इत्येतत्तं प्रति वक्तव्यं स्यात् यदोच्छ्वासादिमत्त्वमात्रमाश्रित्य तस्य निर्देशः क्रियते, एवं भवनादिधर्मविवक्षया भूतादिशब्दपञ्चकवाच्यता तस्य कालभेदेन व्याख्येया, यदा तूच्छ्वासादिधर्मैर्युगपदसौ विवक्ष्यते तदा प्राणो भूतो जीवः सत्त्वो विज्ञो वेदयितेत्येतत्तं प्रति वाच्यं स्यात्, अथवा निगमनवाक्यमेवेदमतो न युगपत्पक्षव्याख्या कार्येति। 'जम्हा जीवे'इत्यादि, यस्मात् 'जीवः' आत्माऽसौ 'जीवति' प्राणान् धारयति, तथा 'जीवत्वम्' उपयोगलक्षणम् आयुष्कं च कर्म 'उपजीवति'अनुभवति तस्माज्जीव इति वक्तव्यं स्यादिति। 'जम्हा सत्ते सुभासुभेहिं कम्मेहिं'ति सक्तः–आसक्तः शक्तो वा–समर्थः सुन्दरासुन्दरासु चेष्टासु, अथवा सक्तः–संबद्धः शुभाशुभैः कर्मभिरिति ॥ अनन्तरोक्तस्यैवार्थस्य विपर्ययमाह—'पारगए'त्ति पारगतः संसारसागरस्य 'भाविनि भूतवदि'त्युपचारादिति 'परंपरागए'त्ति परम्परया–मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानकानां मनुष्यादिसुगतीनां वा पारम्पर्येण गतो भवाम्भोधिपारं प्राप्तः परम्परागतः ॥ इहानन्तरं संयतस्य संसारवृद्धिहानी उक्ते सिद्धत्वं चेति, अधुना तु तेषामन्येषां चार्थानां व्युत्पादनार्थं स्कन्दकचरितं विवक्षुरिदमाह—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ नगराओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं कयंगलानामं नगरी होत्था वण्णओ, तीसे णं कयंगलाए नगरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए छत्तपलासए नामं चेइए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९०]

दीप अनुक्रम [११२]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥११२॥

होत्था वण्णओ, तए णं समणे भगवं महावीरे उप्पण्णनाणदंसणधरे जाव समोसरणं परिसा निग्गच्छति, तीसे णं कयंगलाए नगरीए अदूरसामंते सावत्थी नामं नयरी होत्था वण्णओ, तत्थ णं सावत्थीए नयरीए गद्दभालिस्स अंतेवासी खंदए नामं कच्चायणस्सगोत्ते परिव्वायगे परिवसइ रिउव्वेदजजुव्वेदसामवेदअहव्वणवेदइतिहासपंचमाणं निग्घंटुछट्ठाणं चउण्हं वेदाणं संगोवंगाणं सरहस्साणं सारए वारए धारए पारए सडंगवी सट्ठितंतविसारए संखाणे सिक्खाकप्पे वागरणे छंदे निरुत्ते जोतिसामयणे अन्नेसु य बहूसु बंभण्णएसु परिव्वायएसु य नयेसु सुपरिनिट्ठिए यावि होत्था, तत्थ णं सावत्थीए नयरीए पिंगलए नामं नियंठे वेसालियसावए परिवसइ, तए णं से पिंगलए णामं णियंठे वेसालियसावए अण्णया कयाइं जेणेव खंदए कच्चायणस्सगोत्ते तेणेव उवागच्छइ २ खंदगं कच्चायणस्सगोत्तं इणमक्खेवं पुच्छे–मागहा! किं सअंते लोए अणंते लोए १ सअंते जीवे अणंते जीवे २ सअंता सिद्धी अणंता सिद्धी ३ सअंते सिद्धे अणंते सिद्धे ४ केण वा मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढति वा हायति वा ५?, एतावं ताव आयक्खाहि वुच्चमाणे एवं, तएणं से खंदए कच्चा०गोत्ते पिंगलएणं णियंठेणं वेसालीसावएणं इणमक्खेवं पुच्छिए समाणे संकिए कंखिए वितिगिच्छिए भेदसमावन्ने कलुसमावन्ने णो संचाएइ पिंगलयस्स नियंठस्स वेसालियसावयस्स किंचिवि पमोक्खमक्खाइउं, तुसिणीए संचिट्ठइ, तए णं से पिंगले नियंठे वेसालीसावए खंदयं कच्चायणस्सगोत्तं दोच्चंपि तच्चंपि इणमक्खेवं पुच्छे–मागहा ! किं सअंते लोए जाव केण वा मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढइ वा हायति वा ? एतावं

१ शतके उद्देशः १ स्कन्द्रकचरितं सू ९० पिङ्गलक-प्रश्न

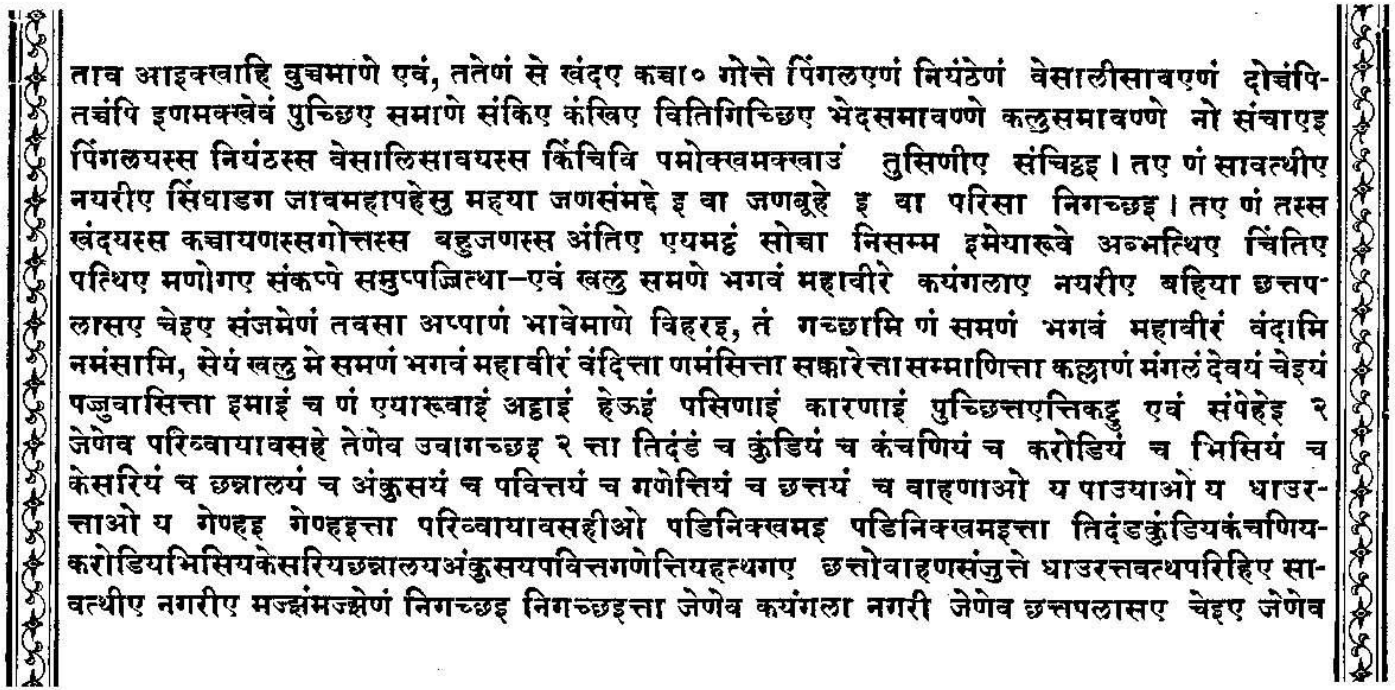
॥११२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्कंदक (खंधक) चरित्र

प्रत सूत्रांक [९०]

दीप अनुक्रम [११२]



ताव आइक्खाहि वुच्चमाणे एवं, ततेणं से खंदए कचा० गोत्ते पिंगलएणं नियंठेणं वेसालीसावएणं दोच्चंपि-
तच्चंपि इणमक्खेवं पुच्छिए समाणे संकिए कंखिए वितिगिच्छिए भेदसमावण्णे कलुसमावण्णे नो संचाएइ
पिंगलयस्स नियंठस्स वेसालिसावयस्स किंचिवि पमोक्खमक्खाउं तुसिणीए संचिट्ठइ। तए णं सावत्थीए
नयरीए सिंघाडग जावमहापहेसु महया जणसंमद्दे इ वा जणबूहे इ वा परिसा निगच्छइ। तए णं तस्स
खंदयस्स कचायणस्सगोत्तस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोचा निसम्म इमेयारूवे अब्भत्थिए चिंतिए
पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था–एवं खलु समणे भगवं महावीरे कयंगलाए नयरीए बहिया छत्तप-
लासए चेइए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि
नमंसामि, सेयं खलु मे समणं भगवं महावीरं वंदित्ता णमंसित्ता सक्कारेत्ता सम्माणित्ता कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं
पज्जुवासित्ता इमाइं च णं एयारूवाइं अट्ठाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं पुच्छित्तएत्तिकट्टु एवं संपेहेइ २
जेणेव परिव्वायावसहे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तिदंडं च कुंडियं च कंचणियं च करोडियं च भिसियं च
केसरियं च छन्नालयं च अंकुसयं च पवित्तयं च गणेत्तियं च छत्तयं च वाहणाओ य पाउयाओ य धाउर-
त्ताओ य गेण्हइ गेण्हइत्ता परिव्वायावसहीओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमइत्ता तिदंडकुंडियकंचणिय-
करोडियभिसियकेसरियछन्नालयअंकुसयपवित्तगणेत्तियहत्थगए छत्तोवाहणसंजुत्ते धाउरत्तवत्थपरिहिए सा-
वत्थीए नगरीए मज्झंमज्झेणं निगच्छइ निगच्छइत्ता जेणेव कयंगला नगरी जेणेव छत्तपलासए चेइए जेणेव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्कंदक (खंधक) चरित्र

प्रत सूत्रांक [९०]

दीप अनुक्रम [११२]

समणे भगवं महावीरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए। गोयमाइ समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी–दच्छिसि णं गोयमा! पुव्वसंगतियं, कहं भंते!?, खंदयं नाम, से काहं वा किहं वा केवच्चिरेण वा?, एवं खलु गोयमा! तेणं कालेणं २ सावत्थीनामं नगरी होत्था वन्नओ, तत्थ णं सावत्थीए नगरीए गद्दभालिस्स अंतेवासी खंदए णामं कच्चायणस्सगोत्ते परिव्वायए परिवसइ तं चेव जाव जेणेव ममं अंतिए तेणेव पहारेत्थ गमणाए, से तं अदूरागते बहुसंपत्ते अद्धाणपडिवण्णे अंतरापहे वट्टइ। अज्जेव णं दच्छिसि गोयमा!, भंतेत्ति भगवं गोयमे समणं भगवं वंदइ नमंसइ २ एवं वदासी–पहू णं भंते! खंदए कच्चायणस्सगोत्ते देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए?, हंता पभू, जावं च णं समणे भगवं महावीरे भगवओ गोयमस्स एयमट्ठं परिकहेइ तावं च णं से खंदए कच्चायणस्सगोत्ते तं देसं हव्वमागते, तए णं भगवं गोयमे खंदयं कच्चायणस्सगोत्तं अदूरआगयं जाणित्ता खिप्पामेव अब्भुट्ठेति खिप्पामेव पच्चुवगच्छइ २ जेणेव खंदए कच्चायणस्सगोत्ते तेणेव उवागच्छइ २ त्ता खंदयं कच्चायणस्सगोत्तं एवं वयासी–हे खंदया! सागयं खंदया! सुसागयं खंदया! अणुरागयं खंदया! सागयमणुरागयं खंदया! से नूणं तुमं खंदया! सावत्थीए नयरीए पिंगलएणं नियंठेणं वेसालियसावएणं इणमक्खेवं पुच्छिए—मागहा! किं सअंते लोगे अणंते लोगे? एवं तं चेव जेणेव इहं तेणेव हव्वमागए, से नूणं खंदया! अट्ठे समट्ठे?, हंता अत्थि, तए णं से खंदए कच्चा० भगवं गोयमं एवं वयासी–से केणट्ठेणं गोयमा! तहारूवे नाणी वा तवस्सी वा जेणं तव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्कंदक (खंधक) चरित्र

एस अट्ठे मम ताव रहस्सकडे हव्वमक्खाए ? जओ णं तुमं जाणसि, तए णं से भगवं गोयमे खंदयं कच्चायणस्सगोत्तं एवं वयासी–एवं खलु खंदया ! मम धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे उप्पण्णणाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली तीयपच्चुप्पन्नमणागयवियाणए सव्वन्नू सव्वदरिसी जेणं ममं एस अट्ठे तव ताव रहस्सकडे हव्वमक्खाए जओ णं अहं जाणामि खंदया ! तए णं से खंदए कच्चायणस्सगोत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी—

'उप्पण्णणाणदंसणधरे' इह यावत्करणात् 'अरहा जिणे केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी आगासगएणं छत्तेण'मित्यादि समवसरणान्तं वाच्यमिति । 'गद्दभालिस्स'त्ति गर्दभालाभिधानपरिव्राजकस्य 'रिउव्वेयजजुव्वेयसामवेयअथव्वणवेय'त्ति, इह षष्ठीबहुवचनलोपदर्शनात् ऋग्वेदयजुर्वेदसामवेदाथर्वणवेदानामिति द्रष्टव्यम् इतिहासः–पुराणं स पञ्चमो येषां ते तथा तेषाम् 'चउण्हं वेयाणं'ति विशेष्यपदं 'निग्घंटुछट्ठाणं'ति निर्घण्टो नामकोशः 'संगोवंगाणं'ति अङ्गानि–शिक्षादीनि षड् उपाङ्गानि–तदुक्तप्रपञ्चनपराः प्रबन्धाः 'सरहस्साणं'ति ऐदम्पर्ययुक्तानां 'सारए'त्ति सारकोऽध्यापन द्वारेण प्रवर्त्तकः स्मारको वाऽन्येषां विस्मृतस्य सूत्रादेः स्मारणात् 'वारए'त्ति वारकोऽशुद्धपाठनिषेधात् 'धारए'त्ति क्वचित्पाठः तत्र धारकोऽधीतानामेषां धारणात् 'पारए'त्ति पारगामी 'षडङ्गविदि'ति षडङ्गानि–शिक्षादीनि वक्ष्यमाणानि, साङ्गोपाङ्गानामिति यदुक्तं तद्भेदपरिकरज्ञापनार्थम्, अथवा षडङ्गविदित्यत्र तद्विचारकत्वं गृहीतं 'विद विचारणे इति वचनादिति न पुनरुक्तत्वमिति 'सट्ठितंतविसारए'त्ति कापिलीयशास्त्रपण्डितः, तथा 'संखाणे'त्ति गणितस्कन्धे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९०]

दीप अनुक्रम [११२]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥११४॥

सुपरिनिष्ठित इति योगः, षडङ्गवेदकत्वमेव व्यनक्ति–सिक्खाकप्पे'त्ति शिक्षा–अक्षरस्वरूपनिरूपकं शास्त्रं कल्पश्च–तथाविधसमाचारनिरूपकं शास्त्रमेव ततः समाहारद्वन्द्वात् शिक्षाकल्पे 'वागरणे'त्ति शब्दशास्त्रे 'छंदे'त्ति पद्यलक्षण-शास्त्रे 'निरुत्ते'त्ति शब्दव्युत्पत्तिकारकशास्त्रे 'जोतिसामयणे'त्ति ज्योतिःशास्त्रे 'बंभण्णएसु'त्ति ब्राह्मणसम्बन्धिषु 'परिव्वायएसु य'त्ति परिव्राजकसत्केषु 'नयेषु' नीतिषु दर्शनेष्वित्यर्थः। 'नियंठे'त्ति निर्ग्रन्थः, श्रमण इत्यर्थः 'वेसा-लियसावए'त्ति विशाला–महावीरजननी तस्या अपत्यमिति वैशालिकः–भगवांस्तस्य वचनं शृणोति तद्रसिकत्वादिति वैशालिकश्रावकः, तद्वचनामृतपाननिरत इत्यर्थः 'इणमक्खेवं'ति एनम् 'आक्षेपं' प्रश्नं 'पुच्छे'त्ति पृष्टवान्, 'मागह'त्ति मगधजनपदजातत्वान्मागधस्तस्यामन्त्रणं हे मागध ! 'वहूइ'त्ति संसारवर्द्धनात् 'हायइ'त्ति संसारपरिहान्येति। 'एतावं तावे'त्यादि, एतावत् प्रश्नजातं तावदाख्याहि 'उच्यमानः' पृच्छ्यमानः, 'एवम्' अनेन प्रकारेण, एतस्मिन्नाख्याते पुन-रन्यत्प्रक्ष्यामीति हृदयम्। 'संकिए' इत्यादि, किमिदमिहोत्तरमिदं वा ? इति संजातशङ्कः, इदमिहोत्तरं साधु इदं च न साधु अतः कथमत्रोत्तरं लप्स्ये ? इत्युत्तरलाभाकाङ्क्षावान् काङ्क्षितः अस्मिन्नुत्तरे दत्ते किमस्य प्रतीतिरुत्पत्स्यते न वा ? इत्येवं विचिकित्सितः 'भेदसमावन्ने' मतेर्भङ्गं–किंकर्त्तव्यताव्याकुलतालक्षणमापन्नः 'कलुषमापन्नः' नाहमिह किञ्चिज्जानामीत्येवं स्वविषयं कालुष्यं समापन्न इति 'नो संचाएइ'त्ति न शक्नोति 'पमोक्खमक्खाइउं'ति प्रमुच्यते पर्यनुयोगबंधनादनेनेति प्रमोक्षम्–उत्तरम् 'आख्यातुं' वक्तुम्। 'महया जणसंमद्दे इ वा जणवूहे इ वा' इत्यत्रेदमन्यद् दृश्यम्–'जणबोले इ वा जणकलकले इ वा जणुम्मी इ वा जणुक्कलिया इ वा जणसंनिवाए इ वा बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ ४–

२ शतके उद्देशः १ स्कन्दक-चरितं

॥११४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्कंदक (खंधक) चरित्र

प्रत सूत्रांक [९०]

दीप अनुक्रम [११२]

एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे ३ आइगरे जाव संपाविउकामे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे कयंगलाए नयरीए छत्तपलासए चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तं महप्फलं खलु भो देवाणुप्पिया ! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नामगोयस्सवि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमणवंदणनमंसणपडिपुच्छणपज्जुवासणयाए एगस्सवि आयरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए ?, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ?, तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं वंदामो नमंसामो सक्कारेमो सम्माणेमो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामो, एयं णो पेच्चभवे हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइत्तिकट्टु बहवे उग्गा उग्गपुत्ता एवं भोगा राइण्णा खत्तिया माहणा भडा जोहा मल्लई लेच्छई अण्णे य बहवे राईसरतलवरमाडंबियकोडुंबियइब्भसेट्ठिसेणावइसत्थवाहपभियओ जाव उक्किट्ठसीहनायबोलकलयलरवेणं समुद्दरवभूयंपिव करेमाणा सावत्थीए नयरीए मज्झं मज्झेणं निगच्छंति' अस्यायमर्थः–श्रावस्त्यां नगर्यां यत्र 'महय'त्ति महान् जनसंमर्दस्तत्र बहुजनोऽन्योऽन्यस्यैवमाख्यातीति वाक्यार्थः, तत्र जनसंमर्दः–उरोनिष्पेषः 'इतिः' उपप्रदर्शने 'वा' समुच्चये पाठान्तरे शब्द इति वा जनव्यूहः–चक्राद्याकारो जनसमुदायः बोलः–अव्यक्तवर्णो ध्वनिः कलकलः–स एवोपलभ्यमानवचनविभागः ऊर्मिः–संबाधः कल्लोलाकारो वा जनसमुदायः उत्कलिका–समुदाय एव लघुतरः जनसन्निपातः–अपरापरस्थानेभ्यो जनानां मीलनं, 'यथाप्रतिरूप'मित्युचितं 'तथारूपाणां' सङ्गतरूपाणां 'नामगोयस्सवि'त्ति नाम्नो यादृच्छिकस्याभिधानस्य गोत्रस्य च–गुणनिष्पन्नस्य 'सवणयाए' श्रवणेन 'किमंग पुण'त्ति किंपुनरिति पूर्वोक्तार्थस्य विशेषद्योतनार्थः अङ्गेत्यामन्त्रणे अभि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्कंदक (खंधक) चरित्र

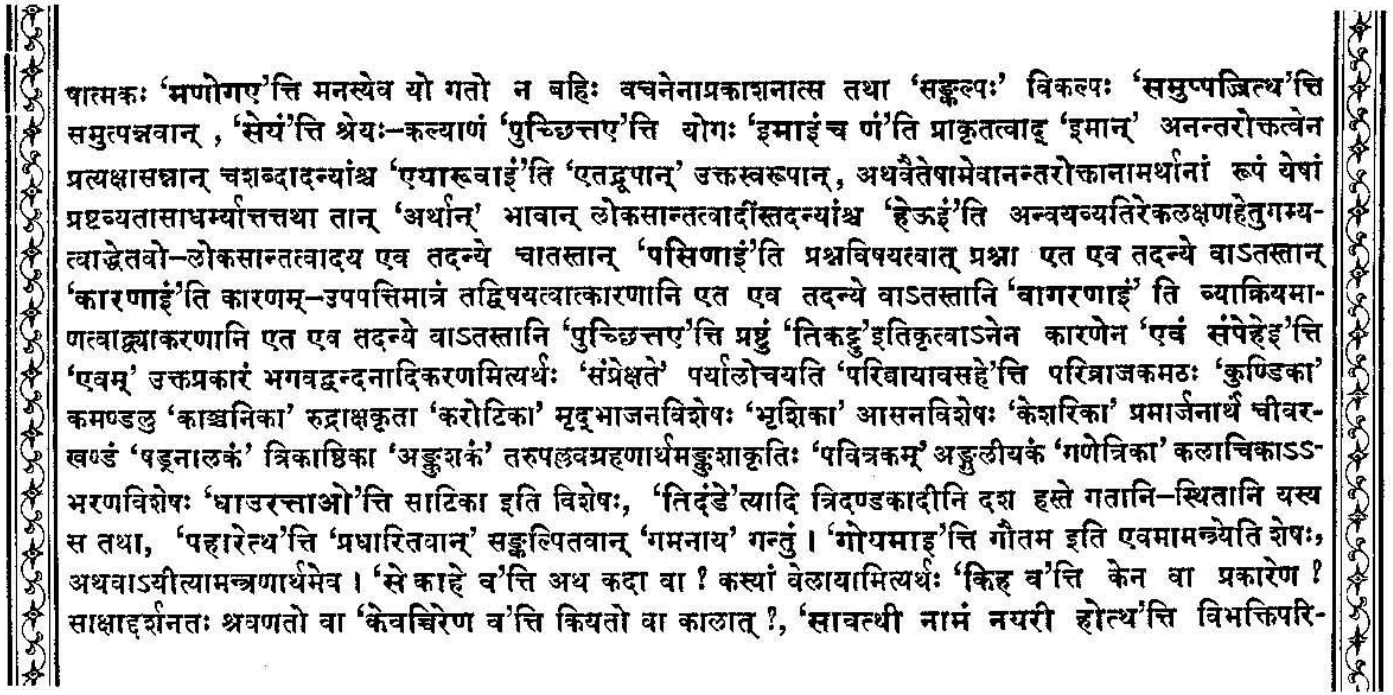
गमनम्–अभिमुखगमनं वन्दनं–स्तुतिः नमस्यनं–प्रणमनं प्रतिप्रच्छनं–शरीरादिवार्त्ताप्रश्नः पर्युपासनं–सेवा तेषाम्–अभिगमनादीनां भावस्तत्ता तया आर्यस्येत्यार्यप्रणेतृकत्वात् धार्मिकस्य धर्मप्रतिबद्धत्वात्, 'वंदामो'त्ति स्तुमः 'नमस्यामः' इति प्रणमामः 'सत्कारयामः' आदरं कुर्मो वस्त्रार्चनं वा सन्मानयाम उचितप्रतिपत्तिभिः, किम्भूतम् ? इत्याह–कल्याणं–कल्याणहेतुं मङ्गलं–दुरितोपशमनहेतुं दैवतं–दैवं चैत्यम्–इष्टदेवप्रतिमा चैत्यमेव चैत्यं 'पर्युपासयामः' सेवामहे 'एतण्णे'त्ति एतत् 'नः' अस्माकं 'प्रेत्यभवे' जन्मान्तरे 'हिताय' पथ्यान्नवत् 'सुखाय' शर्मणे 'क्षेमाय' सङ्गतत्वाय 'निःश्रेयसाय' मोक्षाय 'आनुगामिकत्वाय' परम्पराशुभानुबन्धसुखाय भविष्यति 'इतिकृत्वा' इतिहेतोर्बहवः 'उग्राः' आदिदेवावस्थापिताऽऽरक्षकवंशजाताः 'भोगाः' तेनैवावस्थापितगुरुवंशजाताः 'राजन्याः' भगवद्वयस्यवंशजाः 'क्षत्रियाः' राजकुलीनाः 'भटाः' शौर्यवन्तः 'योधाः' तेभ्यो विशिष्टतराः मल्लकिनो लेच्छकिनश्च राजविशेषाः 'राजानः' नृपाः 'ईश्वराः' युवराजास्तदन्ये च महर्द्धिकाः 'तलवराः' प्रतुष्टनरपतिवितीर्णपट्टबन्धविभूषिता राजस्थानीयाः 'माडम्बिकाः' संनिवेशविशेषनायकाः 'कौटुम्बिकाः' कतिपयकुटुम्बप्रभवो राजसेवकाः, उत्कृष्टिश्च– आनन्दमहाध्वनिः सिंहनादश्च–प्रतीतः बोलश्च–वर्णव्यक्तिवर्जितो महाध्वनिः कलकलश्च–अव्यक्तवचनः स एवैतल्लक्षणो यो रवस्तेन समुद्ररवभूतमिव–जलधिशब्दप्राप्तमिव तन्मयमित्यर्थः नगरमिति गम्यत इति । एतस्यार्थस्य सङ्क्षेपं कुर्वन्नाह—'परिसा निग्गच्छति'त्ति। 'तए णं'ति 'ततः' अनन्तरम् 'इमेयारूवे'त्ति 'अयं' वक्ष्यमाणतया प्रत्यक्षः स च कविनोच्यमानो न्यूनाधिकोऽपि भवतीत्यत आह–एतदेव रूपं यस्यासावेतद्रूपः 'अज्झत्थिए'त्ति आध्यात्मिक आत्मविषयः 'चिंतिए'त्ति स्मरणरूपः 'पत्थिए'त्ति प्रार्थितः–अभिला-

॥ ११५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रस्य क्रमांकने अत्र मुद्रण-दोष: सम्भाव्यते (यहाँ सूत्र-क्रम ९० ही चल रहा है मगर ९१ मुद्रित हुआ है)

स्कंदक (खंधक) चरित्र



आत्मकः 'मणोगए'त्ति मनस्येव यो गतो न बहिः वचनेनाप्रकाशनात्स तथा 'सङ्कल्पः' विकल्पः 'समुप्पज्जित्थ'त्ति समुत्पन्नवान् , 'सेयं'त्ति श्रेयः–कल्याणं 'पुच्छित्तए'त्ति योगः 'इमाइं च णं'ति प्राकृतत्वाद् 'इमान्' अनन्तरोक्तत्वेन प्रत्यक्षासन्नान् चशब्दादन्यांश्च 'एयारूवाइं'ति 'एतद्रूपान्' उक्तस्वरूपान्, अथवैतेषामेवानन्तरोक्तानामर्थानां रूपं येषां प्रष्टव्यतासाधर्म्यात्तत्तथा तान् 'अर्थान्' भावान् लोकसान्तत्वादींस्तदन्यांश्च 'हेऊइं'ति अन्वयव्यतिरेकलक्षणहेतुगम्यत्वाद्धेतवो–लोकसान्तत्वादय एव तदन्ये चातस्तान् 'पसिणाइं'ति प्रश्नविषयत्वात् प्रश्ना एत एव तदन्ये वाऽतस्तान् 'कारणाइं'ति कारणम्–उपपत्तिमात्रं तद्विषयत्वात्कारणानि एत एव तदन्ये वाऽतस्तानि 'वागरणाइं' ति व्याक्रियमाणत्वाद्व्याकरणानि एत एव तदन्ये वाऽतस्तानि 'पुच्छित्तए'त्ति प्रष्टुं 'तिकट्टु'इतिकृत्वाऽनेन कारणेन 'एवं संपेहेइ'त्ति 'एवम्' उक्तप्रकारं भगवद्वन्दनादिकरणमित्यर्थः 'संप्रेक्षते' पर्यालोचयति 'परिव्वायावसहे'त्ति परिव्राजकमठः 'कुण्डिका' कमण्डलु 'काञ्चनिका' रुद्राक्षकृता 'करोटिका' मृद्भाजनविशेषः 'भृशिका' आसनविशेषः 'केशरिका' प्रमार्जनार्थं चीवरखण्डं 'षड्नालकं' त्रिकाष्ठिका 'अङ्कुशकं' तरुपल्लवग्रहणार्थमङ्कुशाकृतिः 'पवित्रकम्' अङ्गुलीयकं 'गणेत्रिका' कलाचिकाऽऽभरणविशेषः 'धाउरत्ताओ'त्ति साटिका इति विशेषः, 'तिदंडे'त्यादि त्रिदण्डकादीनि दश हस्ते गतानि–स्थितानि यस्य स तथा, 'पहारेत्थ'त्ति 'प्रधारितवान्' सङ्कल्पितवान् 'गमनाय' गन्तुं । 'गोयमाइ'त्ति गौतम इति एवमामन्त्र्येति शेषः, अथवाऽयीत्यामन्त्रणार्थमेव । 'से काहे व'त्ति अथ कदा वा ? कस्यां वेलायामित्यर्थः 'किह व'त्ति केन वा प्रकारेण ? साक्षाद्दर्शनतः श्रवणतो वा 'केवचिरेण व'त्ति कियतो वा कालात् ?, 'सावत्थी नामं नयरी होत्थ'त्ति विभक्तिपरि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णामादस्तीत्यर्थः, अथवा कालस्यावसर्प्पिणीत्वात्प्रसिद्धगुणा कालान्तर एवाभवन्नेदानीमिति। 'अदूराइगए'त्ति अदूरे आगतः, स चावधिस्थानापेक्षयाऽपि स्यात् अथवा दूरतरमार्गापेक्षया [ग्रंथा० ३०००] क्रोशादिकमप्यदूरं स्यादत उच्यते–'बहुसंपत्ते'ईषदूनसंप्राप्तो बहुसंप्राप्तः, स च विश्रामादिहेतोरारामादिगतोऽपि स्यादत उच्यते–'अद्धाणपडिवन्ने'त्ति मार्गप्रतिपन्नः, किमुक्तं भवति ?–'अंतरापहे वट्टइ'त्ति विवक्षितस्थानयोरन्तरालमार्गे वर्त्तत इति। अनेन च सूत्रेण कथं द्रक्ष्यामि ? इत्यस्योत्तरमुक्तं, कथं ?, यतोऽदूरागतादिविशेषणस्य साक्षादेव दर्शनं संभवति, तथा 'अज्जेव णं दच्छसि'इत्यनेन कियच्चिरादित्यस्योत्तरमुक्तं, 'काहे'इत्यस्य चोत्तरं सामर्थ्यगम्यं, यतो यदि भगवता मध्याह्नसमये इयं वार्त्ताऽभिहिता तदा मध्याह्नस्योपरि मुहूर्त्ताद्यतिक्रमणे या वेला भवति तस्यां द्रक्ष्यसीति सामर्थ्यादुक्तम्, अदूरागतादिविशेषणस्य हि तद्देशप्राप्तौ मुहूर्त्तादिरेव कालः संभवति न बहुतर इति। 'अगाराओ'त्ति निष्क्रम्येतिशेषः 'अनगारितां' साधुतां 'प्रव्रजितुं' गन्तुम्, अथवा विभक्तिपरिणामादनगारितया 'प्रव्रजितुं' प्रव्रज्यां प्रतिपत्तुम् 'अब्भुट्ठेति'त्ति आसनं त्यजति, यच्च भगवतो गौतमस्यासंयतं प्रत्यभ्युत्थानं तद्भाविसंयतत्वेन तस्य पक्षपातविषयत्वाद् गौतमस्य चाक्षीणरागत्वात्, तथा भगवदाविष्कृततदीयविकल्पस्य तत्समीपगमनतस्तत्कथनाद् भगवज्ज्ञानातिशयप्रकाशनेन भगवत्यतीव बहुमानोत्पादनस्य चिकीर्षितत्वादिति। 'हे खंदय'त्ति सम्बोधनमात्रं 'सागयं खंदय'त्ति 'स्वागतं' शोभनमागमनं तव स्कन्दक ! महाकल्याणनिधेर्भगवतो महावीरस्य संपर्केण तव, कल्याणनिबन्धनत्वात्तस्य, 'सुसागयं'ति अतिशयेन स्वागतं, कथञ्चिदेकार्थौ वा शब्दावेतौ, एकार्थशब्दोच्चारणं च क्रियमाणं न दुष्टं, संभ्रमनिमित्तत्वादस्येति, 'अणु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रस्य क्रमांकने अत्र मुद्रण-दोषः सम्भाव्यते (यहाँ सूत्र-क्रम ९० ही चल रहा है मगर ९१ मुद्रित हुआ है)

स्कंदक (खंधक) चरित्र

रागयं खंदय !'त्ति रेफस्यागमिकत्वाद् 'अन्वागतम्' अनुरूपमागमनं स्कन्दक ! तवेति दृश्यं, 'सागयमणुरागयं'ति शोभनत्वानुरूपत्वलक्षणधर्मद्वयोपेतं तवागमनमित्यर्थः, 'जेणेव इहं'ति यस्यामेव दिशीदं भगवत्समवसरणं 'तेणेव'त्ति तस्यामेव दिशि "अत्थे समत्थे'त्ति अस्त्येषोऽर्थः?,'अट्ठे समट्ठे'त्ति पाठान्तरं, काक्का चेदमध्येयं, ततश्चार्थः किं 'समर्थः' सङ्गतः ? इति प्रश्नः स्यात्, उत्तरं तु 'हंता अत्थि' सद्भूतोऽयमर्थ इत्यर्थः। 'णाणी'त्यादि, अस्यायमभिप्रायः–ज्ञानी ज्ञानसामर्थ्याज्जानाति तपस्वी च तपःसामर्थ्यादेवतासान्निध्याज्जानातीति प्रश्नः कृतः 'रहस्सकडे'त्ति रहःकृतः–प्रच्छन्नकृतो, हृदय एवावधारितत्वात्,

गच्छामो णं गोयमा ! तव धम्मायरियं धम्मोवदेसयं समणं भगवं महावीरं वंदामो णमंसामो जाव पज्जुवासामो, अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं, तए णं से भगवं गोयमे खंदएणं कच्चायणस्सगोत्तेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव पहारेत्थ गमणयाए। तेणं कालेणं २ समणे भगवं महावीरे वियडभोतीयावि होत्था, तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स वियट्टभोगियस्स सरीरं ओरालं सिंगारं कल्लाणं सिवं धण्णं मंगल्लं सस्सिरीयं अणलंकियविभूसियं लक्खणवंजणगुणोववेयं सिरीए अतीव २ उवसोभमाणे चिट्ठइ। तएणं से खंदए कच्चायणस्सगोत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स वियट्टभोगिस्स सरीरं ओरालं जाव अतीव २ उवसोभेमाणं पासइ २ त्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता समणं भगवं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९१]

दीप अनुक्रम [११२]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १

॥११७॥

महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणप्पयाहिणं करेइ जाव पज्जुवासइ। खंदयाति समणे भगवं महावीरे खंदयं कच्चाय० एवं वयासी–से नूणं तुमं खंदया! सावत्थीए नयरीए पिंगलएणं णियंठेणं वेसालियसावएणं इणमक्खेवं पुच्छिए मागहा! किं सअंते लोए अणंते लोए एवं तं जेणेव मम अंतिए तेणेव हव्वमागए, से नूणं खंदया! अयमट्ठे समट्ठे?, हंता अत्थि, जेविय ते खंदया! अयमेयारूवे अब्भत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था–किं सअंते लोए अणंते लोए? तस्सवि य णं अयमट्ठे–एवं खलु मए खंदया! चउव्विहे लोए पन्नत्ते, तंजहा—दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ। दव्वओ णं एगे लोए स-अंते?, खेत्तओ णं लोए असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयामविक्खंभेणं असंखेज्जाओ जोयणको-डाकोडीओ परिक्खेवेणं प० अत्थि पुण सअंते २, कालओ णं लोए ण कयावि न आसी न कयावि न भवति न कयावि न भविस्सति भविंसु य भवति य भविस्सइ य धुवे णितिए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे, णत्थि पुण से अंते ३, भावओ णं लोए अणंता वण्णपज्जवा गंध० रस० फासपज्जवा अणंता संठाणपज्जवा अणंता गरुयलहुयपज्जवा अणंता अगरुयलहुयपज्जवा, नत्थि पुण से अंते ४, सेत्तं खंदगा! दव्वओ लोए स-अंते खेत्तओ लोए सअंते कालतो लोए अणंते भावओ लोए अणंते। जेवि य ते खंदया! जाव सअंते जीवे अणंते जीवे, तस्सवि य णं अयमट्ठे–एवं खलु जाव दव्वओ णं एगे जीवे सअंते, खेत्तओ णं जीवे असंखेज्जपएसिए असंखेज्जपदेसोगाढे अत्थि पुण से अंते, कालओ णं जीवे न कयावि न आसि जाव निच्चे-

२ शतके उद्देशः १ स्कन्दकच-रितं सू ९१

॥११७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्कंदक (खंधक) चरित्र

नत्थि पुण से अंते, भावओ णं जीवे अणंता णाणपज्जवा अणंता दंसणप० अणंता चरित्तप० अणंता अगुरु-लहुयप० नत्थि पुण से अंते, सेत्तं दव्वओ जीवे सअंते खेत्तओ जीवे सअंते कालओ जीवे अणंते भावओ जीवे अणंते। जेवि य ते खंदया पुच्छा [इमेयारूवे चिंतिए जाव सअंता सिद्धी अणंता सिद्धी, तस्सवि य णं अयमट्ठे खंदया !–मए एवं खलु चउव्विहा सिद्धी पण्ण०, तं०–दव्वओ ४, दव्वओ णं एगा सिद्धी] खेत्तओ णं सिद्धी पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं एगा जोयणकोडी बायालीसं च जोयणसयसहस्साइं तीसं च जोयणसहस्साइं दोन्नि य अउणापन्नजोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खे-वेणं अत्थि पुण से अंते, कालओ णं सिद्धी न कयावि न आसि, भावओ य जहा लोयस्स तहा भाणियव्वा, तत्थ दव्वओ सिद्धी सअंता खे० सिद्धी सअंता का० सिद्धी अणंता भावओ सिद्धी अणंता। जेवि य ते खंदया ! जाव किं अणंते सिद्धे तं चेव जाव दव्वओ णं एगे सिद्धे सअंते, खे० सिद्धे असंखेज्जपएसिए असंखेज्जपदेसोगाढे, अत्थि पुण से अंते, कालओ णं सिद्धे सादीए अपज्जवसिए नत्थि पुण से अंते, भा० सिद्धे अणंता णाणपज्जवा अणंता दंसणपज्जवा जाव अणंता अगुरुलहुयप० नत्थि पुण से अंते, सेत्तं दव्व-ओ सिद्धे सअंते खेत्तओ सिद्धे सअंते का० सिद्धे अणंते भा० सिद्धे अणंते। जेवि य ते खंदया ! इमेयारूवे अब्भत्थिए चिंतिए जाव समुप्पज्जित्था–केण वा मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढति वा हायति वा ?, तस्सवि य णं अयमट्ठे एवं खलु खंदया !–मए दुविहे मरणे पण्णत्ते, तंजहा–बालमरणे य पंडियमरणे य, से किं तं बाल-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥११८॥

मरणे ?, २ दुवालसविहे प०, तं–वलयमरणे वसट्टमरणे अंतोसल्लमरणे तब्भवमरणे गिरिपडणे तरु-पडणे जलप्पवेसे जलणप्प० विसभक्खणे सत्थोवाडणे वेहाणसे गिद्धपट्ठे। इच्चेतेणं खंदया ! दुवालसविहेणं बालमरणेणं मरमाणे जीवे अणंतेहिं नेरइयभवग्गहणेहिं अप्पाणं संजोएइ तिरियमणुदेव० अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरियट्टइ, सेत्तं मरमाणे वहुइ २, सेत्तं बालमरणे। से किं तं पंडियमरणे ?, २ दुविहे प०, तं०–(ग्रं० १०००) पाओवगमणे य भत्तपच्चक्खाणे य। से किं तं पाओवग-मणे ?, २ दुविहे प०, तं०–नीहारिमे य अनीहारिमे य नियमा अप्पडिकमे, सेत्तं पाओवगमणे। से किं तं भत्तपच्चक्खाणे ?, २ दुविहे पं०, तं०–नीहारिमे य अनीहारिमे य, नियमा सपडिक्कमे, सेत्तं भत्तपच्चक्खाणे। इच्चेते खंदया ! दुविहेणं पंडियमरणेणं मरमाणे जीवे अणंतेहिं नेरइयभवग्गहणेहिं अप्पाणं विसंजोएइ जाव वीईवयति, सेत्तं मरमाणे हायइ, सेत्तं पंडियमरणे। इच्चेएणं खंदया ! दुविहेणं मरणेणं मरमाणे जीवे वहुइ वा हायति वा ॥ (सू० ९१) ॥

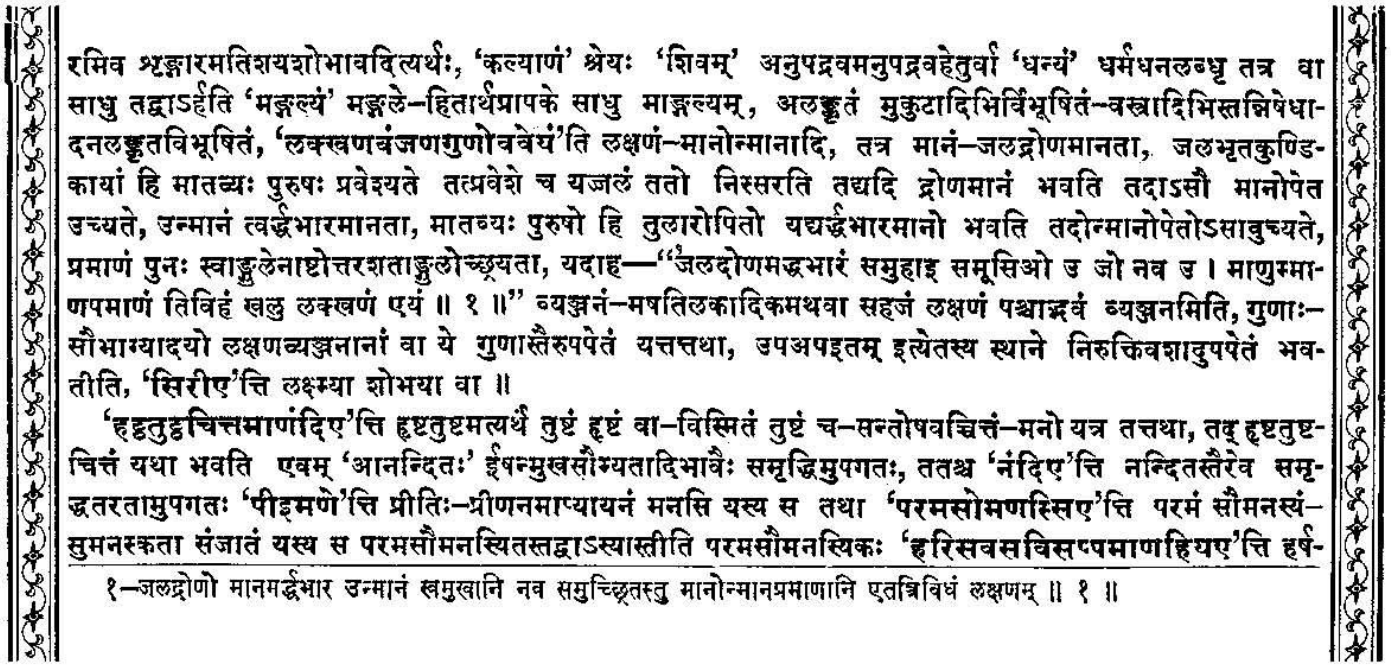
'धम्मायरिए'त्ति कुत एतत् ? इत्याह—'धम्मोवएसए'त्ति, उत्पन्नज्ञानदर्शनधरो न तु सदा संशुद्धः, अर्ह-द्वन्दनाद्यर्हत्वात्, जिनो रागादिजेतृत्वात्, केवली असहायज्ञानत्वात्, अत एवातीतप्रत्युत्पन्नानागतविज्ञायकः, स च देशज्ञोऽपि स्यादित्याह—सर्वज्ञः सर्वदर्शी, 'वियट्टभोइ'त्ति व्यावृत्ते २ सूर्ये भुङ्क्ते इत्येवंशीलो व्यावृत्तभोजी प्रतिदिनभोजीत्यर्थः, 'ओरालं'ति प्रधानं 'सिंगारं'ति शृङ्गारः–अलङ्कारादिकृता शोभा तद्योगात् शृङ्गारं, शृङ्गा-

२ शतके उद्देशः १ स्कन्द्रकच-रितं सू ९१

॥११८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	स्कंदक (खंधक) चरित्र



रमिव शृङ्गारमतिशयशोभावदित्यर्थः, 'कल्याणं' श्रेयः 'शिवम्' अनुपद्रवमनुपद्रवहेतुर्वा 'धन्यं' धर्मधनलब्धृ तत्र वा साधु तद्वाऽर्हति 'मङ्गल्यं' मङ्गले–हितार्थप्रापके साधु माङ्गल्यम्, अलङ्कृतं मुकुटादिभिर्विभूषितं–वस्त्रादिभिस्तन्निषेधादनलङ्कृतविभूषितं, 'लक्खणवंजणगुणोववेयं'ति लक्षणं–मानोन्मानादि, तत्र मानं–जलद्रोणमानता, जलभृतकुण्डिकायां हि मातव्यः पुरुषः प्रवेश्यते तत्प्रवेशे च यज्जलं ततो निस्सरति तद्यदि द्रोणमानं भवति तदाऽसौ मानोपेत उच्यते, उन्मानं त्वर्द्धभारमानता, मातव्यः पुरुषो हि तुलारोपितो यद्यर्द्धभारमानो भवति तदोन्मानोपेतोऽसावुच्यते, प्रमाणं पुनः स्वाङ्गुलेनाष्टोत्तरशताङ्गुलोच्छ्रयता, यदाह—"जलदोणमद्धभारं समुहाइ समूसिओ उ जो नव उ। माणुम्माणपमाणं तिविहं खलु लक्खणं एयं ॥ १ ॥" व्यञ्जनं–मषतिलकादिकमथवा सहजं लक्षणं पश्चाद्भवं व्यञ्जनमिति, गुणाः–सौभाग्यादयो लक्षणव्यञ्जनानां वा ये गुणास्तैरुपपेतं यत्तत्तथा, उपअपइतम् इत्येतस्य स्थाने निरुक्तिवशादुपपेतं भवतीति, 'सिरीए'त्ति लक्ष्म्या शोभया वा ॥

'हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए'त्ति हृष्टतुष्टमत्यर्थं तुष्टं हृष्टं वा–विस्मितं तुष्टं च–सन्तोषवच्चित्तं–मनो यत्र तत्तथा, तद् हृष्टतुष्टचित्तं यथा भवति एवम् 'आनन्दितः' ईषन्मुखसौम्यतादिभावैः समृद्धिमुपगतः, ततश्च 'नंदिए'त्ति नन्दितस्तैरेव समृद्धतरतामुपगतः 'पीइमणे'त्ति प्रीतिः–प्रीणनमाप्यायनं मनसि यस्य स तथा 'परमसोमणस्सिए'त्ति परमं सौमनस्यं–सुमनस्कता संजातं यस्य स परमसौमनस्यितस्तद्भावाऽस्यास्तीति परमसौमनस्यिकः 'हरिसवसविसप्पमाणहियए'त्ति हर्ष-

१–जलद्रोणो मानमर्द्धभार उन्मानं खमुखानि नव समुच्छ्रितस्तु मानोन्मानप्रमाणानि एतत्त्रिविधं लक्षणम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥११९॥

वशेन विसर्प्पद्–विस्तारं व्रजद् हृदयं यस्य स तथा, एकार्थिकानि वैतानि प्रमोदप्रकर्षप्रतिपादनार्थानीति । 'दव्वओ णं एगे लोए सअंते'त्ति पञ्चास्तिकायमयैकद्रव्यत्वाल्लोकस्य सान्तोऽसौ, 'आयामविक्खंभेणं'ति आयामो–दैर्घ्यं विष्कम्भो–विस्तारः 'परिक्खेवेणं'ति परिधिना 'भुविंसु य'त्ति अभवत् इत्यादिभिश्च पदैः पूर्वोक्तपदानामेव तात्पर्यमुक्तं, 'धुवे'त्ति ध्रुवोऽचलत्वात् स चानियतरूपोऽपि स्यादत आह–'णियए'त्ति नियत एकस्वरूपत्वात्, नियतरूपः कादाचित्कोऽपि स्यादत आह–'सासए'त्ति शाश्वतः प्रतिक्षणं सद्भावात्, स च नियतकालापेक्षयाऽपि स्यादित्यत आह–'अक्खए'त्ति अक्षयोऽविनाशित्वात्, अयं च बहुतरप्रदेशापेक्षयाऽपि स्यादित्यत आह–'अव्वए'त्ति अव्ययस्तत्प्रदेशानामव्ययत्वात्, अयं च द्रव्यतयाऽपि स्यादित्याह–'अवट्ठिए'त्ति अवस्थितः पर्यायाणामनन्ततयाऽवस्थितत्वात्, किमुक्तं भवति ?–नित्य इति, 'वण्णपज्जव'त्ति वर्णविशेषा एकगुणकालत्वादयः, एवमन्येऽपि गुरुलघुपर्यवास्तद्विशेषा बादरस्कन्धानाम्, अगुरुलघुपर्यवा अणूनां सूक्ष्मस्कन्धानाममूर्त्तानां च,'नाणपज्जव'त्ति ज्ञानपर्याया ज्ञानविशेषा बुद्धिकृता वाऽविभागपरिच्छेदाः, अनन्ता गुरुलघुपर्याया औदारिकादिशरीराण्याश्रित्य, इतरे तु कार्मणादिद्रव्याणि जीवस्वरूपं चाश्रित्येति । 'जेवि य ते खंदया पुच्छ'त्ति अनेन समग्रं सिद्धिप्रश्नसूत्रमुपलक्षणत्वाच्चोत्तरसूत्रांशश्च सूचितः, तच्च द्वयमप्येवम्–'जेवि य ते खंदया इमेयारूवे जाव किं सअंता सिद्धी अणंता सिद्धी तस्सवि य णं अयमट्ठे, एवं खलु मए खंदया ! चउव्विहा सिद्धी पण्णत्ता, तंजहा—दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओत्ति, दव्वओ णं एगा सिद्धि'त्ति, इह सिद्धिर्यद्यपि परमार्थतः सकलकर्मक्षयरूपा सिद्धाधाराऽऽकाशदेशरूपा वा तथाऽपि सिद्धाधाराकाशदेशप्रत्यासन्नत्वेनेषत्प्राग्भारा

२ शतके उद्देशः १ स्कन्दकचरितं सू ९१

॥११९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	स्कंदक (खंधक) चरित्र

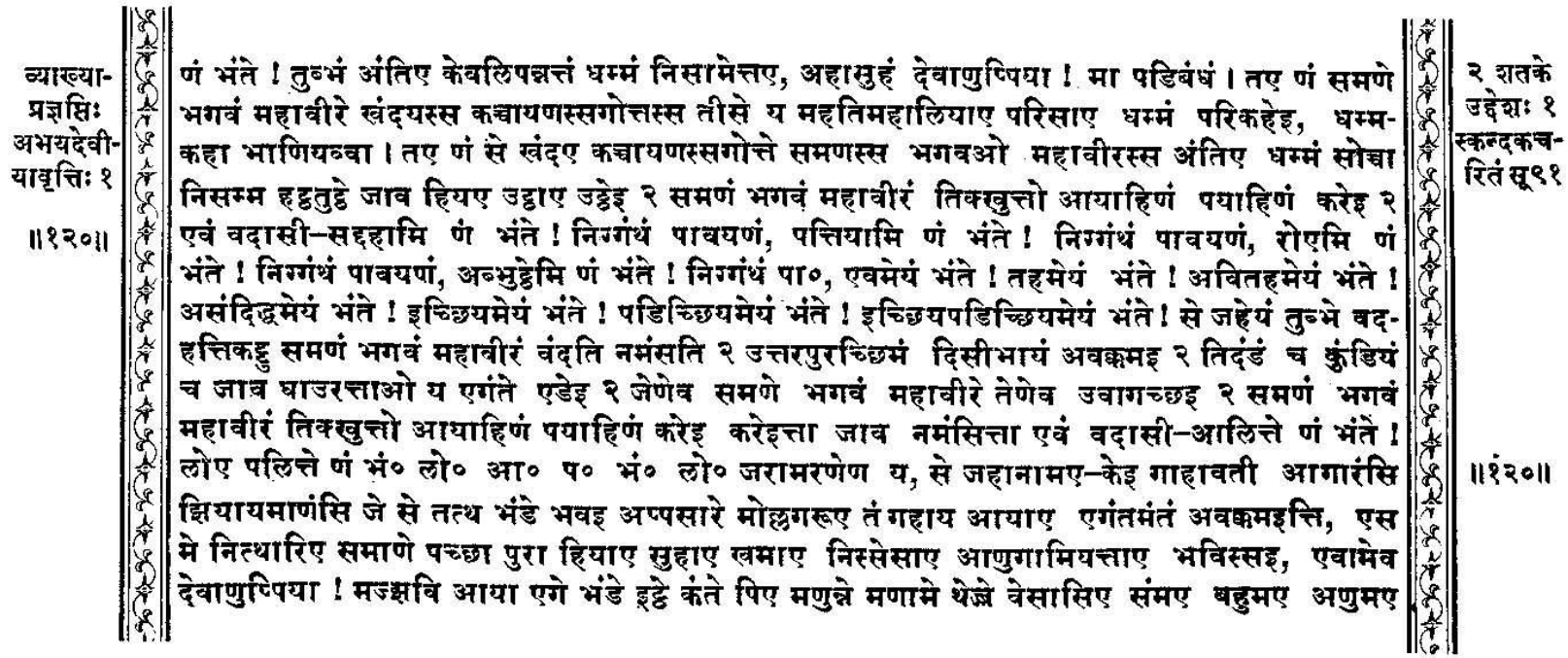
पृथिवी सिद्धिरुक्ता, 'किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं'ति किञ्चिन्यूनगव्यूतद्वयाधिके द्वे योजनशते एकोनपञ्चाशदुत्तरे भवत इति। 'वलयमरणे'त्ति वलतो–बुभुक्षापरिगतत्वेन वलवलायमानस्य–संयमाद्वा भ्रस्यतो (यत्)मरणं तद्वलन्मरणं, तथा वशेन–इन्द्रियवशेन ऋतस्य–पीडितस्य दीपकलिकारूपाक्षिसचक्षुषः शलभस्येव यन्मरणं तद् वशार्त्तमरणं, तथाऽन्तःशल्यस्य द्रव्यतोऽनुद्धृततोमरादेः भावतः सातिचारस्य यन्मरणं तदन्तःशल्यमरणं, तथा तस्मै भवाय मनुष्यादेः सतो मनुष्यादावेव बद्धायुषो यन्मरणं तत्तद्भवमरणम्, इदं च नरतिरश्चामेवेति, 'सत्थोवाडणे'त्ति शस्त्रेण–क्षुरिकादिना अवपाटनं–विदारणं देहस्य यस्मिन् मरणे तच्छस्त्रावपाटनं, 'वेहाणसे'त्ति विहायसि–आकाशे भवं वृक्षशाखाद्युद्बन्धनेन यत्तन्निरुक्तिवशाद्वैहानसं, 'गिद्धपट्ठे'त्ति गृध्रैः–पक्षिविशेषैर्गृद्धैर्वा–मांसलुब्धैः शृगालादिभिः स्पृष्टस्य–विदारितस्य करिकरभरासभादिशरीरान्तर्गतत्वेन यन्मरणं तद्गृध्रस्पृष्टं वा गृद्धस्पृष्टं वा गृध्रैर्वा भक्षितस्य–स्पृष्टस्य यत्तद्गृध्रस्पृष्टम्। 'दुवालसविहेणं बालमरणेणं'ति उपलक्षणत्वादस्यान्येनापि बालमरणान्तःपातिना मरणेन म्रियमाण इति 'वड्ढइ वड्ढइ'त्ति संसारवर्द्धनेन भृशं वर्द्धते जीवः, इदं हि द्विर्वचनं भृशार्थे इति। 'पाओवगमणे'त्ति पादपस्येवोपगमनम्–अस्पन्दतयाऽवस्थानं पादपोपगमनम्, इदं च चतुर्विधाहारपरिहारनिष्पन्नमेव भवतीति। 'नीहारिमे य'त्ति निर्हारेण निर्वृत्तं यत्तन्निर्हारिमं प्रतिश्रये यो म्रियते तस्यैतत्, तत्कडेवरस्य निर्हारणात्, अनिर्हारिमं तु योऽटव्यां म्रियते इति। यच्चान्यत्रेह स्थाने इङ्गितमरणमभिधीयते तद्भक्तप्रत्याख्यानस्यैव विशेष इति नेह भेदेन दर्शितमिति।

एत्थ णं से खंदए कच्चायणस्स गोत्ते संबुद्धे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ एवं वदासी–इच्छामि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९२]

दीप अनुक्रम [११३]



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-यावृत्तिः १

॥१२०॥

णं भंते ! तुब्भं अंतिए केवलिपन्नत्तं धम्मं निसामेत्तए, अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं । तए णं समणे भगवं महावीरे खंदयस्स कच्चायणस्सगोत्तस्स तीसे य महतिमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ, धम्मकहा भाणियव्वा । तए णं से खंदए कच्चायणस्सगोत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे जाव हियए उट्ठाए उट्ठेइ २ समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २ एवं वदासी–सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, अब्भुट्ठेमि णं भंते ! निग्गंथं पा०, एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! अवितहमेयं भंते ! असंदिद्धमेयं भंते ! इच्छियमेयं भंते ! पडिच्छियमेयं भंते ! इच्छियपडिच्छियमेयं भंते ! से जहेयं तुब्भे वदहत्तिकट्टु समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति २ उत्तरपुरच्छिमं दिसीभायं अवक्कमइ २ तिदंडं च कुंडियं च जाव धाउरत्ताओ य एगंते एडेइ २ जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ २ समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ करेइत्ता जाव नमंसित्ता एवं वदासी–आलित्ते णं भंते ! लोए पलित्ते णं भं० लो० आ० प० भं० लो० जरामरणेण य, से जहानामए–केइ गाहावती आगारंसि झियायमाणंसि जे से तत्थ भंडे भवइ अप्पसारे मोल्लगरूए तं गहाय आयाए एगंतमंतं अवक्कमइत्ति, एस मे नित्थारिए समाणे पच्छा पुरा हियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ, एवामेव देवाणुप्पिया ! मज्झवि आया एगे भंडे इट्ठे कंते पिए मणुन्ने मणामे थेज्जे वेसासिए संमए बहुमए अणुमए

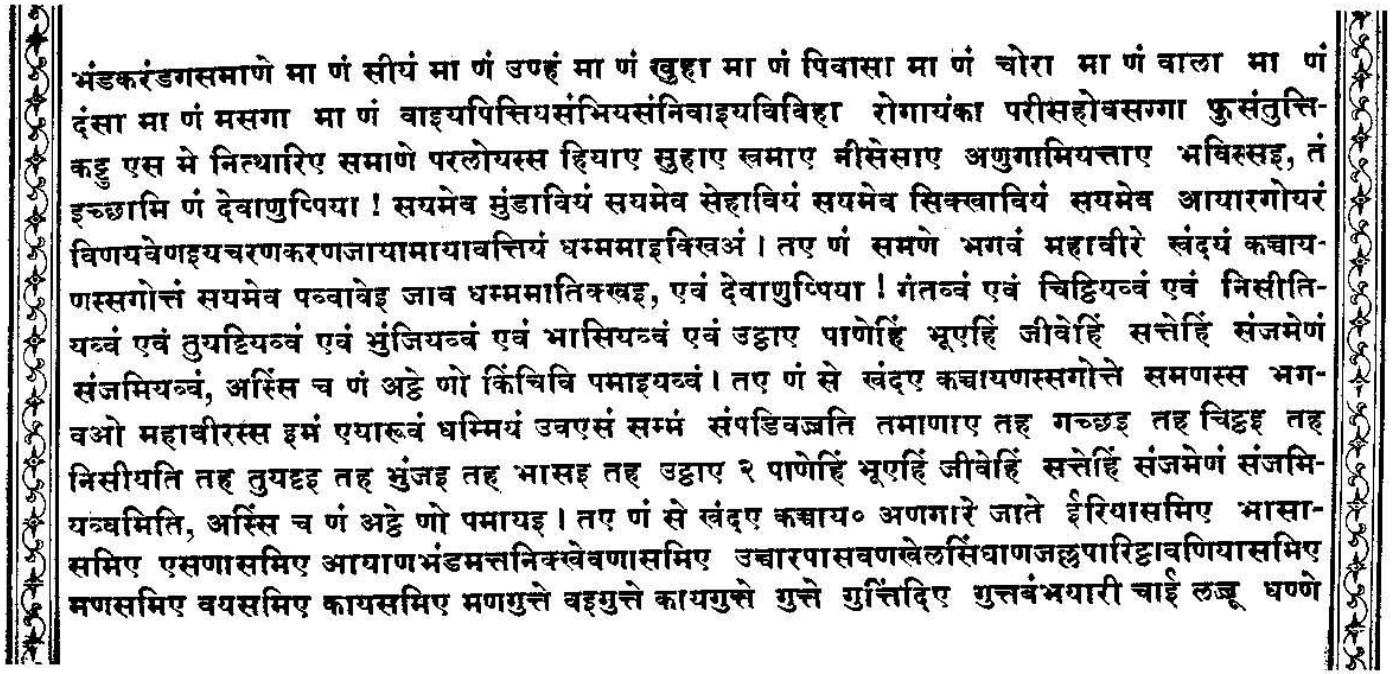
२ शतके उद्देशः १ स्कन्दकचरितं सू९१

॥१२०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

***अत्र मूल-संपादने एक सामान्य मुद्रण-दोष: दृश्यते (यहाँ दायीं तरफ ऊपर सू ९१ लिखा है, वहां सू ९२ होना चाहिए, क्योंकि सूत्र के आखिर में ९२ ही लिखा है, मूल सम्पादनमें यह भूल का कारण है---सूत्र ९० को दो भागोमे बांटना, ऐसे दो भाग "आगममञ्जूषा" में भी नहीं है)

स्कंदक (खंधक) चरित्र



भंडकरंडगसमाणे मा णं सीयं मा णं उण्हं मा णं खुहा मा णं पिवासा मा णं चोरा मा णं वाला मा णं दंसा मा णं मसगा मा णं वाइयपित्तियसंभियसंनिवाइयविविहा रोगायंका परीसहोवसग्गा फुसंतुत्ति- कट्टु एस मे नित्थारिए समाणे परलोयस्स हियाए सुहाए खमाए नीसेसाए अणुगामियत्ताए भविस्सइ, तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! सयमेव मुंडावियं सयमेव सेहावियं सयमेव सिक्खावियं सयमेव आयारगोयरं विणयवेणइयचरणकरणजायामायावत्तियं धम्ममाइक्खिअं। तए णं समणे भगवं महावीरे खंदयं कच्चायणस्सगोत्तं सयमेव पव्वावेइ जाव धम्ममातिक्खइ, एवं देवाणुप्पिया ! गंतव्वं एवं चिट्ठियव्वं एवं निसीतियव्वं एवं तुयट्टियव्वं एवं भुंजियव्वं एवं भासियव्वं एवं उट्ठाए पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं, अस्सिं च णं अट्ठे णो किंचिवि पमाइयव्वं। तए णं से खंदए कच्चायणस्सगोत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स इमं एयारूवं धम्मियं उवएसं सम्मं संपडिवज्जति तमाणाए तह गच्छइ तह चिट्ठइ तह निसीयति तह तुयट्टइ तह भुंजइ तह भासइ तह उट्ठाए २ पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वमिति, अस्सिं च णं अट्ठे णो पमायइ। तए णं से खंदए कच्चाय० अणगारे जाते ईरियासमिए भासासमिए एसणासमिए आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिए उच्चारपासवणखेलसिंघाणजल्लपारिट्ठावणियासमिए मणसमिए वयसमिए कायसमिए मणगुत्ते वइगुत्ते कायगुत्ते गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी चाई लज्जू धण्णे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्कंदक (खंधक) चरित्र

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१ ॥१२१॥

खंतिखमे जिइंदिए सोहिए अणियाणे अप्पुस्सुए अबहिल्लेस्से सुसामण्णरए दंते इणमेव णिग्गंथं पावयणं पुरओ काउं विहरइ ॥ (सू० ९२) ॥

'धम्मकहा भाणियव्व'त्ति, सा चैवम्—"जह जीवा बज्झंती मुच्चंती जह य संकिलिस्संती । जह दुक्खाणं अंतं करेंति केई अपडिबद्धा ॥ १ ॥ अट्टनियट्टियचित्ता जह जीवा दुक्खसागरमुवेंति । जह वेरग्गमुवगया कम्मसमुग्गं विहाडिंति ॥ २ ॥" इत्यादि, इह च 'अट्टनियट्टियचित्ता' आर्त्तं निर्वर्त्तितं चित्तं यैस्ते तथा, आर्त्ताद्वानिर्वर्त्तितं चित्तं यैस्ते आर्त्तनिर्वर्तितचित्ताः । 'सद्दहामि'त्ति निर्ग्रन्थं प्रवचनमस्तीति प्रतिपद्ये 'पत्तियामि'त्ति प्रीतिं प्रत्ययं वा सत्यमिदमित्येवंरूपं तत्र करोमीत्यर्थः 'रोएमि'त्ति चिकीर्षामीत्यर्थः 'अब्भुट्ठेमि'त्ति एतदङ्गीकरोमीत्यर्थः । अथ श्रद्धानाद्युल्लेखं दर्शयति–एवमेतन्नैर्ग्रन्थं प्रवचनं सामान्यतः, अथ यथैतद्यूयं वदथेति योगः । 'तहमेयं'ति तथैव तद्विशेषतः 'अवितहमेयं' सत्यमेतदित्यर्थः 'असंदिद्धमेयं'ति सन्देहवर्जितमेतत् 'इच्छियमेयं'ति इष्टमेतत् 'पडिच्छियमेयं'ति प्रतीप्सितं प्राप्तुमिष्टम् 'इच्छियपडिच्छियं'ति युगपदिच्छाप्रतीप्साविषयत्वात् 'तिकट्टु'त्ति इतिकृत्वेति, अथवा 'एवमेयं भंते !' इत्यादीनि पदानि यथायोगमेकार्थान्यत्यादरप्रदर्शनायोक्तानि । 'आलित्ते णं'ति अभिविधिना ज्वलितः 'लोए'त्ति जीवलोकः 'पलित्ते णं'ति प्रकर्षेण ज्वलितः एवंविधश्चासौ कालभेदेनापि स्यादत उच्यते–आदीप्तप्रदीप्त इति, 'जराए मर'

१–यथा जीवा बध्यन्ते मुच्यन्ते च संक्लिश्यन्ते यथा च केचिदप्रतिबद्धा दुःखानामन्तं कुर्वन्ति ॥ १ ॥ आर्त्तनिवर्तितचित्ता यथा जीवा दुःखसागर(संसारं)मुपयान्ति । यथा च वैराग्यमुपगताः कर्मसमुद्गमुद्घाटयन्ति ॥ २ ॥

२ शतके उद्देशः १ स्कन्दक-दीक्षाशिक्षे सू ९२

॥ १२१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णेण य'त्ति इह वह्निनेति वाक्यशेषो दृश्यः 'झियायमाणंसि'त्ति ध्यायमाने ध्मायति वा, दह्यमान इत्यर्थः, 'अप्पसारे'त्ति अल्पं च तत्सारं चेत्यल्पसारम् 'आयाए'त्ति आत्मना एकान्तं–विजनम् अन्तं–भूभागं 'पच्छा पुरा य'त्ति विवक्षितकालस्य पश्चात् पूर्वं च सर्वदैवेत्यर्थः 'थेज्जे'त्ति स्थैर्यधर्मयोगात् स्थैर्यो वैश्वासिको विश्वासप्रयोजनत्वात् संमतस्तत्कृतकार्याणां संमतत्वात् 'बहुमतः' बहुशो बहुभ्यो वाऽन्येभ्यः सकाशाद्बहुरिति वा मतो बहुमतः 'अनुमतः' अनुविप्रियकरणस्य पश्चादपि मतोऽनुमतः 'भंडकरंडगसमाणे'त्ति भाण्डकरण्डकम्–आभरणभाजनं तत्समान आदेयत्वादिति। 'मा णं सीत'मित्यादौ माशब्दो निषेधार्थः णमिति वाक्यालङ्कारार्थः, इह च स्पृशत्विति यथायोगं योजनीयम्, अथवा मा एनमात्मानमिति व्याख्येयं, 'वाल'त्ति व्यालाः–श्वापदभुजगाः 'मा णं वाइयपित्तियसंभियसन्निवाइय'त्ति इह प्रथमाबहुवचनलोपो दृश्यः 'रोगायंक'त्ति रोगाः–कालसहा व्याधयः आतङ्कास्त एव सद्यो घातिनः 'परीसहोवसग्ग'त्ति अस्य मा णमित्यनेन सम्बन्धः 'स्पृशन्तु' छुपन्तु भवन्त्वित्यर्थः 'त्तिकट्टु' इत्यभिसन्धाय यः पालित इति शेषः, स किम्? इत्याह—'तं इच्छामि'त्ति तत्तस्मादिच्छामि 'सयमेव'त्ति स्वयमेव भगवतैवेत्यर्थः प्रव्राजितं रजोहरणादिवेषदानेनात्मानमिति गम्यते, भावे वा क्तप्रत्ययस्तेन प्रव्राजनमित्यर्थः, मुण्डितं शिरोलुञ्चनेन 'सेहावियं'ति सेहितं प्रत्युपेक्षणादिक्रियाकलापग्राहणतः शिक्षितं सूत्रार्थग्राहणतः तथाऽऽचारः—श्रुतज्ञानादिविषयमनुष्ठानं कालाध्ययनादि गोचरो–भिक्षाटनम् एतयोः समाहारद्वन्द्वस्ततस्तदाख्यातमिच्छामीति योगः, तथा विनयः–प्रतीतो वैनयिकं–तत्फलं कर्मक्षयादि चरणं–व्रतादि करणं–पिण्डविशुद्ध्यादि यात्रा–संयमयात्रा मात्रा–तदर्थमेवाहारमात्रा, ततो विनया-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दीनां द्वन्द्वः, तत्रश्च विनयादीनां वृत्तिः–वर्त्तनं यत्रासौ विनयवैनयिकचरणकरणयात्रामात्रावृत्तिकोऽतस्तं धर्मम् 'आख्यातम्' अभिहितमिच्छामीति योगः। 'एवं देवाणुप्पिया! गंतव्वं'ति युगमात्रभून्यस्तदृष्टिनेत्यर्थः 'एवं चिट्ठियव्वं'ति निष्क्रमणप्रवेशादिवर्जिते स्थाने संयमात्मप्रवचनबाधापरिहारेणोर्ध्वस्थानेन स्थातव्यम्, 'एवं निसीइयव्वं'ति, 'निषि (षीदि) तव्यम्' उपवेष्टव्यं संदंशकभूमिप्रमार्जनादिन्यायेनेत्यर्थः 'एवं तुयट्टियव्वं'ति शयितव्यं सामायिकोच्चारणादिपूर्वकम् 'एवं भुंजियव्वं'ति धूमाङ्गारादिदोषवर्जनतः 'एवं भासियव्वं'ति मधुरादिविशेषणोपपन्नतयेति 'एवमुत्थायोत्थाय' भ्रमादनिद्राव्यपोहेन विबुद्ध्य २ प्राणादिषु विषये यः संयमो–रक्षा तेन संयंतव्यं–यतितव्यं 'तमाणाए'त्ति 'तद्' अनन्तरम् 'आज्ञया' आदेशेन 'ईरियासमिए'त्ति ईर्यायां–गमने समितः, सम्यक्प्रवृत्तत्वरूपं हि समितत्वम्, 'आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिए'त्ति आदानेन–ग्रहणेन सह भाण्डमात्राया–उपकरणपरिच्छदस्य या निक्षेपणा–न्यासस्तस्यां समितो यः स तथा 'उच्चारे'त्यादि, इह च 'खेल'त्ति कण्ठमुखश्लेष्मा सिङ्घानकं च–नासिकाश्लेष्मा, 'मणसमिए'त्ति संगतमनःप्रवृत्तिकः 'मणगुत्ते'त्ति मनोनिरोधवान् 'गुत्ते'त्ति मनोगुप्तत्वादीनां निगमनम्, एतदेव विशेषणायाह—'गुत्तिंदिए'त्ति 'गुत्तबंभयारी'ति गुप्तं–ब्रह्मगुप्तियुक्तं ब्रह्म चरति यः स तथा 'चाइ'त्ति सङ्गत्यागवान् 'लज्जु'त्ति संयमवान् रज्जुरिव वा रज्जुः–अवकव्यवहारः 'धन्ने'त्ति धन्यो–धर्मधनलब्धेत्यर्थः 'खंतिखमे'त्ति क्षान्त्या क्षमते न त्वसमर्थतया योऽसौ क्षान्तिक्षमः 'जितेन्द्रियः' इन्द्रियविकाराभावात्, यच्च प्राग्गुप्तेन्द्रिय इत्युक्तं तदिन्द्रियविकारगोपनमात्रेणापि स्यादिति विशेषः 'सोहिए'त्ति शोभितः शोभावान् शोधितो वा निराकृतातिचारत्वात्, सौहृदं–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्कंदक (खंधक) चरित्र

मैत्री सर्वप्राणिषु तद्योगात्सौहृदो वा 'अणियाणे'त्ति प्रार्थनारहितः 'अप्पुस्सुए'त्ति 'अल्पौत्सुक्यः' त्वरारहितः— 'अबहिल्लेस्से'त्ति अविद्यमाना बहिः–संयमाद्बहिस्ताल्लेश्या–मनोवृत्तिर्यस्यासावबहिर्लेश्यः 'सुसामन्नरए'त्ति शोभने श्रमणत्वे रतोऽतिशयेन वा श्रामण्ये रतः 'दंते'त्ति दान्तः क्रोधादिदमनात् द्वयन्तो वा रागद्वेषयोरन्तार्थं प्रवृत्तत्वात् 'इणमेव'त्ति इदमेव प्रत्यक्षं 'पुरओ काउं'ति अग्रे विधाय मार्गानभिज्ञो मार्गज्ञनरमिव पुरस्कृत्य वा–प्रधानीकृत्य 'विहरति' आस्ते इति ।

तए णं समणे भगवं महावीरे कयंगलाओ नयरीओ छत्तपलासयाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ २ बहिया जणवयविहारं विहरति । तए णं से खंदए अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ २ समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ एवं वयासी–इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए, अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं । तए णं से खंदए अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठे जाव नमंसित्ता मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, तए णं से खंदए अणगारे मासियभिक्खुपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं अहासम्मं काएण फासेति पालेति सोभेति तीरेति पूरेति किट्टेति अणुपालेइ आणाए आराहेइ संमं काएण फासित्ता जाव आराहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ २ समणं भगवं जाव नमं-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९३]

दीप अनुक्रम [११४]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १ ॥१२३॥

सित्ता एवं वयासी–इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे दोमासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं, तं चेव, एवं तेमासियं चाउम्मासियं पंचछसत्तमा०, पढमं सत्तराइंदियं दोच्चं सत्तराइंदियं तच्चं सत्तरातिंदियं अहोरातिंदियं एगरा०, तए णं से खंदए अणगारे एगराइंदियं भिक्खुपडिमं अहासुत्तं जाव आराहेत्ता जेणेव समणे० तेणेव उवागच्छति २ समणं भगवं म० जाव नमंसित्ता एवं वदासी–इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए, अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं । तए णं से खंदए अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे जाव नमंसित्ता गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरति, तं०–पढमं मासं चउत्थंचउत्थेणं अनिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे रत्तिं वीरासणेणं अवाउडेण य । एवं दोच्चं मासं छट्ठंछट्ठेणं एवं तच्चं मासं अट्ठमंअट्ठमेणं चउत्थं मासं दसमंदसमेणं पंचमं मासं बारसमंबारसमेणं छट्ठं मासं चोद्दसमंचोद्दसमेणं सत्तमं मासं सोलसमं २ अट्ठमं मासं अट्ठारसमं २ नवमं मासं वीसतिमं २ दसमं मासं बावीसं २ एक्कारसमं मासं चउव्वीसतिमं २ बारसमं मासं छव्वीसतिमं २ तेरसमं मासं अट्ठावीसतिमं २ चोद्दसमं मासं तीसइमं २ पन्नरसमं मासं बत्तीसतिमं २ सोलसमं मासं चोत्तीसइमं २ अनिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे रत्तिं वीरासणेणं अवाउडेणं, तए णं से खंदए अणगारे गुणरयणसंवच्छरं

२ शतके उद्देशः १ स्कन्दकस्य प्रतिमादिः सू ९३

॥१२३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्कंदक (खंधक) चरित्र

तवोकम्मं अहासुत्तं अहाकप्पं जाव आराहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ २ समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरति। तए णं से खंदए अणगारे तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धन्नेणं मंगल्लेणं सस्सिरीएणं उदग्गेणं उदत्तेणं उत्तमेणं उदारेणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाते यावि होत्था, जीवंजीवेण गच्छइ जीवंजीवेण चिट्ठइ भासं भासित्तावि गिलाइ भासं भासमाणे गिलाति भासं भासिस्सामीति गिलायति, से जहा नामए–कट्ठसगडिया इ वा पत्तसगडिया इ वा पत्तिलभंडगसगडिया इ वा एरंडकट्ठसगडिया इ वा इंगालसगडिया इ वा उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी ससद्दं गच्छइ ससद्दं चिट्ठइ एवामेव खंदएवि अणगारे ससद्दं गच्छइ ससद्दं चिट्ठइ उवचिते तवेणं अवचिए मंससोणिएणं हुयासणेविव भासरासिपडिच्छन्ने तवेणं तेएणं तवतेयसिरीए अतीव २ उवसोभेमाणे २ चिट्ठइ ॥ (सू० ९३) ॥

'एक्कारसअंगाइं अहिज्जइ'त्ति इह कश्चिदाह–नन्वनेन स्कन्दकचरितात्प्रागेवैकादशाङ्गनिष्पत्तिरवसीयते, पञ्चमाङ्गान्तर्भूतं च स्कन्दकचरितमिदमुपलभ्यते इति कथं न विरोधः ?, उच्यते, श्रीमन्महावीरतीर्थे किल नव वाचनाः, तत्र च सर्ववाचनासु स्कन्दकचरितात्पूर्वकाले ये स्कन्दकचरिताभिधेया अर्थास्ते चरितान्तरद्वारेण प्रज्ञाप्यन्ते, स्कन्दकचरितोत्पत्तौ च सुधर्मस्वामिना जम्बूनामानं स्वशिष्यमङ्गीकृत्याधिकृतवाचनायामस्यां स्कन्धकचरितमेवाश्रित्य तदर्थप्ररूपणा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥१२४॥

कृतेति न विरोधः, अथवा सातिशायित्वाद्गणधराणामनागतकालभाविचरितनिबन्धनमदुष्टमिति, भाविशिष्यसन्ताना-पेक्षयाऽतीतकालनिर्देशोऽपि न दुष्ट इति । 'मासियं'ति मासपरिमाणां 'भिक्खुपडिमं'ति भिक्षूचितमभिग्रहविशेषम्, एतत्स्वरूपं च—"गच्छा विणिक्खमित्ता पडिवज्जइ मासियं महापडिमं। दत्तेगभोयणस्सा पाणस्सवि एग जा मासं ॥१॥" इत्यादि । नन्वयमेकादशाङ्गधारी पठितः, प्रतिमाश्च विशिष्टश्रुतवानेव करोति, यदाह—"गच्छे च्चिय णिम्मा ओ जा पुवा दस भवे असंपुण्णा । नवमस्स तइयवत्थू होइ जहण्णो सुयाहिगमो ॥ १ ॥" इति कथं न विरोधः ?, उच्यते, पुरु-षान्तरविषयोऽयं श्रुतनियमः तस्य तु सर्वविदुपदेशेन प्रवृत्तत्वान्न दोष इति । 'अहासुत्तं'ति सामान्यसूत्रानतिक्रमेण 'अहाकप्पं'ति प्रतिमाकल्पानतिक्रमेण तत्कल्पवस्त्वनतिक्रमेण वा 'अहामग्गं'ति ज्ञानादिमोक्षमार्गानतिक्रमेण क्षान्यो-पशमिकभावानतिक्रमेण वा 'अहातच्चं'ति यथातत्त्वं तत्त्वानतिक्रमेण मासिकी भिक्षुप्रतिमेति शब्दार्थानतिलङ्घनेनेत्यर्थः 'अहासम्मं'ति यथासाम्यं समभावानतिक्रमेण 'काएणं'ति न मनोरथमात्रेण 'फासेइ'त्ति उचितकाले विधिना ग्रह-णात् 'पालेइ'त्ति असकृदुपयोगेन प्रतिजागरणात् 'सोहेइ'त्ति शोभयति पारणकदिने गुर्वादिदत्तशेषभोजनकरणात् शोधयति वाऽतिचारपङ्कक्षालनात् 'तीरेइ'त्ति पूर्णेऽपि तदवधौ स्तोककालावस्थानात् 'पूरेइ'त्ति पूर्णेऽपि तदवधौ तत्कृ-

१—गच्छाद्विनिष्क्रम्य मासिकीं महाप्रतिमां प्रतिपद्यते एका दत्तिर्भोजनस्य एका पानस्यापि मासं यावत् ॥ १ ॥ २—गच्छ एव निर्मातो यावदसंपूर्णानि पूर्वाण्यपि दश भवेयुः । जघन्यः श्रुताभिगमो नवमस्य तृतीयवस्तु यावद्भवति ॥ १ ॥

२ शतके उद्देशः १ स्कन्दकस्य प्रतिमादिः सू ९३

॥१२४॥

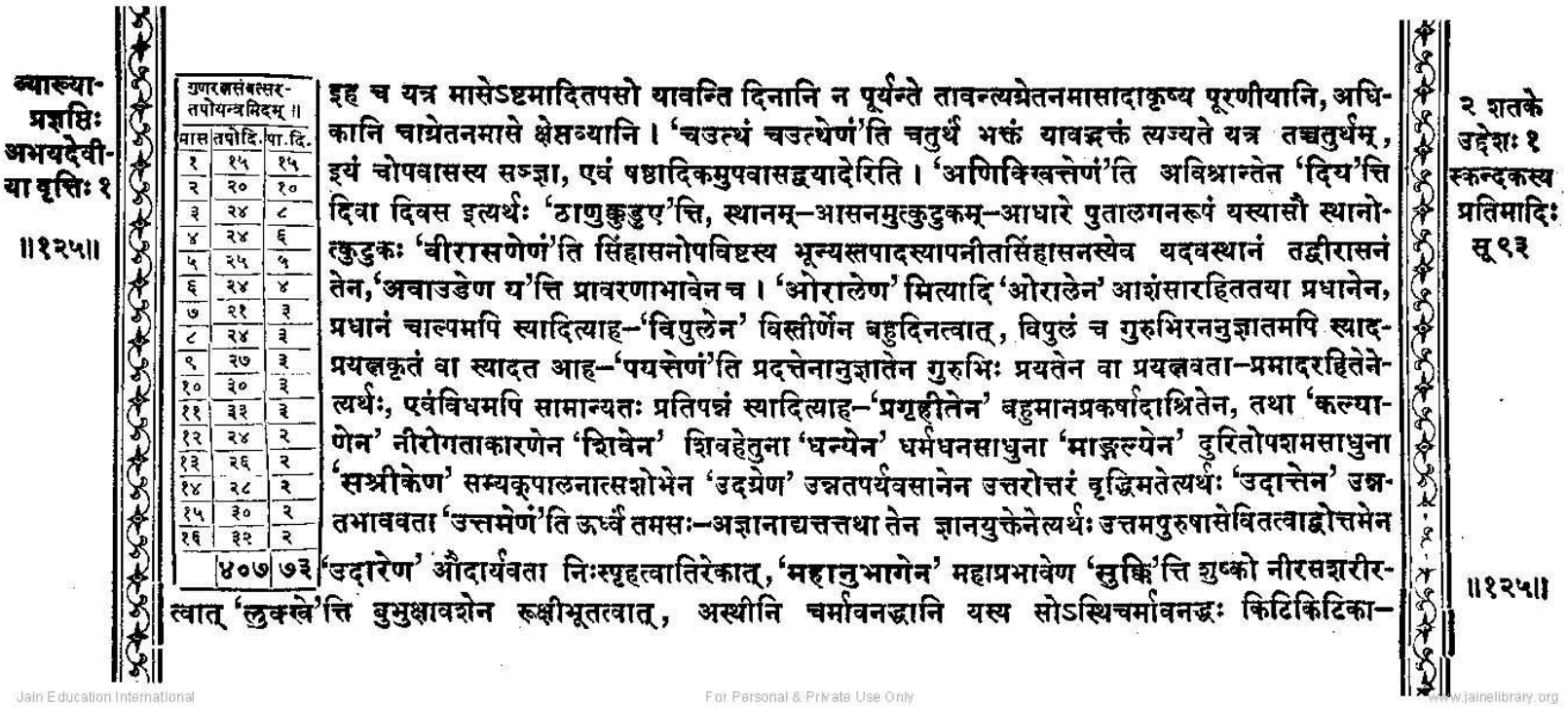
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	स्कंदक (खंधक) चरित्र

त्यपरिमाणपूरणात्, 'किट्टेइ'त्ति कीर्त्तयति पारणकदिने इदं चेदं चैतस्याः कृत्यं तच्च मया कृतमित्येवं कीर्त्तनात् 'अणुपालेइ'त्ति तत्समासौ तदनुमोदनात्, किमुक्तं भवति ? इत्याह—आज्ञयाऽऽराधयतीति एवमेताः सप्त सप्तमासान्ताः, ततोऽष्टमी प्रथमा सप्तरात्रिन्दिवा–सप्ताहोरात्रमानाः एवं नवमी दशमी चेति, एतास्तिस्रोऽपि चतुर्थभक्तेनापानकेनेति, उत्तानकादिस्थानकृतस्तु विशेषः, 'राइंदिय'त्ति रात्रिन्दिवा, एकादशी अहोरात्रपरिमाणा, इयं च षष्ठभक्तेन, 'एगराइय'त्ति एकरात्रिकी, इयं चाष्टमेन भवतीति । 'गुणरयणसंवच्छरं'ति गुणानां –निर्जराविशेषाणां रचनं–करणं संवत्सरेण–सत्रिभागवर्षेण यस्मिंस्तपसि तद् गुणरचनसंवत्सरं, गुणा एव वा रत्नानि यत्र स तथा गुणरत्नः संवत्सरो यत्र तद्गुणरत्नसंवत्सरं–तपः, इह च त्रयोदश मासाः सप्तदशदिनाधिकास्तपःकालः, त्रिसप्ततिश्च दिनानि पारणककाल इति, एवं चायम्—"पण्णरसवीसचउवीस चेव चउवीस पण्णवीसा य । चउवीस एक्कवीसा चउवीसा सत्तवीसा य ॥ १ ॥ तीसा तेत्तीसावि य चउवीस छवीस अट्ठवीसा य । तीसा बत्तीसावि य सोलसमासेसु तवदिवसा ॥ २ ॥ पण्णरसदसट्ठछप्पंचचउर पंचसु य तिण्णि तिण्णित्ति । पंचसु दो दो य तहा सोलसमासेसु पारणगा ॥ ३ ॥"

१–पञ्चदश त्रिंशतिश्चतुर्विंशतिश्चैव चतुर्विंशतिः पञ्चविंशतिश्च । चतुर्विंशतिरेकविंशतिश्चतुर्विंशतिः सप्तविंशतिश्च ॥ १ ॥ त्रिंशत्त्रयस्त्रिंशदपि च चतुर्विंशतिः षड्विंशतिरष्टाविंशतिश्च । त्रिंशद्वात्रिंशदपि च षोडशमासेषु तपोदिवसाः ॥ २ ॥ पञ्चदश दशाष्ट षट् पञ्च चत्वारः त्रयस्त्रयश्च पञ्चसु । पञ्चसु द्वौ द्वौ च तथा षोडशमासेषु पारणकदिवसाः ॥ ३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥१२५॥

गुणरत्नसंवत्सर-तपोयन्त्रमिदम् ॥		
मास	तपोदि.	पा.दि.
१	१५	१५
२	२०	१०
३	२४	८
४	२४	६
५	२५	५
६	२४	४
७	२१	३
८	२४	३
९	२७	३
१०	३०	३
११	३३	३
१२	२४	२
१३	२६	२
१४	२८	२
१५	३०	२
१६	३२	२
	४०७	७३

इह च यत्र मासेऽष्टमादितपसो यावन्ति दिनानि न पूर्यन्ते तावन्त्यग्रेतनमासादाकृष्य पूरणीयानि, अधिकानि चाग्रेतनमासे क्षेप्तव्यानि । 'चउत्थं चउत्थेणं'ति चतुर्थं भक्तं यावद्भक्तं त्यज्यते यत्र तच्चतुर्थम्, इयं चोपवासस्य सञ्ज्ञा, एवं षष्ठादिकमुपवासद्वयादेरिति । 'अणिक्खित्तेणं'ति अविश्रान्तेन 'दिय'त्ति दिवा दिवस इत्यर्थः 'ठाणुक्कुडुए'त्ति, स्थानम्–आसनमुत्कुटुकम्–आधारे पुतालगनरूपं यस्यासौ स्थानोत्कुटुकः 'वीरासणेणं'ति सिंहासनोपविष्टस्य भून्यस्तपादस्यापनीतसिंहासनस्येव यदवस्थानं तद्वीरासनं तेन,'अवाउडेण य'त्ति प्रावरणाभावेन च । 'ओरालेण' मित्यादि 'ओरालेन' आशंसारहिततया प्रधानेन, प्रधानं चाल्पमपि स्यादित्याह–'विपुलेन' विस्तीर्णेन बहुदिनत्वात्, विपुलं च गुरुभिरननुज्ञातमपि स्यादप्रयत्नकृतं वा स्यादत आह–'पयत्तेणं'ति प्रदत्तेनानुज्ञातेन गुरुभिः प्रयतेन वा प्रयत्नवता–प्रमादरहितेनेत्यर्थः, एवंविधमपि सामान्यतः प्रतिपन्नं स्यादित्याह–'प्रगृहीतेन' बहुमानप्रकर्षादाश्रितेन, तथा 'कल्याणेन' नीरोगताकारणेन 'शिवेन' शिवहेतुना 'धन्येन' धर्मधनसाधुना 'माङ्गल्येन' दुरितोपशमसाधुना 'सश्रीकेण' सम्यक्पालनात्सशोभेन 'उदग्रेण' उन्नतपर्यवसानेन उत्तरोत्तरं वृद्धिमतेत्यर्थः 'उदात्तेन' उन्नतभाववता 'उत्तमेणं'ति ऊर्ध्वं तमसः–अज्ञानाद्यत्तत्तथा तेन ज्ञानयुक्तेनेत्यर्थः उत्तमपुरुषासेवितत्वाद्वोत्तमेन 'उदारेण' औदार्यवता निःस्पृहत्वातिरेकात्, 'महानुभागेन' महाप्रभावेण 'सुक्के'त्ति शुष्को नीरसशरीरत्वात् 'लुक्खे'त्ति बुभुक्षावशेन रूक्षीभूतत्वात्, अस्थीनि चर्मावनद्धानि यस्य सोऽस्थिचर्मावनद्धः किटिकिटिका–

२ शतके उद्देशः १ स्कन्दकस्य प्रतिमादिः सू ९३

॥१२५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निर्मांसास्थिसम्बन्ध्युपवेशनादिक्रियासमुत्थः शब्दविशेषस्तां भूतः–प्राप्तो यः स किटिकिटिकाभूतः'कृशः' दुर्बलः 'धमनी-सन्ततो' नाडीव्याप्तो मांसक्षयेण दृश्यमाननाडीकत्वात्,'जीवंजीवेणं'ति अनुस्वारस्यागमिकत्वात् 'जीवजीवेन' जीवबलेन गच्छति न शरीरबलेनेत्यर्थः 'भासं भासित्ते'त्यादौ कालत्रयनिर्देशः 'गिलाइ'त्ति ग्लायति ग्लानो भवति। 'से जहा नामए'त्ति 'से'त्ति यथार्थः यथेति दृष्टान्तार्थः नामेति सम्भावनायाम् 'इति' वाक्यालङ्कारे 'कट्ठसगडिय'त्ति काष्ठभृता शकटिका काष्ठशकटिका 'पत्तसगडिय'त्ति पलाशादिपत्रभृता गन्त्री 'पत्ततिलभंडगसगडिय'त्ति पत्रयुक्ततिलानां भाण्डकानां च–मृन्मयभाजनानां भृता गन्त्रीत्यर्थः 'तिलकट्ठगसगडिय'त्ति क्वचित्पाठः प्रतीतार्थः 'एरण्डकट्ठसगडिय'त्ति एरण्डकाष्ठमयी एरण्डकाष्ठभृता वा शकटिका, एरण्डकाष्ठग्रहणं च तेषामसारत्वेन तच्छकटिकायाः शुष्कायाः सत्या अतिशयेन गमनादौ सशब्दत्वं स्यादिति,'अङ्गारशकटिका' अङ्गारभृता गन्त्री 'उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी'ति विशेषणद्वयं काष्ठादीनामार्द्राणामेव संभवतीति यथासम्भवमायोज्यमिति हुताशन इव भस्मराशिप्रतिच्छन्नः 'तवेणं तेएणं'ति तपोलक्षणेन तेजसा, अयमभिप्रायः–यथा भस्मच्छन्नोऽग्निर्बहिर्वृत्त्या तेजोरहितोऽन्तर्वृत्त्या तु ज्वलति, एवं स्कन्दकोऽपि अपचितमांसशोणितत्वाद्बहिर्निस्तेजा अन्तस्तु शुभध्यानतपसा ज्वलतीति ॥ उक्तमेवार्थमाह—

तेणं कालेणं २ रायगिहे नगरे जाव समोसरणं जाव परिसा पडिगया, तए णं तस्स खंदयस्स अण० अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अब्भत्थिए चिंतिए जाव समुप्पज्जित्था–एवं खलु अहं इमेणं एयारूवेणं ओरालेणं जाव किसे धमणिसंतए जाते जीवंजीवेणं ग-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-यावृत्तिः १

॥१२६॥

२ शतके उद्देशः १ स्कन्दक-स्थानशं सू ९४

॥१२६॥

च्छामि जीवंजीवेणं चिट्ठामि जाव गिलामि जाव एवामेव अहंपि ससइं गच्छामि ससइं चिट्ठामि तं अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे तं जाव ता मे अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे जाव य मे धम्मायरिए धम्मोवदेसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ ताव ता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिल्लियंमि अहापांडुरे पभाए रत्तासोयप्पकासकिंसुय-सुयमुहगुंजद्धरागसरिसे कमलागरसंडबोहए उट्ठियंमि सूरे सहस्सरस्सिंमि दिणयरे तेयसा जलंते समणं भगवं महावीरं वंदित्ता जाव पज्जुवासित्ता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे सयमेव पंच महव्वयाणि आरोवेत्ता समणा य समणीओ य खामेत्ता तहारूवेहिं थेरेहिं कडाईहिं सद्धिं विपुलं पव्वयं सणियं २ दुरूहित्ता मेघघणसन्निगासं देवसन्निवातं पुढवीसिलावट्टयं पडिलेहित्ता दब्भसंथारयं संथ-रित्ता दब्भसंथारोवगयस्स संलेहणाजोसणाजूसियस्स भत्तपाणपडियाइक्खियस्स पाओवगयस्स कालं अण-वकंखमाणस्स विहरित्तएत्तिकट्टु एवं संपेहेइ २ त्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव जलंते जेणेव समणे भग० जाव पज्जुवासति, खंदयाइ समणे भगवं महावीरे खंदयं अणगारं एवं वयासी–से नूणं तव खंदया ! पुव्वरत्तावरत्तकालस० जाव जागरमाणस्स इमेयारूवे अब्भत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं इमेणं एयारूवेणं तवेणं ओरालेणं विपुलेणं तं चेव जाव कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तएत्तिकट्टु एवं संपेहेति २

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	स्कंदक (खंधक) चरित्र

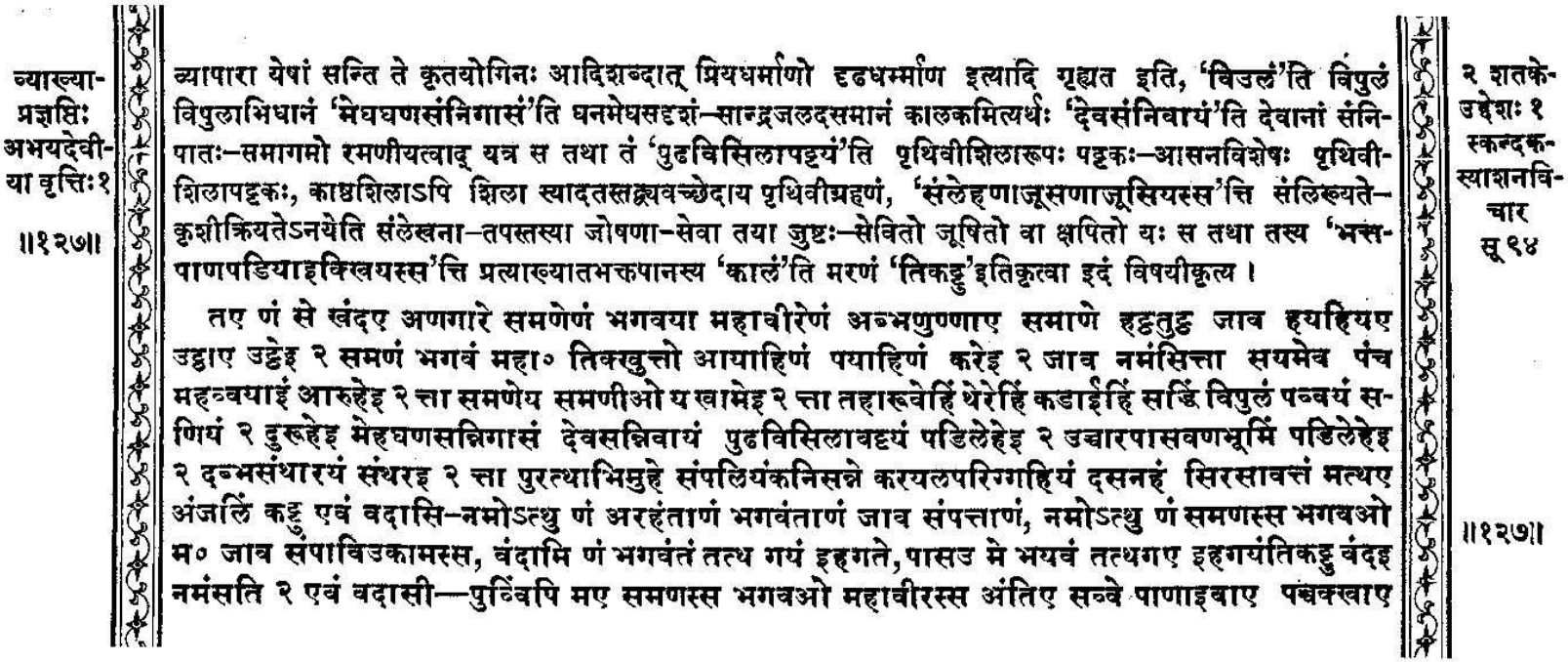
कल्लं पाउप्पभाए जाव जलंते जेणेव मम अंतिए तेणेव हव्वमागए, से नूणं खंदया ! अट्ठे समट्ठे ?, हंता अत्थि, अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं ॥ (सू० ९४) ॥

'पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि'त्ति पूर्वरात्रश्च–रात्रेः पूर्वो भागः अपररात्रश्च–अपकृष्टा रात्रिः पश्चिमतद्भाग इत्यर्थः, तल्लक्षणो यः कालसमयः कालात्मकः समयः स तथा तत्र, अथवा पूर्वरात्रापररात्रकालसमय इत्यत्र रेफलोपात् 'पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि'त्ति स्याद्, धर्मजागरिकां जाग्रतः–कुर्वत इत्यर्थः, 'तं अत्थि ता मे'त्ति तदेवमप्यस्ति तावन्मम उत्थानादि न सर्वथा क्षीणमिति भावः 'तं जाव ता मे अत्थि'त्ति तत्–तस्माद्यावत्ता इति भाषामात्रे 'मे' ममास्ति 'जाव य'त्ति यावच्च 'सुहत्थि'त्ति शुभार्थी भव्यान् प्रति सुहस्ती वा पुरुषवरगन्धहस्ती, एतच्च भगवत्साक्षिकोऽनशनविधिर्महाफलो भवतीत्यभिप्रायेण भगवन्निर्वाणे शोकदुःखभाजनं मा भूवमहम् इत्यभिप्रायेण वा चिन्तितमनेनेति, 'कल्लमि'त्यादि, 'कल्लं'ति श्वः प्रादुः–प्राकाश्ये ततः प्रकाशप्रभातायां रजन्यां 'फुल्लोत्पलकमलकोमलोन्मीलिते' फुल्लं–विकसितं तच्च तदुत्पलं च फुल्लोत्पलं तच्च कमलश्च –हरिणविशेषः फुल्लोत्पलकमलौ तयोः कोमलम्–अकठोरमुन्मीलितं–दलानां नयनयोश्चोन्मीलनं यस्मिंस्तत्तथा तस्मिन् 'अथे'ति रजनीविभातानन्तरं पाण्डुरे प्रभाते रक्ताशोकप्रकाशेन किंशुकस्य शुकमुखस्य गुञ्जार्द्धस्य च रागेण सदृशो यः स तथा तस्मिन्, तथा कमलाकरा–ह्रदादयस्तेषु षण्डानि-नलिनीषण्डानि तेषां बोधको यः स कमलाकरषण्डबोधकस्तस्मिन् 'उत्थिते' अभ्युद्गते, कस्मिन् ? इत्याह—सूरे, पुनः किम्भूते ? इत्याह—'कडाईहिं'ति, इह पदैकदेशात्पदसमुदायो दृश्यस्ततः कृतयोग्यादिभिरिति स्यात्, तत्र कृता योगाः–प्रत्युपेक्षणादि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९४]

दीप अनुक्रम [११५]



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१ ॥१२७॥

व्यापारा येषां सन्ति ते कृतयोगिनः आदिशब्दात् प्रियधर्माणो दृढधर्म्माण इत्यादि गृह्यत इति, 'विउलं'ति विपुलं विपुलाभिधानं 'मेघघणसंनिगासं'ति घनमेघसदृशं–सान्द्रजलदसमानं कालकमित्यर्थः 'देवसंनिवायं'ति देवानां संनिपातः–समागमो रमणीयत्वाद् यत्र स तथा तं 'पुढविसिलापट्टयं'ति पृथिवीशिलारूपः पट्टकः–आसनविशेषः पृथिवीशिलापट्टकः, काष्ठशिलाऽपि शिला स्यादतस्तद्व्यवच्छेदाय पृथिवीग्रहणं, 'संलेहणाजूसणाजूसियस्स'त्ति संलिख्यते–कृशीक्रियतेऽनयेति संलेखना–तपस्तस्या जोषणा–सेवा तया जुष्टः–सेवितो जूषितो वा क्षपितो यः स तथा तस्य 'भत्त-पाणपडियाइक्खियस्स'त्ति प्रत्याख्यातभक्तपानस्य 'कालं'ति मरणं 'तिकट्टु'इतिकृत्वा इदं विषयीकृत्य ।

तए णं से खंदए अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठतुट्ठ जाव हयहियए उट्ठाए उट्ठेइ २ समणं भगवं महा० तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २ जाव नमंसित्ता सयमेव पंच महव्वयाइं आरुहेइ २ त्ता समणेय समणीओ य खामेइ २ त्ता तहारूवेहिं थेरेहिं कडाईहिं सद्धिं विपुलं पव्वयं सणियं २ दुरूहेइ मेहघणसन्निगासं देवसन्निवायं पुढविसिलावट्टयं पडिलेहेइ २ उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ २ दब्भसंथारयं संथरइ २ त्ता पुरत्थाभिमुहे संपलियंकनिसन्ने करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वदासि–नमोऽत्थु णं अरहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं, नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ म० जाव संपाविउकामस्स, वंदामि णं भगवंतं तत्थ गयं इहगते, पासउ मे भयवं तत्थगए इहगयंतिकट्टु वंदइ नमंसति २ एवं वदासी—पुव्विंपि मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए

२ शतके-उद्देशः १ स्कन्दक-स्याशनवि-चार सू ९४

॥१२७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्कंदक (खंधक) चरित्र

प्रत सूत्रांक [९५-९६]

दीप अनुक्रम [११६--११७]

जावज्जीवाए जाव मिच्छादंसणसल्ले पच्चक्खाए जावज्जीवाए इयाणिंपि य णं समणस्स भ० म० अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए जाव मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि, एवं सव्वं असणं पाणं खा० सा० चउव्विहंपि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, जंपि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं पियं जाव फुसंतुत्तिकट्टु एयंपि णं चरिमेहिं उस्सासनीसासेहिं वोसिरामित्तिकट्टु संलेहणाजूसणाजूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगए कालं अणवकंखमाणे विहरति। तए णं से खंदए अण० समणस्स भ० म० तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमादियाइं इक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइं दुवालसवासाइं सामन्नपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते आणुपुव्वीए कालगए (सू० ९६) तए णं ते थेरा भगवंतो खंदयं अण० कालगयं जाणित्ता परिनिव्वाणवत्तियं काउस्सग्गं करेंति २ पत्तचीवराणि गिण्हंति २ विपुलाओ पव्वयाओ सणियं २ पच्चोरुहंति २ जेणेव समणे भगवं म० तेणेव उवा० समणं भगवं म० वंदंति नमंसंति २ एवं वदासी—एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी खंदए नामं अणगारे पगइभद्दए पगतिविणीए पगतिउवसंते पगतिपयणुकोहमाणमायालोभे मिउमद्दवसंपन्ने अल्लीणे भद्दए विणीए, से णं देवाणुप्पिएहिं अब्भणुण्णाए समाणे सयमेव पंच महव्वयाणि आरोवित्ता समणे य समणीओ य खामेत्ता अम्हेहिं सद्धिं विपुलं पव्वयं तं चेव निरवसेसं जाव आणुपुव्वीए कालगए इमे य से आयारभंडए। भंते त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं म० वंदति नमंसति २ एवं वयासी–एवं खलु देवाणु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

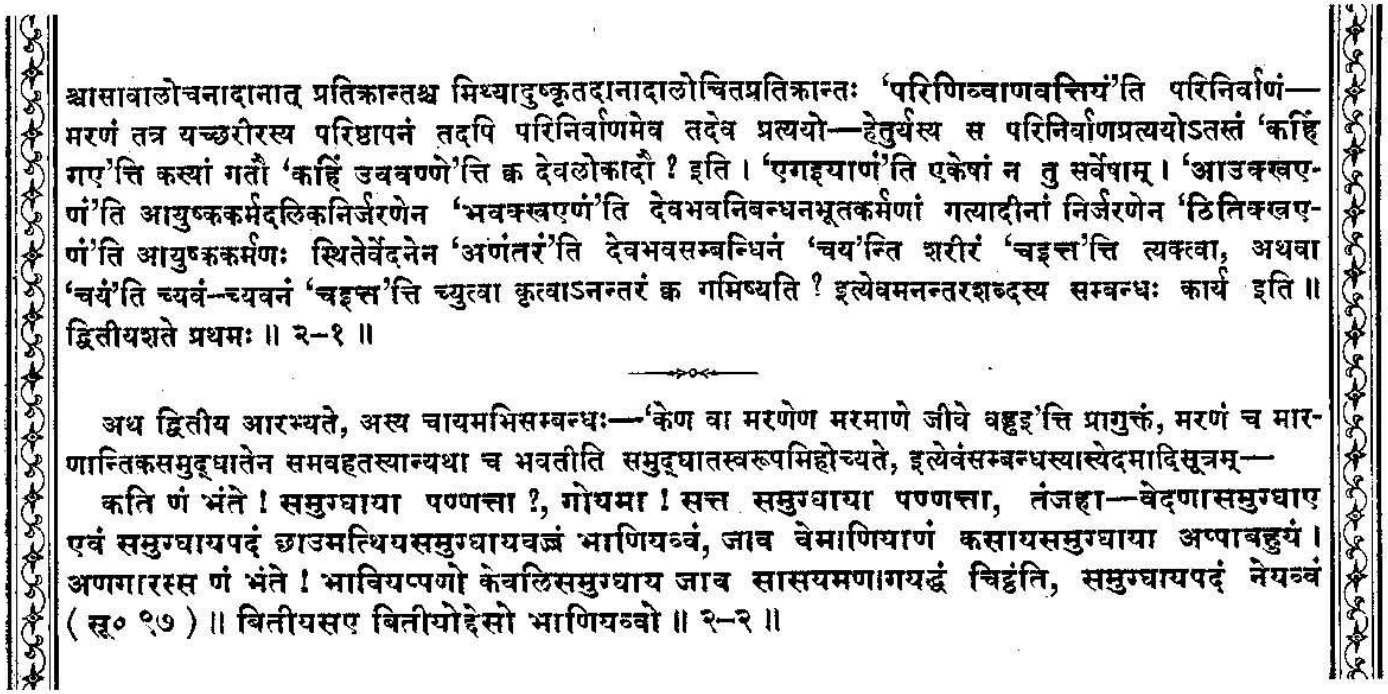
स्कंदक (खंधक) चरित्र

प्पियाणं अंतेवासी खंदए नामं अण० कालमासे कालं किच्चा कहिं गए ? कहिं उववण्णे ?, गोयमाइ समणे भगवं महा० भगवं गोयमं एवं वयासी–एवं खलु गोयमा ! मम अंतेवासी खंदए नामं अणगारे पगतिभ० जाव से णं मए अब्भणुण्णाए समाणे सयमेव पंच महव्वयाइं आरुहेत्ता तं चेव सव्वं अविसेसियं नेयव्वं जाव आलोतियपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववण्णे, तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं बावीसं सागरोवमाइं ठिती प०, तस्स णं खंदयस्सवि देवस्स बावीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता । से णं भंते ! खंदए देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठितीख० अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?, गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति बुज्झिहिति मुच्चिहिति परिनिव्वाहिति सव्वदुक्खाणमंतं करेहिति (सू० ९६) ॥ खंदओ समत्तो ॥ बितीयसयस्स पढमो ॥२–१॥

'एवं संपेहेइ'त्ति 'एवम्' उक्तलक्षणमेव 'संप्रेक्षते' पर्यालोचयति सङ्गतासङ्गतविभागतः 'उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ'त्ति पादपोपगमनादारादुच्चारादेस्तस्य कर्त्तव्यत्वादुच्चारादिभूमिप्रत्युपेक्षणं न निरर्थकं, 'संपलियंकनिसण्णे'त्ति पद्मासनोपविष्टः 'सिरसावत्तं'ति शिरसाऽप्राप्तम्–अस्पृष्टम्, अथवा शिरसि आवर्त्त आवृत्तिरावर्त्तनं–परिभ्रमणं यस्यासौ सप्तम्यलोपाच्छिरस्यावर्त्तस्तं, 'सट्ठिं भत्ताइं'ति प्रतिदिनं भोजनद्वयस्य त्यागात्त्रिंशता दिनैः षष्टिर्भक्तानि त्यक्तानि भवन्ति 'अणसणाए'त्ति प्राकृतत्वादनशनेन 'छेइत्त'त्ति 'छित्त्वा' परित्यज्य 'आलोइयपडिक्कंते'त्ति आलोचितं–गुरूणां निवेदितं यदतिचारजातं तत् प्रतिक्रान्तम्–अकरणविषयीकृतं येनासावालोचितप्रतिक्रान्तः अथवाऽऽलोचित-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	स्कंदक (खंधक) चरित्र



आसावालोचनादानात् प्रतिक्रान्तश्च मिथ्यादुष्कृतदानादालोचितप्रतिक्रान्तः 'परिणिव्वाणवत्तियं'ति परिनिर्वाणं—मरणं तत्र यच्छरीरस्य परिष्ठापनं तदपि परिनिर्वाणमेव तदेव प्रत्ययो—हेतुर्यस्य स परिनिर्वाणप्रत्ययोऽतस्तं 'कहिं गए'त्ति कस्यां गतौ 'कहिं उववण्णे'त्ति क्व देवलोकादौ ? इति । 'एगइयाणं'ति एकेषां न तु सर्वेषाम् । 'आउक्खएणं'ति आयुष्ककर्मदलिकनिर्जरणेन 'भवक्खएणं'ति देवभवनिबन्धनभूतकर्मणां गत्यादीनां निर्जरणेन 'ठितिक्खएणं'ति आयुष्ककर्मणः स्थितेर्वेदनेन 'अणंतरं'ति देवभवसम्बन्धिनं 'चय'न्ति शरीरं 'चइत्त'त्ति त्यक्त्वा, अथवा 'चयं'ति च्यवं—च्यवनं 'चइत्त'त्ति च्युत्वा कृत्वाऽनन्तरं क्व गमिष्यति ? इत्येवमनन्तरशब्दस्य सम्बन्धः कार्य इति ॥ द्वितीयशते प्रथमः ॥ २–१ ॥

अथ द्वितीय आरभ्यते, अस्य चायमभिसम्बन्धः—'केण वा मरणेण मरमाणे जीवे वड्ढइ'त्ति प्रागुक्तं, मरणं च मारणान्तिकसमुद्घातेन समवहतस्यान्यथा च भवतीति समुद्घातस्वरूपमिहोच्यते, इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्—

कति णं भंते ! समुग्घाया पण्णत्ता ?, गोयमा ! सत्त समुग्घाया पण्णत्ता, तंजहा—वेदणासमुग्घाए एवं समुग्घायपदं छाउमत्थियसमुग्घायवज्जं भाणियव्वं, जाव वेमाणियाणं कसायसमुग्घाया अप्पाबहुयं । अणगारस्स णं भंते ! भावियप्पणो केवलिसमुग्घाय जाव सासयमणागयद्धं चिट्ठंति, समुग्घायपदं नेयव्वं (सू० ९७) ॥ बितीयसए बितीयोद्देसो भाणियव्वो ॥ २–२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र द्वितीय-शतके प्रथम-उद्देशकः समाप्तः

अथ द्वितीय-शतके द्वितीय-उद्देशकः आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [९७]

दीप अनुक्रम [११८]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १ ॥१२९॥

'कइ णं भंते ! समुग्घाए'त्यादि, तत्र 'हन हिंसागत्योः'इति वचनाद् हननानि–घाताः सम्–एकीभावे उत्–प्राबल्येन ततश्चैकीभावेन प्राबल्येन च घाताः समुद्घाताः, अथ केन सहैकीभावः ?, उच्यते, यदाऽऽत्मा वेदनादिसमुद्घातगतो भवति तदा वेदनाद्यनुभवज्ञानपरिणत एव भवतीति वेदनाद्यनुभवज्ञानेन सहैकीभावः, अथ प्राबल्येन घाताः कथम् ?, उच्यते, यस्माद्वेदनादिसमुद्घातपरिणतो बहून् वेदनीयादिकर्मप्रदेशान् कालान्तरानुभवयोग्यानुदीरणाकरणेनाकृष्य उदये प्रक्षिप्यानुभूय निर्जरयति, आत्मप्रदेशैः सह श्लिष्टान् शातयतीत्यर्थः, अतः प्राबल्येन घाता इति । 'सत्त समुग्घाय'त्ति वेदनासमुद्घातादयः, एते च प्रज्ञापनायामिव द्रष्टव्याः, अत एवाह—'छाउमत्थिए'त्यादि, 'छाउमत्थियसमुग्घायवज्जं'ति 'कइ णं भंते ! छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता' इत्यादिसूत्रवर्जितं 'समुग्घायपयं'ति प्रज्ञापनायाः षट्त्रिंशत्तमपदं समुद्घातार्थमिह नेतव्यं, तच्चैवम्—'कइ णं भंते ! समुग्घाया पण्णत्ता ?, गोयमा ! सत्त समुग्घाया पण्णत्ता, तंजहा—वेयणासमुग्घाए कसायसमुग्घाए'इत्यादि, इह सङ्ग्रहगाथा—"वेयण १ कसाय २ मरणे ३ वेउव्विय ४ तेयए य ५ आहारे ६ । केवलिए चेव ७ भवे जीवमणुस्साण सत्तेव ॥ १ ॥"जीवपदे मनुष्यपदे च सप्त वाच्याः, नारकादिषु तु यथायोगमित्यर्थः, तत्र वेदनासमुद्घातेन समुद्धत आत्मा वेदनीयकर्मपुद्गलानां शातं करोति, कषायसमुद्घातेन कषायपुद्गलानां मारणान्तिकसमुद्घातेनायुःकर्म्मपुद्गलानां वैकुर्विकसमुद्घातेन समुद्धतो जीवः प्रदेशान् शरीराद्बहिर्निष्काश्य शरीरविष्कम्भबाहल्यमात्रमायामतश्च सङ्ख्येययोजनानि दण्डं निसृजति निसृज्य च यथास्थूलान्

२ शतके उद्देशः २ समुद्घाताः सू ९७

॥१२९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'समुद्घात' शब्दस्य अर्थ एवं भेदा:

वैक्रियशरीरनामकर्म्मपुद्गलान् प्राग्बद्धान् शातयति यथासूक्ष्मांश्चादत्ते, यथोक्तम्—"वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ २ संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरइ २ अहाबायरे पोग्गले परिसाडेइ अहासुहुमे पोग्गले आइयइ"त्ति, एवं तैजसाहारकसमुद्घातावपि व्याख्येयौ, केवलिसमुद्घातेन तु समुद्धतः केवली वेदनीयादिकर्मपुद्गलान् शातयतीति, एतेषु च सर्वेष्वपि समुद्घातेषु शरीराज्जीवप्रदेशनिर्गमोऽस्ति, सर्वे चैतेऽन्तर्मुहूर्त्तमानाः, नवरं केवलिकोऽष्टसामयिकः, एते चैकेन्द्रियविकलेन्द्रियाणामादितस्त्रयो, वायुनारकाणां चत्वारः, देवानां पञ्चेन्द्रियतिरश्चां च पञ्च, मनुष्याणां तु सप्तेति ॥ द्वितीयशते द्वितीय उद्देशकः ॥ २–२ ॥

अथ तृतीय आरभ्यते, अस्य चायमभिसम्बन्धः–द्वितीयोद्देशके समुद्घाताः प्ररूपिताः, तेषु च मारणान्तिकसमुद्घातः, तेन च समवहताः केचित्पृथिवीष्वुत्पद्यन्त इतीह पृथिव्यः प्रतिपाद्यन्ते, इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्—

कति णं भंते ! पुढवीओ पन्नत्ताओ ?, जीवाभिगमे नेरइयाणं जो बितिओ उद्देसो सो नेयव्वो, पुढविं ओगाहित्ता निरया संठाणमेव बाहल्लं । [विक्खंभपरिक्खेवो वण्णो गंधो य फासो य ॥ १ ॥] जाव किं सव्वपाणा उववण्णपुव्वा ?, हंता गोयमा ! असतिं अदुवा अणंतखुत्तो (सू० ९८) ॥ पुढवी उद्देसो ॥ २–३ ॥

१–वैक्रियसमुद्घातेन समवहन्ति समवहत्य सङ्ख्येयानि योजनानि यावद्दण्डं निःसृजति निःसृज्य च यथाबादरान् पुद्गलान् परिशाटयति यथासूक्ष्मान् पुद्गलानादत्ते ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र द्वितीय-शतके द्वितीय-उद्देशकः समाप्तः

अथ द्वितीय-शतके तृतीय-उद्देशकः आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [९८] + गाथा

दीप अनुक्रम [११९--१२१]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥१३०॥

'कइ णं भंते ! पुढवीओ'इत्यादि, इह च जीवाभिगमे नारकद्वितीयोद्देशकार्थसङ्ग्रहगाथा—"पुढवी ओगाहित्ता निरया संठाणमेव बाहल्लं । विक्खंभपरिक्खेवो वण्णो गंधो य फासो य ॥ १ ॥" सूत्रपुस्तकेषु च पूर्वार्द्धमेव लिखितं, शेषाणां विवक्षितार्थानां यावच्छब्देन सूचितत्वादिति, तत्र 'पुढवि'त्ति पृथिव्यो वाच्याः, ताश्चैवम्–'कइ णं भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?, गोयमा ! सत्त, तंजहा—रयणप्पभे'त्यादि, 'ओगाहित्ता निरय'त्ति पृथिवीमवगाह्य कियद्दूरे नरकाः ? इति वाच्यं, तत्रास्यां रत्नप्रभायामशीतिसहस्रोत्तरयोजनलक्षबाहल्यायामुपर्येकं योजनसहस्रमवगाह्याधोऽप्येकं वर्जयित्वा त्रिंशन्नरकलक्षाणि भवन्ति, एवं शर्कराप्रभादिषु यथायोगं वाच्यं, 'संठाणमेव'त्ति नरकसंस्थानं वाच्यं, तत्र ये आवलिकाप्रविष्टास्ते वृत्ताख्यस्राश्चतुरश्राश्च, इतरे तु नानासंस्थानाः, 'बाहल्लं'ति नरकाणां बाहल्यं वाच्यं, तच्च त्रीणि योजनसहस्राणि, कथम् ?, अध एकं मध्ये शुषिरमेकमुपरि च सङ्कोच एकमिति, 'विक्खंभपरिक्खेवो'त्ति एतौ वाच्यौ, तत्र सङ्ख्यातविस्तृतानां सङ्ख्यातयोजन आयामो विष्कम्भः परिक्षेपश्च, इतरेषां त्वन्यथेति । तथा वर्णादयो वाच्याः, ते चात्यन्तमनिष्टा इत्यादि बहु वक्तव्यं यावदयमुद्देशकान्तः, यदुत–'किं सव्वपाणा ?'इत्यादि, अस्य चैवं प्रयोगः–अस्यां रत्नप्रभायां त्रिंशन्नरकलक्षेषु किं सर्वे प्राणादय उत्पन्नपूर्वाः, अत्रोत्तरम्–'असई'ति असकृद्–अनेकशः, इदं च वेलाद्वयादावपि स्यादतोऽत्यन्तबाहुल्यप्रतिपादनायाह–'अदुव'त्ति अथवा 'अणंतखुत्तो'त्ति 'अनन्तकृत्वः' अनन्तवारानिति ॥ द्वितीयशते तृतीयः ॥ २–३ ॥

२ शतके उद्देशः ३ पृथ्व्यधिकारः सू ९८

॥१३०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र द्वितीय-शतके तृतीय-उद्देशकः समाप्तः

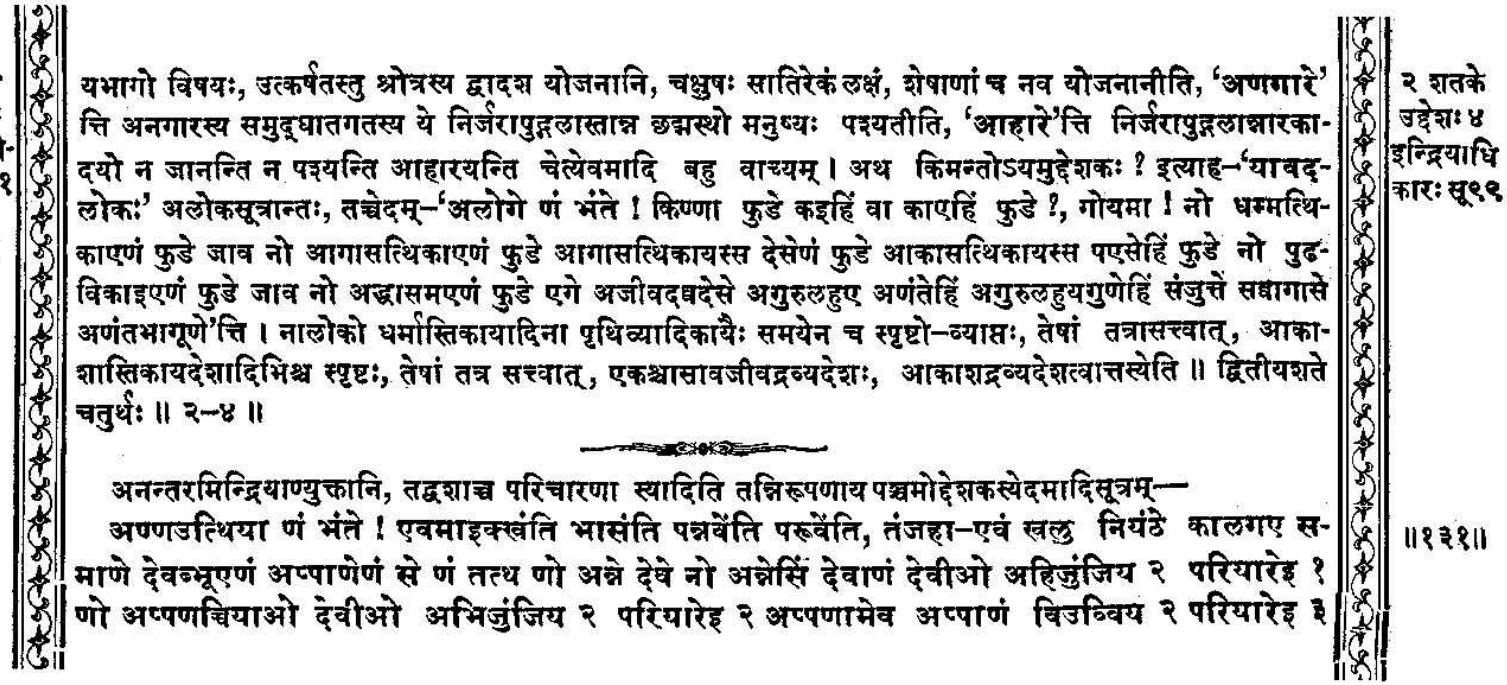
तृतीयोद्देशके नारका उक्ताः, ते च पञ्चेन्द्रिया इतीन्द्रियप्ररूपणाय चतुर्थोद्देशकः, तस्य चादिसूत्रम्—

कति णं भंते ! इंदिया पन्नत्ता ?, गोयमा ! पंचिंदिया पन्नत्ता, तंजहा–पढमिल्लो इंदियउद्देसो नेयव्वो, संठाणं बाहल्लं पोहत्तं जाव अलोगो (सू० ९९) ॥ इंदियउद्देसो ॥ २–४ ॥

'पढमिल्लो इंदियउद्देसओ नेयव्वो'त्ति प्रज्ञापनायामिन्द्रियपदाभिधानस्य पञ्चदशपदस्य प्रथम उद्देशकोऽत्र 'नेतव्यः' अध्येतव्यः, तत्र च द्वारगाथा—"संठाणं बाहल्लं पोहत्तं कइपएसओगाढे । अप्पाबहुपुट्ठपविट्ठविसय अणगार आहारे ॥ १ ॥" इह च सूत्रपुस्तकेषु द्वारत्रयमेव लिखितं, शेषास्तु तदर्था यावच्छब्देन सूचिताः, तत्र संस्थानं श्रोत्रादीन्द्रियाणां वाच्यं, तच्चेदं–श्रोत्रेन्द्रियं कदम्बपुष्पसंस्थितं चक्षुरिन्द्रियं मसूरकचन्द्रसंस्थितं मसूरकम्–आसनविशेषश्चन्द्रः—शशी, अथवा मसूरकचन्द्रो–धान्यविशेषदलं, घ्राणेन्द्रियमतिमुक्तकचन्द्रकसंस्थितम्, अतिमुक्तचन्द्रकः–पुष्पविशेषदलं, रसनेन्द्रियं क्षुरप्रसंस्थितं स्पर्शनेन्द्रियं नानाकारं, 'बाहल्लं'ति इन्द्रियाणां बाहल्यं वाच्यं, तच्चेदं–सर्वाण्यङ्गुलासङ्ख्येयभागबाहल्यानि, 'पोहत्तं'ति पृथुत्वं, तच्चेदं–श्रोत्रचक्षुर्घ्राणानामङ्गुलासङ्ख्येयभागो जिह्वेन्द्रियस्याङ्गुलपृथक्त्वं स्पर्शनेन्द्रियस्य च शरीरमानं, 'कइपएस'त्ति अनन्तप्रदेशनिष्पन्नानि पञ्चापि 'ओगाढे'त्ति असङ्ख्येयप्रदेशावगाढानि, 'अप्पाबहु'त्ति सर्वस्तोकं चक्षुरवगाहतस्ततः श्रोत्रघ्राणरसनेन्द्रियाणि क्रमेण सङ्ख्यातगुणानि ततः स्पर्शनं त्वसङ्ख्येयगुणमित्यादि 'पुट्ठपविट्ठ'त्ति श्रोत्रादीनि चक्षूरहितानि स्पृष्टमर्थं प्रविष्टं च गृह्णन्ति 'विसय'त्ति सर्वेषां जघन्यतोऽङ्गुलस्यासङ्खे-

१ श्रोत्रघ्राणेन्द्रिये क्रमेण सङ्ख्यातगुणे ततो रसनेन्द्रियं संख्येयगुणं ततः स्पर्शनं सङ्ख्येयगुणमित्यादि । * यद्यपिं चक्षुषोऽङ्गुलस्य संख्येयभागो विषयः अर्वाक्त्वनुपलब्धिस्तथापि अत्र सर्वेषां सामान्येन ग्रहणात् जघन्यस्य तेषां असंख्येयभागस्य भावात् असंख्येयेति ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥१३१॥

यभागो विषयः, उत्कर्षतस्तु श्रोत्रस्य द्वादश योजनानि, चक्षुषः सातिरेकं लक्षं, शेषाणां च नव योजनानीति, 'अणगारे' त्ति अनगारस्य समुद्घातगतस्य ये निर्जरापुद्गलास्तान् छद्मस्थो मनुष्यः पश्यतीति, 'आहारे'त्ति निर्जरापुद्गलाञ्शारकादयो न जानन्ति न पश्यन्ति आहारयन्ति चेत्येवमादि बहु वाच्यम्। अथ किमन्तोऽयमुद्देशकः ? इत्याह–'यावदलोकः' अलोकसूत्रान्तः, तच्चेदम्–'अलोगे णं भंते ! किण्णा फुडे कइहिं वा काएहिं फुडे ?, गोयमा ! नो धम्मत्थिकाएणं फुडे जाव नो आगासत्थिकाएणं फुडे आगासत्थिकायस्स देसेणं फुडे आकासत्थिकायस्स पएसेहिं फुडे नो पुढविकाइएणं फुडे जाव नो अद्धासमएणं फुडे एगे अजीवदव्वदेसे अगुरुलहुए अणंतेहिं अगुरुलहुयगुणेहिं संजुत्ते सव्वागासे अणंतभागूणे'त्ति। नालोको धर्मास्तिकायादिना पृथिव्यादिकायैः समयेन च स्पृष्टो–व्याप्तः, तेषां तत्रासत्त्वात्, आकाशास्तिकायदेशादिभिश्च स्पृष्टः, तेषां तत्र सत्त्वात्, एकश्चासावजीवद्रव्यदेशः, आकाशद्रव्यदेशत्वात्तस्येति ॥ द्वितीयशते चतुर्थः ॥ २–४ ॥

२ शतके उद्देशः ४ इन्द्रियाधिकारः सू९९

अनन्तरमिन्द्रियाण्युक्तानि, तद्वशाच्च परिचारणा स्यादिति तन्निरूपणाय पञ्चमोद्देशकस्येदमादिसूत्रम्—

अण्णउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति भासंति पन्नवेंति परूवेंति, तंजहा–एवं खलु नियंठे कालगए समाणे देवब्भूएणं अप्पाणेणं से णं तत्थ णो अन्ने देवे नो अन्नेसिं देवाणं देवीओ अभिजुंजिय २ परियारेइ १ णो अप्पणच्चियाओ देवीओ अभिजुंजिय २ परियारेइ २ अप्पणामेव अप्पाणं विउव्विय २ परियारेइ ३

॥१३१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

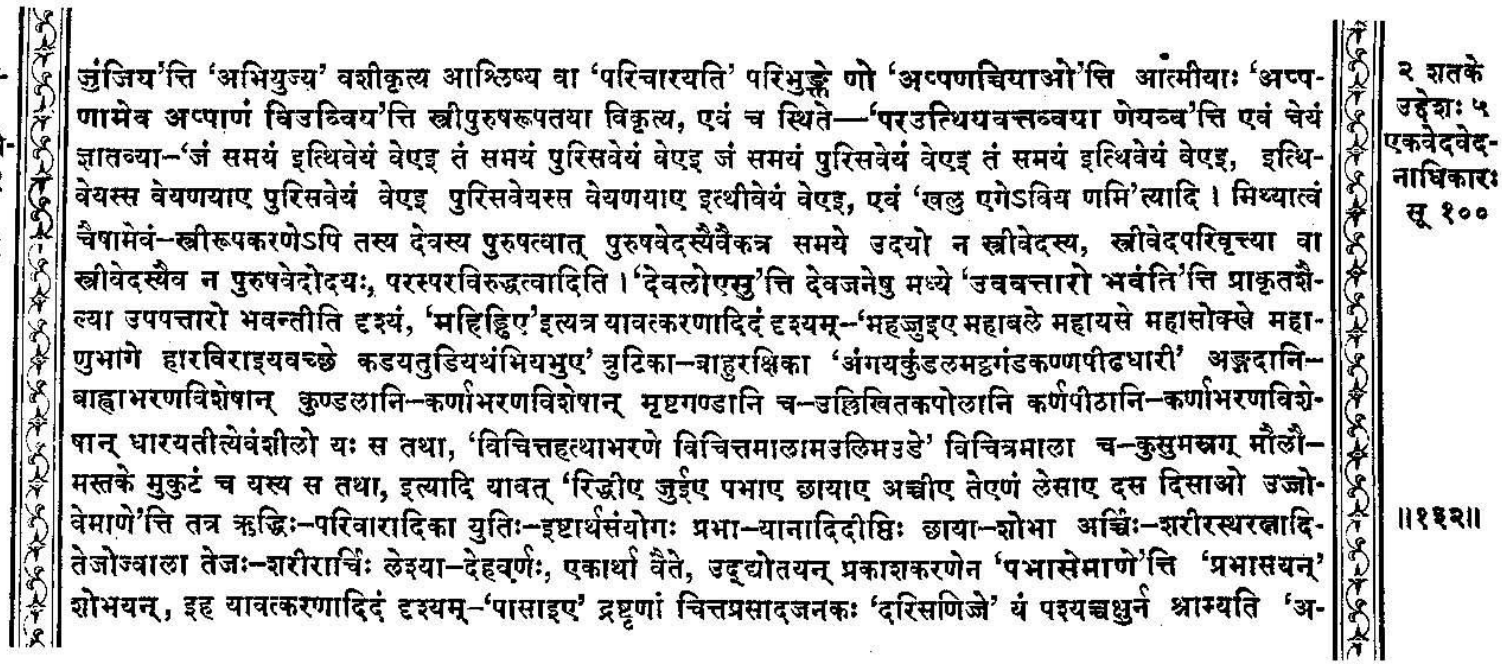
अत्र द्वितीय-शतके चतुर्थ-उद्देशक: समाप्त:

अथ द्वितीय-शतके पंचम-उद्देशक: आरभ्यते

एगेवि य णं जीवे एगेणं समएणं दो वेदे वेदेइ, तंजहा–इत्थिवेदं पुरिसवेदं च, एवं परउत्थियवत्तव्वया नेयव्वा जाव इत्थिवेदं च पुरिसवेदं च। से कहमेयं भंते ! एवं ?, गोयमा ! जण्णं ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति जाव इत्थिवेदं च पुरिसवेदं च, जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु, अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि भा० प० परू०–एवं खलु नियंठे कालगए समाणे अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवन्ति महिड्ढिएसु जाव महाणुभागेसु दूरगतीसु चिरट्ठितीएसु, से णं तत्थ देवे भवति महिड्ढीए जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणे पभासेमाणे जाव पडिरूवे। से णं तत्थ अन्ने देवे अन्नेसिं देवाणं देवीओ अभिजुंजिय २ परियारेइ १ अप्पणच्चियाओ देवीओ अभिजुंजिय २ परियारेइ २ नो अप्पणामेव अप्पाणं विउव्विय २ परियारेइ ३, एगेवि य णं जीवे एगेणं समएणं एगं वेदं वेदेइ, तंजहा—इत्थिवेदं वा पुरिसवेदं वा, जं समयं इत्थिवेदं वेदेइ णो तं समयं पुरुसवेयं वेएइ जं समयं पुरिसवेयं वेएइ नो तं समयं इत्थिवेयं वेदेइ, इत्थिवेयस्स उदएणं नो पुरिसवेदं वेएइ, पुरिसवेयस्स उदएणं नो इत्थिवेयं वेएइ, एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं वेदं वेदेइ, तंजहा–इत्थीवेयं वा पुरिसवेयं वा, इत्थी इत्थिवेएणं उदिन्नेणं पुरिसं पत्थेइ, पुरिसो पुरिसवेएणं उदिन्नेणं इत्थिं पत्थेइ, दोवि ते अन्नमन्नं पत्थेंति, तंजहा–इत्थी वा पुरिसं पुरिसे वा इत्थिं ॥ (सू० १००) ॥

'देवब्भूएणं'ति देवभूतेनात्मना करणभूतेन नो परिचारयतीति योगः, 'से णं'ति असौ निर्ग्रन्थदेवः 'तत्र' देवलोके 'नो' नैव 'अण्णे'त्ति 'अन्यान्' आत्मव्यतिरिक्तान् 'देवान्' सुरान् १ तथा नो अन्येषां देवानां सम्बन्धिनीर्देवीः 'अभि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-यावृत्तिः १

॥१३२॥

जुंजिय'त्ति 'अभियुज्य' वशीकृत्य आश्लिष्य वा 'परिचारयति' परिभुङ्क्ते णो 'अप्पणचियाओ'त्ति आत्मीयाः 'अप्पणामेव अप्पाणं विउव्विय'त्ति स्त्रीपुरुषरूपतया विकृत्य, एवं च स्थिते—'परउत्थियवत्तव्वया णेयव्व'त्ति एवं चेयं ज्ञातव्या—'जं समयं इत्थिवेयं वेएइ तं समयं पुरिसवेयं वेएइ जं समयं पुरिसवेयं वेएइ तं समयं इत्थिवेयं वेएइ, इत्थिवेयस्स वेयणयाए पुरिसवेयं वेएइ पुरिसवेयस्स वेयणयाए इत्थीवेयं वेएइ, एवं 'खलु एगेऽविय णमि'त्यादि । मिथ्यात्वं चैषामेवं—स्त्रीरूपकरणेऽपि तस्य देवस्य पुरुषत्वात् पुरुषवेदस्यैवैकत्र समये उदयो न स्त्रीवेदस्य, स्त्रीवेदपरिवृत्त्या वा स्त्रीवेदस्यैव न पुरुषवेदोदयः, परस्परविरुद्धत्वादिति । 'देवलोएसु'त्ति देवजनेषु मध्ये 'उववत्तारो भवंति'त्ति प्राकृतशैल्या उपपत्तारो भवन्तीति दृश्यं, 'महिड्ढिए'इत्यत्र यावत्करणादिदं दृश्यम्—'महज्जुइए महाबले महायसे महासोक्खे महाणुभागे हारविराइयवच्छे कडयतुडियथंभियभुए' त्रुटिका—बाहुरक्षिका 'अंगयकुंडलमट्ठगंडकण्णपीढधारी' अङ्गदानि—बाह्याभरणविशेषान् कुण्डलानि—कर्णाभरणविशेषान् मृष्टगण्डानि च—उल्लिखितकपोलानि कर्णपीठानि—कर्णाभरणविशेषान् धारयतीत्येवंशीलो यः स तथा, 'विचित्तहत्थाभरणे विचित्तमालामउलिमउडे' विचित्रमाला च—कुसुमस्रग् मौलौ—मस्तके मुकुटं च यस्य स तथा, इत्यादि यावत् 'रिद्धीए जुईए पभाए छायाए अच्चीए तेएणं लेसाए दस दिसाओ उज्जोवेमाणे'त्ति तत्र ऋद्धिः—परिवारादिका युतिः—इष्टार्थसंयोगः प्रभा—यानादिदीप्तिः छाया—शोभा अर्चिः—शरीरस्थरत्नादितेजोज्वाला तेजः—शरीरार्चिः लेश्या—देहवर्णः, एकार्था वैते, उद्द्योतयन् प्रकाशकरणेन 'पभासेमाणे'त्ति 'प्रभासयन्' शोभयन्, इह यावत्करणादिदं दृश्यम्—'पासाइए' द्रष्टृणां चित्तप्रसादजनकः 'दरिसणिज्जे' यं पश्यच्चक्षुर्न श्राम्यति 'अ-

२ शतके उद्देशः ५ एकवेदवेदनाधिकारः सू १००

॥१३२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भिरूवे' मनोज्ञरूपः 'पडिरूवे'त्ति द्रष्टारं २ प्रति रूपं यस्य स तथेति, एकेनैकदैक एव वेदो वेद्यते, इह कारणमाह— 'इत्थी इत्थिवेएणमि'त्यादि ॥ परिचारणायां किल गर्भः स्यादिति गर्भप्रकरणं, तत्र—

उदगगब्भे णं भंते ! उदगगब्भेत्ति कालतो केवचिरं होइ ?, गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मासा ॥ तिरिक्खजोणियगब्भे णं भंते ! तिरिक्खजोणियगब्भेत्ति कालओ केवचिरं होति ?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अट्ठ संवच्छराइं ॥ मणुस्सीगब्भे णं भंते ! मणुस्सीगब्भेत्ति कालओ केवचिरं होइ ?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बारस संवच्छराइं ॥ (सू० १०१) ॥

'उदगगब्भे णं' क्वचित् 'दगगब्भे णं'ति दृश्यते, तत्रोदकगर्भः—कालान्तरेण जलप्रवर्षणहेतुः पुद्गलपरिणामः, तस्य चावस्थानं जघन्यतः समयः, समयानन्तरमेव प्रवर्षणात्, उत्कृष्टतस्तु षण्मासान्, षण्णां मासानामुपरि वर्षणात्, अयं च मार्गशीर्षपौषादिषु वैशाखान्तेषु सन्ध्यारागमेघोत्पादादिलिङ्गो भवति, यदाह—"पौषे समार्गशीर्षे सन्ध्यारागोऽम्बुदाः सपरिवेषाः । नात्यर्थं मार्गशिरे शीतं पोषेऽतिहिमपातः ॥ १ ॥" इत्यादि ॥

कायभवत्थे णं भंते ! कायभवत्थेत्ति कालओ केवचिरं होइ ?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं चउव्वीसं संवच्छराइं । (सू० १०२) । मणुस्सपंचेंदियतिरिक्खजोणियबीए णं भंते ! जोणियब्भूए केवतियं कालं संचिट्ठइ ?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ॥ (सू० १०३) ॥

'कायभवत्थे णं भंते'इत्यादि, काये—जनन्युदरमध्यव्यवस्थितनिजदेह एव यो भवो—जन्म स कायभवस्तत्र तिष्ठति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवीया वृत्तिः१

॥१३३॥

यः स कायभवस्थः, स च कायभवस्थ इति, एतेन पर्यायेणेत्यर्थः, 'चउव्वीसं संवच्छराइं'ति स्त्रीकाये द्वादश वर्षाणि स्थित्वा पुनर्मृत्वा तस्मिन्नेवात्मशरीरे उत्पद्यते द्वादशवर्षस्थितिकतया, इत्येवं चतुर्विंशतिर्वर्षाणि भवन्ति । केचिदाहुः— द्वादश वर्षाणि स्थित्वा पुनस्तत्रैवान्यबीजेन तच्छरीरे उत्पद्यते, द्वादशवर्षस्थितिरिति ।

एगजीवे णं भंते ! जोणिए बीयब्भूए केवतियाणं पुत्तत्ताए हव्वमागच्छइ ?, गोयमा ! जहन्नेणं इक्कस्स वा दोण्हं वा तिण्हं वा, उक्कोसेणं सयपुहुत्तस्स जीवाणं पुत्तत्ताए हव्वमागच्छति (सू० १०४) । एगजीवस्स णं भंते ! एगभवग्गहणेणं केवइया जीवा पुत्तत्ताए हव्वमागच्छंति ? गोयमा ! जहन्नेणं इक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेणं सयसहस्सपुहत्तं जीवा णं पुत्तत्ताए हव्वमागच्छंति, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुचइ–जाव हव्वमागच्छइ ?, गोयमा ! इत्थीए य पुरिसस्स य कम्मकडाए जोणीए मेहुणवत्तिए नामं संजोए समुप्पज्जइ, ते दुहओ सिणेहं संचिणंति २ तत्थ णं जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं सयसहस्सपुहत्तं जीवाणं पुत्तत्ताए हव्वमागच्छंति, से तेणट्ठेणं जाव हव्वमागच्छइ (सू० १०५) । मेहुणे णं भंते ! सेवमाणस्स केरिसिए असंजमे कज्जइ ?, गोयमा ! से जहानामए केइ पुरिसे रूयनालियं वा बूरनालियं वा तत्तेणं कणएणं समभिधंसेज्जा एरिसएणं गोयमा ! मेहुणं सेवमाणस्स असंजमे कज्जइ, सेवं भंते ! सेवं भंते ! जाव विहरति ॥ (सू० १०६) ॥

* एगभवग्गहणेणं प्र०

२ शतके उद्देशः ५ उदकतिर्यङ्मनुष्यगर्भः सू १०१ कायमवस्थता बीजकालौ १०२-१०३ पुत्रबीजं बीजपुत्रा मैथुनासंयमः १०४-१०५-१०६

॥१३३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'एगजीवे णं भंते'इत्यादि, मनुष्याणां तिरश्चां च बीजं द्वादश मुहूर्त्तान् यावद्योनिभूतं भवति, ततश्च गवादीनां शतपृथक्त्वस्यापि बीजं गवादियोनिप्रविष्टं बीजमेव, तत्र च बीजसमुदाये एको जीव उत्पद्यते, स च तेषां बीजस्वामिनां सर्वेषां पुत्रो भवतीत्यत उक्तम्–'उक्कोसेणं सयपुहुत्तस्से'त्यादि । 'सयसहस्सपुहुत्तं'ति मत्स्यादीनामेकसंयोगेऽपि शतसहस्रपृथक्त्वं गर्भे उत्पद्यते निष्पद्यते चेत्येकस्यैकभवग्रहणे लक्षपृथक्त्वं पुत्राणां भवतीति, मनुष्ययोनौ पुनरुत्पन्ना अपि बहवो न निष्पद्यन्त इति । 'इत्थीए पुरिसस्स य' इत्येतस्य 'मेहुणवत्तिए नामं संयोगे समुप्पज्जति' इत्यनेन सम्बन्धः, कस्यामसौ उत्पद्यते ? इत्याह–'कम्मकडाए जोणीए'त्ति नामकर्मनिर्वर्त्तितायां योनौ, अथवा कर्म–मदनोद्दीपको व्यापारस्तत् कृतं यस्यां सा कर्मकृताऽतस्तस्यां मैथुनस्य वृत्तिः–प्रवृत्तिर्यस्मिन्नसौ मैथुनवृत्तिको मैथुनं वा प्रत्ययो–हेतुर्यस्मिन्नसौ स्वार्थिकेकप्रत्यये मैथुनप्रत्ययिकः 'नामं'ति नाम नामवतोरभेदोपचारादेतन्नामेत्यर्थः 'संयोगः' संपर्कः, 'ते' इति स्त्रीपुरुषौ 'दुहओ'त्ति उभयतः 'स्नेहं'रेतःशोणितलक्षणं 'संचिनुतः' सम्बन्धयतः इति ॥ 'मेहुणवत्तिए नामं संजोए'त्ति प्रागुक्तम्, अथ मैथुनस्यैवासंयमहेतुताप्ररूपणसूत्रम्–'रूयनालियं व'त्ति रूतं–कर्प्पासविकारस्तद्भृता नालिका–शुषिरवंशादिरूपा रूतनालिका ताम्, एवं बूरनालिकामपि, नवरं बूरं–वनस्पतिविशेषावयवविशेषः, 'समभिद्धंसेज्ज'त्ति रूतादिसमभिध्वंसनात्, इह चायं वाक्यशेषो दृश्यः–एवं मैथुनं सेवमानो योनिगतसत्त्वान् मेहनेनाभिध्वंसयेत्, एते च किल ग्रन्थान्तरे पञ्चेन्द्रियाः श्रूयन्त इति, 'एरिसए ण'मित्यादि च निगमनमिति ॥ पूर्वं तिर्यङ्मनुष्योत्पत्तिर्विचारिता, अथ देवोत्पत्तिविचारणायाः प्रस्तावनायेदमाह–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०७]

दीप अनुक्रम [१३०]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥१३४॥

तए णं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ नगराओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ २ बहिया जणवयविहारं विहरति । तेणं कालेणं २ तुंगिया नामं नगरी होत्था वण्णओ, तीसे णं तुंगियाए नगरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए पुप्फवतिए नामं चेतिए होत्था, वण्णओ, तत्थ णं तुंगियाए नयरीए बहवे समणोवासया परिवसंति अड्ढा दित्ता विच्छिण्णविपुलभवणसयणासणजाणवाहणाइण्णा बहुधणबहुजायरूव-रयया आओगपओगसंपउत्ता विच्छड्डियविपुलभत्तपाणा बहुदासीदासगोमहिसगवेलयप्पभूया बहुजणस्स अपरिभूया अभिगयजीवाजीवा उवलद्धपुण्णपावा आसवसंवरनिज्जरकिरियाहिकरणबंधमोक्खकुसला अस-हेज्जदेवासुरनागसुवण्णजक्खरक्खसकिंनरकिंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगादीएहिं देवगणेहिं निग्गंथाओ पाव-यणाओ अणतिक्कमणिज्जा णिग्गंथे पावयणे निस्संकिया निक्कंखिया निव्वितिगिच्छा लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा अभिगयट्ठा विणिच्छियट्ठा अट्ठिमिंजपेम्माणुरागरत्ता अयमाउसो ! निग्गंथे पावयणे अट्ठे अयं परमट्ठे सेसे अणट्ठे ऊसियफलिहा अवंगुयदुवारा चियत्तंतेउरघरप्पवेसा बहूहिं सीलव्वयगुणवेरमणपच्च-क्खाणपोसहोववासेहिं, चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुन्नं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणे समणे निग्गंथे फासुएसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं वत्थपडिग्गहकंबलपायपुंछणेणं पीढफलगसेज्जासंथारएणं ओसह-भेसज्जेण य पडिलाभेमाणा आहापडिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति ॥ (सू० १०७)॥

'अड्ढ'त्ति आढ्या धनधान्यादिभिः परिपूर्णाः 'दित्त'त्ति दीप्ताः–प्रसिद्धाः दृप्ता वा–दर्पिताः 'विच्छिन्नविपुलभ-

२ शतके उद्देशः ५ तुङ्गिका-श्रावकाः सू १०७

॥१३४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तुन्गिका-नगर्या: श्रावका:

वणसयणासणजाणवाहणाइण्णा' विस्तीर्णानि–विस्तारवन्ति विपुलानि–प्रचुराणि भवनानि–गृहाणि शयनासनयानवाहनैराकीर्णानि येषां ते तथा, अथवा विस्तीर्णानि–विपुलानि भवनानि येषां, ते शयनासनयानवाहनानि चाकीर्णानि–गुणवन्ति येषां ते तथा, तत्र यानं–गन्त्र्यादि वाहनं तु–अश्वादि, 'बहुधणबहुजायरूवरययां'बहु–प्रभूतं धनं–गणिमादिकं तथा बहु एव जातरूपं–सुवर्णं रजतं च–रूप्यं येषां ते तथा, 'आओगपओगसंपउत्ता' आयोगो–द्विगुणादि वृद्ध्याऽर्थप्रदानं प्रयोगश्च–कलान्तरं तौ संप्रयुक्तौ–व्यापारितौ यैस्ते तथा, 'विच्छड्डियविउलभत्तपाणा' विच्छर्दितं–विविधमुज्झितं बहुलोकभोजनत उच्छिष्टावशेषसम्भवात् विच्छर्दितं वा–विविधविच्छित्तिमद्विपुलं भक्तं च पानकं च येषां ते तथा, 'बहुदासीदासगोमहिसगवेलगप्पभूया' बहवो दासीदासा येषां ते गोमहिषगवेलकाश्च प्रभूता येषां ते तथा, गवेलका–उरभ्राः, 'बहुजणस्स अपरिभूया' बहोर्लोकस्यापरिभवनीयाः, 'आसवे'त्यादौ क्रियाः–कायिक्यादिकाः 'अधिकरणं' गन्त्रीयन्त्रकादि 'कुसल'त्ति आश्रवादीनां हेयोपादेयतास्वरूपवेदिनः, 'असहेज्जे'त्यादि, अविद्यमानं साहाय्यं–परसाहायकम् अत्यन्तसमर्थत्वाद्येषां तेऽसाहाय्यास्ते च ते देवादयश्चेति कर्मधारयः, अथवा व्यस्तमेवेदं तेनासाहाय्या–आपद्यपि देवादिसाहायकानपेक्षाः स्वयं कृतं कर्म स्वयमेव भोक्तव्यमित्यदीनमनोवृत्तय इत्यर्थः अथवा षाषण्डिभिः प्रारब्धाः सम्यक्त्वाविचलनं प्रति न परसाहाय्यमपेक्षन्ते, स्वयमेव तत्प्रतिघातसमर्थत्वाज्जिनशासनात्यन्तभावितत्वाच्चेति, तत्र देवा–वैमानिकाः 'असुरे'ति असुरकुमाराः 'नाग'त्ति नागकुमाराः, उभयेऽप्यमी भवनपतिविशेषाः, 'सुवण्ण'त्ति सद्वर्णाः ज्योतिष्काः यक्षराक्षसकिंनरकिंपुरुषाः–व्यन्तरविशेषाः 'गरुल'त्ति गरुडध्वजाः सुपर्णकुमाराः–भवनपतिवि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शेषाः गन्धर्वा महोरगाश्च–व्यन्तरविशेषाः 'अणतिक्कमणिज्ज'त्ति अनतिक्रमणीयाः–अचालनीयाः, 'लद्धट्ठ'त्ति अर्थश्रवणात् 'गहियट्ठ'त्ति अर्थावधारणात् 'पुच्छियट्ठ'त्ति सांशयिकार्थप्रश्नकरणात् 'अभिगहियट्ठ'त्ति प्रश्नितार्थस्याभिगमनात् 'विणिच्छियट्ठ'त्ति ऐदम्पर्यार्थस्योपलम्भाद् अत एव 'अट्ठिमिंजपेम्माणुरागरत्ता' अस्थीनि च–कीकसानि मिञ्जा च–तन्मध्यवर्त्ती धातुरस्थिमिञ्जास्ताः प्रेमानुरागेण–सर्वज्ञप्रवचनप्रीतिरूपकुसुम्भादिरागेण रक्ता इव रक्ता येषां ते तथा, अथवाऽस्थिमिञ्जासु जिनशासनगतप्रेमानुरागेण रक्ता ये ते तथा, केनोल्लेखेन? इत्याह–'अयमाउसो'इत्यादि, अयमिति–प्राकृतत्वादिदम् 'आउसो'त्ति आयुष्मन्निति पुत्रादेरामन्त्रणं 'सेसे'त्ति शेषं–निर्ग्रन्थप्रवचनव्यतिरिक्तं धनधान्यपुत्रकलत्रमित्रकुप्रवचनादिकमिति, 'ऊसियफलिह'त्ति उच्छ्रितम्–उन्नतं स्फटिकमिव स्फटिकं चित्तं येषां ते उच्छ्रितस्फटिकाः मौनीन्द्रप्रवचनावाप्त्या परितुष्टमानसा इत्यर्थ इति वृद्धव्याख्या, अन्ये त्वाहुः–उच्छ्रितः–अर्गलास्थानादपनीयोर्द्धीकृतो न तिरश्चीनः कपाटपश्चाद्भागादपनीत इत्यर्थः परिघः–अर्गला येषां ते उच्छ्रितपरिघाः, अथवोच्छ्रितो–गृहद्वारादपगतः परिघो येषां ते उच्छ्रितपरिघाः, औदार्यातिशयादतिशयदानदायित्वेन भिक्षुकाणां गृहप्रवेशनार्थमनर्गलितगृहद्वारा इत्यर्थः, 'अवंगुयदुवारे'ति अप्रावृतद्वाराः-कपाटादिभिरस्थगितगृहद्वारा इत्यर्थः, सद्दर्शनलाभेन न कुतोऽपि पाषण्डिकाद्बिभ्यति, शोभनमार्गपरिग्रहेणोद्घाटशिरसस्तिष्ठन्तीति भाव इति वृद्धव्याख्या, अन्ये त्वाहुः–भिक्षुकप्रवेशार्थमौदार्यादस्थगितगृहद्वारा इत्यर्थः, 'चियत्तंतेउरघरप्पवेसा' 'चियत्तो'त्ति लोकानां प्रीतिकर एवान्तःपुरे वा गृहे वा प्रवेशो येषां ते तथा, अतिधार्मिकतया सर्वत्रानाशङ्कनीयास्त इत्यर्थः, अन्ये त्वाहुः–'चियत्तो'त्ति नाप्रीतिकरोऽन्तःपुरगृहयोः प्रवेशः–शिष्टजनप्रवेशनं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तुन्गिका-नगर्या: श्रावका:

येषां ते तथा, अनीर्ष्यालुताप्रतिपादनपरं चेत्थं विशेषणमिति, अथवा 'चियत्तो'त्ति त्यक्तोऽन्तःपुरगृहेभ्यः परकीययोर्यथाकथञ्चित्प्रवेशो यैस्ते तथा, 'बहूहिं'इत्यादि, शीलव्रतानि—अणुव्रतानि गुणा—गुणव्रतानि विरमणानि—औचित्येन रागादिनिवृत्तयः प्रत्याख्यानानि—पौरुष्यादीनि पौषधं—पर्वदिनानुष्ठानं तत्रोपवासः—अवस्थानं पौषधोपवासः,एषां द्वन्द्वोऽतस्तैर्युक्ता इति गम्यम् । पौषधोपवास इत्युक्तं, पौषधं च यदा यथाविधं च ते कुर्वन्तो विहरन्ति तदर्शयन्नाह—'चाउद्दसे'त्यादि, इहोद्दिष्टा—अमावास्या 'पडिपुण्णं पोसहं'ति आहारादिभेदाच्चतुर्विधमपि सर्वतः 'वत्थपडिग्गहकंबलपायपुंछणेणं'ति इह पतद्ग्रहं—पात्रं पादप्रोञ्छनं—रजोहरणं 'पीढे'त्यादि पीठम्—आसनं फलकम्—अवष्टम्भनफलकं शय्या—वसतिर्बृहत्संस्तारको वा संस्तारको—लघुतरः एषां समाहारद्वन्द्वोऽतस्तेन 'अहापरिग्गहिएहिं'ति यथाप्रतिपन्नैर्न पुनर्हासं नीतैः ॥

तेणं कालेणं २ पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो जातिसंपन्ना कुलसंपन्ना बलसंपन्ना रूवसंपन्ना विणयसंपन्ना णाणसंपन्ना दंसणसंपन्ना चरित्तसंपन्ना लज्जासंपन्ना लाघवसंपन्ना ओयंसी तेयंसी वच्चंसी जसंसी जियकोहा जियमाणा जियलोभा जियनिद्दा जितिंदिया जियपरीसहा जीवियासमरणभयविप्पमुक्का जाव कुत्तियावणभूता बहुस्सुया बहुपरिवारा पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडा अहाणुपुव्विं चरमाणा गामाणुगामं दूइज्जमाणा सुहंसुहेणं विहरमाणा जेणेव तुंगिया नगरी जेणेव पुप्फवतीए चेइए तेणेव उवागच्छंति २ अहापडिरूवं उग्गहं उगिण्हित्ता णं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरंति ॥ (सू० १०८)॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

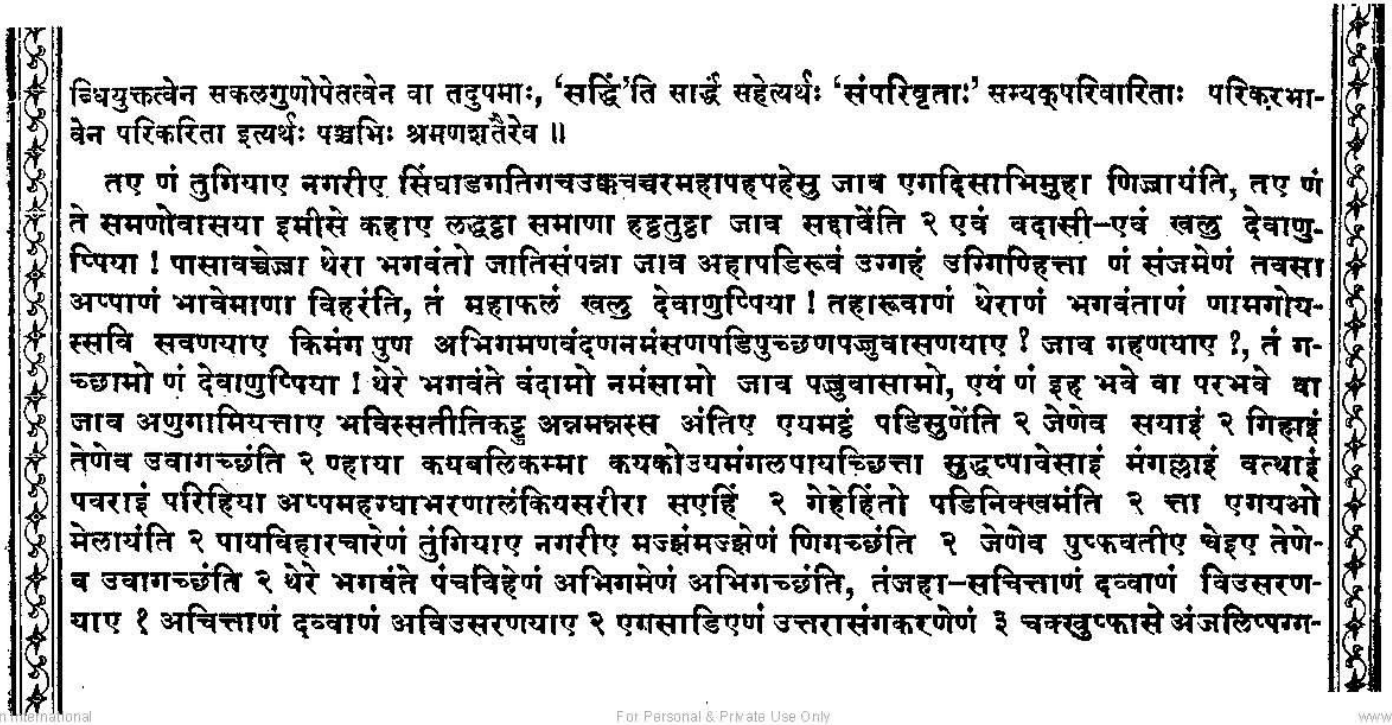
॥१३६॥

'थेर'त्ति श्रुतवृद्धाः 'रूवसंपन्न'त्ति इह रूपं–सुविहितनेपथ्यं शरीरसुन्दरता वा तेन संपन्ना–युक्ता रूपसंपन्नाः 'लज्जा०लाघवसंपन्न'त्ति लज्जा–प्रसिद्धा संयमो वा लाघवं–द्रव्यतोऽल्पोपधित्वं भावतो गौरवत्यागः, 'ओयंसी'ति 'ओजस्विनो'मानसावष्टम्भयुक्ताः 'तेयंसी'ति 'तेजस्विनः' शरीरप्रभायुक्ताः 'वचंसी'ति 'वर्चस्विनः' विशिष्टप्रभावोपेताः 'वचस्विनो वा' विशिष्टवचनयुक्ताः'जसंसी'ति ख्यातिमन्तः,अनुस्वारश्चैतेषु प्राकृतत्वात्,'जीवियासमरणभयविप्पमुक्क'त्ति जीविताशया मरणभयेन च विप्रमुक्ता ये ते तथा, इह यावत्करणादिदं दृश्यं–'तवप्पहाणा गुणप्पहाणा' गुणाश्च संयमगुणाः, तपःसंयमग्रहणं चेह तपःसंयमयोः प्रधानमोक्षाङ्गताभिधानार्थं, तथा 'करणप्पहाणा चरणप्पहाणा' तत्र करणं–पिण्डविशुद्ध्यादि चरणं–व्रतश्रमणधर्मादि 'निग्गहप्पहाणा' निग्रहः–अन्यायकारिणां दण्डः 'निच्छयप्पहाणा' निश्चयः–अवश्यंकरणाभ्युपगमस्तत्त्वनिर्णयो वा 'मद्दवप्पहाणा अज्जवप्पहाणा' ननु जितक्रोधादित्वान्मार्दवादिप्रधानत्वमवगम्यत एव तत्किं मार्दवेत्यादिना ?, उच्यते, तत्रोदयविफलतोक्ता मार्दवादिप्रधानत्वे तूदयाभाव एवेति, 'लाघवप्पहाणा' लाघवं–क्रियासु दक्षत्वं 'खंतिप्पहाणा मुत्तिप्पहाणा एवं विज्जामंतवेयबंभनयनियमसच्चसोयप्पहाणा' 'चारुपण्णा' सत्प्रज्ञाः 'सोही' शुद्धिहेतुत्वेन शोधयः सुहृदो वा–मित्राणि जीवानामिति गम्यम्, 'अणियाणा अप्पुस्सुया अबहिल्लेसा सुसामण्णरया अच्छिद्दपसिणवागरणे'ति अच्छिद्राणि–अविरलानि निर्दूषणानि वा प्रश्नव्याकरणानि येषां ते तथा, तथा 'कुत्तियावणभूय'त्ति कुत्रिकं–स्वर्गमर्त्यपातालरूपं भूमित्रयं तत्सम्भवं वस्त्वपि कुत्रिकं तत्संपादक आपणो–हट्टः कुत्रिकापणस्तद्भूताः सभीहितार्थसम्पादनल-

२ शतके उद्देशः ५ पार्श्वापत्यागमः सू १०८

॥१३६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



ब्धियुक्तत्वेन सकलगुणोपेतत्वेन वा तदुपमाः, 'सद्धिं'ति सार्द्धं सहेत्यर्थः 'संपरिवृताः' सम्यक्परिवारिताः परिकरभावेन परिकरिता इत्यर्थः पञ्चभिः श्रमणशतैरेव ॥

तए णं तुंगियाए नगरीए सिंघाडगतिगचउक्कचच्चरमहापहपहेसु जाव एगदिसाभिमुहा णिज्जायंति, तए णं ते समणोवासया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा हट्ठतुट्ठा जाव सद्दावेंति २ एवं वदासी–एवं खलु देवाणुप्पिया ! पासावच्चेज्जा थेरा भगवंतो जातिसंपन्ना जाव अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता णं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति, तं महाफलं खलु देवाणुप्पिया ! तहारूवाणं थेराणं भगवंताणं णामगोयस्सवि सवणयाए किमंग पुण अभिगमणवंदणनमंसणपडिपुच्छणपज्जुवासणयाए ? जाव गहणयाए ?, तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! थेरे भगवंते वंदामो नमंसामो जाव पज्जुवासामो, एयं णं इह भवे वा परभवे वा जाव अणुगामियत्ताए भविस्सतीतिकट्टु अन्नमन्नस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति २ जेणेव सयाइं २ गिहाइं तेणेव उवागच्छंति २ ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवराइं परिहिया अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा सएहिं २ गेहेहिंतो पडिनिक्खमंति २ त्ता एगयओ मेलायंति २ पायविहारचारेणं तुंगियाए नगरीए मज्झंमज्झेणं णिगच्छंति २ जेणेव पुप्फवतीए चेइए तेणेव उवागच्छंति २ थेरे भगवंते पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छंति, तंजहा–सचित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए १ अचित्ताणं दव्वाणं अविउसरणयाए २ एगसाडिएणं उत्तरासंगकरणेणं ३ चक्खुप्फासे अंजलिप्पग्ग-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हेणं ४ मणसो एगत्तीकरणेणं ५ जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छंति २ तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २ जाव तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासंति ॥ (सू० १०९) ॥

'सिंघाडग'त्ति शृङ्गाटकफलाकारं स्थानं त्रिकं–रथ्यात्रयमीलनस्थानं चतुष्कं–रथ्याचतुष्कमीलनस्थानं चत्वरं–बहुत-ररथ्यामीलनस्थानं महापथो–राजमार्गः पन्था–रथ्यामात्रं यावत्करणाद् 'बहुजणसद्दे इ वा' इत्यादि पूर्वं आख्यानमत्र दृश्यं 'एयमट्ठं पडिसुणेंति'त्ति अभ्युपगच्छन्ति 'सयाइं २ 'ति स्वकीयानि २ 'कयबलिकम्म'त्ति स्नानानन्तरं कृतं बलिकर्म यैः स्वगृहदेवतानां ते तथा, 'कयकोउयमंगलपायच्छित्त'त्ति कृतानि कौतुकमङ्गलान्येव प्रायश्चित्तानि दुःस्व-प्नादिविघातार्थमवश्यकरणीयत्वाद्यैस्ते तथा, अन्ये त्वाहुः–'पायच्छित्त'त्ति पादेन पादे वा छुप्ताश्चक्षुर्दोषपरिहारार्थं पादच्छुप्ताः कृतकौतुकमङ्गलाश्च ते पादच्छुप्ताश्चेति विग्रहः, तत्र कौतुकानि–मषीतिलकादीनि मङ्गलानि तु–सिद्धार्थकद-ध्यक्षतदूर्वाङ्कुरादीनि 'सुद्धप्पावेसाइं'ति शुद्धात्मनां वैष्याणि–वेषोचितानि अथवा शुद्धानि च तानि प्रवे-श्यानि च–राजादिसभाप्रवेशोचितानि शुद्धप्रवेश्यानि 'वत्थाइं पवराइं परिहिय'त्ति क्वचिद्दृश्यते, क्वचिच्च 'वत्थाइं पवरपरिहिय'त्ति, तत्र प्रथमपाठो व्यक्तः, द्वितीयस्तु प्रवरं यथाभवत्येवं परिहिताः प्रवरपरिहिताः 'पायविहारचारेणं'ति पादविहारेण न यानविहारेण यश्चारो–गमनं स तथा तेन 'अभिगमेणं'ति प्रतिपत्त्या 'अभिगच्छन्ति' तत् समीपं अभि-गच्छन्ति 'सचित्ताणं'ति पुष्पताम्बूलादीनां 'विउसरणयाए'त्ति 'व्यवसर्जनया' त्यागेन 'अचित्ताणं'ति वस्त्रमुद्रिकादी-नाम् 'अविउसरणयाए'त्ति अत्यागेन 'एगसाडिएणं'ति अनेकोत्तरीयशाटकानां निषेधार्थमुक्तम् 'उत्तरासंगकर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णेणं'ति उत्तरासङ्गः–उत्तरीयस्य देहे न्यासविशेषः 'चक्षुःस्पर्शे' दृष्टिपाते 'एगत्तीकरणेणं'ति अनेकत्वस्य–अनेकालम्बनत्वस्य एकत्वकरणम्–एकालम्बनत्वकरणमेकत्रीकरणं तेन 'तिविहाए पज्जुवासणाए'त्ति, इह पर्युपासनात्रैविध्यं मनोवाक्कायभेदादिति ॥

तए णं ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं तीसे य महतिमहालियाए चाउज्जामं धम्मं परिकहेंति जहा केसिसामिस्स जाव समणोवासियत्ताए आणाए आराहगे भवति जाव धम्मो कहिओ। तए णं ते समणोवासया थेराणं भगवंताणं अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ तुट्ठ जाव हयहियया तिक्खुत्तो आयाहिणप्पयाहिणं करेंति २ जाव तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासति २ एवं वदासी–संजमे णं भंते ! किंफले ? तवे णं भंते ! किंफले ?, तए णं ते थेरा भगवंतो ते समणोवासए एवं वदासी–संजमे णं अज्जो ! अणण्हयफले तवे वोदाणफले, तए णं ते समणोवासया थेरे भगवंते एवं वदासी–जति णं भंते ! संजमे अणण्हयफले तवे वोदाणफले किंपत्तियं णं भंते ! देवा देवलोएसु उववज्जंति, तत्थ णं कालियपुत्ते नामं थेरे ते समणोवासए एवं वदासी–पुव्वतवेणं अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति, तत्थ णं मेहिले नामं थेरे ते समणोवासए एवं वदासी–पुव्वसंजमेणं अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति, तत्थ णं आणंदरक्खिए णामं थेरे ते समणोवासए एवं वदासी–कम्मियाए अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति, तत्थ णं कासवे णामं थेरे ते समणोवासए एवं वदासी–संगियाए अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति, पुव्वतवेणं पुव्वसंजमेणं कम्मियाए संगियाए अज्जो !

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवा देवलोएसु उववज्जंति, सचे णं एस अट्ठे नो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए, तए णं ते समणोवासया थेरेहिं भगवंतेहिं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरिया समाणा हट्ठतुट्ठा थेरे भगवंते वंदंति नमंसंति २ पसिणाइं पुच्छंति २ अट्ठाइं उवादियंति २ उट्ठाइ उट्ठेति २ थेरे भगवंते तिक्खुत्तो वंदंति णमंसंति २ थेराणं भगवं० अंतियाओ पुप्फवतियाओ चेइयाओ पडिनिक्खमंति २ जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया ॥ तए णं ते थेरा अन्नया कयाइं तुंगियाओ पुप्फवतिचेइयाओ पडिनिग्गच्छइ २ बहिया जणवयविहारं विहरइ (सू० ११०) ॥

'महइमहालियाए'त्ति आलप्रत्ययस्य स्वार्थिकत्वान्महातिमहत्याः 'अणण्हयफले'त्ति न आश्रवः अनाश्रवः अनाश्रवो–नवकर्म्मानुपादानं फलमस्येत्यनाश्रवफलः संयमः 'वोदाणफले'त्ति 'दाप् लवने' अथवा 'दैप् शोधने' इति वचनाद् व्यवदानं–पूर्वकृतकर्म्मवनगहनस्य लवनं प्राक्कृतकर्म्मकचवरशोधनं वा फलं यस्य तद्व्यवदानफलं तप इति । किंपत्तियं'ति कः प्रत्ययः—कारणं यत्र तत् किंप्रत्ययं ?, निष्कारणमेव देवा देवलोकेषूत्पद्यन्ते तपःसंयमयोरुक्तनीत्या तदकारणत्वादित्यभिप्रायः । 'पुव्वतवेणं'ति पूर्वतपः–सरागावस्थाभावि तपस्या, वीतरागावस्थाऽपेक्षया सरागावस्थायाः पूर्वकालभावित्वात्, एवं संयमोऽपि अयथाख्यातचारित्रमित्यर्थः, ततश्च सरागकृतेन संयमेन तपसा च देवत्वावाप्तिः, रागांशस्य कर्मबन्धहेतुत्वात् । 'कम्मियाए'त्ति कर्म विद्यते यस्यासौ कर्मी तद्भावस्तत्ता तया कर्म्मितया, अन्ये त्वाहुः–कर्म्मणां विकारः कार्मिका तयाऽक्षीणेन कर्म्मशेषेण देवत्वावाप्तिरित्यर्थः, 'संगियाए'त्ति सङ्गो यस्यास्ति स सङ्गी तद्भा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुत्ता तया, ससङ्गो हि द्रव्यादिषु संयमादियुक्तोऽपि कर्म बध्नाति. ततः सङ्गितया देवत्वावाप्तिरिति, आह च—"पुव्व-तवसंजमा होंति रागिणो पच्छिमा अरागस्स । रागो संगो वुत्तो संगा कम्मं भवो तेणं ॥ १ ॥" 'सच्चे ण'मित्यादि सत्यो-ऽयमर्थः, कस्मात् ? इत्याह—'नो चेव ण'मित्यादि नैवात्मभाववक्तव्यतयाऽयमर्थः, आत्मभाव एव–स्वाभिप्राय एव न वस्तुतत्त्वं वक्तव्यो–वाच्योऽभिमानाद्येषां ते आत्मभाववक्तव्यास्तेषां भाव–आत्मभाववक्तव्यता–अहंमानिता तया, न वयमहंमानितयैवं ब्रूमः अपि तु परमार्थ एवायमेवंविध इति भावना ॥

तेणं कालेणं २ रायगिहे नामं नगरे जाव परिसा पडिगया, तेणं कालेणं २ समणस्स भगवओ महावी-रस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूतीनामं अणगारे जाव संखित्तविउलतेयलेस्से छट्ठंछट्ठेणं अनिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे जाव विहरति । तए णं से भगवं गोयमे छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ बीयाए पोरिसीए झाणं झियायइ तइयाए पोरिसीए अतुरियमचवलमसंभंते मुह-पोत्तियं पडिलेहेइ २ भायणाइं वत्थाइं पडिलेहेइ २ भायणाइं पमज्जइ २ भायणाइं उग्गाहेइ २ जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ २ समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ एवं वदासी–इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए छट्ठक्खमणपारणगंसि रायगिहे नगरे उच्चनीयमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भि-क्खायरियाए अडित्तए, अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं, तए णं भगवं गोयमे समणेणं भगवया महा-

१ रागिणस्तपःसंयमौ दैवत्वकारणे (पूर्वौ) अरागिणोऽन्त्यौ रागः सङ्ग उक्तः सङ्गात् कर्म्म तेन भवो जायते ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१११]

दीप अनुक्रम [१३४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१ ॥१३९॥

वीरेणं अब्भणुन्नाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ २ अतुरियमचवलमसंभंते जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओ रियं सोहेमाणे २ जेणेव रायगिहे नगरे तेणेव उवागच्छइ २ रायगिहे नगरे उच्चनीयमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं अडइ । तए णं से भगवं गोयमे रायगिहे न० जाव अडमाणे बहुजणसद्दं निसामेइ–एवं खलु देवाणुप्पिया ! तुङ्गियाए नगरीए बहिया पुप्फवतीए चेएइ पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो समणोवासएहिं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं पुच्छिया–संजमे णं भंते ! किंफले ? तवे णं भंते ! किंफले ?, तए णं ते थेरा भगवंतो ते समणोवासए एवं वदासी–संजमे णं अज्जो ! अणण्हयफले तवे वोदाणफले तं चेव जाव पुव्वतवेणं पुव्वसंजमेणं कम्मियाए संगियाए अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति, सच्चे णं एसमट्ठे णो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए ॥ से कहमेयं मण्णे एवं ?, तए णं समणे० गोयमे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जायसड्ढे जाव समुप्पन्नकोउहल्ले अहापज्जत्तं समुदाणं गेण्हइ २ रायगिहाओ नगराओ पडिनिक्खमइ २ अतुरियं जाव सोहेमाणे जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवा० सम० भ० महावीरस्स अदूरसामंते गमणागमणए पडिक्कमइ एसणमणेसणं आलोएइ २ भत्तपाणं पडिदंसेइ २ समणं भ० महावीरं जाव एवं वयासी–एवं खलु भंते ! अहं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे रायगिहे नगरे उच्चनीयमज्झिमाणि कुलाणि घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे बहुजणसद्दं निसामेमि(मि), एवं खलु देवा० तुंगियाए नगरीए बहिया

२ शतके उद्देशः ५ स्थविरसामर्थ्ये गौतमप्रश्नः सू १११

॥१३९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वापत्य-स्थवीर सार्ध गौतमस्वामिन: प्रश्न:

प्रत सूत्रांक [१११]

दीप अनुक्रम [१३४]

पुप्फवईए चेइए पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो समणोवासएहिं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं पुच्छिया—संजमे णं भंते ! किंफले ? तवे किंफले ? तं चेव जाव सच्चे णं एसमट्ठे णो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए, तं पभू णं भंते ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरित्तए उदाहु अप्पभू ?, समिया णं भंते ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरित्तए उदाहु असमिया ? आउज्जिया णं भंते ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरित्तए ? उदाहु अणाउज्जिया ? पलिउज्जिया णं भंते ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरित्तए उदाहु अपलिउज्जिया ?, पुव्वतवेणं अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति पुव्वसंजमेणं कम्मियाए संगियाए अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति, सच्चे णं एसमट्ठे णो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए, पभू णं गोयमा ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरेत्तए, णो चेव णं अप्पभू, तह चेव नेयव्वं अवसेसियं जाव पभू समियं आउज्जिया पलिउज्जिया जाव सच्चे णं एसमट्ठे णो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए, अहंपि णं गोयमा ! एवमाइक्खामि भासेमि पण्णवेमि परूवेमि पुव्वतवेणं देवा देवलोएसु उववज्जंति पुव्वसंजमेणं देवा देवलोएसु उववज्जंति कम्मियाए देवा देवलोएसु उववज्जंति संगियाए देवा देवलोएसु उववज्जंति, पुव्वतवेणं पुव्वसंजमेणं कम्मियाए संगियाए अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति, सच्चे णं एसमट्ठे णो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए ॥ (सू० १११) ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वापत्य-स्थवीर सार्ध गौतमस्वामिनः प्रश्नः

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥१४०॥

'अतुरियं'ति कायिकत्वरारहितम् 'अचवलं'ति मानसचापल्यरहितम् 'असंभंते'त्ति असंभ्रान्तज्ञानः 'घरसमुदा-णस्स' गृहेषु समुदानं–भैक्षं गृहसमुदानं तस्मै गृहसमुदानाय 'भिक्खायरियाए'त्ति भिक्षासमाचारेण 'जुगंतरपलोय-णाए'त्ति युगं–यूपस्तत्प्रमाणमन्तरं–स्वदेहस्य दृष्टिपातदेशस्य च व्यवधानं प्रलोकयति या सा युगान्तरप्रलोकना तया दृष्ट्या 'रियं'ति ईर्यागमनम् ॥

'से कहमेयं मण्णे एवं'ति अथ कथमेतत् स्थविरवचनं मन्ये इति वितर्कार्थो निपातः 'एवम्' अमुना प्रकारेणेति बहुजनवचनं 'पभू णं'ति 'प्रभवः' समर्थास्ते 'समिया णं'ति सम्यगिति प्रशंसार्थो निपातस्तेन सम्यक् ते व्याकर्त्तुं वर्त्तन्ते अविपर्यासात इत्यर्थः समञ्चन्तीति वा सम्यञ्चः समिता वा–सम्यक्प्रवृत्तयः श्रमिता वा–अभ्यासवन्तः 'आउ-ज्जिय'त्ति 'आयोगिकाः' उपयोगवन्तो ज्ञानिन इत्यर्थः जानन्तीति भावः 'पलिउज्जिय'त्ति परि–समन्ताद् योगिकाः परिज्ञानिन इत्यर्थः परिजानन्तीति भावः॥ अनन्तरं श्रमणपर्युपासनासंविधानकमुक्तम्, अथ सा यत्फला तद्दर्शनार्थमाह–

तहारूवं भंते ! समणं वा माहणं वा पज्जुवासमाणस्स किंफला पज्जुवासणा ?, गोयमा ! सवणफला, से णं भंते ! सवणे किंफले ?, णाणफले, से णं भंते ! नाणे किंफले ?, विण्णाणफले, से णं भंते ! विन्नाणे किंफले ?, पच्चक्खाणफले, से णं भंते ! पच्चक्खाणे किंफले ?, संजमफले, से णं भंते! संजमे किंफले ?, अण-ण्हयफले, एवं अणण्हये तवफले, तवे वोदाणफले, वोदाणे अकिरियाफले, से णं भंते ! अकिरिया किं

२ शतके उद्देशः ५ स्थविरसा-मर्थ्ये गौत-मप्रश्नः सू १११

॥१४०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वापत्य-स्थवीर सार्ध गौतमस्वामिनः प्रश्नः

प्रत सूत्रांक [११२] + गाथा

दीप अनुक्रम [१३५-१३६]

फला १, सिद्धिपज्जवसाणफला पण्णत्ता गोयमा !, गाहा–सवणे णाणे य विण्णाणे पच्चक्खाणे य संजमे। अणण्हए तवे चेव वोदाणे अकिरिया सिद्धी ॥ १ ॥ (सू० ११२) ॥

'तहारूव'मित्यादि 'तथारूपम्' उचितस्वभावं कञ्चन पुरुषं श्रमणं वा तपोयुक्तम्, उपलक्षणत्वादस्योत्तरगुणवन्तमित्यर्थः, 'माहनं वा' स्वयं हननानिवृत्तत्वात्परं प्रति मा हनेतिवादिनम्, उपलक्षणत्वादेव मूलगुणयुक्तमिति भावः, वाशब्दौ समुच्चये, अथवा 'श्रमणः' साधुः 'माहनः' श्रावकः 'सवणफले'ति सिद्धान्तश्रवणफला, 'णाणफले'त्ति श्रुतज्ञानफलं, श्रवणाद्धि श्रुतज्ञानमवाप्यते, 'विण्णाणफले'त्ति विशिष्टज्ञानफलं, श्रुतज्ञानाद्धि हेयोपादेयविवेककारिविज्ञानमुत्पद्यत एव, 'पच्चक्खाणफले'त्ति विनिवृत्तिफलं, विशिष्टज्ञानो हि पापं प्रत्याख्याति, 'संजमफले'त्ति कृतप्रत्याख्यानस्य हि संयमो भवत्येव, 'अणण्हयफले'त्ति अनाश्रवफलः, संयमवान् किल नवं कर्म नोपादत्ते, 'तवफले'त्ति अनाश्रवो हि लघुकर्मत्वात्तपस्यतीति, 'वोदाणफले'त्ति व्यवदानं–कर्मनिर्जरणं, तपसा हि पुरातनं कर्म निर्जरयति, 'अकिरियाफले'त्ति योगनिरोधफलं, कर्मनिर्जरातो हि योगनिरोधं कुरुते, 'सिद्धिपज्जवसाणफले'ति सिद्धिलक्षणं पर्यवसानफलं–सकलफलपर्यन्तवर्त्ति फलं यस्यां सा तथा। 'गाह'त्ति सङ्ग्रहगाथा, एतल्लक्षणं चैतद्–"विषमाक्षरपादं वा"इत्यादि छन्दःशास्त्रप्रसिद्धमिति ॥ तथारूपस्यैव श्रमणादेः पर्युपासना यथोक्तफला भवति, नातथारूपस्य, असम्यग्भाषित्वादिति असम्यग्भाषितामेव केषाञ्चिद्दर्शयन्नाह—

अण्णउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति भासंति पण्णवेंति परूवेंति–एवं खलु रायगिहस्स नगरस्स बहिया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वापत्य-स्थवीर सार्ध गौतमस्वामिनः प्रश्नः

प्रत सूत्रांक [११३]

दीप अनुक्रम [१३७]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १ ॥१४१॥

वेभारस्स पव्वयस्स अहे एत्थ णं महं एगे हरए अधे पन्नत्ते अणेगाइं जोयणाइं आयामविक्खंभेणं नाणादुम-संडमंडितउद्देसे सस्सिरीए जाव पडिरूवे, तत्थ णं बहवे ओराला बलाहया संसेयंति सम्मुच्छिंति वासंति तव्वतिरित्ते य णं सया समिओ उसिणे २ आउकाए अभिनिस्सवइ। से कहमेयं भंते ! एवं ?, गोयमा ! जण्णं ते अण्णउत्थिया एवमातिक्खंति जाव जे ते एवं परूवेंति मिच्छं ते एवमातिक्खंति जाव सव्वं नेयव्वं, जाव अहं पुण गोयमा ! एवमातिक्खामि भा० पं० प० एवं खलु रायगिहस्स नगरस्स बहिया वेभारपव्वयस्स अदू-रसामंते, एत्थ णं महातवोवतीरप्पभवे नामं पासवणे पन्नत्ते पंचधणुसयाणि आयामविक्खंभेणं नाणादुमसंडमं-डिउद्देसे सस्सिरीए पासादीए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे तत्थ णं बहवे उसिणजोणिया जीवा य पोग्ग-ला य उदगत्ताए वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उववज्जंति तव्वतिरित्तेवि य णं सया समियं उसिणे २ आ-उयाए अभिनिस्सवइ, एस णं गोयमा ! महातवोवतीरप्पभवे पासवणं एस णं गोयमा ! महातवोवती-रप्पभवस्स पासवणस्स अट्ठे पन्नत्ते, सेवं भंते २ त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति ॥ (सू० ११३) ॥ २–५ ॥

'पव्वयस्स अहे'त्ति अधस्तात्तस्योपरि पर्वत इत्यर्थः 'हरए'त्ति ह्रदः 'अधे'त्ति अधाभिधानः, क्वचित्तु 'हरए'त्ति न दृश्यते, अधेत्यस्य च स्थाने 'अप्पे'त्ति दृश्यते, तत्र चाप्यः–अपां प्रभवो ह्रद एवेति,'ओराल'त्ति विस्तीर्णाः–'बलाहय'–त्ति मेघाः 'संसेयंति' 'संस्विद्यन्ति' उत्पादाभिमुखीभवन्ति 'संमुच्छंति'त्ति 'संमूर्च्छन्ति' उत्पद्यन्ते 'तव्वइरित्ते य'त्ति

२ शतके उद्देशः ५ अधह्रदप्र-श्नः सू११३

॥१४१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११३]

दीप अनुक्रम [१३७]

हृदपूरणादतिरिक्तश्चोत्कलित इत्यर्थः 'आउयाए'त्ति अप्कायः 'अभिनिस्सवइ'त्ति 'अभिनिःश्रवति' क्षरति 'मिच्छं ते एवमाइक्खंति'त्ति मिथ्यात्वं चैतदाख्यानस्य विभङ्गज्ञानपूर्वकत्वात् प्रायः सर्वज्ञवचनविरुद्धत्वाद्व्यावहारिकप्रत्यक्षेण प्रायोऽन्यथोपलम्भाच्चावगन्तव्यम्। 'अदूरसामंते'त्ति नातिदूरे नाप्यतिसमीप इत्यर्थः 'एत्थ णं'ति प्रज्ञापकेनोपदर्श्यमाने 'महातवोवतीरप्पभवे नामं पासवणे'त्ति आतप इवातपः–उष्णता महांश्चासावातपश्चेति महातपः महातपस्वोपतीरं–तीरसमीपे प्रभव–उत्पादो यत्रासौ महातपोपतीरप्रभवः, प्रश्रवति–क्षरतीति प्रश्रवणः प्रस्यन्दन इत्यर्थः, 'वक्कमंति' उत्पद्यन्ते 'विउक्कमंति' विनश्यन्ति, एतदेव व्यत्ययेनाह—च्यवन्ते चेति उत्पद्यन्ते चेति। उक्तमेवार्थं निगमयन्नाह—

'एस ण'मित्यादि 'एषः' अनन्तरोक्तरूपः एष चान्ययूथिकपरिकल्पिताघसञ्ज्ञो महातपोपतीरप्रभवः प्रश्रवण उच्यते, तथा 'एषः' योऽयमनन्तरोक्तः 'उसिणजोणीए'त्यादि स महातपोपतीरप्रभवस्य प्रश्रवणस्यार्थः–अभिधानान्वर्थः प्रज्ञप्तः इति ॥ द्वितीयशते पञ्चमः ॥ २–५ ॥

पञ्चमोद्देशकस्यान्तेऽन्ययूथिका मिथ्याभाषिण उक्ताः, अथ षष्ठे भाषास्वरूपमुच्यते, तत्र सूत्रम्—

से णूणं भंते ! मण्णामीति ओहारिणी भासा, एवं भासापदं भाणियव्वं (सू० ११४) ॥ २–६ ॥

'से णूणं भंते ! मण्णामी'ति 'ओहारिणी भास'त्ति सेशब्दोऽथशब्दार्थे स च वाक्योपन्यासे, 'नूनम्' '(नूनं) उपमानावधारणतर्कप्रश्नहेतुषु' इह अवधारणे 'भदन्त' इति गुर्वामन्त्रणे 'मन्ये' अवबुध्ये इति, एवमवधार्यते–अवगम्यतेऽनयेत्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र द्वितीय-शतके पंचम-उद्देशकः समाप्तः

अथ द्वितीय-शतके षष्ठम-उद्देशकः आरभ्यते

वधारणी, अवबोधबीजभूतेत्यर्थः भाष्यत इति भाषा–तद्योग्यतया परिणामितनिसृष्टनिसृज्यमानद्रव्यसंहतिरिति हृदयम्, एष पदार्थः, अयं पुनर्वाक्यार्थः—अथ भदन्त ! एवमहं मन्येऽवश्यमवधारणी भाषेति । एवममुना सूत्रक्रमेण भाषापदं प्रज्ञापनायामेकादशं भणितव्यमिह स्थाने, इह च भाषा द्रव्यक्षेत्रकालभावैः सत्यादिभिश्च भेदैरन्यैश्च बहुभिः पर्यायैर्विचार्यते ॥ इति द्वितीयशते षष्ठः ॥ २–६ ॥

भाषाविशुद्धेर्देवत्वं भवतीति देवोद्देशकः सप्तमः समारभ्यते, तस्य चेदमादिसूत्रम्—

कतिविहा णं भंते ! देवा पण्णत्ता ?, गोयमा ! चउव्विहा देवा पण्णत्ता, तंजहा–भवणवइवाणमंतरजोतिसवेमाणिया । कहि णं भंते ! भवणवासीणं देवाणं ठाणा पण्णत्ता ?, गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए जहा ठाणपदे देवाणं वत्तव्वया सा भाणियव्वा, नवरं भवणा पण्णत्ता, उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, एवं सव्वं भाणियव्वं जाव सिद्धगंडिया समत्ता–कप्पाण पइट्ठाणं बाहुल्लुच्चत्तमेव संठाणं । जीवाभिगमे जाव वेमाणिउद्देसो भाणियव्वो सव्वो (सू० ११५) ॥ २–७ ॥

'कइ णं'ति कति देवा जात्यपेक्षयेति गम्यं, कतिविधा देवाः ? इति हृदयं, 'जहा ठाणपए'त्ति यथा–यत्प्रकारा यादृशी प्रज्ञापनाया द्वितीये स्थानपदाख्ये पदे देवानां वक्तव्यता 'से'ति तथाप्रकारा भणितव्येति, नवरं 'भवणा पण्णत्त'त्ति क्वचिद् दृश्यते, तस्य च फलं न सम्यगवगम्यते, देववक्तव्यता चैवम्—'इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयण-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र द्वितीय-शतके षष्ठम-उद्देशक: समाप्त:

अथ द्वितीय-शतके सप्तम-उद्देशक: आरभ्यते

सयसहस्से, एत्थ णं भवणवासीणं देवाणं सत्त भवणकोडीओ बावत्तरिं च भवणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं'इत्यादि । तद्गतमेवाभिधेयविशेषं विशेषेण दर्शयति–'उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे'त्ति, उपपातो–भवनपतिस्वस्थानप्राप्त्याभिमुख्यं तेनोपपातमाश्रित्येत्यर्थः, लोकस्यासङ्ख्येयतमे भागे वर्त्तन्ते भवनवासिन इति । 'एवं सव्वं भाणियव्वं'ति 'एवम्' उक्तन्यायेनान्यदपि भणितव्यं, तच्चेदम्—'समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे'त्ति मारणान्तिकादिसमुद्घातवर्त्तिनो भवनपतयो लोकस्यासङ्ख्येय एव भागे वर्त्तन्ते । तथा 'सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जे भागे' स्वस्थानस्य–उक्त भवनवासातिरेककोटीसप्तकलक्षणस्य लोकासङ्ख्येयभागवर्त्तित्वादिति, एवमसुरकुमाराणाम्, एवं तेषामेव दाक्षिणात्यानामौदीच्यानाम्, एवं नागकुमारादिभवनपतीनां यथौचित्येन व्यन्तराणां ज्योतिष्काणां वैमानिकानां च स्थानानि वाच्यानि, कियदूरं यावदित्याह—'जाव सिद्धे'त्ति यावत्सिद्धगण्डिका–सिद्धस्थानप्रतिपादनपरं प्रकरणं, सा चैवम्—'कहि णं भंते ! सिद्धाणं ठाणा पण्णत्ता ?' इत्यादि, इह च देवस्थानाधिकारे यत्सिद्धगण्डिकाऽभिधानं तत्स्थानाधिकारबलादित्यवसेयं, तथेदमपरमपि जीवाभिगमप्रसिद्धं वाच्यं, तद्यथा—'कप्पाण पइट्ठाणं' कल्पविमानानामाधारो वाच्य इत्यर्थः, स चैवम्—'सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणपुढवी किंपइट्ठिया पण्णत्ता ?, गोयमा ! घणोदहिपइट्ठिया पण्णत्ता'इत्यादि, आह च—"[1]घणउदहिपइट्ठाणा सुरभवणा होंति दोसु कप्पेसु । तिसु वाउपइट्ठाणा

१ द्वयोः कल्पयोर्घनोदधिप्रतिष्ठानानि सुरभवनानि वायुप्रतिष्ठानानि त्रिषु त्रिषु च तदुभयप्रतिष्ठानानि ॥ १ ॥ ततः परमुपरितनानि आकाशान्तरप्रतिष्ठितानि सर्वाणि ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥१४३॥

तदुभयसुपइट्ठिया तिसु य ॥ १ ॥ तेण परं उवरिमगा आगासंतरपइट्ठिया सव्वे ।"त्ति । तथा 'बाहल्ल'त्ति विमानपृथिव्याः पिण्डो वाच्यः, स चैवम्—'सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणपुढवी केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ता ?, गोयमा ! सत्तावीसं जोयणसयाइं'इत्यादि, आह च—"[1]सत्तावीस सयाइं आइमकप्पेसु पुढविबाहल्लं । एक्किक्कहाणि सेसे दु दुगे य दुगे चउक्के य ॥ १ ॥" ग्रैवेयकेषु द्वाविंशतिर्योजनानां शतानि, अनुत्तरेषु त्वेकविंशतिरिति । 'उच्चत्तमेव'त्ति कल्पविमानोच्चत्वं वाच्यं, तच्चैवम्—'सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणा केवइयं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ?, गोयमा ! पंचजोयणसयाइं इत्यादि, आह च—"पंचसउच्चत्तेणं आइमकप्पेसु होंति उ विमाणा । एक्केक्कवुड्ढि सेसे दु दुगे य दुगे चउक्के य ॥ १ ॥" ग्रैवेयकेषु दश योजनशतानि अनुत्तरेषु त्वेकादशेति, 'संठाणं'ति विमानसंस्थानं वाच्यं, तच्चैवम्—"सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणा किंसंठिया पण्णत्ता ?, गोयमा ! जे आवलियापविट्ठा ते वट्टा तंसा चउरंसा, जे आवलियाबाहिरा ते नाणासंठिय'त्ति । उक्तार्थस्य शेषमतिदिशन्नाह—जीवाभिगमेत्यादि, स च विमानानां प्रमाणवर्णप्रभागन्धादिप्रतिपादनार्थः ॥ इति द्वितीयशते सप्तमः ॥ २–७ ॥

अथ देवस्थानाधिकाराच्चमरचञ्चाभिधानदेवस्थानादिप्रतिपादनायाष्टमोद्देशकः, तस्य चेदं सूत्रम्—

१–सौधर्मेशानकल्पे सप्तविंशतिशतानि पृथ्वीबाहल्यम् । शेषेष्वेकैकशतहानिः द्विके द्विके द्विके चतुष्के च ॥ १ ॥ २२००–२१०० ग्रैवेयकेषु अनुत्तरेषु ॥ सौधर्मेशानकल्पे विमानानि पञ्चशतोच्चानि शेषेष्वेकैकशतवृद्धिः द्विके द्विके द्विके च चतुष्के च ॥ १ ॥

२ शतके उद्देशः ८ देवस्थानं सू ११५

॥१४३॥

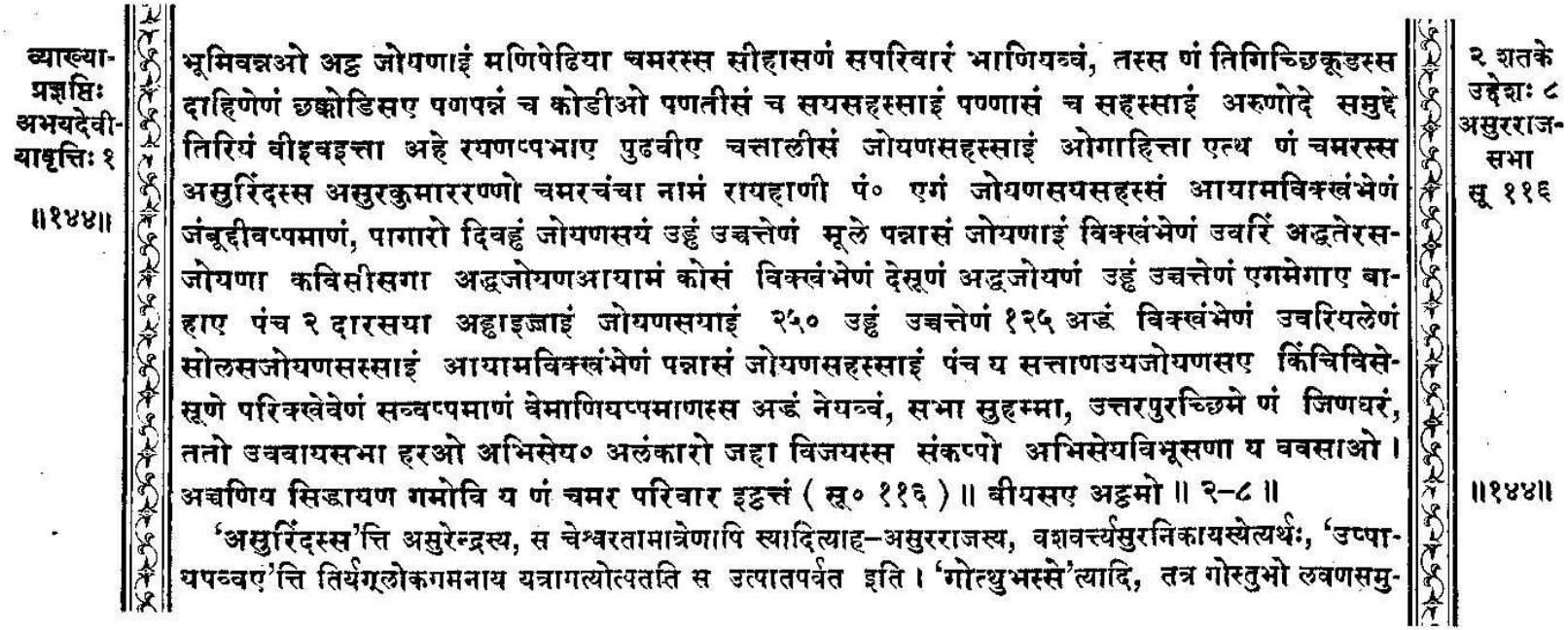
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र द्वितीय-शतके सप्तम-उद्देशक: समाप्त:

अथ द्वितीय-शतके अष्टम-उद्देशक: आरभ्यते

कहि णं भंते ! चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररन्नो सभा सुहम्मा पन्नत्ता ?, गोयमा ! जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीईवइत्ता अरुणवरस्स दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ अरुणोदयं समुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तिगिच्छियकूडे नामं उप्पायपव्वए पण्णत्ते, सत्तरसएक्कवीसे जोयणसए उड्ढं उच्चत्तेणं चत्तारि जोयणसए कोसं च उव्वेहेणं गोत्थुभस्स आवासपव्वयस्स पमाणेणं णेयव्वं नवरं उवरिल्लं पमाणं मज्झे भाणियव्वं [मूले दसबावीसे जोयणसए विक्खंभेणं मज्झे चत्तारि चउवीसे जोयणसते विक्खंभेणं उवरिं सत्ततेवीसे जोयणसते विक्खंभेणं मूले तिण्णि जोयणसहस्साइं दोण्णि य बत्तीसुत्तरे जोयणसते किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं मज्झे एगं जोयणसहस्सं तिण्णि य इगयाले जोयणसते किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं उवरिं दोण्णि य जोयणसहस्साइं दोण्णि य छलसीते जोयणसते किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं]जाव मूले वित्थडे मज्झे संखित्ते उप्पिं विसाले मज्झे वरवइरविग्गहिए महामउंदसंठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे जाव पडिरूवे, से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं वणसंडेण य सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, पउमवरवेइयाए वणसंडस्स य वण्णओ, तस्स णं तिगिच्छिकूडस्स उप्पायपव्वयस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, वण्णओ तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे एत्थ णं महं एगे पासायवडिंसए पन्नत्ते अद्धाइज्जाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पणवीसं जोयणसयाइं विक्खंभेणं, पासायवण्णओ उल्लोय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-यावृत्तिः १

॥१४४॥

भूमिवन्नओ अट्ठ जोयणाइं मणिपेढिया चमरस्स सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं, तस्स णं तिगिच्छिकूडस्स दाहिणेणं छक्कोडिसए पणपन्नं च कोडीओ पणतीसं च सयसहस्साइं पण्णासं च सहस्साइं अरुणोदे समुद्दे तिरियं वीइवइत्ता अहे रयणप्पभाए पुढवीए चत्तालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमरचंचा नामं रायहाणी पं० एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं जंबूदीवप्पमाणं, पागारो दिवड्ढं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं मूले पन्नासं जोयणाइं विक्खंभेणं उवरिं अद्धतेरसजोयणा कविसीसगा अद्धजोयणआयामं कोसं विक्खंभेणं देसूणं अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं एगमेगाए बाहाए पंच २ दारसया अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं २५० उड्ढं उच्चत्तेणं १२५ अद्धं विक्खंभेणं उवरियलेणं सोलसजोयणसस्साइं आयामविक्खंभेणं पन्नासं जोयणसहस्साइं पंच य सत्ताणउयजोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं सव्वप्पमाणं वेमाणियप्पमाणस्स अद्धं नेयव्वं, सभा सुहम्मा, उत्तरपुरच्छिमे णं जिणघरं, ततो उववायसभा हरओ अभिसेय० अलंकारो जहा विजयस्स संकप्पो अभिसेयविभूसणा य ववसाओ। अच्चणिय सिद्धायण गमोवि य णं चमर परिवार इड्ढित्तं (सू० ११६) ॥ बीयसए अट्ठमो ॥ २–८ ॥

'असुरिंदस्स'त्ति असुरेन्द्रस्य, स चेश्वरतामात्रेणापि स्यादित्याह–असुरराजस्य, वशवर्त्यसुरनिकायस्येत्यर्थः, 'उप्पायपव्वए'त्ति तिर्यग्लोकगमनाय यत्रागत्योत्पतति स उत्पातपर्वत इति। 'गोत्थुभस्से'त्यादि, तत्र गोस्तुभो लवणसमु-

२ शतके उद्देशः ८ असुरराज-सभा सू ११६

॥१४४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रमध्ये पूर्वस्यां दिशि नागराजावासपर्वतस्तस्य चादिमध्यान्ते(प्रान्तमध्ये)षु विष्कम्भप्रमाणमिदम्—"[1]कमसो विक्खंभो से दसबावीसाइ जोयणसयाइं १। सत्तसए तेवीसे २ चत्तारिसए य चउवीसे ३॥१॥" इहैव विशेषमाह—'नवर'मित्यादि, ततश्चेदमापन्नम्—'मूले दसबावीसे जोयणसए विक्खंभेणं,मज्झे चत्तारि चउवीसे,उवरिं सत्ततेवीसे, मूले तिण्णि जोयणसहस्साइं दोण्णि य बत्तीसुत्तरे जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं मज्झे एगं जोयणसहस्सं तिण्णि य इगुयाले जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं उवरिं दोण्णि य जोयणसहस्साइं दोण्णि य छलसीए जोयणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं' पुस्तकान्तरे त्वेतत्सकलमस्त्येवेति। 'वरवइरविग्गहिए'त्ति वरवज्रस्येव विग्रह–आकृतिर्यस्य स स्वार्थिकेकप्रत्यये सति वरवज्रविग्रहिको, मध्ये क्षाम इत्यर्थः, एतदेवाह—'महामउंदे'त्यादि मुकुन्दो–वाद्यविशेषः 'अच्छे'त्ति स्वच्छ आकाशस्फटिकवत्, यावत्करणादिदं दृश्यम्–'सण्हे'श्लक्ष्णः श्लक्ष्णपुद्गलनिर्वृत्तत्वात् 'लण्हे' मसृणः 'घट्ठे' घृष्ट इव घृष्टः खरशानया प्रतिमेव 'मट्ठे' मृष्ट इव मृष्टः सुकुमारशानया प्रतिमेव प्रमार्जनिकयेव वा शोधितः अत एव 'नीरए' नीरजा रजोरहितः 'निम्मले' कठिनमलरहितः 'निप्पंके' आर्द्रमलरहितः 'निक्कंकडच्छाए' निरावरणदीप्तिः 'सप्पभे' सत्प्रभावः(भः) 'समरिईए' सकिरणः 'सउज्जोए' प्रत्यासन्नवस्तूद्द्योतकः पासाईए ४,'पउमवरवेइयाए वणसंडस्स य वण्णओ'त्ति, वेदिकावर्णको यथा—'सा णं पउमवरवेइया अद्धं जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं पंचधणुसयाइं विक्खंभेणं सवरयणामई तिगिच्छकूडउवरितलपरिक्खेवसमा परिक्खेवेणं, तीसे णं पउमवरवेइयाए इमे एयारूवे वण्णावासे

१–क्रमशस्तस्य (गोस्तूपस्य) विष्कम्भो द्वाविंशत्यधिकं दशशतं योजनानां त्रयोविंशत्यधिकानि सप्तशतानि चतुर्विंशत्यधिकानि चतुःशतानि ॥१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१ ॥१४५॥

पण्णत्ते' 'वर्णकव्यासः' वर्णकविस्तरः 'वइरामया नेमा' इत्यादि, 'नेम'त्ति स्तम्भानां मूलपादाः । वनखण्डवर्णकस्त्वेवम्– 'से णं वणसंडे देसूणाइं दो जोयणाइं चक्कवालविक्खंभेणं पउमवरवेइयापरिक्खेवसमे परिक्खेवेणं, किण्हे किण्हाभासे' इत्यादि । 'बहुसमरमणिज्जे'त्ति अत्यन्तसमो रमणीयश्चेत्यर्थः 'वन्नओ'त्ति वर्णकस्तस्य वाच्यः, स चायम्—'से जहानामए आलिंगपुक्खरे इ वा' आलिंगपुष्करं–मुरजमुखं तद्वत्सम इत्यर्थः, 'मुइंगपुक्खरे इ वा सरतले इ वा करतले इ वा आयंसमंडले इ वा चंदमंडले इ वे'त्यादि । 'पासायवडिंसए'त्ति प्रासादोऽवतंसक इव–शेखरक इव प्रधानत्वात् प्रासादावतंसकः, 'पासायवण्णओ'त्ति प्रासादवर्णको वाच्यः, स चैवम्—'अब्भुग्गयमूसियपहसिए' अभ्युद्गतमभ्रोद्गतं वा यथाभवत्येवमुच्छ्रितः, अथवा मकारस्यागमिकत्वाद् अभ्युद्गतश्चासावुच्छ्रितश्चेत्यभ्युद्गतोच्छ्रितः, अत्यर्थमुच्च इत्यर्थः, प्रथमैकवचनलोपश्चात्र दृश्यः, तथा प्रहसित इव प्रभापटलपरिगततया प्रहसितः प्रभया वा सितः–शुक्लः संबद्धो वा प्रभासित इति, 'मणिकणगरयणभत्तिचित्ते' मणिकनकरत्नानां भक्तिभिः–विच्छित्तिभिश्चित्रो विचित्रो यः स तथा, इत्यादि 'उल्लोयभूमिवण्णओ'त्ति उल्लोचवर्णकः प्रासादस्योपरिभागवर्णकः, स चैवम्—'तस्स णं पासायवडिंसगस्स इमेयारूवे उल्लोए पण्णत्ते–ईहामिगउसभतुरगनरमगरविहगवालगकिन्नररुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्ते जाव सव्वतवणिज्जमए अच्छे जाव पडिरूवे' भूमिवर्णकस्त्वेवम्—'तस्स णं पासायवडिंसयस्स बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, तंजहा— आलिंगपुक्खरे इ वे'त्यादि, 'सपरिवारं'ति चमरसम्बन्धिपरिवारसिंहासनोपेतं, तच्चैवम्–'तस्स णं सिंहासणस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरच्छिमेणं एत्थ णं चमरस्स चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीणं चउसट्ठीए भद्दासणसाहस्सीओ पण्ण-

२ शतके उद्देशः ८ चमरचञ्चा० व०सू ११६

॥१४५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११६]

दीप अनुक्रम [१४०]

त्ताओ एवं पुरच्छिमेणं पंचण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं पंच भद्दासणाइं सपरिवाराइं दाहिणपुरच्छिमेणं अब्भितरियाए परिसाए चउवीसाए देवसाहस्सीणं चउवीसं भद्दासणसाहस्सीओ, एवं दाहिणेणं मज्झिमाए अट्ठावीसं भद्दासणसाहस्सीओ, दाहिणपच्चत्थिमेणं बाहिरियाए बत्तीसं भद्दासणसाहस्सीओ पच्चत्थिमेणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं सत्त भद्दासणाइं चउद्दिसिं आयरक्खदेवाणं चत्तारि भद्दासणसहस्सचउसट्ठीओ'त्ति, 'तेत्तीसं भोम'त्ति वाचनान्तरे दृश्यते, तत्र भौमानि–विशिष्टस्थानानि नगराकाराणीत्यन्ये, 'उवयारियलेणं'ति गृहस्य पीठबन्धकल्पं 'सव्वप्पमाणं वेमाणियप्पमाणस्स अद्धं नेयव्वं'ति, अयमर्थः–यत्तस्यां राजधान्यां प्राकारप्रासादसभादिवस्तु तस्य सर्वस्योच्छ्रयादिप्रमाणं सौधर्मवैमानिकविमानप्राकारप्रासादसभादिवस्तुगतप्रमाणस्यार्द्धं च नेतव्यं, तथाहि—सौधर्मवैमानिकानां विमानप्राकारो योजनानां त्रीणि शतान्युच्चत्वेन, एतस्यास्तु सार्द्धं शतं, तथा सौधर्मवैमानिकानां मूलप्रासादः पञ्च योजनानां शतानि तदन्ये चत्वारस्तत्परिवारभूताः सार्द्धे द्वे शते ४ प्रत्येकं च तेषां चतुर्णामप्यन्ये परिवारभूताश्चत्वारः सपादशतम् १६ एवमन्ये तत्परिवारभूताः सार्द्धा द्विषष्टिः ६४ एवमन्ये सपादैकत्रिंशत्, २५६ इह तु मूलप्रासादाः सार्द्धे द्वे योजनशते एवमर्द्धार्द्धहीनास्तदपरे यावदन्तिमाः पञ्चदश योजनानि पञ्च च योजनस्याष्टांशाः, एतदेव वाचनान्तरे उक्तम्—'चत्तारि परिवाडीओ पासायवडेंसगाणं अद्धद्धहीणाओ'त्ति एतेषां च प्रासादानां चतसृष्वपि परिपाटीषु त्रीणि शतान्येकचत्वारिंशदधिकानि भवन्ति, एतेभ्यः प्रासादेभ्य उत्तरपूर्वस्यां दिशि सभा सुधर्मा सिद्धायतनमुपपातसभा ह्रदोऽभिषेकसभाऽलङ्कारसभा व्यवसायसभा चेति, एतानि च सुधर्मसभादीनि सौधर्मवैमानिकसभादिभ्यः प्रमाणतोऽर्द्धप्रमाणानि, ततश्चोच्छ्रय इहैषां षट्-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्रिंशद्योजनानि पञ्चाशदायामो विष्कम्भश्च पञ्चविंशतिरिति, एतेषां च विजयदेवसम्बन्धिनामिव 'अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठा अब्भुग्गयसुकयवइरवेइया' इत्यादिवर्णको वाच्यः। तथा 'दाराणं उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्ता' इत्यादि, अलङ्कारश्च सभादीनां वाच्यः, सर्वं च जीवाभिगमोक्तं विजयदेवसम्बन्धि चमरस्य वाच्यं यावदुपपातसभायां सङ्कल्पश्चाभिनवोत्पन्नस्य किं मम पूर्वं पश्चाद्वा कर्त्तुं श्रेयः ? इत्यादिरूपः, अभिषेकश्चाभिषेकसभायां महर्द्ध्या सामानिकादिदेवकृतः, विभूषणा च वस्त्रालङ्कारकृताऽलङ्कारसभायां, व्यवसायश्च व्यवसायसभायां पुस्तकवाचनतः, अर्चनिका च सिद्धायतने सिद्धप्रतिमादीनां, सुधर्मसभागमनं च सामानिकादिपरिवारोपेतस्य चमरस्य, परिवारश्च सामानिकादिः, ऋद्धिमत्त्वं च 'एवंमहिड्ढिए' इत्यादिवचनैर्वाच्यमस्येति, एतद् वाचनान्तरेऽर्थतः प्रायोऽवलोक्यत एवेति ॥ द्वितीयशतेऽष्टमः ॥ २–८ ॥

१	
४	
१६	
६४	
२५६	
एवं ३४१	

॥ प्रासादपरिपाटीसङ्ग्रहः ॥

२ शतके उद्देशः ८ चमरचञ्चा-व० सू११६ समयक्षेत्र व० सू११७ उद्देश ९

चमरचञ्चालक्षणं क्षेत्रमष्टमोद्देशक उक्तम्, अथ क्षेत्राधिकारादेव नवमे समयक्षेत्रमुच्यत इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदं सूत्रम्–

किमिदं भंते ! समयखेत्तेत्ति पवुच्चति ?, गोयमा ! अड्ढाइज्जा दीवा दो य समुद्दा एस णं एवइए समयखेत्तेति पवुच्चति, तत्थ णं अयं जंबूदीवे २ सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वब्भंतरे एवं जीवाभिगमवत्तव्वया (जोइसविहूणं) नेयव्वा जाव अब्भिंतरं पुक्खरद्धं जोइसविहूणं (इमा गाहा)॥ (सू०११७)॥ बितीयस्स नवमो उद्देसो॥ २–९ ॥

'किमिद'मित्यादि तत्र समयः–कालस्तेनोपलक्षितं क्षेत्रं समयक्षेत्रं, कालो हि दिनमासादिरूपः सूर्यगतिसमभिव्यङ्ग्यो

॥१४६॥

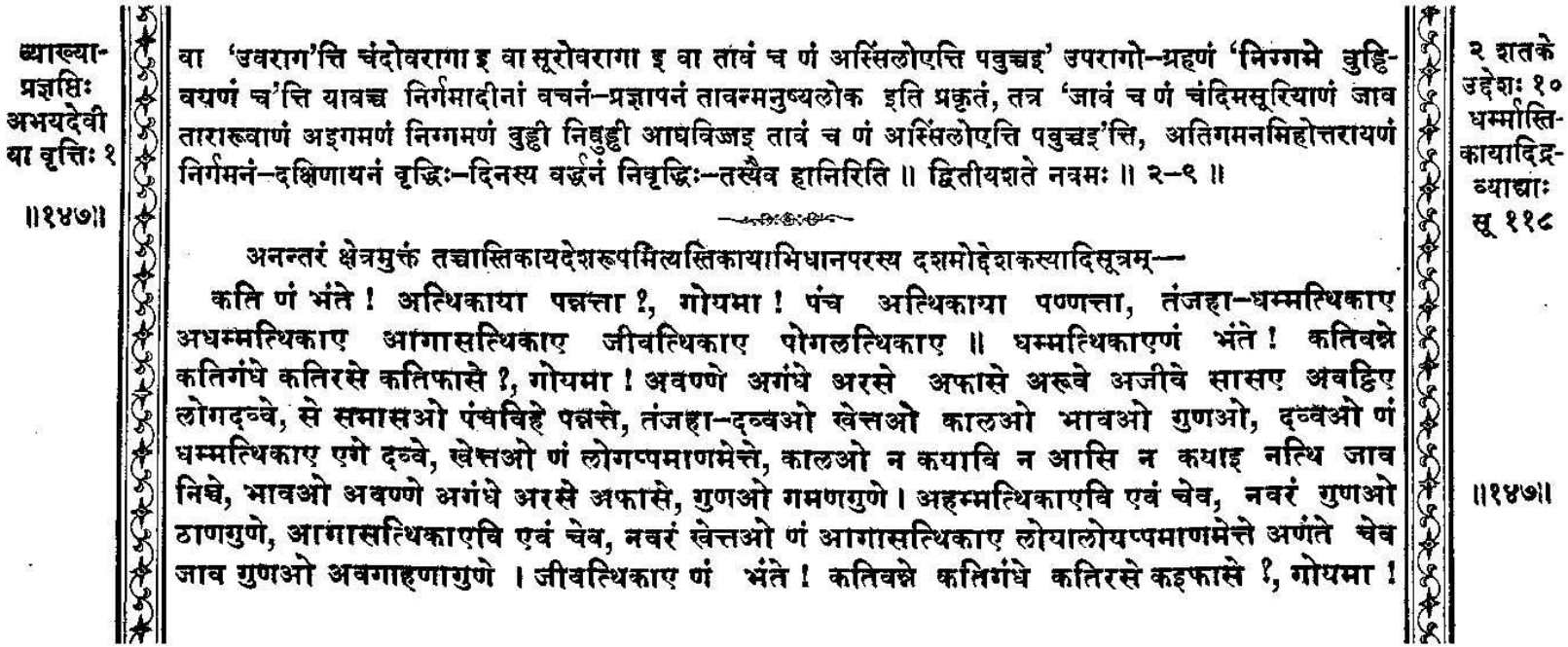
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र द्वितीय-शतके अष्टम-उद्देशक: समाप्त:

अथ द्वितीय-शतके नवम-उद्देशक: आरभ्यते

मनुष्यक्षेत्र एव न परतः, परतो हि नादित्याः संचरिष्णव इति, 'एवं जीवाभिगमवत्तव्वया नेयव्व'त्ति, एषा चैवम्–'एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेण'मित्यादि 'जोइसविहूणं'ति, तत्र जम्बूद्वीपादिमनुष्यक्षेत्रवक्तव्यतायां जीवाभिगमोक्तायां ज्योतिष्कवक्तव्यताऽप्यस्ति ततस्तद्विहीनं यथा भवत्येवं जीवाभिगमवक्तव्यता नेतव्येति, वाचनान्तरे तु 'जोइसअट्ठविहूणं'ति इत्यादि बहु दृश्यते, तत्र 'जंबूदीवे णं भंते ! कइ चंदा पभासिंसु वा ३ ? कति सूरीया तविंसु वा ३ ? कइ नक्खत्ता जोइं जोइंसु वा ३ ? इत्यादिकानि प्रत्येकं ज्योतिष्कसूत्राणि, तथा–से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जंबूदीवे दीवे ?, गोयमा ! जंबूदीवे णं दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं लवणस्स दाहिणेणं जाव तत्थ २ बहवे जंबूरुक्खा जंबूवणा जाव उवसोहेमाणा चिट्ठंति, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ जंबूदीवे दीवे' इत्यादीनि प्रत्येकमर्थसूत्राणि च सन्ति, ततश्चैतद्विहीनं यथा भवत्येवं जीवाभिगमवक्तव्यतया नेयं अस्योद्देशकस्य सूत्रं 'जाव इमा गाह'त्ति सङ्ग्रहगाथा, सा च—"अरहंत समय बायर विज्जू थणिया बलाहगा अगणी । आगर निहि नइ उवराग निग्गमे वुड्ढिवयणं च ॥ १ ॥" अस्याश्चार्थसत्रानेन सम्बन्धेनायातो–जम्बूद्वीपादीनां मानुषोत्तरान्तानामर्थानां वर्णनस्यान्ते इदमुक्तम्–'जावं च णं माणुसुत्तरे पव्वए तावं च णं अस्सिंलोएत्ति पवुच्चइ' मनुष्यलोक उच्यत इत्यर्थः, तथा 'अरहंते'त्ति जावं च णं अरहंता चक्कवट्टी जाव साविआओ मणुया पगइभद्दया विणीया तावं च णं अस्सिंलोएत्ति पवुच्चइ । 'समय'त्ति जावं च णं समयाइ वा आवलिया इ वा जाव अस्सिंलोएत्ति पवुच्चइ, एवं जावं च णं बायरे विज्जुयारे बायरे थणियसद्दे जावं च णं बहवे ओराला बलाहया संसेयंति, 'अगणि' त्ति जावं च णं बायरे तेउयाए जावं च णं आगरा इ वा निही इ वा नई इ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १ ॥१४७॥

वा 'उवराग'त्ति चंदोवरागा इ वा सूरोवरागा इ वा तावं च णं अस्सिंलोएत्ति पवुच्चइ' उपरागो–ग्रहणं 'निग्गमे वुड्ढि-वयणं च'त्ति यावच्च निर्गमादीनां वचनं–प्रज्ञापनं तावन्मनुष्यलोक इति प्रकृतं, तत्र 'जावं च णं चंदिमसूरियाणं जाव तारारूवाणं अइगमणं निग्गमणं वुड्ढी निवुड्ढी आघविज्जइ तावं च णं अस्सिंलोएत्ति पवुच्चइ'त्ति, अतिगमनमिहोत्तरायणं निर्गमनं–दक्षिणायनं वृद्धिः–दिनस्य वर्द्धनं निवृद्धिः–तस्यैव हानिरिति ॥ द्वितीयशते नवमः ॥ २–९ ॥

अनन्तरं क्षेत्रमुक्तं तच्चास्तिकायदेशरूपमित्यस्तिकायाभिधानपरस्य दशमोद्देशकस्यादिसूत्रम्—

कति णं भंते ! अत्थिकाया पन्नत्ता ?, गोयमा ! पंच अत्थिकाया पण्णत्ता, तंजहा–धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए ॥ धम्मत्थिकाएणं भंते ! कतिवन्ने कतिगंधे कतिरसे कतिफासे ?, गोयमा ! अवण्णे अगंधे अरसे अफासे अरूवे अजीवे सासए अवट्ठिए लोगदव्वे, से समासओ पंचविहे पन्नत्ते, तंजहा–दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ गुणओ, दव्वओ णं धम्मत्थिकाए एगे दव्वे, खेत्तओ णं लोगप्पमाणमेत्ते, कालओ न कयावि न आसि न कयाइ नत्थि जाव निच्चे, भावओ अवण्णे अगंधे अरसे अफासे, गुणओ गमणगुणे। अहम्मत्थिकाएवि एवं चेव, नवरं गुणओ ठाणगुणे, आगासत्थिकाएवि एवं चेव, नवरं खेत्तओ णं आगासत्थिकाए लोयालोयप्पमाणमेत्ते अणंते चेव जाव गुणओ अवगाहणागुणे । जीवत्थिकाए णं भंते ! कतिवन्ने कतिगंधे कतिरसे कइफासे ?, गोयमा !

२ शतके उद्देशः १० धर्मास्ति-कायादिद्र-व्याद्याः सू ११८

॥१४७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र द्वितीय-शतके नवम-उद्देशक: समाप्त:

अथ द्वितीय-शतके दशम-उद्देशक: आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [११८]

दीप अनुक्रम [१४२]

अवण्णे जाव अरूवी जीवे सासए अवट्ठिए लोगदव्वे, से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा–दव्वओ जाव गुणओ, दव्वओ णं जीवत्थिकाए अणंताइं जीवदव्वाइं, खेत्तओ लोगप्पमाणमेत्ते कालओ न कयाइ न आसि जाव निच्चे, भावओ पुण अवण्णे अगंधे अरसे अफासे, गुणओ उवओगगुणे। पोग्गलत्थिकाए णं भंते! कतिवण्णे कतिगंधे० रसे०फासे?, गोयमा! पंचवण्णे पंचरसे दुगंधे अट्ठफासे रूवी अजीवे सासए अवट्ठिए लोगदव्वे, से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा–दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ गुणओ, दव्वओ णं पोग्गलत्थिकाए अणंताइं दव्वाइं, खेत्तओ लोयप्पमाणमेत्ते, कालओ न कयाइ न आसि जाव निच्चे, भावओ वण्णमंते गंध०रस०फासमंते, गुणओ गहणगुणे। (सू०११८) एगे भंते! धम्मत्थिकायपदेसे धम्मत्थिकाएत्ति वत्तव्वं सिया?, गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, एवं दोन्निवि तिन्निवि चत्तारि पंच छ सत्त अट्ठ नव दस संखेज्जा, असंखेज्जा भंते! धम्मत्थिकायप्पएसा धम्मत्थिकाएत्ति वत्तव्वं सिया?, गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, एगपदेसूणेवि य णं भंते! धम्मत्थिकाए २ त्ति वत्तव्वं सिया? णो तिणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ? एगे धम्मत्थिकायपदेसे नो धम्मत्थिकाएत्ति वत्तव्वं सिया जाव एगपदेसूणेवि य णं धम्मत्थिकाए नो धम्मत्थिकाएत्ति वत्तव्वं सिया?, से नूणं गोयमा! खंडे चक्के सगले चक्के?, भगवं! नो खंडे चक्के सकले चक्के, एवं छत्ते चम्मे दंडे दूसे आउ पहे मोयए, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–एगे धम्मत्थिकायपदेसे नो धम्मत्थिकाएत्ति वत्तव्वं सिया जाव एगपदेसूणेवि य णं धम्मत्थिकाए नो धम्मत्थिकाएत्ति वत्तव्वं सिया ॥ से किंखातिए णं भंते! धम्म-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥१४८॥

त्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया ?, गोयमा ! असंखेज्जा धम्मत्थिकायपएसा ते सव्वे कसिणा पडिपुण्णा निरवसेसा एगगहणगहिया एस णं गोयमा ! धम्मत्थिकाएत्ति वत्तव्वं सिया, एवं अहम्मत्थिकाएवि, आगासत्थिकाएवि, जीवत्थिकायपोग्गलत्थिकायावि एवं चेव, नवरं तिण्हंपि पदेसा अणंता भाणियव्वा, सेसं तं चेव ॥ (सू० ११९) ॥

'कइ णमि'त्यादि, अस्तिशब्देन प्रदेशा उच्यन्तेऽतस्तेषां काया–राशयोऽस्तिकायाः, अथवाऽस्तीत्ययं निपातः कालत्रयाभिधायी, ततोऽस्तीति–सन्ति आसन् भविष्यन्ति च ये कायाः–प्रदेशराशयस्तेऽस्तिकाया इति, धर्मास्तिकायादीनां चोपन्यासेऽयमेव क्रमः, तथाहि–धर्मास्तिकायादिपदस्य माङ्गलिकत्वाद्धर्मास्तिकाय आदावुक्तः, तदनन्तरं च तद्विपक्षत्वादधर्मास्तिकायः, ततश्च तदाधारत्वादाकाशास्तिकायः, ततोऽनन्तत्वामूर्त्तत्वसाधर्म्याज्जीवास्तिकायः, ततस्तदुपष्टम्भकत्वात्पुद्गलास्तिकाय इति ॥ 'अवण्णे'इत्यादि, यत एवावर्णादिरत एव 'अरूपी' अमूर्त्तो न तु निःस्वभावो, नञः पर्युदासवृत्तित्वात्, शाश्वतो द्रव्यतः अवस्थितः प्रदेशतः 'लोगदव्वे'त्ति लोकस्य–पञ्चास्तिकायात्मकस्यांशभूतं द्रव्यं लोकद्रव्यं, भावत इति पर्यायतः, 'गुणओ'त्ति कार्यतः 'गमणगुणे'त्ति जीवपुद्गलानां गतिपरिणतानां गत्युपष्टम्भहेतुर्मत्स्यानां जलमिवेति । 'ठाणगुणे'त्ति जीवपुद्गलानां स्थितिपरिणतानां स्थित्युपष्टम्भहेतुर्मत्स्यानां स्थलमिवेति । 'अवगाहणागुणे'त्ति जीवादीनामवकाशहेतुर्बदराणां कुण्डमिव । 'उवओगगुणे'त्ति उपयोगः–चैतन्यं साकारानाकारभेदं । 'गहणगुणे'त्ति ग्रहणं–परस्परेण सम्बन्धनं जीवेन वा औदारिकादिभिः प्रकारैरिति ॥ 'खंडं चक्के'इत्यादि, यथा खण्डचक्रं चक्रं

२ शतके उद्देशः १० प्रदेशोनस्यापि व्यपदेशाभावः सू ११९

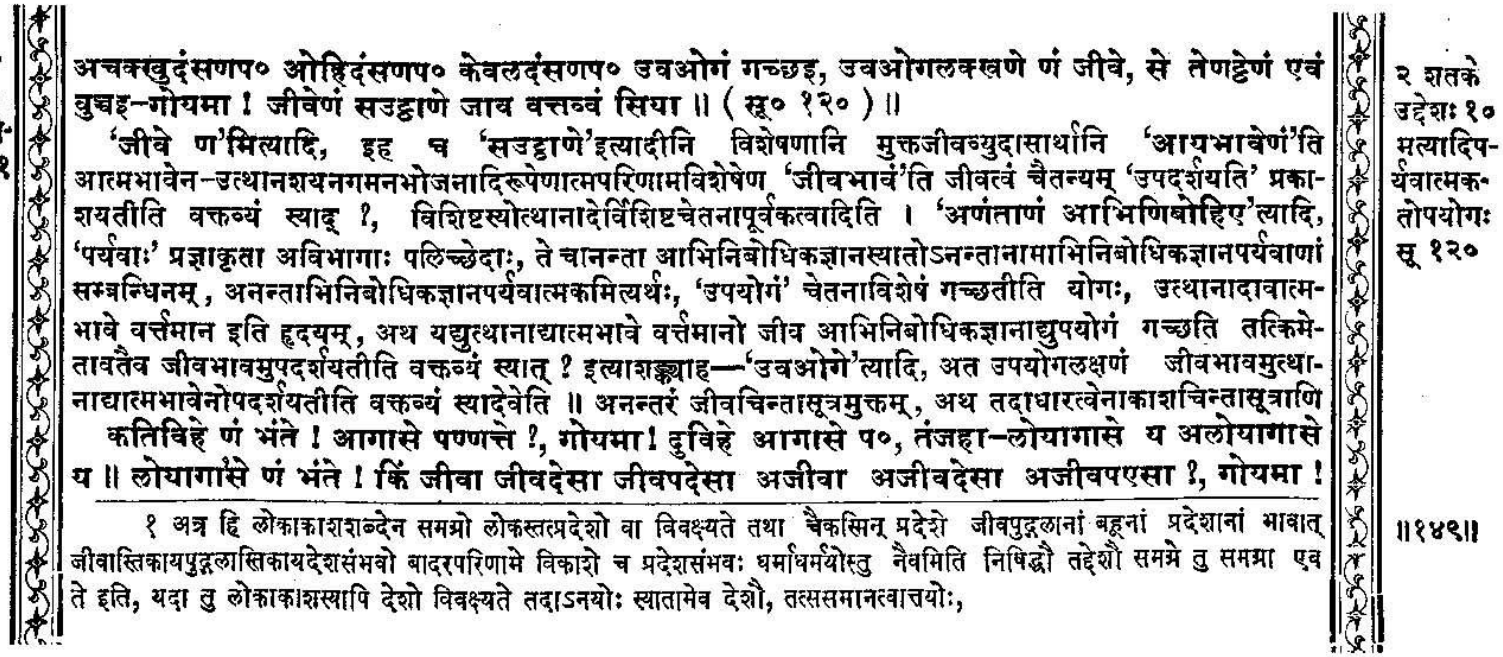
॥१४८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न भवति, खण्डचक्रमित्येवं तस्य व्यपदिश्यमानत्वात्, अपि तु सकलमेव चक्रं चक्रं भवति, एवं धर्मास्तिकायः प्रदेशेनाप्यूनो न धर्मास्तिकाय इति वक्तव्यः स्याद्, एतच्च निश्चयनयदर्शनं, व्यवहारनयमतं तु–एकदेशेनोनमपि वस्तु वस्त्वेव, यथा खण्डोऽपि घटो घट एव, छिन्नकर्णोऽपि श्वा श्वैव, भणन्ति च–'एकदेशविकृतमनन्यवदि'ति ॥ 'से किंखाइंति' अथ किं पुनरित्यर्थः 'सव्वेऽवि' समस्ताः, ते च देशापेक्षयाऽपि भवन्ति, प्रकारकात्स्न्येंऽपि सर्वशब्दप्रवृत्तेरित्यत आह–'कसिण'त्ति कृत्स्ना न तु तदेकदेशापेक्षया सर्व इत्यर्थः, ते च स्वस्वभावरहिता अपि भवन्तीत्यत आह–प्रतिपूर्णाः–आत्मस्वरूपेणाविकलाः, ते च प्रदेशान्तरापेक्षया स्वस्वभावन्यूना अपि तथोच्यन्त इत्याह–'निरवसेस'त्ति प्रदेशान्ततोऽपि स्वस्वभावेनान्यूनाः, तथा 'एगग्गहणगहिय'त्ति एकग्रहणेन–एकशब्देन धर्मास्तिकाय इत्येवंलक्षणेन गृहीता ये ते तथा, एकशब्दाभिधेया इत्यर्थः, एकार्था वैते शब्दाः,'पएसा अणंता भाणियव्व'त्ति धर्माधर्मयोरसङ्ख्येयाः प्रदेशा उक्ताः आकाशादीनां पुनः प्रदेशा अनन्ता वाच्याः, अनन्तप्रदेशिकत्वान्त्रयाणामपीति ॥ उपयोगगुणो जीवास्तिकायः प्राग्दर्शितः, अथ तद्देशभूतो जीव उत्थानादिगुण इति दर्शयन्नाह—

जीवे णं भंते ! सउट्ठाणे सकम्मे सबले सवीरिए सपुरिसक्कारपरक्कमे आयभावेणं जीवभावं उवदंसेतीत्ति वत्तव्वं सिया ?, हंता गोयमा ! जीवे णं सउट्ठाणे जाव उवदंसेतीत्ति वत्तव्वं सिया । से केणट्ठेणं जाव वत्तव्वं सिया ?, गोयमा ! जीवे णं अणंताणं आभिणिबोहियनाणपज्जवाणं एवं सुयनाणपज्जवाणं ओहिनाणपज्जवाणं मणपज्जवनाणप० केवलनाणप० महअन्नाणप० सुयअन्नाणप० विभंगणाणपज्जवाणं चक्खुदंसणप०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥१४९॥

अचक्खुदंसणप० ओहिदंसणप० केवलदंसणप० उवओगं गच्छइ, उवओगलक्खणे णं जीवे, से तेणट्ठेणं एवं वुचइ–गोयमा ! जीवेणं सउट्ठाणे जाव वत्तव्वं सिया ॥ (सू० १२०) ॥

'जीवे ण'मित्यादि, इह च 'सउट्ठाणे'इत्यादीनि विशेषणानि मुक्तजीवव्युदासार्थानि 'आयभावेणं'ति आत्मभावेन–उत्थानशयनगमनभोजनादिरूपेणात्मपरिणामविशेषेण 'जीवभावं'ति जीवत्वं चैतन्यम् 'उपदर्शयति' प्रकाशयतीति वक्तव्यं स्याद् ?, विशिष्टस्योत्थानादेर्विशिष्टचेतनापूर्वकत्वादिति । 'अणंताणं आभिणिबोहिए'त्यादि, 'पर्यवाः' प्रज्ञाकृता अविभागाः पलिच्छेदाः, ते चानन्ता आभिनिबोधिकज्ञानस्यातोऽनन्तानामाभिनिबोधिकज्ञानपर्यवाणां सम्बन्धिनम्, अनन्ताभिनिबोधिकज्ञानपर्यवात्मकमित्यर्थः, 'उपयोगं' चेतनाविशेषं गच्छतीति योगः, उत्थानादावात्मभावे वर्त्तमान इति हृदयम्, अथ यद्युत्थानाद्यात्मभावे वर्त्तमानो जीव आभिनिबोधिकज्ञानाद्युपयोगं गच्छति तत्किमेतावतैव जीवभावमुपदर्शयतीति वक्तव्यं स्यात् ? इत्याशङ्क्याह—'उवओगे'त्यादि, अत उपयोगलक्षणं जीवभावमुत्थानाद्यात्मभावेनोपदर्शयतीति वक्तव्यं स्यादेवेति ॥ अनन्तरं जीवचिन्तासूत्रमुक्तम्, अथ तदाधारत्वेनाकाशचिन्तासूत्राणि

कतिविहे णं भंते ! आगासे पण्णत्ते ?, गोयमा ! दुविहे आगासे प०, तंजहा–लोयागासे य अलोयागासे य ॥ लोयागासे णं भंते ! किं जीवा जीवदेसा जीवपदेसा अजीवा अजीवदेसा अजीवपएसा ?, गोयमा !

१ अत्र हि लोकाकाशशब्देन समग्रो लोकस्तत्प्रदेशो वा विवक्ष्यते तथा चैकस्मिन् प्रदेशे जीवपुद्गलानां बहूनां प्रदेशानां भावात् जीवास्तिकायपुद्गलास्तिकायदेशसंभवो बादरपरिणामे विकाशे च प्रदेशसंभवः धर्माधर्मयोस्तु नैवमिति निषिद्धौ तद्देशौ समग्रे तु समग्रा एव ते इति, यदा तु लोकाकाशस्यापि देशो विवक्ष्यते तदाऽनयोः स्यातामेव देशौ, तत्ससमानत्वात्तयोः,

२ शतके उद्देशः १० मत्यादिपर्यवात्मकतोपयोगः सू १२०

॥१४९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

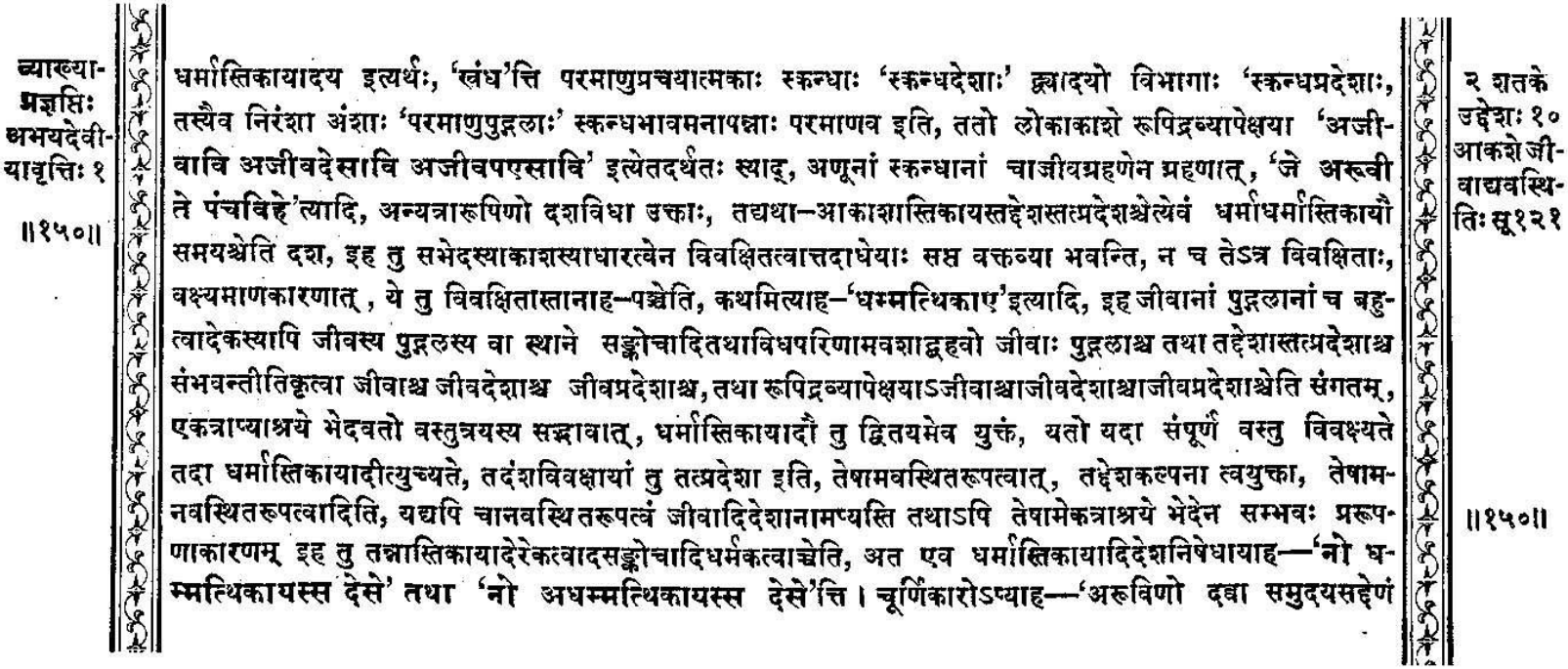
जीवावि जीवदेसावि जीवपदेसावि अजीवावि अजीवदेसावि अजीवपदेसावि जे जीवा ते नियमा एगिंदिया बेंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचेंदिया अणिंदिया, जे जीवदेसा ते नियमा एगिंदियदेसा जाव अणिंदियदेसा, जे जीवपदेसा ते नियमा एगिंदियपदेसा जाव अणिंदियपदेसा, जे अजीवा ते दुविहा पन्नत्ता, तंजहा–रूवी य अरूवी य, जे रूवी ते चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा–खंधा खंधदेसा खंधपदेसा परमाणुपोग्गला, जे अरूवी ते पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा–धम्मत्थिकाए नो धम्मत्थिकायस्स देसे धम्मत्थिकायस्स पदेसा अधम्मत्थिकाए नो अधम्मत्थिकायस्स देसे अधम्मत्थिकायस्स पदेसा अद्धासमए ॥ (सू० १२१) ॥

तत्र लोकालोकाकाशयोर्लक्षणमिदं–"धर्म्मादीनां वृत्तिर्द्रव्याणां भवति यत्र तत्क्षेत्रम् । तैर्द्रव्यैः सह लोकस्तद्विपरीतंह्यलोकाख्यम् ॥ १ ॥" इति ॥ 'लोगागासे ण'मित्यादौ षट् प्रश्नाः, तत्र लोकाकाशेऽधिकरणे 'जीव'त्ति संपूर्णानि जीवद्रव्याणि 'जीवदेस'त्ति जीवस्यैव बुद्धिपरिकल्पिता द्व्यादयो विभागाः, 'जीवपएस'त्ति तस्यैव बुद्धिकृता एव प्रकृष्टा देशाः प्रदेशा, निर्विभागा भागा इत्यर्थः, 'अजीव'त्ति धर्मास्तिकायादयो, ननु लोकाकाशे जीवा अजीवाश्चेत्युक्ते तद्देशप्रदेशास्तत्रोक्ता एव भवन्ति, जीवाद्यव्यतिरिक्तत्वादेशादीनां, ततो जीवाजीवग्रहणे किं देशादिग्रहणेनेति ?, नैवं, निरवयवा जीवादय इति मतव्यवच्छेदार्थत्वादस्येति, अत्रोत्तरं–'गोयमा ! जीवावी'त्यादि, अनेन चाद्यप्रश्नत्रयस्य निर्वचनमुक्तम् । अथान्त्यस्य प्रश्नत्रयस्य निर्वचनमाह—'रूवी य'त्ति मूर्त्ताः, पुद्गला इत्यर्थः, 'अरूवी य'त्ति अमूर्त्ताः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२१]

दीप अनुक्रम [१४५]



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-यावृत्तिः १

॥१५०॥

धर्मास्तिकायादय इत्यर्थः, 'खंध'त्ति परमाणुप्रचयात्मकाः स्कन्धाः 'स्कन्धदेशाः' द्व्यादयो विभागाः 'स्कन्धप्रदेशाः, तस्यैव निरंशा अंशाः 'परमाणुपुद्गलाः' स्कन्धभावमनापन्नाः परमाणव इति, ततो लोकाकाशे रूपिद्रव्यापेक्षया 'अजीवावि अजीवदेसावि अजीवपएसावि' इत्येतदर्थतः स्याद्, अणूनां स्कन्धानां चाजीवग्रहणेन ग्रहणात्, 'जे अरूवी ते पंचविहे'त्यादि, अन्यत्रारूपिणो दशविधा उक्ताः, तद्यथा–आकाशास्तिकायस्तद्देशस्तत्प्रदेशश्चेत्येवं धर्माधर्मास्तिकायौ समयश्चेति दश, इह तु सभेदस्याकाशस्याधारत्वेन विवक्षितत्वात्तदाधेयाः सप्त वक्तव्या भवन्ति, न च तेऽत्र विवक्षिताः, वक्ष्यमाणकारणात्, ये तु विवक्षितास्तानाह–पञ्चेति, कथमित्याह–'धम्मत्थिकाए'इत्यादि, इह जीवानां पुद्गलानां च बहुत्वादेकस्यापि जीवस्य पुद्गलस्य वा स्थाने सङ्कोचादितथाविधपरिणामवशाद्बहवो जीवाः पुद्गलाश्च तथा तद्देशास्तत्प्रदेशाश्च संभवन्तीतिकृत्वा जीवाश्च जीवदेशाश्च जीवप्रदेशाश्च, तथा रूपिद्रव्यापेक्षयाऽजीवाश्चाजीवदेशाश्चाजीवप्रदेशाश्चेति संगतम्, एकत्राप्याश्रये भेदवतो वस्तुत्रयस्य सद्भावात्, धर्मास्तिकायादौ तु द्वितयमेव युक्तं, यतो यदा संपूर्णं वस्तु विवक्ष्यते तदा धर्मास्तिकायादीत्युच्यते, तदंशविवक्षायां तु तत्प्रदेशा इति, तेषामवस्थितरूपत्वात्, तद्देशकल्पना त्वयुक्ता, तेषामनवस्थितरूपत्वादिति, यद्यपि चानवस्थितरूपत्वं जीवादिदेशानामप्यस्ति तथाऽपि तेषामेकत्राश्रये भेदेन सम्भवः प्ररूपणाकारणम् इह तु तन्नास्तिकायादेरेकत्वादसङ्कोचादिधर्मकत्वाच्चेति, अत एव धर्मास्तिकायादिदेशनिषेधायाह—'नो धम्मत्थिकायस्स देसे' तथा 'नो अधम्मत्थिकायस्स देसे'त्ति। चूर्णिकारोऽप्याह—'अरूविणो दवा समुदयसद्देणं

२ शतके उद्देशः १० आकाशे जीवाद्यवस्थितिः सू१२१

॥१५०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

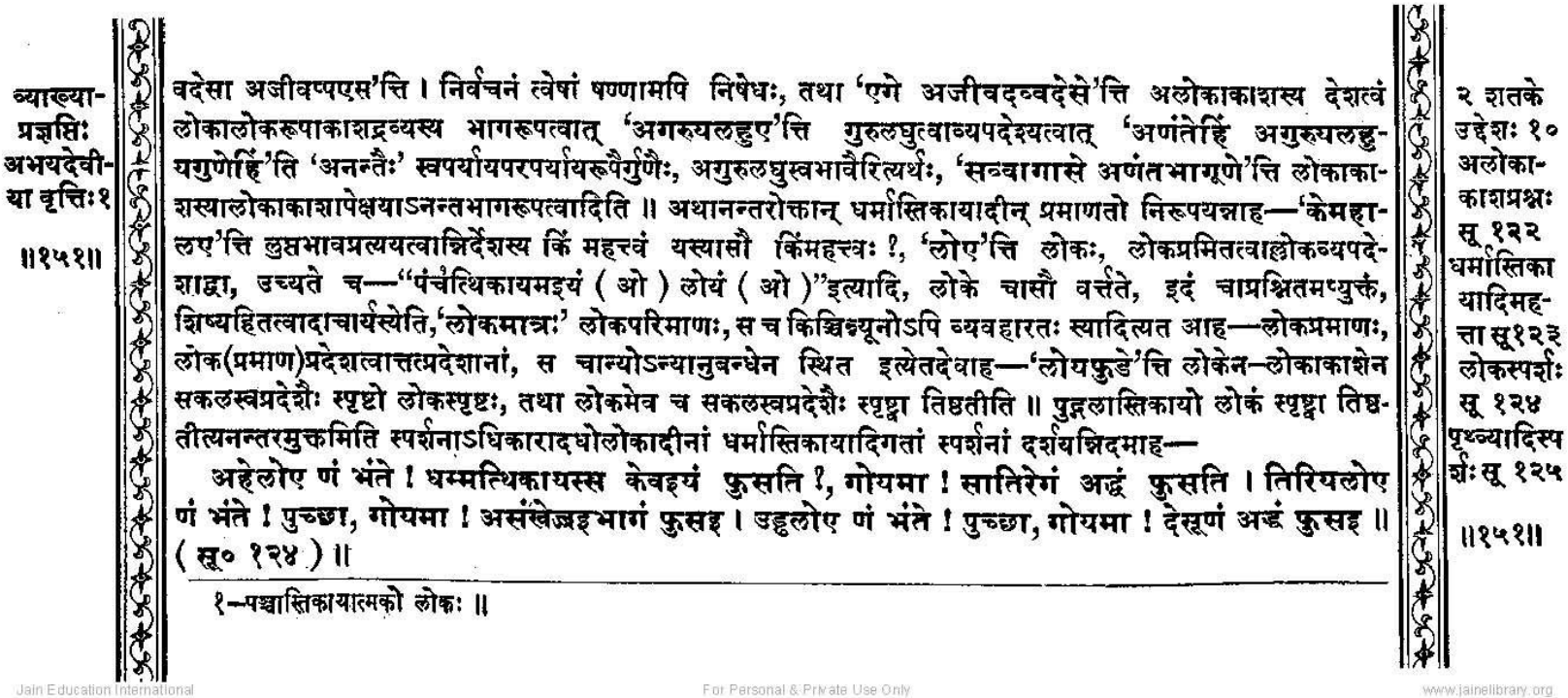
भन्नंति, नीसेसा पएसेहिं वा नीसेसा भणिज्जा, नो देसेणं, तस्स अणेवट्ठियप्पमाणत्तणओ, तेण न देसेण निद्देसो, जो पुण देससद्दो एएसु कओ सो सविसयगयववहारत्थं परदव्वफुसणादिगयववहारत्थं चे'ति, तत्र स्वविषये–धर्मास्तिकायादिविषये यो देशस्य व्यवहारो–यथा धर्मास्तिकायः स्वदेशेनोर्ध्वलोकाकाशं व्याप्नोतीत्यादिस्तदर्थं, तथा परद्रव्येण–ऊर्ध्वलोकाकाशादिना यः स्वस्य स्पर्शनादिगतो व्यवहारो यथोर्ध्वलोकाकाशेन धर्मास्तिकायस्य देशः स्पृश्यते इत्यादिस्तदर्थमिति 'अद्धासमय'त्ति अद्धा–कालस्तल्लक्षणः समयः–क्षणोऽद्धासमयः, स चैक एव वर्त्तमानक्षणलक्षणः, अतीतानागतयोरसत्त्वादिति ॥ कृतं लोकाकाशगतप्रश्नषट्कस्य निर्वचनम्, अथालोकाकाशं प्रति प्रश्नयन्नाह—

अलोगागासे णं भंते ! किं जीवा ? पुच्छा तह चेव, गोयमा ! नो जीवा जाव नो अजीवप्पएसा एगे अजीवदव्वदेसे अगुरुयलहुए अणंतेहिं अगुरुयलहुयगुणेहिं संजुत्ते सव्वागासे अणंतभागूणे ॥ (सू० १२२) ॥ धम्मत्थिकाए णं भंते ! किं (के) महालए पण्णत्ते ?, गोयमा ! लोए लोयमेत्ते लोयप्पमाणे लोयफुडे लोयं चेव फुसित्ता णं चिट्ठइ, एवं अहम्मत्थिकाए लोयागासे जीवत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए पंचवि एक्काभिलावा ॥ (सू० १२३) ॥

'पुच्छा तह चेव'त्ति यथा लोकप्रश्ने, तथाहि—'अलोकाकासे णं भंते ! किं जीवा जीवदेसा जीवप्पएसा अजीवा अजी-

* अनवस्थितप्रमाणत्वं हि एकस्मिन्नपि प्रदेशे तदा स्याद्यदा द्व्यादिप्रदेशसमुदाय एकत्रीभावमाप्नुयात् न चैवं धर्माधर्मयोः ॥ × जीवपुद्गलयोराकाशदेशावगाढयोरुपष्टम्भदानाय जीवपुद्गलाकाशादेः परस्परं च या स्पर्शना देशापेक्षया तस्य व्यवहाराय ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१ ॥१५१॥

वदेसा अजीवप्पएस'त्ति । निर्वचनं त्वेषां षण्णामपि निषेधः, तथा 'एगे अजीवदव्वदेसे'त्ति अलोकाकाशस्य देशत्वं लोकालोकरूपाकाशद्रव्यस्य भागरूपत्वात् 'अगरुयलहुए'त्ति गुरुलघुत्वाव्यपदेश्यत्वात् 'अणंतेहिं अगुरुयलहुयगुणेहिं'ति 'अनन्तैः' स्वपर्यायपरपर्यायरूपैर्गुणैः, अगुरुलघुस्वभावैरित्यर्थः, 'सव्वागासे अणंतभागूणे'त्ति लोकाकाशस्यालोकाकाशापेक्षयाऽनन्तभागरूपत्वादिति ॥ अथानन्तरोक्तान् धर्मास्तिकायादीन् प्रमाणतो निरूपयन्नाह—'केमहालए'त्ति लुप्तभावप्रत्ययत्वान्निर्देशस्य किं महत्त्वं यस्यासौ किंमहत्त्वः ?, 'लोए'त्ति लोकः, लोकप्रमितत्वाल्लोकव्यपदेशाद्वा, उच्यते च—"पंचत्थिकायमइयं (ओ) लोयं (ओ)"इत्यादि, लोके चासौ वर्त्तते, इदं चाप्रश्नितमप्युक्तं, शिष्यहितत्वादाचार्यस्येति,'लोकमात्रः' लोकपरिमाणः, स च किञ्चिन्यूनोऽपि व्यवहारतः स्यादित्यत आह—लोकप्रमाणः, लोक(प्रमाण)प्रदेशत्वात्तत्प्रदेशानां, स चान्योऽन्यानुबन्धेन स्थित इत्येतदेवाह—'लोयफुडे'त्ति लोकेन–लोकाकाशेन सकलस्वप्रदेशैः स्पृष्टो लोकस्पृष्टः, तथा लोकमेव च सकलस्वप्रदेशैः स्पृष्ट्वा तिष्ठतीति ॥ पुद्गलास्तिकायो लोकं स्पृष्ट्वा तिष्ठतीत्यनन्तरमुक्तमिति स्पर्शनाऽधिकारादधोलोकादीनां धर्मास्तिकायादिगतां स्पर्शनां दर्शयन्निदमाह—

अहेलोए णं भंते ! धम्मत्थिकायस्स केवइयं फुसति ?, गोयमा ! सातिरेगं अद्धं फुसति । तिरियलोए णं भंते ! पुच्छा, गोयमा ! असंखेज्जइभागं फुसइ । उड्ढलोए णं भंते ! पुच्छा, गोयमा ! देसूणं अद्धं फुसइ ॥ (सू० १२४) ॥

१–पञ्चास्तिकायात्मको लोकः ॥

२ शतके उद्देशः १० अलोका-काशप्रश्नः सू १२२ धर्मास्तिका यादिमह-त्ता सू१२३ लोकस्पर्शः सू १२४ पृथ्व्यादिस्प र्शः सू १२५ ॥१५१॥

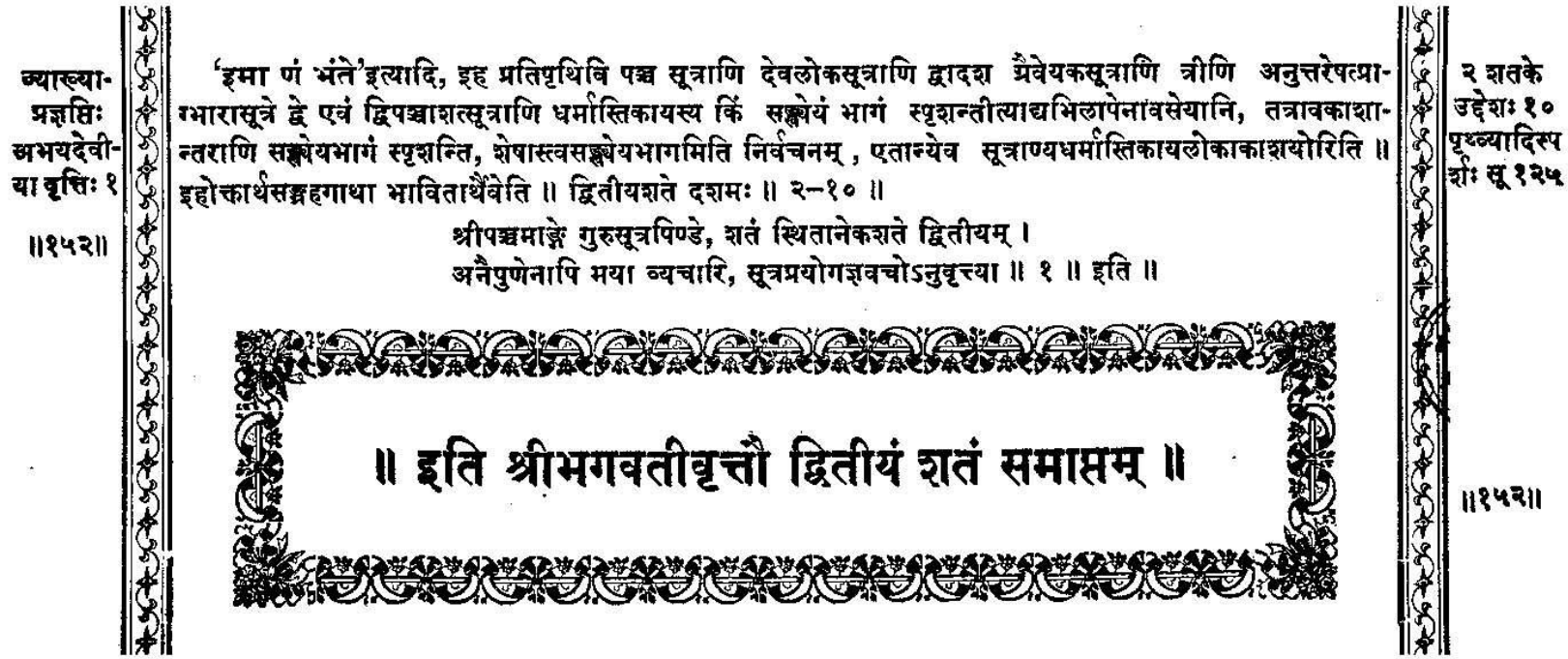
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

***अत्र मूल-संपादने सूत्रक्रम-सूचनाविषयक एका स्खलना दृश्यते (यहाँ इस पृष्ठ के बायीं तरफ सूत्रक्रम सुचानामे सू.१२५ लिखा है वो सूत्र अगले पृष्ठ से आरम्भ होता है |

'सातिरेगं अद्धं'ति लोकव्यापकत्वाद्धर्मास्तिकायस्य सातिरेकसप्तरज्जुप्रमाणत्वाच्चाधोलोकस्य । 'असंखेज्जइभागं'ति असङ्ख्यातयोजनप्रमाणस्य धर्मास्तिकायस्याष्टादशयोजनशतप्रमाणस्तिर्यग्लोकोऽसङ्ख्यातभागवर्त्तीति तस्यासावसङ्ख्येयभागं स्पृशतीति । 'देसोणं अद्धं'ति देशोनसप्तरज्जुप्रमाणत्वादूर्ध्वलोकस्येति ॥

इमा णं भंते ! रयणप्पभापुढवी धम्मत्थिकायस्स किं संखेज्जइभागं फुसति ? असंखेज्जइभागं फुसइ ? संखिज्जे भागे फुसति ? असंखेज्जे भागे फुसति ? सव्वं फुसति ?, गोयमा ! णो संखेज्जइभागं फुसति असंखेज्जइभागं फुसइ णो संखेज्जे णो असंखेज्जे नो सव्वं फुसति । इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवासंतरे घणोदही धम्मत्थिकायस्स पुच्छा, किं संखेज्जइभागं फुसति ? जहा रयणप्पभा तहा घणोदहिघणवायतणुवाया । इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवासंतरे धम्मत्थिकायस्स किं संखेज्जतिभागं फुसति असंखेज्जइभागं फुसइ जाव सव्वं फुसइ ?, गोयमा ! संखेज्जइभागं फुसइ णो असंखेज्जइभागं फुसइ नो संखेज्जे० नो असंखेज्जे० नो सव्वं फुसइ, उवासंतराइं सव्वाइं जहा रयणप्पभाए पुढवीए वत्तव्वया भणिया, एवं जाव अहेसत्तमाए, जंबूदीवाइया दीवा लवणसमुद्दाइया समुद्दा, एवं सोहम्मे कप्पे जाव ईसिपब्भारापुढवीए, एते सव्वेऽवि असंखेज्जतिभागं फुसति, सेसा पडिसेहेयव्वा । एवं अधम्मत्थिकाए, एवं लोयागासेवि, गाहा—पुढवोदहीघणतणुकप्पा गेवेज्जणुत्तरा सिद्धी । संखेज्जतिभागं अंतरेसु सेसा असंखेज्जा ॥ १ ॥ (सू० १२५) ॥ बितियं सयं समत्तं ॥ २–१० ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥१५२॥

'इमा णं भंते'इत्यादि, इह प्रतिपृथिवि पञ्च सूत्राणि देवलोकसूत्राणि द्वादश ग्रैवेयकसूत्राणि त्रीणि अनुत्तरेषत्प्रा-ग्भारासूत्रे द्वे एवं द्विपञ्चाशत्सूत्राणि धर्मास्तिकायस्य किं सङ्ख्येयं भागं स्पृशन्तीत्याद्यभिलापेनावसेयानि, तत्रावकाशा-न्तराणि सङ्ख्येयभागं स्पृशन्ति, शेषास्त्वसङ्ख्येयभागमिति निर्वचनम् , एतान्येव सूत्राण्यधर्मास्तिकायलोकाकाशयोरिति ॥ इहोक्तार्थसङ्ग्रहगाथा भावितार्थैवेति ॥ द्वितीयशते दशमः ॥ २–१० ॥

श्रीपञ्चमाङ्गे गुरुसूत्रपिण्डे, शतं स्थितानेकशते द्वितीयम् ।
अनैपुणेनापि मया व्यचारि, सूत्रप्रयोगज्ञवचोऽनुवृत्त्या ॥ १ ॥ इति ॥

॥ इति श्रीभगवतीवृत्तौ द्वितीयं शतं समाप्तम् ॥

२ शतके उद्देशः १० पृथ्व्यादिस्प शः सू १२५

॥१५२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

॥ अथ तृतीयं शतकम् ॥

व्याख्यातं द्वितीयशतमथ तृतीयं व्याख्यायते, अस्य चायमभिसम्बन्धः–अनन्तरशतेऽस्तिकाया उक्ताः, इह तु तद्विशेषभूतस्य जीवास्तिकायस्य विविधधर्मा उच्यन्ते, इत्येवंसम्बन्धस्यास्य तृतीयशतस्योद्देशकार्थसङ्ग्रहायेयं गाथा—

केरिसविउव्वणा चमरे किरिय जाणित्थि नगर पाला य ।
अहिवइ इंदियपरिसा ततियम्मि सए दसुद्देसा ॥ १ ॥

तत्र 'केरिसविउव्वण'त्ति कीदृशी चमरस्य विकुर्वणाशक्तिरित्यादिप्रश्ननिर्वचनार्थः प्रथम उद्देशकः १, 'चमर'त्ति चमरोत्पाताभिधानार्थो द्वितीयः २, 'किरिय'त्ति कायिक्यादिक्रियाद्यर्थाभिधानार्थस्तृतीयः ३, 'जाण'त्ति यानं देवेन वैक्रियं कृतं जानाति साधुरित्याद्यर्थनिर्णयार्थश्चतुर्थः ४, 'इत्थि'त्ति साधुर्बाह्यान् पुद्गलान् पर्यादाय प्रभुः स्त्र्यादिरूपाणि वैक्रियाणि कर्तुमित्याद्यर्थनिर्णयार्थः पञ्चमः ५, 'नगर'त्ति वाराणस्यां नगर्यां कृतसमुद्घातोऽनगारो राजगृहे रूपाणि जानातीत्याद्यर्थनिश्चयपरः षष्ठः ६, 'पाला य'त्ति सोमादिलोकपालचतुष्टयस्वरूपाभिधायकः सप्तमः ७, 'अहिवइ'त्ति असुरादीनां कति देवा अधिपतयः ? इत्याद्यर्थपरोऽष्टमः, 'इंदिय'त्ति इन्द्रियविषयाभिधानार्थो नवमः ९, 'परिस'त्ति चमरपरिषदभिधानार्थो दशमः १० इति । तत्र कीदृशी विकुर्वणा ? इत्याद्यर्थस्य प्रथमोद्देशकस्येदं सूत्रम्—

तेणं कालेणं तेणं समएणं मोया नामं नगरी होत्था वण्णओ, तीसे णं मोयाए नगरीए बहिया उत्तरपुर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १ ॥१५३॥

च्छिमे दिसीभागे णं नंदणे नामं चेतिए होत्था, वण्णओ, तेणं कालेणं २ सामी समोसढे, परिसा निग्गच्छइ पडिगया परिसा, तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स दोच्चे अंतेवासी अग्गिभूतीनामं अणगारे गोयमगोत्तेणं सत्तुस्सेहे जाव पज्जुवासमाणे एवं वदासी—चमरे णं भंते ! असुरिंदे असुरराया के महिड्ढीए ? केमहज्जुत्तीए ? केमहाबले ? केमहायसे ? केमहासोक्खे ? केमहाणुभागे ? केवइयं च णं पभू विउव्वित्तए ?, गोयमा ! चमरे णं असुरिंदे असुरराया महिड्ढीए जाव महाणुभागे से णं तत्थ चोत्तीसाए भवणावाससयसहस्साणं, चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीणं, तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं जाव विहरइ, एवंमहिड्ढीए जाव महाणुभागे, एवतियं च णं पभू विउव्वित्तए से जहानामए–जुवती जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा, चक्कस्स वा नाभी अरगाउत्ता सिया, एवामेव गोयमा ! चमरे असुरिंदे असुरराया वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ २ संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरइ, तंजहा–रयणाणं जाव रिट्ठाणं अहाबायरे पोग्गले परिसाडेइ २ अहासुहुमे पोग्गले परियाएति २ दोच्चंपि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणति २, पभू णं गोयमा ! चमरे असुरिंदे असुरराया केवलकप्पं जंबूदीवं २ बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य आइण्णं वितिकिण्णं उवत्थडं संथडं फुडं अवगाढाअवगाढं करेत्तए। अदुत्तरं च णं गोयमा ! पभू चमरे असुरिंदे असुरराया तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य आइण्णे वितिकिण्णे उवत्थडे संथडे फुडे

३ शतके उद्देशः १ चमरविकुर्वणायां अग्निभूतिप्रश्नःसू १२६

॥१५३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अग्निभूति-गणधरकृत् प्रश्न:

प्रत सूत्रांक [१२६]

दीप अनुक्रम [१५२]

अवगाढावगाढे करेत्तए, एस णं गोयमा ! चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो अयमेयारूवे विसए विसयमेत्ते वुइए णो चेव णं संपत्तीए विकुव्विंसु वा विकुव्वंति वा विकुव्विस्सति वा ॥ (सू० १२६) ॥

'तेणं कालेण'मित्यादि सुगमं, नवरं 'केमहिड्ढिए'त्ति केन रूपेण महर्द्धिकः ? किंरूपा वा महर्द्धिरस्येति किंमहर्द्धिकः, कियन्महर्द्धिक इत्यन्ये, 'सामाणियसाहस्सीणं'ति समानया–इन्द्रतुल्यया ऋद्ध्या चरन्तीति सामानिकाः 'तायत्तीसाए'त्ति त्रयस्त्रिंशतः 'तायत्तीसगाणं'ति मन्त्रिकल्पानां, यावत्करणादिदं दृश्यं 'चउण्हं लोगपालाणं पंचण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं चउण्हं चउसट्ठीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अन्नेसिं च बहूणं चमरचंचारायहाणिवत्थवाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाऽऽहयनट्टगीयवाइयतंतीतलतालतुडियघणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं दिवाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे'त्ति तत्राधिपत्यम्–अधिपतिकर्म पुरोवर्त्तित्वम्–अग्रगामित्वं स्वामित्वं–स्वस्वामिभावं भर्तृत्वं–पोषकत्वम् आज्ञैश्वरस्य–आज्ञाप्रधानस्य सतो यत्सेनापत्यं तत्तथा तत्कारयन् अन्यैः पालयन् स्वयमिति तथा महता रवेणेति योगः 'आहय'त्ति आख्यानकप्रतिबद्धानीति वृद्धाः, अथवा 'अहय'त्ति अहतानि–अव्याहतानि नाट्यगीतवादितानि, तथा तन्त्री–वीणा तलतालाः–हस्ततालाः तत्मा वा–हस्ताः तालाः–कंसिकाः 'तुडिय'त्ति शेषतूर्याणि, तथा घनाकारो ध्वनिसाधर्म्याद्यो मृदङ्गो–मर्दलः पटुना–दक्षपुरुषेण प्रवादित इत्येतेषां द्वन्द्वोऽत एषां यो रवः स तथा तेन 'भोगभोगाइं'ति भोगार्हान् शब्दादीन् 'एवंमहिड्ढिए'त्ति एवं महर्द्धिक इव महर्द्धिकः इयन्महर्द्धिक इत्यन्ये । 'से जहानामए'इत्यादि, यथा युवतिं युवा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अग्निभूति-गणधरकृत् प्रश्नः

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥१५४॥

हस्तेन हस्ते गृह्णाति, कामवशाद्गाढतरग्रहणतो निरन्तरहस्ताङ्गुलितयेत्यर्थः, दृष्टान्तान्तरमाह—'चक्कस्से'त्यादि, चक्रस्य वा नाभिः, किंभूता ?–'अरगाउत्त'त्ति अरकैरायुक्ता–अभिविधिनाऽन्विता अरकायुक्ता 'सिय'त्ति 'स्यात्' भवेत्, अथवाऽरका उत्तासिता–आस्फालिता यस्यां साऽरकोत्तासिता, 'एवमेव'त्ति निरन्तरतयेत्यर्थः प्रभुर्जम्बूद्वीपं बहुभिर्देवादिभिराकीर्णं कर्त्तुमिति योगः, वृद्धैस्तु व्याख्यातं–यथा यात्रादिषु युवतिर्यूनो हस्ते लग्ना–प्रतिबद्धा गच्छति बहुलोकप्रचिते देशे, एवं यानि रूपाणि विकुर्वितानि तान्येकस्मिन् कर्त्तरि प्रतिबद्धानि, यथा वा चक्रस्य नाभिरेका बहुभिरकैः प्रतिबद्धा घना निश्छिद्रा, एवमात्मशरीरप्रतिबद्धैरसुरदेवैर्देवीभिश्च पूरयेदिति । 'वेउव्वियसमुग्घाएणं'ति वैक्रियकरणाय प्रयत्नविशेषेण 'समोहणइ'त्ति समुपहन्यते समुपहतो भवति समुपहन्ति वा–प्रदेशान् विक्षिपतीति । तत्स्वरूपमेवाह—'संखेज्जाइं'इत्यादि, दण्ड इव दण्डः–ऊर्ध्वाधआयतः शरीरबाहल्यो जीवप्रदेशकर्मपुद्गलसमूहः तत्र च विविधपुद्गलानादत्त इति दर्शयन्नाह—तद्यथा—'रत्नानां' कर्केतनादीनाम्, इह च यद्यपि रत्नादिपुद्गला औदारिका वैक्रियसमुद्घाते च वैक्रिया एव ग्राह्या भवन्ति तथाऽपीह तेषां रत्नादिपुद्गलानामिव सारतामप्रतिपादनाय रत्नानामित्याद्युक्तं, तत्र रत्नानामिवेत्यादि व्याख्येयम्, अन्ये त्वाहुः–औदारिका अपि ते गृहीताः सन्तो वैक्रियतया परिणमन्तीति, यावत्करणादिदं दृश्यम्—'वइराणं वेरुलियाणं लोहियक्खाणं मसारगल्लाणं हंसगब्भाणं पुलयाणं सोगंधियाणं जोतीरसाणं अंकाणं अंजणाणं रयणाणं जायरूवाणं अंजणपुलयाणं फलिहाणं'ति, किम् ?, अत आह—'अहाबायरे'त्ति यथाबादरान्–असारान् पुद्गलान् परिशातयति दण्डनिसर्गगृहीतान्, यच्चोक्तं प्रज्ञापनाटीकायां 'यथा-

३ शतके उद्देशः १ चमरेन्द्रविकुर्वणायामग्निभूतिप्रश्नः सू १२६

॥१५४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२६]

दीप अनुक्रम [१५२]

स्थूलान् वैक्रियशरीरनामकर्मपुद्गलान् प्राग्बद्धान् शातयती'ति तत्समुद्घातशब्दसमर्थनार्थमनाभोगिकं वैक्रियशरीरकर्मनिर्जरणमाश्रित्येति, 'अहासुहुमे'त्ति यथासूक्ष्मान् सारान् 'परियाएति' पर्यादत्ते, दण्डनिसर्गगृहीतान् सामस्त्येनादत्त इत्यर्थः, 'दोचंपि'त्ति द्वितीयमपि वारं समुद्घातं करोति, चिकीर्षितरूपनिर्माणार्थं, ततश्च 'पभु'त्ति समर्थः 'केवलकप्पं'ति केवलः–परिपूर्णः कल्पत इति कल्पः–स्वकार्यकरणसामर्थ्योपेतस्ततः कर्मधारयः, अथवा 'केवलकल्पः' केवलज्ञानसदृशः परिपूर्णतासाधर्म्यात्, संपूर्णपर्यायो वा केवलकल्प इतिशब्दः। 'आइन्न'मित्यादय एकार्था अत्यन्तव्याप्तिदर्शनायोक्ताः। 'अदुत्तरं च णं'ति अथापरं च, इदं च सामर्थ्यातिशयवर्णनं 'विसए'त्ति गोचरो वैक्रियकरणशक्तेः, अयं च तत्करणयुक्तोऽपि स्यादित्यत आह—'विसयमेत्ते'त्ति विषय एव विषयमात्रं–क्रियाशून्यं 'बुइए'त्ति उक्तम्, एतदेवाह—'संपत्तीए'त्ति यथोक्तार्थसंपादनेन 'विउव्विंसु वा' विकुर्वितवान् विकुर्वति वा विकुर्विष्यति वा, विकुर्व इत्ययं धातुः सामयिकोऽस्ति, विकुर्वणेत्यादिप्रयोगदर्शनादिति।

जति णं भंते ! चमरे असुरिंदे असुरराया एमहिड्ढीए जाव एवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए, चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुररन्नो सामाणिया देवा केमहिड्ढीया जाव केवतियं च णं पभू विकुव्वित्तए ?, गोयमा ! चमरस्स असुरिंदस्स असुररन्नो सामाणिया देवा महिड्ढीया जाव महाणुभागा, ते णं तत्थ साणं २ भवणाणं साणं २ सामाणियाणं साणं २ अग्गमहिसीणं जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति, एवंमहिड्ढीया जाव एवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए, से जहानामए–जुवतिं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा चक्कस्स वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नाभी अरयाउत्ता सिया एवामेव गोयमा ! चमरस्स असुरिंदस्स असुररन्नो एगमेगे सामाणिए देवे वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ २ जाव दोचंपि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणति २ पभू णं गोयमा ! चमरस्स असुरिंदस्स असुररन्नो एगमेगे सामाणिए देवे केवलकप्पं जंबूदीवं २ बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य आइन्नं वितिकिन्नं उवत्थडं संथडं फुडं अवगाढावगाढं करेत्तए, अदुत्तरं च णं गोयमा ! पभू चमरस्स असुरिंदस्स असुररन्नो एगमेगे सामाणियदेवे तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य आइण्णे वितिकिण्णे उवत्थडे संथडे फुडे अवगाढावगाढे करेत्तए, एस णं गोयमा ! चमरस्स असुरिंदस्स असुररन्नो एगमेगस्स सामाणियदेवस्स अयमेयारूवे विसए विसयमेत्ते वुइए णो चेव णं संपत्तीए विकुव्विंसु वा विकुव्वति वा विकुव्विस्सति वा । जति णं भंते ! चमरस्स असुरिंदस्स असुररन्नो सामाणिया देवा एवंमहिड्ढीया जाव एवतियं च णं पभू विकुव्वित्तए चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुररन्नो तायत्तीसिया देवा केमहिड्ढीया ?, तायत्तीसिया देवा जहा सामाणिया तहा नेयव्वा, लोयपाला तहेव, नवरं संखेज्जा दीवसमुद्दा भाणियव्वा, बहूहिं असुरकुमारेहिं २ आइन्ने जाव विउव्विस्संति वा । जति णं भंते ! चमरस्स असुरिंदस्स असुररन्नो लोगपाला देवा एवंमहिड्ढीया जाव एवतियं च णं पभू विउव्वित्तए । चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुररन्नो अग्गमहिसीओ देवीओ केमहिड्ढीयाओ जाव केवतियं च णं पभू विकुव्वित्तए ?, गोयमा ! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररन्नो अग्गमहिसीओ महिड्ढीयाओ जाव महाणुभागाओ, ताओ णं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२७--१२९]

दीप अनुक्रम [१५३--१५५]

तत्थ साणं २ भवणाणं साणं २ सामाणियसाहस्सीणं साणं २ महत्तरियाणं साणं २ परिसाणं जाव एमहिड्ढियाओ अन्नं जहा लोगपालाणं अपरिसेसं । सेवं भंते!२त्ति (सूत्रं १२७)भगवं दोच्चे गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ जेणेव तच्चे गोयमे वायुभूतिअणगारे तेणेव उवागच्छति २ तच्चं गोयमं वायुभूतिं अणगारं एवं वदासि–एवं खलु गोयमा ! चमरे असुरिंदे असुरराया एवंमहिड्ढीए तं चेव एवं सव्वं अपुट्ठवागरणं नेयव्वं अपरिसेसियं जाव अग्गमहिसीणं वत्तव्वया समत्ता । तए णं से तच्चे गोयमे वायुभूती अणगारे दोच्चस्स गोयमस्स अग्गिभूइस्स अणगारस्स एवमाइक्खमाणस्स भा० पं० परू० एयमट्ठं नो सद्दहइ नो पत्तियइ नो रोयइ एयमट्ठं असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे उट्ठाए उट्ठेइ २ जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी–एवं खलु भंते ! दोच्चे गोयमे अग्गिभूतिअणगारे मम एवमातिक्खइ भासइ पन्नवेइ परूवेइ–एवं खलु गोयमा ! चमरे असुरिंदे असुरराया महिड्ढीए जाव महाणुभावे से णं तत्थ चोत्तीसाए भवणावाससयसहस्साणं एवं तं चेव सव्वं अपरिसेसं भाणियव्वं जाव अग्गमहिसीणं वत्तव्वया समत्ता, से कहमेयं भंते ! ?, एवं गोयमादि समणे भगवं महावीरे तच्चं गोयमं वाउभूतिं अणगारं एवं वदासि–जण्णं गोयमा ! दोच्चे गो० अग्गिभूइअणगारे तव एवमातिक्खइ ४–एवं खलु गोयमा ! चमरे ३ महिड्ढीए एवं तं चेव सव्वं जाव अग्गमहिसीणं वत्तव्वया समत्ता, सच्चे णं एसमट्ठे, अहंपि णं गोयमा ! एवमातिक्खामि भा० प० परू०, एवं खलु गोयमा !–चमरे ३ जाव महिड्ढीए सो चेव

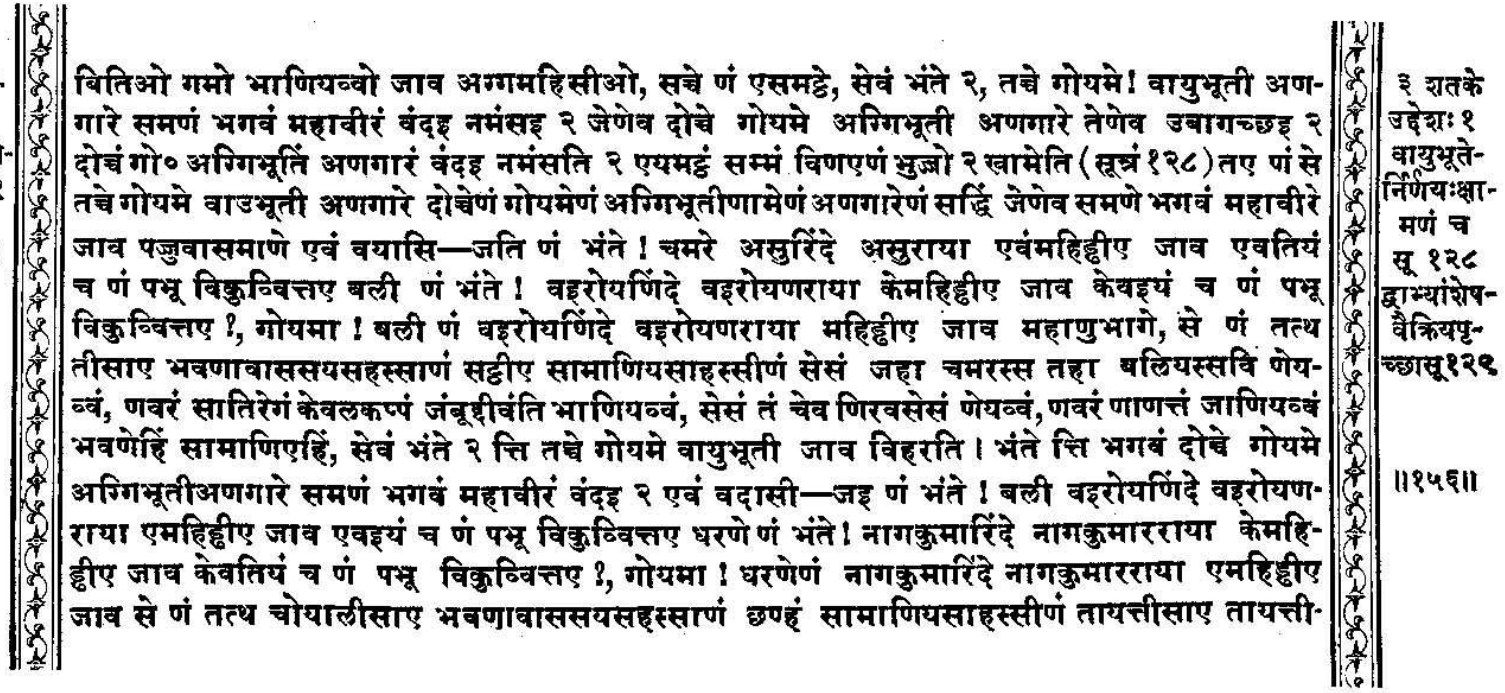
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वायुभूति-अनागारकृत् प्रश्नः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२७--१२९]

दीप अनुक्रम [१५३--१५५]



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-यावृत्तिः १

॥१५६॥

बितिओ गमो भाणियव्वो जाव अग्गमहिसीओ, सच्चे णं एसमट्ठे, सेवं भंते २, तच्चे गोयमे! वायुभूती अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ जेणेव दोच्चे गोयमे अग्गिभूती अणगारे तेणेव उवागच्छइ २ दोच्चं गो० अग्गिभूतिं अणगारं वंदइ नमंसति २ एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो २ खामेति (सूत्रं १२८) तए णं से तच्चे गोयमे वाउभूती अणगारे दोच्चेणं गोयमेणं अग्गिभूतीणामेणं अणगारेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासि—जति णं भंते! चमरे असुरिंदे असुराया एवंमहिड्ढीए जाव एवतियं च णं पभू विकुव्वित्तए बली णं भंते! वइरोयणिंदे वइरोयणराया केमहिड्ढीए जाव केवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए?, गोयमा! बली णं वइरोयणिंदे वइरोयणराया महिड्ढीए जाव महाणुभागे, से णं तत्थ तीसाए भवणावाससयसहस्साणं सट्ठीए सामाणियसाहस्सीणं सेसं जहा चमरस्स तहा बलियस्सवि णेयव्वं, णवरं सातिरेगं केवलकप्पं जंबूदीवंति भाणियव्वं, सेसं तं चेव णिरवसेसं णेयव्वं, णवरं णाणत्तं जाणियव्वं भवणेहिं सामाणिएहिं, सेवं भंते २ त्ति तच्चे गोयमे वायुभूती जाव विहरति। भंते त्ति भगवं दोच्चे गोयमे अग्गिभूतीअणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ २ एवं वदासी—जइ णं भंते! बली वइरोयणिंदे वइरोयणराया एमहिड्ढीए जाव एवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए धरणे णं भंते! नागकुमारिंदे नागकुमारराया केमहिड्ढीए जाव केवतियं च णं पभू विकुव्वित्तए?, गोयमा! धरणेणं नागकुमारिंदे नागकुमारराया एमहिड्ढीए जाव से णं तत्थ चोयालीसाए भवणावाससयसहस्साणं छण्हं सामाणियसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्ती-

३ शतके उद्देशः १ वायुभूते-र्निर्णयःक्षा-मणं च सू १२८ द्वाभ्यांशेष-वैक्रियपृ-च्छासू१२९

॥१५६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वायुभूति-अनागारकृत् प्रश्न:

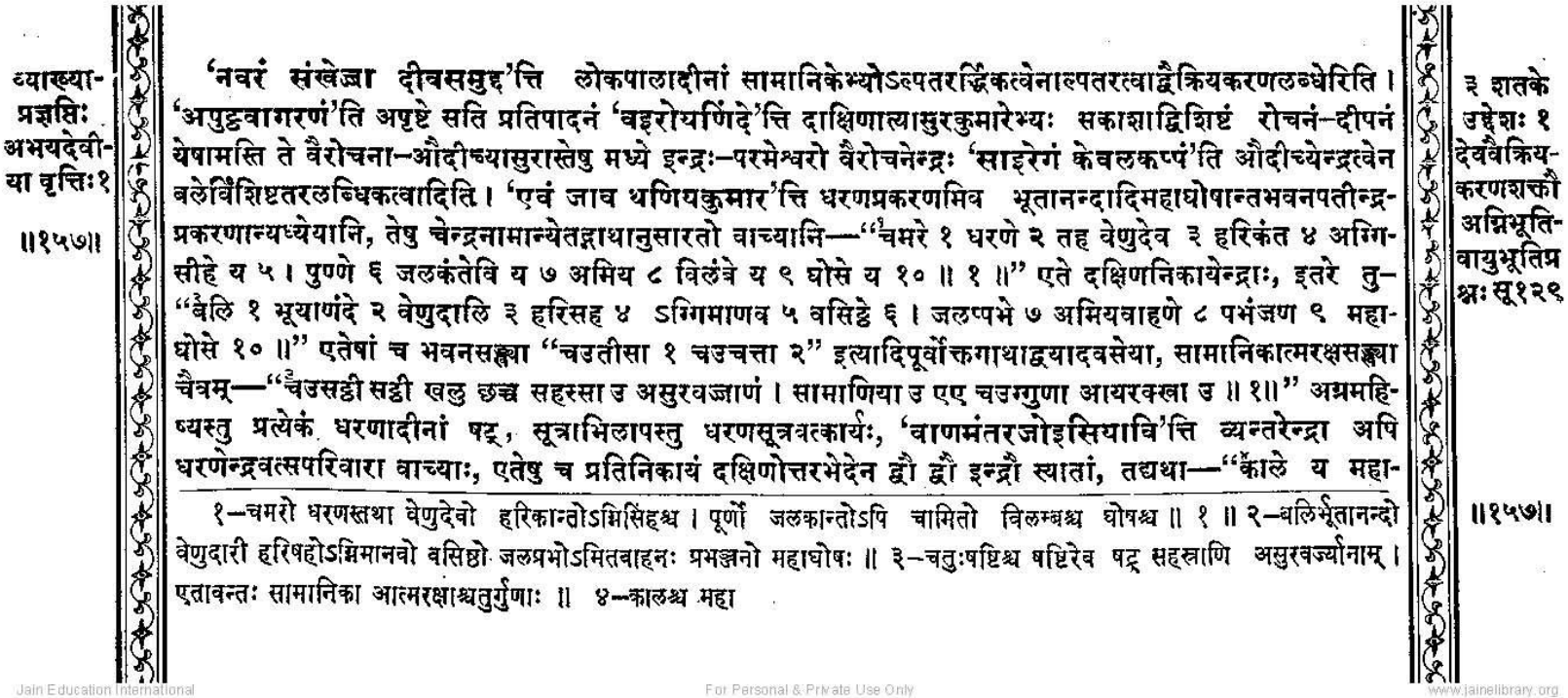
प्रत सूत्रांक [१२७--१२९]

दीप अनुक्रम [१५३--१५५]

सगाणं चउण्हं लोगपालाणं छण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं चउत्तीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीणं अन्नेसिं च जाव विहरइ, एवतियं च णं पभू विउव्वित्तए से जहानामए—जुवतिं जुवाणे जाव पभू केवलकप्पं जंबूदीवं २ जाव तिरियं संखेज्जे दीवसमुद्दे बहूहिं नागकुमारीहिं जाव विउव्विस्संति वा, सामाणिया तायत्तीसलोगपालगा महिसीओ य तहेव, जहा चमरस्स एवं धरणे णं नागकुमारराया महिड्ढिए जाव एवतियं जहा चमरे तहा धरणेणवि, नवरं संखेज्जे दीवसमुद्दे भाणियव्वं, एवं जाव थणियकुमारा वाणमंतरा जोइसियावि, नवरं दाहिणिल्ले सव्वे अग्गिभूती पुच्छति, उत्तरिल्ले सव्वे वाउभूती पुच्छइ, भंतेत्ति भगवं दोच्चे गोयमे अग्गिभूती अणगारे समणं भगवं म० वंदति नमंसति २ एवं वयासी–जति णं भंते ! जोइसिंदे जोतिसराया एवंमहिड्ढीए जाव एवतियं च णं पभू विकुव्वित्तए सक्के णं भंते ! देविंदे देवराया केमहिड्ढीए जाव केवतियं च णं पभू विउव्वित्तए ?, गोयमा ! सक्के णं देविंदे देवराया महिड्ढीए जाव महाणुभागे, से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणावाससयसहस्साणं चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं जाव चउण्हं चउरासीणं आयरक्ख(देव)साहस्सीणं अन्नेसिं च जाव विहरइ, एवंमहिड्ढीए जाव एवतियं च णं पभू विकुव्वित्तए, एवं जहेव चमरस्स तहेव भाणियव्वं, नवरं दो केवलकप्पे जंबूदीवे २ अवसेसं तं चेव, एस णं गोयमा ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो इमेयारूवे विसए विसयमेत्ते णं बुइए नो चेव णं संपत्तीए विउव्विसु वा विउव्वति वा विउव्विस्सति वा (सू० १२९) ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वायुभूति-अनागारकृत् प्रश्नः



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१

॥१५७॥

'नवरं संखेज्जा दीवसमुद्द'त्ति लोकपालादीनां सामानिकेभ्योऽल्पतरर्द्धिकत्वेनाल्पतरत्वाद्वैक्रियकरणलब्धेरिति। 'अपुट्ठवागरणं'ति अपृष्टे सति प्रतिपादनं 'वइरोयणिंदे'त्ति दाक्षिणात्यासुरकुमारेभ्यः सकाशाद्विशिष्टं रोचनं–दीपनं येषामस्ति ते वैरोचना–औदीच्यासुरास्तेषु मध्ये इन्द्रः–परमेश्वरो वैरोचनेन्द्रः 'साइरेगं केवलकप्पं'ति औदीच्येन्द्रत्वेन बलेर्विशिष्टतरलब्धिकत्वादिति। 'एवं जाव थणियकुमार'त्ति धरणप्रकरणमिव भूतानन्दादिमहाघोषान्तभवनपतीन्द्र-प्रकरणान्यध्येयानि, तेषु चेन्द्रनामान्येतद्गाथानुसारतो वाच्यानि—"[1]चमरे १ धरणे २ तह वेणुदेव ३ हरिकंत ४ अग्गि-सीहे य ५। पुण्णे ६ जलकंतेवि य ७ अमिय ८ विलंबे य ९ घोसे य १० ॥ १ ॥" एते दक्षिणनिकायेन्द्राः, इतरे तु–"[2]बलि १ भूयाणंदे २ वेणुदालि ३ हरिसह ४ ऽग्गिमाणव ५ वसिट्ठे ६। जलप्पभे ७ अमियवाहणे ८ पभंजण ९ महा-घोसे १० ॥" एतेषां च भवनसङ्ख्या "चउतीसा १ चउचत्ता २" इत्यादिपूर्वोक्तगाथाद्वयादवसेया, सामानिकात्मरक्षसङ्ख्या चैवम्—"[3]चउसट्ठी सट्ठी खलु छच्च सहस्सा उ असुरवज्जाणं। सामाणिया उ एए चउग्गुणा आयरक्खा उ ॥ १॥" अग्रमहि-ष्यस्तु प्रत्येकं धरणादीनां षट्, सूत्राभिलापस्तु धरणसूत्रवत्कार्यः, 'वाणमंतरजोइसियावि'त्ति व्यन्तरेन्द्रा अपि धरणेन्द्रवत्सपरिवारा वाच्याः, एतेषु च प्रतिनिकायं दक्षिणोत्तरभेदेन द्वौ द्वौ इन्द्रौ स्यातां, तद्यथा—"[4]काले य महा-

१–चमरो धरणस्तथा वेणुदेवो हरिकान्तोऽग्निसिंहश्च। पूर्णो जलकान्तोऽपि चामितो विलम्बश्च घोषश्च ॥ १ ॥ २–बलिर्भूतानन्दो वेणुदारी हरिषहोऽग्निमानवो वसिष्ठो जलप्रभोऽमितवाहनः प्रभञ्जनो महाघोषः ॥ ३–चतुःषष्टिश्च षष्टिरेव षट् सहस्राणि असुरवर्ज्यानाम्। एतावन्तः सामानिका आत्मरक्षाश्चतुर्गुणाः ॥ ४–कालश्च महा

३ शतके उद्देशः १ देववैक्रिय-करणशक्तौ अग्निभूति-वायुभूतिप्र श्नः सू१२९

॥१५७॥

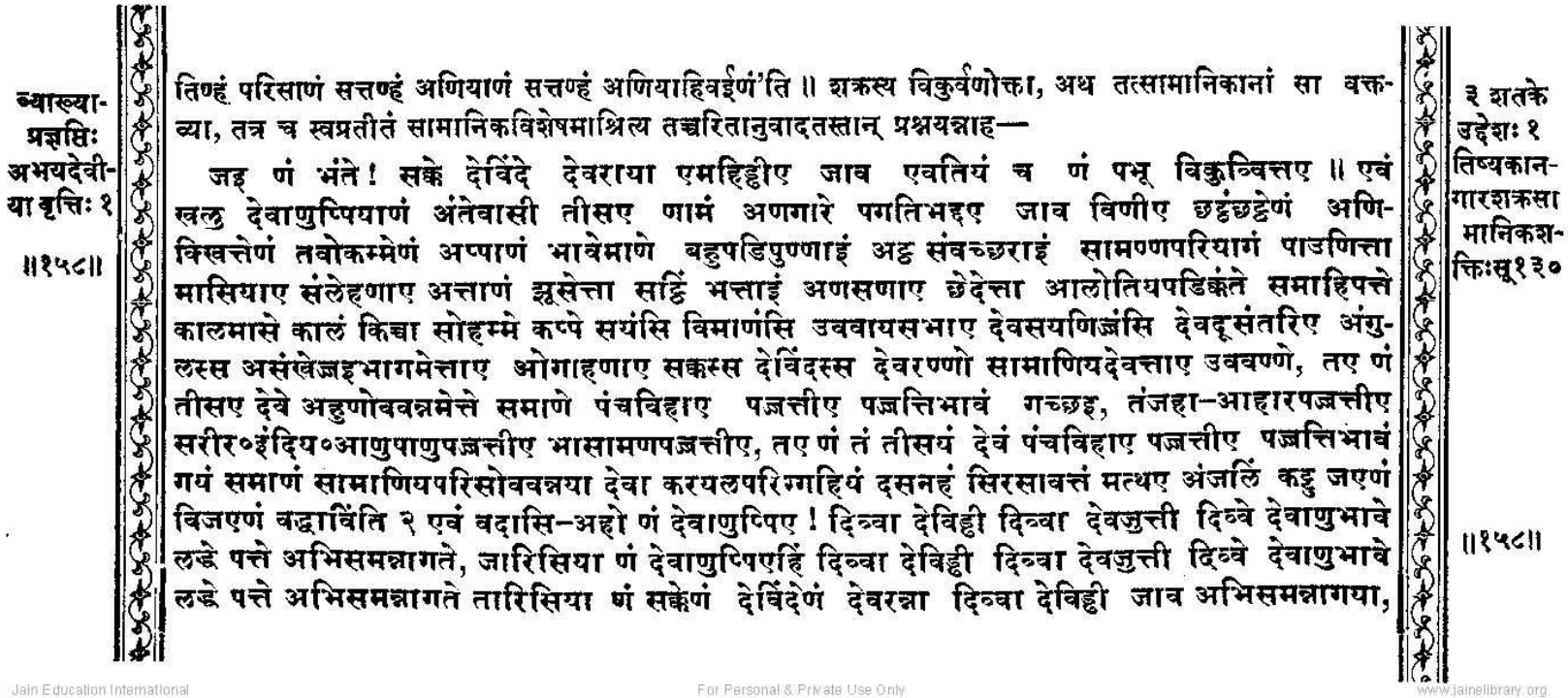
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२७--१२९] दीप अनुक्रम [१५३--१५५]	

काले १ सुरूव पडिरूव २ पुण्णभद्दे य । अमरवइ माणिभद्दे ३ भीमे य तहा महाभीमे ४ ॥ १ ॥ किंनर किंपुरिसे ५ खलु सप्पुरिसे चेव तह महापुरिसे ६ । अइकाय महाकाए ७ गीयरई चेव गीयजसे ८ ॥ २ ॥" एतेषां ज्योतिष्काणां च त्रायस्त्रिंशा लोकपालाश्च न सन्तीति ते न वाच्याः, सामानिकास्तु चतुःसहस्रसङ्ख्याः, एतच्चतुर्गुणाश्चात्मरक्षा अग्रमहिष्यश्च-तत्र इति, एतेषु च सर्वेष्वपि दाक्षिणात्यानिन्द्रानादित्यं चाग्निभूतिः पृच्छति, उदीच्यांश्चन्द्रं च वायुभूतिः, तत्र च दाक्षिणात्येष्वादित्ये च केवलकल्पं जम्बूद्वीपं संस्तृतमित्यादि, औदीच्येषु च चन्द्रे च सातिरेकं जम्बूद्वीपमित्यादि च वाच्यं, यच्चेहाधिकृतवाचनायामसूचितमपि व्याख्यातं तद्वाचनान्तरमुपजीव्येति भावनीयमिति, तत्र कालेन्द्रसूत्राभिलाप एवम्—'काले णं भंते ! पिसाइंदे पिसायराया केमहिड्ढीए ६ केवइयं च णं पभू विउव्वित्तए ?, गोयमा ! काले णं महिड्ढीए ६ से णं तत्थ असंखेज्जाणं नगरवाससयसहस्साणं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं अण्णेसिं च बहूणं पिसायाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव विहरइ, एवंमहिड्ढिए ६ एवतियं च णं पभू विउव्वित्तए जाव केवलकप्पं जंबूदीवं २ जाव तिरियं संखेज्जे दीवसमुद्दे'इत्यादि, शक्रप्रकरणे 'जाव चउण्हं चउरासीण'मित्यत्र यावत्करणादिदं दृश्यम्—'अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं चउण्हं लोगपालाणं

कालः सुरूपः प्रतिरूपः पूर्णभद्रश्चामरपतिर्माणिभद्रो भीमश्च तथा महाभीमः ॥१॥ किंनरः किंपुरुषः खलु सत्पुरुषश्चैव तथा महापुरुषः । अतिकायो महाकायो गीतरतिश्चैव गीतयशाः ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥१५८॥

तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं'ति ॥ शक्रस्य विकुर्वणोक्ता, अथ तत्सामानिकानां सा वक्तव्या, तत्र च स्वप्रतीतं सामानिकविशेषमाश्रित्य तच्चरितानुवादतस्तान् प्रश्नयन्नाह—

जइ णं भंते! सक्के देविंदे देवराया एमहिड्ढीए जाव एवतियं च णं पभू विकुव्वित्तए ॥ एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी तीसए णामं अणगारे पगतिभद्दए जाव विणीए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णाइं अट्ठ संवच्छराइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेत्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोतियपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे सयंसि विमाणंसि उववायसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंतरिए अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्ताए ओगाहणाए सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सामाणियदेवत्ताए उववण्णे, तए णं तीसए देवे अहुणोववन्नमेत्ते समाणे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छइ, तंजहा–आहारपज्जत्तीए सरीर०इंदिय०आणुपाणुपज्जत्तीए भासामणपज्जत्तीए, तए णं तं तीसयं देवं पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गयं समाणं सामाणियपरिसोववन्नया देवा करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति २ एवं वदासि–अहो णं देवाणुप्पिए! दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवजुत्ती दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागते, जारिसिया णं देवाणुप्पिएहिं दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवजुत्ती दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागते तारिसिया णं सक्केणं देविंदेणं देवरन्ना दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमन्नागया,

३ शतके उद्देशः १ तिष्यकानगारशक्रसामानिकशक्तिःसू१३०

॥१५८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जारिसिया णं (सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमण्णागया तारिसिया णं) देवाणुप्पिएहिं दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमन्नागया । से णं भंते ! तीसए देवे केमहिड्ढीए जाव केवतियं च णं पभू विउव्वित्तए ?, गोयमा ! महिड्ढीए जाव महाणुभागे, से णं तत्थ सयस्स विमाणस्स चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य जाव विहरति, एवंमहिड्ढीए जाव एवइयं च णं पभू विउव्वित्तए, से जहाणामए जुवतिं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा जहेव सक्कस्स तहेव जाव एस णं गोयमा ! तीसयस्स देवस्स अयमेयारूवे विसए विसयमेत्ते बुइए नो चेव णं संपत्तीए विउव्विंसु वा ३ । जति णं भंते ! तीसए देवे महिड्ढीए जाव एवइयं च णं पभू विउव्वित्तए सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरन्नो अवसेसा सामाणिया देवा केमहिड्ढीया तहेव सव्वं जाव एस णं गोयमा ! सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो एगमेगस्स सामाणियस्स देवस्स इमेयारूवे विसयमेत्ते बुइए नो चेव णं संपत्तीए विउव्विंसु वा विउव्विंति वा विउव्विस्संति वा तायत्तीसा य लोगपालअग्गमहिसीणं जहेव चमरस्स नवरं दो केवलकप्पे जंबूदीवे २ अण्णं तं चेव, सेवं भंते २ त्ति दोच्चे गोयमे जाव विहरति ॥ (सू० १३०) ॥

'एवं खलु'इत्यादि, 'एवम्' इति वक्ष्यमाणन्यायेन सामानिकदेवतयोत्पन्न इति योगः, 'तीसए'त्ति तिष्यकाभिधानः 'सयंसि'त्ति स्वके विमाने, 'पंचविहाए पज्जत्तीए'त्ति पर्याप्तिः–आहारशरीरादीनामभिनिर्वृत्तिः, सा चान्यत्र षोढोक्ता,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १

॥१५९॥

इह तु पञ्चधा, भाषामनःपर्याप्त्योर्बहुश्रुताभिमतेन केनापि कारणेनैकत्वविवक्षणात्, 'लद्धे'त्ति जन्मान्तरे तदुपार्जनापेक्षया 'पत्ते'त्ति प्राप्ता देवभवापेक्षया 'अभिसमण्णागए'त्ति तद्भोगापेक्षया 'जहेव चमरस्स'त्ति, अनेन लोकपालाग्रमहिषीणां 'तिरियं संखेज्जे दीवसमुद्दे'त्ति वाच्यमिति सूचितम् ॥

भंतेत्ति भगवं तच्चे गोयमे वाउभूती अणगारे समणं भगवं जाव एवं वदासी–जति णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया ए महिड्ढीए जाव एवइयं च णं पभू विउव्वित्तए ईसाणे णं भंते ! देविंदे देवराया केमहिड्ढीए ? एवं तहेव, नवरं साहिए दो केवलकप्पे जंबूदीवे २ अवसेसं तहेव (सू० १३१) ॥

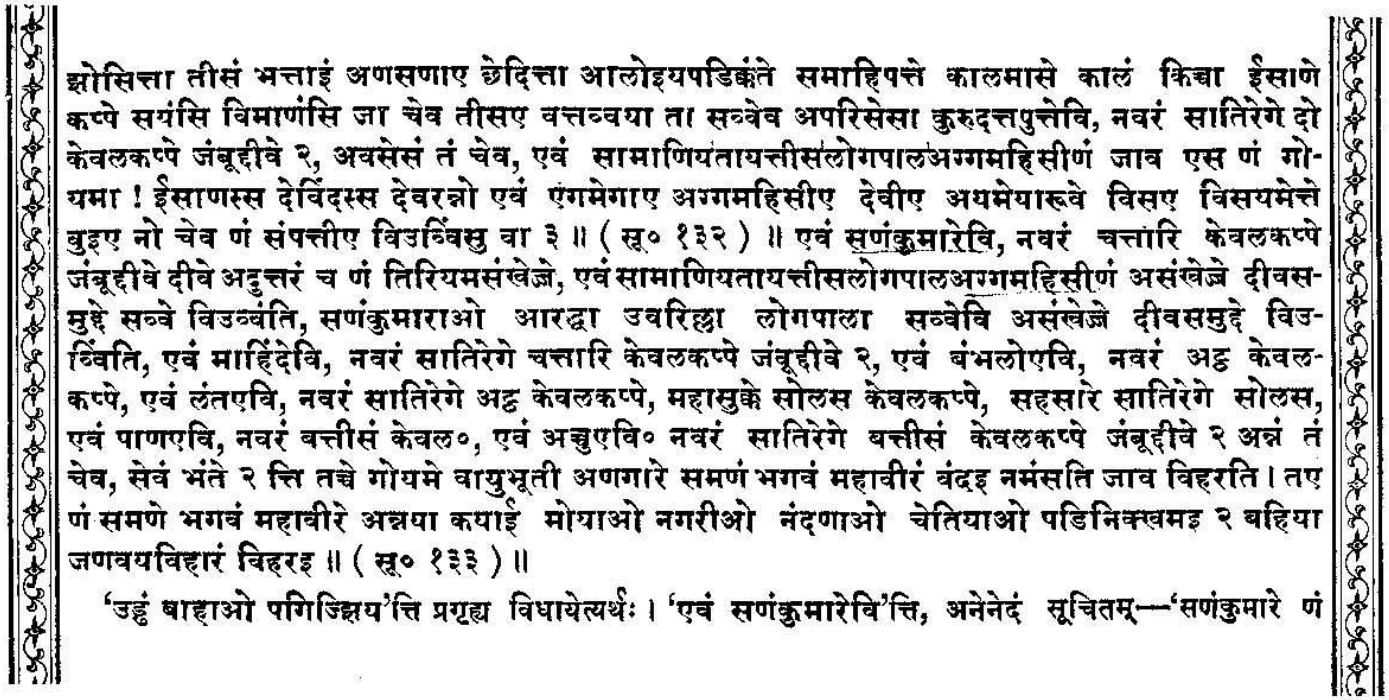
'ईसाणे णं भंते'इत्यादि, ईशानप्रकरणम्, इह च 'एवं तहेव'त्ति अनेन यद्यपि शक्रसमानवक्तव्यमीशानेन्द्रप्रकरणं सूचितं तथाऽपि विशेषोऽस्ति, उभयसाधारणपदापेक्षत्वादतिदेशस्येति, स चायम्–'से णं अट्ठावीसाए विमाणावाससयसहस्साणं असीईए सामाणियसाहस्सीणं जाव चउण्हं असीईणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं'ति ॥ ईशानवक्तव्यतानन्तरं तत्सामानिकवक्तव्यतायां स्वप्रतीतं तद्विशेषमाश्रित्य तच्चरितानुवादतः प्रश्नयन्नाह—

जति णं भंते ! ईसाणे देविंदे देवराया एमहिड्ढीए जाव एवतियं च णं पभू विउव्वित्तए ॥ एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी कुरुदत्तपुत्ते नामं पगतिभद्दए जाव विणीए अट्ठमंअट्ठमेणं अणिक्खित्तेणं पारणए आयंबिलपरिग्गहिएणं तवोकम्मेणं उड्ढं वाहाओ पगिज्झिय २ सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे बहुपडिपुन्ने छम्मासे सामण्णपरियागं पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए अत्ताणं

२ शतके उद्देशः १ ईशानेन्द्रवैक्रियशक्तिः सू १३१

॥१५९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



झोसित्ता तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा ईसाणे कप्पे सयंसि विमाणंसि जा चेव तीसए वत्तव्वया ता सव्वेव अपरिसेसा कुरुदत्तपुत्तेवि, नवरं सातिरेगे दो केवलकप्पे जंबूदीवे २, अवसेसं तं चेव, एवं सामाणियतायत्तीसलोगपालअग्गमहिसीणं जाव एस णं गोयमा ! ईसाणस्स देविंदस्स देवरन्नो एवं एगमेगाए अग्गमहिसीए देवीए अयमेयारूवे विसए विसयमेत्ते वुइए नो चेव णं संपत्तीए विउव्विंसु वा ३ ॥ (सू० १३२) ॥ एवं सणंकुमारेवि, नवरं चत्तारि केवलकप्पे जंबूदीवे दीवे अदुत्तरं च णं तिरियमसंखेज्जे, एवं सामाणियतायत्तीसलोगपालअग्गमहिसीणं असंखेज्जे दीवसमुद्दे सव्वे विउव्वंति, सणंकुमाराओ आरद्धा उवरिल्ला लोगपाला सव्वेवि असंखेज्जे दीवसमुद्दे विउव्विंति, एवं माहिंदेवि, नवरं सातिरेगे चत्तारि केवलकप्पे जंबूदीवे २, एवं बंभलोएवि, नवरं अट्ठ केवलकप्पे, एवं लंतएवि, नवरं सातिरेगे अट्ठ केवलकप्पे, महासुक्के सोलस केवलकप्पे, सहस्सारे सातिरेगे सोलस, एवं पाणएवि, नवरं वत्तीसं केवल०, एवं अच्चुएवि० नवरं सातिरेगे बत्तीसं केवलकप्पे जंबूदीवे २ अन्नं तं चेव, सेवं भंते २ त्ति तच्चे गोयमे वायुभूती अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसति जाव विहरति। तए णं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाई सोयाओ नगरीओ नंदणाओ चेतियाओ पडिनिक्खमइ २ बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥ (सू० १३३) ॥

'उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय'त्ति प्रगृह्य विधायेत्यर्थः। 'एवं सणंकुमारेवि'त्ति, अनेनेदं सूचितम्—'सणंकुमारे णं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३२-१३३]

दीप अनुक्रम [१५८--१५९]

प्रत सूत्रांक [१३२-१३३]

दीप अनुक्रम [१५८--१५९]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥१६०॥

भंते ! देविंदे देवराया केमहिड्ढिए ६ केवइयं च णं पभू विउवित्तए ?, गोयमा ! सणंकुमारे णं देविंदे देवराया महिड्ढिए ६, से णं बारसण्हं विमाणावाससयसाहस्सीणं बावत्तरीए सामाणियसाहस्सीणं जाव चउण्हं बावत्तरीणं आयरक्खदेवसाहस्सीण' मित्यादीति, 'अग्गमहिसीणं'ति यद्यपि सनत्कुमारे स्त्रीणामुत्पत्तिर्नास्ति तथाऽपि याः सौधर्मोत्पन्नाः समयाधिकपल्योपमादिदशपल्योपमान्तस्थितयोऽपरिगृहीतदेव्यस्ताः सनत्कुमारदेवानां भोगाय संपद्यन्ते इतिकृत्वाऽग्रमहिष्य, इत्युक्तमिति । एवं माहेन्द्रादिसूत्राण्यपि गाथानुसारेण विमानमानं सामानिकादिमानं च विज्ञायानुसन्धानीयानि गाथाश्चैवम्—"[1]बत्तीस अट्ठवीसा २ बारस ३ अट्ठ ४ चउरो ५ य सयसहस्सा । आरेण बंभलोया विमाणसंखा भवे एसा॥ १ ॥ पण्णासं ६ चत्त ७ छच्चेव ८ सहस्सा लंतसुक्कसहस्सारे । सयचउरो आणयपाणएसु ९–१० तिण्णारणच्चुयओ ११–१२ ॥२॥" सामानिकपरिमाणगाथा—"[2]चउरासीइ असीई बावत्तरि सत्तरी य सट्ठी य । पण्णा चत्तालीसा तीसा वीसा दस सहस्सा ॥ १ ॥" इह च शक्रादिकान् पञ्चैकान्तरितानग्निभूतिः पृच्छति, ईशानादींश्च तथैव वायुभूतिरिति ॥ इन्द्राणां वैक्रियशक्तिप्ररूपणप्रक्रमादीशानेन्द्रेण प्रकाशितस्यात्मीयस्य वैक्रियरूपकरणसामर्थ्यस्य तेजोलेश्यासामर्थ्यस्य चोपदर्शनायेदमाह—

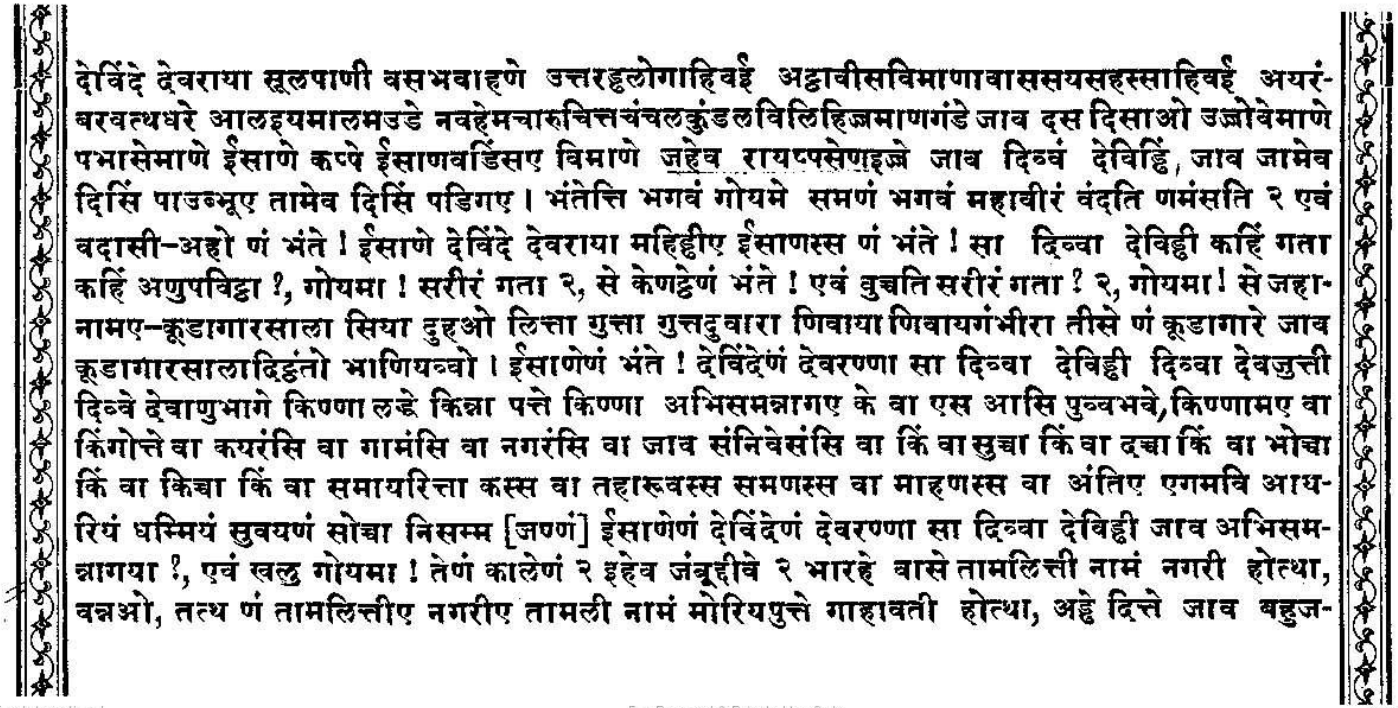
तेणं कालेणं तेणं० रायगिहे नामं नगरे होत्था, वन्नओ, जाव परिसा पज्जुवासइ । तेणं कालेणं २ ईसाणे

१–द्वात्रिंशदष्टाविंशतिर्द्वादशाष्टौ चत्वारश्च लक्षाः । ब्रह्मलोकादारादिमानसङ्ख्या भवेद् एषा ॥ १ ॥ पञ्चाशच्चत्वारिंशत् षट् चैव सहस्राणि लान्तकशुक्रसहस्रारेषु । आनतप्राणतयोश्चत्वारि शतानि आरणाच्युतयोस्त्रीणि ॥ २ ॥ २–चतुरशीतिरशीतिर्द्वासप्ततिः सप्ततिश्च षष्टिश्च । पञ्चाशच्चत्वारिंशत्त्रिंशद्विंशतिर्दश च सहस्राणि (सामानिकाः) ॥ १ ॥

३ शतके उद्देशः १ ईशानेन्द्र-सामानिक-कुरुदत्तशक्तिःसू१३२ शेषेंद्राणांच शक्तिः सू १३३

॥१६०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

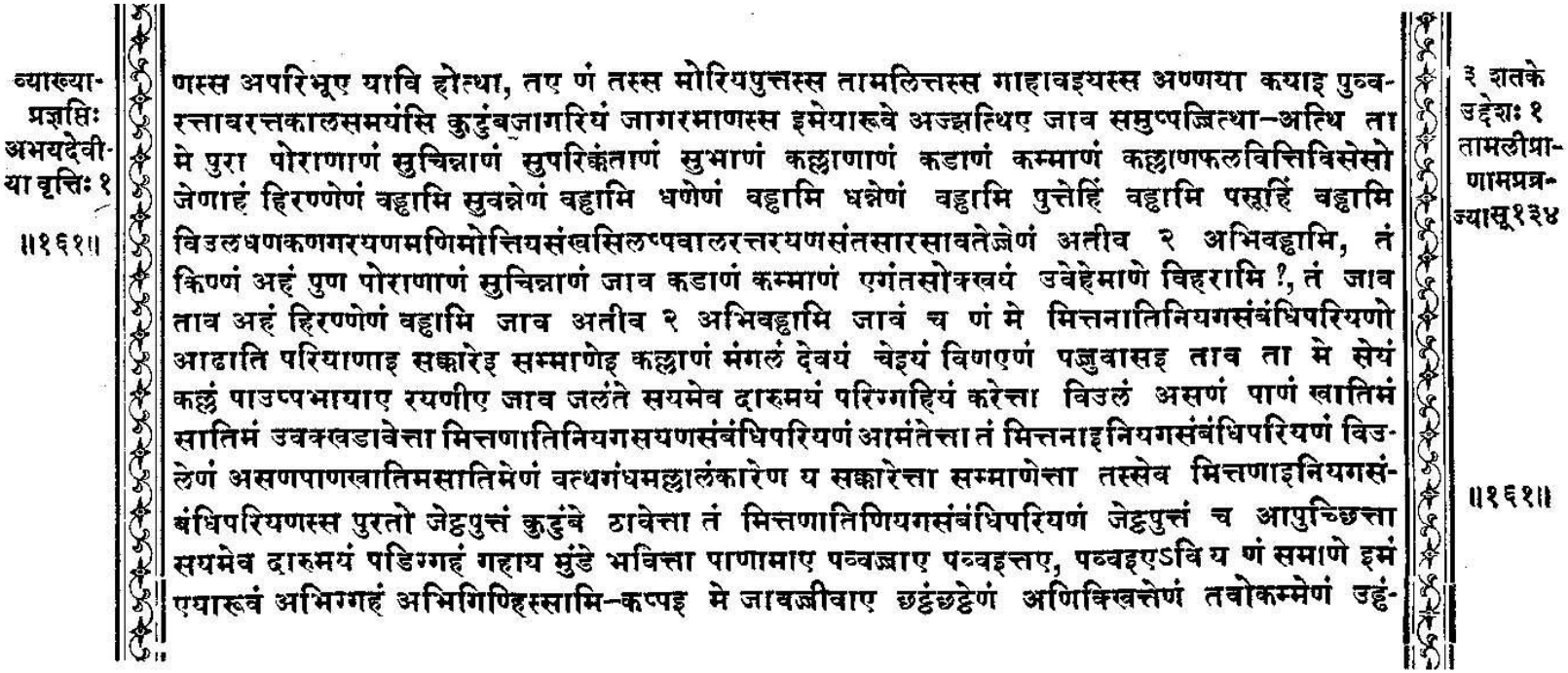


देविंदे देवराया सूलपाणी वसभवाहणे उत्तरड्ढलोगाहिवई अट्ठावीसविमाणावाससयसहस्साहिवई अयरं-
बरवत्थधरे आलइयमालमउडे नवहेमचारुचित्तचंचलकुंडलविलिहिज्जमाणगंडे जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणे
पभासेमाणे ईसाणे कप्पे ईसाणवडिंसए विमाणे जहेव रायप्पसेणइज्जे जाव दिव्वं देविड्ढिं, जाव जामेव
दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। भंतेत्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदति णमंसति २ एवं
वदासी–अहो णं भंते ! ईसाणे देविंदे देवराया महिड्ढीए ईसाणस्स णं भंते ! सा दिव्वा देविड्ढी कहिं गता
कहिं अणुपविट्ठा ?, गोयमा ! सरीरं गता २, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति सरीरं गता ? २, गोयमा ! से जहा-
नामए–कूडागारसाला सिया दुहओ लित्ता गुत्ता गुत्तदुवारा णिवाया णिवायगंभीरा तीसे णं कूडागारे जाव
कूडागारसालादिट्ठंतो भाणियव्वो। ईसाणेणं भंते ! देविंदेणं देवरण्णा सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवजुत्ती
दिव्वे देवाणुभागे किण्णा लद्धे किन्ना पत्ते किण्णा अभिसमन्नागए के वा एस आसि पुव्वभवे, किण्णामए वा
किंगोत्ते वा कयरंसि वा गामंसि वा नगरंसि वा जाव संनिवेसंसि वा किं वा सुचा किं वा दच्चा किं वा भोच्चा
किं वा किच्चा किं वा समायरित्ता कस्स वा तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आय-
रियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा निसम्म [जण्णं] ईसाणेणं देविंदेणं देवरण्णा सा दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसम-
न्नागया ?, एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं २ इहेव जंबूदीवे २ भारहे वासे तामलित्ती नामं नगरी होत्था,
वन्नओ, तत्थ णं तामलित्तीए नगरीए तामली नामं मोरियपुत्ते गाहावती होत्था, अड्ढे दित्ते जाव बहुज-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३४]

दीप अनुक्रम [१६०]



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥१६१॥

णस्स अपरिभूए यावि होत्था, तए णं तस्स मोरियपुत्तस्स तामलित्तस्स गाहावइयस्स अण्णया कयाइ पुव्व-
रत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुंबजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था–अत्थि ता
मे पुरा पोराणाणं सुचिन्नाणं सुपरिक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं कल्लाणफलवित्तिविसेसो
जेणाहं हिरण्णेणं वड्ढामि सुवन्नेणं वड्ढामि धणेणं वड्ढामि धन्नेणं वड्ढामि पुत्तेहिं वड्ढामि पसूहिं वड्ढामि
विउलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणसंतसारसावतेज्जेणं अतीव २ अभिवड्ढामि, तं
किण्णं अहं पुण पोराणाणं सुचिन्नाणं जाव कडाणं कम्माणं एगंतसोक्खयं उवेहेमाणे विहरामि ?, तं जाव
ताव अहं हिरण्णेणं वड्ढामि जाव अतीव २ अभिवड्ढामि जावं च णं मे मित्तनातिनियगसंबंधिपरियणो
आढाति परियाणाइ सक्कारेइ सम्माणेइ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासइ ताव ता मे सेयं
कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव जलंते सयमेव दारुमयं परिग्गहियं करेत्ता विउलं असणं पाणं खातिमं
सातिमं उवक्खडावेत्ता मित्तणातिनियगसयणसंबंधिपरियणं आमंतेत्ता तं मित्तनाइनियगसंबंधिपरियणं विउ-
लेणं असणपाणखातिमसातिमेणं वत्थगंधमल्लालंकारेण य सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता तस्सेव मित्तणाइनियगसं-
बंधिपरियणस्स पुरतो जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठावेत्ता तं मित्तणातिणियगसंबंधिपरियणं जेट्ठपुत्तं च आपुच्छित्ता
सयमेव दारुमयं पडिग्गहं गहाय मुंडे भवित्ता पाणामाए पव्वज्जाए पव्वइत्तए, पव्वइएऽवि य णं समाणे इमं
एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हिस्सामि–कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं-

३ शतके उद्देशः १ तामलीप्रा-णामप्रव्र-ज्यासू१३४

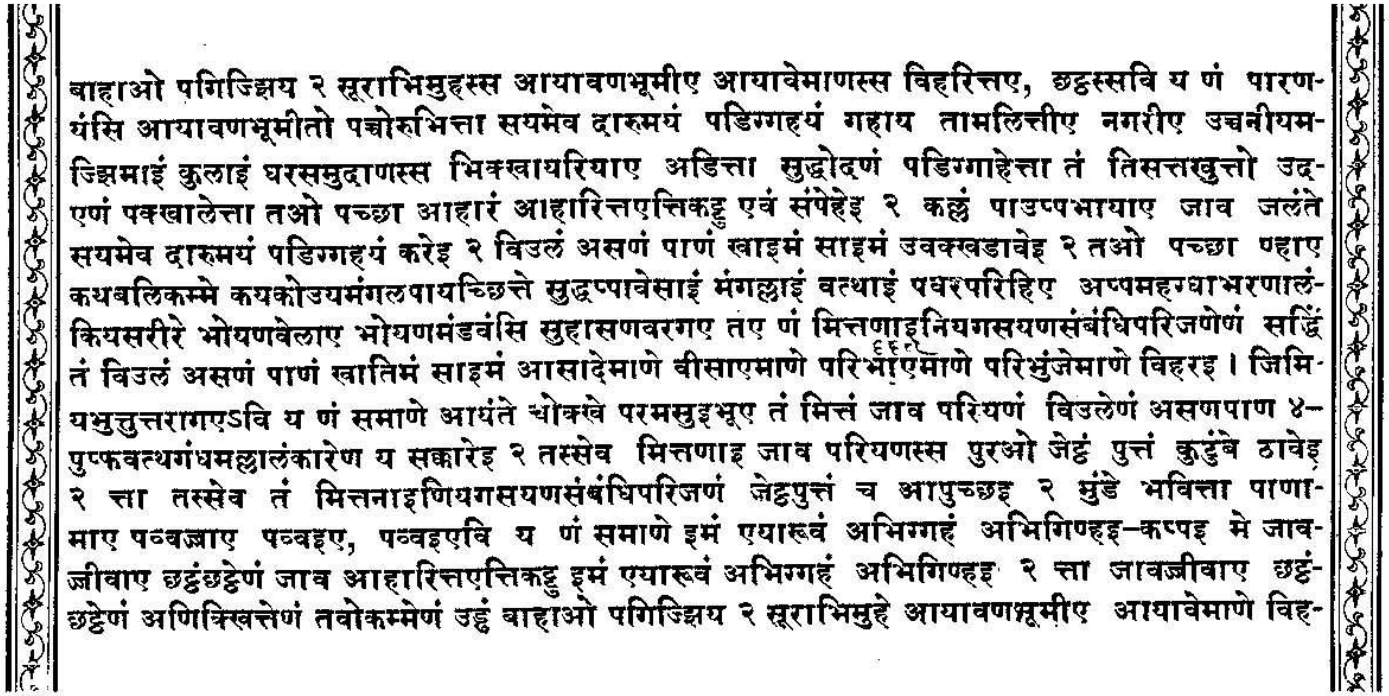
॥१६१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तामली-तापस कथा

प्रत सूत्रांक [१३४]

दीप अनुक्रम [१६०]



बाहाओ पगिज्झिय २ सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स विहरित्तए, छट्ठस्सवि य णं पारणयंसि आयावणभूमीतो पच्चोरुभित्ता सयमेव दारुमयं पडिग्गहयं गहाय तामलित्तीए नगरीए उच्चनीयमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्ता सुद्धोदणं पडिग्गाहेत्ता तं तिसत्तखुत्तो उदएणं पक्खालेत्ता तओ पच्छा आहारं आहारित्तएत्तिकट्टु एवं संपेहेइ २ कल्लं पाउप्पभायाए जाव जलंते सयमेव दारुमयं पडिग्गहयं करेइ २ विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेइ २ तओ पच्छा ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउयमंगलपायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे भोयणवेलाए भोयणमंडवंसि सुहासणवरगए तए णं मित्तणाइनियगसयणसंबंधिपरिजणेणं सद्धिं तं विउलं असणं पाणं खातिमं साइमं आसादेमाणे वीसाएमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे विहरइ। जिमियभुत्तुत्तरागएऽवि य णं समाणे आयंते चोक्खे परमसुइभूए तं मित्तं जाव परियणं विउलेणं असणपाण ४–पुप्फवत्थगंधमल्लालंकारेण य सक्कारेइ २ तस्सेव मित्तणाइ जाव परियणस्स पुरओ जेट्ठं पुत्तं कुटुंबे ठावेइ २ त्ता तस्सेव तं मित्तनाइणियगसयणसंबंधिपरिजणं जेट्ठपुत्तं च आपुच्छइ २ मुंडे भवित्ता पाणामाए पव्वज्जाए पव्वइए, पव्वइएवि य णं समाणे इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ–कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं जाव आहारित्तएत्तिकट्टु इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ २ त्ता जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय २ सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे विह-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तामली-तापस कथा

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-यावृत्तिः १

॥१६२॥

रइ, छट्ठस्सवि य णं पारणयंसि आयावणभूमीओ पच्चोरुहइ २ सयमेव दारुमयं पडिग्गहं गहाय तामलित्तीए नगरीए उच्चनीयमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडइ २ सुद्धोयणं पडिग्गाहेइ २ तिसत्तखुत्तो उदएणं पक्खालेइ, तओ पच्छा आहारं आहारेइ। से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–पाणामा पव्वज्जा २?, गोयमा! पाणामाए णं पव्वज्जाए पव्वइए समाणे जं जत्थ पासइ इंदं वा खंदं वा रुद्दं वा सिवं वा वेसमणं वा अज्जं वा कोट्टकिरियं वा रायं वा जाव सत्थवाहं वा कागं वा साणं वा पाणं वा उच्चं पासइ उच्चं पणामं करेइ, नीयं पासइ नीयं पणामं करेइ, जं जहा पासति तस्स तहा पणामं करेइ, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—पाणामा जाव पव्वज्जा ॥ (सू० १३४) ॥

'जहेव रायप्पसेणइज्जे'त्ति यथैव राजप्रश्नीयाख्येऽध्ययने सूरियाभदेवस्य वक्तव्यता तथैव चेहेशानेन्द्रस्य, किमन्तेत्याह—'जाव दिव्वं देविड्ढि'मिति, सा चेयमर्थसङ्क्षेपतः–सभायां सुधर्मायामीशाने सिंहासनेऽशीत्या सामानिकसहस्रैश्चतुर्भिर्लोकपालैरष्टाभिः सपरिवाराभिरग्रमहिषीभिः सप्तभिरनीकैः सप्तभिरनीकाधिपतिभिश्चतसृभिश्चाशीतिभिरात्मरक्षदेवसहस्राणाम् अन्यैश्च बहुभिर्देवैर्देवीभिश्च परिवृतो महताऽऽहतनाट्यादिरवेण दिव्यान् भोगभोगान् भुञ्जानो विहरति स्म, इतश्च जम्बूद्वीपमवधिनाऽऽलोकयन् भगवन्तं महावीरं राजगृहे ददर्श, दृष्ट्वा च ससंभ्रममासनादुत्तस्थौ, उत्थाय च सप्ताष्टानि पदानि तीर्थंकराभिमुखमाजगाम, ततो ललाटतटघटितकरकुड्मलो ववन्दे, वन्दित्वा चाभियोगिकदेवान् शब्दयाञ्चकार, एवं च तानवादीत्–गच्छत भो राजगृहं नगरं महावीरं भगवन्तं वन्दध्वं योजनपरिमण्डलं च क्षेत्रं शोध-

३ शतके उद्देशः १ तामलीप्राणामप्रव्रज्यासू१३४

॥१६२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यत, कृत्वा चैवं मम निवेदयत, तेऽपि तथैव चक्रुः, ततोऽसौ पदात्यनीकाधिपतिं देवमेवमवादीत्—भो ! भो ! देवानां प्रिय ! ईशानावतंसकविमाने घण्टामास्फालयन् घोषणां कुरु यदुत गच्छति भो ! ईशानेन्द्रो महावीरस्य वन्दनाय ततो यूयं शीघ्रं महर्द्ध्या तस्यान्तिकमागच्छत, कृतायां च तेन तस्यां बहवो देवाः कुतूहलादिभिस्तत्समीपमुपागताः, तैश्च परिवृतोऽसौ योजनलक्षप्रमाणयानविमानारूढोऽनेकदेवगणपरिवृतो नन्दीश्वरे द्वीपे कृतविमानसङ्क्षेपो राजगृहनगरमाजगाम, ततो भगवन्तं त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य चतुर्भिरङ्कुलैर्भुवमप्राप्तं विमानं विमुच्य भगवत्समीपमागत्य भगवन्तं वन्दित्वा पर्युपास्ते स्म, ततो धर्म्मं श्रुत्वैवमवादीत्–भदन्त ! यूयं सर्वं जानीथ पश्यथ केवलं गौतमादीनां महर्षीणां दिव्यं नाट्यविधिमुपदर्शयितुमिच्छामीत्यभिधाय दिव्यं मण्डपं विकुर्वितवान्, तन्मध्ये मणिपीठिकां तत्र च सिंहासनं, ततश्च भगवन्तं प्रणम्य तत्रोपविवेश, ततश्च तस्य दक्षिणाद्भुजादष्टोत्तरं शतं देवकुमाराणां वामाच्च देवकुमारीणां निर्गच्छति स्म, ततश्च विविधातोद्यवरगीतध्वनिरञ्जित जनमानसं द्वात्रिंशद्विधं नाट्यविधिमुपदर्शयामासेति । 'तए णं से ईसाणे देविंदे २ तं दिवं देविड्ढिं' यावत्करणादिदमपरं वाच्यं यदुत 'दिवं देवजुइं दिवं देवाणुभावं पडिसाहरइ साहरित्ता खणेणं जाए एगभूए । तए णं ईसाणे ३ समणं भगवं महावीरं वंदित्ता नमंसित्ता नियगपरियालसंपरिवुडे'त्ति 'परियाल'त्ति परिवारः । 'कूडागारसालादिट्ठंतो'त्ति कूटाकारेण–शिखराकृत्योपलक्षिता शाला या सा तथा तया दृष्टान्तो यः स तथा, स चैवं–भगवन्तं गौतम एवमवादीत्–ईशानेन्द्रस्य सा दिव्या देवर्द्धिः क्व गता ? (क्वानुप्रविष्टा), गौतम ! (शरीरं गता) शरीरकमनुप्रविष्टा । अथ केनार्थेनैवमुच्यते ?, गौतम ! यथा नाम कूटाकारशाला स्यात्, तस्या-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३४]

दीप अनुक्रम [१६०]

श्रादूरे महान् जनसमूहस्तिष्ठति, स च महाभ्रादिकमागच्छन्तं पश्यति, दृष्ट्वा च तां कूटागारशालामनुप्रविशति, एवमीशानेन्द्रस्य सा दिव्या देवर्द्धिः (शरीरं गता) शरीरकमनुप्रविष्टेति । 'किण्णे'ति केन हेतुना ? 'किं वा दच्चे'त्यादि, इह दत्त्वाऽशनादि भुक्त्वाऽन्तप्रान्तादि कृत्वा तपःशुभध्यानादि समाचर्य च प्रत्युपेक्षाप्रमार्जनादि, 'कस्स वे'त्यादिवाक्यस्य चान्ते पुण्यमुपार्जितमिति वाक्यशेषो दृश्यः, 'जण्णं'ति यस्मात्पुण्यात् णमित्यलङ्कारे । 'अत्थि ता मे पुरा पोराणाण'मित्यादि पुरा–पूर्वं कृतानामिति योगः, अत एव 'पोराणाणं'ति पुराणानां 'सुचिण्णाणं'ति दानादिसुचरितरूपाणां 'सुपरक्कंताणं'ति सुष्ठु पराक्रान्तं–पराक्रमस्तपःप्रभृतिकं येषु तानि तथा तेषां, शुभानामर्थावहत्वेन कल्याणानामनर्थोपशमहेतुत्वेनेति, कुतोऽस्ति ? इत्याह—'जेणाह'मित्यादि, पूर्वोक्तमेव किञ्चित्सविशेषमाह—'विउलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणसंतसारसावएज्जेणं'ति, इह धनं–गणिमादि रत्नानि–कर्केतनादीनि मणयः-चन्द्रकान्ताद्याः शिलाप्रवालानि–विद्रुमाणि,अन्ये त्वाहुः–शिला–राजपट्टादिरूपाः प्रवालं–विद्रुमं रक्तरत्नानि-पद्मरागादीनि, एतद्रूपं यत् 'संत'त्ति विद्यमानं सारं–प्रधानं स्वापतेयं–द्रव्यं तत्तथा तेन 'एगंतसो खयं'ति एकान्तेन क्षयं, नवानां शुभकर्म्मणामनुपार्जनेन, 'मित्ते'त्यादि, तत्र मित्राणि–सुहृदो ज्ञातयः–सजातीयाः निजका–गोत्रजाः सम्बन्धिनो–मातृपक्षीयाः श्वशुरकुलीना वा परिजनो–दासादिः 'आदाइ'त्ति आद्रियते 'परिजाणइ'त्ति परिजानाति स्वामितया 'पाणामाए'त्ति प्रणामोऽस्ति विधेयतया यस्यां सा प्राणामा तया, 'सुद्धोयणं'ति सूपशाकादिवर्जितं कूरं 'तिसत्तखुत्तो'त्ति त्रिसप्तकृत्वः, एकविंशतिवारानित्यर्थः, 'आसाएमाणे'त्ति ईषत्स्वादयन् 'वीसाएमाणे'त्ति विशेषेण स्वादयन्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तामली-तापस कथा

स्वाद्यविशेषं 'परिभावेमाणे'त्ति ददत् 'परिभुंजेमाणे'त्ति भोज्यं परिभुञ्जानः, 'जिमियभुत्तुत्तरागए'त्ति 'जिमिय'त्ति प्रथमैकवचनलोपात् जेमितः–भुक्तवान् 'भुत्तोत्तर'त्ति भुक्तोत्तरं–भोजनोत्तरकालम् 'आगए'त्ति आगतः उपवेशनस्थाने भुक्तोत्तरागतः, किंभूतः सन्? इत्याह—'आयंते'त्ति आचान्तः–शुद्धोदकयोगेन 'चोक्ख'त्ति चोक्षः लेपसिक्थाद्यपनयनेनात एव परमशुचिभूत इति। 'जं जत्थ पासइ'त्ति यम्–इन्द्रादिकं यत्र–देशे काले वा पश्यति तस्य तत्र प्रणामं करोतीति वाक्यशेषो दृश्यः 'खंदं व'त्ति स्कन्दं वा–कार्त्तिकेयं 'रुद्दं वा' महादेवं 'सिवं व'त्ति व्यन्तरविशेषम्, आकारविशेषो दृश्यः, आकारविशेषधरं वा रुद्रमेव, 'वेसमणं व'त्ति उत्तरदिक्पालम् 'अज्जं व'त्ति आर्यां प्रशान्तरूपां चण्डिकां 'कोट्ट-किरियं व'त्ति चण्डिकामेव रौद्ररूपां, महिषकुट्टनक्रियावतीमित्यर्थः, 'रायं वा' इत्यत्र यावत्करणादिदं दृश्यम्—'ईसरं वा तलवरं वा माडंबियं वा कोडुंबियं वा सेट्ठिं वा' इति, 'पाणं व'त्ति चाण्डालं 'उच्चं'ति पूज्यम् 'उच्चं पणमति' अतिशयेन प्रणमतीत्यर्थः 'नीयं'ति अपूज्यं 'नीयं पणमति' अनत्यर्थं प्रणमतीत्यर्थः, एतदेव निगमयन्नाह—'जं जहे'-त्यादि यं पुरुषपश्वादिकं यथा–यत्प्रकारं पूज्यापूज्यस्वभावं तस्य–पुरुषादेः तथा–पूज्यापूज्योचिततया ॥

तए णं से तामली मोरियपुत्ते तेणं ओरालेणं विपुलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं बालतवोकम्मेणं सुक्के भुक्खे जाव धमणिसंतए जाए यावि होत्था, तए णं तस्स तामलित्तस्स बालतवसिस्स अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावर-त्तकालसमयंसि अणिच्चजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए जाव समुप्पज्जित्था–एवं खलु अहं इमेणं ओरालेणं विपुलेणं जाव उदग्गेणं उदत्तेणं उत्तमेणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं सुक्के भुक्खे जाव धम-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तामली-तापस कथा

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३५--१३७]

दीप अनुक्रम [१६१--१६३]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥१६४॥

णिसंतए जाए, तं अत्थि जा मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे ताव ता मे सेयं कल्लं जाव जलंते तामलित्तीए नगरीए दिट्ठाभट्ठे य पासंडत्थे य पुव्वसंगतिए य गिहत्थे य पच्छासंगतिए य परियायसंगतिए य आपुच्छित्ता तामलित्तीए नगरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छित्ता पाउग्गं कुंडियमादीयं उवकरणं दारुमयं च पडिग्गहियं एगंते [एडेइ] एडित्ता तामलित्तीए नगरीए उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए णियत्तणियमंडलं [आलिहइ] आलिहित्ता संलेहणाझूसणाझूसियस्स भत्तपाणपडियाइक्खियस्स पाओवगयस्स कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तएत्तिकट्टु एवं संपेहेइ एवं संपेहेत्ता कल्लं जाव जलंते जाव आपुच्छइ २ तामलित्तीए [एगंते एडेए] जाव जलंते जाव भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगमणं निवन्ने। तेणं कालेणं २ बलिचंचारायहाणी अणिंदा अपुरोहिया यावि होत्था। तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य तामलिं बालतवस्सिं ओहिणा आहोयंति २ अन्नमन्नं सद्दावेंति २ एवं वयासी–एवं खलु देवाणुप्पिया ! बलिचंचा रायहाणी अणिंदा अपुरोहिया अम्हे णं देवाणुप्पिया ! इंदाहीणा इंदाधिट्ठिया इंदाहीणकज्जा अयं च णं देवाणुप्पिया ! तामली बालतवस्सी तामलित्तीए नगरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए नियत्तणियमंडलं आलिहित्ता संलेहणाझूसणाझूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगमणं निवन्ने, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं तामलिं बालतवस्सिं बलिचंचाए रायहाणीए ठितिपकप्पं पकरावेत्तएत्तिकट्टु अन्नमन्नस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति २ बलिचंचाए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं

३ शतके उद्देशः १ तामलेरनशनंअसुरेन्द्रत्वानादरश्च सू १३५

॥१६४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तामली-तापस कथा

प्रत सूत्रांक [१३५--१३७]

दीप अनुक्रम [१६१--१६३]

निग्गच्छइ २ जेणेव रुयगिंदे उप्पायपव्वए तेणेव उवागच्छइ २ वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति जाव उत्तरवेउव्वियाइं रूवाइं विकुव्वंति, ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए जइणाए छेयाए सीहाए सिग्घाए दिव्वाए उद्धुयाए देवगतीए तिरियमसंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्झेणं जेणेव जंबूदीवे २ जेणेव भारहे वासे जेणेव तामलित्ती[ए]नगरी[ए]जेणेव तामलित्ती मोरियपुत्ते तेणेव उवागच्छंति २ त्ता तामलिस्स बालतव स्सिस्स उप्पिं सपक्खिं सपडिदिसिं ठिच्चा दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुत्तिं दिव्वं देवाणुभागं दिव्वं बत्तीस-विहं नट्टविहिं उवदंसंति २ तामलिं बालतवस्सिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेंति वंदंति नमंसंति २ एवं वदासी–एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे बलिचंचारायहाणीवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य देवाणुप्पियं वंदामो नमंसामो जाव पज्जुवासामो, अम्हाणं देवाणुप्पिया ! बलिचंचा रायहाणी अणिंदा अपुरोहिया अम्हेऽवि य णं देवाणुप्पिया ! इंदाहीणा इंदाहिट्ठिया इंदाहीणकज्जा तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! बलिचंचारायहाणिं आढाह परियाणह सुमरह अट्ठं बंधह निदानं पकरेह ठितिपकप्पं पकरेह, तते णं तुब्भे कालमासे कालं किच्चा बलिचंचारायहाणीए उववज्जिस्सह, तते णं तुब्भे अम्हं इंदा भविस्सह, तए णं तुब्भे अम्हेहिं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरिस्सह । तए णं से तामली बालतवस्सी तेहिं बलिचं-चारायहाणिवत्थव्वेहिं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य एवं वुत्ते समाणे एयमट्ठं नो आढाइ नो परियाणेइ तुसिणीए संचिट्ठइ, तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	तामली-तापस कथा

प्रत सूत्रांक [१३५--१३७]

दीप अनुक्रम [१६१--१६३]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १ ॥१६५॥

तामलिं मोरियपुत्तं दोच्चंपि तच्चंपि तिक्खुत्तो आयाहिण प्पयाहिणं करेंति २ जाव अम्हं च णं देवाणुप्पिया बलिचंचारायहाणी अणिंदा जाव ठितिपकप्पं पकरेह जाव दोच्चंपि तच्चंपि, एवं वुत्ते समाणे जाव तुसिणीए संचिट्ठइ, तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य तामलिणा बालतवस्सिणा अणाढाइज्जमाणा अपरियाणिज्जमाणा जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया ॥ (सू०१३५) ॥ तेणं कालेणं २ ईसाणे कप्पे अणिंदे अपुरोहिए यावि होत्था, तते णं से तामली बालतवस्सी बहुपडिपुन्नाइं सट्ठिं वाससहस्साइं परियागं पाउणित्ता दोमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता सवीसं भत्तसयं अणसणाए छेदित्ता कालमासे कालं किच्चा ईसाणे कप्पे ईसाणवडिंसए विमाणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंतरिये अंगुलस्स असंखेज्जभागमेत्ताए ओगाहणाए ईसाणदेविंदविरहकालसमयंसि ईसाणदेविंदत्ताए उववण्णे, तए णं से ईसाणे देविंदे देवराया अहुणोववन्ने पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभावं गच्छति, तंजहा– आहारप० जाव भासमणपज्जत्तीए, तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य तामलिं बालतवस्सिं कालगयं जाणित्ता ईसाणे य कप्पे देविंदत्ताए उववण्णं पासित्ता आसुरुत्ता कुविया चंडिक्किया मिसिमिसेमाणा बलिचंचाराय० मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति २ ताए उक्किट्ठाए जाव जेणेव भारहे वासे जेणेव तामलित्ती[ए] नयरी[ए] जेणेव तामलिस्स बालतवस्सिस्स सरीरए तेणेव उवागच्छंति २ वामे पाए सुंबेणं बंधंति २ तिक्खुत्तो मुहे उट्ठहंति २ तामलित्तीए नगरीए सिंघाडगतिगचउक्कचच्चरचउ-

३ शतके उद्देशः १ तामलेरी-शानेन्द्रत्वे-नोत्पादः सू १३६

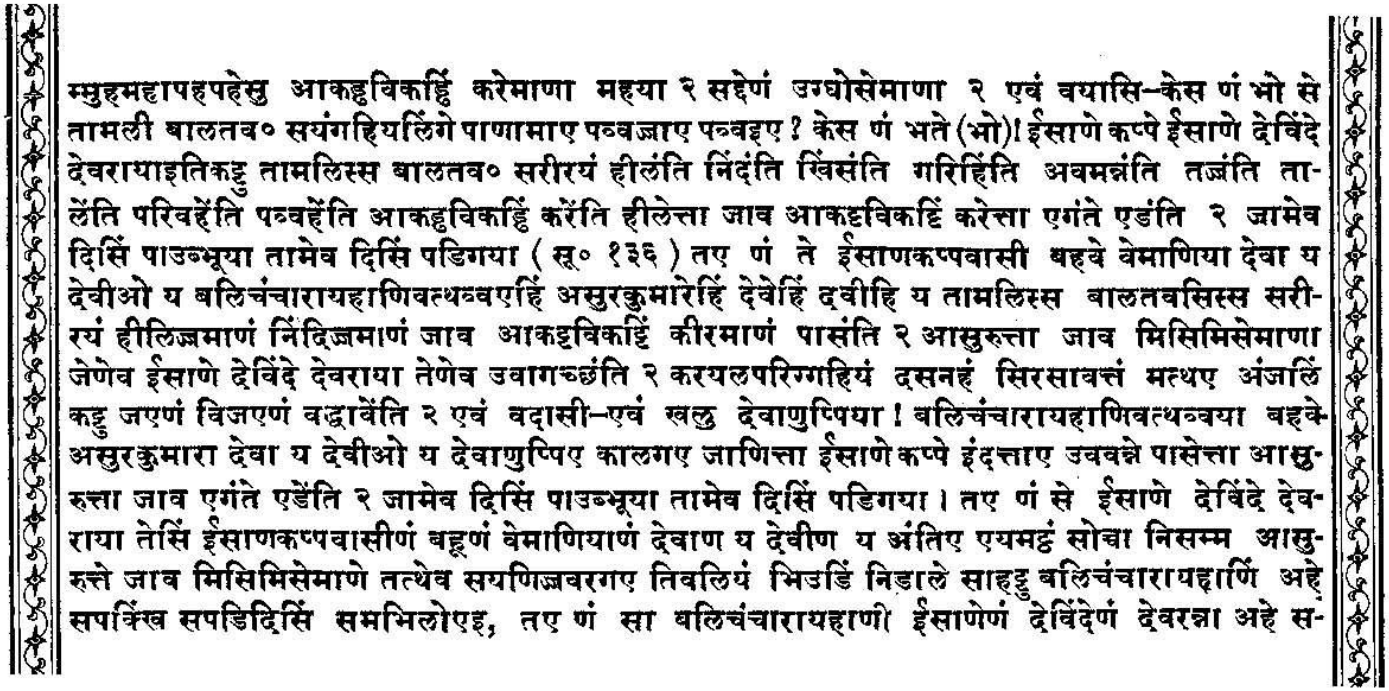
॥१६५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तामली-तापस कथा

प्रत सूत्रांक [१३५--१३७]

दीप अनुक्रम [१६१--१६३]



म्मुहमहापहपहेसु आकड्ढविकड्ढिं करेमाणा महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणा २ एवं वयासि–केस णं भो से तामली बालतव० सयंगहियलिंगे पाणामाए पव्वज्जाए पव्वइए ? केस णं भंते (भो)! ईसाणे कप्पे ईसाणे देविंदे देवराया इतिकट्टु तामलिस्स बालतव० सरीरयं हीलंति निंदंति खिंसंति गरिहिंति अवमन्नंति तज्जंति तालेंति परिवहेंति पव्वहेंति आकड्ढविकड्ढिं करेंति हीलेत्ता जाव आकड्ढविकड्ढिं करेत्ता एगंते एडंति २ जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया (सू० १३६) तए णं ते ईसाणकप्पवासी बहवे वेमाणिया देवा य देवीओ य बलिचंचारायहाणिवत्थव्वएहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य तामलिस्स बालतवसिस्स सरीरयं हीलिज्जमाणं निंदिज्जमाणं जाव आकड्ढविकड्ढिं कीरमाणं पासंति २ आसुरुत्ता जाव मिसिमिसेमाणा जेणेव ईसाणे देविंदे देवराया तेणेव उवागच्छंति २ करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति २ एवं वदासी–एवं खलु देवाणुप्पिया ! बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य देवाणुप्पिए कालगए जाणित्ता ईसाणे कप्पे इंदत्ताए उववन्ने पासेत्ता आसुरुत्ता जाव एगंते एडेंति २ जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया। तए णं से ईसाणे देविंदे देवराया तेसिं ईसाणकप्पवासीणं बहूणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य अंतिए एयमट्ठं सोचा निसम्म आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे तत्थेव सयणिज्जवरगए तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु बलिचंचारायहाणिं अहे सपक्खिं सपडिदिसिं समभिलोएइ, तए णं सा बलिचंचारायहाणी ईसाणेणं देविंदेणं देवरन्ना अहे स-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तामली-तापस कथा

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥१६६॥

पक्खिं सपडिदिसिं समभिलोइया समाणी तेणं दिव्वप्पभावेणं इंगालब्भूया मुम्मुरभूया छारियब्भूया तत्त-कवेल्लकब्भूया तत्ता समजोइभूया जाया यावि होत्था, तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असु-रकुमारा देवा य देवीओ य तं बलिचंचं रायहाणिं इंगालब्भूयं जाव समजोतिब्भूयं पासंति २ भीया तत्था तसिया उव्विग्गा संजायभया सव्वओ समंता आधावेंति परिधावेंति २ अन्नमन्नस्स कायं समतुरंगेमाणा २ चिट्ठंति, तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य ईसाणं देविंदं देव-रायं परिकुवियं जाणित्ता ईसाणस्स देविंदस्स देवरन्नो तं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवज्जुइं दिव्वं देवाणुभावं दिव्वं तेयलेस्सं असहमाणा सव्वे सपक्खिं सपडिदिसिं ठिचा करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति २ एवं वयासी–अहो णं देवाणुप्पिएहिं दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमन्नागता तं दिव्वा णं देवाणुप्पियाणं दिव्वा देविड्ढी जाव लद्धा पत्ता अभिसमन्नागया तं खामेमि णं देवाणुप्पिया ! खमंतु णं देवाणुप्पिया ! [खमंतु] मरिहंतु णं देवाणुप्पिया ! णाइ भुज्जो २ एवंकरणयाए-त्तिकट्टु एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो २ खामेंति, तते णं से ईसाणे देविंदे देवराया तेहिं बलिचंचारायहाणी-वत्थव्वेहिं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो २ खामिए समाणे तं दिव्वं देविड्ढिं जाव तेयलेस्सं पडिसाहरइ, तप्पभितिं च णं गोयमा !, ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असु-रकुमारा देवा य देवीओ य ईसाणं देविंदं देवरायं आदंति जाव पज्जुवासंति, ईसाणस्स देविंदस्स देवरन्नो

३ शतके उद्देशः १ ईशानेन्द्र-कृताऽसु-राणांशिक्षा सू १३७

॥१६६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आणाउववायवयणनिद्देसे चिट्ठंति, एवं खलु गोयमा ! ईसाणेणं देविंदेण देवरन्ना सा दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमन्नागया । ईसाणस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरन्नो केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?, गोयमा ! सातिरेगाइं दो सागरोवमाइं ठिती पन्नत्ता । ईसाणे णं भंते ! देविंदे देवराया ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं जाव कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?, गो० ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव अंतं काहेति (सू०१३७)॥

'अणिच्चजागरियं'ति अनित्यचिन्तां 'दिट्ठाभट्ठे य'त्ति दृष्टाभाषितान् 'पुव्वसंगतिए'त्ति पूर्वसङ्गतिकान् गृहस्थत्वे परिचितान् 'नियत्तणियमंडलं'ति निवर्त्तनं–क्षेत्रमानविशेषस्तत्परिमाणं निवर्त्तनिकं, निजतनुप्रमाणमित्यन्ये, 'पाओवगमणं निवण्णे'त्ति पादपोपगमनं 'निष्पन्नः' उपसंपन्न आश्रित इत्यर्थः । 'अणिंद'त्ति इन्द्राभावात् 'अपुरोहिय'त्ति शान्तिकर्मकारिरहिता, अनिन्द्रत्वादेव, पुरोहितो हीन्द्रस्य भवति तदभावे तु नासाविति, 'इंदाहीण'त्ति इन्द्राधीना इन्द्रवश्यत्वात् 'इंदाहिट्ठिय'त्ति इन्द्राधिष्ठितास्तद्युक्तत्वात्, अत एवाह—'इंदाहीणकज्ज'त्ति इन्द्राधीनकार्याः 'ठितिपकप्पं'ति स्थितौ–अवस्थाने बलिचञ्चाविषये प्रकल्पः—सङ्कल्पः स्थितिप्रकल्पोऽतस्तं 'ताए उक्किट्ठाए'इत्यादि, 'तया' विवक्षितया 'उत्कृष्टया' उत्कर्षवत्या देवगत्येति योगः 'त्वरितया' आकुल[त]या न स्वभावजयेत्यर्थः, अन्तराकूततोऽप्येषा स्यादित्यत आह—'चपलया'कायचापलोपेतया 'चण्डया'रौद्रया तथाविधोत्कर्षयोगेन 'जयिन्या' गत्यन्तरजेतृत्वात् 'छेकया' निपुणया उपायप्रवृत्तितः 'सिंहया' सिंहगतिसमानया श्रमाभावेन 'शीघ्रया' वेगवत्या 'दिव्यया' प्रधानया 'उद्धूत या' वस्त्रादीनामुद्धूतत्वेन, उद्धतया वा सदर्प्पया, 'सपक्खिं'ति समाः सर्वे पक्षाः–पार्श्वाः पूर्वापरदक्षिणोत्तरा यत्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थाने तत्सपक्षम्, इकारः प्राकृतप्रभवः, समाः–सर्वाः प्रतिदिशो यत्र तत्सप्रतिदिक्, 'बत्तीसतिविहं नट्टविहिं'ति द्वात्रिंशद्विधं नाट्यविधिं, नाट्यविषयवस्तुनो द्वात्रिंशद्विधत्वात्, तच्च यथा राजप्रश्नीयाध्ययने तथाऽवसेयमिति। 'अट्ठं बंधइ'त्ति प्रयोजननिश्चयं कुरुतेत्यर्थः 'निदानं' प्रार्थनाविशेषम्, एतदेवाह–ठिइपकप्पं'ति प्राग्वत्। 'आसुरुत्त'त्ति 'आसुरुत्ताः' शीघ्रं कोपविमूढबुद्धयः, अथवा स्फुरितकोपचिह्नाः, 'कुविय'त्ति जातकोपोदयाः 'चंडक्किय'त्ति प्रकटितरौद्ररूपाः 'मिसिमिसेमाणे'ति देदीप्यमानाः क्रोधज्वलनेनेति। 'सुंबेणं'ति रज्वा 'उट्ठहंति'त्ति 'अवष्टीव्यन्ति' निश्चीवनं कुर्वन्ति 'आकट्ठविकट्ठिं'ति आकर्षविकर्षिकां 'हीलेंति'त्ति जात्याद्युद्घाटनतः कुत्सन्ति 'निंदंति'त्ति चेतसा कुत्सन्ति 'खिंसंति'त्ति स्वसमक्षं वचनैः कुत्सन्ति 'गरहंति'त्ति लोकसमक्षं कुत्सन्त्येव 'अवमण्णंति'त्ति अवमन्यन्ते–अवज्ञाऽऽस्पदं मन्यन्ते 'तज्जिंति'त्ति अङ्गुलीशिरश्चालनेन 'तालेंति' ताडयन्ति हस्तादिना 'परिवहेंति'त्ति सर्वतो व्यथन्ते कदर्थयन्ति 'पव्वहंति'त्ति प्रव्यथन्ते प्रकृष्टव्यथामिवोत्पादयन्ति। 'तत्थेव सयणिज्जवरगए'त्ति तत्रैव शयनीयवरे स्थित इत्यर्थः, 'तिवलियं'ति त्रिवलिकां 'भृकुटिं' दृष्टिविन्यासविशेषं, 'समजोइभूय'त्ति समा ज्योतिषा–अग्निना भूता समज्योतिर्भूताः 'भीय'त्ति जातभयाः 'उत्तत्थ'त्ति 'उत्त्रस्ताः' भयाज्जातोत्कम्पादिभयभावाः 'सुसिय'त्ति शुषिताऽऽनन्दरसाः 'उव्विग्ग'त्ति तत्त्यागमानसाः, किमुक्तं भवति ?–इत्यत आह–संजातभया, 'आधावन्ति' ईषद्धावन्ति 'परिधावन्ति' सर्वतो धावन्तीति 'समतुरंगेमाण'त्ति समाश्लिष्यन्तः, अन्योऽन्यमनुप्रविशन्त इति वृद्धाः। 'नाइ सुज्जो एयं करणयाए'त्ति नैव भूय एवंकरणाय संपत्स्यामहे इति शेषः, 'आणाउववायवयणनिद्देसे'त्ति आज्ञा–कर्त्तव्यमे-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेदमित्याद्यादेशः उपपातः–सेवा वचनम्–अभियोगपूर्वक आदेशः निर्देशः–प्रश्निते कार्ये नियतार्थमुत्तरं तत एषां द्वन्द्व-स्ततस्तत्र ॥ ईशानेन्द्रवक्तव्यताप्रस्तावात्तद्वक्तव्यतासंबद्धमेवोद्देशकसमाप्तिं यावत् सूत्रवृन्दमाह—

सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरन्नो विमाणेहिंतो ईसाणस्स देविंदस्स देवरन्नो विमाणा ईसिं उच्चयरा चेव ईसिं उन्नयतरा चेव ईसाणस्स वा देविंदस्स देवरन्नो विमाणेहिंतो सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो विमाणा णीययरा चेव ईसिं निन्नयरा चेव ?, हंता ! गोयमा ! सक्कस्स तं चेव सव्वं नेयव्वं । से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! से जहानामए–कयले सिया देसे उच्चे देसे उन्नए देसे णीए देसे निन्ने, से तेणट्ठेणं गोयमा ! सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो जाव ईसिं निण्णतरा चेव । (सू. १३८)। पभू णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया ईसाणस्स देविंदस्स देवरन्नो अंतियं पाउब्भवित्तए ?, हंता पभू, से णं भंते ! किं आढायमाणे पभू अणाढायमाणे पभू ?, गोयमा ! आढायमाणे पभू नो अणाढायमाणे पभू, पभू णं भंते ! ईसाणे देविंदे देवराया सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो अंतियं पाउब्भवित्तए ?, हंता पभू, से भंते ! किं आढायमाणे पभू अणाढायमाणे पभू ?, गोयमा ! आढायमाणेवि पभू अणाढायमाणेवि पभू। पभू णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया ईसाणं देविंदं देवरायं सपक्खिं सपडिदिसिं समभिलोएत्तए जहा पादुब्भवणा तहा दोवि आलावगा नेयव्वा । पभू णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया ईसाणेणं देविंदेणं देवरन्ना सद्धिं आलावं वा संलावं वा करेत्तए ?, हंता ! पभू जहा पादुब्भवणा । अत्थि णं भंते ! तेसिं सक्कीसाणाणं देविंदाणं देवराईणं किच्चाइं करणिज्जाइं समुप्पज्जंति ?, हंता ! अत्थि, से कहमिदाणिं पकरेंति ?, गोयमा !

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३८--१४१]

दीप अनुक्रम [१६४--१६७]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-यावृत्तिः १

॥१६८॥

ताहे चेव णं से सक्के देविंदे देवराया ईसाणस्स देविंदस्स देवरन्नो अंतियं पाउब्भवति, ईसाणे णं देविंदे देवराया सक्कस्स देविंदस्स देवरायस्स अंतियं पाउब्भवइ, इति भो ! सक्का देविंदा देवराया दाहिणड्ढलोगाहिवइ, इति भो ! ईसाणा देविंदा देवराया उत्तरड्ढलोगाहिवइ, इति भो ! इति भो त्ति ते अन्नमन्नस्स किच्चाइं करणिज्जाइं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ॥ (सू० १३९) ॥ अत्थि णं भंते ! तेसिं सक्कीसाणाणं देविंदाणं देवराईणं विवादा समुप्पज्जंति ?, हंता ! अत्थि । से कहमिदाणिं पकरेंति ?, गोयमा ! ताहे चेव णं ते सक्कीसाणा देविंदा देवरायाणो सणंकुमारं देविंदं देवरायं मणसीकरेंति, तए णं से सणंकुमारे देविंदे देवराया तेहिं सक्कीसाणेहिं देविंदेहिं देवराईहिं मणसीकए समाणे खिप्पामेव सक्कीसाणाणं देविंदाणं देवराईणं अंतियं पाउब्भवति, जं से वदइ तस्स आणाउववायवयणनिद्देसे चिट्ठंति ॥ (सू० १४०) ॥ सणंकुमारे णं भंते ! देविंदे देवराया किं भवसिद्धिए अभवसिद्धिए सम्मद्दिट्ठी मिच्छदिट्ठी परित्तसंसारए अणंतसंसारए सुलभबोहिए दुलभबोहिए आराहए विराहए चरिमे अचरिमे ?, गोयमा ! सणंकुमारे णं देविंदे देवराया भवसिद्धीए नो अभवसिद्धीए, एवं सम्मद्दिट्ठी परित्तसंसारए सुलभबोहिए आराहए चरिमे पसत्थं नेयव्वं । से केणट्ठेणं भंते ! ?, गोयमा ! सणंकुमारे देविंदे देवराया बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं हियकामए सुहकामए पत्थकामए आणुकंपिए निस्सेयसिए हियसुहनिस्सेसकामए, से तेणट्ठेणं गोयमा ! सणंकुमारेणं भवसिद्धिए जाव नो अचरिमे । सणंकुमारस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरन्नो केवतियं

३ शतके उद्देशः १ सौधर्मेशान विमानानि-इन्द्रयोर्मेला लापौविवा-दनिर्णयः स-नत्कुमारे-न्द्रस्वरूपं सू १३८-१३९ १४०-१४१

॥१६८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३८--१४१] + गाथाः

दीप अनुक्रम [१६४--१६९]

कालं ठिती पन्नत्ता ?, गोयमा ! सत्त सागरोवमाणि ठिती पन्नत्ता । से णं भंते ! ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं जाव कहिं उववज्जिहिति ?, गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव अंतं करेहिति, सेवं भंते ! सेवं भंते ! २ । गाहाओ–छट्ठट्ठममासो अद्धमासो वासाइं अट्ठ छम्मासा । तीसगकुरुदत्ताणं तवभत्तपरिण्णपरियाओ ॥ १ ॥ उच्चत्तविमाणाणं पाउब्भव पेच्छणा य संलावे । किंचि विवादुप्पत्ती सणंकुमारे य भवियव्वं (त्तं) ॥ २ ॥ (सू० १४१) ॥ मोया समत्ता । तईयसए पढमो उद्देसो समत्तो ॥ ३–१ ॥

'उच्चतरा चेव'त्ति उच्चत्वं प्रमाणतः 'उन्नयतरा चेव'त्ति उन्नतत्वं गुणतः, अथवा उच्चत्वं प्रासादापेक्षम्, उन्नतत्वं तु प्रासादपीठापेक्षमिति, यच्चोच्यते–'पंचसउच्चत्तेणं आइमकप्पेसु होंति उ विमाण'त्ति तत्परिस्थूलन्यायमङ्गीकृत्यावसेयं, तेन किञ्चिदुच्चतरत्वेऽपि तेषां न विरोध इति । 'देसे उच्चे देसे उन्नए'त्ति प्रमाणतो गुणतश्चेति । 'आलावं वा संलावं व'त्ति 'आलापः' संभाषणं संलापस्तदेव पुनः पुनः । 'किच्चाइं'ति प्रयोजनानि 'करणिज्जाइं'ति विधेयानि । 'से कहमियाणिं करेंति'त्ति, अथ कथम् 'इदानीम्' अस्मिन् काले कार्यावसरलक्षणे प्रकुरुतः ?, कार्याणीति गम्यम् । 'इति भो'त्ति 'इति' एतत्कार्यमस्ति, भोशब्दश्चामन्त्रणे, 'इति भो इति भोत्ति'त्ति परस्परालापानुकरणं 'जं से वयइ तस्स आणाउववायवयणनिद्देसे'त्ति यदाज्ञादिकमसौ वदति तत्राज्ञादिके तिष्ठत इति वाक्यार्थः, तत्राज्ञादयः पूर्वं व्याख्याता एवेति । 'आराहए'त्ति ज्ञानादीनामाराधयिता 'चरमे'त्ति चरम एव भवो यस्याप्राप्तस्तिष्ठति, देवभवो वा चरमो यस्य सः, चरमभवो वा भविष्यति यस्य स चरमः । 'हियकामए'त्ति हितं–सुखनिबन्धनं वस्तु 'सुहकामए'त्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३८--१४१] + गाथाः

दीप अनुक्रम [१६४--१६९]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१

॥१६९॥

सुखं-शर्म 'पत्थकामए'त्ति पथ्यं-दुःखत्राणं, कस्मादेवमित्यत आह-'आयुकंखिए'त्ति कृपणाम्, अत एवाह-'हियसुहनिस्सेसियए'त्ति निःश्रेयसं-मोक्षस्तत्र नियुक्त इव नैःश्रेयसिकः 'हियसुहनिस्सेसकामए'त्ति हितं पथ्यसुखम्-अदुःखानुबन्धमित्यर्थः तन्निःशेषाणां-सर्वेषां कामयते-वाञ्छति यः स तथा। पूर्वोक्तार्थसङ्ग्रहाय गाथे द्वे-'छट्ठे'त्यादि, इहाद्यगाथायां पूर्वार्द्धपदानां पश्चार्द्धपदैः सह यथासङ्ख्यं सम्बन्धः कार्यः, तथाहि-तिष्यककुरुदत्तसाध्वोः क्रमेण षष्ठमष्टमं च तपः, (ग्रन्थाग्रम् ४०००) तथा मासोऽर्द्धमासश्च 'भत्तपरिण्ण'त्ति अनशनविधिः, एकस्य मासिकमनशनमन्यस्य चार्द्धमासिकमिति भावः, तथैकस्याष्ट वर्षाणि पर्यायः अन्यस्य च षण्मासा इति। द्वितीया गाथा गतार्था। 'मोया सम्मत्त'त्ति मोकाभिधाननगर्यामस्योद्देशकार्थस्य कीदृशी विकुर्वणा ? इत्येतावद्रूपस्योक्तत्वान्मोकैवायमुद्देशक उच्यते ॥ इति तृतीयशते प्रथमोद्देशकः संपूर्णः ॥ ३ । १ ॥

प्रथमोद्देशके देवानां विकुर्वणोक्ता, द्वितीये तु तद्विशेषाणामेवासुरकुमाराणां गतिशक्तिप्ररूपणायेदमाह—

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नगरे होत्था जाव परिसा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरे असुरिंदे असुरराया चमरचंचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसि चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीहिं जाव महत्तरगेहिं उवदंसेत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। भंतेत्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति २ एवं वदासी-अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे असुरकुमारा देवा परिवसंति ?, गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, जाव अहेसत्तमाए पुढवीए, सोहम्मस्स कप्पस्स

३ शतके उद्देशः १ मोकाख्ये-सनत्कुमार भव्यत्वा-दिःसू१४१

॥१६९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र तृतीय-शतके प्रथम-उद्देशकः समाप्तः

अथ तृतीय-शतके द्वितीय-उद्देशकः आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४२--१४४] + गाथा: दीप अनुक्रम [१७०--१७२]

अहे जाव अत्थि णं भंते ! ईसिपब्भाराए पुढवीए अहे असुरकुमारा देवा परिवसंति ?, णो इणट्ठे समट्ठे । से कहिं खाइ णं भंते ! असुरकुमारा देवा परिवसंति ?, गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए, एवं असुरकुमारदेववत्तव्वया जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति । अत्थि णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं अहे गतिविसए ?, हंता अत्थि, केवतियं च णं पभू ! ते असुरकुमाराणं देवाणं अहे गतिविसए पन्नत्ते ?, गोयमा ! जाव अहेसत्तमाए पुढवीए तच्चं पुण पुढविं गया य गमिस्संति य । किं पत्तियन्नं भंते ! असुरकुमारा देवा तच्चं पुढविं गया य गमिस्संति य ?, गोयमा ! पुव्ववेरियस्स वा वेदणउदीरणयाए पुव्वसंगइयस्स वा वेदणउवसामणयाए, एवं खलु असुरकुमारा देवा तच्चं पुढविं गया य गमिस्संति य । अत्थि णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं तिरियं गतिविसए पन्नत्ते ?, हंता अत्थि, केवतियं च णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं तिरियं गइविसए पन्नत्ते ?, गोयमा ! जाव असंखेज्जा दीवसमुद्दा नंदिस्सरवरं पुण दीवं गया य गमिस्संति य । किं पत्तियन्नं भंते ! असुरकुमारा देवा नंदीसरवरदीवं गया य गमिस्संति य ?, गोयमा जे इमे अरिहंता भगवंता एएसि णं जम्मणमहेसु वा निक्खमणमहेसु वा णाणुप्पयमहिमासु वा परिनिव्वाणमहिमासु वा, एवं खलु असुरकुमारा देवा नंदीसरवरदीवं गया य गमिस्संति य । अत्थि णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं उड्ढं गतिविसए ?, हंता ! अत्थि । केवतियं च णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं उड्ढं गतिविसए ?, गोयमा ! जावऽच्चुए कप्पे सोहम्मं पुण कप्पं गया य गमिस्संति य । किं पत्तियण्णं भंते ! असुर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥१७०॥

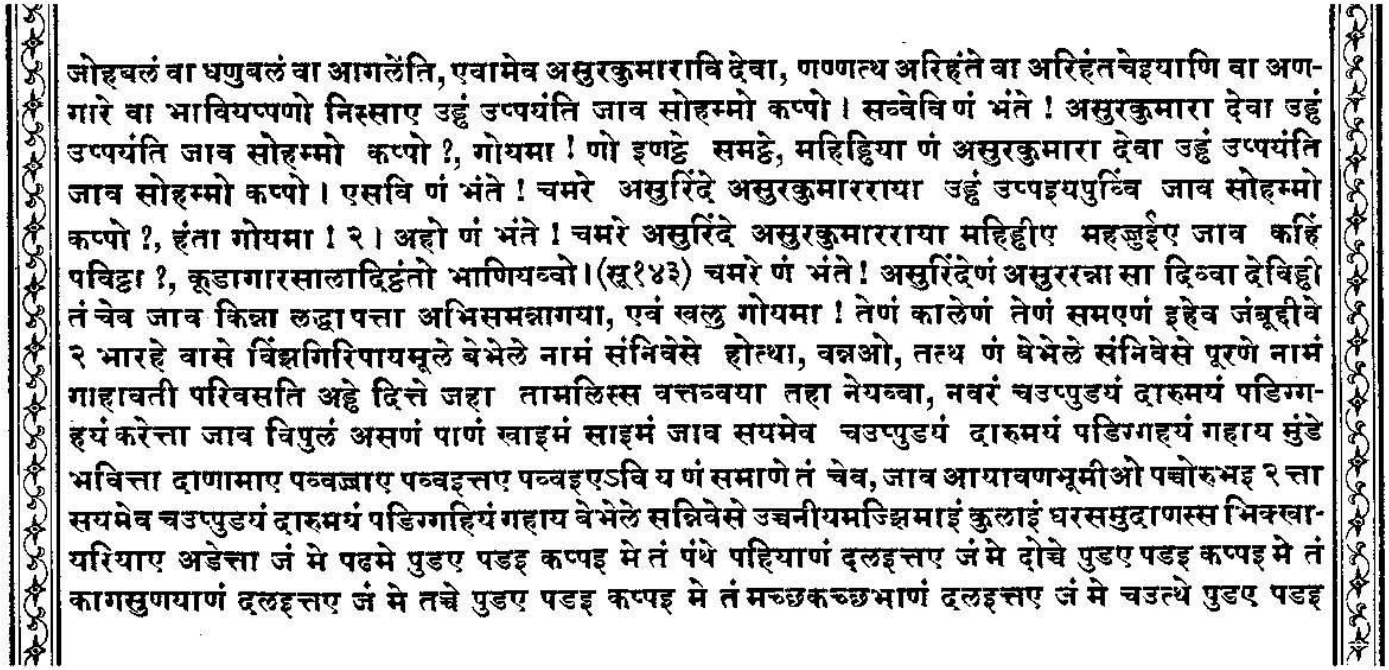
कुमारा देवा सोहम्मं कप्पं गया य गमिस्संति य ?, गोयमा ! तेसि णं देवाणं भवपच्चइयवेराणुबंधे, ते णं देवा विकुव्वेमाणा परियारेमाणा वा आयरक्खे देवे वित्तासेंति अहालहुस्सगाइं रयणाइं गहाय आयाए एगंतमंतं अवक्कमंति । अत्थि णं भंते ! तेसिं देवाणं अहालहुस्सगाइं रयणाइं ?, हंता अत्थि । से कहमियाणिं पकरेंति ?, तओ से पच्छा कायं पव्वहंति । पभू णं भंते ! ते असुरकुमारा देवा तत्थ गया चेव समाणा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरित्तए ?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ते णं तओ पडिनियत्तंति २ त्ता इहमागच्छंति २ जेणेव णं ताओ अच्छराओ आढायंति परियाणंति । पभू णं भंते ! ते असुरकुमारा देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरित्तए अहन्नं ताओ अच्छराओ नो आढायंति नो परियाणंति, णो णं पभू ते असुरकुमारा देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरित्तए, एवं खलु गोयमा ! असुरकुमारा देवा सोहम्मं कप्पं गया य गमिस्संति य । (सू१४२) केवइकालस्स णं भंते ! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मं कप्पं गया य गमिस्संति य ?, गोयमा ! अणंताहिं उस्सप्पिणीहिं अणंताहिं अवसप्पिणीहिं समतिक्कंताहिं, अत्थि णं एस भावे लोयच्छेरयभूए समुप्पज्जइ जन्नं असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो, किं निस्साए णं भंते ! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो ?, से जहानामए–इह सबरा इ वा बब्बरा इ वा टंकणा इ वा भुत्तुया इ वा पल्हया इ वा पुलिंदा इ वा एगं महं गड्डं वा खड्डं वा दुग्गं वा दरिं वा विसमं वा पव्वयं वा णीसाए सुमहल्लमवि आसबलं वा हत्थिबलं वा

३ शतके उद्देशः २ असुराणां तिर्यगादौगतिः सू१४२ चमरोत्पादे हेतवः सू १४३

॥१७०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४२--१४४] + गाथा: दीप अनुक्रम [१७०--१७२]



जोहबलं वा धणुबलं वा आगलेंति, एवामेव असुरकुमारावि देवा, णण्णत्थ अरिहंते वा अरिहंतचेइयाणि वा अणगारे वा भावियप्पणो निस्साए उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो। सव्वेवि णं भंते ! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो ?, गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, महिड्ढिया णं असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो। एसवि णं भंते ! चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया उड्ढं उप्पइयपुव्विं जाव सोहम्मो कप्पो ?, हंता गोयमा ! २। अहो णं भंते ! चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया महिड्ढीए महज्जुईए जाव कहिं पविट्ठा ?, कूडागारसालादिट्ठंतो भाणियव्वो।(सू१४३) चमरे णं भंते ! असुरिंदेणं असुररन्ना सा दिव्वा देविड्ढी तं चेव जाव किन्ना लद्धा पत्ता अभिसमन्नागया, एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबूदीवे २ भारहे वासे विंझगिरिपायमूले बेभेले नामं संनिवेसे होत्था, वन्नओ, तत्थ णं बेभेले संनिवेसे पूरणे नामं गाहावती परिवसति अड्ढे दित्ते जहा तामलिस्स वत्तव्वया तहा नेयव्वा, नवरं चउप्पुडयं दारुमयं पडिग्गहयं करेत्ता जाव विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं जाव सयमेव चउप्पुडयं दारुमयं पडिग्गहयं गहाय मुंडे भवित्ता दाणामाए पव्वज्जाए पव्वइत्तए पव्वइएऽवि य णं समाणे तं चेव, जाव आयावणभूमीओ पच्चोरुभइ २ त्ता सयमेव चउप्पुडयं दारुमयं पडिग्गहियं गहाय बेभेले सन्निवेसे उच्चनीयमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडेत्ता जं मे पढमे पुडए पडइ कप्पइ मे तं पंथे पहियाणं दलइत्तए जं मे दोच्चे पुडए पडइ कप्पइ मे तं कागसुणयाणं दलइत्तए जं मे तच्चे पुडए पडइ कप्पइ मे तं मच्छकच्छभाणं दलइत्तए जं मे चउत्थे पुडए पडइ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूरण-गाथापति एवं चमरोत्पात कथा

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४२--१४४] + गाथा: दीप अनुक्रम [१७०--१७२]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १ ॥१७१॥

कप्पइ मे तं अप्पणा आहारित्तएत्तिकट्टु एवं संपेहेइ २ कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए तं चेव निरवसेसं जाव जं मे(से)चउत्थे पुडए पडइ तं अप्पणा आहारं आहारेइ, तए णं से पूरणे बालतवस्सी तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं बालतवोकम्मेणं तं चेव जाव बेभेलस्स सन्निवेसस्स मज्झंमज्झेणं निग्गच्छति २ पाउयं कुंडियमादीयं उवकरणं चउप्पुडयं च दारुमयं पडिग्गहियं एगंतमंते एडेइ २ बेभेलस्स सन्निवेसस्स दाहिणपुरच्छिमे दिसीभागे अद्धनियत्तणियमंडलं आलिहित्ता संलेहणाझूसणाझूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगमणं निवण्णे। तेणं कालेणं तेणं समएणं अहं गोयमा! छउमत्थकालियाए एक्कारसवासपरियाए छट्ठं छट्ठेणं अनिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव सुसमारपुरे नगरे जेणेव असोयवणसंडे उज्जाणे जेणेव असोयवरपायवे जेणेव पुढविसिलापट्टओ तेणेव उवागच्छामि २ असोगवरपायवस्स हेट्ठा पुढविसिलापट्टयंसि अट्ठमभत्तं परिगिण्हामि, दोवि पाए साहट्टु वग्घारियपाणी एगपोग्गलनिविट्ठदिट्ठी अणिमिसनयणे ईसिंपब्भारगएणं काएणं अहापणिहिएहिं गत्तेहिं सव्विंदिएहिं गुत्तेहिं एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरामि। तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरचंचारायहाणी अणिंदा अपुरोहिया यावि होत्था, तए णं से पूरणे बालतवस्सी बहुपडिपुन्नाइं दुवालसवासाइं परियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेत्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता कालमासे कालं किच्चा चमरचंचाए रायहाणीए उववायसभाए जाव इंदत्ताए उववन्ने, तए णं से चमरे असुरिंदे असुरराया अहुणो-

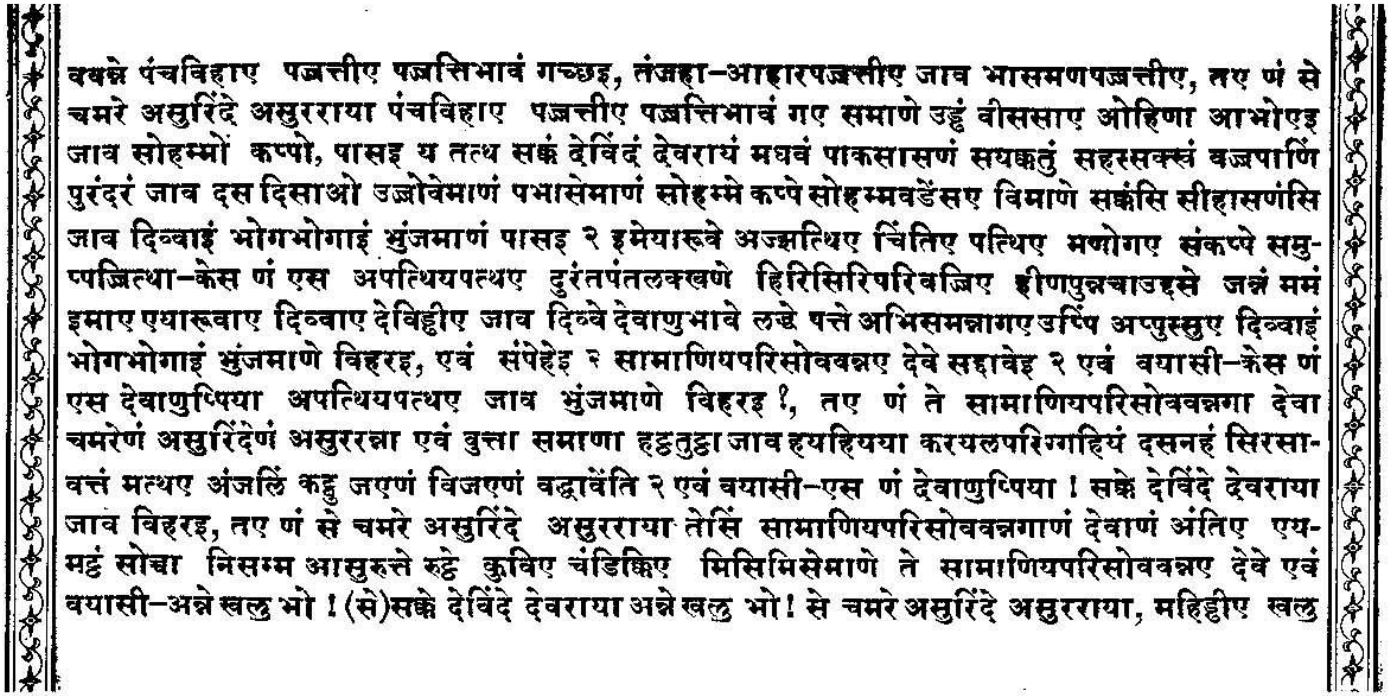
३ शतके उद्देशः २ चमरोत्पादःपूरणदीक्षा सू १४४

॥१७१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूरण-गाथापति एवं चमरोत्पात कथा

प्रत सूत्रांक [१४२--१४४] + गाथा: दीप अनुक्रम [१७०--१७२]



वयन्ने पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छइ, तंजहा–आहारपज्जत्तीए जाव भासमणपज्जत्तीए, तए णं से चमरे असुरिंदे असुरराया पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गए समाणे उड्ढं वीससाए ओहिणा आभोएइ जाव सोहम्मो कप्पो, पासइ य तत्थ सक्कं देविंदं देवरायं मघवं पाकसासणं सयक्कतुं सहस्सक्खं वज्जपाणिं पुरंदरं जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणं पभासेमाणं सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडेंसए विमाणे सक्कंसि सीहासणंसि जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणं पासइ २ इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था–केस णं एस अपत्थियपत्थए दुरंतपंतलक्खणे हिरिसिरिपरिवज्जिए हीणपुन्नचाउद्दसे जन्नं ममं इमाए एयारूवाए दिव्वाए देविड्ढीए जाव दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागए उप्पिं अप्पुस्सुए दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ, एवं संपेहेइ २ सामाणियपरिसोववन्नए देवे सद्दावेइ २ एवं वयासी–केस णं एस देवाणुप्पिया अपत्थियपत्थए जाव भुंजमाणे विहरइ?, तए णं ते सामाणियपरिसोववन्नगा देवा चमरेणं असुरिंदेणं असुररन्ना एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा जाव हयहियया करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति २ एवं वयासी–एस णं देवाणुप्पिया! सक्के देविंदे देवराया जाव विहरइ, तए णं से चमरे असुरिंदे असुरराया तेसिं सामाणियपरिसोववन्नगाणं देवाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे ते सामाणियपरिसोववन्नए देवे एवं वयासी–अन्ने खलु भो! (से)सक्के देविंदे देवराया अन्ने खलु भो! से चमरे असुरिंदे असुरराया, महिड्ढीए खलु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूरण-गाथापति एवं चमरोत्पात कथा

प्रत सूत्रांक [१४२--१४४] + गाथा: दीप अनुक्रम [१७०--१७२]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥१७२॥

से सक्के देविंदे देवराया, अप्पहिए खलु भो ! से चमरे असुरिंदे असुरराया, तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! सक्कं देविंदं देवरायं सयमेव अच्चासादेत्तएत्तिकट्टु उसिणे उसिणब्भूए यावि होत्था, तए णं से चमरे असुरिंदे असुरराया ओहिं पउंजइ २ ममं ओहिणा आभोएइ २ इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था–एवं खलु समणे भगवं महावीरे जंबूदीवे २ भारहे वासे सुसमारपुरे नगरे असोगवणसंडे उज्जाणे असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलावट्टयंसि अट्ठमभत्तं पडिगिण्हित्ता एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरति, तं सेयं खलु मे समणं भगवं महावीरं नीसाए सक्कं देविंदं देवरायं सयमेव अच्चासादेत्तएत्तिकट्टु एवं संपेहेइ २ सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता देवदूसं परिहेइ २ उववायसभाए पुरच्छिमिल्लेणं दारेणं णिग्गच्छइ, जेणेव सभा सुहम्मा जेणेव चोप्पाले पहरणकोसे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता फलिहरयणं परामुसइ २ एगे अबीए फलिहरयणमायाए महया अमरिसं वहमाणे चमरचंचाए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ २ जेणेव तिगिच्छकूडे उप्पायपव्वए तेणामेव उवागच्छइ २ त्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ २ त्ता संखेज्जाइं जोयणाइं जाव उत्तरवेउव्वियरूवं विउव्वइ २ त्ता ताए उक्किट्ठाए जाव जेणेव पुढविसिलापट्टए जेणेव मम अंतिए तेणेव उवागच्छति २ मम तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेति जाव नमंसित्ता एवं वयासी–इच्छामि णं भंते ! तुब्भं नीसाए सक्कं देविंदं देवरायं सयमेव अच्चासादित्तएत्तिकट्टु उत्तरपुरच्छिमे दिसिभागे अवक्कमइ २ वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ २ जाव दोच्चंपि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ २ एगं महं घोरं घोरागारं भीमं

३ शतके उद्देशः २ चमरोत्पादे वीरस्य शरणं सू १४४

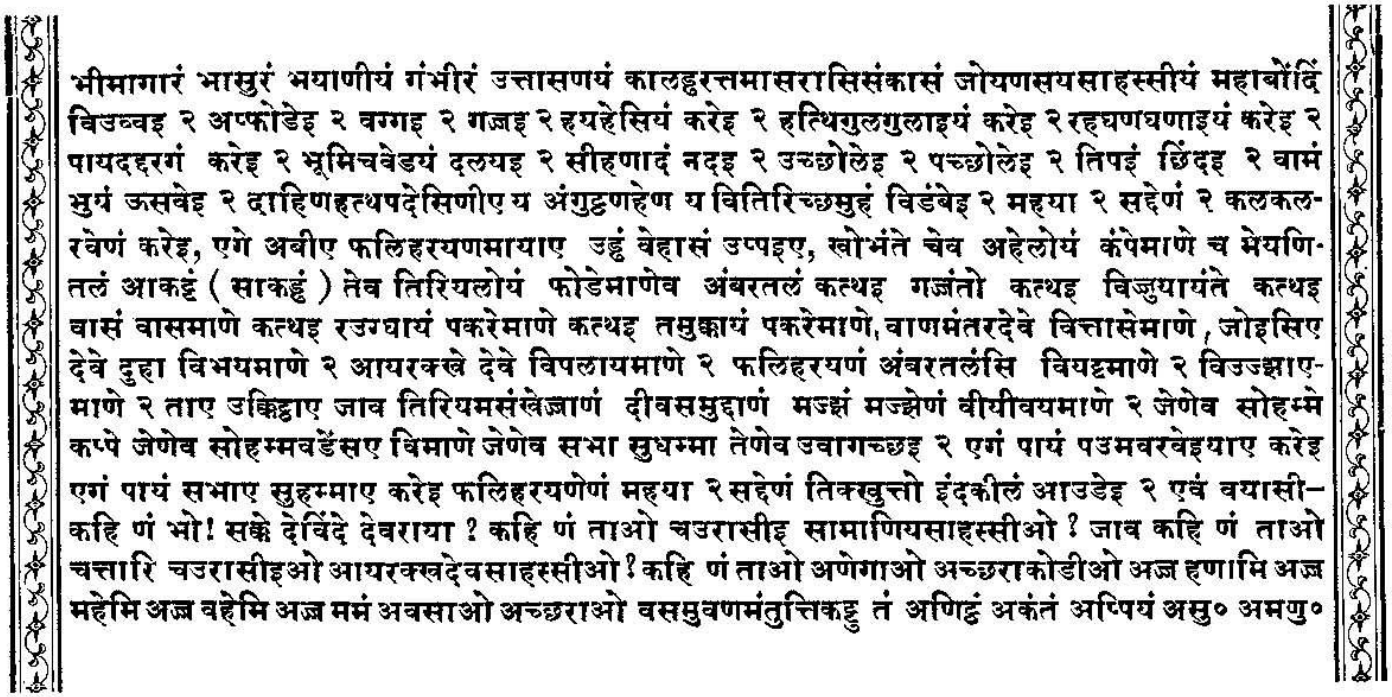
॥१७२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूरण-गाथापति एवं चमरोत्पात कथा

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४२--१४४] + गाथा: दीप अनुक्रम [१७०--१७२]



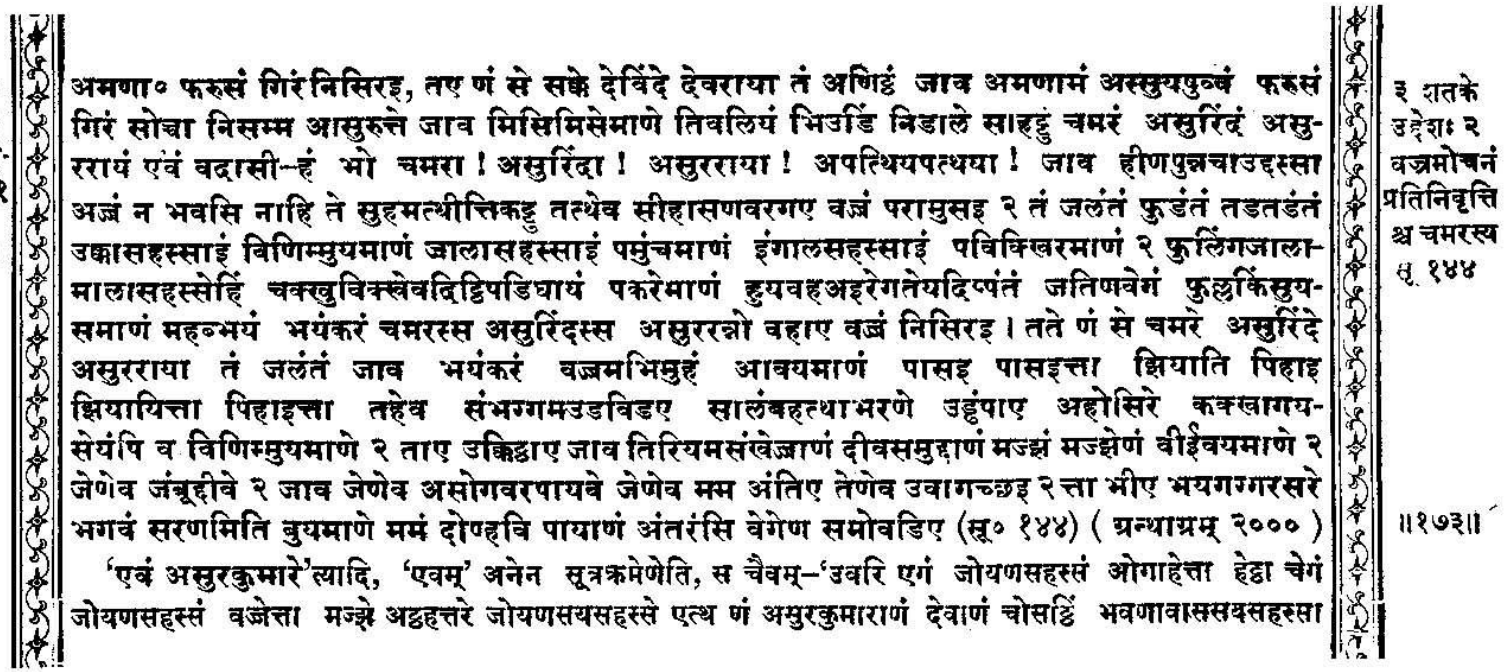
भीमागारं भासुरं भयाणीयं गंभीरं उत्तासणयं कालहरत्तमासरासिसंकासं जोयणसयसाहस्सीयं महाबोंदिं विउव्वइ २ अप्फोडेइ २ वग्गइ २ गज्जइ २ हयहेसियं करेइ २ हत्थिगुलगुलाइयं करेइ २ रहघणघणाइयं करेइ २ पायदद्दरगं करेइ २ भूमिचवेडयं दलयइ २ सीहणादं नदइ २ उच्छोलेइ २ पच्छोलेइ २ तिपइं छिंदइ २ वामं भुयं ऊसवेइ २ दाहिणहत्थपदेसिणीए य अंगुट्ठणहेण य वितिरिच्छमुहं विडंबेइ २ महया २ सद्देणं २ कलकलरवेणं करेइ, एगे अबीए फलिहरयणमायाए उड्ढं वेहासं उप्पइए, खोभंते चेव अहेलोयं कंपेमाणे च मेयणितलं आकड्ढं (साकड्ढं) तेव तिरियलोयं फोडेमाणेव अंबरतलं कत्थइ गज्जंतो कत्थइ विज्जुयायंते कत्थइ वासं वासमाणे कत्थइ रउग्घायं पकरेमाणे कत्थइ तमुक्कायं पकरेमाणे, वाणमंतरदेवे वित्तासेमाणे, जोइसिए देवे दुहा विभयमाणे २ आयरक्खे देवे विपलायमाणे २ फलिहरयणं अंबरतलंसि वियट्टमाणे २ विउज्झाएमाणे २ ताए उक्किट्ठाए जाव तिरियमसंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झं मज्झेणं वीयीवयमाणे २ जेणेव सोहम्मे कप्पे जेणेव सोहम्मवडेंसए विमाणे जेणेव सभा सुधम्मा तेणेव उवागच्छइ २ एगं पायं पउमवरवेइयाए करेइ एगं पायं सभाए सुहम्माए करेइ फलिहरयणेणं महया २ सद्देणं तिक्खुत्तो इंदकीलं आउडेइ २ एवं वयासी– कहि णं भो! सक्के देविंदे देवराया ? कहि णं ताओ चउरासीइ सामाणियसाहस्सीओ ? जाव कहि णं ताओ चत्तारि चउरासीइओ आयरक्खदेवसाहस्सीओ ? कहि णं ताओ अणेगाओ अच्छराकोडीओ अज्ज हणामि अज्ज महेमि अज्ज वहेमि अज्ज मम अवसाओ अच्छराओ वसमुवणमंतुत्तिकट्टु तं अणिट्ठं अकंतं अप्पियं असु० अमणु०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूरण-गाथापति एवं चमरोत्पात कथा

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४२--१४४] + गाथा: दीप अनुक्रम [१७०--१७२]



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥१७३॥

अमणा० फरुसं गिरं निसिरइ, तए णं से सक्के देविंदे देवराया तं अणिट्ठं जाव अमणामं अस्सुयपुव्वं फरुसं गिरं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु चमरं असुरिंदं असुररायं एवं वदासी–हं भो चमरा ! असुरिंदा ! असुरराया ! अपत्थियपत्थया ! जाव हीणपुन्नचाउद्दस्सा अज्जं न भवसि नाहि ते सुहमत्थीत्तिकट्टु तत्थेव सीहासणवरगए वज्जं परामुसइ २ तं जलंतं फुडंतं तडतडंतं उक्कासहस्साइं विणिम्मुयमाणं जालासहस्साइं पमुंचमाणं इंगालसहस्साइं पविक्खिरमाणं २ फुल्लिंगजालामालासहस्सेहिं चक्खुविक्खेवदिट्ठिपडिघायं पकरेमाणं हुयवहअइरेगतेयदिप्पंतं जतिणवेगं फुल्लकिंसुयसमाणं महब्भयं भयंकरं चमरस्स असुरिंदस्स असुररन्नो वहाए वज्जं निसिरइ । तते णं से चमरे असुरिंदे असुरराया तं जलंतं जाव भयंकरं वज्जमभिमुहं आवयमाणं पासइ पासइत्ता झियाति पिहाइ झियायित्ता पिहाइत्ता तहेव संभग्गमउडविडए सालंबहत्थाभरणे उट्ठंपाए अहोसिरे कक्खागयसेयंपि व विणिम्मुयमाणे २ ताए उक्किट्ठाए जाव तिरियमसंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झं मज्झेणं वीईवयमाणे २ जेणेव जंबूदीवे २ जाव जेणेव असोगवरपायवे जेणेव मम अंतिए तेणेव उवागच्छइ २त्ता भीए भयगग्गरसरे भगवं सरणमिति बुयमाणे ममं दोण्हवि पायाणं अंतरंसि वेगेण समोवडिए (सू० १४४) (ग्रन्थाग्रम् २०००)

'एवं असुरकुमारे'त्यादि, 'एवम्' अनेन सूत्रक्रमेणेति, स चैवम्–'उवरि एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से एत्थ णं असुरकुमाराणं देवाणं चोसट्ठिं भवणावाससयसहस्सा

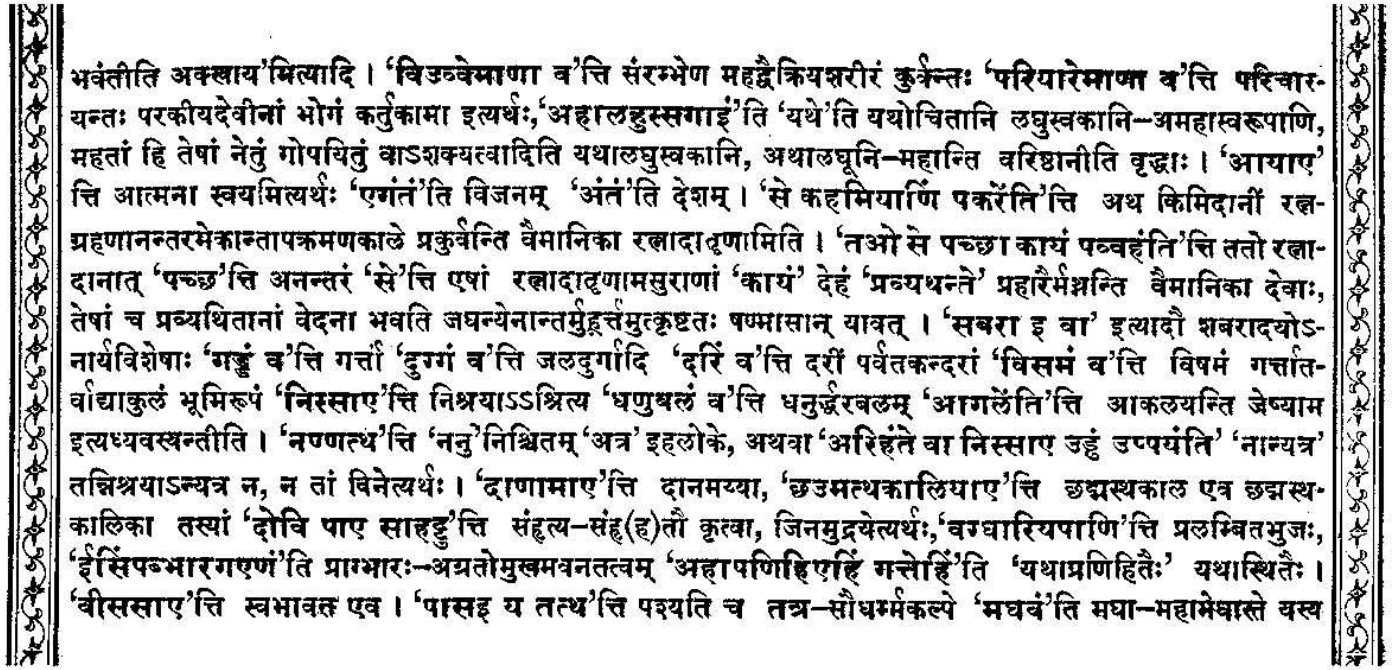
३ शतके उद्देशः २ वज्रमोचनं प्रतिनिवृत्तिश्च चमरस्य सू. १४४

॥१७३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूरण-गाथापति एवं चमरोत्पात कथा

प्रत सूत्रांक [१४२--१४४] + गाथा: दीप अनुक्रम [१७०--१७२]



भवंतीति अक्खाय'मित्यादि । 'विउव्वेमाणा व'त्ति संरम्भेण महद्वैक्रियशरीरं कुर्वन्तः 'परियारेमाणा व'त्ति परिचारयन्तः परकीयदेवीनां भोगं कर्तुकामा इत्यर्थः,'अहालहुस्सगाइं'ति 'यथे'ति यथोचितानि लघुस्वकानि–अमहास्वरूपाणि, महतां हि तेषां नेतुं गोपयितुं वाऽशक्यत्वादिति यथालघुस्वकानि, अथालघूनि–महान्ति वरिष्ठानीति वृद्धाः । 'आयाए'त्ति आत्मना स्वयमित्यर्थः 'एगंतं'ति विजनम् 'अंतं'ति देशम् । 'से कहमियाणिं पकरेंति'त्ति अथ किमिदानीं रत्नग्रहणानन्तरमेकान्तापक्रमणकाले प्रकुर्वन्ति वैमानिका रत्नादातॄणामिति । 'तओ से पच्छा कायं पव्वहंति'त्ति ततो रत्नादानात् 'पच्छ'त्ति अनन्तरं 'से'त्ति एषां रत्नादातॄणामसुराणां 'कायं' देहं 'प्रव्यथन्ते' प्रहारैर्भञ्जन्ति वैमानिका देवाः, तेषां च प्रव्यथितानां वेदना भवति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कृष्टतः षण्मासान् यावत् । 'सबरा इ वा' इत्यादौ शबरादयोऽनार्यविशेषाः 'गड्डं व'त्ति गर्त्तां 'दुग्गं व'त्ति जलदुर्गादि 'दरिं व'त्ति दरीं पर्वतकन्दरां 'विसमं व'त्ति विषमं गर्त्तादिव्याकुलं भूमिरूपं 'निस्साए'त्ति निश्रयाऽऽश्रित्य 'धणुधरं व'त्ति धनुर्द्धरबलम् 'आगलेंति'त्ति आकलयन्ति जेष्याम इत्यध्यवस्यन्तीति । 'नण्णत्थ'त्ति 'ननु'निश्चितम् 'अत्र' इहलोके, अथवा 'अरिहंते वा निस्साए उड्डं उप्पयंति' 'नान्यत्र' तन्निश्रयाऽन्यत्र न, न तां विनेत्यर्थः । 'दाणामाए'त्ति दानमय्या, 'छउमत्थकालियाए'त्ति छद्मस्थकाल एव छद्मस्थकालिका तस्यां 'दोवि पाए साहट्टु'त्ति संहृत्य–संह(ह)तौ कृत्वा, जिनमुद्रयेत्यर्थः,'वग्घारियपाणि'त्ति प्रलम्बितभुजः, 'ईसिंपब्भारगएणं'ति प्राग्भारः–अग्रतोमुखमवनतत्वम् 'अहापणिहिएहिं गत्तेहिं'ति 'यथाप्रणिहितैः' यथास्थितैः । 'वीससाए'त्ति स्वभावत एव । 'पासइ य तत्थ'त्ति पश्यति च तत्र–सौधर्म्मकल्पे 'मघवं'ति मघा–महामेघास्ते यस्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४२--१४४] + गाथा: दीप अनुक्रम [१७०--१७२]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१

॥१७४॥

वशे सन्त्यसौ मघवानतस्तं 'पागसासणं'ति पाको नाम बलवान् रिपुस्तं यः शास्ति–निराकरोत्यसौ पाकशासनोऽतस्तं 'सयक्कउं' ति शतं क्रतूनां–प्रतिमानामभिग्रहविशेषाणां श्रमणोपासकपञ्चमप्रतिमारूपाणां वा कार्त्तिकश्रेष्ठिभवापेक्षया यस्यासौ शतक्रतुरतस्तं 'सहस्सक्खं'ति सहस्रमक्ष्णां यस्यासौ सहस्राक्षोऽतस्तम्, इन्द्रस्य किल मन्त्रिणां पञ्च शतानि सन्ति, तदीयानां चाक्ष्णामिन्द्रप्रयोजनव्यापृततयेन्द्रसम्बन्धित्वेन विवक्षणात्तस्य सहस्राक्षत्वमिति 'पुरंदरं'ति असुरादिपुराणां दारणात् पुरन्दरस्तं 'जाव दस दिसाओ'त्ति इह यावत्करणात् 'दाहिणड्ढलोगाहिवइं बत्तीसविमाणसयसहस्साहिवइं एरावणवाहणं सुरिंदं अरयंबरवत्थधरं' अरजांसि च तानि अम्बरवस्त्राणि च–स्वच्छतयाऽऽकाशकल्पवसनानि अरजोऽम्बरवस्त्राणि तानि धारयति यः स तथा तम्, 'आलइयमालमउडं' आलगितमालं मुकुटं यस्य स तथा तं 'नवहेमचारुचित्तचंचलकुण्डलविलिहिज्जमाणगंडं' नवाभ्यामिव हेम्नः सत्काभ्यां चारुचित्राभ्यां चञ्चलाभ्यां कुण्डलाभ्यां विलिख्यमानौ गण्डौ यस्य स तथा तम्, इत्यादि तावद्वाच्यं यावत् 'दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए'त्ति, अथ यत्र यत्परिवारं यत्कुर्वाणं च तं पश्यति तथा दर्शयितुमाह—'अपत्थियपत्थए'त्ति अप्रार्थितं प्रार्थयते यः स तथा 'दुरंतपंतलक्खणे'त्ति दुरन्तानि–दुष्टावसानानि अत एव प्रान्तानि–अमनोज्ञानि लक्षणानि यस्य स तथा 'हीणपुन्नचाउद्दसे'त्ति हीनायां पुण्यचतुर्दश्यां जातो हीनपुण्यचातुर्दशः, किल चतुर्दशी तिथिः पुण्या जन्माश्रित्य भवति, सा च पूर्णा अत्यन्तभाग्यवतो जन्मनि भवति अत आक्रोशतोक्तं–'हीणपुण्णचाउद्दसे'त्ति। 'ममं'ति मम 'अस्याम्' एतद्रूपायां दिव्यायां देवर्द्धौ सत्यां, तथा दिव्ये देवानुभागे लब्धे प्राप्ते अभिसमन्वागते सति 'उप्पिं'ति ममैव 'अप्पुस्सुए'त्ति अल्पौत्सुक्यः 'अचासाइ-

३ शतके उद्देशः २ चमरोत्पादः सू१४४

॥१७४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्तए'त्ति 'अत्याशातयितुं' छायाया भ्रंशयितुमिति। 'उसिणे'त्ति उष्णः कोपसन्तापात्, कोपसन्तापजं चोष्णत्वं कस्यचित्स्वभावतोऽपि स्यादित्याह—'उसिणब्भूए'त्ति अस्वाभाविकमौष्ण्यं प्राप्त इत्यर्थः, 'एगे'त्ति सहायाभावात्, एकत्वं च बहुपरिवारभावेऽवि विवक्षितसहायाभावाद्व्यवहारतो भवतीत्यत आह–'अबिइए'त्ति अद्वितीयो पिण्डरूपमात्रस्यापि द्वितीयस्याभावादिति। 'एगं महं'ति एकां महतीं बोन्दीमिति योगः 'घोरं'ति हिंस्रां, कथम् ?–यतो 'घोराकारां' हिंस्राकृतिं 'भीमं'ति 'भीमां' विकरालत्वेन भयजनिकां, कथम् ?–यतो 'भीमाकारां' भयजनकाकृतिं 'भासुरं'ति भास्वरां 'भयाणीयं'ति भयमानीतं यया सा भयानीताऽतस्ताम्, अथवा भयं भयहेतुत्वादनीकं–तत्परिवारभूतमुल्कास्फुलिङ्गादि सैन्यं यस्याः सा भयानीकाऽतस्तां 'गंभीरं'ति गम्भीरां विकीर्णावयवत्वात् 'उत्तासणयं'त्ति उत्त्रासनिकां 'त्रसी उद्वेगे' इति वचनात् स्मरणेनाप्युद्वेगजनिकां 'महावोंदि'न्ति महाप्रभावतनुम् 'अप्फोडेइ'त्ति करास्फोटं करोति 'पायदद्दरगं'ति भूमेः पादेनास्फोटनम् 'उच्छोलेइ'त्ति अग्रतोमुखां चपेटां ददाति 'पच्छोलेइ'त्ति पृष्ठतोमुखां चपेटां ददाति 'तिवइं छिंदइ'त्ति मल्ल इव रङ्गभूमौ त्रिपदीच्छेदं करोति 'ऊसवेइ'त्ति उच्छ्रितं करोति 'विडंबेइ'त्ति विवृतं करोति 'साकट्ठं-तेव'त्ति समाकर्षयन्निव 'विउज्झाएमाणे'त्ति व्युद्भ्राजमानः–शोभमानो विजृम्भमाणो वा व्युद्भ्राजयन् वाऽम्बरतले परिधरत्नमिति योगः। 'इंदकील'त्ति गोपुरकपाटयुगसन्धिनिवेशस्थानम्। 'नाहि ते'त्ति नैव तव। 'फुलिंगजाले'त्यादि स्फुलिङ्गानां ज्वालानां च या मालास्तासां च यानि सहस्राणि तानि तथा तैः, चक्षुर्विक्षेपश्च–चक्षुर्भ्रमः दृष्टिप्रतिघातश्च–दर्शनाभावः चक्षुर्विक्षेपदृष्टिप्रतिघातं तदपि कुर्वत्, 'अपि' विशेषणसमुच्चये 'हुतवहे' त्यादि, हुतवहातिरेकेण यत्तेजस्तेन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१ ॥१७५॥

दीप्यमानं यत्तत्तथा 'जइणवेगं'ति जयी शेषवेगवद्वेगजयी वेगो यस्य तत्तथा 'महब्भयं'ति महता भयमस्मादिति महद्भयं, कस्मादेवमित्यत आह–'भयङ्करं' भयकर्तृ। 'झियाइ'त्ति 'ध्यायति' किमेतत् ? इति चिन्तयति, तथा 'पिहाइ'त्ति स्पृहयति' यद्येवंविधं प्रहरणं ममापि स्यादित्येवं तदभिलषति स्वस्थानगमनं वाऽभिलषति, अथवा 'पिहाइ'त्ति अक्षिणी पिधत्ते–निमीलयति, 'पिहाइ झियाइ'त्ति पूर्वोक्तमेव क्रियाद्वयं व्यत्ययेन करोति, अनेन च तस्यातिव्याकुलतोक्ता, 'तहेव'त्ति यथा ध्यातवांस्तथैव तत्क्षण एवेत्यर्थः, 'संभग्गमउडविडवे'त्ति संभग्नो मुकुटविटपः–शेखरकविस्तारो यस्य स तथा ॥ 'सालंबहत्थाभरणे'त्ति सह आलम्बेन–प्रलम्बेन वर्त्तन्ते सालम्बानि तानि हस्ताभरणानि यस्याधोमुखगमनवशादसौ सालम्बहस्ताभरणः 'कक्खागयसेयंपिव'त्ति भयातिरेकात्कक्षागतं स्वेदमिव मुञ्चयन्, देवानां किल स्वेदो न भवतीति संदर्शनार्थः पिवशब्दः 'झत्ति वेगेणं'ति वेगेन समवपतितः, कथं ?–'झगिति' झटितिकृत्वा

तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था–नो खलु पभू चमरे असुरिंदे असुरराया नो खलु समत्थे चमरे असुरिंदे असुरराया नो खलु विसए चमरस्स असुरिंदस्स असुररन्नो अप्पणो निस्साए उड्ढं उप्पइत्ता जाव सोहम्मो कप्पो, णण्णत्थ अरिहंते वा अरिहंतचेइयाणि वा अणगारे वा भावियप्पणो णीसाए उड्ढं उप्पयति जाव सोहम्मो कप्पो, तं महादुक्खं खलु तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं अणगाराण य अच्चासायणाएत्तिकट्टु ओहिं पउंजति २ ममं ओहिणा आभोएति २ हा हा

३ शतके उद्देशः २ चमरस्य वी रचरणयो-रागमः सू १४५

॥१७५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चमरोत्पात-वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१४५]

दीप अनुक्रम [१७३]

अहो हतोऽहमंसित्तिकट्टु ताए उक्किट्ठाए जाव दिव्वाए देवगतीए वज्जस्स वीहिं अणुगच्छमाणे २ तिरियमसंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्झेणं जाव जेणेव असोगवरपायवे जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ २ ममं चउरंगुलमसंपत्तं वज्जं पडिसाहरइ (सूत्रं १४५)

अवियाइं मे गोयमा ! मुट्ठिवाएणं केसग्गे वीइत्था, तए णं से सक्के देविंदे देवराया वज्जं पडिसाहरित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २ वंदइ नमंसइ २ एवं वयासी–एवं खलु भंते ! अहं तुब्भं नीसाए चमरेणं असुरिंदेणं असुररन्ना सयमेव अच्चासाइए, तए णं मए परिकुविएणं समाणेणं चमरस्स असुरिंदस्स असुररन्नो वहाए वज्जे निसट्ठे, तए णं मे इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था–नो खलु पभू चमरे असुरिंदे असुरराया तहेव जाव ओहिं पउंजामि देवाणुप्पिए ओहिणा आभोएमि हा हा अहो हतोमीतिकट्टु ताए उक्किट्ठाए जाव जेणेव देवाणुप्पिए तेणेव उवागच्छामि देवाणुप्पियाणं चउरंगुलमसंपत्तं वज्जं पडिसाहरामि वज्जपडिसाहरणट्ठयाए णं इहमागए इह समोसढे इह संपत्ते इहेव अज्ज उवसंपज्जित्ता णं विहरामि, तं खामेमि णं देवाणुप्पिया ! खमंतु णं देवाणुप्पिया ! खमंतु मरहंतु णं देवाणुप्पिया ! णाइभुज्जो एवं पकरणयाएत्तिकट्टु ममं वंदइ नमंसइ २ उत्तरपुरच्छिमं दिसीभागं अवक्कमइ २ वामेणं पादेणं तिक्खुत्तो भूमिं दलेइ २ चमरं असुरिंदं असुररायं एवं वदासी–मुक्कोऽसि णं भो चमरा ! असुरिंदा असुरराया ! समणस्स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चमरोत्पात-वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१४६]

दीप अनुक्रम [१७४]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥१७६॥

भगवओ महावीरस्स पभावेणं न हि ते दाणिं ममाओ भयमत्थीत्तिकट्टु जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ॥ (सूत्रं १४६)

'पभु'त्ति शक्तः 'समत्थे'त्ति सङ्गतप्रयोजनः 'हा हा' इत्यादेः संस्कारोऽयं–हा हा अहो ! हतोऽहमस्मीतिकृत्वा, व्यक्तं चैतत् । 'अवियाइं'ति, 'अपिच' इत्यभ्युच्चये 'आइं'ति वाक्यालङ्कारे 'मुट्ठिवाएणं'ति अतिवेगेन वज्रग्रहणाय यो मुष्टेर्बन्धने वात उत्पन्नोऽसौ मुष्टिवातस्तेन मुष्टिवातेन 'केसग्गे'त्ति केशाग्राणि 'वीइत्था' वीजितवान् । 'इहमागए'त्ति तिर्यग्लोके 'इह समोसढे'त्ति सुसमारपुरे 'इह संपत्ते'त्ति उद्याने 'इहेव'त्ति इहैवोद्याने 'अज्जे'ति 'अद्य' अस्मिन्नहनि अथवा हे आर्य !–पापकर्मबहिर्भूत ! 'आर्य !' वा स्वामिन् ! 'उवसंपज्जित्ता णं'ति 'उपसंपद्य' उपसंपन्नो भूत्वा 'विहरामि' वर्ते 'नाइभुज्जो'त्ति नैव भूयः 'एवं पकरणयाए'त्ति एवं प्रकरणतायां वर्त्तिष्य इति शेषः, 'दाणिं'ति इदानीं सम्प्रतीत्यर्थः ॥ इह लेष्ट्वादिकं पुद्गलं क्षिप्तं गच्छन्तं क्षेपकमनुष्यस्तावद्ग्रहीतुं न शक्नोतीति दृश्यते, देवस्तु किं शक्नोति ? येन शक्रेण वज्रं क्षिप्तं संहृतं च, तथा वज्रं चेद्गृहीतं चमरः कस्मान्न गृहीत इत्यभिप्रायतः प्रस्तावनोपेतं प्रश्नोत्तरमाह—

भंतेत्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदति २ एवं वदासि–देवे णं भंते ! महिड्ढीए महज्जुतीए जाव महाणुभागे पुव्वामेव पोग्गलं खिवित्ता पभू तमेव अणुपरियट्टित्ता णं गिण्हित्तए ?, हंता पभू ॥ से केणट्ठेणं भंते ! जाव गिण्हित्तए ?, गोयमा ! पोग्गले निक्खित्ते समाणे पुव्वामेव सिग्घगती भवित्ता ततो पच्छा मंदगती भवति, देवे णं महिड्ढीए पुव्विंपिय पच्छावि सीहे सीहगती चेव तुरियतुरियगती चेव, से तेणट्ठेणं

३ शतके उद्देशः २ चमरमुक्तिः सू १४६

॥१७६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चमरोत्पात-वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१४७]

दीप अनुक्रम [१७५]

जाव पभू गेण्हित्तए । जति णं भंते ! देविंदे महिड्ढीए जाव अणुपरियट्टित्ता णं गेण्हित्तए कम्हा णं भंते! सक्के णं देविंदे देवरन्ना (राया) चमरे असुरिंदे असुरराया नो संचाएति साहत्थिं गेण्हित्तए?, गोयमा ! असुरकुमाराणं देवाणं अहे गतिविसए सीहे २ चेव तुरिए २ चेव उड्ढं गतिविसए अप्पे २ चेव मंदे मंदे चेव वेमाणियाणं देवाणं उड्ढं गतिविसए सीहे २ चेव तुरिए २ चेव अहे गतिविसए अप्पे २ चेव मंदे २ चेव, जावतियं खेत्तं सक्के देविंदे देवराया उड्ढं उप्पयति एक्केणं समएणं तं वज्जे दोहिं, जं वज्जे दोहिं तं चमरे तिहिं, सव्वत्थोवे सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो उड्ढलोयकंडए अहेलोयकंडए संखेज्जगुणे, जावतियं खेत्तं चमरे असुरिंदे असुरराया अहे ओवयति एक्केणं समएणं तं सक्के दोहिं जं सक्के दोहिं तं वज्जे तिहिं, सव्वत्थोवे चमरस्स असुरिंदस्स असुररन्नो अहेलोयकंडए उड्ढलोयकंडए संखेज्जगुणे । एवं खलु गोयमा ! सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा चमरे असुरिंदे असुरराया नो संचाएति साहत्थिं गेण्हित्तए ॥ सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरन्नो उड्ढं अहे तिरियं च गतिविसयस्स कयरे२हिंतो अप्पे वा बहुए वा तुल्ले वा विसेसाहिए वा ?, गोयमा ! सव्वत्थोवं खेत्तं सक्के देविंदे देवराया अहे ओवयइ एक्केणं समएणं तिरियं संखेज्जे भागे गच्छइ उड्ढं संखेज्जे भागे गच्छइ । चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुररन्नो उड्ढं अहे तिरियं च गतिविसयस्स कयरे२हिंतो अप्पे वा बहुए वा तुल्ले वा विसेसाहिए वा ?, गोयमा ! सव्वत्थोवं खेत्तं चमरे असुरिंदे असुरराया उड्ढं उप्पयति एक्केणं समएणं तिरियं संखेज्जे भागे गच्छइ अहे संखेज्जे भागे गच्छइ, वज्जं जहा सक्कस्स देविंदस्स तहेव नवरं विसेसाहियं कायव्वं ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चमरोत्पात-वर्णनं

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १

॥१७७॥

गव्यूतत्रिभागापेक्षया

गम्यगन्त्रपेक्षया

ऊर्द्ध	२४	१२	८	०	ऊर्द्ध	तिर्यक्	अधः
तिर्यक्	१८	१०	१६	इंद्रः	यो० २	यो०^{1}ग०२	यो० १
अधः	१२	८	२४	वज्रं	यो० १	ग० ३$\frac{1}{3}$	ग० २$\frac{2}{3}$
०	शक्रः	वज्रं	चमरः	चमरः	ग० २$\frac{2}{3}$	ग० ५$\frac{1}{3}$	यो० २
ऊर्द्ध	तिर्यक्	अधः	०	०	इंद्रः	वज्रः	चमरः
२४	१८	१२	शक्रः	ऊर्द्ध	योग २	यो० १	ग० २$\frac{2}{3}$
१२	१०	८	वज्रं	तिर्यक्	यो १॥	ग० ३$\frac{1}{3}$	५$\frac{1}{3}$ त्रि-भागद्वय-न्यूनग०६
८	१६	२४	चमरः	अधः	यो० १	ग० २$\frac{2}{3}$	यो० २

सव्वत्थोवे उप्पयणकाले ओवयणकाले विसेसाहिए ॥ एयस्स णं भंते ! वज्जस्स वज्जाहिवइस्स चमरस्स य असुरिंदस्स असुररन्नो ओवयणकालस्स य उप्पयणकालस्स य कयरे२हिंतो अप्पे वा ४?, गोयमा ! सक्कस्स य उप्पयणकाले चमरस्स य ओवयणकाले एए णं दोन्निवि तुल्ला सव्वत्थोवा, सक्कस्स य ओवयणकाले वज्जस्स सक्कस्स णं भंतं ! देविंदस्स देवरन्नो ओवयणकालस्स य उप्पयणकालस्स य कयरे२हिंतो अप्पे वा बहुए वा तुल्ले वा विसेसाहिए वा ?, गोयमा ! सव्वत्थोवे सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो उड्ढं उप्पयणकाले ओवयणकाले संखेज्जगुणे ॥ चमरस्सवि जहा सक्कस्स णवरं सव्वत्थोवे ओवयणकाले उप्पयणकाले संखेज्जगुणे ॥ वज्जस्स पुच्छा, गोयमा !

३ शतके उद्देशः २ शक्रवज्रच-मराणांगति कालयोर-ल्प०सू१४७

॥१७७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चमरोत्पात-वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१४७]

दीप अनुक्रम [१७५]

य उप्पयणकाले एस णं दोण्हवि तुल्ले संखेज्जगुणे चमरस्स उ उप्पयणकाले वज्जस्स य ओवयणकाले एसणं दोण्हवि तुल्ले विसेसाहिए (सू० १४७)

'भंते !' इत्यादि, 'सीहे'त्ति शीघ्रो वेगवान्, स च शीघ्रगमनशक्तिमात्रापेक्षयाऽपि स्यादत आह–'सीहगई चेव'त्ति शिघ्रगतिरेव नाशीघ्रगतिरपि, एवंभूतश्च कायापेक्षयाऽपि स्यादत आह–'तुरिय'त्ति त्वरितः–त्वरावान्, स च गतेरन्यत्रापि स्यादित्यत आह–'तुरियगइ'त्ति 'त्वरितगतिः' मानसौत्सुक्यप्रवर्त्तितवेगवद्गतिरिति, एकार्था वैते शब्दाः 'संचाइए'त्ति शकितः 'साहत्थि'न्ति स्वहस्तेन । 'गइविसए'त्ति, इह यद्यपि गतिगोचरभूतं क्षेत्रं गतिविषयशब्देनोच्यते तथाऽपि गतिरेवेह गृह्यते, शीघ्रादिविशेषणानां क्षेत्रेऽयुज्यमानत्वादिति, 'सीहे'त्ति शीघ्रो वेगवान्, स चानैकान्तिकोऽपि स्यादत आह–'सीहे चेव'त्ति शीघ्र एव, एतदेव प्रकर्षवृत्तिप्रतिपादनाय पर्यायान्तरेणाह–त्वरितस्त्वरितश्चैवेति, 'अप्पे अप्पे चेव'त्ति अतिशयेनाल्पोऽतिस्तोक इत्यर्थः, 'मंदे मंदे चेव' त्ति अत्यन्तमन्दः, एतेन च देवानां गतिस्वरूपमात्रमुक्तम् ॥ एतस्मिंश्च गतिस्वरूपे सति शक्रवज्रचमराणामेकमाने ऊर्ध्वादौ क्षेत्रे गन्तव्ये यः कालभेदो भवति तं प्रत्येकं दर्शयन्नाह–'जावइय'मित्यादि, अथेन्द्रस्योर्ध्वाधःक्षेत्रगमने कालभेदमाह–'सव्वत्थोवे सक्कस्से'त्यादि, 'सर्वस्तोकं' स्वल्पं शक्रस्य ऊर्ध्वलोकगमने ख(क)ण्डकं–कालखण्डं ऊर्ध्वलोककण्डकं ऊर्ध्वलोकगमनेऽतिशीघ्रत्वात्तस्य, अधोलोकगमने कण्डकं–कालखण्डमधोलोककण्डकं सङ्ख्यातगुणं, ऊर्ध्वलोककण्डकापेक्षया द्विगुणमित्यर्थः, अधोलोकगमने शक्रस्य मन्दगतित्वात्, द्विगुणत्वं च 'सक्कस्स उप्पयणकाले चमरस्स य ओवयणकाले एए णं दोण्णिवि तुल्ला' तथा 'जावतियं खेत्तं चमरे इ अहे ओवयइ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चमरोत्पात-वर्णनं

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

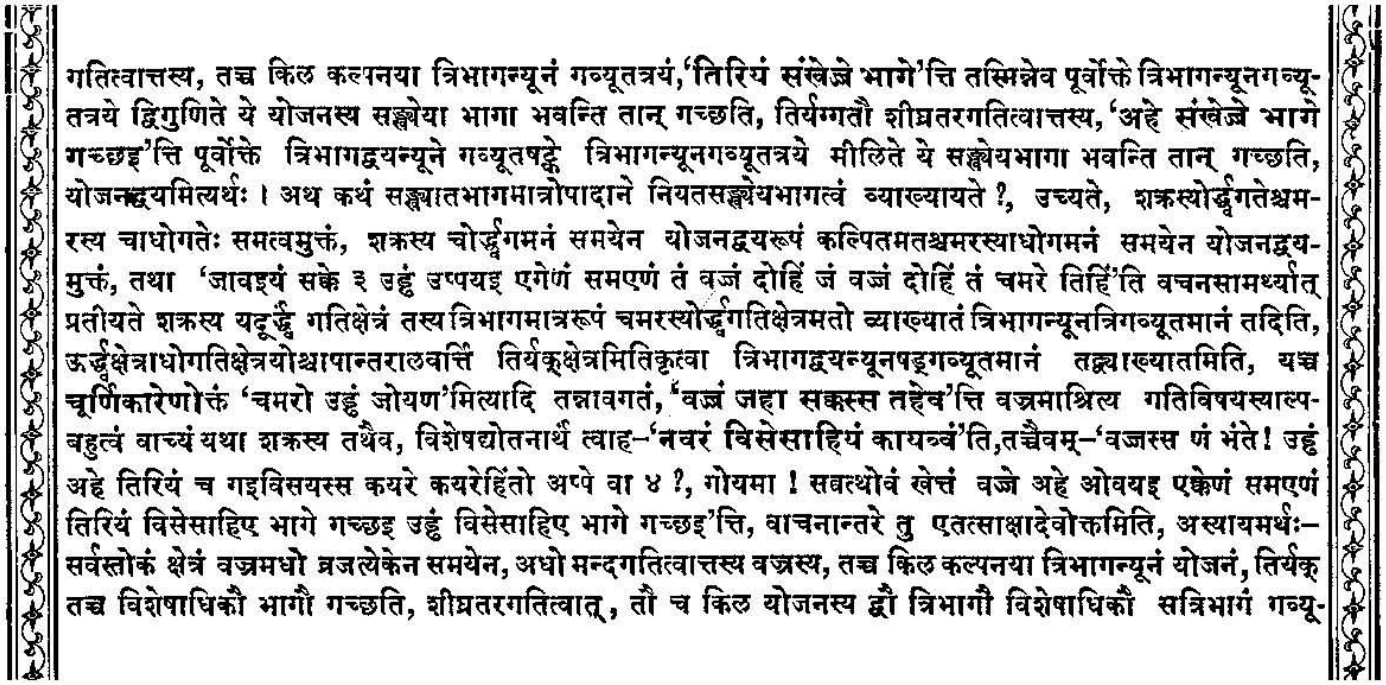
॥१७८॥

इक्केणं समएणं तं सक्को दोहिं' ति वक्ष्यमाणवचनद्वयसामर्थ्यालभ्यमिति, 'जावइय'मित्यादिसूत्रद्वयमधःक्षेत्रापेक्षं पूर्ववद्व्याख्येयं, 'एवं खलु' इत्यादि च निगमनम्। अथ शक्रादीनां प्रत्येकं गतिक्षेत्रस्याल्पबहुत्वोपदर्शनाय सूत्रत्रयमाह—'सक्कस्से'त्यादि, तत्र ऊर्द्ध्वमधस्तिर्यक् च यो गतिविषयो–गतिविषयभूतं क्षेत्रमनेकविधं तस्य मध्ये कतरो गतिविषयः कतरस्माद्गतिविषयात्सकाशादल्पादिः ? इति प्रश्नः, उत्तरं तु सर्वस्तोकमधःक्षेत्रं समयेनावपतति, अधो मन्दगतित्वाच्छक्रस्य, 'तिरियं संखेज्जे भागे गच्छइ'त्ति कल्पनया किलैकेन समयेन योजनमधो गच्छति शक्रः, तत्र च योजने द्विधाकृते द्वौ भागौ भवतः, तयोश्चैकस्मिन् द्विभागे मीलिते त्रयः सङ्ख्येया भागा भवन्ति अतस्तान् तिर्यग् गच्छति, सार्द्धं योजनमित्यर्थः, तिर्यग्गतौ तस्य शीघ्रगतित्वात्, 'उड्ढं संखेज्जे भागे गच्छइ'त्ति यान् किल कल्पनया त्रीन् द्विभागांस्तिर्यग्गच्छति तेषु चतुर्थेऽन्यस्मिन् द्विभागे मीलिते चत्वारो द्विभागरूपाः सङ्ख्यातभागाः संभवन्ति अतस्तानूर्द्ध्वं गच्छति। अथ कथं सूत्रे सङ्ख्यातभागमात्रग्रहणे सतीदं नियतभागव्याख्यानं क्रियते ?, उच्यते, 'जावइयं खेत्तं चमरे ३ अहे ओवयइ एक्केणं समएणं तं सक्के दोहिं', तथा 'सक्कस्स उप्पयणकाले चमरस्स ओवयणकाले एते णं दोन्निवि तुल्ला' इति वचनतो निश्चीयते शक्रो यावदधो द्वाभ्यां समयाभ्यां गच्छति तावदूर्द्ध्वमेकेनेति द्विगुणमधःक्षेत्रादूर्द्ध्वक्षेत्रं, एतयोश्चापान्तरालवर्त्ति तिर्यक्क्षेत्रमतोऽपान्तरालप्रमाणेनैव तेन भवितव्यमित्यधःक्षेत्रापेक्षया तिर्यक्क्षेत्रं सार्द्धं योजनं भवतीति व्याख्यातं, आह च चूर्णिकारः–'एगेणं समएणं ओवयइ अहे जोयणं एगेणेव समएणं तिरियं दिवड्ढं गच्छइ उड्ढं दो जोयणाणि सक्को'त्ति ॥ 'चमरस्स ण'मित्यादि 'सव्वत्थोवं खेत्तं चमरे ३ उड्ढं उप्पयइ एक्केणं समएणं'ति, ऊर्द्ध्वगतौ मन्द-

३ शतके उद्देशः २ शक्रवज्रचमराणांगति कालयोरल्प०सू१४७

॥१७८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



गतित्वात्तस्य, तच्च किल कल्पनया त्रिभागन्यूनं गव्यूतत्रयं,'तिरियं संखेज्जे भागे'त्ति तस्मिन्नेव पूर्वोक्ते त्रिभागन्यूनगव्यूतत्रये द्विगुणिते ये योजनस्य सङ्ख्येया भागा भवन्ति तान् गच्छति, तिर्यग्गतौ शीघ्रतरगतित्वात्तस्य,'अहे संखेज्जे भागे गच्छइ'त्ति पूर्वोक्ते त्रिभागद्वयन्यूने गव्यूतषट्के त्रिभागन्यूनगव्यूतत्रये मीलिते ये सङ्ख्येयभागा भवन्ति तान् गच्छति, योजनद्वयमित्यर्थः। अथ कथं सङ्ख्यातभागमात्रोपादाने नियतसङ्ख्येयभागत्वं व्याख्यायते ?, उच्यते, शक्रस्योर्द्ध्वगतेश्चमरस्य चाधोगतेः समत्वमुक्तं, शक्रस्य चोर्द्ध्वगमनं समयेन योजनद्वयरूपं कल्पितमतश्चमरस्याधोगमनं समयेन योजनद्वयमुक्तं, तथा 'जावइयं सक्के उड्ढं उप्पयइ एगेणं समएणं तं वज्जं दोहिं जं वज्जं दोहिं तं चमरे तिहिं'ति वचनसामर्थ्यात् प्रतीयते शक्रस्य यदूर्द्ध्वं गतिक्षेत्रं तस्य त्रिभागमात्ररूपं चमरस्योर्द्ध्वगतिक्षेत्रमतो व्याख्यातं त्रिभागन्यूनत्रिगव्यूतमानं तदिति, ऊर्द्ध्वक्षेत्राधोगतिक्षेत्रयोश्चापान्तरालवर्त्ति तिर्यक्क्षेत्रमितिकृत्वा त्रिभागद्वयन्यूनषड्गव्यूतमानं तद्व्याख्यातमिति, यच्च चूर्णिकारेणोक्तं 'चमरो उड्ढं जोयण'मित्यादि तन्नावगतं,'वज्जं जहा सक्कस्स तहेव'त्ति वज्रमाश्रित्य गतिविषयस्याल्पबहुत्वं वाच्यं यथा शक्रस्य तथैव, विशेषद्योतनार्थं त्वाह–'नवरं विसेसाहियं कायव्वं'ति,तच्चैवम्–'वज्जस्स णं भंते! उड्ढं अहे तिरियं च गइविसयस्स कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा ४ ?, गोयमा ! सव्वत्थोवं खेत्तं वज्जे अहे ओवयइ एक्केणं समएणं तिरियं विसेसाहिए भागे गच्छइ उड्ढं विसेसाहिए भागे गच्छइ'त्ति, वाचनान्तरे तु एतत्साक्षादेवोक्तमिति, अस्यायमर्थः– सर्वस्तोकं क्षेत्रं वज्रमधो व्रजत्येकेन समयेन, अधो मन्दगतित्वात्तस्य वज्रस्य, तच्च किल कल्पनया त्रिभागन्यूनं योजनं, तिर्यक् तच्च विशेषाधिकौ भागौ गच्छति, शीघ्रतरगतित्वात्, तौ च किल योजनस्य द्वौ त्रिभागौ विशेषाधिकौ सत्रिभागं गव्यू-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४७]

दीप अनुक्रम [१७५]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥१७९॥

तत्रयमित्यर्थः, तथोर्द्धं विशेषाधिकौ भागौ गच्छति, यौ किल तिर्यग्विशेषाधिकौ भागौ गच्छति तावेवोर्द्धगतौ किञ्चि-द्विशेषाधिकौ, ऊर्द्धगतौ शीघ्रतरगतित्वात्परिपूर्णं योजनमित्यर्थः, अथ कथं सामान्यतो विशेषाधिकत्वेऽभिहिते नियत-भागत्वं व्याख्यायते ?, उच्यते, 'जावइयं चमरे ३ अहे ओवयइ एक्केणं समएणं तावइयं सक्के दोहिं जं सक्के दोहिं तं वज्जे तिहिं'ति वचनसामर्थ्याच्छक्राधोगत्यपेक्षया वज्रस्य त्रिभागन्यूनाधोगतिर्लब्धेति त्रिभागन्यूनं योजनमिति सा व्याख्याता, तथा 'सक्कस्स ओवयणकाले वज्जस्स य उप्पयणकाले एस णं दोण्हवि तुल्ले' इति वचनादवसीयते यावदेकेन समयेन शक्रोऽधो गच्छति तावद्वज्रमूर्द्ध, शक्रश्चैकेनाधः किल योजनं एवं वज्रमूर्द्ध योजनमितिकृत्वोर्द्धं योजनं तस्योक्तं, ऊर्द्धाधोगत्योश्च तिर्यग्गतेरपान्तरालवर्त्तित्वात्तदपान्तरालवर्त्येव सत्रिभागगव्यूतत्रयलक्षणं तिर्यग्गतिप्रमाणमुक्तमिति॥ अन-न्तरं गतिविषयस्य क्षेत्रस्याल्पबहुत्वमुक्तं, अथ गतिकालस्य तदाह–'सक्कस्स ण'मित्यादि सूत्रत्रयं। शक्रादीनां गतिकालस्य प्रत्येकमल्पबहुत्वमुक्तं अथ परस्परापेक्षया तदाह–'एयस्स णं भंते ! वज्जस्से'त्यादि,'एए णं बिण्णिवि तुल्ल'त्ति शक्रचम-रयोः स्वस्थानगमनं प्रति वेगस्य समत्वादुत्पतनावपतनकालौ तयोस्तुल्यौ परस्परेण, 'सव्वत्थोव'त्ति वक्ष्यमाणापेक्षयेति, तथा 'सक्कस्से' त्यादौ 'एस णं दोण्हवि तुल्ले'त्ति उभयोरपि तुल्यः शक्रावपतनकालो वज्रोत्पातकालस्य तुल्यः वज्रो-त्पातकालश्च शक्रावपतनकालस्य तुल्य इत्यर्थः, 'संखेज्जगुणे'त्ति शक्रोत्पातचमरावपातकालापेक्षया, एवमनन्तरसूत्र-मपि भावनीयम् ॥

तए णं चमरे असुरिंदे असुरराया वज्जभयविप्पमुक्के सक्केणं देविंदेणं देवरन्ना महया अवमाणेणं अवमाणिए

३ शतके उद्देशः २ शक्रवज्रच-मराणांगति कालयोर-ल्प०सू१४७

॥१७९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समाणे चमरचंचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसि ओहयमणसंकप्पे चिंतासोयसागर-
संपविट्ठे करयलपल्हत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए भूमिगयदिट्ठीए झियाति, तते णं तं चमरं असुरिंदं असुररायं
सामाणियपरिसोववन्नया देवा ओहयमणसंकप्पं जाव झियायमाणं पासंति २ करयल जाव एवं वयासि–
किण्णं देवाणुप्पिया ओहयमणसंकप्पा जाव झियायह?, तए णं से चमरे असुरिंदे असुर० ते सामाणियपरि-
सोववन्नए देवे एवं वयासी–एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए समणं भगवं महावीरं नीसाए सक्के देविंदे देवराया
सयमेव अच्चासादिए, तए णं तेणं परिकुविएणं समाणेणं ममं वहाए वज्जे निसिट्ठे तं भद्दण्णं भवतु देवाणुप्पिया!
समणस्स भगवओ महावीरस्स जस्स मंम्हिमनुपभावेण अक्किट्ठे अव्वहिए अपरितावि इहमागए इह
समोसढे इह संपत्ते इहेव अज्जं उवसंपज्जित्ता णं विहरामि, तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महा-
वीरं वंदामो णमंसामो जाव पज्जुवासामोत्तिकट्टु चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीहिं जाव सव्विड्ढीए जाव
जेणेव असोगवरपायवे जेणेव मम अंतिए तेणेव उवागच्छइ २ ममं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं जाव
नमंसित्ता एवं वदासि–एवं खलु भंते ! मए तुब्भं नीसाए सक्के देविंदे देवराया सयमेव अच्चासादिए जाव
तं भद्दं णं भवतु देवाणुप्पियाणं मंम्हि जस्स अणुपभावेणं अक्किट्ठे जाव विहरामि तं खामेमि णं देवाणुप्पिया!
जाव उत्तरपुरच्छिमं दिसीभागं अवक्कमइ २ त्ता जाव बत्तीसइबद्धं नट्टविहिं उवदंसेइ २ जामेव दिसिं पाउ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चमरोत्पात-वर्णनं

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१ ॥१८०॥

ब्भूए तामेव दिसं पडिगए, एवं खलु गोयमा ! चमरेणं असुरिंदेण असुररन्ना सा दिव्वा देविड्ढी लद्धा पत्ता जाव अभिसमन्नागया, ठिती सागरोवमं, महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव अंतं काहिति ॥ (सूत्रं १४८)

'ओहयमणसंकप्पे'त्ति उपहतो–ध्वस्तो मनसः सङ्कल्पो–दर्पहर्षादिप्रभवो विकल्पो यस्य स तथा, 'चिंतासोगसागरमणुपविट्ठे'त्ति चिन्ता–पूर्वकृतानुस्मरणं शोको–दैन्यं तावेव सागर इति विग्रहोऽतस्तं 'करतलपल्हत्थमुहे'त्ति करतले पर्यस्तं–अधोमुखतया न्यस्तं मुखं येन स तथा, 'जस्समम्हि मनुपभावेणं'ति यस्य प्रभावेण इहागतोऽस्मि–भवामीति योगः, किंभूतः सन्नित्याह–'अकिट्ठे'त्ति 'अकृष्टः' अविलिखितः अक्लिष्टो वा–अबाधितो निर्वेदनमित्यर्थः, एतदेव कथमित्याह–'अव्वहिए'त्ति अव्यथितः, अताडितत्वेऽपि ज्वलनकल्पकुलिशसन्निकर्षात्परितापः स्यादतस्तं निषेधयन्नाह–'अपरिताविए'त्ति,'इहमागए'त्यादि विवक्षया पूर्ववद्व्याख्येयं,'इहेव अज्जे'त्यादि, इहैव स्थाने 'अद्य' अस्मिन्नहनि'उपसंपद्य' प्रशान्तो भूत्वा विहरामीति ॥ पूर्वमसुराणां भवप्रत्ययो वैरानुबन्धः सौधर्मगमने हेतुरुक्तः, अथ तत्रैव हेत्वन्तराभिधानायाह—

किं पत्तिए णं भंते ! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो ?, गोयमा ! तेसिणं देवाणं अहुणोववन्नगाण वा चरिमभवत्थाण वा इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जइ–अहो णं अम्हेहिं दिव्वा देविड्ढी लद्धा पत्ता जाव अभिसमन्नागया जारिसिया णं अम्हेहिं दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमन्नागया तारिसिया णं सक्केणं देविंदेणं देवरन्ना दिव्वा दिविड्ढी जाव अभिसमन्नागया जारिसिया णं सक्केणं देविंदेणं देवरन्ना जाव अभिसमन्नागया तारिसियाणं अम्हेहिवि जाव अभिसमन्नागया तं गच्छामो णं सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो अंतियं

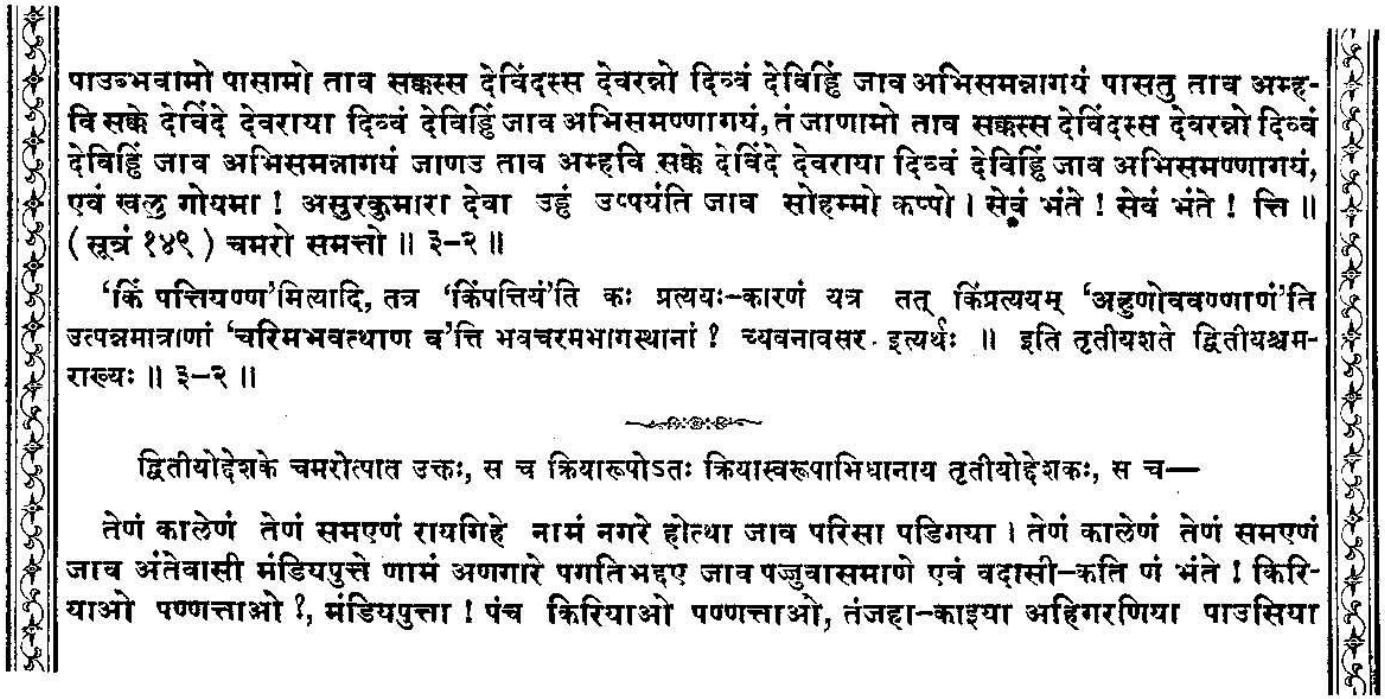
३ शतके उद्देशः२ प्रमोदात् चमरनृत्यं सू० १४८ असुराणमूर्ध्वगतिहेतुः सू १४९

॥१८०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४९]

दीप अनुक्रम [१७७]



पाउब्भवामो पासामो ताव सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो दिव्वं देविड्ढिं जाव अभिसमन्नागयं पासतु ताव अम्हवि सक्के देविंदे देवराया दिव्वं देविड्ढिं जाव अभिसमण्णागयं, तं जाणामो ताव सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो दिव्वं देविड्ढिं जाव अभिसमन्नागयं जाणउ ताव अम्हवि सक्के देविंदे देवराया दिव्वं देविड्ढिं जाव अभिसमण्णागयं, एवं खलु गोयमा ! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो। सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ॥ (सूत्रं १४९) चमरो समत्तो ॥ ३–२ ॥

'किं पत्तियण्ण'मित्यादि, तत्र 'किंपत्तियं'ति कः प्रत्ययः–कारणं यत्र तत् किंप्रत्ययम् 'अहुणोववण्णाणं'ति उत्पन्नमात्राणां 'चरिमभवत्थाण व'त्ति भवचरमभागस्थानां ? च्यवनावसर इत्यर्थः ॥ इति तृतीयशते द्वितीयश्चमराख्यः ॥ ३–२ ॥

द्वितीयोद्देशके चमरोत्पात उक्तः, स च क्रियारूपोऽतः क्रियास्वरूपाभिधानाय तृतीयोद्देशकः, स च—

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नगरे होत्था जाव परिसा पडिगया। तेणं कालेणं तेणं समएणं जाव अंतेवासी मंडियपुत्ते णामं अणगारे पगतिभद्दए जाव पज्जुवासमाणे एवं वदासी–कति णं भंते ! किरियाओ पण्णत्ताओ ?, मंडियपुत्ता ! पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तंजहा–काइया अहिगरणिया पाउसिया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र तृतीय-शतके द्वितीय-उद्देशकः समाप्तः

अथ तृतीय-शतके तृतीय-उद्देशकः आरभ्यते

मंडितपुत्रस्य प्रश्नः

प्रत सूत्रांक [१५०]

दीप अनुक्रम [१७८]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१

॥१८१॥

पारियावणिया पाणाइवायकिरिया । काइया णं भंते ! किरिया कतिविहा पण्णत्ता ?, मंडियपुत्ता ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–अणुवरयकायकिरिया य दुप्पउत्तकायकिरिया य। अहिगरणिया णं भंते! किरिया कतिविहा पण्णत्ता ?, मंडियपुत्ता ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–संजोयणाहिगरणकिरिया य निव्वत्तणाहिगरणकिरिया य । पाओसिया णं भंते ! किरिया कतिविहा पण्णत्ता ?, मंडियपुत्ता ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–जीवपाओसिया य अजीवपादोसिया य । पारियावणिया णं भंते ! किरिया कइविहा पण्णत्ता ?, मंडियपुत्ता ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–सहत्थपारियावणिया य परहत्थपारियावणिया य । पाणाइवायकिरिया णं भंते ! पुच्छा, पाणाइवायकिरिया कइविहा पण्णत्ता ?, मंडियपुत्ता ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–सहत्थपा० परहत्थपा० किरिया य ॥ (सूत्रं १५०) ॥

'तेणं कालेण'मित्यादि तत्र 'पंच किरियाओ'त्ति करणं क्रिया कर्मबन्धनिबन्धना चेष्टेत्यर्थः 'काइय'त्ति चीयत इति कायः–शरीरं तत्र भवा तेन वा निर्वृत्ता कायिकी, 'अहिगरणिय'त्ति अधिक्रियते नरकादिष्वात्माऽनेनेत्यधिकरणं–अनुष्ठानविशेषः बाह्यं वा वस्तु चक्रखड्गादि तत्र भवा तेन वा निर्वृत्तेत्याधिकरणिकी २, 'पाउसिय'त्ति प्रद्वेषो–मत्सरस्तत्र भवा तेन वा निर्वृत्ता स एव वा प्राद्वेषिकी ३, 'पारितावणिय'त्ति परितापनं परितापः–पीडाकरणं तत्र भवा तेन वा निर्वृत्ता तदेव वा पारितापनिकी ४,'पाणातिवायकिरिय'त्ति प्राणातिपातः–प्रसिद्धस्तद्विषया क्रिया प्राणातिपात एव वा क्रिया प्राणातिपातक्रिया ५ । 'अणुवरयकायकिरिया य'त्ति अनुपरतः–अविरतस्तस्य कायक्रियाऽनुपरतकायक्रिया,

३ शतके उद्देशः ३ मण्डितपुत्र प्रश्नाःक्रिया सु सू १५०

॥१८१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मंडितपुत्रस्य प्रश्न:

प्रत सूत्रांक [१५०]

दीप अनुक्रम [१७८]

इयमविरतस्य भवति, 'दुप्पउत्तकायकिरिया य'त्ति दुष्टं प्रयुक्तो दुष्प्रयुक्तः स चासौ कायश्च दुष्प्रयुक्तकायस्तस्य क्रिया दुष्प्रयुक्तकायक्रिया, अथवा दुष्टं प्रयुक्तं–प्रयोगो यस्य स दुष्प्रयुक्तस्तस्य कायक्रिया दुष्प्रयुक्तकायक्रिया, इयं प्रमत्तसंयतस्यापि भवति, विरतिमतः प्रमादे सति कायदुष्टप्रयोगस्य सद्भावात्, 'संजोयणाहिगरणकिरिया य'त्ति संयोजनं–हलगरविषकूटयन्त्राद्यङ्गानां पूर्वनिर्वर्त्तितानां मीलनं तदेवाधिकरणक्रिया संयोजनाधिकरणक्रिया, 'निव्वत्तणाहिगरणकिरिया य'त्ति, निर्वर्त्तनं–असिशक्तितोमरादीनां निष्पादनं तदेवाधिकरणक्रिया निर्वर्त्तनाधिकरणक्रिया, 'जीवपाओसिया य'त्ति जीवस्य–आत्मपरतदुभयरूपस्योपरि प्रद्वेषाद् या क्रिया प्रद्वेषकरणमेव वा, 'अजीवपाउसिया य'त्ति अजीवस्योपरि प्रद्वेषाद्या क्रिया प्रद्वेषकरणमेव वा, 'सहत्थपारितावणिया य'त्ति स्वहस्तेन स्वस्य परस्य तदुभयस्य वा परितापनाद्–असातोदीरणाद्या क्रिया परितापनाकरणमेव वा सा स्वहस्तपारितापनिकी, एवं परहस्तपारितापनिक्यपि, एवं प्राणातिपातक्रियाऽपि ॥ उक्ता क्रिया, अथ तज्जन्यं कर्म तद्वेदनां चाधिकृत्याह—

पुव्विं भंते ! किरिया पच्छा वेदणा पुव्विं वेदणा पच्छा किरिया ?, मंडियपुत्ता ! पुव्विं किरिया पच्छा वेदणा, णो पुव्विं वेदणा पच्छा किरिया ॥ (सूत्रं१५१) अत्थि णं भंते ! समणाणं निग्गंथाणं किरिया कज्जइ ?, हंता ! अत्थि । कहं णं भंते ! समणाणं निग्गंथाणं किरिया कज्जइ ?, मंडियपुत्ता ! पमायपच्चया जोगनिमित्तं च, एवं खलु समणाणं निग्गंथाणं किरिया कज्जति ॥ (सूत्रं १५२) ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मंडितपुत्रस्य प्रश्नः

प्रत सूत्रांक [१५२]

दीप अनुक्रम [१८०]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥१८२॥

'पुव्विं भंते !' इत्यादि क्रिया–करणं तज्जन्यत्वात्कर्मापि क्रिया, अथवा क्रियत इति क्रिया कर्मैव, वेदना तु कर्मणोऽनुभवः, सा च पश्चादेव भवति, कर्म्मपूर्वकत्वात्तदनुभवस्येति ॥ अथ क्रियामेव स्वामिभावतो निरूपयन्नाह—'अत्थि ण'मित्यादि, अस्त्ययं पक्षो यदुत क्रिया क्रियते–क्रिया भवति, प्रमादप्रत्ययात् यथा दुष्प्रयुक्तकायक्रियाजन्यं कर्म्म, योगनिमित्तं च यथैर्यापथिकं कर्म ॥ क्रियाधिकारादिदमाह—

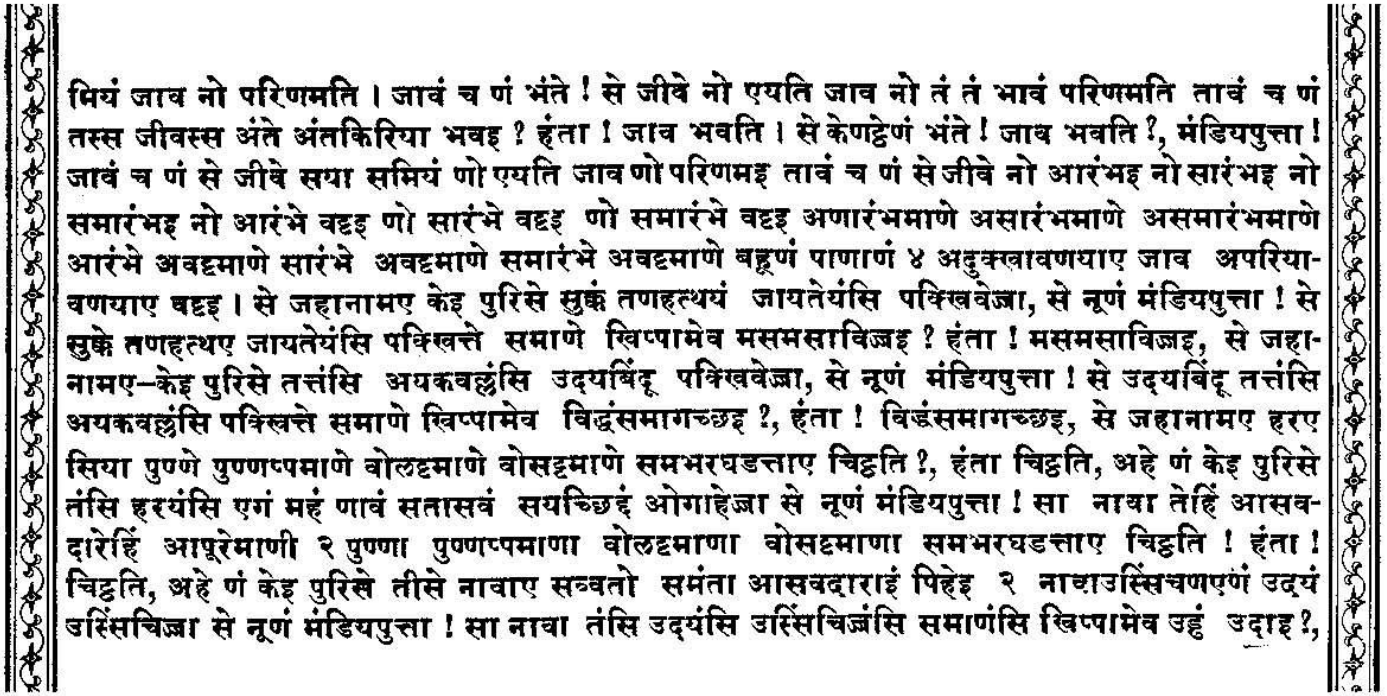
जीवे णं भंते ! सया समियं एयति वेयति चलति फंदइ घट्टइ खुब्भइ उदीरइ तं तं भावं परिणमति ?, हन्ता ! मंडियपुत्ता ! जीवे णं सया समियं एयति जाव तं तं भावं परिणमइ । जावं च णं भंते ! से जीवे सया समितं जाव परिणमइ तावं च णं तस्स जीवस्स अंते अंतकिरिया भवति ?, णो तिणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–जावं च णं से जीवे सया समितं जाव अंते अंतकिरिया न भवति ?, मंडियपुत्ता ? जावं च णं से जीवे सया समितं जाव परिणमति तावं च णं से जीवे आरंभइ सारंभइ समारंभइ आरंभे वट्टइ सारंभे वट्टइ समारंभे वट्टइ आरंभमाणे सारंभमाणे समारंभमाणे आरंभे वट्टमाणे सारंभे वट्टमाणे समारंभे वट्टमाणे बहूणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं दुक्खावणयाए सोयावणयाए जूरावणयाए तिप्पावणयाए पिट्टावणयाए परियावणयाए वट्टइ, से तेणट्ठेणं मंडियपुत्ता ! एवं वुच्चइ–जावं च णं से जीवे सया समियं एयति जाव परिणमति तावं च णं तस्स जीवस्स अंते अंतकिरिया न भवइ ॥ जीवे णं भंते ! सया समियं णो एयइ जाव नो तं तं भावं परिणमइ ?, हंता मंडियपुत्ता ! जीवे णं सया स-

३ शतके उद्देशः ३ क्रियावेदनयोः पौर्वापर्यं श्रमणानां चक्रिया सू १५१ १५२

॥१८२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मंडितपुत्रस्य प्रश्न:



खियं जाव नो परिणमति । जावं च णं भंते ! से जीवे नो एयति जाव नो तं तं भावं परिणमति तावं च णं तस्स जीवस्स अंते अंतकिरिया भवइ ? हंता ! जाव भवति । से केणट्ठेणं भंते ! जाव भवति ?, मंडियपुत्ता ! जावं च णं से जीवे सया समियं णो एयति जाव णो परिणमइ तावं च णं से जीवे नो आरंभइ नो सारंभइ नो समारंभइ नो आरंभे वट्टइ णो सारंभे वट्टइ णो समारंभे वट्टइ अणारंभमाणे असारंभमाणे असमारंभमाणे आरंभे अवट्टमाणे सारंभे अवट्टमाणे समारंभे अवट्टमाणे बहूणं पाणाणं ४ अदुक्खावणयाए जाव अपरियावणयाए वट्टइ । से जहानामए केइ पुरिसे सुक्कं तणहत्थयं जायतेयंसि पक्खिवेज्जा, से नूणं मंडियपुत्ता ! से सुक्के तणहत्थए जायतेयंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव मसमसाविज्जइ ? हंता ! मसमसाविज्जइ, से जहानामए–केइ पुरिसे तत्तंसि अयकवल्लंसि उदयबिंदू पक्खिवेज्जा, से नूणं मंडियपुत्ता ! से उदयबिंदू तत्तंसि अयकवल्लंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव विद्धंसमागच्छइ ?, हंता ! विद्धंसमागच्छइ, से जहानामए हरए सिया पुण्णे पुण्णप्पमाणे वोलट्टमाणे वोसट्टमाणे समभरघडत्ताए चिट्ठति ?, हंता चिट्ठति, अहे णं केइ पुरिसे तंसि हरयंसि एगं महं णावं सतासवं सयच्छिद्दं ओगाहेज्जा से नूणं मंडियपुत्ता ! सा नावा तेहिं आसवदारेहिं आपूरेमाणी २ पुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडत्ताए चिट्ठति ! हंता ! चिट्ठति, अहे णं केइ पुरिसे तीसे नावाए सव्वतो समंता आसवदाराइं पिहेइ २ नावाउस्सिंचणएणं उदयं उस्सिंचिज्जा से नूणं मंडियपुत्ता ! सा नावा तंसि उदयंसि उस्सिंचिज्जंसि समाणंसि खिप्पामेव उड्ढं उदाइ ?,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५३] दीप अनुक्रम [१८१]	मंडितपुत्रस्य प्रश्नः

प्रत सूत्रांक [१५३]

दीप अनुक्रम [१८१]

हंता ! उदाइज्जा, एवामेव मंडियपुत्ता ! अत्तत्तासंवुडस्स अणगारस्स ईरियासमियस्स जाव गुत्तबंभयारियस्स आउत्तं गच्छमाणस्स चिट्ठमाणस्स निसीयमाणस्स तुयट्टमाणस्स आउत्तं वत्थपडिग्गहकंबलपायपुंछणं गेण्हमाणस्स णिक्खिवमाणस्स जाव चक्खुपम्हनिवायमवि वेमाया सुहुमा ईरियावहिया किरिया कज्जइ, सा पढमसमयबद्धपुट्ठा बितियसमयवेतिया ततियसमयनिज्जरिया सा बद्धा पुट्ठा उदीरिया वेदिया निज्जिण्णा सेयकाले अकम्मं वावि भवति, से तेणट्ठेणं मंडियपुत्ता ! एवं वुच्चति–जावं च णं से जीवे सया समियं नो एयति जाव अंते अंतकिरिया भवति ॥ (सूत्रं १५३)

'जीवे ण'मित्यादि, इह जीवग्रहणेऽपि सयोग एवासौ ग्राह्यः, अयोगस्यैजनादेरसम्भवात्, 'सदा' नित्यं 'समियं'ति सप्रमाणं 'एयइ'त्ति एजते–कम्पते 'एजृ कम्पने' इति वचनात् 'वेयइ'त्ति 'व्येजते' विविधं कम्पते 'चलइ'त्ति स्थानान्तरं गच्छति 'फंदइ'त्ति 'स्पन्दते' किञ्चिच्चलति 'स्पदि किञ्चिच्चलने' इति वचनात्, अन्यमवकाशं गत्वा पुनस्तत्रैवागच्छतीत्यन्ये 'घट्टइ'त्ति सर्वदिक्षु चलति पदार्थान्तरं वा स्पृशति 'खुब्भइ'त्ति 'क्षुभ्यति' पृथिवीं प्रविशति क्षोभयति वा पृथिवीं बिभेति वा 'उदीरइ'त्ति प्राबल्येन प्रेरयति पदार्थान्तरं प्रतिपादयति वा, शेषक्रियाभेदसङ्ग्रहार्थमाह–'तं तं भावं परिणमइ'त्ति उत्क्षेपणावक्षेपणाकुञ्चनप्रसारणादिकं परिणामं यातीत्यर्थः, एषां चैजनादिभावानां क्रमभावित्वेन सामान्यतः सदेति मन्तव्यं न तु प्रत्येकापेक्षया, क्रमभाविनां युगपदभावादिति, 'तस्स जीवस्स अंते'त्ति मरणान्ते अंतकिरिय'त्ति सकलकर्मक्षयरूपा, 'आरंभइ'त्ति आरभते पृथिव्यादीनुपद्रवयति 'सारंभइ'त्ति 'संरभते' तेषु विनाशसङ्कल्पं करोति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मंडितपुत्रस्य प्रश्न:

'समारंभइ'त्ति'समारभते' तानेव परितापयति, आह च—"संकप्पो संरंभो परितावकरो भवे समारंभो। आरंभो उद्दवओ सव्वनयाणं विसुद्धाणं ॥ १ ॥" इदं च क्रियाक्रियावतः(तोः) कथञ्चिदभेद इत्यभिधानाय तयोः समानाधिकरणतः सूत्रमुक्तम्, अथ तयोः कथञ्चिद्भेदोऽप्यस्तीति दर्शयितुं पूर्वोक्तमेवार्थं व्यधिकरणत आह–'आरंभे'इत्यादि, आरम्भे–अधिकरणभूते वर्त्तते जीवः, एवं संरम्भे समारम्भे च, अनन्तरोक्तवाक्यार्थद्वयानुवादेन प्रकृतयोजनामाह–आरम्भमाणः संरभमाणः समारभमाणो जीव इत्यनेन प्रथमो वाक्यार्थोऽनूदितः आरम्भे वर्त्तमान इत्यादिना तु द्वितीयः, 'दुक्खावणयाए' इत्यादौ ताशब्दस्य प्राकृतप्रभवत्वात् 'दुःखापनायां' मरणलक्षणदुःखप्रापणायाम् अथवा इष्टवियोगादिदुःखहेतुप्रापणायां वर्त्तत इति योगः, तथा 'शोकापनायां' दैन्यप्रापणायां 'जूरावणताए'त्ति शोकातिरेकाच्छरीरजीर्णताप्रापणायां 'तिप्पावणयाए'त्ति 'तेपापनायां' 'तिपृ ष्टेपृ क्षरणार्थौ' इतिवचनात् शोकातिरेकादेवाश्रुलालादिक्षरणप्रापणायां 'पिट्टावणताए'त्ति पिट्टनप्रापणायां ततश्च परितापनायां शरीरसन्तापे वर्त्तते, क्वचित्पठ्यते 'दुक्खावणयाए'इत्यादि, तच्च व्यक्तमेव, यच्च तत्र 'किलामणयाए उद्दावणयाए' इत्यधिकमभिधीयते तत्र 'किलामणयाए'त्ति ग्लानिनयने 'उद्दावणयाए'त्ति उत्रासने॥ उक्तार्थविपर्ययमाह—

'जीवे ण'मित्यादि, 'णो एयइ'त्ति शैलेशीकरणे योगनिरोधान्नो एजत इति, एजनादिरहितस्तु नारम्भादिषु वर्त्तते तथा च न प्राणादीनां दुःखापनादिषु तथाऽपि च योगनिरोधाभिधानशुक्लध्यानेन सकलकर्मध्वंसरूपाऽन्तक्रिया भवति तत्र

१ संकल्पो (मनसो) विचारः संरम्भः परितापकरो भवेत्समारम्भः। अपद्रावयत आरम्भः सर्वेषां विशुद्धनयानाम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मंडितपुत्रस्य प्रश्नः

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥१८४॥

दृष्टान्तद्वयमाह—'से जहे'त्यादि, 'तिणहत्थयं'ति तृणपूलकं 'जायतेयंसि'त्ति वह्नौ 'मसमसाविज्जइ'त्ति शीघ्रं दह्यते, इह च दृष्टान्तद्वयस्याप्युपनयार्थः सामर्थ्यगम्यो, यथा–एवमेजनादिरहितस्य शुक्लध्यानचतुर्थभेदानलेन कर्मदाह्यदहनं स्यादिति ॥ अथ निष्क्रियस्यैवान्तक्रिया भवतीति नौदृष्टान्तेनाह—'से जहाणामए'इत्यादि, इह शब्दार्थः प्राग्वच्चवरम् 'उदाइ'त्ति उद्याति जलस्योपरि वर्त्तते 'अत्तत्तासंवुडस्स'त्ति आत्मन्यात्मना संवृतस्य प्रतिसंलीनस्येत्यर्थः, एतदेव 'इरियासमियस्से'त्यादिना प्रपञ्चयति–'आउत्तं'ति आयुक्तमुपयोगपूर्वकमित्यर्थः 'जाव चक्खुपम्हनिवायमवि'त्ति किं बहुना आयुक्तगमनादिना स्थूलक्रियाजालेनोक्तेन ? यावच्चक्षुःपक्ष्मनिपातोऽपि, प्राकृतत्वालिङ्गव्यत्ययः, उन्मेषनिमेषमात्रक्रियाऽप्यस्ति आस्तां गमनादिका तावदिति शेषः 'वेमाय'त्ति विविधमात्रा, अन्तर्मुहूर्त्तादेर्देशोनपूर्वकोटीपर्यन्तस्य क्रियाकालस्य विचित्रत्वात्, वृद्धाः पुनरेवमाहुः–यावता चक्षुषो निमेषोन्मेषमात्राऽपि क्रिया क्रियते तावताऽपि कालेन विमात्रया स्तोकमात्रयाऽपीति, क्वचिद्विमात्रेत्यस्य स्थाने 'सपेहाए'त्ति दृश्यते तत्र च 'स्वप्रेक्षया' स्वेच्छया चक्षुःपक्ष्मनिपातो न तु परकृतः 'सुहुम'त्ति सूक्ष्मबन्धादिकाला 'ईरियावहिय'त्ति ईर्यापथो–गमनमार्गस्तत्र भवा ऐर्यापथिकी केवलयोगप्रत्ययेति भावः 'किरिये'ति कर्म सातवेदनीयमित्यर्थः 'कज्जइ'त्ति क्रियते भवतीत्यर्थः, उपशान्तमोहक्षीणमोहसयोगिकेवलिलक्षणगुणस्थानकत्रयवर्त्ती वीतरागोऽपि हि सक्रियत्वात्सातवेद्यं कर्म बध्नातीति भावः, 'से'ति ईर्यापथिकी क्रिया 'पढमसमयबद्धपुट्ठ'त्ति(प्रथमसमये)बद्धा कर्मतापादनात् स्पृष्टा जीवप्रदेशैः स्पर्शनात्ततः कर्मधारये तत्पुरुषे च सति प्रथमसमयबद्धस्पृष्टा, तथा द्वितीयसमये वेदिता–अनुभूतस्वरूपा, एवं तृतीयसमये 'निर्जीर्णा' अनुभूतस्वरूपत्वेन जीवप्रदेशेभ्यः

३ शतके उद्देशः ३ क्रियायामन्तक्रियाऽभावः सू १५३

॥१८४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मंडितपुत्रस्य प्रश्न:

प्रत सूत्रांक [१५३]

दीप अनुक्रम [१८१]

परिशाटितेति, एतदेव वाक्यान्तरेणाह–सा बद्धा स्पृष्टा प्रथमे समये द्वितीये तु 'उदीरिता' उदयमुपनीता, किमुक्तं भवति ?–वेदिता, न ह्येकस्मिन् समये बन्ध उदयश्च संभवतीत्येवं व्याख्यातं, तृतीये तु निर्जीर्णा, ततश्च 'सेयकाले'त्ति एष्यत्काले 'अकम्मं वावि'त्ति अकर्माऽपि च भवति, इह च यद्यपि तृतीयेऽपि समये कर्माकर्म भवति तथाऽपि तत्क्षण एवातीतभावकर्मत्वेन द्रव्यकर्मत्वात् तृतीये निर्जीर्णं कर्मेति व्यपदिश्यते, चतुर्थादिसमयेषु त्वकर्मेति,'अत्तत्तासंवुडस्से'-त्यादिना चेदमुक्तं–यदि संयतोऽपि साश्रवः कर्म बध्नाति तदा सुतरामसंयतः, अनेन च जीवनावः कर्म्मजलपूर्यमाणत-यार्थतोऽधोनिमज्जनमुक्तं, सक्रियस्य कर्मबन्धभणनाच्चाक्रियस्य तद्विपरीतत्वात्कर्मबन्धाभाव उक्तः, तथा च जीवनावोऽनाश्र-वतायामूर्द्ध्वगमनं सामर्थ्यादुपनीतमवसेयमिति । अथ यदुक्तं श्रमणानां प्रमादप्रत्यया क्रिया भवतीति, तत्र प्रमादपरत्वं तद्विपक्षत्वात्तदितरत्वं संयतस्य कालतो निरूपयन्नाह—

पमत्तसंजयस्स णं भंते ! पमत्तसंजमे वट्टमाणस्स सव्वावि य णं पमत्तद्धा कालओ केवचिरं होइ ?, मंडियपुत्ता ! एगजीवं पडुच्च जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी, णाणाजीवे पडुच्च सव्वद्धा ॥ अप्पमत्तसंजयस्स णं भंते ! अप्पमत्तसंजमे वट्टमाणस्स सव्वावि य णं अप्पमत्तद्धा कालओ केवचिरं होइ ?, मंडियपुत्ता ! एगजीवं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्को० पुव्वकोडी देसूणा, णाणाजीवे पडुच्च सव्वद्धं, सेवं भंते ! २ त्ति भयवं मंडियपुत्ते अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥ (सूत्रं १५४) ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मंडितपुत्रस्य प्रश्नः

प्रत सूत्रांक [१५४]

दीप अनुक्रम [१८२]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥१८५॥

'सव्वावि य णं पमत्तद्ध'त्ति 'सर्वाऽपि च' सर्वकालसम्भवाऽपि च 'प्रमत्ताद्धा' प्रमत्तगुणस्थानककालः 'कालतः' प्रमत्ताद्धासमूहलक्षणं कालमाश्रित्य 'कियच्चिरं' कियन्तं कालं यावद्भवतीति प्रश्नः, ननु कालत इति वाच्यं, कियच्चिरमित्यनेनैव गतार्थत्वात्, नैवं, क्षेत्रत इत्यस्य व्यवच्छेदार्थत्वात्, भवति हि क्षेत्रतः कियच्चिरमित्यपि प्रश्नः, यथाऽवधिज्ञानं क्षेत्रतः कियच्चिरं भवति?, त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, कालतस्तु सातिरेका षट्षष्टिरिति,'एकं समयं'ति, कथम्?, उच्यते, प्रमत्तसंयमप्रतिपत्तिसमयसमनन्तरमेव मरणात्, 'देसूणा पुव्वकोडि'त्ति किल प्रत्येकमन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणे एव प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानके, ते च पर्यायेण जायमाने देशोनपूर्वकोटिं यावदुत्कर्षेण भवतः, संयमवतो हि पूर्वकोटिरेव परमायुः, स च संयममष्टासु वर्षेषु गतेष्वेव लभते, महान्ति चाप्रमत्तान्तर्मुहूर्त्तापेक्षया प्रमत्तान्तर्मुहूर्त्तानि कल्प्यन्ते, एवं चान्तर्मुहूर्त्तप्रमाणानां प्रमत्ताद्धानां सर्वासां मीलनेन देशोना पूर्वकोटी कालमानं भवति, अन्ये त्वाहुः–अष्टवर्षोनां पूर्वकोटिं यावदुत्कर्षतः प्रमत्तसंयतता स्यादिति। एवमप्रमत्तसूत्रमपि, नवरं 'जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं'ति किलाप्रमत्ताद्धायां वर्त्तमानस्यान्तर्मुहूर्तमध्ये मृत्युर्न भवतीति, चूर्णिकारमतं तु प्रमत्तसंयतवर्जः सर्वोऽपि सर्वविरतोऽप्रमत्त उच्यते, प्रमादाभावात्, स चोपशमश्रेणीं प्रतिपद्यमानो मुहूर्त्ताभ्यन्तरे कालं कुर्वन् जघन्यकालो लभ्यत इति, देशोनपूर्वकोटी तु केवलिनमाश्रित्येति॥ 'णाणाजीवे पडुच्च सव्वद्ध' मित्युक्तं, अथ सर्वाद्धाभाविभावान्तरप्ररूपणायाह—

भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ त्ता एवं वयासी–कम्हा णं भंते ! लवणसमुद्दे चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुन्नमासिणीसु अतिरेयं वड्ढति वा हायति वा?, जहा जीवाभिगमे लवणसमुद्दवत्तव्वया

३ शतके उद्देशः ३ मण्डितपुत्र प्रश्नःप्रमत्ता प्रमत्तकालः सू १५४

॥१८५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मंडितपुत्रस्य प्रश्न:

नेयव्वा जाव लोयट्ठिती, जण्णं लवणसमुद्दे जंबूदीवं २ णो उप्पीलेति णो चेव णं एगोदगं करेइ(लोयट्ठिई)लोयाणुभावे। सेवं भंते ! २त्ति जाव विहरति ॥ किरिया समत्ता (सूत्रं १५५) ॥ ततियस्स सयस्स तइओ॥ ३–३ ॥

'भन्ते'त्ति इत्यादि,'अतिरेगंति' तिथ्यन्तरापेक्षया अधिकतरमित्यर्थः'लवणसमुद्दवत्तव्वया नेयव्व'त्ति जीवाभिगमोक्ता, कियदूरं यावदित्याह-'जाव लोयट्ठिई'त्यादि, सा चैवमर्थतः–कस्माद् भदन्त ! लवणसमुद्रश्चतुर्दश्यादिष्वतिरेकेण वर्द्धते वा हीयते वा?, इह प्रश्ने उत्तरं–लवणसमुद्रस्य मध्यभागे दिक्षु चत्वारो महापातालकलशा योजनलक्षप्रमाणाः सन्ति, तेषां चाधस्तने त्रिभागे वायुर्मध्यमे वायूदके उपरितने तूदकमिति, तथाऽन्ये क्षुद्रपातालकलशा योजनसहस्रप्रमाणाश्चतुरशीत्युत्तराष्टशताधिकसप्तसहस्रसङ्ख्या वाय्वादियुक्तत्रिभागवन्तः सन्ति, तदीयवातविक्षोभवशाज्जलवृद्धिहानी अष्टम्यादिषु स्यातां, तथा लवणशिखाया दशयोजनानां सहस्राणि विष्कम्भः षोडशोच्छ्रयो योजनार्द्धमुपरि वृद्धिहानी इत्यादि, अथ कस्माल्लवणो जम्बूद्वीपं नोत्प्लावयति ?, अर्हदादिप्रभावाल्लोकस्थितिर्वैषा इति, एतदेवाह–'लोयट्ठिइ'त्ति लोकव्यवस्था 'लोयाणुभावे'त्ति लोकप्रभाव इति ॥ तृतीयशते तृतीयोद्देशकः ॥ ३–३ ॥

अनन्तरोद्देशके क्रियोक्ता, सा च ज्ञानवतां प्रत्यक्षेति तदेव क्रियाविशेषमाश्रित्य विचित्रतया दर्शयंश्चतुर्थोद्देशकमाह, तस्य चेदं सूत्रम्—

अणगारे णं भंते ! भावियप्पा देवं विउव्वियसमुग्घाएणं समोहयं जाणरूवेणं जायमाणं जाणइ पासइ ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र तृतीय-शतके तृतीय-उद्देशकः समाप्तः

अथ तृतीय-शतके चतुर्थ-उद्देशकः आरभ्यते

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१ ॥१८६॥

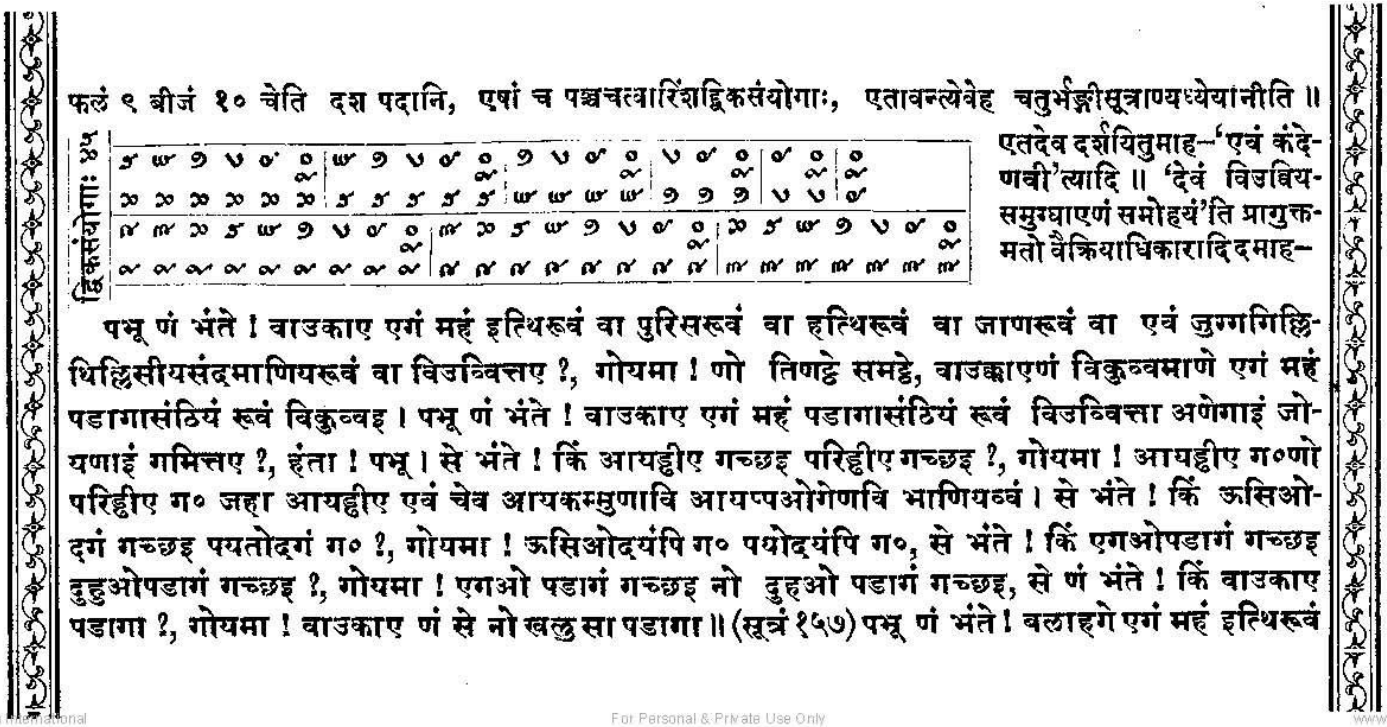
गोयमा ! अत्थेगइए देवं पासइ णो जाणं पासइ १ अत्थेगइए जाणं पासइ नो देवं पासइ २ अत्थेगइए देवंपि पासइ जाणंपि पासइ ३ अत्थेगइए नो देवं पासइ नो जाणं पासइ ४ ॥ अणगारे णं भंते ! भावियप्पा देविं वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहयं जाणरूवेणं जायमाणं जाणइ पासइ ?, गोयमा ! एवं चेव ॥ अणगारे णं भंते ! भावियप्पा देवं सदेवीयं वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहयं जाणरूवेणं जायमाणं जाणइ पासइ ?, गोयमा ! अत्थेगइए देवं सदेवीयं पासइ नो जाणं पासइ, एएणं अभिलावेणं चत्तारि भंगा ४ ॥ अणगारे णं भंते ! भावियप्पा रुक्खस्स किं अंतो पासइ बाहिं पासइ चउभंगो । एवं किं मूलं पासइ कंदं पा० ?, चउभंगो, मूलं पा० खंधं पा० चउभंगो, एवं मूलेणं बीजं संजोएयव्वं, एवं कंदेणवि समं संजोएयव्वं जाव बीयं, एवं जाव पुप्फेण समं बीयं संजोएयव्वं ॥ अणगारे णं भंते ! भावियप्पा रुक्खस्स किं फलं पा०बीयं पा० ?, चउभंगो ॥ (सू०१५६)

'अणगारे ण'मित्यादि, तत्र 'भावियप्प'त्ति भावितात्मा, संयमतपोभ्यामेवंविधानामनगाराणां हि प्रायोऽवधिज्ञानादिलब्धयो भवन्तीतिकृत्वा भावितात्मेत्युक्तं, 'विउव्वियसमुग्घाएणं समोहयं'ति विहितोत्तरवैक्रियशरीरमित्यर्थः 'जाणरूवेणं'ति यानप्रकारेण शिबिकाद्याकारवता वैक्रियविमानेनेत्यर्थः 'जायमाणं'ति यान्तं गच्छन्तं 'जाणइ'त्ति ज्ञानेन 'पासइ' त्ति दर्शनेन ?, उत्तरमिह चतुर्भङ्गी, विचित्रत्वादवधिज्ञानस्येति । 'अंतो'त्ति मध्यं काष्ठसारादि 'बाहिं'ति बहिर्वर्त्ति त्वक्पत्रसञ्चयादि, 'एवं मूलेण'मित्यादि, 'एव'मिति मूलकन्दसूत्राभिलापेन मूलेन सह कन्दादिपदानि वाच्यानि यावद्बीजपदं, तत्र मूलं १ कन्दः २ स्कन्धः ३ त्वक् ४ शाखा ५ प्रवालं ६ पत्रं ७ पुष्पं ८

३ शतके उद्देशः ४ देवदेवीयानवृक्षमूलादिः ज्ञानदर्शने साधोः सू १५६

॥१८६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



फलं ९ बीजं १० चेति दश पदानि, एषां च पञ्चचत्वारिंशद्द्विकसंयोगाः, एतावन्त्येवेह चतुर्भङ्गीसूत्राण्यध्येयानीति ॥

द्विकसंयोगाः

एतदेव दर्शयितुमाह–'एवं कंदेणवी'त्यादि ॥ 'देवं विउव्वियसमुग्घाएणं समोहयं'ति प्रागुक्तमतो वैक्रियाधिकारादिदमाह–

पभू णं भंते ! वाउकाए एगं महं इत्थिरूवं वा पुरिसरूवं वा हत्थिरूवं वा जाणरूवं वा एवं जुग्गगिल्लिथिल्लिसीयसंदमाणियरूवं वा विउव्वित्तए ?, गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे, वाउक्काएणं विकुव्वमाणे एगं महं पडागासंठियं रूवं विकुव्वइ । पभू णं भंते ! वाउकाए एगं महं पडागासंठियं रूवं विउव्वित्ता अणेगाइं जोयणाइं गमित्तए ?, हंता ! पभू । से भंते ! किं आयड्ढीए गच्छइ परिड्ढीए गच्छइ ?, गोयमा ! आयड्ढीए ग०णो परिड्ढीए ग० जहा आयड्ढीए एवं चेव आयकम्मुणावि आयप्पओगेणवि भाणियव्वं । से भंते ! किं ऊसिओदगं गच्छइ पयतोदगं ग० ?, गोयमा ! ऊसिओदयंपि ग० पयोदयंपि ग०, से भंते ! किं एगओपडागं गच्छइ दुहुओपडागं गच्छइ ?, गोयमा ! एगओ पडागं गच्छइ नो दुहओ पडागं गच्छइ, से णं भंते ! किं वाउकाए पडागा ?, गोयमा ! वाउकाए णं से नो खलु सा पडागा ॥ (सूत्रं १५७) पभू णं भंते ! बलाहगे एगं महं इत्थिरूवं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५७--१५८]

दीप अनुक्रम [१८५--१८६]

वा जाव संदमाणियरूवं वा परिणामेत्तए ?, हंता पभू । पभू णं भंते ! बलाहए एगं महं इत्थिरूवं परिणामेत्ता अणेगाइं जोयणाइं गमित्तए ?, हंता पभू, से भंते ! किं आयड्ढीए गच्छइ परिड्ढीए गच्छइ?, गोयमा ! नो आयड्ढीए गच्छति, परिड्ढीए ग० एवं नो आयकम्मुणा परकम्मुणा नो आयपओगेणं परप्पओगेणं ऊसितोदयं वा गच्छइ पयोदयं वा गच्छइ, से भंते ! किं बलाहए इत्थी ?, गोयमा ! बलाहए णं से णो खलु सा इत्थी, एवं पुरिसेण आसे हत्थी ॥पभू णं भंते ! बलाहए एगं महं जाणरूवं परिणामेत्ता अणेगाइं जोयणाइं गमित्तए जहा इत्थिरूवं तहा भाणियव्वं, णवरं एगओचक्कवालंपि दुहओचक्कवालंपि गच्छइ(त्ति) भाणियव्वं, जुग्गगिल्लिथिल्लिसीयासंदमाणियाणं तहेव ॥ (सूत्रं १५८)

'पभू ण'मित्यादि, 'जाणं'ति शकटं 'जुग्गं'ति गोल्लविषयप्रसिद्धं जम्पानं द्विहस्तप्रमाणं वेदिकोपशोभितं 'गेल्लि'त्ति हस्तिन उपरि कोल्लरूपा या मानुषं गिलतीव 'थिल्ली'ति लाटानां यदश्वपल्यानं तदन्यविषयेषु थिल्लीत्युच्यते 'सिय'त्ति शिविका कूटाकाराच्छादितो जम्पानविशेषः 'संदमाणिय'त्ति पुरुषप्रमाणायामो जम्पानविशेषः 'एगं महं पडागासंठियं'ति महत् पूर्वप्रमाणापेक्षया पताकासंस्थितं स्वरूपेणैव वायोः पताकाकारशरीरत्वाद् वैक्रियावस्थायामपि तस्य तदाकारस्यैव भावादिति, 'आइड्ढिए'त्ति 'आत्मर्द्ध्या' आत्मशक्त्याऽऽत्मलब्ध्या वा 'आयकम्मुण'त्ति आत्मक्रियया 'आयप्पओगेणं'ति न परप्रयुक्त इत्यर्थः, 'ऊसिओदयं'ति, उच्छ्रित–ऊर्द्ध्वम् उदय– आयामो यत्र गमने तदुच्छ्रितोदयम्, ऊर्द्ध्वपताकमित्यर्थः, क्रियाविशेषणं चेदं, 'पतोदयं'ति पतदुदयं–पतितपताकं गच्छति, ऊर्ध्वपताका स्थापना चेयम्, पतितपताकास्थापना त्वियम्–,'एग-

॥१८७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ओपडागं'ति एकतः–एकस्यां दिशि पताका यत्र तदेकतःपताकं, स्थापना त्वियम्–,'दुहओपडागं'ति द्विधापताकं, स्थापनात्वियम्– । रूपान्तरक्रियाधिकाराद्बलाहकसूत्राणि–'बलाहए'त्ति मेघः 'परिणामेत्तए'त्ति बलाहकस्याजीवत्वेन विकुर्वणाया असम्भवात् परिणामयितुमित्युक्तं, परिणामश्चास्य विश्रसारूपः, 'नो आयड्ढीए'त्ति अचेतनत्वान्मेघस्य विवक्षितायाः शक्तेरभावाच्चात्मर्द्ध्या गमनमस्ति, वायुना देवेन वा प्रेरितस्य तु स्यादपि गमनमतोऽभिधीयते–'परिड्ढीए'त्ति, एवं 'पुरिसे आसे हत्थि'त्ति स्त्रीरूपसूत्रमिव पुरुषरूपाश्वरूपहस्तिरूपसूत्राण्यध्येतव्यानि, यानरूपसूत्रे विशेषोऽस्तीति तद्दर्शयति–'पभू णं भंते ! बलाहए एगं महं जाणरूवं परिणामेत्ता' इत्यादि 'पतोदयंपि गच्छइ' इत्येतदन्तं स्त्रीरूपसूत्रसमानमेव, विशेषः पुनरयम्–'से भंते ! किं एगओचक्कवालं दुहओचक्कवालं गच्छइ?, गोयमा ! एगओचक्कवालंपि गच्छइ दुहओचक्कवालंपि गच्छइ'त्ति, अस्यैवोत्तररूपमंशमाह–नवरं 'एगओ' इत्यादि, इह यानं–शकटं चक्रवालं–चक्रं, शेषसूत्रेषु त्वयं विशेषो नास्ति, शकट एव चक्रवालसद्भावात्, ततश्च युग्यगिल्लिथिल्लिशिबिकास्यन्दमानिकारूपसूत्राणि स्त्रीरूपसूत्रवदध्येयानि, एतदेवाह–'जुग्गगिल्लिथिल्लिसीयासंदमाणियाणं तहेव'त्ति ॥ परिणामाधिकारादिदमाह—

जीवे णं भंते ! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! किंलेसेसु उववज्जति ?, गोयमा ! जल्लेसाइं दव्वाइं परियाइत्ता कालं करेइ तल्लेसेसु उववज्जइ, तं०–कण्हलेसेसु वा नीललेसेसु वा काउलेसेसु वा, एवं जस्स जा लेस्सा सा तस्स भाणियव्वा जाव जीवे णं भंते ! जे भविए जोतिसिएसु उववज्जित्तए ? पुच्छा, गोयमा ! जल्लेसाइं दव्वाइं परियाइत्ता कालं करेइ तल्लेसेसु उववज्जइ, तं०–तेउलेस्सेसु । जीवे णं भंते !

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जे भविए वेमाणिएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! किंलेस्सेसु उववज्जइ ?, गोयमा ! जल्लेस्साइं दव्वाइं परियाइत्ता कालं करेइ तल्लेसेसु उववज्जइ, तं०–तेउलेस्सेसु वा पम्हलेसेसु वा सुक्कलेसेसु वा ॥ (सूत्रं १५९)

'जीवे ण'मित्यादि, 'जे भविए'त्ति यो योग्यः 'किंलेसेसु'त्ति का कृष्णादीनामन्यतमा लेश्या येषां ते तथा तेषु किंलेश्येषु मध्ये, 'जल्लेसाइं'ति या लेश्या येषां द्रव्याणां तानि यल्लेश्यानि, यस्या लेश्यायाः सम्बन्धीनीत्यर्थः,'परियाइत्त'त्ति पर्यादाय परिगृह्य भावपरिणामेन कालं करोति–म्रियते तल्लेश्येषु नारकेषूत्पद्यते, भवन्ति चात्र गाथाः–"सव्वाहिं लेसाहिं पढमे समयंमि परिणयाहिं तु । नो कस्सवि उववाओ परे भवे अत्थि जीवस्स ॥ १ ॥ सव्वाहिं लेसाहिं चरमे समयंमि परिणयाहिं तु । नो कस्सवि उववाओ परे भवे अत्थि जीवस्स ॥ २ ॥ अंतमुहुत्तंमि गए अंतमुहुत्तंमि सेसए चेव । लेस्साहिं परिणयाहिं जीवा गच्छन्ति परलोयं ॥ ३ ॥" चतुर्विंशतिदण्डकस्य शेषपदान्यतिदिशन्नाह–'एव'मित्यादि, 'एव'मिति नारकसूत्राभिलापेनेत्यर्थः 'जस्स'त्ति असुरकुमारादेर्या लेश्या कृष्णादिका सा लेश्या तस्यासुरकुमारादेर्भणितव्येति । नन्वेतावतैव विवक्षितार्थसिद्धेः किमर्थं भेदेनोक्तं 'जाव जीवे णं भंते'(जोइसिए)इत्यादि?, उच्यते, दण्डकपर्यवसानसूत्रदर्शनार्थम्, एवं तर्हि वैमानिकसूत्रमेव वाच्यं स्यान्न तु ज्योतिष्कसूत्रमिति, सत्यं, किन्तु ज्योतिष्कवैमानिकाः प्रशस्त-

---

१ सर्वासु लेश्यासु प्रथमसमयपरिणतासु । न कस्याप्युत्पादः परस्मिन् भवेऽस्ति जीवस्य ॥ १ ॥ सर्वासु लेश्यासु परिणतचरमसमयासु । न० ॥ २ ॥ अन्तर्मुहूर्ते गते अन्तर्मुहूर्ते शेष एव । लेश्यापरिणामे जीवा गच्छन्ति परलोकम् ॥ ३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेश्या एव भवन्तीत्यस्य दर्शनार्थं तेषां भेदेनाभिधानं, विचित्रत्वाद्वा सूत्रगतेरिति ॥ देवपरिणामाधिकारादनगाररूपद्रव्यदेवपरिणामसूत्राणि—

अणगारे णं भंते ! भावियप्पा बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू वेभारं पव्वयं उल्लंघेत्तए वा पलंघेत्तए वा ?, गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे । अणगारे णं भंते ! भावियप्पा बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू वेभारं पव्वयं उल्लंघेत्तए वा पलंघेत्तए वा ?, हंता पभू । अणगारे णं भंते ! भावियप्पा बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता जावइयाइं रायगिहे नगरे रूवाइं एवइयाइं विकुव्वित्ता वेभारं पव्वयं अंतो अणुप्पविसित्ता पभू समं वा विसमं करेत्तए विसमं वा समं करेत्तए ?, गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, एवं चेव बितिओऽवि आलावगो णवरं परियातित्ता पभू ॥ से भंते ! किं माई विकुव्वति अमाई विकुव्वइ ?, गोयमा ! माई विकुव्वइ नो अमाई विकुव्वति, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जाव नो अमाई विकुव्वइ ?, गोयमा ! माईए पणीयं पाणभोयणं भोच्चा २ वामेति तस्स णं तेणं पणीएणं पाणभोयणेणं अट्ठि अट्ठिमिंजा बहलीभवंति पयणुए मंससोणिए भवति, जेविय से अहाबायरा पोग्गला तेविय से परिणमंति, तंजहा–सोतिंदियत्ताए जाव फासिंदियत्ताए अट्ठिअट्ठिमिंजकेसमंसुरोमनहत्ताए सुक्कत्ताए सोणियत्ताए, अमाईणं लूहं पाणभोयणं भोच्चा २ णो वामेइ, तस्स णं तेणं लूहेणं पाणभोयणेणं अट्ठिअट्ठिमिंजा० पयणु भवति बहले मंससोणिए, जेविय से अहाबादरा पोग्गला तेविय से परिणमंति, तंजहा–उच्चारत्ताए पासवणत्ताए जाव सोणियत्ताए, से तेणट्ठेणं जाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १ ॥१८९॥

नो अमाई विकुव्वइ ॥ माईणं तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालं करेइ नत्थि तस्स आराहणा । अमाईणं तस्स ठाणस्स आलोइयपडिक्कंते कालं करेइ अत्थि तस्स आराहणा । सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति (सूत्रं १६०) ॥ तईयसए चउत्थो उद्देसो समत्तो ३–४ ॥

'बाहिरए'त्ति औदारिकशरीरव्यतिरिक्तान् वैक्रियानित्यर्थः 'वेभारं'ति वैभाराभिधानं राजगृहक्रीडापर्वतं 'उल्लंघित्तए वे'त्यादि तत्रोल्लङ्घनं सकृत् प्रलङ्घनं पुनः पुनरिति, 'णो इणट्ठे समट्ठे'त्ति वैक्रियपुद्गलपर्यादानं विना वैक्रियकरणस्यैवाभावात्, बाह्यपुद्गलपर्यादाने तु सति पर्वतस्योल्लङ्घनादौ प्रभुः स्यात्, महतः पर्वतातिक्रामिणः शरीरस्य सम्भवादिति, 'जावइयाइं'इत्यादि यावन्ति रूपाणि पशुपुरुषादिरूपाणि 'एवइयाइं'ति एतावन्ति 'विउव्वित्त'त्ति वैक्रियाणि कृत्वा वैभारं पर्वतं समं सन्तं विषमं, विषमं तु समं कर्त्तुमिति सम्बन्धः, किं कृत्वेत्याह–'अन्तः' मध्ये वैभारस्यैवानुप्रविश्य ॥ 'मायी'ति मायावान्, उपलक्षणत्वादस्य सकषायः प्रमत्त इतियावत्, अप्रमत्तो हि न वैक्रियं कुरुत इति,'पणीयं'ति प्रणीतं गलत्स्नेहबिन्दुकं 'भोच्चा भोच्चा वामेति' वमनं करोति विरेचनां वा करोति वर्णबलाद्यर्थं, यथा प्रणीतभोजनं तद्वमनं च विक्रियास्वभावं मायित्वाङ्गवति एवं वैक्रियकरणमपीति तात्पर्यं, 'बहलीभवन्ति'घनीभवन्ति, प्रणीतसामर्थ्यात्, 'पयणुए'त्ति अघनम् 'अहाबायरे'त्ति यथोचितबादराः आहारपुद्गला इत्यर्थः परिणमन्ति श्रोत्रेन्द्रियादित्वेन, अन्यथा शरीरस्य दार्ढ्यासम्भवात्,'लूहं'ति 'रूक्षम्' अप्रीणितं 'नो वामेइ'त्ति अकषायितया विक्रियायामनर्थि[त]त्वात्, 'पासवणत्ताए' इह यावत्करणादिदं दृश्यम्–'खेलत्ताए सिंघाणत्ताए वंतत्ताए पित्तत्ताए पूयत्ताए'त्ति, रूक्षभोजिन उच्चा

३ शतके उद्देशः ४ माय्यमायिनोर्विकुर्वणेतरे सू १६०

॥१८९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१६०]

दीप अनुक्रम [१८८]

रादितयैवाहारादिपुद्गलाः परिणमन्ति अन्यथा शरीरस्यासारताऽनापत्तेरिति ॥ अथ माय्यमायिनोः फलमाह–'माई ण'-मित्यादि, 'तस्स ठाणस्स'त्ति तस्मात्स्थानाद्विकुर्वणाकरणलक्षणात्प्रणीतभोजनलक्षणाद्वा, 'अमाई ण'मित्यादि, पूर्वं मा-यित्वाद्वैक्रियं प्रणीतभोजनं वा कृतवान् पश्चाज्जातानुतापोऽमायी सन् तस्मात्स्थानादालोचितप्रतिक्रान्तः सन् कालं करोति यस्तस्यास्त्याराधनेति ॥ तृतीयशते चतुर्थः ॥ ३–४ ॥

चतुर्थोद्देशके विकुर्वणोक्ता, पञ्चमेऽपि तामेव विशेषत आह—

अणगारे णं भंते ! भावियप्पा बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू एगं महं इत्थिरूवं वा जाव संदमाणि-यरूवं वा विउव्वित्तए ? णो ति०, अणगारे णं भंते ! भावियप्पा बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू एगं महं इत्थिरूवं वा जाव संदमाणियरूवं वा विउव्वित्तए ?, हंता पभू, अणगारे णं भंते ! भावि० केवतियाइं पभू इत्थिरूवाइं विकुव्वित्तए ?, गोयमा ! से जहानामए जुवइं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा चक्कस्स वा नाभी अरगा उत्तासिया एवामेव अणगारेवि भावियप्पा वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ जाव पभू णं गोयमा ! अणगारेणं भावियप्पा केवलकप्पं जंबूदीवं बहूहिं इत्थीरूवेहिं आइन्नं वितिकिन्नं जाव एस णं गोयमा ! अण-गारस्स भावि० अयमेयारूवे विसए विसयमेत्ते वुच्चइ नो चेव णं संपत्तीए विकुव्विंसु वा ३, एवं परिवाडीए नेयव्वं जाव संदमाणिया । से जहानामए केइ पुरिसे असिचम्मपायं गहाय गच्छेज्जा एवामेव भावियप्पा अण-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र तृतीय-शतके चतुर्थ-उद्देशकः समाप्तः

अथ तृतीय-शतके पंचम-उद्देशकः आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१६१]

दीप अनुक्रम [१८९]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥१९०॥

गारेवि असिचम्मपायहत्थकिच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पइज्जा ?, हंता उप्पइज्जा, अणगारे णं भंते ! भावियप्पा केवतियाइं पभू असिचम्मपायहत्थकिच्चगयाइं रूवाइं विउव्वित्तए?, गोयमा ! से जहानामए–जुवतिं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा तं चेव जाव विउव्विंसु वा ३ । से जहानामए केइ पुरिसे एगओपडागं काउं गच्छेज्जा, एवामेव अणगारेवि भावियप्पा एगओपडागहत्थकिच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ? हंता गोयमा ! उप्पएज्जा, अणगारे णं भंते ! भावियप्पा केवतियाइं पभू एगओपडागाहत्थकिच्चगयाइं रूवाइं विकुव्वित्तए ? एवं चेव जाव विकुव्विंसु वा ३ । एवं दुहओपडागंपि । से जहानामए–केइ पुरिसे एगओ-जंनोवइतं काउं गच्छेज्जा, एवामेव अण० भा०एगओजण्णोवइयकिच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ? हंता ! उप्पएज्जा, अणगारे णं भंते ! भावियप्पा केवतियाइं पभू एगओजण्णोवइयकिच्चगयाइं रूवाइं विकु-व्वित्तए तं चेव जाव विकुव्विंसु वा ३, एवं दुहओजण्णोवइयंपि । से जहानामए–केइ पुरिसे एगओ पल्ह-त्थियं काउं चिट्ठेज्जा, एवामेव अणगारेवि भावियप्पा एवं चेव जाव विकुव्विंसु वा ३ एवं दुहओ पलियंकं पि । अणगारे णं भंते ! भावियप्पा बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू एगं महं आसरूवं वा हत्थिरूवं वा सीहरूवं वा वग्घवगदीवियअच्छतरच्छपरासररूवं वा अभिजुंजित्तए ?, णो तिणट्ठे समट्ठे, अणगारे णं एवं बाहिरए पोग्गले परियादित्ता पभू । अणगारे णं भंते ! भा० एगं महं आसरूवं वा अभिजुंजित्ता अणेगाइं जोयणाइं गमित्तए ? हंता ! पभू , से भंते ! किं आयड्ढीए गच्छति परिड्ढीए गच्छति ?, गोयमा ! आइड्ढीए

३ शतके उद्देशः ५ साधोःरूपादिविकुर्वणाश्वादि-प्रवेशः सू १६१

॥१९०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१६१] + गाथा

दीप अनुक्रम [१८९--१९०]

गच्छइ नो परिड्ढीए, एवं आयकम्मुणा नो परकम्मुणा आयप्पओगेणं नो परप्पओगेणं उस्सिओदयं वा गच्छइ पयोदगं वा गच्छइ । से णं भंते ! किं अणगारे आसे ?, गोयमा ! अणगारे णं से नो खलु से आसे, एवं जाव परासररूवं वा । से भंते ! किं मायी विकुव्वति अमायी विकुव्वति ?, गोयमा ! मायी विकुव्वति नो अमायी विकुव्वति, माई णं भंते ! तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालं करेइ कहिं उववज्जति ?, गोयमा ! अन्नयरेसु आभियोगेसु देवलोगेसु देवत्ताए उववज्जइ, अमाई णं तस्स ठाणस्स आलोइयपडिक्कंते कालं करेइ कहिं उववज्जति ?, गोयमा ! अन्नयरेसु अणाभिओगेसु देवलोगेसु देवत्ताए उववज्जइ, सेवं भंते २ त्ति, गाहा–हत्थीअसीपडागा जण्णोवइए य होइ बोद्धव्वे । पलहत्थियपलियंके अभिओगविकुव्वणा माई ॥ १ ॥ (सूत्रं १६१) तईए सए पंचमो उद्देसो समत्तो ३–५ ॥

'अणगारे ण'मित्यादि, 'असिचम्मपायं गहाय'त्ति असिचर्मपात्रं–स्फुरकः, अथवाऽसिश्च–खड्गः चर्मपात्रं च–स्फुरकः खड्गकोशको वा असिचर्म्मपात्रं तद् गृहीत्वा 'असिचम्मपायहत्थकिच्चगएणं अप्पाणेणं'ति असिचर्म्मपात्रं हस्ते यस्य स तथा कृत्यं–सङ्घादिप्रयोजनं गतः–आश्रितः कृत्यगतः ततः कर्मधारयः, अतस्तेनात्मना, अथवाऽसिचर्मपात्रं कृत्वा हस्ते कृतं येनासौ असिचर्मपात्रहस्तकृत्वाकृतस्तेन, प्राकृतत्वाच्चैवं समासः, अथवाऽसिचर्मपात्रस्य हस्तकृत्यां–हस्तकरणं गतः–प्राप्तो यः स तथा तेन, 'पलियंकं'ति आसनविशेषः प्रतीतश्च 'वग'त्ति वृकः 'दीविय'त्ति चतुष्पदविशेषः 'अच्छ'त्ति ऋक्षः 'तरच्छ'त्ति व्याघ्रविशेषः 'परासर'त्ति सरभः, इहान्यान्यपि शृगालादिपदानि वाचनान्तरे दृश्यन्ते ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१६१] + गाथा

दीप अनुक्रम [१८९--१९०]

'अभिजुंजित्तए'त्ति 'अभियोक्तुं' विद्यादिसामर्थ्यतस्तदनुप्रवेशेन व्यापारयितुं, यच्च स्वस्यानुप्रवेशनेनाभियोजनं तद्विद्यादिसामर्थ्योपात्तबाह्यपुद्गलान् विना न स्यादितिकृत्वोच्यते–'नो बाहिरए पुग्गले अपरियाइत्ता'त्ति। 'अणगारे णं से'त्ति अनगार एवासौ तत्त्वतोऽनगारस्यैवाभ्याद्यनुप्रवेशेन व्याप्रियमाणत्वात्। 'माई अभिजुंजइ'त्ति कषायवानभियुङ्क्ते इत्यर्थः, अधिकृतवाचनायां 'माई विउव्वइ'त्ति दृश्यते, तत्र चाभियोगोऽपि विकुर्वणेति मन्तव्यं, विक्रियारूपत्वात्तस्येति, 'अण्णयरेसु'त्ति आभियोगिकदेवा अच्युतान्ता भवन्तीतिकृत्वाऽन्यतरेष्वित्युक्तं, केषुचिदित्यर्थः, उत्पद्यते चाभियोजनभावनायुक्तः साधुराभियोगिकदेवेषु, करोति च विद्यादिलब्ध्युपजीवकोऽभियोगभावनां, यदाह–"मंता जोगं काउं भूईकम्मं तु जो पउंजेति । सायरसइड्ढिहेउं अभिओगं भावणं कुणइ ॥ १ ॥" 'इत्थी'त्यादिसङ्ग्रहगाथा गतार्था ॥ इति तृतीयशते पञ्चमः ॥ ३–५ ॥

विकुर्वणाऽधिकारसंबद्ध एव षष्ठ उद्देशकः, तस्य चादिसूत्रम्—

अणगारे णं भंते ! भावियप्पा माई मिच्छद्दिट्ठी वीरियलद्धीए वेउव्वियलद्धीए विभंगनाणलद्धीए वाणारसिं नगरिं समोहए समोहणित्ता रायगिहे नगरे रूवाइं जाणति पासति ?, हंता जाणइ पासइ। से भंते ! किं तहाभावं जाण० पा० अन्नहाभावं जा० पा० ?, गोयमा ! णो तहाभावं जाण० पा० अण्णहाभावं जा० पा०।

१ मन्त्रान् योगांश्च कृत्वा सातरसार्द्धिहेतोः भूतिदानं यः प्रयोजयति स आभियोगिकां भावनां करोति ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र तृतीय-शतके पंचम-उद्देशकः समाप्तः

अथ तृतीय-शतके षष्ठं-उद्देशकः आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१६२--१६३]

दीप अनुक्रम [१९१--१९२]

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ नो तहाभावं जा० पा० अन्नहाभावं जाण० पा० ?, गोयमा ! तस्स णं एवं भवति–एवं खलु अहं रायगिहे नगरे समोहए समोहणित्ता वाणारसीए नगरीए रूवाइं जाणामि पासामि, से से दंसणे विवच्चासे भवति, से तेणट्ठेणं जाव पासति। अणगारे णं भंते! भावियप्पा माई मिच्छदिट्ठी जाव रायगिहे नगरे समोहए समोहणित्ता वाणारसीए नगरीए रूवाइं जाणइ पासइ ?, हंता जाणइ पासइ, तं चेव जाव तस्स णं एवं होइ–एवं खलु अहं वाणारसीए नगरीए समोहए २ रायगिहे नगरे रूवाइं जाणामि पासामि, से से दंसणे विवच्चासे भवति, से तेणट्ठेणं जाव अन्नहाभावं जाणइ पासइ ॥ अणगारे णं भंते ! भावियप्पा माई मिच्छदिट्ठी वीरियलद्धीए वेउव्वियलद्धीए विभंगणाणलद्धीए वाणारसिं नगरिं रायगिहं च नगरं अंतरा एगं महं जणवयवग्गं समोहए २ वाणारसिं नगरिं रायगिहं च नगरं अंतरा एगं महं जणवयवग्गं जाणति पासति से भंते ! किं तहाभावं जाणइ पासइ अन्नहाभावं जाणइ पा० ?, गोयमा ! णो तहाभावं जाणति पासइ अन्नहाभावं जाणइ पासइ, से केणट्ठेणं जाव पासइ ?, गोयमा ! तस्स खलु एवं भवति एस खलु वाणारसी[ए] नगरी एस खलु रायगिहे नगरे एस खलु अंतरा एगे महं जणवयवग्गे नो खलु एस महं वीरियलद्धी वेउव्वियलद्धी विभंगनाणल० इड्ढी जुत्ती जसे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए, से से दंसणे विवच्चासे भवति, से तेणट्ठेणं जाव पासति ॥ अणगारे णं भंते! भावियप्पा अमाई सम्मदिट्ठी वीरियलद्धीए वेउव्वियलद्धीए ओहिनाणलद्धीए रायगिहे नगरे समोहए २ वाणारसीए नगरीए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१६२--१६३]

दीप अनुक्रम [१९१--१९२]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१ ॥१९२॥

रूवाइं जाणइ पासइ ?, हंता, से भंते! किं तहाभावं जाणइ पासइ अन्नहाभावं जाणति पासति ?, गोयमा ! तहाभावं जाणति पासति नो अन्नहाभावं जाणति पासति, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुचइ ?, गोयमा ! तस्स णं एवं भवति–एवं खलु अहं रायगिहे नगरे समोहणित्ता वाणारसीए नगरीए रूवाइं जाणामि पासामि, से से दंसणे अविवच्चासे भवति, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुचति, बीओ आलावगो एवं चेव नवरं वाणारसीए नगरीए समोहणा नेयव्वा रायगिहे नगरे रूवाइं जाणइ पासइ । अणगारे णं भंते ! भावियप्पा अमाई सम्मदिट्ठी वीरियलद्धीए वेउव्वियलद्धीए ओहिनाणलद्धीए रायगिहं नगरं वाणारसिं नगरिं च अंतराएगं महं जणवयवग्गं समोहए २ रायगिहं नगरं वाणारसिं च नगरिं तं च अंतरा एगं महं जणवयवग्गं जाणइ पासइ ?, हंता जा० पा०, से भंते! किं तहाभावं जाणइ पासइ अन्नहाभावं जाणइ पासइ ?, गोयमा ! तहाभावं जाणइ पा०, णो अन्नहाभावं जा० पा०, से केणट्ठेणं ? गोयमा ! तस्स णं एवं भवति–नो खलु एस रायगिहे णगरे णो खलु एस वाणारसी नगरी नो खलु एस अंतरा एगे जणवयवग्गे एस खलु ममं वीरियलद्धी वेउव्वियलद्धी ओहिणाणलद्धी इड्ढी जुत्ती जसे बले वीरिए पुरिसकारपरक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागए से से दंसणे अविवच्चासे भवति से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुचति तहाभावं जाणति पासति नो अन्नहाभावं जाणति पासति । अणगारे णं भंते ! भावियप्पा बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू एगं महं गामरूवं वा नगररूवं वा जाव सन्निवेसरूवं वा विकुव्वित्तए ?, णो तिणट्ठे समट्ठे, एवं बितिओवि आलावगो, णवरं बाहिरए पोग्गले परि-

३ शतके उद्देशः ६ सम्यग्मिथ्यादृशोःसमुद्घाते तथ्यातथ्यौघौ सू १६२

॥१९२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१६२--१६३]

दीप अनुक्रम [१९१--१९२]

याइत्ता पभू। अणगारे णं भंते! भावियप्पा केवतियाइं पभू गामरूवाइं विकुव्वित्तए ?, गोयमा ! से जहानामए जुवतिं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा तं चेव जाव विकुव्विंसु वा ३ एवं जाव सन्निवेसरूवं वा ॥ (सूत्रं १६३)

'अणगारे ण'मित्यादि, अनगारो गृहवासत्यागाद् भावितात्मा स्वसमयानुसारिप्रशमादिभिः मायीत्युपलक्षणत्वात्कषायवान्, सम्यग्दृष्टिरप्येवं स्यादित्याह–मिथ्यादृष्टिरन्यतीर्थिक इत्यर्थः, वीर्यलब्ध्यादिभिः करणभूताभिः 'वाणारसिं नगरिं समोहए'त्ति विकुर्वितवान्, राजगृहे नगरे रूपाणि पशुपुरुषप्रासादप्रभृतीनि जानाति पश्यति विभङ्गज्ञानलब्ध्या 'नो तहाभावं'ति यथा वस्तु तथा भावः–अभिसन्धिर्यत्र ज्ञाने तत्तथाभावं अथवा यथैव संवेद्यते तथैव भावो–बाह्यं वस्तु यत्र तत्तथाभावं, अन्यथा भावो यत्र तदन्यथाभावं, क्रियाविशेषणे चेमे, स हि मन्यते–अहं राजगृहं नगरं समवहतो वाराणस्यां रूपाणि जानामि पश्यामीत्येवं 'से'त्ति तस्यानगारस्येति 'से'त्ति असौ दर्शने विपर्यासो विपर्ययो भवति, अन्यदीयरूपाणामन्यदीयतया विकल्पितत्वात्, दिग्मोहादिव पूर्वामपि पश्चिमां मन्यमानस्येति, क्वचित् 'से से दंसणे विवरीए विवच्चासे'त्ति दृश्यते तत्र च तस्य तद्दर्शनं विपरीतं क्षेत्रव्यत्ययेनेतिकृत्वा विपर्यासो–मिथ्येत्यर्थः। एवं द्वितीयसूत्रमपि॥ तृतीये तु 'वाणारसिं च नगरिं रायगिहं नगरं अंतरा य एगं महं जणवयवग्गं समोहए'त्ति वाणारसीं राजगृहं तयोरेव चान्तरालवर्त्तिनं 'जनपदवर्गं' देशसमूहं समवहतो विकुर्वितवान् तथैव च तानि विभङ्गतो जानाति पश्यति केवलं नो तथाभावं, यतोऽसौ वैक्रियाण्यपि तानि मन्यते स्वाभाविकानीति, 'जसे'त्ति यशोहेतुत्वाद्यशः, 'नगररूवं वा' इह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१६२--१६३]

दीप अनुक्रम [१९१--१९२]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१ ॥१९३॥

यावत्करणादिदं दृश्यं–'निगमरूवं वा रायहाणिरूवं वा खेडरूवं वा कब्बडरूवं वा मडंबरूवं वा दोणमुहरूवं वा पट्टणरूवं वा आगररूवं वा आसमरूवं वा संवाहरूवं व'त्ति । विकुर्वणाधिकारात्तत्तत्समर्थदेवविशेषप्ररूपणाय सूत्राणि—

चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुररन्नो कति आयरक्खदेवसाहस्सी पण्णत्ता ? गोयमा ! चत्तारि चउसट्ठीओ आयरक्खदेवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, ते णं आयरक्खा वण्णओ जहा रायप्पसेणइज्जे, एवं सव्वेसिं इंदाणं जस्स जत्तिया आयरक्खा भाणियव्वा । सेवं भंते २॥ (सूत्रं १६४)॥ तइयसए छट्ठो उद्देसो समत्तो ॥ ३–६॥

'वण्णओ'त्ति आत्मरक्षदेवानां वर्णको वाच्यः, स चायम्–'सन्नद्धबद्धवम्मियकवयउप्पीलियसरासणपट्टिया पिणद्धगेवेज्जा बद्धआविद्धविमलवरचिंधपट्टा गहियाउहपहरणा तिणयाइं तिसंधियाइं वयरामयकोडीणि धणूइं अभिगिज्झ पयओ परिमाइयकंडकलावा नीलपाणिणो पीयपाणिणो रत्तपाणिणो एवं चारुचावचम्मदंडखग्गपासपाणिणो नीलपीयरत्तचारुचावचम्मदंडखग्गपासवरधरा आयरक्खा रक्खोवगया गुत्ता गुत्तपालिया जुत्ता जुत्तपालिया पत्तेयं पत्तेयं समयओ विणयओ किंकरभूया इव चिट्ठंति'त्ति अस्यायमर्थः–संनद्धाः–संनिहतिकथा कृतसन्नाहाः बद्धः कशाबन्धनतः वर्मितश्च–वर्मीकृतः शरीरारोपणतः कवचः–कङ्कटो यैस्ते तथा, ततः सन्नद्धशब्देन कर्मधारयः, तथोत्पीडिता प्रत्यञ्चारोपणेन शरासनपट्टिका–धनुर्यष्टिर्यैस्ते तथा अथवा उत्पीडिता–बाहौ बद्धा शरासनपट्टिका–धनुर्द्धरप्रतीता यैस्ते तथा, तथा पिनद्धं–परिहितं ग्रैवेयकं–ग्रीवाभरणं यैस्ते तथा, तथा बद्धो ग्रन्थिदानेन आविद्धश्च शिरस्यारोपणेन विमलो वरश्च चिह्नपट्टो–योधतासूचको नेत्रादिवस्त्ररूपः सौवर्णो वा पट्टो यैस्ते तथा, तथा गृहीतान्यायुधानि प्रहरणाय यैस्ते तथा, अथवा गृहीता-

३ शतके उद्देशः ६ विभङ्गवतो वैक्रियेऽन्यथात्वावगतिः सू१६३ आत्मरक्षाः सू १६४

॥१९३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१६४]

दीप अनुक्रम [१९३]

न्यायुधानि–क्षेप्यास्त्राणि प्रहरणानि च–तदितराणि यैस्ते तथा, 'त्रिनतानि' मध्यपार्श्वद्वयलक्षणे स्थानत्रयेऽवनतानि, 'त्रिसन्धितानि' त्रिषु स्थानकेषु कृतसन्धिकानि नैकाङ्गिकानीत्यर्थः, वज्रमयकोटीनि धनूंषि अभिगृह्य पदतः–पदे मुष्टिस्थाने तिष्ठन्तीति सम्बन्धः, परिमात्रिकः–सर्वतो मात्रावान् काण्डकलापो येषां ते तथा, नीलपाणय इत्यादिषु नीलादिवर्णपुङ्खत्वान्नीलादयो बाणभेदाः संभाव्यन्ते, चारुचापपाणय इत्यत्र चापं–धनुरेवानारोपितज्यमतो न पुनरुक्तता, चर्मपाणय इत्यत्र चर्म्मशब्देन स्फुरक उच्यते, दण्डादयः प्रतीताः, उक्तमेवार्थं सङ्ग्रहणेनाह–'नीलपीए'त्यादि, अथवा नीलादीन् सर्वानेव युगपत्केचिद्धारयन्ति देवशक्तेरिति दर्शयन्नाह–'नीलपीए'त्यादि, ते चात्मरक्षा न सञ्ज्ञामात्रेणैवेत्याह— आत्मरक्षाः स्वाम्यात्मरक्षा इत्यर्थः, त एव विशेष्यन्ते–'रक्षोपगताः' रक्षामुपगताः सततं प्रयुक्तरक्षा इत्यर्थः, एतदेव कथमित्याह–'गुप्ताः' अभेदवृत्तयः, तथा 'गुप्तपालिकाः' तदन्यतो व्यावृत्तमनोवृत्तिकाः मण्डलीकाः 'युक्ताः' परस्परसंबद्धाः 'युक्तपालिकाः' निरन्तरमण्डलीकाः प्रत्येकम्–एकैकशः समयतः–पदातिसमाचारेण विनयतो–विनयेन किङ्करभूता इव–प्रेष्यत्वं प्राप्ता इवेति, अयं च पुस्तकान्तरे साक्षाद् दृश्यत एवेति । 'एवं सवेसिमिंदाणं'ति एवमिति–चमरवत् सर्वेषामिन्द्राणां सामानिकचतुर्गुणा आत्मरक्षा वाच्याः, ते चार्थत एवं–सर्वेषामिन्द्राणां सामानिकचतुर्गुणा आत्मरक्षाः, तत्र चतुःषष्टिः सहस्राणि चमरेन्द्रस्येन्द्रसामानिकानां बलेस्तु षष्टिः शेषभवनपतीन्द्राणां प्रत्येकं षट् सहस्राणि शक्रस्य चतुरशीतिः ईशानस्याशीतिः सनत्कुमारस्य द्विसप्ततिः माहेन्द्रस्य सप्ततिः ब्रह्मणः षष्टिः लान्तकस्य पञ्चाशत् शुक्रस्य चत्वारिंशत्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सहस्रारस्य त्रिंशत् प्राणतस्य विंशतिः अच्युतस्य दश सहस्राणि सामानिकानामिति, यदाह–"चउसट्ठी सट्ठी खलु छच्च सहस्सा उ असुरवज्जाणं । सामाणिया उ एए चउग्गुणा आयरक्खा उ ॥ १ ॥ चउरासीइ असीई बावत्तरि सत्तरी य सट्ठी य । पण्णा चत्तालीसा तीसा वीसा दस सहस्सा ॥ २ ॥" इति ॥ तृतीयशते षष्ठ उद्देशकः ॥ ३–६ ॥

षष्ठोद्देशके इन्द्राणामात्मरक्षा उक्ताः, अथ सप्तमोद्देशके तेषामेव लोकपालान् दर्शयितुमाह—

रायगिहे नगरे जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी–सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरन्नो कति लोगपाला पण्णत्ता ?, गोयमा ! चत्तारि लोगपाला पण्णत्ता, तंजहा–सोमे जमे वरुणे वेसमणे । एएसि णं भंते ! चउण्हं लोगपालाणं कति विमाणा पण्णत्ता ?, गोयमा ! चत्तारि विमाणा पण्णत्ता, तंजहा–संझप्पभे वरसिट्ठे सयंजले वग्गू । कहिं णं भंते ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारन्नो संझप्पभे णामं महाविमाणे पण्णत्ते ?, गोयमा ! जंबूदीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिमसूरियगहगणणक्खत्ततारारूवाणं बहूइं जोयणाइं जाव पंच वडिंसया पण्णत्ता, तंजहा–असोयवडिंसए सत्तवन्नवडिंसए चंपयवडिंसए चूयवडिंसए मज्झे सोहम्मवडिंसए, तस्स णं सोहम्मवडिंसयस्स महा-

१ चतुःषष्टिः षष्टिः खलु षट् सहस्राणि तु असुरवर्जानाम् । सामानिकास्त्वेते चतुर्गुणा आत्मरक्षकास्तु ॥ १ ॥ चतुरशीतिरशीतिर्द्वासप्ततिः सप्ततिश्च षष्टिश्च । पञ्चाशच्चत्वारिंशत् त्रिंशद्विंशतिर्दश सहस्राणि ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

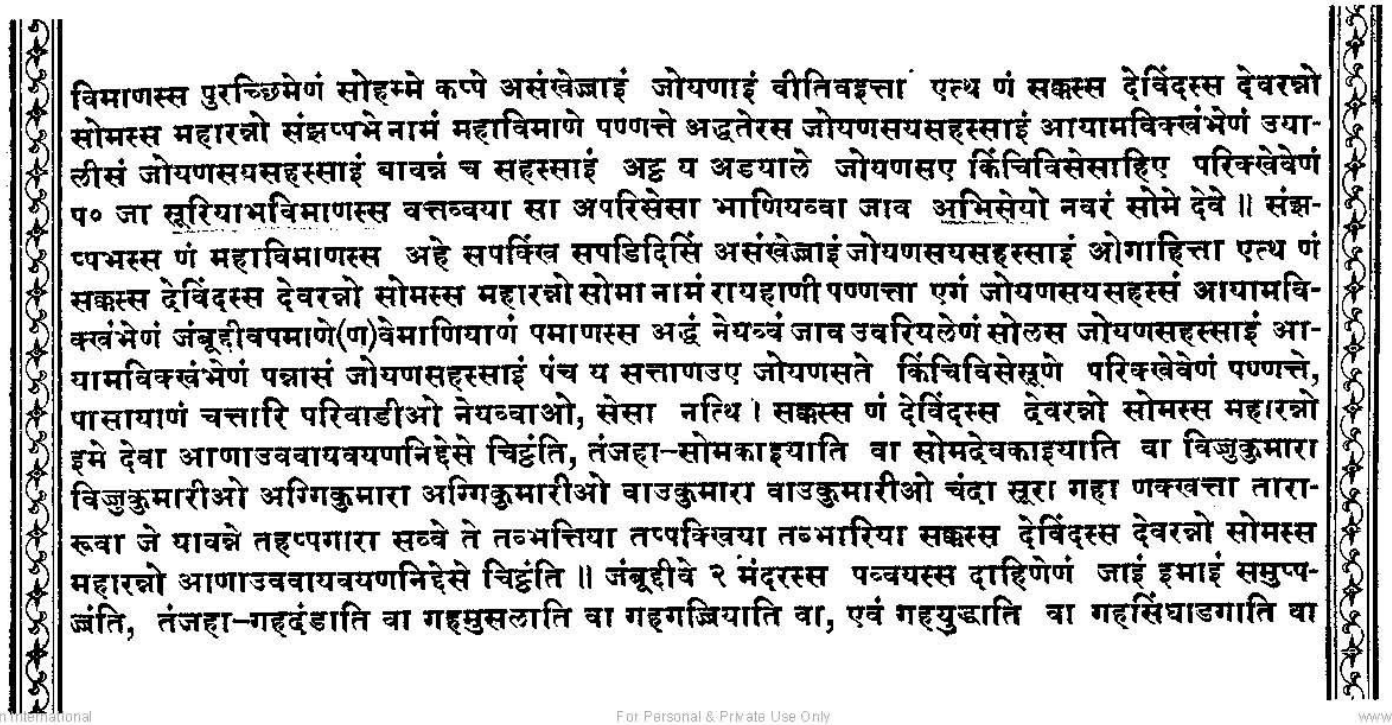
अत्र तृतीय-शतके षष्ठं-उद्देशक: समाप्त:

अथ तृतीय-शतके सप्तम-उद्देशक: आरभ्यते

सोम-लोकपालस्य वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१६५]

दीप अनुक्रम [१९४]



विमाणस्स पुरच्छिमेणं सोहम्मे कप्पे असंखेज्जाइं जोयणाइं वीतिवइत्ता एत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो सोमस्स महारन्नो संझप्पभे नामं महाविमाणे पण्णत्ते अद्धतेरस जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं उगतीसं जोयणसयसहस्साइं बावन्नं च सहस्साइं अट्ठ य अडयाले जोयणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं प० जा सूरियाभविमाणस्स वत्तव्वया सा अपरिसेसा भाणियव्वा जाव अभिसेयो नवरं सोमे देवे ॥ संझप्पभस्स णं महाविमाणस्स अहे सपक्खिं सपडिदिसिं असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो सोमस्स महारन्नो सोमा नामं रायहाणी पण्णत्ता एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं जंबूदीवपमाणे(ण)वेमाणियाणं पमाणस्स अद्धं नेयव्वं जाव उवरियलेणं सोलस जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं पन्नासं जोयणसहस्साइं पंच य सत्ताणउए जोयणसते किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं पण्णत्ते, पासायाणं चत्तारि परिवाडीओ नेयव्वाओ, सेसा नत्थि। सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो सोमस्स महारन्नो इमे देवा आणाउववायवयणनिद्देसे चिट्ठंति, तंजहा–सोमकाइयाति वा सोमदेवकाइयाति वा विज्जुकुमारा विज्जुकुमारीओ अग्गिकुमारा अग्गिकुमारीओ वाउकुमारा वाउकुमारीओ चंदा सूरा गहा णक्खत्ता तारारूवा जे यावन्ने तहप्पगारा सव्वे ते तब्भत्तिया तप्पक्खिया तब्भारिया सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो सोमस्स महारन्नो आणाउववायवयणनिद्देसे चिट्ठंति ॥ जंबूदीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं जाइं इमाइं समुप्पज्जंति, तंजहा–गहदंडाति वा गहमुसलाति वा गहगज्जियाति वा, एवं गहयुद्धाति वा गहसिंघाडगाति वा

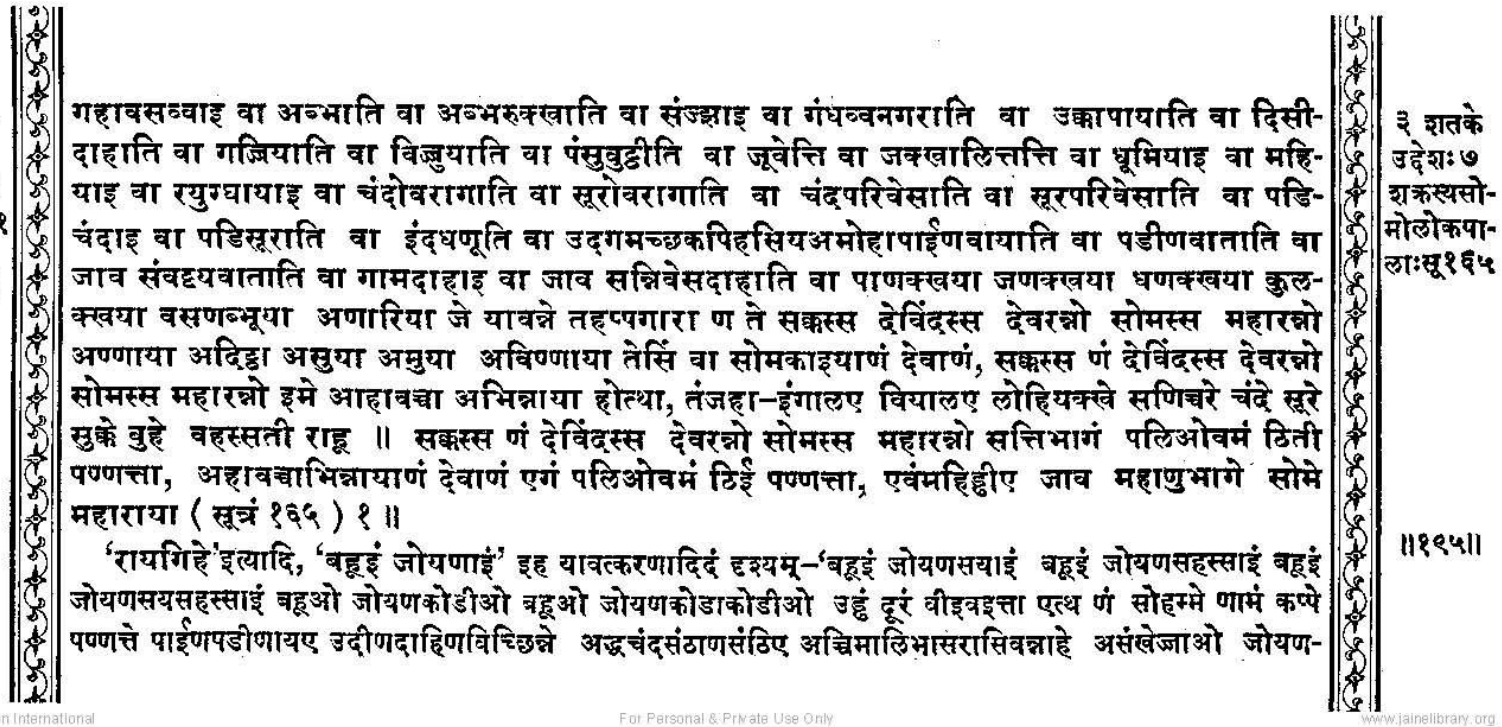
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	सोम-लोकपालस्य वर्णनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१६५]

दीप अनुक्रम [१९४]



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १

॥१९५॥

गहावसव्वाइ वा अब्भाति वा अब्भरुक्खाति वा संज्झाइ वा गंधव्वनगराति वा उक्कापायाति वा दिसीदाहाति वा गज्जियाति वा विज्जुयाति वा पंसुवुट्ठीति वा जूवेत्ति वा जक्खालित्तत्ति वा धूमियाइ वा महियाइ वा रयुग्घायाइ वा चंदोवरागाति वा सूरोवरागाति वा चंदपरिवेसाति वा सूरपरिवेसाति वा पडिचंदाइ वा पडिसूराति वा इंदधणूति वा उदगमच्छकपिहसियअमोहापाईणवायाति वा पडीणवाताति वा जाव संवट्टयवाताति वा गामदाहाइ वा जाव सन्निवेसदाहाति वा पाणक्खया जणक्खया धणक्खया कुलक्खया वसणब्भूया अणारिया जे यावन्ने तहप्पगारा ण ते सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो सोमस्स महारन्नो अण्णाया अदिट्ठा असुया अमुया अविण्णाया तेसिं वा सोमकाइयाणं देवाणं, सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो सोमस्स महारन्नो इमे आहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तंजहा–इंगालए वियालए लोहियक्खे सणिचरे चंदे सूरे सुक्के बुहे बहस्सती राहू ॥ सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो सोमस्स महारन्नो सत्तिभागं पलिओवमं ठिती पण्णत्ता, अहावच्चाभिन्नायाणं देवाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता, एवंमहिड्ढीए जाव महाणुभागे सोमे महाराया (सूत्रं १६५) १ ॥

'रायगिहे'इत्यादि, 'बहूइं जोयणाइं' इह यावत्करणादिदं दृश्यम्–'बहूइं जोयणसयाइं बहूइं जोयणसहस्साइं बहूइं जोयणसयसहस्साइं बहूओ जोयणकोडीओ बहूओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं वीइवइत्ता एत्थ णं सोहम्मे णामं कप्पे पण्णत्ते पाईणपडीणायए उदीणदाहिणविच्छिन्ने अद्धचंदसंठाणसंठिए अच्चिमालिभासरासिवन्नाहे असंखेज्जाओ जोयण-

३ शतके उद्देशः ७ शक्रस्यसोमलोकपालाः सू१६५

॥१९५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोम-लोकपालस्य वर्णनं

कोडाकोडीओ आयामविक्खंभेणं असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ परिक्खेवेणं एत्थ णं सोहम्माणं देवाणं बत्तीसं विमाणावाससयसहस्साइं भवन्तीति अक्खाया, ते णं विमाणा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा, तस्स णं सोहम्मकप्पस्स बहुमज्झदेसभाए' इति, 'वीइवइत्ता'त्ति व्यतिव्रज्य–व्यतिक्रम्य 'जा सूरियाभविमाणस्स'त्ति सूरिकाभविमानं राजप्रश्नीयोपाङ्गोक्तस्वरूपं तद्वक्तव्यतेह वाच्या, तत्समानलक्षणत्वादस्येति, कियती सा वाच्या ? इत्याह–'यावदभिषेकः' अभिनवोत्पन्नस्य सोमस्य राज्याभिषेकं यावदिति, सा चेहातिबहुत्वान्न लिखितेति ॥ 'अहे'इति तिर्यग्लोके 'वेमाणियाण पमाणस्स'त्ति वैमानिकानां सौधर्मविमानसत्कप्रासादप्राकारद्वारादीनां प्रमाणस्येह नगर्यामर्द्धं ज्ञातव्यं 'सेसा नत्थि'त्ति सुधर्मादि(काः)सभा इह न सन्ति, उत्पत्तिस्थानेष्वेव तासां भावात्, 'सोमकाइय'त्ति सोमस्य कायो–निकायो येषामस्ति ते सोमकायिकाः–सोमपरिवारभूताः'सोमदेवयकाइय'त्ति सोमदेवताः–तत्सामानिकादयस्तासां कायो येषामस्ति ते सोमदेवताकायिकाः सोमसामानिकादिदेवपरिवारभूता इत्यर्थः,'तारारूव'त्ति तारकरूपाः 'तब्भत्तिय'त्ति तत्र–सोमे भक्तिः–सेवा बहुमानो वा येषां ते तद्भक्तिकाः 'तप्पक्खिय'त्ति 'सोमपाक्षिकाः' सोमस्य प्रयोजनेषु सहायाः 'तब्भारिय'त्ति 'तद्भार्याः' तस्य सोमस्य भार्या इव भार्या अत्यन्तं वश्यत्वात्पोषणीयत्वाच्चेति तद्भार्याः, तद्भारो वा येषां वोढव्यतयाऽस्ति ते तद्भारिकाः ॥ 'गहदंड'त्ति दण्डा इव दण्डाः–तिर्यगायताः श्रेणयः ग्रहाणां–मङ्गलादीनां त्रिचतुरादीनां दण्डा ग्रहदण्डाः, एवं ग्रहमुशलादीनि नवरमूर्ध्वायताः श्रेणयः, 'गहगज्जिय'त्ति ग्रहसञ्चालादौ गर्जितानि–स्तनितानि ग्रहगर्जितानि 'गहजुद्धाणि ग्रहयोरेकत्र नक्षत्रे दक्षिणोत्तरेण समश्रेणितयाऽवस्थानानि' 'गहसिङ्घाडगाणि'ग्रहाणां सिङ्घाटकफलाकारेणावस्थानानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥१९६॥

'ग्रहापसव्यानि'ग्रहाणामपसव्यगमनानि प्रतीपगमनानीत्यर्थः, अभ्रात्मका वृक्षा अभ्रवृक्षाः 'गन्धर्वनगराणि' आकाशे व्यन्तरकृतानि नगराकारप्रतिबिम्बानि, 'उल्कापाताः' सरेखाः सोद्द्योता वा तारकस्येव पाताः 'दिग्दाहाः' अन्यतमस्यां दिशि अधोऽन्धकारा उपरि च प्रकाशात्मका दह्यमानमहानगरप्रकाशकल्पाः 'जूवय'त्ति शुक्लपक्षे प्रतिपदादिदिनत्रयं यावद्यैः सन्ध्याछेदा आक्रियन्ते ते यूपकाः 'जक्खालित्तय'त्ति 'यक्षोद्दीप्तानि' आकाशे व्यन्तरकृतज्वलनानि, धूमिका-महिकयोर्वर्णकृतो विशेषः, तत्र धूमिका–धूम्रवर्णा धूसरा इत्यर्थः, महिका त्वापाण्डुरेति, 'रउग्घाय'त्ति दिशां रजस्वलत्वानि 'चंदोवरागा सूरोवरागा' चन्द्रसूर्यग्रहणानि 'पडिचंद'त्ति द्वितीयचन्द्राः 'उदगमच्छ'त्ति इन्द्रधनुःखण्डानि 'कविहसिय'त्ति अनभ्रे या विद्युत्सहसा तत् कपिहसितम्, अन्ये त्वाहुः–कपिहसितं नाम यदाकाशे वानरमुखसदृशस्य विकृतमुखस्य हसनम् 'अमोह'त्ति अमोघा आदित्योदयास्तमययोरादित्यकिरणविकारजनिताः 'आताम्राः'कृष्णाः श्यामा वा शकटोद्धिसंस्थिता दण्डा इति, 'पाईणवाय'त्ति पूर्वदिग्वाताः 'पडीणवाय'त्ति प्रतीचीनवाताः, यावत्करणादिदं दृश्यम्–'दाहिणवायाइ वा उदीणवायाइ वा उद्धवायाइ वा अहोवायाइ वा तिरियवायाइ वा विदिसीवायाइ वा वाउब्भामाइ वा वाउक्कलियाइ वा वायमंडलियाइ वा उक्कलियावायाइ वा मण्डलियावायाइ वा गुंजावायाइ वा झंझावायाइ व'त्ति, इह 'वातोद्भामाः' अनवस्थितवाताः 'वातोत्कलिकाः' समुद्रोत्कलिकावत् 'वातमण्डलिका' वातोत्थाः 'उत्कलिकावाताः' उत्कलिकाभिर्ये वान्ति 'मण्डलिकावाताः' मण्डलिकाभिर्ये वान्ति 'गुञ्जवाताः' गुञ्जन्तः सशब्दं ये वान्ति 'झञ्झावाताः' अशुभनिष्ठुराः 'संवर्त्तकवाताः' तृणादिसंवर्त्तनस्वभावा इति । अथानन्तरोक्तानां ग्रहदण्डादीनां प्रायिकफलानि

३ शतके उद्देशः ७ शक्रस्यसोमलोकपालाःसू१६५

॥१९६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दर्शयन्नाह–'पाणक्खय'त्ति बलक्षयाः 'जणक्खय'त्ति लोकमरणानि, निगमयन्नाह–'वसणब्भूया अणारिया जे यावन्ने तहप्पगार'त्ति, इहैवमक्षरघटना–न केवलं प्राणक्षयादय एव, ये चान्ये एतद्व्यतिरिक्तास्तत्प्रकाराः–प्राणक्षयादितुल्याः 'व्यसनभूताः' आपद्रूपाः 'अनार्याः'पापात्मकाः न तेऽज्ञाता इति योगः 'अण्णाय'त्ति अनुमानतः 'अदिट्ठ'त्ति प्रत्यक्षापेक्षया 'असुय'त्ति परवचनद्वारेण 'अमुय'त्ति अस्मृता मनोऽपेक्षया 'अविण्णाय'त्ति अवध्यपेक्षयेति । 'अहावच्च'–त्ति यथाऽपत्यानि तथा ये ते यथाऽपत्या देवाः पुत्रस्थानीया इत्यर्थः, 'अभिण्णाया'इति अभिमता अभिमतवस्तुकारित्वादिति 'होत्थ'त्ति अभवन्, उपलक्षणत्वाच्चास्य भवन्ति भविष्यन्तीति द्रष्टव्यम्,'अहावच्चाभिन्नायाणं'ति यथाऽपत्यमेवमभिज्ञाता–अवगता यथाऽपत्याभिज्ञाताः, अथवा यथाऽपत्याश्च तेऽभिज्ञाताश्चेति कर्म्मधारयः, ते चाङ्गारकादयः पूर्वोक्ताः, एतेषु च यद्यपि चन्द्रसूर्ययोर्वर्षलक्षाद्यधिकं पल्योपमं तथाऽप्याधिक्यस्याविवक्षितत्वादङ्गारकादीनां च ग्रहत्वेन पल्योपमस्यैव सद्भावात् पल्योपममित्युक्तमिति ॥

कहिणं भंते ! सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो जमस्स महारन्नो वरसिट्ठे णामं महाविमाणे पण्णत्ते ?, गोयमा ! सोहम्मवडिंसयस्स महाविमाणस्स दाहिणेणं सोहम्मे कप्पे असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं वीइवतित्ता एत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो जमस्स महारन्नो वरसिट्ठे णामं महाविमाणे पण्णत्ते अद्धतेरस जोयणसयसहस्साइं जहा सोमस्स विमाणे तहा जाव अभिसेओ रायहाणी तहेव जाव पासायपंतीओ ॥ सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो जमस्स महारन्नो इमे देवा आणा० जाव चिट्ठंति, तंजहा–जमकाइयाति वा जमदेवकाइयाइ वा पेय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१६६] + गाथा: दीप अनुक्रम [१९५--१९८]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥१९७॥

काइया इ वा पेयदेवकाइयाति वा असुरकुमारा असुरकुमारीओ कंदप्पा निरयवाला आभिओगा जे यावन्ने तहप्पगारा सव्वे ते तब्भत्तिगा तप्पक्खिया तब्भारिया सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो जमस्स महारन्नो आणाए जाव चिट्ठंति ॥ जंबूदीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं जाइं इमाइं समुप्पज्जंति, तंजहा–डिंबाति वा डमराति वा कलहाति वा बोलाति वा खाराति वा महायुद्धाति वा महासंगामाति वा महासत्थनिवडणाति वा एवं पुरिसनिवडणाति वा महारुधिरनिवडणाइ वा दुब्भूयाति वा कुलरोगाति वा गामरोगाति वा मंडलरोगाति वा नगररोगाति वा सीसवेयणाइ वा अच्छिवेयणाइवा कन्ननहदंतवेयणाइ वा इंदग्गाहाइ वा खंदग्गाहाइ वा कुमारग्गाहा जक्खग्गा० भूयग्गा० एगाहियाति वा बेआहियाति वा तेयाहियाति चाउत्थहियाति वा उव्वेयगाति कासा० सासाति वा सोसेतिवा जराइ वा दाहा० कच्छकोहाति वा अजीरया पंडुरगा हरिसाइ वा भगंदराइ वा हियसूलाति वा मत्थयसू० जोणिसू० पाससू० कुच्छिसू० गामारीति वा नगर० खेड० कब्बड० दोणमुह० मडंब० पट्टण० आसम संवाह० संनिवेसमारीति वा पाणक्खया धणक्खया जणक्खया कुलक्खया वसणब्भूयमणारिया जे यावन्ने तहप्पगारा न ते सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो जमस्स महारन्नो अप्पणाया० ५ तेसिं वा जमकाइयाणं देवाणं। सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारन्नो इमे देवा अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, तंजहा–अंबे १ अंबरिसे चेव २, सामे ३ सबलेत्ति यावरे ४। रुद्दो ५–वरुद्दे ६ काले ७ य, महाकालेत्ति यावरे ८ ॥ १ ॥ असिपत्ते ९ धणू १० कुंभे ११ (असी य असिपत्ते कुंभे)

३ शतके उद्देशः ७ यमोलोकपालः सू १६६

॥१९७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यम-लोकपालस्य वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१६६] + गाथा: दीप अनुक्रम [१९५--१९८]

वालू १२ वेयरणीत्ति य १३। खरस्सरे १४ महाघोसे १५, एए पन्नरसाहिया ॥ २ ॥ सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो जमस्स महारन्नो सत्तिभागं पलिओवमं ठिती पण्णत्ता, अहावच्चाभिण्णायाणं देवाणं एगं पलिओवमं ठिती पन्नत्ता, एवंमहिड्ढिए जाव जमे महाराया २ (सूत्रं १६६)।

'पेयकाइय'त्ति 'प्रेतकायिकाः' व्यन्तरविशेषाः 'पेयदेवतकाइय'त्ति प्रेतसत्कदेवतानां सम्बन्धिनः 'कंदप्प'त्ति ये कन्दर्प्पभावनाभावितत्वेन कान्दर्पिकदेवेषूत्पन्नाः कन्दर्पशीलाश्च, कन्दर्पश्च–अतिकेलिः,'आहियोग'त्ति येऽभियोगभावनाभावितत्वेनाभियोगिकदेवेषूत्पन्ना अभियोगवर्त्तिनश्च, अभियोगश्च–आदेश इति ॥ डिंबाइ व'त्ति डिम्बा–विघ्नाः 'डमर'त्ति एकराज्य एव राजकुमारादिकृतोपद्रवाः 'कलह'त्ति वचनराटयः 'बोल'त्ति अव्यक्ताक्षरध्वनिसमूहाः 'खार'त्ति परस्परमत्सराः 'महायुद्ध'त्ति महायुद्धानि व्यवस्थाविहीनमहारणाः 'महासंगाम'त्ति सव्यवस्थचक्रादिव्यूहरचनोपेतमहारणाः महाशस्त्रनिपातनादयस्तु त्रयो महायुद्धादिकार्यभूताः, 'दुब्भूय'त्ति दुष्टा–जनधान्यादीनामुपद्रवहेतुत्वाद् भूताः–सत्त्वाः यूकामत्कुणोन्दुरतिड्डुप्रभृतयो दुर्भूता ईतय इत्यर्थः, इन्द्रग्रहादयः उन्मत्तताहेतवः, एकाहिकादयो ज्वरविशेषाः, 'उव्वेयग'त्ति उद्वेगका इष्टवियोगादिजन्या उद्वेगाः उद्वेजका वा लोकोद्वेगकारिणश्चौरादयः 'कच्छकोह'त्ति कक्षाणां–शरीरावयवविशेषाणां वनगहनानां वा कोथाः–कुथितत्वानि शटितानि वा कक्षाकोथाः कक्षकोथा वा ॥ 'अम्ब' इत्यादयः पञ्चदशासुरनिकायान्तर्वर्त्तिनः परमाधार्मिकनिकायाः, तत्र यो देवो नारकानम्बरतले नीत्वा विमुञ्चत्यसौ अम्ब इत्यभिधीयते १, यस्तु नारकान् कल्पनिकाभिः खण्डशः कृत्वा भ्राष्ट्रपाकयोग्यान् करोतीत्यसावम्बरीषस्य–भ्राष्ट्रस्य सम्बन्धादम्ब-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यम-लोकपालस्य वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१६६] + गाथा: दीप अनुक्रम [१९५--१९८]

रीष एवोच्यते २, यस्तु तेषां शातनादि करोति वर्णतस्तु श्यामः स श्याम इति ३, 'सबलेत्ति यावरे'त्ति शबल इति चापरो देव इति प्रक्रमः, स च तेषामन्त्रहृदयादीन्युत्पाट्यति वर्णतश्च शबलः कर्बुर इत्यर्थः ४, यः शक्तिकुन्तादिषु नारकान् प्रोतयति स रौद्रत्वाद्रौद्र इति ५, यस्तु तेषामेवाङ्गोपाङ्गानि भनक्ति सोऽत्यन्तरौद्रत्वादुपरौद्र इति ६, यः पुनः कण्ढादिषु पचति वर्णतश्च कालः स काल इति ७, 'महाकालेत्ति यावरे'त्ति महाकाल इति चापरो देव इति प्रक्रमः, तत्र यः श्लक्ष्णमांसानि खण्डयित्वा खादयति वर्णतश्च महाकालः स महाकाल इति ८, 'असी य'त्ति यो देवोऽसिना तान् छिनत्ति सोऽसिरेव ९, 'असिपत्ते'त्ति अस्याकारपत्रवद्वनविकुर्वणादसिपत्रः १०, 'कुंभे'त्ति कुम्भादिषु तेषां पचनात्कुम्भः १, क्वचित्पठ्यते 'असिपत्ते धणूं कुंभे'त्ति, तत्रासिपत्रकुम्भौ पूर्ववत्, 'धणु'त्ति यो धनुर्विमुक्तार्द्धचन्द्रादिभिर्बाणैः कर्णादीनां छेदनभेदनादि करोति स धनुरिति ११, 'वालु'त्ति कदम्बपुष्पाद्याकारवालुकासु यः पचति स वालुक इति १२, 'वेयरणीति य' वैतरणीति च देव इति प्रक्रमः, तत्र पूयरुधिरादिभृतवैतरण्यभिधाननदीविकुर्वणाद्वैतरणीति १३, 'खरस्सर'त्ति यो वज्रकण्टकाकुलशाल्मलीवृक्षमारोप्य नारकं खरस्वरं कुर्वन्तं कुर्वन् वा कर्षत्यसौ खरस्वरः १४, 'महाघोसि'त्ति, यस्तु भीतान् पलायमानान्नारकान् पशूनिव वाटकेषु महाघोषं कुर्वन्निरुणद्धि स महाघोष इति १५, 'एए पन्नरसाहिय'त्ति 'एवम्' उक्तन्यायेन 'एते' यमयथाऽपत्यदेवाः पञ्चदश आख्याता इति ॥

कहि णं भंते ! सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो वरुणस्स महारन्नो सयंजले नामं महाविमाणे पन्नत्ते ?, गोयमा ! तस्स णं सोहम्मवडिंसयस्स महाविमाणस्स पच्चत्थिमेणं सोहम्मे कप्पे असंखेज्जाइं जहा सोमस्स तहा विमा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वरुण-लोकपालस्य वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१६७]

दीप अनुक्रम [१९९]

णरायहाणीओ भाणियव्वा जाव पासायवडिंसया नवरं नामणाणत्तं । सक्कस्स णं वरुणस्स महारन्नो इमे देवा आणा० जाव चिट्ठंति, तं०–वरुणकाइयाति वा वरुणदेवयकाइयाइ वा नागकुमारा नागकुमारीओ उदहिकुमारा उदहिकुमारीओ थणियकुमारा थणियकुमारीओ जे यावण्णे तहप्पगारा सव्वे ते तब्भत्तिया जाव चिट्ठंति ॥ जंबूदीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं जाइं इमाइं समुप्पज्जंति, तंजहा–अतिवासाति वा मंदवासाति वा सुवुट्ठीति वा दुव्वुट्ठीति वा उदब्भेयाति वा उदप्पीलाइ वा उदवाहाति वा पव्वाहाति वा गामवाहाति वा जाव सन्निवेसवाहाति वा पाणक्खया जाव तेसिं वा वरुणकाइयाणं देवाणं सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो वरुणस्स महारन्नो जाव अहावच्चाभिन्नाया होत्था, तंजहा–कक्कोडए कद्दमए अंजणे संखवालए पुंडे पलासे मोएज्जए दहिमुहे अयंपुले कायरिए। सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो वरुणस्स महारण्णो देसूणाइं दो पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता, अहावच्चाभिन्नायाणं देवाणं एगं पलिओवमं ठिती पण्णत्ता, एवंमहिड्ढीए जाव वरुणे महाराया ३। (सूत्रं १६७)

'अतिवास'त्ति अतिशयवर्षा वेगवद्वर्षणानीत्यर्थः, 'मन्दवास'त्ति शनैर्वर्षणानि 'सुवुट्ठि'त्ति धान्यादिनिष्पत्तिहेतुः 'दुव्वुट्ठि'त्ति धान्याद्यनिष्पत्तिहेतुः 'उदब्भेय'त्ति उदकोद्भेदाः गिरितटादिभ्यो जलोद्भवाः 'उदप्पील'त्ति उदकोत्पीलाः–तडागादिषु जलसमूहाः 'उदवाह'त्ति अपकृष्टान्यल्पान्युदकवहनानि, तान्येव प्रकर्षवन्ति प्रवाहाः, इह प्राणक्षयादयो जलकृता द्रष्टव्याः, 'कक्कोडए'त्ति कर्कोटकाभिधानोऽनुवेलन्धरनागराजावासभूतः पर्वतो लवणसमुद्रे ऐशान्यां दिश्यस्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वरुण-लोकपालस्य वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१६७]

दीप अनुक्रम [१९९]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१ ॥१९९॥

तन्निवासी नागराजः कर्कोटकः, 'कद्दमए'त्ति आग्नेय्यां तथैव विद्युत्प्रभपर्वतस्तत्र कर्दमको नाम नागराजः 'अंजणे'त्ति वेलम्बाभिधानवायुकुमारराजस्य लोकपालोऽञ्जनाभिधानः 'संखवालए'त्ति धरणाभिधाननागराजस्य लोकपालः शङ्खपालको नाम, शेषास्तु पुण्ड्रादयोऽप्रतीता इति ॥

कहि णं भंते ! सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो वेसमणस्स महारन्नो वग्गूणामं महाविमाणे पण्णत्ते ?, गोयमा ! तस्स णं सोहम्मवडिंसयस्स महाविमाणस्स उत्तरेणं जहा सोमस्स विमाणरायहाणिवत्तव्वया तहा नेयव्वा जाव पासायवडिंसया । सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो वेसमणस्स महारन्नो इमे देवा आणाउववायवयणनिद्देसे चिट्ठंति, तंजहा–वेसमणकाइयाति वा वेसमणदेवकाइयाति वा सुवन्नकुमारा सुवन्नकुमारीओ दीवकुमारा दीवकुमारीओ दिसाकुमारा दिसाकुमारीओ वाणमंतरा वाणमंतरीओ जे यावन्ने तहप्पगारा सव्वे ते तब्भत्तिया जाव चिट्ठंति ॥ जंबूदीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं जाइं इमाइं समुप्पज्जंति, तंजहा–अयागराइ वा तउयागराइ वा तंबयागराइ वा एवं सीसागराइ वा हिरन्न० सुवन्न० रयण० वयरागराइ वा वसुहारातिवा हिरन्नवासाति वा सुवन्नवासाति वा रयण० वइर० आभरण० पत्त० पुप्फ० फल० बीय० मल्ल० वण्ण० चुन्न० गंध० वत्थवासाइ वा हिरन्नवुट्ठीइ वा सु० र० व० आ० प० पु० फ० बी० ब० चुन्न० गंधवुट्ठी वत्थवुट्ठीति वा भायणवुट्ठीति वा खीरवुट्ठीति वा सुयालाति वा दुक्कालाति वा अप्पग्घाति वा महग्घाति वा सुभिक्खाति वा दुभिक्खाति वा कयविक्कयाति वा सन्निहियाति वा संनिचयाति वा निहीति वा णिहाणाति वा चिरपोराणाइं पहीण-

३ शतके उद्देशः ७ शक्रलोकपालौवरुण वैश्रमणौ सू १६७-१६८

॥१९९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेसमण-लोकपालस्य वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१६८]

दीप अनुक्रम [२००]

सामियाति वा पहीणसेउयाति वा [पहीणमग्गाणि वा] पहीणगोत्तागाराइ वा उच्छिन्नसामियाति वा उच्छिन्नसेउयाति वा उच्छिन्नगोत्तागाराति वा सिंघाडगतिगचउक्कचच्चरचउम्मुहमहापहपहेसु नगरनिद्धमणेसु वा सुसाणगिरिकंदरसंतिसेलोवट्ठाणभवणगिहेसु संनिक्खित्ताइं चिट्ठंति, एताइं सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो वेसमणस्स महारन्नो(ण)अण्णायाइं अदिट्ठाइं असुयाइं अविन्नायाइं तेसिं वा वेसमणकाइयाणं देवाणं, सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो वेसमणस्स महारन्नो इमे देवा अहावच्चाभिन्नाया होत्था, तंजहा–पुन्नभद्दे माणिभद्दे सालिभद्दे सुमणभद्दे चक्के रक्खे पुन्नरक्खे सव्वाणे [पव्वाणे] सव्वजसे सव्वकामे समिद्धे अमोहे असंगे, सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो वेसमणस्स महारन्नो दो पलिओवमाणि ठिती पण्णत्ता, अहावच्चाभिण्णायाणं देवाणं एगं पलिओवमं ठिती पण्णत्ता, एमहिड्ढीए जाव वेसमणे महाराया। सेवं भंते २॥ (सूत्रं १६८)॥ तृतीयशतके सप्तमोद्देशकः समाप्तः॥ ३–७॥

'वसुहाराइ व'त्ति तीर्थकरजन्मादिष्वाकाशाद्रव्यवृष्टिः 'हिरण्णवास'त्ति हिरण्यं–रूप्यं घटितसुवर्णमित्यन्ये, वर्षोऽल्पतरो वृष्टिस्तु महतीति वर्षवृष्ट्योर्भेदः, माल्यं तु ग्रथितपुष्पाणि वर्णः–चन्दनं चूर्णोगन्धद्रव्यसम्बन्धी गन्धाः–कोष्ठपुटपाकाः 'सुभिक्खाइ व'त्ति सुकाले दुष्काले वा भिक्षुकाणां भिक्षासमृद्धयः दुर्भिक्षास्तूक्तविपरीताः 'संनिहि'(याइ)त्ति घृतगुडादिस्थापनानि 'संनिचय(याइ)'त्ति धान्यसञ्चयाः 'निहीइ व'त्ति लक्षादिप्रमाणद्रव्यस्थापनानि 'निहाणाइं व'त्ति भूमिगतसहस्रादिसङ्ख्यद्रव्यस्य सञ्चयाः, किंविधानि?इत्याह—'चिरपोराणाइं'ति चिरप्रतिष्ठितत्वेन पुराणानि चिरपुराणानि अत एव 'पहीणसामियाइं'ति स्वल्पीभूतस्वामिकानि 'पहीणसेउयाइं'ति प्रहीणाः–अल्पीभूताः सेक्कारः–सेचकः– धन-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	वेसमण-लोकपालस्य वर्णनं

प्रश्नेप्तारो येषां तानि तथा, प्रहीणमार्गाणि वा, 'पहीणगोत्तागाराइं'ति प्रहीणं–विरलीभूतमानुषं गोत्रागारं–तत्स्वामि-गोत्रगृहं येषां तानि तथा, 'उच्छिन्नसामियाइं'ति निःसत्ताकीभूतप्रभूणि 'नगरनिद्धमणेसु'त्ति 'नगरनिर्द्धमनेषु' नगर-जलनिर्गमनेषु 'सुसाणगिरिकन्दरसंतिसेलोवट्ठाणभवणगिहेसु'त्ति गृहशब्दस्य प्रत्येकं सम्बन्धात् श्मशानगृहं–पितृ-वनगृहं गिरिगृहं–पर्वतोपरिगृहं कन्दरगृहं–गुहा शान्तिगृहं–शान्तिकर्मस्थानं शैलगृहं–पर्वतमुत्कीर्य यत्कृतं उपस्थानगृहं-आस्थानमण्डपो भवनगृहं–कुटुम्बिवसनगृहमिति ॥ तृतीयशते सप्तमः ॥ ३–७ ॥

रायगिहे नगरे जाव पज्जुवासमाणे एवं वदासी–असुरकुमाराणं भंते ! देवाणं कति देवा आहेवच्चं जाव विहरंति ?, गोयमा ! दस देवा आहेवच्चं जाव विहरंति, तंजहा–चमरे असुरिंदे असुरराया सोमे जमे वरुणे वेसमणे बली वइरोयणिंदे वइरोयणराया सोमे जमे वरुणे वेसमणे । नागकुमाराणं भंते ! पुच्छा, गोयमा ! दस देवा आहेवच्चं जाव विहरंति, तंजहा–धरणे नागकुमारिंदे नागकुमारराया कालवाले कोलवाले सेलवाले संखवाले भूयाणंदे नागकुमारिंदे णागकुमारराया कालवाले कोलवाले संखवाले सेलवाले, जहा नागकुमारिं-दाणं एयाए वत्तव्वयाए णेयव्वं एवं इमाणं नेयव्वं, सुवन्नकुमाराणं वेणुदाली चित्ते विचित्ते चित्तपक्खे विचित्तपक्खे विज्जुकुमाराणं हरिकंत हरिस्सह पभ १ सुप्पभ २ पभकंत ३ सुप्पभकंत ४, अग्गिकुमाराणं अग्गिसीहे अग्गिमाणव तेउ तेउसीहे तेउकंते तेउप्पभे दीवकुमाराणं पुण्णविसिट्ठरूयसुरूयरूयकंतरूयप्पभा उदहिकुमाराणं जलकंते जलप्पभ जलजलरूयजलकंतजलप्पभा, दिसाकुमाराणं अमियगति अमियवाहण

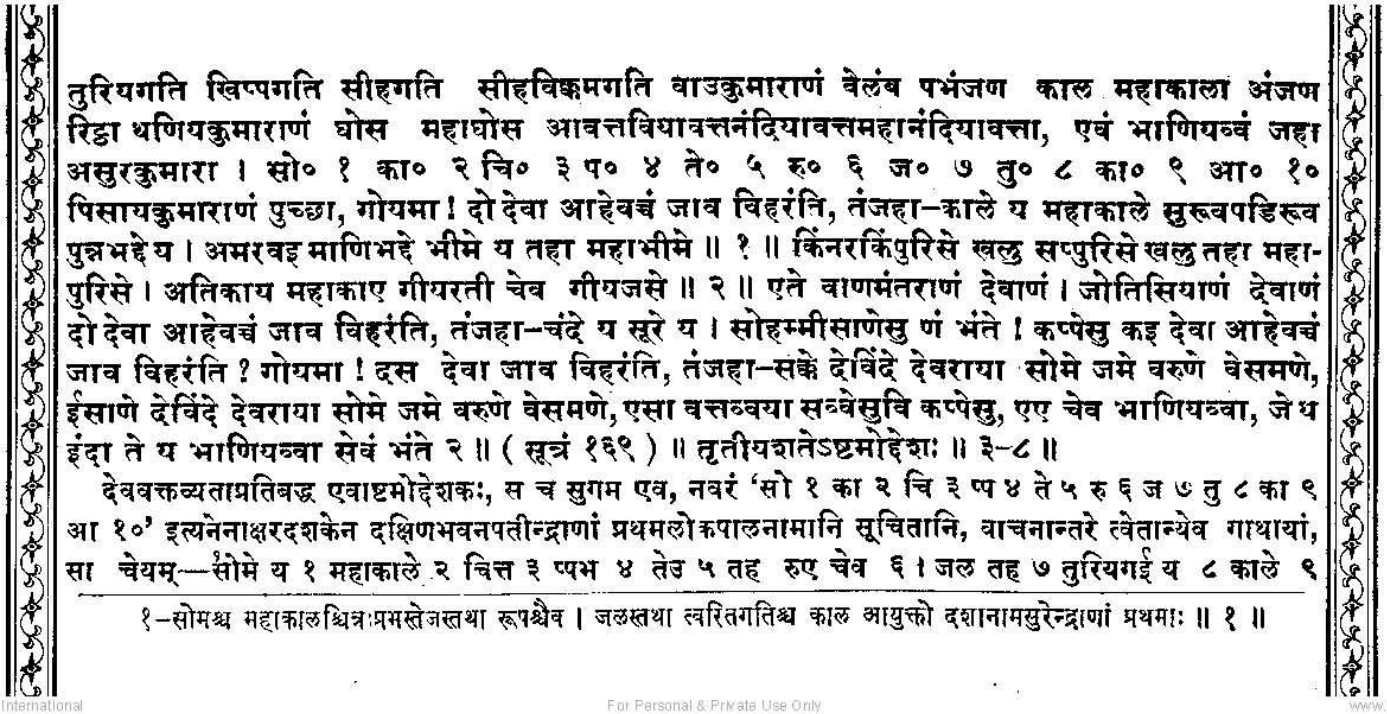
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र तृतीय-शतके सप्तम-उद्देशक: समाप्त:

अथ तृतीय-शतके अष्टम-उद्देशक: आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१६९]

दीप अनुक्रम [२०१--२०४]



तुरियगति खिप्पगति सीहगति सीहविक्कमगति वाउकुमाराणं वेलंब पभंजण काल महाकाला अंजण रिट्ठा थणियकुमाराणं घोस महाघोस आवत्तवियावत्तनंदियावत्तमहानंदियावत्ता, एवं भाणियव्वं जहा असुरकुमारा । सो० १ का० २ चि० ३ प० ४ ते० ५ रु० ६ ज० ७ तु० ८ का० ९ आ० १० पिसायकुमाराणं पुच्छा, गोयमा ! दो देवा आहेवच्चं जाव विहरंति, तंजहा–काले य महाकाले सुरूवपडिरूव पुन्नभद्दे य । अमरवइ माणिभद्दे भीमे य तहा महाभीमे ॥ १ ॥ किंनरकिंपुरिसे खलु सप्पुरिसे खलु तहा महापुरिसे । अतिकाय महाकाए गीयरती चेव गीयजसे ॥ २ ॥ एते वाणमंतराणं देवाणं । जोतिसियाणं देवाणं दो देवा आहेवच्चं जाव विहरंति, तंजहा–चंदे य सूरे य । सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु कइ देवा आहेवच्चं जाव विहरंति ? गोयमा ! दस देवा जाव विहरंति, तंजहा–सक्के देविंदे देवराया सोमे जमे वरुणे वेसमणे, ईसाणे देविंदे देवराया सोमे जमे वरुणे वेसमणे, एसा वत्तव्वया सव्वेसुवि कप्पेसु, एए चेव भाणियव्वा, जे य इंदा ते य भाणियव्वा सेवं भंते २ ॥ (सूत्रं १६९) ॥ तृतीयशतेऽष्टमोद्देशः ॥ ३–८ ॥

देववक्तव्यताप्रतिबद्ध एवाष्टमोद्देशकः, स च सुगम एव, नवरं 'सो १ का २ चि ३ प्प ४ ते ५ रु ६ ज ७ तु ८ का ९ आ १०' इत्यनेनाक्षरदशकेन दक्षिणभवनपतीन्द्राणां प्रथमलोकपालनामानि सूचितानि, वाचनान्तरे त्वेतान्येव गाथायां, सा चेयम्—सोमे य १ महाकाले २ चित्त ३ प्पभ ४ तेउ ५ तह रुए चेव ६ । जल तह ७ तुरियगई य ८ काले ९

१–सोमश्च महाकालश्चित्रःप्रभस्तेजस्तथा रूपश्चैव । जलस्तथा त्वरितगतिश्च काल आयुक्तो दशानामसुरेन्द्राणां प्रथमाः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	लोकपालस्य नाम एवं वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१६९]

दीप अनुक्रम [२०१--२०४]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १ ॥२०१॥

आउत्त १० पढमा उ ॥ १ ॥ एवं द्वितीयादयोऽप्यभ्यूह्याः, इह च पुस्तकान्तरेऽयमर्थो दृश्यते–दाक्षिणात्येषु लोकपालेषु प्रतिसूत्रं यौ तृतीयचतुर्थौ तावौदीच्येषु चतुर्थतृतीयाविति,'एसा वत्तव्वया सव्वेसुवि कप्पेसु एए चेव भाणियव्व'त्ति,'एषा' सौधर्मेशानोक्ता वक्तव्यता सर्वेष्वपि कल्पेषु इन्द्रनिवासभूतेषु भणितव्या–सनत्कुमारादीन्द्रयुग्मेषु पूर्वेन्द्रापेक्षयोत्तरेन्द्रसम्बन्धिनां लोकपालानां तृतीयचतुर्थयोर्व्यत्ययो वाच्य इत्यर्थः, तथैत एव सोमादयः प्रतिदेवलोकं वाच्या न तु भवनपतीन्द्राणामिवापरापरे, 'जे य इंदा ते य भाणियव्वा' शक्रादयो दशेन्द्रा वाच्याः, अन्तिमे देवलोकचतुष्टये इन्द्रद्वयभावादिति ॥ तृतीयशतेऽष्टमोद्देशकः ॥ ३–८ ॥

३ शतके उद्देशः ८ असुरादीनां लोकपालाः सू १६९ उद्देश ९ इन्द्रियं सू १७०

देवानां चावधिज्ञानसद्भावेऽपीन्द्रियोपयोगोऽप्यस्तीत्यत इन्द्रियविषयं निरूपयन्नवमोद्देशकमाह—

रायगिहे जाव एवं वदासी–कतिविहे णं भंते ! ते इंदियविसए पण्णत्ते ?, गोयमा ! पंचविहे इंदियविसए पण्णत्ते, तं०–सोतिंदियविसए जीवाभिगमे जोतिसियउद्देसो नेयव्वो अपरिसेसो ॥ (सूत्रं १७०) ॥ तृतीयशते नवमोद्देशः ॥ ३–९ ॥

'रायगिहे' इत्यादि, 'जीवाभिगमे' जोइसियउद्देसओ णेयव्वो'त्ति, स चायम्—'सोइंदियविसए जाव फासिंदियविसए। सोइंदियविसए णं भंते ! पोग्गलपरिणामे कतिविहे पण्णत्ते?, गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–सुब्भिसद्दपरिणामे य दुब्भिसद्दपरिणामे य' शुभाशुभशब्दपरिणाम इत्यर्थः। 'चक्खिंदियविसए पुच्छा, गोयमा ! दुविहे पन्नत्ते, तंजहा–सुरूवपरि-

॥२०१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र तृतीय-शतके अष्टम-उद्देशक: समाप्त:

अथ तृतीय-शतके नवम-उद्देशक: आरभ्यते

लोकपालस्य नाम एवं वर्णनं, पञ्च-इन्द्रिय-विषयस्य वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१७०]

दीप अनुक्रम [२०५]

णामे य दुरूवपरिणामे य, घाणिंदियविसए पुच्छा, गोयमा ! दुविहे पन्नत्ते, तंजहा–सुब्भिगंधपरिणामे य दुब्भिगंधपरिणामेय, एवं जिब्भिंदियविसए सुरसपरिणामे य दुरसपरिणामे य, फासिंदियविसए सुहफासपरिणामे य दुहफासपरिणामे य' इत्यादि, वाचनान्तरे च 'इंदियविसए उच्चावयसुब्भिणो'त्ति दृश्यते तत्रेन्द्रियविषयं सूत्रं दर्शितमेव, उच्चावयसूत्रं त्वेवम्–'से णूणं भंते ! उच्चावएहिं सद्दपरिणामेहिं परिणममाणा पोग्गला परिणमंतीति वत्तव्वं सिया ?, हंता, गोयमा !' इत्यादि, 'सुब्भिणो'त्ति, इदं सूत्रं पुनरेवम्–'से णूणं भंते ! सुब्भिसद्दपोग्गला दुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति ? हंता गोयमा !' इत्यादीति ॥ तृतीयशते नवमः ॥ ३–९ ॥

रायगिहे जाव एवं वयासी–चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुररन्नो कति परिसाओ पण्णत्ताओ ?, गोयमा ! तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तंजहा–समिता चंडा जाया, एवं जहाणुपुव्वीए जावऽच्चुओ कप्पो, सेवं भंते २ ॥ (सूत्रं १७१) ॥ तइयसए दसमोद्देसो ततियं सयं समत्तं ॥ ३–१० ॥

प्रागिन्द्रियाण्युक्तानि, तद्वन्तश्च देवा इति देववक्तव्यताप्रतिबद्धो दशम उद्देशकः, स च सुगम एव, नवरं 'समिय'त्ति समिका उत्तमत्वेन स्थिरप्रकृतितया समवती, स्वप्रभोर्वा कोपौत्सुक्यादिभावान् शमयत्युपादेयवचनतयेति शमिकः शमिता वा–अनुद्धता, 'चंड'त्ति तथाविधमहत्त्वाभावेनेषत्कोपादिभावाच्चण्डा, 'जाय'त्ति प्रकृतिमहत्त्ववर्जितत्वेनास्थानकोपादीनां जातत्वाज्जाता, एषा च क्रमेणाभ्यन्तरा मध्यमा बाह्या चेति, तत्राभ्यन्तरा समुत्पन्नप्रयोजनेन प्रभुणा गौरवार्हत्वादाकारितैव पार्श्वे समागच्छति तां चासौ अर्थपदं पृच्छति, मध्यमा तूभयथाऽप्यागच्छति अल्पतरगौरवविषयत्वात्, अभ्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र तृतीय-शतके नवम-उद्देशकः समाप्तः

अथ तृतीय-शतके दशम-उद्देशकः आरभ्यते

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२०२॥

न्तरया चादिष्टमर्थपदं तया सह प्रबध्नाति–ग्रन्थिबन्धं करोतीत्यर्थः, बाह्या त्वनाकारितैवागच्छति अल्पतमगौरवविषय-त्वात्, तस्याश्चार्थपदं वर्णयत्येव, तत्राद्यायां चतुर्विंशतिर्देवानां सहस्राणि द्वितीयायामष्टाविंशतिः तृतीयायां द्वात्रिंश-दिति, तथा देवीशतानि क्रमेणाध्युष्टानि त्रीणि सार्द्धं च द्वे इति, तथा तद्देवानामायुः क्रमेणार्द्धतृतीयानि पल्योपमानि द्वे सार्द्धे चेति देवीनां तु सार्द्धमेकं तदर्द्धं चेति, एवं बलेरपि नवरं देवप्रमाणं तदेव चतुश्चतुःसहस्रहीनं, देवीमानं तु शतेन शतेनाधिकमिति, आयुर्मानमपि तदेव नवरं पल्योपमाधिकमिति, एवमच्युतान्तानामिन्द्राणां प्रत्येकं तिस्रः पर्षदो भवन्ति, नामतो देवादिप्रमाणतः स्थितिमानतश्च क्वचित्किञ्चिद्भेदेन भेदवत्यस्ताश्च जीवाभिगमादवसेया इति ॥ तृतीयशते दशमः ॥ ३–१० ॥ समाप्तं च तृतीयशतम् ॥ ३ ॥

श्रीपञ्चमाङ्गस्य शतं तृतीयं, व्याख्यातमाश्रित्य पुराणवृत्तिम् । शक्तोऽपि गन्तुं भजते हि यानं, पान्थः सुखार्थं किमु यो न शक्तः ? ॥ १ ॥

इति श्रीभगवतीसूत्रवृत्तौ श्रीमदभयदेवाचार्यीयायां समाप्तं तृतीयं शतकम्

३ शतके उद्देशः १० असुरपषदः सू १७१

॥२०२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	अत्र तृतीय-शतके दशम-उद्देशक: समाप्त: **तत् समाप्ते तृतीयं शतकं अपि समाप्तं**

प्रत सूत्रांक [१७२] + गाथा

दीप अनुक्रम [२०७--२०९]

॥ अथ चतुर्थशतकम् ॥

तृतीयशते प्रायेण देवाधिकार उक्तोऽतस्तदधिकारवदेव चतुर्थं शतं, तस्य पुनरुद्देशकार्थाधिकारसङ्ग्रहाय गाथा—

चत्तारि विमाणेहिं चत्तारि य होंति रायहाणीहिं । नेरइए लेस्साहि य दस उद्देसा चउत्थसए ॥ १ ॥ रायगिहे नगरे जाव एवं वयासी–ईसाणस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो कति लोगपाला पण्णत्ता ?, गोयमा ! चत्तारि लोगपाला पण्णत्ता, तंजहा–सोमे जमे वेसमणे वरुणे । एएसि णं भंते ! लोगपालाणं कति विमाणा पण्णत्ता ?, गोयमा ! चत्तारि विमाणा पण्णत्ता, तंजहा–सुमणे सव्वओभद्दे वग्गू सुवग्गू । कहि णं भंते ! ईसाणस्स देविंदस्स देवरन्नो सोमस्स महारन्नो सुमणो नामं महाविमाणे पण्णत्ते ?, गोयमा ! जंबूदीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए जाव ईसाणे णामं कप्पे पण्णत्ते, तत्थ णं जाव पंचवडेंसया पण्णत्ता, तंजहा–अंकवडेंसए फलिहवडेंसए रयणवडेंसए जायरूववडेंसए मज्झे य तत्थ ईसाणवडेंसए, तस्स णं ईसाणवडेंसयस्स महाविमाणस्स पुरच्छिमेणं तिरियमसंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं वीतिवतित्ता एत्थ णं ईसाणस्स ३ सोमस्स २ सुमणे नामं महाविमाणे पण्णत्ते अद्धतेरसजोयण जहा सक्कस्स वत्तव्वया तहिय-सए तहा ईसाणस्सवि जाव अच्चणिया समत्ता । चउण्हवि लोगपालाणं विमाणे २ उद्देसओ, चउसु विमाणेसु चत्तारि उद्देसा अपरिसेसा, नवरं ठितिए नाणत्तं–'आदिदुय तिभागूणा पलिया १ धणयस्स होंति दो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ चतुर्थं शतकं आरभ्यते

अथ चतुर्थ-शतके १-४ उद्देशकाः आरब्धाः

प्रत सूत्रांक [१७२] + गाथा

दीप अनुक्रम [२०७--२०९]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२०३॥

चेव । दो सतिभागा वरुणे पलियमहावच्चदेवाणं ॥ १ ॥ (सूत्रं १७२) चउत्थे सए पढमबिइयतइयचउत्था उद्देसा समत्ता ॥ ४–४ ॥

चत्तारीत्यादि व्यक्तार्था 'अच्चणिय'त्ति सिद्धायतने जिनप्रतिमाद्यर्चनमभिनवोत्पन्नस्य सोमाख्यलोकपालस्येति ॥ चतुर्थशते चत्वारः ॥ ४–४ ॥

रायहाणिसुवि चत्तारि उद्देसा भाणियव्वा जाव एवमहिड्ढीए जाव वरुणे महाराया ॥ (सूत्रं १७३) ॥ चउत्थे सए पंचमछट्ठसत्तमट्ठमा उद्देसा समत्ता ॥ ४–८ ॥

'रायहाणीसु चत्तारि उद्देसया भाणियव्वा' ते चैवम्–'कहिं णं भंते ! ईसाणस्स देविंदस्स देवरन्नो सोमस्स महारन्नो सोमानामं रायहाणी पण्णत्ता ?, गोयमा ! सुमणस्स महाविमाणस्स अहे सपक्खिं' इत्यादिपूर्वोक्तानुसारेण जीवाभिग-मोक्तविजयराजधानीवर्णकानुसारेण चैकैक उद्देशकोऽध्येतव्य इति, नन्वेता राजधान्यः किल सोमादीनां शक्रस्येशानस्य च सम्बन्धिनां लोकपालानां प्रत्येकं चतस्र एकादशे कुण्डलवराभिधाने द्वीपे द्वीपसागरप्रज्ञप्त्यां श्रूयन्ते, उक्तं हि तत्सङ्ग्रहिण्याम्–"कुंडलनगस्स अब्भिंतरपासे होंति रायहाणीओ । सोलस उत्तरपासे सोलस पुणदक्खिणे पासे ॥ १ ॥

१ कुण्डलनगस्याभ्यन्तरपार्श्वे राजधान्यो भवन्ति । षोडश उत्तरपार्श्वे षोडश पुनर्दक्षिणे पार्श्वे ॥ १ ॥

४ शतके उद्देशः ४ ईशानलोक पालानां विमानराज धान्यः सू १७२-१७३

॥२०३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र चतुर्थ-शतके १-४ उद्देशका: समाप्ता:

अथ चर्तुथ-शतके ५-८ उद्देशका: आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१७३]

दीप अनुक्रम [२१०]

जा उत्तरेण सोलस ताओ ईसाणलोगपालाणं । सक्कस्स लोगपालाण दक्खिणे सोलस हवंति ॥ २ ॥" एताश्च सोमप्रभयमप्रभवैश्रमणप्रभवरुणप्रभाभिधानानां पर्वतानां प्रत्येकं चतसृषु दिक्षु भवन्ति, तत्र वैश्रमणनगरीरादौ कृत्वाऽभिहितम्—"मज्झे होइ चउण्हं वेसमणपभो नगुत्तमो सेलो । रइकरयपव्वयसमो उव्वेहुच्चत्तविक्खंभे ॥ ३ ॥ तस्स य नगुत्तमस्स उ चउद्दिसिं होंति रायहाणीओ । जंबूदीवसमाओ विक्खंभायामओ ताओ ॥ ४ ॥ पुव्वेण अयलभद्दा समक्कसा रायहाणि दाहिणओ । अवरेण ऊ कुबेरा धणप्पभा उत्तरे पासे ॥ ५ ॥ एएणेव कमेणं वरुणस्सवि होंति अवरपासंमि । वरुणप्पभसेलस्सवि चउद्दिसिं रायहाणीओ ॥ ६ ॥ पुव्वेण होइ वरुणा वरुणपभा दक्खिणे दिसीभाए । अवरेण होइ कुमुया उत्तरओ पुंडरगिणीया ॥ ७ ॥ एएणेव कमेणं सोमस्सवि होंति अवरपासंमि । सोमप्पभसेलस्सवि चउद्दिसिं रायहाणीओ ॥ ८ ॥

१—या उत्तरस्यां षोडश ता ईशानलोकपालानां शक्रस्य लोकपालानां दक्षिणस्मिन् पार्श्वे षोडश भवन्ति ॥ २ ॥ चतुर्णां मध्ये वैश्रमणप्रभो नगोत्तमः शैलो भवति । उद्वेधोच्चत्वविष्कम्भे रतिकरकपर्वतसमः ॥ ३ ॥ तस्य च नगोत्तमस्यैव चतसृषु दिक्षु राजधान्यो भवन्ति जम्बूद्वीपसमास्ता विष्कम्भायामतः ॥ ४ ॥ पूर्वस्यामचलभद्रा समुत्कर्षा दक्षिणस्यां राजधानी । अपरस्यां तु कुबेरा उत्तरपार्श्वे धनप्रभा ॥ ५ ॥ एतेनैव क्रमेण वरुणस्यापि भवन्त्यपरपार्श्वे । वरुणप्रभशैलस्यापि चतसृषु दिक्षु राजधान्यः ॥ ६ ॥ पूर्वस्यां भवति वरुणा दक्षिणदिग्भागे वरुणप्रभा । अपरस्यां भवति कुमुदा उत्तरतः पुण्डरीकिणी च ॥ ७ ॥ एतेनैव क्रमेण सोमस्यापि भवन्त्यपरपार्श्वे । सोमप्रभशैलस्यापि चतसृषु दिक्षु राजधान्यः ॥ ८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१७३]

दीप अनुक्रम [२१०]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१

॥२०४॥

पुव्वेण होइ सोमा सोमप्पभ दक्खिणे दिसीभाए । सिवपागारा अवरेण होइ नलियाण(य)उत्तरओ ॥ ९ ॥ एएणेव कमेणं अंतकरस्सवि य होंति अवरेणं । समवित्तिप्पभसेलस्स चउद्दिसिं रायहाणीओ ॥ १० ॥ पुव्वेण ऊ विसाला अतिविसाला उ दाहिणे पासे । सेज्जप्पभाऽवरेणं अमुया पुण उत्तरे पासे ॥११॥" इति, इह च ग्रन्थे सौधर्मावतंसकादीशानावतंसकाच्चासङ्ख्येया योजनकोटीर्व्यतिक्रम्य प्रत्येकं पूर्वादिदिक्षु स्थितानि यानि सन्ध्याप्रभादीनि सुमनःप्रभृतीनि च विमानानि तेषामधोऽसङ्ख्याता योजनकोटीरवगाह्य प्रत्येकमेकैका नगर्युक्ता ततः कथं न विरोधः इति ?, अत्रोच्यते, अन्यास्ता नगर्यो याः कुण्डलेऽभिधीयन्ते एताश्चान्या इति, यथा शक्रेशानाग्रमहिषीणां नन्दीश्वरद्वीपे कुण्डलद्वीपे चेति ॥ चतुर्थशतेऽष्टमः ॥ ४–८ ॥

अनन्तरं देववक्तव्यतोक्ताऽथ वैक्रियशरीरसाधर्म्यान्नारकवक्तव्यताप्रतिबद्धो नवमोद्देशक उच्यते, तत्रेदमादिसूत्रम्—

नेरइए णं भंते ! नेरतिएसु उववज्जइ अनेरइए नेरइएसु उववज्जइ पन्नवणाए लेस्सापए ततिओ उद्देसओ भाणियव्वो जाव नाणाइं (सूत्रं १७४) चउत्थसए नवमो उद्देसो समत्तो ॥ ४–९ ॥

'नेरइए ण'मित्यादि, 'लेस्सापए'त्ति सप्तदशपदे 'तइओ उद्देसओ भाणियव्वो'त्ति क्वचिद् द्वितीय इति दृश्यते स

१ पूर्वस्यां भवति सोमा सोमप्रभा दक्षिणदिग्भागे । अपरस्यां शिवप्राकारा उत्तरस्यां भवति नलिना च ॥ ९ ॥ एतेनैव क्रमेण यमस्यापि चापरस्यां भवन्ति । समवृत्तिप्रभशैलस्य चतसृषु दिक्षु राजधान्यः ॥ १० ॥ पूर्वस्यां तु विशाला दक्षिणपार्श्वे त्वतिविशाला । अपरस्यां शय्याप्रभा उत्तरे पार्श्वेऽमूका ॥ ११ ॥

४ शतके उद्देशः ९ निश्चयेनना रकोत्पादः

॥२०४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र चतुर्थ-शतके ५-८ उद्देशका: समाप्ता:

अथ चर्तुथ-शतके नवम-उद्देशक: आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१७४]

दीप अनुक्रम [२११]

चापपाठ इति, स चैवम्–'गोयमा ! नेरइए नेरइएसु उववज्जइ नो अणेरइए नेरइएसु उववज्जइ' इत्यादि, अयं चास्यार्थः– नैरयिको नैरयिकेषूत्पद्यते न पुनरनैरयिकः, कथं पुनरेतत् ?, उच्यते, यस्मान्नारकादिभवोपग्राहकमायुरेवातो नारकाद्यायुः-प्रथमसमयसंवेदनकाल एव नारकादिव्यपदेशो भवति ऋजुसूत्रनयदर्शनेन, यत उक्तं नयविद्भिर्ऋजुसूत्रस्वरूपनिरूपणं कुर्वद्भिः–"पलालं न दहत्यग्निर्भिद्यते न घटः क्वचित् । न शून्यान्निर्गमोऽस्तीह, न च शून्यं प्रविश्यते ॥ १ ॥ नारकव्यतिरिक्तश्च, नरके नोपपद्यते । नरकान्नारकश्चास्य, न कश्चिद्विप्रमुच्यते ॥ २ ॥" इत्यादीनि, 'जाव नाणाइं'ति, अयमुद्देशको ज्ञानाधिकारावसानोऽध्येतव्यः, स चायम्–'कण्हलेस्से णं भंते ! जीवे कयरेसु णाणेसु होज्जा ?, गोयमा ! दोसु वा तिसु वा चउसु वा णाणेसु होज्जा, दोसु होज्जमाणे आभिणिबोहियसुयणाणेसु होज्जा' इत्यादि ॥ चतुर्थशते नवमः ॥ ४–९ ॥

लेश्याधिकारात्तद्वत एव दशमोद्देशकस्येदमादिसूत्रम्—

से नूणं भंते ! कण्हलेस्सा नीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए तावण्णत्ताए एवं चउत्थो उद्देसओ पन्नवणाए चेव लेस्सापदे नेयव्वो जाव–परिणामवण्णरसगंधसुद्धअपसत्थसंकिलिट्ठण्हा । गतिपरिणामपदेसोगाहवग्गणाठाणमप्पबहुं ॥ १ ॥ सेवं भंते ! २ त्ति ॥ (सूत्रं १७५) चउत्थसए दसमो उद्देसो समत्तो ॥४–१०॥ चउत्थं सयं समत्तं ॥ ४ ॥

'से नूण'मित्यादि, 'तारूवत्ताए'त्ति तद्रूपतया–नीललेश्यास्वभावेन, एतदेव व्यनक्ति–'तावण्णत्ताए'त्ति तस्या इव–नीललेश्याया इव वर्णो यस्याः सा तद्वर्णा तद्भावस्तत्ता तया तद्वर्णतया, 'एवं चउत्थो उद्देसओ' इत्यादिवचनादेवं द्रष्ट-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र चतुर्थ-शतके नवम-उद्देशकः समाप्तः

अथ चर्तुथ-शतके दशम-उद्देशकः आरभ्यते

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१ ॥२०५॥

व्यम्–'तागंधत्ताए तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो २ परिणमति ?, हंता गोयमा ! कण्हलेसा नीललेसं पप्प तारूवत्ताए ५ भुज्जो २ परिणमति' अयमस्य भावार्थः–यदा कृष्णलेश्यापरिणतो जीवो नीललेश्यायोग्यानि द्रव्याणि गृहीत्वा कालं करोति तदा नीललेश्यापरिणत उत्पद्यते 'जल्लेसाइं दव्वाइं परियाइत्ता कालं करेइ तल्लेसे उववज्जइ'त्ति वचनात्, अतः कारणमेव कार्यं भवति, 'कण्हलेसा नीललेसं पप्पे'त्यादि तु कृष्णनीललेश्ययोर्भेदपरमुपचारादुक्तमिति, 'से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ किण्ह-लेसा नीललेसं पप्प तारूवत्ताए ५ भुज्जो २ परिणमइ ?, गोयमा ! से जहाणामए–खीरे दूसिं पप्प [तक्रमित्यर्थः] सुद्धे वा वत्थे रागं पप्प तारूवत्ताए भुज्जो २ परिणमइ, से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–कण्हलेसा' इत्यादि, एतेनैवाभिलापेन नीललेश्या कापोतीं कापोती तैजसीं तैजसी पद्मां पद्मा शुक्लां प्राप्य तद्रूपत्वादिना परिणमतीति वाच्यं, अथ कियद्दूरमय-मुद्देशको वाच्यः ? इत्याह-'जावे'त्यादि 'परिणामे'त्यादिद्वारगाथोक्तद्वारपरिसमाप्तिं यावदित्यर्थः, तत्र परिणामो दर्शित एव, तथा 'वन्न'त्ति कृष्णादिलेश्यानां वर्णो वाच्यः, स चैवम्–'कण्हलेसा णं भंते ! केरिसिया वन्नेणं पण्णत्ते ?' त्यादि, उत्तरं तु कृष्ण-लेश्या कृष्णा जीमूतादिवत् नीललेश्या नीला भृङ्गादिवत् कापोती कापोतवर्णा खदिरसारादिवत् तैजसी लोहिता शश-करक्तादिवत् पद्मा पीता चम्पकादिवत् शुक्ला २ शङ्खादिवदिति, तथा 'रस'त्ति रसस्तासां वाच्यः, तत्र कृष्णा तिक्तरसा निम्बादिवत् नीला कटुकरसा नागरवत् कापोती कषायरसा अपक्वबदरवत् तेजोलेश्या अम्लमधुरा पक्वाम्रादिफलवत् पद्मलेश्या कटुककषायमधुररसा चन्द्रप्रभासुरादिवत् शुक्ललेश्या मधुररसा गुडादिवत्, 'गंध'त्ति लेश्यानां गन्धो वाच्यः, तत्राद्यास्तिस्रो दुरभिगन्धाः अन्त्यास्तु तदितराः 'सुद्ध'त्ति अन्त्याः शुद्धा आद्यास्त्वितराः 'अप्पसत्थ'त्ति आद्या अप्रशस्ता

४ शतके उद्देशः१० लेश्यानाम न्योऽन्यंप-रिणामः सू १७५

॥२०५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	लेश्याया: परिणामस्य वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१७५] + गाथा

दीप अनुक्रम [२१२-२१४]

अन्त्यास्तु प्रशस्ताः 'संकिलिट्ठ'त्ति आद्याः सङ्क्लिष्टा अन्त्यास्त्वितराः 'उण्ह'त्ति अन्त्या उष्णाः स्निग्धाश्च आद्यास्तु शीता रूक्षाश्च 'गति'त्ति आद्या दुर्गतिहेतवोऽन्त्यास्तु सुगतिहेतवः 'परिणाम'त्ति लेश्यानां कतिविधः परिणामः ? इति वाच्यं, तत्रासौ जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदात्त्रिधा उत्पातादिभेदाद्वा त्रिधेति 'पएस'त्ति आसां प्रदेशा वाच्यास्तत्र प्रत्येकमनन्तप्रदेशिका एता इति 'ओगाह'त्ति अवगाहना आसां वाच्या तत्रैता असङ्ख्यातप्रदेशावगाढाः 'वग्गण'त्ति वर्गणा आसां वाच्याः, तत्र वर्गणाः कृष्णलेश्यादियोग्यद्रव्यवर्गणाः, ताश्चानन्ता औदारिकादिवर्गणावत्, 'ठाण'त्ति तारतम्येन विचित्राध्यवसायनिबन्धनानि कृष्णादिद्रव्यवृन्दानि तानि चासङ्ख्येयानि अध्यवसायस्थानानामसङ्ख्यातत्वादिति, 'अप्पबहुं'ति लेश्यास्थानानामल्पबहुत्वं वाच्यं, तच्चैवम्–'एएसि णं भंते ! कण्हलेसाठाणाणं जाव सुक्कलेसाठाणाण य जहन्नगाणं दव्वट्ठयाए ३ कयरे२हिंतो अप्पा वा ४ ?, गोयमा ! सव्वत्थोवा जहन्नगा काउलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए जहन्नगा नीललेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा जहन्नगा कण्हलेसाठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा जहन्नगा तेउलेसाठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा जहन्नगा पम्हलेसाठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा जहन्नगा सुक्कलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा' इत्यादीनि ॥ चतुर्थशते दशमः ॥ ४–१० ॥ चतुर्थं शतं समाप्तम् ॥ ४ ॥ स्वतः सुबोधेऽपि शते तुरीये, व्याख्या मया काचिदियं विदग्धा । दुग्धे सदा स्वादुतमे स्वभावात्, क्षेपो न युक्तः किमु शर्करायाः ? ॥ १ ॥

॥ इति श्रीमद्व्याख्याप्रज्ञप्तौ श्रीमदभयदेवाचार्यीयवृत्तौ चतुर्थं शतकं समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र चतुर्थ-शतके दशम-उद्देशकः समाप्तः **तत् समाप्ते चतुर्थं शतकं अपि समाप्तं**

लेश्यायाः परिणामस्य वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१७६] + गाथा

दीप अनुक्रम [२१५--२१६]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२०६॥

॥ अथ पञ्चमं शतकम् ॥

चतुर्थशतान्ते लेश्या उक्ताः, पञ्चमशते तु प्रायो लेश्यावन्तो निरूप्यन्ते इत्येवंसम्बन्धस्यास्योद्देशकसङ्ग्रहाय गाथेयम्—

चंपरवि १ अनिल २ गंठिय ३ सद्दे ४ छउमायु ५–६ एयण ७ णियंठे ८ । रायगिहं ९ चंपाचंदिमा १० य दस पंचमंमि सए ॥ १ ॥ तेणं कालेणं २ चंपानामं नगरी होत्था, वन्नओ, तीसे णं चंपाए नगरीएपुण्णभद्दे नामे चेइए होत्था वण्णओ, सामी समोसढे जाव परिसा पडिगया । तेणं कालेणं २ समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूतीणामं अणगारे गोयमगोत्तेणं जाव एवं वदासी–जंबूदीवे णं भंते ! दीवे सूरिया उदीणपादीणमुग्गच्छ पादीणदाहिणमागच्छंति, पादीणदाहिणमुग्गच्छ दाहिणपडीणमागच्छंति, दाहिणपडीणमुग्गच्छ पडीणउदीणमागच्छंति पडीणउदीणं उग्गच्छ उदीचिपादीणमागच्छंति ?, हंता ! गोयमा ! जंबूदीवे णं दीवे सूरिया उदीचिपाईणमुग्गच्छ जाव उदीचिपाईणमागच्छंति ॥ (सूत्रं १७६) ॥

'चंपे'त्यादि, तत्र चम्पायां रविविषयप्रश्ननिर्णयार्थः प्रथम उद्देशकः १ 'अनिल'त्ति वायुविषयप्रश्ननिर्णयार्थो द्वितीयः २ 'गंठिय'त्ति जालग्रन्थिकाज्ञातज्ञापनीयार्थनिर्णयपरस्तृतीयः ३ 'सद्दे'त्ति शब्दविषयप्रश्ननिर्णयार्थश्चतुर्थः ४ 'छउम'त्ति छद्मस्थवक्तव्यतार्थः पञ्चमः ५ 'आउ'त्ति आयुषोऽल्पत्वादिप्रतिपादनार्थः षष्ठः ६ 'एयण'त्ति पुद्गलानामेजनाद्यर्थप्रतिपादकः सप्तमः ७ 'नियंठे'त्ति निर्ग्रन्थीपुत्राभिधानानगारविहितवस्तुविचारसारोऽष्टमः ८ 'रायगिहं'ति राजगृहनगरविचारणपरो

४ शतक उद्देशः १ पूर्वोत्तराद्या सु सूर्यभ्रमः १७६

॥२०६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ पंचमं शतकं आरभ्यते

अत्र पंचम-शतके प्रथम-उद्देशक: आरब्ध:

नवमः ९ 'चंपाचंदिमा य'त्ति चम्पायां नगर्यां च चन्द्रमसो वक्तव्यतार्थो दशमः १०। तत्र प्रथमोद्देशके किञ्चिल्लिख्यते— 'सूरिय'त्ति द्वौ सूर्यौ, जम्बूद्वीपे द्वयोरेव भावात् 'उदीणपाईणं'ति उदगेव उदीचीनं प्रागेव प्राचीनं उदीचीनं च तदुदीच्या आसन्नत्वात् प्राचीनं च तत्प्राच्याः प्रत्यासन्नत्वाद् उदीचीनप्राचीनं–दिगन्तरं क्षेत्रदिगपेक्षया पूर्वोत्तरदिगित्यर्थः 'उग्गच्छ'त्ति उद्गत्य क्रमेण तत्रोद्गमनं कृत्वेत्यर्थः 'पाईणदाहिणं'ति प्राचीनदक्षिणं दिगन्तरं पूर्वदक्षिणमित्यर्थः 'आगच्छंति'त्ति आगच्छतः क्रमेणैवास्तं यात इत्यर्थः, इह चोद्गमनमस्तमयं च द्रष्टृलोकविवक्षयाऽवसेयं, तथाहि–येषामदृश्यौ सन्तौ दृश्यौ तौ स्यातां ते तयोरुद्गमनं व्यवहरन्ति येषां तु दृश्यौ सन्तावदृश्यौ स्तस्ते तयोरस्तमयं व्यवहरन्तीत्यनियतावुदयास्तमयौ, आह च–"[1]जह २ समए २ पुरओ संचरइ भक्खरो गयणे । तह तह इओवि नियमा जायइ रयणीय भावत्थो ॥१॥ एवं च सइ नराणं उदयत्थमणाइं होंतऽनियताइं । सइ देसभेएँ कस्सइ किंची ववदिस्सए नियमा ॥ २ ॥ सइ चेव य निद्दिट्ठो भद्दमुहुत्तो कमेण सव्वेसिं । केसिंचीदाणिंपि य विसयपमाणे रवी जेसिं ॥ ३ ॥" इत्यादि, अनेन च सूत्रेण सूर्यस्य चतसृषु दिक्षु गतिरुक्ता, ततश्च ये मन्यन्ते सूर्यः पश्चिमसमुद्रं प्रविश्य पातालेन गत्वा पुनः पूर्वसमुद्रमुदेतीत्यादि तन्मतं निषिद्धमिति ॥ इह च सूर्यस्य सर्वतो गमनेऽपि प्रतिनियतत्वात्तत्प्रकाशस्य रात्रिदिवसविभागोऽस्तीति तं क्षेत्रभेदेन दर्शयन्नाह–

१ यथा यथा समये समये गगने भास्करः पुरतः संचरति तथा तथेतोऽपि नियमाद्रात्रिर्जायत इति भावार्थः ॥ १ ॥ एवं च सति नराणामुदयास्तमयनावनियतौ भवतः । सति देशभेदे कस्यचित्किञ्चिद्व्यपदिश्यते नियमात् ॥ २ ॥ सकृच्चैव सर्वेषां क्रमेण भद्रमुहूर्त्तो निर्दिष्ट इति । केषाञ्चिदिदानीमपि च स येषां रविर्विषयप्रमाणे ॥ ३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१७७]

दीप अनुक्रम [२१७]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १

॥२०७॥

जया णं भंते ! जंबूदीवे २ दाहिणड्ढे दिवसे भवति तदा णं उत्तरड्ढे दिवसे भवति जदा णं उत्तरड्ढेवि दिवसे भवति तदा णं जंबूदीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमपच्चत्थिमेणं राती भवति ?, हंता गोयमा ! जया णं जंबूदीवे २ दाहिणड्ढेवि दिवसे जाव राती भवति। जदा णं भंते! जंबू० मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमेणं दिवसे भवति तदा णं पच्चत्थिमेणवि दिवसे भवति जया णं पच्चत्थिमेणं दिवसे भवति तदा णं जंबूदीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं राती भवति ?, हंता गोयमा ! जदा णं जंबू० मंदरपुरच्छिमेणं दिवसे जाव राती भवति, जदा णं भंते ! जंबूदीवे २ दाहिणड्ढे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति तदा णं उत्तरड्ढेवि उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति जदा णं उत्तरड्ढे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति तदा णं जंबूदीवे २ मंदरस्स पुरच्छिमपच्चत्थिमेणं जहन्निया दुवालसमुहुत्ता राती भवति ?, हंता गोयमा ! जदा णं जंबू० जाव दुवालसमुहुत्ता राती भवति। जदा णं जंबू० मंदरस्स पुरच्छिमेणं उक्कोसए अट्ठारस जाव तदा णं जंबूदीवे २ पच्चत्थिमेणवि उक्को० अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति जया णं पच्चत्थिमेणं उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति तदा णं भंते ! जंबूदीवे २ उत्तर० दुवालसमुहुत्ता जाव राती भवति ?, हंता गोयमा ! जाव भवति। जया णं भंते ! जंबू० दाहिणड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति तदा णं उत्तरे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति जदा णं उत्तरे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति तदा णं जंबू० मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमपच्चत्थिमेणं सातिरेगा दुवालस मुहुत्ता राती भवति ?, हंता गोयमा ! जदा णं जंबू० जाव राती भवति। जदा णं

५ शतके उद्देशः १ पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणाऽर्कयोः दिन रात्रिमानं सू १७७

॥२०७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जम्बुद्विपे दिवस-रात्री-परिमानं

प्रत सूत्रांक [१७७]

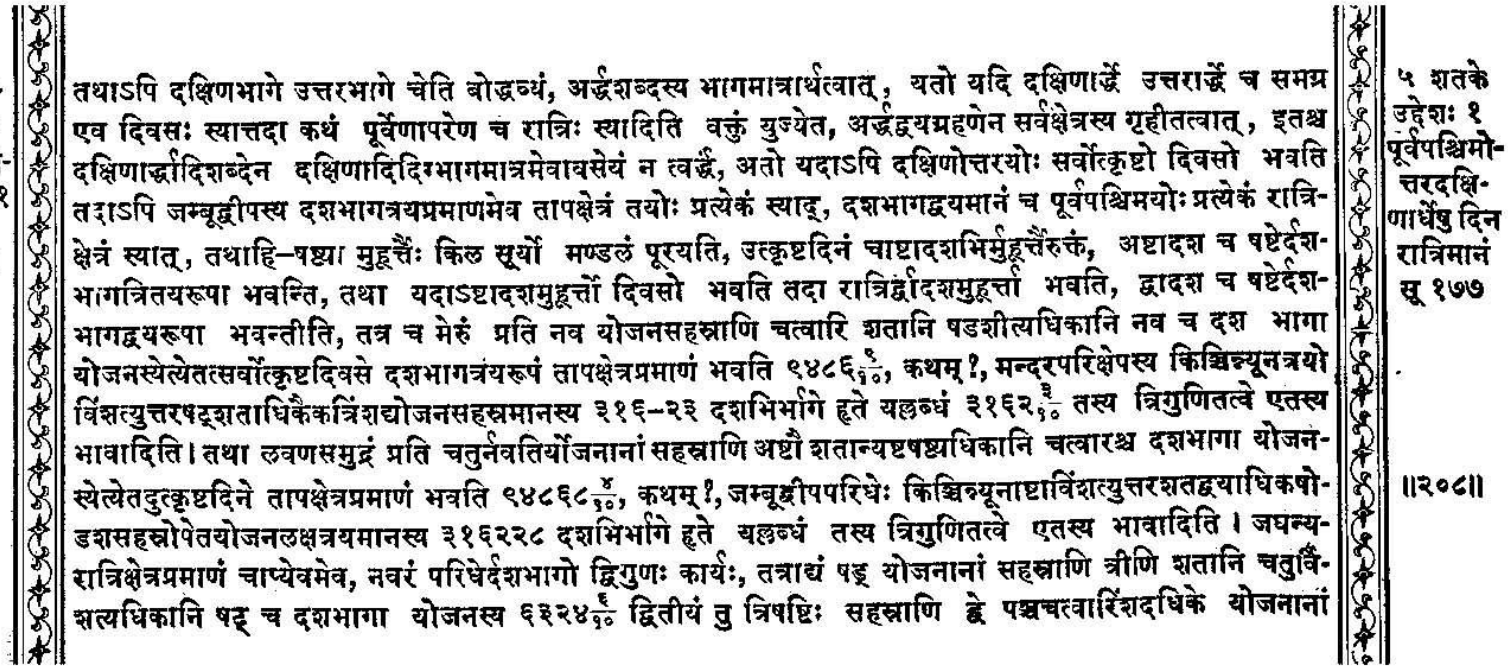
दीप अनुक्रम [२१७]

भंते ! जंबूद्दीवे २ पुरच्छिमेणं अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति तदा णं पच्चत्थिमेणं अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति जदा णं पच्चत्थिमेणं अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति तदा णं जंबू० २ मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं साइरेगा दुवालसमुहुत्ता राती भवति ?, हंता गोयमा ! जाव भवति ॥ एवं एतेणं कमेणं ओसारेयव्वं सत्तरसमुहुत्ते दिवसे तेरसमुहुत्ता राती भवति सत्तरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे सातिरेगा तेरसमुहुत्ता राती सोलसमुहुत्ते दिवसे चोद्दसमुहुत्ता राई सोलसमुहुत्ताणंतरे दिवसे सातिरेगचोद्दसमुहुत्ता राती पन्नरसमुहुत्ते दिवसे पन्नरसमुहुत्ता राती भवति पन्नरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे सातिरेगा पन्नरसमुहुत्ता राती चोद्दसमुहुत्ते दिवसे सोलसमुहुत्ता राती चोद्दसमुहुत्ताणंतरे दिवसे सातिरेगा सोलसमुहुत्ता राती तेरसमुहुत्ते दिवसे सत्तरसमुहुत्ता राती तेरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे सातिरेगा सत्तरसमुहुत्ता राती। जया णं जंबू० दाहिणड्ढे जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति तया णं उत्तरड्ढेवि, जया णं उत्तरड्ढे तया णं जंबूद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमेणं उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राती भवति ?, हंता गोयमा ! एवं चेव उच्चारेयव्वं जाव राई भवति। जया णं भंते ! जंबू० मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमेणं जहन्नए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति तया णं पच्चत्थिमेणवि० तया णं जंबू० मंदरस्स उत्तरदाहिणेणं उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राती भवति ?, हंता गोयमा ! जाव राती भवति ॥ (सूत्रं १७७) ॥

'जया ण'मित्यादि, इह सूर्यद्वयभावादेकदैव दिग्द्वये दिवस उक्तः, इह च यद्यपि दक्षिणार्द्धे तथोत्तरार्द्धे इत्युक्तं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	जम्बुद्विपे दिवस-रात्री-परिमानं



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥२०८॥

तथाऽपि दक्षिणभागे उत्तरभागे चेति बोद्धव्यं, अर्द्धशब्दस्य भागमात्रार्थत्वात्, यतो यदि दक्षिणार्द्धे उत्तरार्द्धे च समग्र एव दिवसः स्यात्तदा कथं पूर्वेणापरेण च रात्रिः स्यादिति वक्तुं युज्येत, अर्द्धद्वयग्रहणेन सर्वक्षेत्रस्य गृहीतत्वात्, इतश्च दक्षिणार्द्धादिशब्देन दक्षिणादिदिग्भागमात्रमेवावसेयं न त्वर्द्धं, अतो यदाऽपि दक्षिणोत्तरयोः सर्वोत्कृष्टो दिवसो भवति तदाऽपि जम्बूद्वीपस्य दशभागत्रयप्रमाणमेव तापक्षेत्रं तयोः प्रत्येकं स्याद्, दशभागद्वयमानं च पूर्वपश्चिमयोः प्रत्येकं रात्रि-क्षेत्रं स्यात्, तथाहि–षष्ट्या मुहूर्त्तैः किल सूर्यो मण्डलं पूरयति, उत्कृष्टदिनं चाष्टादशभिर्मुहूर्त्तैरुक्तं, अष्टादश च षष्टेर्दश-भागत्रितयरूपा भवन्ति, तथा यदाऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा रात्रिर्द्वादशमुहूर्त्ता भवति, द्वादश च षष्टेर्दश-भागद्वयरूपा भवन्तीति, तत्र च मेरुं प्रति नव योजनसहस्राणि चत्वारि शतानि षडशीत्यधिकानि नव च दश भागा योजनस्येत्येतत्सर्वोत्कृष्टदिवसे दशभागत्रयरूपं तापक्षेत्रप्रमाणं भवति ९४८६$\frac{९}{१०}$, कथम्?, मन्दरपरिक्षेपस्य किञ्चिन्न्यूनत्रयो विंशत्युत्तरषट्शताधिकैकत्रिंशद्योजनसहस्रमानस्य ३१६–२३ दशभिर्भागे हृते यल्लब्धं ३१६२$\frac{३}{१०}$ तस्य त्रिगुणितत्वे एतस्य भावादिति। तथा लवणसमुद्रं प्रति चतुर्नवतियोजनानां सहस्राणि अष्टौ शतान्यष्टषष्ट्यधिकानि चत्वारश्च दशभागा योजन-स्येत्येतदुत्कृष्टदिने तापक्षेत्रप्रमाणं भवति ९४८६८$\frac{४}{१०}$, कथम्?, जम्बूद्वीपपरिधेः किञ्चिन्यूनाष्टाविंशत्युत्तरशतद्वयाधिकषो-डशसहस्रोपेतयोजनलक्षत्रयमानस्य ३१६२२८ दशभिर्भागे हृते यल्लब्धं तस्य त्रिगुणितत्वे एतस्य भावादिति। जघन्य-रात्रिक्षेत्रप्रमाणं चाप्येवमेव, नवरं परिधेर्दशभागो द्विगुणः कार्यः, तत्राद्यं षड् योजनानां सहस्राणि त्रीणि शतानि चतुर्वि-शत्यधिकानि षट् च दशभागा योजनस्य ६३२४$\frac{६}{१०}$ द्वितीयं तु त्रिषष्टिः सहस्राणि द्वे पञ्चचत्वारिंशदधिके योजनानां

५ शतके उद्देशः १ पूर्वपश्चिमो-त्तरदक्षि-णार्धेषु दिन रात्रिमानं सू १७७

॥२०८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शते षट् च दशभागा योजनस्य ६३२४५$\frac{६}{१०}$, सर्वलघौ च दिवसे तापक्षेत्रमनन्तरोक्तरात्रिक्षेत्रतुल्यं रात्रिक्षेत्रं त्वनन्तरोक्तता-
पक्षेत्रतुल्यमिति, आयामतस्तु तापक्षेत्रं जम्बूद्वीपमध्ये पञ्चचत्वारिंशद्योजनानां सहस्राणीति, लवणे च त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि
त्रीणि शतानि त्रयस्त्रिंशदधिकानि त्रिभागश्च योजनस्य ३३३३३$\frac{१}{३}$, उभयमीलने त्वष्टसप्ततिः सहस्राणि त्रीणि शतानि त्रयस्त्रिं-
शदधिकानि योजनत्रिभागश्चेति ७८३३३$\frac{१}{३}$। 'उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ'त्ति इह किल सूर्यस्य चतुरशी-
त्यधिकं मण्डलशतं भवति, तत्र किल जम्बूद्वीपमध्ये पञ्चषष्टिर्मण्डलानि भवन्ति, एकोनविंशत्यधिकं च तेषां शतं लवणस-
मुद्रस्य मध्ये भवति, तत्र च सर्वाभ्यन्तरे मण्डले यदा वर्त्ततेसूर्यस्तदाऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, कथम् ?, यदा सर्वबाह्ये
मण्डले वर्त्ततेऽसौ तदा सर्वजघन्यो द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, ततश्च द्वितीयमण्डलादारभ्य प्रतिमण्डलं द्वाभ्यां मुहूर्त्तै-
कषष्टिभागाभ्यां दिनस्य वृद्धौ त्र्यशीत्यधिकशततमे मण्डले षट् मुहूर्त्ता वर्द्धन्त इत्येवमष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, अत
एव द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, त्रिंशन्मुहूर्त्तत्वादहोरात्रस्य । 'अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे'त्ति यदा सर्वाभ्यन्तरमण्डलानन्तरे
मण्डले वर्त्तते सूर्यस्तदा मुहूर्त्तैकषष्टिभागद्वयहीनाष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, स चाष्टादशमुहूर्त्तादिवसादनन्तरोऽष्टादश-
मुहूर्त्तानन्तरमिति व्यपदिष्टः, 'सातिरेगा दुवालसमुहुत्ता राइ'त्ति द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामधिका द्वादशमुहूर्त्ता
'राई भवइ'त्ति रात्रिप्रमाणं भवतीत्यर्थः, यावता भागेन दिनं हीयते तावता रात्रिर्वर्द्धते, त्रिंशन्मुहूर्त्तत्वादहोरात्रस्येति ॥
'एवं एएणं कमेणं' एवमित्युपसंहारे 'एतेन' अनन्तरोक्तेन 'जया णं भंते ! जंबूद्दीवे २ दाहिणड्ढे' इत्यनेनेत्यर्थः, 'ओसा-
रेयव्वं'ति दिनमानं ह्रस्वीकार्यं, तदेव दर्शयति–'सत्तरसे'त्यादि, तत्र सर्वाभ्यन्तरमण्डलानन्तरमण्डलादारभ्यैकत्रिंशत्तम-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१७७]

दीप अनुक्रम [२१७]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥२०९॥

मण्डलार्द्धे यदा सूर्यस्तदा सप्तदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, पूर्वोक्तहानिक्रमेण त्रयोदशमुहूर्त्ता च रात्रिरिति। 'सत्तरस-मुहुत्ताणंतरे'त्ति मुहूर्त्तैकषष्टिभागद्वयहीनसप्तदशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसः, अथं च द्वितीयादारभ्य द्वात्रिंशत्तममण्डलार्द्धे भवति, एवमनन्तरत्वमन्यत्राप्यूह्यं,'साइरेगतेरसमुहुत्ता राइ'त्ति मुहूर्त्तैकषष्टिभागद्वयेन सातिरेकत्वम्, एवं सर्वत्र 'सोल-समुहुत्ते दिवसे'त्ति द्वितीयादारभ्यैकषष्टितममण्डले षोडशमुहूर्त्तो दिवसो भवति,'पन्नरसमुहुत्ते दिवसे'त्ति द्विनवतितम-मण्डलार्द्धे वर्त्तमाने सूर्ये,'चोद्दसमुहुत्ते दिवसे'त्ति द्वाविंशत्युत्तरशततमे मण्डले,'तेरसमुहुत्ते दिवसे'त्ति सार्धद्विपञ्चाशदु-त्तरशततमे मण्डले,'बारसमुहुत्ते दिवसे'त्ति त्र्यशीत्यधिकशततमे मण्डले सर्वबाह्य इत्यर्थः॥ कालाधिकारादिदमाह—

जया णं भंते ! जंबू० दाहिणड्ढे वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ तया णं उत्तरड्ढेवि वासाणं पढमे समए पडि-वज्जइ जया णं उत्तरड्ढेवि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ तया णं जंबूदीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमपच-त्थिमेणं अणंतरपुरक्खडसमयंसि वासाणं प० स० प० ?, हंता गोयमा ! जया णं जंबू० २ दाहिणड्ढे वासाणं प० स० पडिवज्जइ तह चेव जाव पडिवज्जइ। जया णं भंते ! जंबू० मंदरस्स० पुरच्छिमेणं वासाणं पढमे स० पडि-वज्जइ तया णं पच्चत्थिमेणंवि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ, जया णं पच्चत्थिमेणंवि वासाणं पढमे समए पडि-वज्जइ तया णं जाव मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं अणंतरपच्छाकडसमयंसि वासाणं प० स० पडिवन्ने भवति ?, हंता गोयमा ! जया णं जंबू० मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमेणं, एवं चेव उच्चारेयव्वं जाव पडिवन्ने भवति॥ एवं जहा समएणं अभिलावो भणिओ वासाणं तहा आवलियाएवि २ भाणियव्वो, आणापाणुणवि ३

५ शतके उद्देशः १ जम्बूद्वीपेशे षेषुचदिन-रात्रिप्रभृति प्रतिपत्तिः सू १७८-१७९

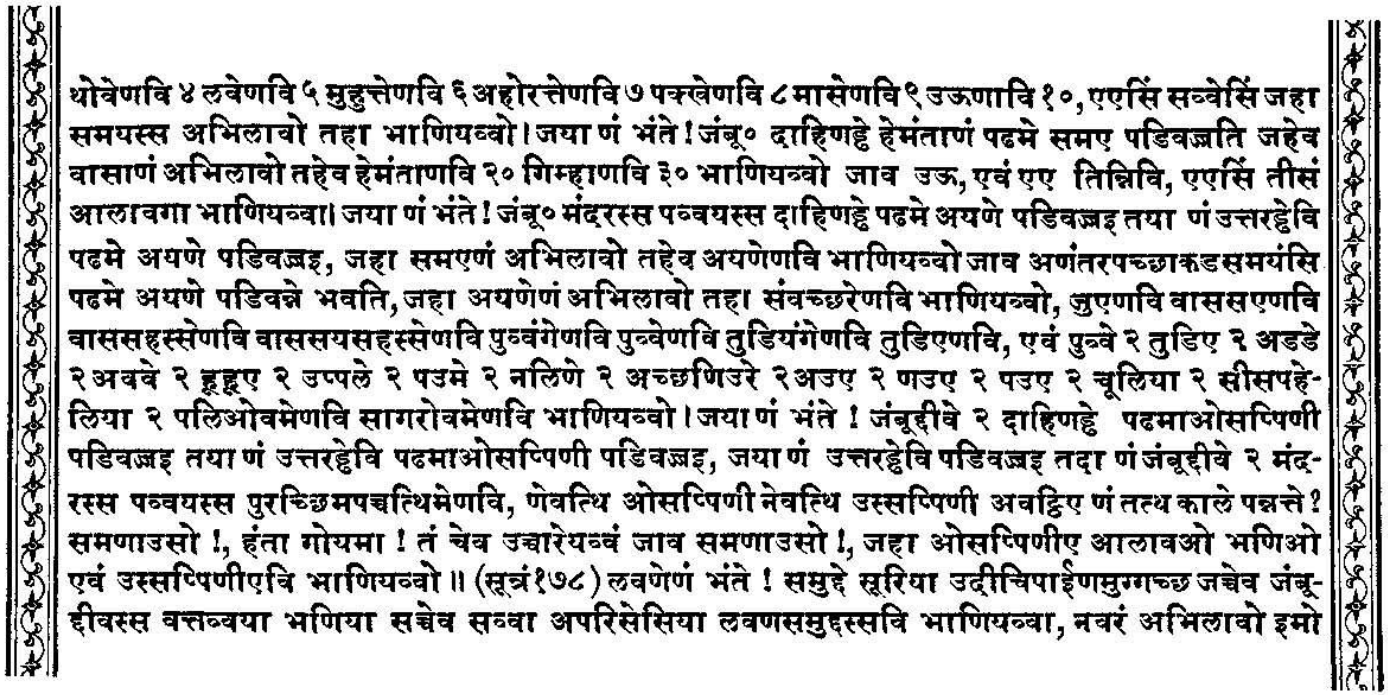
॥२०९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जम्बुद्विपे दिवस-रात्री-परिमानं

प्रत सूत्रांक [१७८--१७९]

दीप अनुक्रम [२१८--२१९]



थोवेणवि ४ लवेणवि ५ मुहुत्तेणवि ६ अहोरत्तेणवि ७ पक्खेणवि ८ मासेणवि ९ उऊणावि १०, एएसिं सव्वेसिं जहा समयस्स अभिलावो तहा भाणियव्वो। जया णं भंते! जंबू० दाहिणड्ढे हेमंताणं पढमे समए पडिवज्जति जहेव वासाणं अभिलावो तहेव हेमंताणवि २० गिम्हाणवि ३० भाणियव्वो जाव उऊ, एवं एए तिन्निवि, एएसिं तीसं आलावगा भाणियव्वा। जया णं भंते! जंबू० मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणड्ढे पढमे अयणे पडिवज्जइ तया णं उत्तरड्ढेवि पढमे अयणे पडिवज्जइ, जहा समएणं अभिलावो तहेव अयणेणवि भाणियव्वो जाव अणंतरपच्छाकडसमयंसि पढमे अयणे पडिवन्ने भवति, जहा अयणेणं अभिलावो तहा संवच्छरेणवि भाणियव्वो, जुएणवि वाससएणवि वाससहस्सेणवि वाससयसहस्सेणवि पुव्वंगेणवि पुव्वेणवि तुडियंगेणवि तुडिएणवि, एवं पुव्वे २ तुडिए २ अडडे २ अववे २ हूहूए २ उप्पले २ पउमे २ नलिणे २ अच्छणिउरे २ अउए २ णउए २ पउए २ चूलिया २ सीसपहेलिया २ पलिओवमेणवि सागरोवमेणवि भाणियव्वो। जया णं भंते! जंबूद्दीवे २ दाहिणड्ढे पढमाओसप्पिणी पडिवज्जइ तया णं उत्तरड्ढेवि पढमाओसप्पिणी पडिवज्जइ, जया णं उत्तरड्ढेवि पडिवज्जइ तदा णं जंबूद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमपच्चत्थिमेणवि, णेवत्थि ओसप्पिणी नेवत्थि उस्सप्पिणी अवट्ठिए णं तत्थ काले पन्नत्ते? समणाउसो!, हंता गोयमा! तं चेव उच्चारेयव्वं जाव समणाउसो!, जहा ओसप्पिणीए आलावओ भणिओ एवं उस्सप्पिणीएवि भाणियव्वो॥ (सूत्रं१७८) लवणेणं भंते! समुद्दे सूरिया उद्दीचिपाईणमुग्गच्छ जच्चेव जंबूदीवस्स वत्तव्वया भणिया सच्चेव सव्वा अपरिसेसिया लवणसमुद्दस्सवि भाणियव्वा, नवरं अभिलावो इमो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	जम्बुद्विपे दिवस-रात्री-परिमानं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१७८--१७९]

दीप अनुक्रम [२१८--२१९]]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१

॥२१०॥

णेयव्वो–जया णं भंते ! लवणे समुद्दे दाहिणड्ढे दिवसे भवति तं चेव जाव तदा णं लवणे समुद्दे पुरच्छिम-पच्चत्थिमेणं राई भवति, एएणं अभिलावेणं नेयव्वं । जदा णं भंते ! लवणसमुद्दे दाहिणड्ढे पढमाओस्सप्पिणी पडिवज्जइ तदा णं उत्तरड्ढेवि पढमाओस्सप्पिणी पडिवज्जइ, जदा णं उत्तरड्ढे पढमाओसप्पिणी पडिवज्जइ तदा णं लवणसमुद्दे पुरच्छिमपच्चत्थिमेणं नेवत्थि ओसप्पिणी २ समणाउसो ! ?, हंता गोयमा ! जाव समणा-उसो ! ॥ धायईसंडे णं भंते ! दीवे सूरिया उदीचिपादीणमुग्गच्छ जहेव जंबूदीवस्स वत्तव्वया भणिया सच्चेव धायइसंडस्सवि भाणियव्वा, नवरं इमेणं अभिलावेणं सव्वे आलावगा भाणियव्वा । जया णं भंते ! धाय-इसंडे दीवे दाहिणड्ढे दिवसे भवति तदा णं उत्तरड्ढेवि जया णं उत्तरड्ढेवि तदा णं धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्व-याणं पुरच्छिमपच्चत्थिमेणं राती भवति ?, हंता गोयमा ! एवं चेव जाव राती भवति । जदा णं भंते ! धाय-इसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं पुरच्छिमेण दिवसे भवति तदा णं पच्चत्थिमेणवि, जदाणं पच्चत्थिमेणवि तदा णं धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं उत्तरेणं दाहिणेणं राती भवति ?, हंता गोयमा ! जाव भवति, एवं एएणं अभिलावेणं नेयव्वं जाव जया णं भंते ! दाहिणड्ढे पढमाओस्स० तया णं उत्तरड्ढे जया णं उत्तरड्ढे तया णं धाय-इसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं पुरच्छिमपच्चत्थिमेणं नत्थि ओस० जाव ? समणाउसो !, हंता गोयमा ! जाव समणाउसो !, जहा लवणसमुद्दस्स वत्तव्वया तहा कालोदस्सवि भाणियव्वा, नवरं कालोदस्स नामं भाणि-यव्वं । अब्भिंतरपुक्खरद्धे णं भंते ! सूरिया उदीचिपाईणमुग्गच्छ जहेव धायइसंडस्स वत्तव्वया तहेव अब्भिं-

५ शतके उद्देशः १ जम्बूद्वीपेशेषेषुचदिन-रात्रिप्रभृति प्रतिपत्तिः सू १७८-१७९

॥२१०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लवणसमुद्रे-धायईसंडे-कालोदसमुद्रे-अभ्यंतरपुष्करार्धे दिवस-रात्री-परिमानं

प्रत सूत्रांक [१७८--१७९]

दीप अनुक्रम [२१८--२१९]

तरपुक्खरद्धस्सवि भाणियव्वा नवरं अभिलावो जाव जाणेयव्वो जाव तया णं अब्भिंतरपुक्खरद्धे मंदराणं पुरच्छिमपच्चत्थिमेणं नेवत्थि ओस० नेवत्थि उस्सप्पिणी अवट्ठिए णं तत्थ काले पन्नत्ते समणाउसो ! सेवं भंते २ ॥ (सूत्रं १७९) ॥ पंचमसए पढमो उद्देसो समत्तो ॥ ५–१ ॥

'जया णं भंते ! जंबूदीवे २ दाहिणड्ढे वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ' इत्यादि, 'वासाणं'ति चतुर्मासप्रमाण-वर्षाकालस्य सम्बन्धी 'प्रथमः' आद्यः 'समयः' क्षणः 'प्रतिपद्यते' संपद्यते भवतीत्यर्थः, 'अणंतरपुरक्खडे समयंसि'त्ति अनन्तरो–निर्व्यवधानो दक्षिणार्द्धे वर्षाप्रथमतापेक्षया स चातीतोऽपि स्यादत आह–पुरस्कृतः–पुरोवर्त्ती भविष्यन्नित्यर्थः, समयः–प्रतीतः, ततः पदत्रयस्य कर्मधारयोऽतस्तत्र, 'अणंतरपच्छाकडसमयंसि'त्ति पूर्वापरविदेहवर्षाप्रथमसमयापेक्षया योऽनन्तरपश्चात्कृतोऽतीतः समयस्तत्र दक्षिणोत्तरयोर्वर्षाकालप्रथमसमयो भवतीति ॥ 'एवं जहा समएण'मित्यादि, आवलिकाऽभिलापश्चैवम्–'जया णं भंते ! जंबूदीवे २ दाहिणड्ढे वासाणं पढमा आवलिया पडिवज्जति तया णं उत्तरड्ढेवि, जया णं उत्तरड्ढे वासाणं पढमावलिया पडिवज्जति तया णं जंबूदीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमपच्चत्थिमेणं अणंतरपुर-क्खडसमयंसि वासाणं पढमा आवलिया पडिवज्जइ ?, हंता गोयमा !, इत्यादि । एवमानप्राणादिपदेष्वपि, आवलिका-द्यर्थः पुनरयम्—आवलिका–असङ्ख्यातसमयात्मिका आनप्राणः–उच्छ्वासनिःश्वासकालः स्तोकः–सप्तप्राणप्रमाणः लवस्तु–सप्तस्तोकरूपः मुहूर्त्तः पुनर्लवसप्तसप्ततिप्रमाणः, ऋतुस्तु मासद्वयमानः, 'हेमंताणं'ति शीतकालस्य 'गिम्हाण व'त्ति उष्णकालस्य 'पढमे अयणे'त्ति दक्षिणायनं श्रावणादित्वात्संवत्सरस्य 'जुएणवि'त्ति युगं–पञ्चसंवत्सरमानं 'पुव्वंगेणवि'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लवणसमुद्रे-धायईसंडे-कालोदसमुद्रे-अभ्यंतरपुष्करार्धे दिवस-रात्री-परिमानं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१७८--१७९]

दीप अनुक्रम [२१८--२१९]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१ ॥२११॥

त्ति पूर्वाङ्गं चतुरशीतिर्वर्षलक्षाणां 'पुव्वेणवि'त्ति पूर्वं पूर्वाङ्गमेव चतुरशीतिवर्षलक्षेण गुणितं, एवं चतुरशीतिवर्षलक्षगुणित-मुत्तरोत्तरं स्थानं भवति, चतुर्नवत्यधिकं चाङ्कशतमन्तिमे स्थाने भवतीति । 'पढमा ओसप्पिणि'त्ति अवसर्प्पयति भावानित्येवंशीलाऽवसर्प्पिणी तस्याः प्रथमो विभागः प्रथमावसर्प्पिणी 'उस्सप्पिणि'त्ति उत्सर्प्पयति भावानित्येवंशीला उत्सर्प्पिणीति ॥ पञ्चमशते प्रथमः ॥ ५–१ ॥

प्रथम उद्देशके दिक्षु दिवसादिविभाग उक्तः, द्वितीये तु तास्वेव वातं प्रतिपिपादयिषुर्वातभेदांस्तावदभिधातुमाह—

रायगिहे नगरे जाव एवं वदासी–अत्थि णं भंते ! ईसिं पुरेवाता पत्थावा० मंदावा० महावा० वायंति ? हंता अत्थि, अत्थि णं भंते ! पुरच्छिमेणं ईसिं पुरेवाया पत्थावाया मंदावाया महावाया वायंति ? हंता अत्थि । एवं पच्चत्थिमेणं दाहिणेणं उत्तरेणं उत्तरपुरच्छिमेणं पुरच्छिमदाहिणेणं दाहिणपच्चत्थिमेणं पच्छिमउत्तरेणं ॥ जया णं भंते ! पुरच्छिमेणं ईसिं पुरेवाया पत्थावाया मंदावा० महावा० वायंति तया णं पच्चत्थिमेणवि ईसिं पुरेवाया जया णं पच्चत्थिमेणं ईसिं पुरेवाया तया णं पुरच्छिमेणवि ?, हंता गोयमा ! जया णं पुरच्छिमेणं तया णं पच्चत्थिमेणवि ईसिं जया णं पच्चत्थिमेणवि ईसिं तया णं पुरच्छिमेणवि ईसिं, एवं दिसासु विदिसासु ॥ अत्थि णं भंते ! दीविच्चया ईसिं ?, हंता अत्थि । अत्थि णं भंते ! सामुद्दया ईसिं ?, हंता अत्थि । जया णं भंते ! दीविच्चया ईसिं तया णं सा सामुद्दयावि ईसिं जया णं सामुद्दया ईसिं तया णं दीविच्चयावि

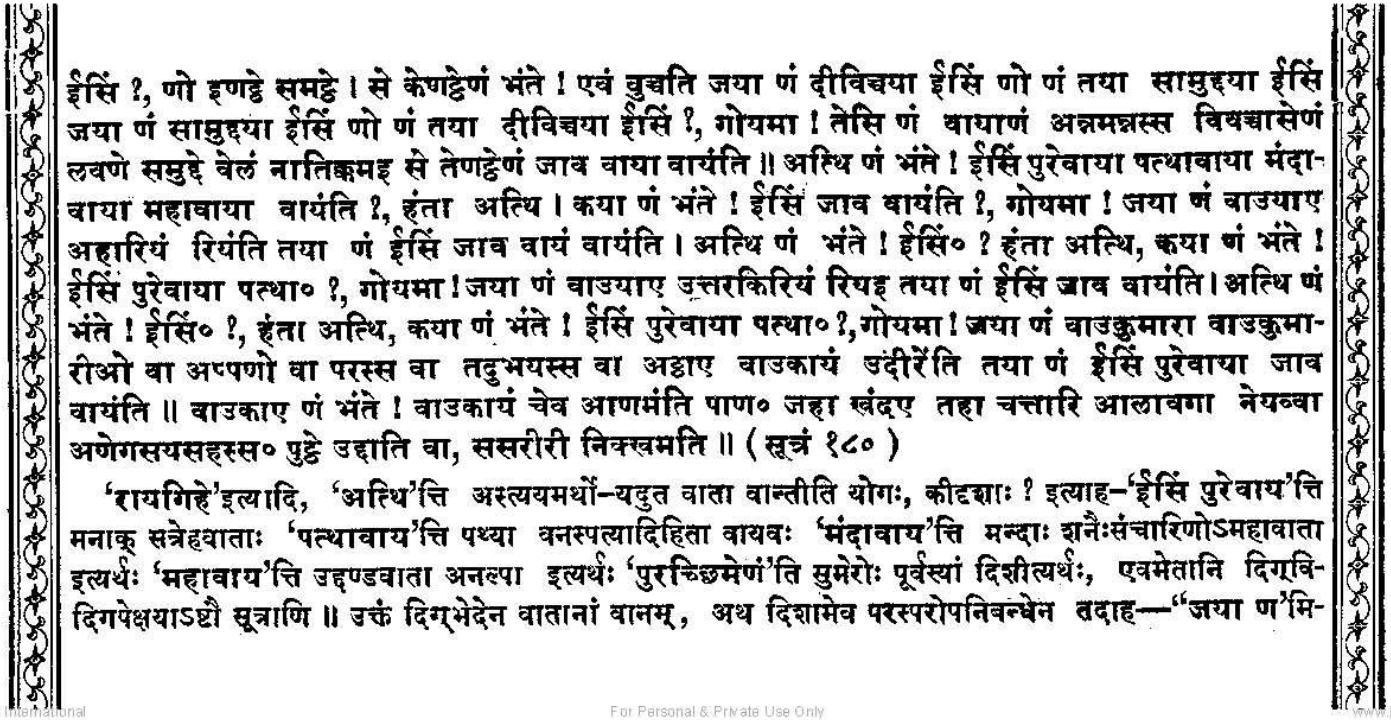
५ शतके उद्देशः २ दिग्विदि-ग्द्वीपसमु-द्रेषु वात-वानप्रकारः सू १८०

॥२११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पंचम-शतके प्रथम-उद्देशक: समाप्त:

अथ पंचम-शतके द्वितीय-उद्देशक: आरभ्यते



ईसिं ?, णो इणट्ठे समट्ठे । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जया णं दीविचया ईसिं णो णं तया सामुद्दया ईसिं जया णं सामुद्दया ईसिं णो णं तया दीविचया ईसिं ?, गोयमा ! तेसि णं वायाणं अन्नमन्नस्स विवच्चासेणं लवणे समुद्दे वेलं नातिक्कमइ से तेणट्ठेणं जाव वाया वायंति ॥ अत्थि णं भंते ! ईसिं पुरेवाया पत्थावाया मंदावाया महावाया वायंति ?, हंता अत्थि । कया णं भंते ! ईसिं जाव वायंति ?, गोयमा ! जया णं वाउयाए अहारियं रियंति तया णं ईसिं जाव वायं वायंति । अत्थि णं भंते ! ईसिं० ? हंता अत्थि, कया णं भंते ! ईसिं पुरेवाया पत्था० ?, गोयमा ! जया णं वाउयाए उत्तरकिरियं रियइ तया णं ईसिं जाव वायंति । अत्थि णं भंते ! ईसिं० ?, हंता अत्थि, कया णं भंते ! ईसिं पुरेवाया पत्था० ?, गोयमा ! जया णं वाउकुमारा वाउकुमारीओ वा अप्पणो वा परस्स वा तदुभयस्स वा अट्ठाए वाउकायं उदीरेंति तया णं ईसिं पुरेवाया जाव वायंति ॥ वाउकाए णं भंते ! वाउकायं चेव आणमंति पाण० जहा खंदए तहा चत्तारि आलावगा नेयव्वा अणेगसयसहस्स० पुट्ठे उद्दाति वा, ससरीरी निक्खमति ॥ (सूत्रं १८०)

'रायगिहे'इत्यादि, 'अत्थि'त्ति अस्त्ययमर्थो–यदुत वाता वान्तीति योगः, कीदृशाः ? इत्याह–'ईसिं पुरेवाय'त्ति मनाक् सत्रेहवाताः 'पत्थावाय'त्ति पथ्या वनस्पत्यादिहिता वायवः 'मंदावाय'त्ति मन्दाः शनैःसंचारिणोऽमहावाता इत्यर्थः 'महावाय'त्ति उद्दण्डवाता अनल्पा इत्यर्थः 'पुरच्छिमेणं'ति सुमेरोः पूर्वस्यां दिशीत्यर्थः, एवमेतानि दिग्विदिगपेक्षयाऽष्टौ सूत्राणि ॥ उक्तं दिग्भेदेन वातानां वानम्, अथ दिशामेव परस्परोपनिबन्धेन तदाह—"जया ण'मि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१८०]

दीप अनुक्रम [२२०]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२१२॥

त्यादि, इह च द्वे दिक्सूत्रे द्वे विदिक्सूत्रे इति ॥ अथ प्रकारान्तरेण वातस्वरूपनिरूपणसूत्रं, तत्र 'दीविचग'त्ति द्वैप्या द्वीपसम्बन्धिनः 'सामुद्दय'त्ति समुद्रस्यैते सामुद्रिकाः 'अन्नमन्नविवचासेणं'ति अन्योऽन्यव्यत्यासेन यदैके ईषत्पुरोवाता-दिविशेषेण वान्ति तदेतरे न तथाविधा वान्तीत्यर्थः, 'वेलं नाइक्कमइ'त्ति तथाविधवातद्रव्यसामर्थ्याद्वेलाया:स्तथास्वभाव-त्वाच्चेति ॥ अथ वातानां वाने प्रकारान्तरेण वातस्वरूपत्रयं सूत्रत्रयेण दर्शयन्नाह—'अत्थि ण'मित्यादि, इह च प्रथम-वाक्यं प्रस्तावनार्थमिति न पुनरुक्तमित्याशङ्कनीयं, 'अहारियं रियंति'त्ति रीतं रीतिः स्वभाव इत्यर्थः तस्यानतिक्रमेण यथारीतं 'रीयते' गच्छति यदा स्वाभाविक्या गत्या गच्छतीत्यर्थः, 'उत्तरकिरियं'ति वायुकायस्य हि मूलशरीरमौदा-रिकमुत्तरं तु वैक्रियमत उत्तरा–उत्तरशरीराश्रया क्रिया गतिलक्षणा यत्र गमने तदुत्तरक्रियं, तद्यथा भवतीत्येवं रीयते–गच्छति, इह चैकसूत्रेणैव वायुवानकारणत्रयस्य वक्तुं शक्यत्वे यत्सूत्रत्रयकरणं तद्विचित्रत्वात्सूत्रगतेरिति मन्तव्यं, वाच-नान्तरे त्वाद्यं कारणं महावातवर्जितानां, द्वितीयं तु मन्दवातवर्जितानां, तृतीयं तु चतुर्णामप्युक्तमिति ॥ वायुकाया-धिकारादेवेदमाह—'वायुकाए ण'मित्यादि, 'जहा खंदए'इत्यादि, तत्र प्रथमो दर्शित एव, 'अणेगे'त्यादिर्द्वितीयः, स चैवम्–'वाउयाए णं भंते ! वाउयाए चेव अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता २ तत्थेव भुज्जो २ पच्चायाइ ?, हंता गोयमा !, 'पुट्ठे उद्दाइ'त्ति तृतीयः, स चैवम्–'से भंते ! किं पुट्ठे उद्दाइ अपुट्ठे उद्दाइ ?, गोयमा ! पुट्ठे उद्दाइ नो अपुट्ठे, 'ससरीरी'त्यादिः चतुर्थः, स चैवम्–'से भंते ! किं ससरीरी निक्खमइ असरीरी (निक्खमइ) ?, गोयमा ! सिय ससरीरी'त्यादि ॥ वायु-कायश्चिन्तितः, अथ वनस्पतिकायादीन् शरीरतश्चिन्तयन्नाह—

५ शतके उद्देशः २ दिग्विदि-ग्द्वीपसमु-द्रेषु वात-वानप्रकार सू १८०

॥२१२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह भंते ! ओदणे कुम्मासे सुरा एए णं किंसरीराति वत्तव्वं सिया ?, गोयमा ! ओदणे कुम्मासे सुराए य जे घणे दव्वे एए णं पुव्वभावपन्नवणं पडुच्च वणस्सइजीवसरीरा तओ पच्छा सत्थातीया सत्थपरिणामिआ अगणिज्झामिया अगणिज्झूसिया अगणिसेविया अगणिपरिणामिया अगणिजीवसरीरा वत्तव्वं सिया, सुराए य जे दवे दव्वे एए णं पुव्वभावपन्नवणं पडुच्च आउजीवसरीरा, तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिकायसरीराति वत्तव्वं सिया । अहन्नं भंते! अए तंबे तउए सीसए उवले कसट्टिया एए णं किंसरीराइ वत्तव्वं सिया ? गोयमा ! अए तंबे तउए सीसए उवले कसट्टिया, एए णं पुव्वभावपन्नवणं पडुच्च पुढविजीवसरीरा तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिजीवसरीराति वत्तव्वं सिया । अहण्णं भंते ! अट्ठी अट्ठिज्झामे चम्मे चम्मज्झामे रोमे २ सिंगे २ खुरे २ नखे २ एते णं किंसरीराति वत्तव्वं सिया ?, गोयमा ! अट्ठी चंमे रोमे सिंगे खुरे नहे एए णं तसपाणजीवसरीरा अट्ठिज्झामे चम्मज्झामे रोमज्झामे सिंग० खुर० णहज्झामे एए णं पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च तसपाणजीवसरीरा तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिजीव०त्ति वत्तव्वं सिया । अह भंते ! इंगाले छारिए भुसे गोमए एस णं किंसरीरा वत्तव्वं सिया ?, गोयमा ! इंगाले छारिए भुसे गोमए एए णं पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च एगिंदियजीवसरीरप्पओगपरिणामियावि जाव पंचिंदियजीवसरीरप्पओगपरिणामियावि तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिजीवसरीराति वत्तव्वं सिया ॥ (सूत्रं १८१)

'अहे'त्यादि, 'एए णं'ति एतानि णमित्यलङ्कारे 'किंसरीर'त्ति केषां शरीराणि किंशरीराणि? 'सुराए य जे घणे'त्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुरायां द्वे द्रव्ये स्यातां-घनद्रव्यं द्रवद्रव्यं च, तत्र यद् घनद्रव्यं 'पुव्वभावपन्नवणं पडुच्च'त्ति अतीतपर्यायप्ररूपणामङ्गीकृत्य वनस्पतिशरीराणि, पूर्वं हि ओदनादयो वनस्पतयः, 'तओ पच्छ'त्ति वनस्पतिजीवशरीरवाच्यत्वानन्तरमग्निजीवशरीराणीति वक्तव्यं स्यादिति सम्बन्धः, किम्भूतानि सन्ति ? इत्याह–'सत्थातीय'त्ति शस्त्रेण–उदूखलमुशलयन्त्रकादिना करणभूतेनातीतानि–अतिक्रान्तानि पूर्वपर्यायमिति शस्त्रातीतानि 'सत्थपरिणामिय'त्ति शस्त्रेण परिणामितानि–कृतानि(त) नवपर्यायाणि शस्त्रपरिणामितानि, ततश्च 'अगणिज्झामिय'त्ति वह्निना ध्यामितानि–श्यामीकृतानि स्वकीयवर्णत्याजनात्, तथा 'अगणिज्झूसिय'त्ति अग्निना शोषितानि पूर्वस्वभावक्षपणात्, अग्निना सेवितानि वा 'जुषी प्रीतिसेवनयोः' इत्यस्य धातोः प्रयोगात्, 'अगणिपरिणामियाइं'ति संजाताग्निपरिणामानि उष्णयोगादिति, अथवा 'सत्थातीता'इत्यादेः शस्त्रमग्निरेव, 'अगणिज्झामिया'इत्यादि तु तद्व्याख्यानमेवेति, 'उवले'त्ति इह दग्धपाषाणः 'कसट्टिय'त्ति क(ष्प)ट्टः 'अट्ठिज्झामि'त्ति अस्थि च तद्ध्यामं च–अग्निना ध्यामलीकृतम्–आपादितपर्यायान्तरमित्यर्थः, 'इंगाले'इत्यादि, 'अङ्गारः' निर्ज्वलितेन्धनं 'छारिए'त्ति 'क्षारकं' भस्म 'भुसे'त्ति बुसं 'गोमय'त्ति छगणम्, इह च बुसगोमयौ भूतपर्यायानुवृत्त्या दग्धावस्थौ ग्राह्यौ अन्यथाऽग्निध्यामितादिवक्ष्यमाणविशेषणानामनुपपत्तिः स्यादिति । एते पूर्वभावप्रज्ञापनां प्रतीत्यैकेन्द्रियजीवैः शरीरतया प्रयोगेण–स्वव्यापारेण परिणामिता ये ते तथा एकेन्द्रियशरीराणीत्यर्थः, 'अपिः' समुच्चये, यावत्करणाद् द्वीन्द्रियजीवशरीरप्रयोगपरिणामिता अपीत्यादि दृश्यं, द्वीन्द्रियादिजीवशरीरपरिणतत्वं च यथासम्भवमेव न तु सर्वपदेष्विति, तत्र पूर्वमङ्गारो भस्म चैकेन्द्रियादिशरीररूपं भवति, एकेन्द्रियादिशरीराणामिन्धनत्वात्, बुसं तु यवगोधूमहरितावस्थायामे-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१८२]

दीप अनुक्रम [२२२]

केन्द्रियशरीरं, गोमयस्तु तृणाद्यवस्थायामेकेन्द्रियशरीरं, द्वीन्द्रियादीनां तु गवादिभिर्भक्षणे द्वीन्द्रियादिशरीरमिति ॥ पृथिव्यादिकायाधिकारादप्कायरूपस्य लवणोदधेः स्वरूपमाह—

लवणे णं भंते ! समुद्दे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं पन्नत्ते ?, एवं नेयव्वं जाव लोगट्ठिती लोगाणुभावे, सेवं भंते ! २ त्ति भगवं जाव विहरइ ॥ (सूत्रं १८२) ॥ पञ्चमशते द्वितीयः ॥ ५–२ ॥

'लवणे णं'मित्यादि, 'एवं णेयव्वं'ति उक्ताभिलापानुगुणतया नेतव्यं जीवाभिगमोक्तं लवणसमुद्रसूत्रं, किमन्तमित्याह– 'जाव लोगे'त्यादि, तच्चेदम्—'केवइयं परिक्खेवेणं ?, गोयमा ! दो जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णरस सयसहस्साइं एक्कासीयं च सहस्साइं सयं च इगुणयालं किंचिविसेसूणं परिक्खेवेणं पण्णत्ते'इत्यादि, एतस्य चान्ते 'कम्हा णं भंते ! लवणसमुद्दे जंबूदीवं दीवं नो उव्वीलेइ'इत्यादौ प्रश्ने 'गोयमा ! जंबूदीवे २ भरहेरवएसु वासेसु अरहंता चक्कवट्टी' त्यादेरुत्तरग्रन्थस्यान्ते 'लोगट्ठिइ'इत्यादि द्रष्टव्यमिति ॥ पञ्चमशते द्वितीयः ॥ ५–२ ॥

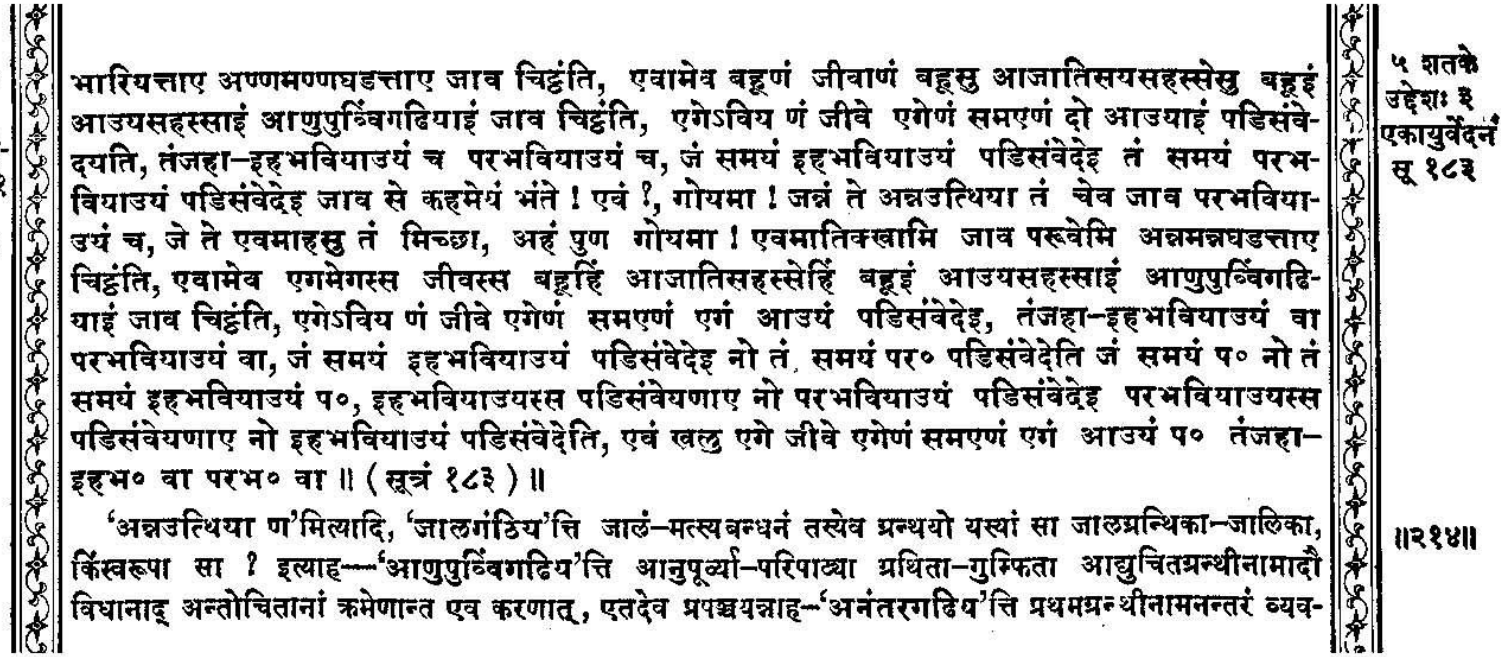
अनन्तरोक्तं लवणसमुद्रादिकं सत्यं सम्यग्ज्ञानिप्रतिपादितत्वात्, मिथ्याज्ञानिप्रतिपादितं त्वसत्यमपि स्यादिति दर्शयंस्तृतीयोद्देशकस्यादिसूत्रमिदमाह—

अण्णउत्थिया णं भंते ! एवमातिक्खंति भा० प० एवं प० से जहानामए जालगंठिया सिया आणुपुव्विगहिया अणंतरगढिया परंपरगढिया अन्नमन्नगढिया अन्नमन्नगुरुयत्ताए अन्नमन्नभारियत्ताए अन्नमन्नगुरुयसं-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पंचम-शतके द्वितीय-उद्देशकः समाप्तः

अथ पंचम-शतके तृतीय-उद्देशकः आरभ्यते



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२१४॥

भारियत्ताए अण्णमण्णघडत्ताए जाव चिट्ठंति, एवामेव बहूणं जीवाणं बहूसु आजातिसयसहस्सेसु बहूइं आउयसहस्साइं आणुपुव्विंगढियाइं जाव चिट्ठंति, एगेऽविय णं जीवे एगेणं समएणं दो आउयाइं पडिसंवेदयति, तंजहा–इहभवियाउयं च परभवियाउयं च, जं समयं इहभवियाउयं पडिसंवेदेइ तं समयं परभवियाउयं पडिसंवेदेइ जाव से कहमेयं भंते ! एवं ?, गोयमा ! जन्नं ते अन्नउत्थिया तं चेव जाव परभवियाउयं च, जे ते एवमाहसु तं मिच्छा, अहं पुण गोयमा ! एवमातिक्खामि जाव परूवेमि अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति, एवामेव एगमेगस्स जीवस्स बहूहिं आजातिसहस्सेहिं बहूइं आउयसहस्साइं आणुपुव्विंगढियाइं जाव चिट्ठंति, एगेऽविय णं जीवे एगेणं समएणं एगं आउयं पडिसंवेदेइ, तंजहा–इहभवियाउयं वा परभवियाउयं वा, जं समयं इहभवियाउयं पडिसंवेदेइ नो तं समयं पर० पडिसंवेदेति जं समयं प० नो तं समयं इहभवियाउयं प०, इहभवियाउयस्स पडिसंवेयणाए नो परभवियाउयं पडिसंवेदेइ परभवियाउयस्स पडिसंवेयणाए नो इहभवियाउयं पडिसंवेदेति, एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं आउयं प० तंजहा–इहभ० वा परभ० वा ॥ (सूत्रं १८३) ॥

'अन्नउत्थिया ण'मित्यादि, 'जालगंठिय'त्ति जालं–मत्स्यबन्धनं तस्येव ग्रन्थयो यस्यां सा जालग्रन्थिका–जालिका, किंस्वरूपा सा ? इत्याह–'आणुपुव्विंगढिय'त्ति आनुपूर्व्या–परिपाट्या ग्रथिता–गुम्फिता आद्युचितग्रन्थीनामादौ विधानाद् अन्तोचितानां क्रमेणान्त एव करणात्, एतदेव प्रपञ्चयन्नाह–'अनंतरगढिय'त्ति प्रथमग्रन्थीनामनन्तरं व्यव-

५ शतके उद्देशः ३ एकायुर्वेदनं सू १८३

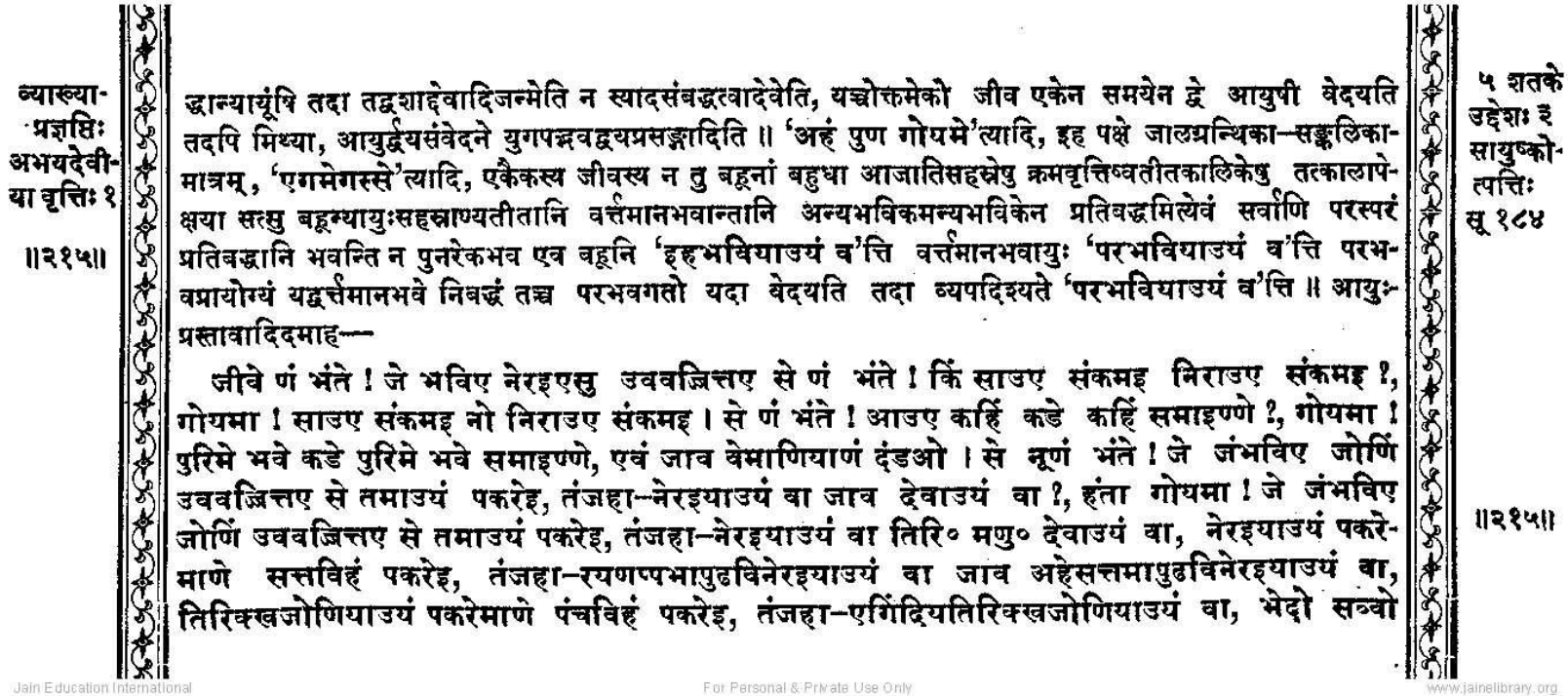
॥२१४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक-आयु: वेदनं

स्थापितैर्ग्रन्थिभिः सह ग्रथिता अनन्तरग्रथिता, एवं परम्परैः–व्यवहितैः सह ग्रथिता परम्परग्रथिता, किमुक्तं भवति ?– 'अन्नमन्नगढिय'त्ति अन्योऽन्यं–परस्परेण एकेन ग्रन्थिना सहान्यो ग्रन्थिरन्येन च सहान्य इत्येवं ग्रथिता अन्योऽन्यग्रथिता, एवं च 'अन्नमन्नगरुयत्ताए'त्ति अन्योऽन्येन ग्रन्थनाद् गुरुकता–विस्तीर्णता अन्योऽन्यगुरुकता तया, 'अन्नमन्नभारियत्ताए'त्ति अन्योऽन्यस्य यो भारः स विद्यते यत्र तदन्योऽन्यभारिकं तद्भावस्तत्ता तया, एतस्यैव प्रत्येकोक्तार्थद्वयस्य संयोजनेन तयोरेव प्रकर्षमभिधातुमाह—'अन्नमन्नगुरुयसंभारियत्ताए'त्ति अन्योऽन्येन गुरुकं यत्सम्भारिकं च तत्तथा तद्भावस्तत्ता तया, 'अन्नमन्नघडत्ताए'त्ति अन्योऽन्यं घटा–समुदायरचना यत्र तदन्योऽन्यघटं तद्भावस्तत्ता तया 'चिट्ठइ'त्ति आस्ते, इति दृष्टान्तोऽथ दार्ष्टान्तिक उच्यते—'एवामेव'त्ति अनेनैव न्यायेन बहूनां जीवानां सम्बन्धीनि 'बहूसु आजाइसहस्सेसु'त्ति अनेकेषु देवादिजन्मसु प्रतिजीवं क्रमप्रवृत्तेष्वधिकरणभूतेषु बहून्यायुष्कसहस्राणि तत्स्वामिजीवानामाजातीनां च बहुशतसहस्रसङ्ख्यत्वात्, आनुपूर्वीग्रथितानीत्यादि पूर्ववद्व्याख्येयं नवरमिह भारिकत्वं कर्मपुद्गलापेक्षया वाच्यम् ॥ अथैतेषामायुषां को वेदनविधिः ? इत्याह—'एगेऽवियें'त्यादि, एकोऽपि च जीव आस्तामनेकः, एकेन समयेनेत्यादि प्रथमशतकवत्, अत्रोत्तरं–'जे ते एवमाहंसु'इत्यादि, मिथ्यात्वं चैषामेवम्–यानि हि बहूनां जीवानां बहून्यायूंषि जालग्रन्थिकावत्तिष्ठन्ति तानि यथास्वं जीवप्रदेशेषु संबद्धानि स्युरसंबद्धानि वा ?, यदि संबद्धानि तदा कथं भिन्नभिन्नजीवस्थितानां तेषां जालग्रन्थिकाकल्पना कल्पयितुं शक्या ?, तथाऽपि तत्कल्पने जीवानामपि जालग्रन्थिकाकल्पत्वं स्यात्तत्संबद्धत्वात्, तथा च सर्वजीवानां सर्वायुःसंवेदनेन सर्वभवभवनप्रसङ्ग इति, अथ जीवानामसंब-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥२१५॥

द्धान्यायूंषि तदा तद्वशादेवादिजन्मेति न स्यादसंबद्धत्वादेवेति, यच्चोक्तमेको जीव एकेन समयेन द्वे आयुषी वेदयति तदपि मिथ्या, आयुर्द्वयसंवेदने युगपद्भवद्वयप्रसङ्गादिति ॥ 'अहं पुण गोयमे'त्यादि, इह पक्षे जालग्रन्थिका–सङ्कलिका-मात्रम्, 'एगमेगस्से'त्यादि, एकैकस्य जीवस्य न तु बहूनां बहुधा आजातिसहस्रेषु क्रमवृत्तिष्वतीतकालिकेषु तत्कालापे-क्षया सत्सु बहून्यायुःसहस्राण्यतीतानि वर्त्तमानभवान्तानि अन्यभविकमन्यभविकेन प्रतिबद्धमित्येवं सर्वाणि परस्परं प्रतिबद्धानि भवन्ति न पुनरेकभव एव बहूनि 'इहभवियाउयं व'त्ति वर्त्तमानभवायुः 'परभवियाउयं व'त्ति परभ-वप्रायोग्यं यद्वर्त्तमानभवे निबद्धं तच्च परभवगतो यदा वेदयति तदा व्यपदिश्यते 'परभवियाउयं व'त्ति ॥ आयुः-प्रस्तावादिदमाह—

जीवे णं भंते ! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! किं साउए संकमइ निराउए संकमइ ?, गोयमा ! साउए संकमइ नो निराउए संकमइ । से णं भंते ! आउए कहिं कडे कहिं समाइण्णे ?, गोयमा ! पुरिमे भवे कडे पुरिमे भवे समाइण्णे, एवं जाव वेमाणियाणं दंडओ । से नूणं भंते ! जे जंभविए जोणिं उववज्जित्तए से तमाउयं पकरेइ, तंजहा–नेरइयाउयं वा जाव देवाउयं वा ?, हंता गोयमा ! जे जंभविए जोणिं उववज्जित्तए से तमाउयं पकरेइ, तंजहा–नेरइयाउयं वा तिरि० मणु० देवाउयं वा, नेरइयाउयं पकरे-माणे सत्तविहं पकरेइ, तंजहा–रयणप्पभापुढविनेरइयाउयं वा जाव अहेसत्तमापुढविनेरइयाउयं वा, तिरिक्खजोणियाउयं पकरेमाणे पंचविहं पकरेइ, तंजहा–एगिंदियतिरिक्खजोणियाउयं वा, भेदो सव्वो

५ शतके उद्देशः ३ सायुष्को-त्पत्तिः सू १८४

॥२१५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक-आयु: वेदनं

प्रत सूत्रांक [१८४]

दीप अनुक्रम [२२४]

भाणियव्वो, मणुस्साउयं दुविहं, देवाउयं चउव्विहं, सेवं भंते ! सेवं भंते ! ॥ (सूत्रं १८४) ॥ पञ्चमशते तृतीयोद्देशकः ॥ ५–३ ॥

'जीवे ण'मित्यादि, 'से णं भंते'त्ति अथ तद्भदन्त ! 'कहिं कडे'त्ति क्व भवे बद्धं 'समाइण्णे'त्ति समाचरितं तद्धेतुसमाचरणात्, 'जे जंभविए जोणिं उववज्जित्तए'त्ति विभक्तिपरिणामाद्यो यस्यां योनावुत्पत्तुं योग्य इत्यर्थः 'मणुस्साउयं दुविहं'ति संमूर्च्छिमगर्भव्युत्क्रान्तिकभेदाद्विधा 'देवाउयं चउव्विहं'ति भवनपत्यादिभेदादिति ॥ पञ्चमशते तृतीयः ॥ ५–३ ॥

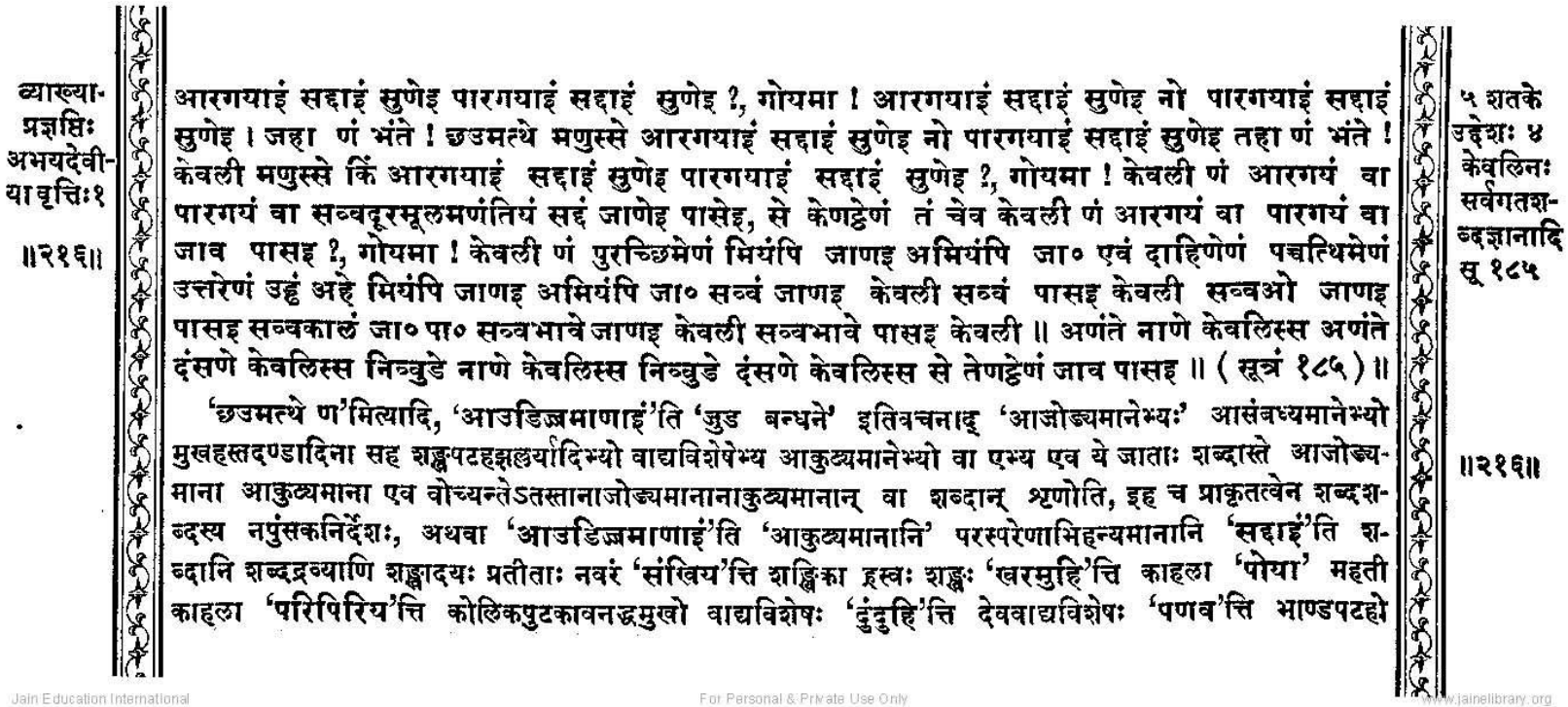
अनन्तरोद्देशकेऽन्ययूथिकछद्मस्थमनुष्यवक्तव्यतोक्ता, चतुर्थे तु मनुष्याणां छद्मस्थानां केवलिनां च प्रायः सोच्यते इत्येवंसंबन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्—

छउमत्थे णं भंते ! मणुस्से आउडिज्जमाणाइं सद्दाइं सुणेइ, तंजहा—संखसद्दाणि वा सिंगस० संखियस० खरमुहिस० पोयास० परिपिरियास० पणवस० पडहस० भंभास० होरंभस० भेरिसद्दाणि वा झल्लरिस० दुंदुहिस० तयाणि वा वितयाणि घणाणि वा झुसिराणि वा ?, हंता गोयमा ! छउमत्थे णं मणूसे आउडिज्जमाणाइं सद्दाइं सुणेइ, तंजहा–संखसद्दाणि वा जाव झुसिराणि वा। ताइं भंते ! किं पुट्ठाइं सुणेइ अपुट्ठाइं सुणेइ ?, गोयमा ! पुट्ठाइं सुणेइ नो अपुट्ठाइं सुणेइ, जाव नियमा छद्दिसिं सुणेइ। छउमत्थे णं मणुस्से किं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पंचम-शतके तृतीय-उद्देशकः समाप्तः

अथ पंचम-शतके चतुर्थ-उद्देशकः आरभ्यते



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१

॥२१६॥

आरगयाइं सद्दाइं सुणेइ पारगयाइं सद्दाइं सुणेइ ?, गोयमा ! आरगयाइं सद्दाइं सुणेइ नो पारगयाइं सद्दाइं सुणेइ । जहा णं भंते ! छउमत्थे मणुस्से आरगयाइं सद्दाइं सुणेइ नो पारगयाइं सद्दाइं सुणेइ तहा णं भंते ! केवली मणुस्से किं आरगयाइं सद्दाइं सुणेइ पारगयाइं सद्दाइं सुणेइ ?, गोयमा ! केवली णं आरगयं वा पारगयं वा सव्वदूरमूलमणंतियं सद्दं जाणेइ पासेइ, से केणट्ठेणं तं चेव केवली णं आरगयं वा पारगयं वा जाव पासइ ?, गोयमा ! केवली णं पुरच्छिमेणं मियंपि जाणइ अमियंपि जा० एवं दाहिणेणं पच्चत्थिमेणं उत्तरेणं उड्ढं अहे मियंपि जाणइ अमियंपि जा० सव्वं जाणइ केवली सव्वं पासइ केवली सव्वओ जाणइ पासइ सव्वकालं जा० पा० सव्वभावे जाणइ केवली सव्वभावे पासइ केवली ॥ अणंते नाणे केवलिस्स अणंते दंसणे केवलिस्स निव्वुडे नाणे केवलिस्स निव्वुडे दंसणे केवलिस्स से तेणट्ठेणं जाव पासइ ॥ (सूत्रं १८५) ॥

'छउमत्थे ण'मित्यादि, 'आउडिज्जमाणाइं'ति 'जुड बन्धने' इतिवचनाद् 'आजोड्यमानेभ्यः' आसंबध्यमानेभ्यो मुखहस्तदण्डादिना सह शङ्खपटहझल्लर्यादिभ्यो वाद्यविशेषेभ्य आकुट्यमानेभ्यो वा एभ्य एव ये जाताः शब्दास्ते आजोड्यमाना आकुट्यमाना एव वोच्यन्तेऽतस्तानाजोड्यमानानाकुट्यमानान् वा शब्दान् शृणोति, इह च प्राकृतत्वेन शब्दशब्दस्य नपुंसकनिर्देशः, अथवा 'आउडिज्जमाणाइं'ति 'आकुट्यमानानि' परस्परेणाभिहन्यमानानि 'सद्दाइं'ति शब्दानि शब्दद्रव्याणि शङ्खादयः प्रतीताः नवरं 'संखिय'त्ति शङ्खिका ह्रस्वः शङ्खः 'खरमुहि'त्ति काहला 'पोया' महती काहला 'परिपिरिय'त्ति कोलिकपुटकावनद्धमुखो वाद्यविशेषः 'दुंदुहि'त्ति देववाद्यविशेषः 'पणव'त्ति भाण्डपटहो

५ शतके उद्देशः ४ केवलिनः सर्वगतशब्दज्ञानादि सू १८५

॥२१६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लघुपटहो वा तदन्यस्तु पटह इति 'भंभ'त्ति ढक्का 'होरंभ'त्ति रूढिगम्या 'भेरि'त्ति महाढक्का 'झल्लरि'त्ति वलयाकारो वाद्यविशेषः 'दुंदुहि'त्ति देववाद्यविशेषः, अथोक्तानुक्तसङ्ग्रहद्वारेणाह–'ततााणि वे'त्यादि, 'ततानि' वीणादिवाद्यानि तज्जनितशब्दा अपि ततााः, एवमन्यदपि पदत्रयं, नवरमयं विशेषस्तादीनाम्–"ततं वीणादिकं ज्ञेयं, विततं पटहादिकम् । घनं तु कांस्यतालादि, वंशादि शुषिरं मतम् ॥ १॥" इति । 'पुट्ठाइं सुणेइ' इत्यादि तु प्रथमशते आहाराधिकारवदवसेयमिति । 'आरगयाइं'ति आराद्भागस्थितानिन्द्रियगोचरमागतानित्यर्थः 'पारगयाइं'ति इन्द्रियविषयात्परतोऽवस्थितानिति, 'सव्वदूरमूलमणंतियं'ति सर्वथा दूरं–विप्रकृष्टं मूलं च–निकटं सर्वदूरमूलं तद्योगाच्छब्दोऽपि सर्वदूरमूलोऽतस्तम् अत्यर्थं दूरवर्त्तिनमत्यन्तासन्नं चेत्यर्थः अन्तिकम्–आसन्नं तन्निषेधादनन्तिकम्, नञोऽल्पार्थत्वान्नात्यन्तमन्तिकमदूरासन्नमित्यर्थः, तद्योगाच्छब्दोऽप्यनन्तिकोऽतस्तम्, अथवा 'सव्व'त्ति अनेन 'सव्वओ समंता' इत्युपलक्षितं, 'दूरमूलं'ति अनादिकमितिहृदयम्, 'अणंतियं'ति अनन्तिकमित्यर्थः, 'मियंपि'त्ति परिमाणवद् गर्भजमनुष्यजीवद्रव्या[दीत्या]दि, 'अमियंपि'त्ति अनन्तमसङ्ख्येयं वा वनस्पतिपृथिवीजीवद्रव्यादि 'सव्वं जाणइ'इत्यादि द्रव्याद्यपेक्षयोक्तम् । अथ कस्मात् सर्वं जानाति केवलीत्याद्युच्यते ? इत्यत आह—'अणंते'त्यादि, अनन्तं ज्ञानमनन्तार्थविषयत्वात्, तथा 'निव्वुडे नाणे केवलिस्स'त्ति 'निर्वृतं' निरावरणं ज्ञानं केवलिनः क्षायिकत्वात् शुद्धमित्यर्थः, वाचनान्तरे तु 'निव्वुडे वितिमिरे विसुद्धे' त्ति विशेषणत्रयं ज्ञानदर्शनयोरभिधीयते, तत्र च 'निर्वृतं' निष्ठागतं 'वितिमिरं' क्षीणावरणमत एव विशुद्धमिति ॥ अथ पुनरपि छद्मस्थमनुष्यमेवाश्रित्याह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छउमत्थे णं भंते ! मणुस्से हसेज्ज वा उस्सुयाएज्ज वा ?, हंता हसेज्ज वा उस्सुयाएज्ज वा, जहा णं भंते ! छउमत्थे मणुसे हसेज्ज जाव उस्सु० तहा णं केवलीवि हसेज्ज वा उस्सुयाएज्ज वा ?, गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठेणं भंते ! जाव नो णं तहा केवली हसेज्ज वा जाव उस्सुयाएज्ज वा ?, गोयमा ! जण्णं जीवा चरित्त-मोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं हसंति वा उस्सुयायंति वा से णं केवलिस्स नत्थि, से तेणट्ठेणं जाव नो णं तहा केवली हसेज्ज वा उस्सुयाएज्ज वा । जीवे णं भंते ! हसमाणे वा उस्सुयमाणे वा कइ कम्मपयडीओ बंधइ ?, गोयमा ! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा, एवं जाव वेमाणिए, पोहत्तिएहिं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो ॥ छउमत्थे णं भंते ! मणूसे निद्दाएज्ज वा पयलाएज्ज वा !, हंता निद्दाएज्ज वा पयलाएज्ज वा, जहा हसेज्ज वा तहा नवरं दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं निद्दायंति वा पयलायंति वा, से णं केवलिस्स नत्थि, अन्नं तं चेव । जीवे णं भंते ! निद्दायमाणे वा पयलायमाणे वा कति कम्मपयडीओ बंधइ ?, गोयमा ! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा, एवं जाव वेमाणिए, पोहत्तिएसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो ॥ (सूत्रं १८६)

'छउमत्थे'त्यादि, 'उस्सुयाएज्ज'त्ति अनुत्सुक उत्सुको भवेदुत्सुकायेत,विषयादानं प्रत्यौत्सुक्यं कुर्यादित्यर्थः, 'जन्नं जीव'त्ति यस्मात् कारणाज्जीवः 'से णं केवलिस्स नत्थि'त्ति तत्पुनश्चारित्रमोहनीयं कर्म केवलिनो नास्तीत्यर्थः, 'एवं जाव वेमाणिए'त्ति, एवमिति जीवाभिलापवन्नारकादिर्दण्डको वाच्यो यावद्वैमानिक इति, स चैवम्—'नेरइए णं भंते ! हसमाणे वा उस्सुयमाणे वा कइ कम्मपयडीओ बंधइ ?, गोयमा ! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा' इत्यादि, इह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

च पृथिव्यादीनां हासः प्रागभविकतत्परिणामादवसेय इति, 'पोहत्तिएहिं'ति पृथक्त्वसूत्रेषु–बहुवचनसूत्रेषु 'जीवा णं भंते ! हसमाणा वा उस्सुयमाणा वा कइ कम्मपयडीओ बंधंति ?, गोयमा ! सत्तविहबंधगावि अट्ठविहबंधगावि' इत्यादिषु 'जीवेगिंदिए'त्यादि जीवपदमेकेन्द्रियपदानि च पृथिव्यादीनि वर्जयित्वाऽन्येष्वेकोनविंशतौ नारकादिपदेषु 'त्रिकभङ्गः' भङ्गत्रयं वाच्यं, यतो जीवपदे पृथिव्यादिपदेषु च बहुत्वाज्जीवानां सप्तविधबन्धकाश्चाष्टविधबन्धकाश्चेत्येवमेक एव भङ्गको लभ्यते, नारकादिषु तु त्रयं, तथाहि–सर्वे एव सप्तविधबन्धकाः स्युरित्येकः १, अथवा सप्तविधबन्धकाश्चाष्टविधबन्धकश्चेत्येवं द्वितीयः २, अथवा सप्तविधबन्धकाश्चाष्टविधबन्धकाश्चेत्येवं तृतीयः ३ इति । अत्रैव छद्मस्थकेवल्यधिकारे इदमपरमाह—'छउमत्थे'त्यादि, 'णिद्दाएज्ज व'त्ति निद्रां–सुखप्रतिबोधलक्षणां कुर्यात् निद्रायेत 'पयलाएज्ज व'त्ति प्रचलाम्–ऊर्द्धस्थितनिद्राकरणलक्षणां कुर्यात् प्रचलायेत् ॥ केवल्यधिकारात्केवलिनो महावीरस्य संविधानकमाश्रित्येदमाह—

हरी णं भंते ! हरिणेगमेसी सक्कदूए इत्थीगब्भं संहरणमाणे किं गब्भाओ गब्भं साहरइ ? गब्भाओ जोणिं साहरइ २ जोणीओ गब्भं साहरइ ३ जोणीओ जोणिं साहरइ ४ ?, गोयमा ! नो गब्भाओ गब्भं साहरइ नो गब्भाओ जोणिं साहरइ नो जोणीओ जोणिं साहरइ परामुसिय २ अव्वाबाहेणं अव्वाबाहं जोणीओ गब्भं साहरइ ॥ पभू णं भंते ! हरिणेगमेसी सक्कस्स णं दूए इत्थीगब्भं नहसिरंसि वा रोमकूवंसि वा साहरित्तए वा नीहरित्तए वा ?, हंता पभू, नो चेव णं तस्स गब्भस्स किंचिवि आबाहं वा विबाहं वा उप्पाएज्जा छविच्छेदं पुण करेज्जा, एसुहुमं च णं साहरिज्ज वा नीहरिज्ज वा ॥ (सूत्रं १८७)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२१८॥

'हरी'त्यादि, इह च यद्यपि महावीरसंविधानाभिधायकं पदं न दृश्यते तथाऽपि हरिनैगमेषीति वचनात्तदेवानुमीयते, हरिनैगमेषिणा भगवतो गर्भान्तरे नयनात्, यदि पुनः सामान्यतो गर्भहरणविवक्षाऽभविष्यत्तदा 'देवे णं भंते !' इत्यवक्ष्यदिति, तत्र हरिः–इन्द्रस्तत्सम्बन्धित्वात् हरिनैगमेषीति नाम, 'सक्कदूए'त्ति शक्रदूतः शक्रादेशकारी पदात्यनीकाधिपतिर्येन शक्रादेशाद्भगवान् महावीरो देवानन्दागर्भात्त्रिशलागर्भे संहृत इति, 'इत्थीगब्भं'ति स्त्रियाः सम्बन्धी गर्भः–सजीवपुद्गलपिण्डकः स्त्रीगर्भस्तं 'संहरेमाणे'त्ति अन्यत्र नयन्, इह चतुर्भङ्गिका, तत्र 'गर्भाद्' गर्भाशयादवधेः 'गर्भं' गर्भाशयान्तरं 'संहरति' प्रवेशयति 'गर्भे' सजीवपुद्गलपिण्डलक्षणमिति प्रकृतमित्येकः १, तथा गर्भादवधेः 'योनिं' गर्भनिर्गमद्वारं संहरति योन्योदरान्तरं प्रवेशयतीत्यर्थः २, तथा 'योनीतो' योनिद्वारेण गर्भं संहरति गर्भाशयं प्रवेशयतीत्यर्थः ३, तथा 'योनीतः' योनेः सकाशाद्योनिं 'संहरति' नयति योन्योदरान्निष्काश्य योनिद्वारेणैवोदरान्तरं प्रवेशयतीत्यर्थः ४, एतेषु शेषनिषेधेन तृतीयमनुजानन्नाह–'परामुसिए'त्यादि, 'परामृश्य २' तथाविधकरणव्यापारेण संस्पृश्य २ स्त्रीगर्भम् 'अव्याबाधमव्याबाधेन' सुखंसुखेनेत्यर्थः 'योनीतः' योनिद्वारेण निष्काश्य 'गर्भे' गर्भाशयं 'संहरति' गर्भमिति प्रकृतं, यच्चेह योनीतो निर्गमनं स्त्रीगर्भस्योक्तं तल्लोकव्यवहारानुवर्त्तनात्, तथाहि–निष्पन्नोऽनिष्पन्नो वा गर्भः स्वभावाद्योन्यैव निर्गच्छतीति ॥ अयं च तस्य गर्भसंहरणे आचार उक्तः, अथ तत्सामर्थ्यं दर्शयन्नाह—'पभू ण'मित्यादि, 'नहसिरंसि'त्ति नखाग्रे 'साहरित्तए'त्ति संहर्त्तुं–प्रवेशयितुं 'नीहरित्तए'त्ति विभक्तिपरिणामेन नखशिरसो रोमकूपाद्वा 'निहर्त्तुं' निष्काशयितुम् 'आबाहं'ति ईषद्बाधां 'विबाहं'ति विशिष्टबाधां 'छविच्छेदं'ति शरीरच्छेदं पुनः कुर्यात्, गर्भस्य हि छवि-

५ शतके उद्देशः ४ हरिनैगमैषीगर्भसंक्रामकः सू १८७

॥२१८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	हरीणेगमेषीदेव द्वारा गर्भ-संक्रमण

च्छेदमकृत्वा नखाग्रादौ प्रवेशयितुमशक्यत्वात् 'एसुहुमं च णं'ति इतिसूक्ष्ममिति एवं लध्विति ॥ अनन्तरं महावीरस्य सम्बन्धि गर्भान्तरसङ्क्रमणलक्षणमाश्चर्यमुक्तम्, अथ तच्छिष्यसम्बन्धि तदेव दर्शयितुमाह—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अइमुत्ते णामं कुमारसमणे पगतिभद्दए जाव विणीए, तए णं से अइमत्ते कुमारसमणे अण्णया कयाइ महावुट्ठिकायंसि निवयमाणंसि कक्खपडिग्गहरयहरणमायाए बहिया संपट्ठिए विहाराए, तए णं से अइमुत्ते कुमारसमणे वाहयं वहमाणं पासइ २ मट्टियाए पालिं बंधइ णाविया मे २ नाविओविव णावमयं पडिग्गहगं उदगंसि कट्टु पव्वाहमाणे २ अभिरमइ, तं च थेरा अद्दक्खु, जेणेव समणे भगवं० तेणेव उवागच्छंति २ एवं वदासी–एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी अतिमुत्ते णामं कुमारसमणे से णं भंते ! अतिमुत्ते कुमारसमणे कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिहिति जाव अंतं करेहिति ?, अज्जो समणे भगवं महावीरे ते थेरे एवं वयासी–एवं खलु अज्जो ! मम अंतेवासी अइमुत्ते णामं कुमारसमणे पगतिभद्दए जाव विणीए से णं अइमुत्ते कुमारसमणे इमेणं चेव भवग्गहणेणं सिज्झिहिति जाव अंतं करेहिति, तं मा णं अज्जो ! तुब्भे अतिमुत्तं कुमारसमणं हीलेह निंदह खिंसह गरहह अवमन्नह, तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! अतिमुत्तं कुमारसमणं अगिलाए संगिण्हह अगिलाए उवगिण्हह अगिलाए भत्तेणं पाणेणं विणयेणं वेयावडियं करेह, अइमत्ते णं कुमारसमणे अंतकरे चेव अंतिमसरीरिए चेव, तए णं ते थेरा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अतिमुक्तकुमार-श्रमणस्य कथा

प्रत सूत्रांक [१८८]

दीप अनुक्रम [२२८]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १ ॥२१९॥

भगवंतो समणेणं भगवया म० एवं वुत्ता समाणा समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति अइमुत्तं कुमारसमणं अगिलाए संगिण्हंतित्ति जाव वेयावडियं करेंति ॥ (सूत्रं १८८)

'तेण'मित्यादि, 'कुमारसमणे'त्ति षड्वर्षजातस्य तस्य प्रव्रजितत्वात्, आह च–"छव्वरिसो पव्वइओ निग्गंथं रोइऊण पावयणं"ति, एतदेव चाश्चर्यमिह, अन्यथा वर्षाष्टकादारान्न प्रव्रज्या स्यादिति, 'कक्खपडिग्गहरयहरणमायाए'त्ति कक्षायां प्रतिग्रहकं रजोहरणं चादायेत्यर्थः 'णाविया मे'त्ति 'नौका' द्रोणिका 'मे' ममेयमिति विकल्पयन्निति गम्यते 'नाविओ विव नावं'ति नाविक इव–नौवाहक इव 'नावं' द्रोणीम् 'अयं'ति असावतिमुक्तकमुनिः प्रतिग्रहकं प्रवाहयन्नभिरमते, एवं च तस्य रमणक्रिया बालावस्थाबलादिति, 'अद्दक्खु'त्ति 'अद्राक्षुः' दृष्टवन्तः, ते च तदीयामत्यन्तानुचितां चेष्टां दृष्ट्वा तमुपहसन्त इव भगवन्तं पप्रच्छुः, एतदेवाह–'एवं खलु'इत्यादि, 'हीलेह'त्ति जात्याद्युद्घट्टनतः 'निंदह'त्ति मनसा 'खिंसह'त्ति जनसमक्षं 'गरहह'त्ति तत्समक्षम् 'अवमण्णह'त्ति तदुचितप्रतिपत्त्यकरणेन 'परिभवह'त्ति क्वचित्पाठस्तत्र परिभवः–समस्तपूर्वोक्तपदाकरणेन 'अगिलाए'त्ति 'अग्लान्या' अखेदेन 'संगिण्हह'त्ति 'सङ्गृह्णीत' स्वीकुरुत 'उवगिण्हह'त्ति 'उपगृह्णीत' उपष्टम्भं कुरुत, एतदेवाह–'वेयावडियं'ति वैयावृत्त्यं कुरुतास्येति शेषः, 'अंतकरे चेव'त्ति भवच्छेदकरः, स च दूरतरभवेऽपि स्यादत आह–'अंतिमसरीरिए चेव'त्ति चरमशरीर इत्यर्थः। यथाऽयमतिमुक्तको भगवच्छिष्योऽन्तिमशरीरोऽभवत् एवमन्येऽपि यावन्तस्तच्छिष्या अन्तिमशरीराः संवृत्तास्तावतो दर्शयितुं प्रस्तावनामाह—

१ प्रवचनोक्तमर्थं रोचयित्वा यः षड्वर्षोऽपि प्रव्रजितः नैर्ग्रन्थं प्रवचनं ॥

५ शतके उद्देशः ४ अतिमुक्तकमुनिः सू १८८

॥२१९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अतिमुक्तकुमार-श्रमणस्य कथा

तेणं कालेणं २ महासुक्काओ कप्पाओ महासग्गाओ महाविमाणाओ दो देवा महिड्ढीया जाव महाणुभागा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं पाउब्भूया, तए णं ते देवा समणं भगवं महावीरं मणसा वंदंति नमंसंति मणसा चेव इमं एयारूवं वागरणं पुच्छंति–कति णं भंते ! देवाणुप्पियाणं अंतेवासीसयाइं सिज्झिहिंति जाव अंतं करेहिंति ?, तए णं समणे भगवं महावीरे तेहिं देवेहिं मणसा पुट्ठे तेसिं देवाणं मणसा चेव इमं एतारूवं वागरणं वागरेति–एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम सत्त अंतेवासीसयाइं सिज्झिहिंति जाव अंतं करेहिंति, तए णं ते देवा समणेणं भगवया महावीरेणं मणसा पुट्ठेणं मणसा चेव इमं एयारूवं वागरणं वागरिया समाणा हट्ठतुट्ठा जाव हयहियया समणं भगवं महावीरं वंदंति णमंसंति २ त्ता मणसा चेव सुस्सूसमाणा णमंसमाणा अभिमुहा जाव पज्जुवासंति । तेणं कालेणं २ समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूती णामं अणगारे जाव अदूरसामंते उड्ढंजाणू जाव विहरति, तए णं तस्स भगवओ गोयमस्स झाणंतरियाए वट्टमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था, एवं खलु दो देवा महिड्ढीया जाव महाणुभागा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं पाउब्भूया तं नो खलु अहं ते देवे जाणामि कयराओ कप्पाओ वा सग्गाओ वा विमाणाओ कस्स वा अत्थस्स अट्ठाए इहं हव्वमागया ?, तं गच्छामि णं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि जाव पज्जुवासामि इमाइं च णं एयारूवाइं वागरणाइं पुच्छिस्सामित्ति कट्टु एवं संपेहेति २ उट्ठाए उट्ठेति २ जेणेव समणे भगवं महा० जाव पज्जुवासति, गोयमादि समणे भगवं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१८९]

दीप अनुक्रम [२२९]

म० भगवं गोयमं एवं वदासी–से णूणं तव गोयमा ! झाणंतरियाए वट्टमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव जेणेव मम अंतिए तेणेव हव्वमागए से णूणं गोयमा ! अत्थे समत्थे ?, हंता अत्थि, तं गच्छाहि णं गोयमा ! एए चेव देवा इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरेहिंति, तए णं भगवं गोयमे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुन्नाए समाणे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसति २ जेणेव ते देवा तेणेव पहारेत्थ गमणाए, तए णं ते देवा भगवं गोयमं पज्जुवासमाणं पासंति २ हट्ठा जाव हयहियया खिप्पामेव अब्भुट्ठेंति २ खिप्पामेव पच्चुवागच्छंति २ जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता जाव णमंसित्ता एवं वयासी–एवं खलु भंते ! अम्हे महासुक्कातो कप्पातो महासग्गातो महाविमाणाओ दो देवा महिड्ढिया जाव पाउब्भूता तए णं अम्हे समणं भगवं महावीरं वंदामो णमंसामो २ मणसा चेव इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं पुच्छामो–कति णं भंते ! देवाणुप्पियाणं अंतेवासीसयाइं सिज्झिहिंति जाव अंतं करेहिंति ?, तए णं समणे भगवं महावीरे अम्हेहिं मणसा पुट्ठे अम्हं मणसा चेव इमं एयारूवं वागरणं वागरेति–एवं खलु देवाणु० मम सत्त अंतेवासीसयाइं जाव अंतं करेहिंति, तए णं अम्हे समणेणं भगवया महावीरेणं मणसा चेव पुट्ठेणं मणसा चेव इमं एयारूवं वागरणं वागरिया समाणा समणं भगवं महावीरं वंदामो नमंसामो २ जाव पज्जुवासामो-त्तिकट्टु भगवं गोतमं वंदंति नमंसंति २ जामेव दिसिं पाउ० तामेव दिसिं प० (सूत्रं १८९)

'तेण'मित्यादि, 'महाशुक्रात्' सप्तमदेवलोकात् 'झाणंतरियाए'त्ति अन्तरस्य–विच्छेदस्य करणमन्तरिका ध्यान-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थान्तरिका ध्यानान्तरिका–आरब्धध्यानस्य समाप्तिरपूर्वस्थानारम्भणमित्यर्थः अतस्तस्यां वर्त्तमानस्य 'कप्पाओ'त्ति देवलोकात् 'सग्गाओ'त्ति स्वर्गाद्, देवलोकदेशात्प्रस्तटादित्यर्थः, 'विमाणाओ'त्ति प्रस्तटैकदेशादिति, 'वागरणाइं'ति व्याक्रियन्त इति व्याकरणाः–प्रश्नार्थाः अधिकृता एव कल्पविमानादिलक्षणाः ॥ देवप्रस्तावादिदमाह—

भंतेत्ति भगवं गोयमे समणं जाव एवं वदासी–देवा णं भंते ! संजयाति वत्तव्वं सिया ?, गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे, अब्भक्खाणमेयं, देवा णं भंते ! असंजताति वत्तव्वं सिया ?, गोयमा ! णो तिणट्ठे०, णिट्ठुरवयणमेयं, देवा णं भंते ! संजयासंजयाति वत्तव्वं सिया ?, गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे, असब्भूयमेयं देवाणं, से किं खाति णं भंते ! देवाति वत्तव्वं सिया ?, गोयमा ! देवा णं नोसंजयाति वत्तव्वं सिया ॥ (सूत्रं १९०) देवा णं भंते ! कयराए भासाए भासंति ?, कयरा वा भासा भासिज्जमाणी विसिस्सति ?, गोयमा ! देवा णं अद्धमागहाए भासाए भासंति, सावि य णं अद्धमागहा भासा भासिज्जमाणी विसिस्सति ॥ (सूत्रं १९१)

'देवा ण'मित्यादि, 'से किं खाइ णं भंते ! देवाइ वत्तव्वं सिय'त्ति 'से' इति अथार्थः किमिति प्रश्नार्थः णं वाक्यालङ्कारार्थः देवा इति यद्वस्तु तद्वक्तव्यं स्यादिति । 'नोसंजयाइ वत्तव्वं सिय'त्ति नोसंयता इत्येतद्वक्तव्यं स्यात्, असंयतशब्दपर्यायत्वेऽपि नोसंयतशब्दस्यानिष्ठुरवचनत्वान्मृतशब्दापेक्षया परलोकीभूतशब्दवदिति ॥ देवाधिकारादेवेदमाह—'देवा ण'मित्यादि 'विसिस्सइ'त्ति विशिष्यते विशिष्टो भवतीत्यर्थः, 'अद्धमागह'त्ति भाषा किल षड्विधा भवति, यदाह–"प्राकृतसंस्कृतमागधपिशाचभाषा च सौरसेनी च । षष्ठोऽत्र भूरिभेदो देशविशेषादपभ्रंशः ॥ १ ॥" तत्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२२१॥

मागधभाषालक्षणं किञ्चित्किञ्चिच्च प्राकृतभाषालक्षणं यस्यामस्ति सार्द्धं मागध्या इति व्युत्पत्त्याऽर्द्धमागधीति ॥ केवलि-छद्मस्थस्य वक्तव्यताप्रस्ताव एवेदमाह—

केवली णं भंते ! अंतकरं वा अंतिमसरीरियं वा जाणति पासइ ?, हंता ! गोयमा ! जाणति पासति । जहा णं भंते ! केवली अंतकरं वा अंतिमसरीरियं वा जाणति पासति तहा णं छउमत्थेवि अंतकरं वा अंति-मसरीरियं वा जाणति पासति ?, गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे, सोच्चा जाणति पासति, पमाणतो वा, से किं तं सोच्चा णं ?, केवलिस्स वा केवलिसावयस्स वा केवलिसावियाए वा केवलिउवासगस्स वा केवलिउवासियाए वा तप्पक्खियस्स वा तप्पक्खियसावगस्स वा तप्पक्खियसावियाए वा तप्पक्खियउवासगस्स वा तप्प-क्खियउवासियाए वा से तं सोच्चा ॥ (सू०१९२) से किं तं पमाणे ?, २ पमाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा–पच्चक्खे अणुमाणे ओवम्मे आगमे, जहा अणुओगदारे तहा णेयव्वं पमाणं जाव तेण परं नो अत्तागमे नो अणंतरागमे परंपरागमे ॥ (सू०१९३) केवली णं भंते ! चरिमकम्मं वा चरिमणिज्जरं वा जाणति पासति ?, हंता गोयमा ! जाणति पासति । जहा णं भंते ! केवली चरिमकम्मं वा जहा णं अंतकरेणं आलावगो तहा चरिमकम्मेणवि अपरिसेसिओ णेयव्वो । (सू० १९४) केवली णं भंते ! पणीयं मणं वा वइं वा धारेज्जा ?, हंता धारेज्जा, जहा णं भंते ! केवली पणीयं मणं वा वइं वा धारेज्जा ते णं वेमाणिया देवा जाणंति पासंति ?, गोयमा ! अत्थेगतिया जाणंति पा० अत्थेग-तिया न जाणंति न पा०, से केणट्ठेणं जाव ण जाणंति ण पासंति ?, गोयमा ! वेमाणिया देवा दुविहा पण्णत्ता,

५ शतके उद्देशः ४ अन्तकृत्ता-ज्ञानंप्रमाणं चरमनिर्ज-राज्ञानंके-वलिमनो-वाचोज्ञानं-अनुत्तराणां सू १९२ १९६

॥२२१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तंजहा–माइमिच्छादिट्ठिउववन्नगा य अमाइसम्मदिट्ठिउववन्नया य, तत्थ णं जे ते माइमिच्छादिट्ठीउववन्नगा ते न याणंति न पासंति, तत्थ णं जे ते अमाईसम्मदिट्ठीउववन्नगा ते णं जाणंति पासंति, से केणट्ठेणं एवं वु० अमाईसम्मदिट्ठी जाव पा० ?, गोयमा ! अमाई सम्मदिट्ठी दुविहा पण्णत्ता–अनंतरोववन्नगा य परंपरोववन्नगा य, तत्थ अणंतरोववन्नगा न जा० परंपरोववन्नगा जाणंति, से केणट्ठेणं भंते ! एवं० परंपरोववन्नगा जाव जाणंति ?, गोयमा ! परंपरोववन्नगा दुविहा पण्णत्ता–पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, पज्जत्ता जा० अपज्जत्ता न जा०, एवं अणंतरपरंपरपज्जत्तअपज्जत्ता य उवउत्ता अणुउवत्ता, तत्थ णं जे ते उवउत्ता ते जा० पा० से तेणट्ठेणं तं चेव । (सूत्रं १९५) पभू णं भंते ! अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगया चेव समाणा इहगएणं केवलिणा सद्धिं आलावं वा संलावं वा करेत्तए ?, हंता पभू, से केणट्ठेणं जाव पभू णं अणुत्तरोववाइया देवा जाव करेत्तए ?, गोयमा ! जण्णं अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगया चेव समाणा अट्ठं वा हेउं वा पसिणं वा वागरणं वा कारणं वा पुच्छंति तए णं इहगए केवली अट्ठं वा जाव वागरणं वा वागरेति से तेणट्ठेणं । जन्नं भंते ! इहगए चेव केवली अट्ठं वा जाव वागरेति तण्णं अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगया चेव समाणा जा० पा० ?, हंता ! जाणंति पासंति, से केणट्ठेणं जाव पासंति ?, गोयमा ! तेसिणं देवाणं अणंताओ मणोदव्ववग्गणाओ लद्धाओ पत्ताओ अभिसमन्नागयाओ भवंति से तेणट्ठेणं जण्णं इहगए केवली जाव पा० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥२२२॥

(सूत्रं १९६) अणुत्तरोववाइया णं भंते ! देवा किं उदिन्नमोहा उवसंतमोहा खीणमोहा?, गोयमा ! नो उदिन्नमोहा उवसंतमोहा णो खीणमोहा ॥ (सूत्रं १९७)

'केवली'त्यादि, यथा केवली जानाति तथा छद्मस्थो न जानाति, कथञ्चित्पुनर्जानात्यपीति, एतदेव दर्शयन्नाह— 'सोच्चे'त्यादि 'केवलिस्स'त्ति 'केवलिनः' जिनस्यायमन्तकरो भविष्यतीत्यादि वचनं श्रुत्वा जानातीति, 'केवलिसावगस्स व'त्ति जिनस्य समीपे यः श्रवणार्थी सन् शृणोति तद्वाक्यान्यसौ केवलिश्रावकः तस्य वचनं श्रुत्वा जानाति, स हि किल जिनस्य समीपे वाक्यान्तराणि शृण्वन् अयमन्तकरो भविष्यतीत्यादिकमपि वाक्यं शृणुयात् ततश्च तद्वचनश्रवणाज्जानातीति, 'केवलिउवासगस्स'त्ति केवलिनमुपास्ते यः श्रवणानाकाङ्क्षी तदुपासनमात्रपरः सन्नसौ केवल्युपासकः तस्य वचः श्रुत्वा जानाति, भावना प्रायः प्राग्वत्, 'तप्पक्खियस्स'त्ति केवलिपाक्षिकस्य स्वयंबुद्धस्येत्यर्थः, इह च श्रुत्वेति वचनेन प्रकीर्णकं वचनमात्रं ज्ञाननिमित्ततयाऽवसेयं, न त्वागमरूपं, तस्य प्रमाणग्रहणेन गृहीष्यमाणत्वादिति ॥ 'पमाणे'त्ति प्रमीयते येनार्थस्तत्प्रमाणं प्रमितिर्वा प्रमाणं 'पच्चक्खे'त्ति अक्षं–जीवम् अक्षाणि वेन्द्रियाणि प्रति गतं प्रत्यक्षम् 'अणुमाणे'त्ति अनु–लिङ्गग्रहणसम्बन्धस्मरणादेः पश्चान्मीयतेऽनेनेत्यनुमानम् 'ओवम्मे'त्ति उपमीयते–सदृशतया गृह्यते वस्त्वनयेत्युपमा सैव औपम्यम् 'आगमे'त्ति आगच्छति गुरुपारम्पर्येणेत्यागमः, एषां स्वरूपं शास्त्रलाघवार्थमतिदेशत आह– 'जहे'त्यादि, एवं चैतत्स्वरूपम्–द्विविधं प्रत्यक्षमिन्द्रियनोइन्द्रियभेदात्, तत्रेन्द्रियप्रत्यक्षं पञ्चधा–श्रोत्रादीन्द्रियभेदात्, नोइन्द्रियप्रत्यक्षं त्रिधा–अवध्यादिभेदादिति, त्रिविधमनुमानं–पूर्ववच्छेषवद्दृष्टसाधर्म्यवच्चेति, तत्र पूर्ववत् पूर्वोपलब्धा-

५ शतके उद्देशः ४ अनुत्तराउप शान्तमोहः सू १९७

॥२२२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१९२--१९७]

दीप अनुक्रम [२३२--२३७]

साधारणलक्षणान्मात्रादि(दे:)प्रमातुः पुत्रादिपरिज्ञानं, शेषवत् यत्कार्यादिलिङ्गात्परोक्षार्थज्ञानं यथा मयूरोऽत्र केकायिता-दिति, दृष्टसाधर्म्यवत् यथैकस्य कार्षापणादेर्दर्शनादन्येऽप्येवंविधा एवेति प्रतिपत्तिरित्यादि, औपम्यं यथा गौर्गवयस्तथे-त्यादि, आगमस्तु द्विधा–लौकिकलोकोत्तरभेदात्, त्रिधा वा सूत्रार्थोभयभेदात्, अन्यथा वा त्रिधा–आत्मागमानन्त-रागमपरम्परागमभेदात्, तत्रात्मागमादयोऽर्थतः क्रमेण जिनगणधरतच्छिष्यापेक्षया द्रष्टव्याः, सूत्रतस्तु गणधरतच्छिष्य-प्रशिष्यापेक्षयेति, एतस्य प्रकरणस्य सीमां कुर्वन्नाह–'जावे'त्यादि, 'तेण परं'ति गणधरशिष्याणां सूत्रतोऽनन्तरागमोऽर्थ-तस्तु परम्परागमः ततः परं प्रशिष्याणामित्यर्थः ॥ केवलीतरप्रस्ताव एवेदमपरमाह—'केवली ण'मित्यादि, चरमकर्म यच्छैलेशीचरमसमयेऽनुभूयते चरमनिर्जरा तु यत्ततोऽनन्तरसमये जीवप्रदेशेभ्यः परिशटतीति । 'पणीय'न्ति प्रणीतं शुभतया प्रकृष्टं 'धारेज्ज'त्ति धारयेद्व्यापारयेदित्यर्थः । 'एवं अणंतरे'त्यादि, अस्यायमर्थः–यथा वैमानिका द्विविधा उक्ताः, मायिमिथ्यादृष्टीनां च ज्ञाननिषेधः, एवममायिसम्यग्दृष्टयोऽनन्तरोपपन्नपरम्परोपपन्नकभेदेन द्विधा वाच्याः, अनन्तरोपप-न्नकानां च ज्ञाननिषेधः, तथा परम्परोपपन्नका अपि पर्याप्तकापर्याप्तकभेदेन द्विधा वाच्याः, अपर्याप्तकानां च ज्ञाननि-षेधः, तथा पर्याप्तका उपयुक्तानुपयुक्तभेदेन द्विधा वाच्याः, अनुपयुक्तानां च ज्ञाननिषेधश्चेति । वाचनान्तरे त्विदं सूत्रं साक्षादेवोपलभ्यते, 'आलावं व'त्ति सकृज्जल्पं 'संलावं व'त्ति मुहुर्मुहुर्जल्पं मानसिकमेवेति 'लद्धाओ'त्ति तदवधेर्विषय-भावं गताः 'पत्ताओ'त्ति तदवधिना सामान्यतः प्राप्ताः परिच्छिन्ना इत्यर्थः 'अभिसमन्नागयाओ'त्ति विशेषतः परि-च्छिन्नाः, यतस्तेषामवधिज्ञानं संभिन्नलोकनाडीविषयं, यच्च लोकनाडीग्राहकं तन्मनोवर्गणाग्राहकं भवत्येव, यतो योऽपि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१ ॥२२३॥

लोकसङ्ख्येयभागविषयोऽवधिः सोऽपि मनोद्रव्यग्राही यः पुनः संभिन्नलोकनाडीविषयोऽसौ कथं मनोद्रव्यग्राही न भविष्यति ?, इष्यते च लोकसङ्ख्येयभागावधेर्मनोद्रव्यग्राहित्वं, यदाह–"संखेज्ज मणोदवे भागो लोगपलियस्स बोद्धवो"त्ति ॥ अनुत्तरसुराधिकारादिदमाह—'अनुत्तरे'त्यादि, 'उदिन्नमोह'त्ति उत्कटवेदमोहनीयाः 'उवसंतमोह'त्ति अनुत्कटवेदमोहनीयाः, परिचारणायाः कथञ्चिदप्यभावात्, ननु सर्वथोपशान्तमोहाः, उपशमश्रेणेस्तेषामभावात्, 'नो खीणमोह'त्ति क्षपकश्रेण्या अभावादिति ॥ पूर्वतनसूत्रे केवल्यधिकारादिदमाह—

केवली णं भंते ! आयाणेहिं जा० पा० ?, गोयमा ! णो तिणट्ठे स०, से केणट्ठेणं जाव केवली णं आयाणेहिं न जाणइ न पासइ ?, गोयमा ! केवली णं पुरच्छिमेणं मियंपि जाणइ अमियंपि जा० जाव निव्वुडे दंसणे केवलिस्स से तेण० । (सूत्रं १९८) केवली णं भंते ! अस्सिं समयंसि जेसु आगासपदेसेसु हत्थं वा पायं वा बाहुं वा उरुं वा ओगाहित्ताणं चिट्ठति पभू णं भंते ! केवली सेयकालंसिवि तेसु चेव आगासपदेसेसु हत्थं वा जाव ओगाहित्ता णं चिट्ठित्तए ?, गोयमा ! णो ति०, से केणट्ठेणं भंते ! जाव केवली णं अस्सिं समयंसि जेसु आगासपदेसेसु हत्थं वा जाव चिट्ठति णो णं पभू केवली सेयकालंसिवि तेसु चेव आगासपएसेसु हत्थं वा जाव चिट्ठित्तए ?, गो० ! केवलिस्स णं वीरियसजोगसद्दव्वयाए चलाइं उवकरणाइं भवंति, चलोवगरणट्ठयाए य णं केवली अस्सिं समयंसि जेसु आगासपदेसेसु हत्थं वा जाव चिट्ठति णो णं पभू केवली सेयकालंसिवि तेसु

१ पल्यस्य लोकस्य च सङ्ख्यभागोऽवधिर्मनोद्रव्याणि जानाति ॥

५ शतके उद्देशः ४ केवलिनो ज्ञानमनादानं एष्यतित्तत्प्रदेशावगाहः सू १९८-१९९ घटसहस्रकरणं सू २०० ॥२२३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

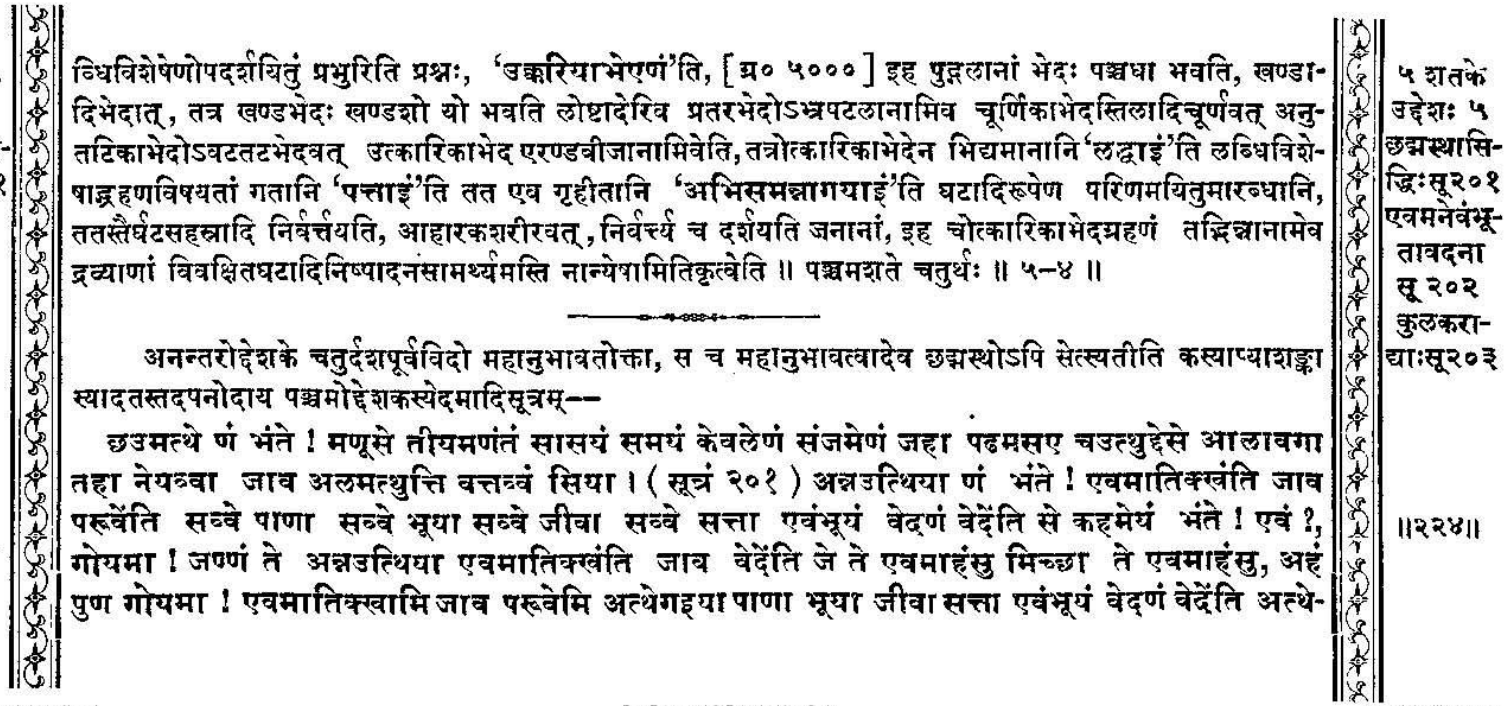
प्रत सूत्रांक [१९८--२००]

दीप अनुक्रम [२३८--२४०]

चेव जाव चिट्ठित्तए, से तेणट्ठेणं जाव वुचइ–केवली णं अस्सिं समयंसि जाव चिट्ठित्तए (सूत्रं १९९) पभू णं भंते ! चोद्दसपुव्वी घडाओ घडसहस्सं पडाओ पडसहस्सं कडाओ २ रहाओ २ छत्ताओ छत्तसहस्सं २ दंडाओ दंडसहस्सं अभिनिवट्टेत्ता उवदंसेत्तए ?, हंता पभू, से केणट्ठेणं पभू चोद्दसपुव्वी जाव उवदंसेत्तए ?, गोयमा ! चउद्दसपुव्विस्स णं अणंताइं दव्वाइं उक्करियाभेएणं भिज्जमाणाइं लद्धाइं पत्ताइं अभिसमन्नागयाइं भवंति, से तेणट्ठेणं जाव उवदंसित्तए। सेवं भंते ! सेवं भंते ! ॥ (सूत्रं २००)॥ पञ्चमशते चतुर्थ उद्देशः ॥ ५–४ ॥

'केवली'त्यादि, 'आयाणेहिं'ति आदीयते–गृह्यतेऽर्थ एभिरित्यादानानि–इन्द्रियाणि तैर्न जानाति केवलित्वात् । 'अस्सिं समयंसि'त्ति अस्मिन् वर्त्तमाने समये 'ओगाहित्ताणं'ति 'अवगाह्य' आक्रम्य 'सेयकालंसिवि'त्ति एष्यत्काले ऽपि 'वीरियसजोगसद्दव्वयाए'त्ति वीर्यं–वीर्यान्तरायक्षयप्रभवा शक्तिः तत्प्रधानं सयोगं—मानसादिव्यापारयुक्तं यत्सद्–विद्यमानं द्रव्यं–जीवद्रव्यं तत्तथा, वीर्यसद्भावेऽपि जीवद्रव्यस्य योगान्विना चलनं न स्यादिति सयोगशब्देन सद्द्रव्यं विशेषितं, सदिति विशेषणं च तस्य सदा सत्तावधारणार्थं, अथवा स्वम्–आत्मा तद्रूपं द्रव्यं स्वद्रव्यं ततः कर्मधारयः, अथवा वीर्यप्रधानः सयोगो–योगवान् वीर्यसयोगः स चासौ सद्द्रव्यश्च–मनःप्रभृतिवर्गणायुक्तो वीर्यसयोगसद्द्रव्यस्तस्य भावस्तत्ता तया हेतुभूतया 'चलाइं'ति अस्थिराणि 'उवकरणाइं'ति अङ्गानि 'चलोवगरणट्ठयाए'त्ति चलोपकरणलक्षणो योऽर्थस्तद्भावश्चलोपकरणार्थता तया, चशब्दः पुनरर्थः । केवल्यधिकारात् श्रुतकेवलिनमधिकृत्याह–'घडाओ घडसहस्सं'ति घटादवधेर्घटं निश्रां कृत्वा घटसहस्रं 'अभिनिवट्टित्ता' इति योगः 'अभिनिव्वट्टित्ता' विधाय श्रुतसमुत्थल-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥२२४॥

विधिविशेषेणोपदर्शयितुं प्रभुरिति प्रश्नः, 'उक्करियाभेएणं'ति, [ग्र० ५०००] इह पुद्गलानां भेदः पञ्चधा भवति, खण्डादिभेदात्, तत्र खण्डभेदः खण्डशो यो भवति लोष्टादेरिव प्रतरभेदोऽभ्रपटलानामिव चूर्णिकाभेदस्तिलादिचूर्णवत् अनुतटिकाभेदोऽवटतटभेदवत् उत्कारिकाभेद एरण्डबीजानामिवेति, तत्रोत्कारिकाभेदेन भिद्यमानानि 'लद्धाइं'ति लब्धिविशेषाद्ग्रहणविषयतां गतानि 'पत्ताइं'ति तत एव गृहीतानि 'अभिसमन्नागयाइं'ति घटादिरूपेण परिणमयितुमारब्धानि, ततस्तैर्घटसहस्रादि निर्वर्त्तयति, आहारकशरीरवत्, निर्वर्त्य च दर्शयति जनानां, इह चोत्कारिकाभेदग्रहणं तद्भिन्नानामेव द्रव्याणां विवक्षितघटादिनिष्पादनसामर्थ्यमस्ति नान्येषामितिकृत्वेति ॥ पञ्चमशते चतुर्थः ॥ ५–४ ॥

अनन्तरोद्देशके चतुर्दशपूर्वविदो महानुभावतोक्ता, स च महानुभावत्वादेव छद्मस्थोऽपि सेत्स्यतीति कस्याप्याशङ्का स्यादतस्तदपनोदाय पञ्चमोद्देशकस्येदमादिसूत्रम्--

छउमत्थे णं भंते ! मणूसे तीयमणंतं सासयं समयं केवलेणं संजमेणं जहा पढमसए चउत्थुद्देसे आलावगा तहा नेयव्वा जाव अलमत्थुत्ति वत्तव्वं सिया। (सूत्रं २०१) अन्नउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति जाव परूवेंति सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता एवंभूयं वेदणं वेदेंति से कहमेयं भंते ! एवं ?, गोयमा ! जण्णं ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति जाव वेदेंति जे ते एवमाहंसु मिच्छा ते एवमाहंसु, अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता एवंभूयं वेदणं वेदेंति अत्थे-

५ शतके उद्देशः ५ छद्मस्थासिद्धिः सू२०१ एवमनेवंभूतावदना सू २०२ कुलकराद्याः सू२०३

॥२२४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पंचम-शतके चतुर्थ-उद्देशकः समाप्तः

अथ पंचम-शतके पंचम-उद्देशकः आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [२०१--२०३]

दीप अनुक्रम [२४१--२४३]

गइया पाणा भूया जीवा सत्ता अनेवंभूयं वेदणं वेदेंति, से केणट्ठेणं अत्थेगतिया ? तं चेव उच्चारेयव्वं, गोयमा ! जे णं पाणा भूया जीवा सत्ता जहा कडा कम्मा तहा वेदणं वेदेंति ते णं पाणा भूया जीवा सत्ता एवंभूयं वेदणं वेदेंति, जे णं पाणा भूया जीवा सत्ता जहा कडा कम्मा नो तहा वेदणं वेदेंति ते णं पाणा भूया जीवा सत्ता अनेवंभूयं वेदणं वेदंति, सेतेणट्ठेणं तहेव। नेरइया णं भंते ! किं एवंभूयं वेदणं वेदेंति अनेवंभूयं वेदणं वेदंति ?, गोयमा ! नेरइया णं एवंभूयं वेदणं वेदेंति अनेवंभूयंपि वेदणं वेदंति। से केणट्ठेणं तं चेव ?, गोयमा ! जे णं नेरइया जहा कडा कम्मा तहा वेयणं वेदेंति ते णं नेरइया एवंभूयं वेदणं वेदेंति जे णं नेरतिया जहा कडा कम्मा णो तहा वेदणं वेदेंति ते णं नेरइया अनेवंभूयं वेदणं वेदेंति, से तेणट्ठेणं, एवं जाव वेमाणिया संसारमंडलं नेयव्वं। (सूत्रं २०२) जंबूदीवे णं भंते ! भारहे वासे इमीसे ओस० कइ कुलगरा होत्था ?, गोयमा ! सत्त एवं तित्थयरा तित्थयरमायरो पियरो पढमा सिस्सिणीओ चक्कवट्टीमायरो इत्थिरयणं बलदेवा वासुदेवा वासुदेवमायरो पियरो, एएसिं पडिसत्तू जहा समवाए परिवाडी तहा णेयव्वा, सेवं भंते २ जाव विहरइ ॥ (सूत्रं २०३) ॥ पंचमसए पंचमुद्देसओ ॥ ५–५ ॥

'छउमत्थे ण'मित्यादि, 'जहा पढमसए'इत्यादि, तत्र च छद्मस्थः आधोऽवधिकः परमाधोऽवधिकश्च केवलेन संयमादिना न सिद्ध्यतीत्याद्यर्थपरं तावन्नेयं यावदुत्पन्नज्ञानादिधरः केवली अलमस्त्विति वक्तव्यं स्यादिति, यच्चेदं पूर्वाधीतमपीहाधीतं तत्सम्बन्धविशेषात्, स पुनरुद्देशकपातनायामुक्त एवेति ॥ स्वयूथिकवक्तव्यताऽनन्तरमन्ययूथिकवक्तव्यतासूत्रं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२०१--२०३]

दीप अनुक्रम [२४१--२४३]

व्याख्याप्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १ ॥२२५॥

तत्र च 'एवंभूयं वेयणं'ति यथाविधं कर्म निबद्धमेवंप्रकारतयोत्पन्नां 'वेदनां' असातादिकर्मोदयं 'वेदयन्ति' अनुभवन्ति, मिथ्यात्वं चैतद्वादिनामेवं–न हि यथा बद्धं तथैव सर्वं कर्मानुभूयते, आयुः कर्मणो व्यभिचारात्, तथाहि–दीर्घकालानुभवनीयस्याप्यायुःकर्मणोऽल्पीयसाऽपि कालेनानुभवो भवति, कथमन्यथाऽपमृत्युव्यपदेशः सर्वजनप्रसिद्धः स्यात् ?, कथं वा महासंयुगादौ जीवलक्षाणामप्येकदैव मृत्युरुपपद्येतेति ?, 'अणेवंभूयंपि'त्ति यथा बद्धं कर्म नैवंभूता अनेवंभूता अतस्तां, श्रूयन्ते ह्यागमे कर्म्मणः स्थितिविघातरसघातादय इति, 'एवं जाव वेमाणिया संसारमंडलं नेयव्वं'ति 'एवम्' उक्तक्रमेण वैमानिकावसानं संसारिजीवचक्रवालं नेतव्यमित्यर्थः, अथ चेह स्थाने वाचनान्तरे कुलकरतीर्थकरादिवक्तव्यता दृश्यते, ततश्च संसारमण्डलशब्देन पारिभाषिकसञ्ज्ञया सेह सूचितेति संभाव्यत इति ॥ पञ्चमशते पञ्चमः ॥ ५–५ ॥

५ शतके उद्देशः ६ अल्पदीर्घशुभायूंषि सू २०३

अनन्तरोद्देशके जीवानां कर्मवेदनोक्ता, षष्ठे तु कर्म्मण एव बन्धनिबन्धनविशेषमाह, तस्य चादिसूत्रमिदम्—

कहण्णं भंते ! जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ?, गोयमा ! तिहिं ठाणेहिं, तंजहा–पाणे अइवाएत्ता मुसं वइत्ता तहारूवं समणं वा माहणं वा अफासुएणं अणेसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेत्ता, एवं खलु जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पकरेइ ॥ कहण्णं भंते ! जीवा दीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ?, गोयमा ! तिहिं ठाणेहिं–नो पाणे अतिवाइत्ता नो मुसं वइत्ता तहारूवं समणं वा माहणं वा फासुएसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेत्ता एवं खलु जीवा दीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ॥ कहन्नं भंते ! जीवा असु-

॥२२५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पंचम-शतके पंचम-उद्देशकः समाप्तः

अथ पंचम-शतके षष्ठं-उद्देशकः आरभ्यते

अल्प-दीर्घ-शुभ आयुः

प्रत सूत्रांक [२०४]

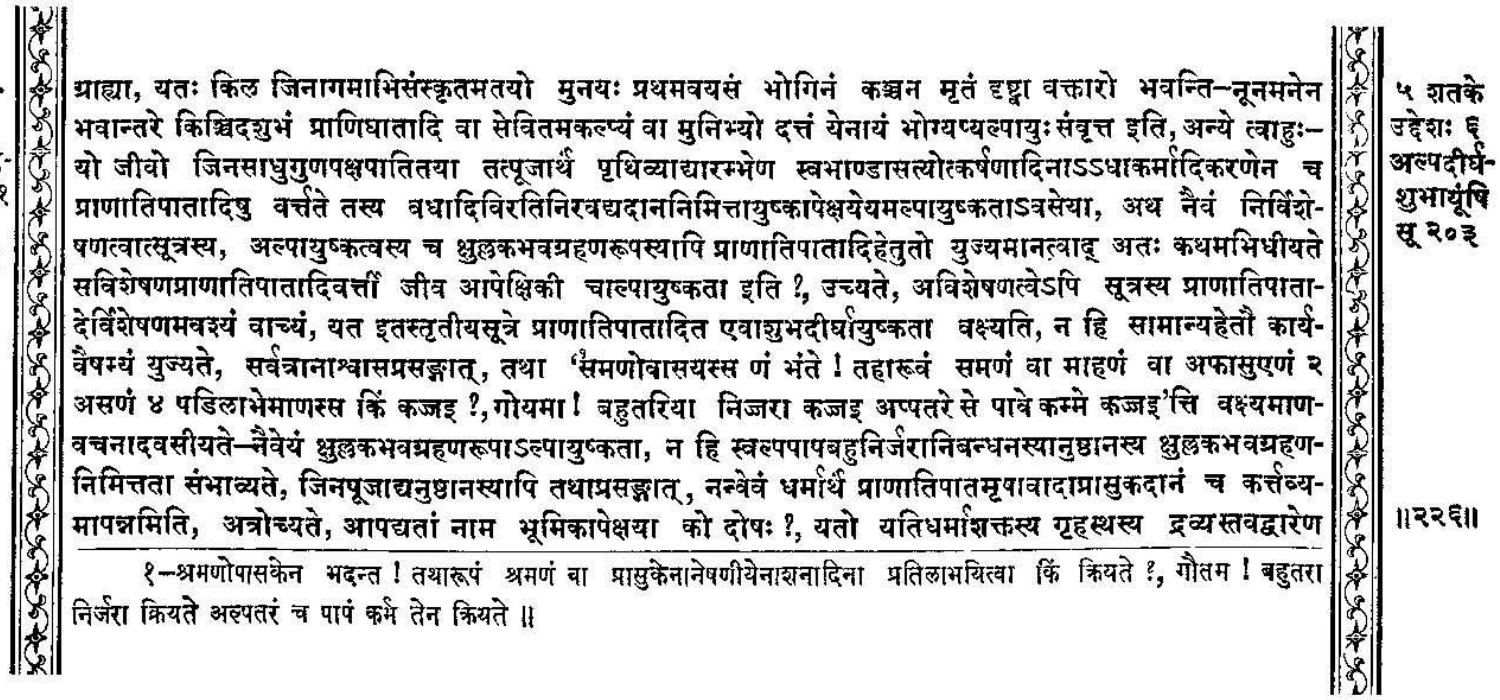
दीप अनुक्रम [२४४]

भद्दीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ?, गोयमा ! पाणे अइवाइत्ता मुसं वइत्ता तहारूवं समणं वा माहणं वा हीलित्ता निंदित्ता खिंसित्ता गरहित्ता अवमन्नित्ता अन्नयरेणं अमणुन्नेणं अपीतिकारेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेत्ता एवं खलु जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ॥ कहन्नं भंते ! जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ?, गोयमा ! नो पाणे अइवाइत्ता नो मुसं वइत्ता तहारूवं समणं वा माहणं वा वंदित्ता नमंसित्ता जाव पज्जुवासित्ता अन्नयरेणं मणुन्नेणं पीइकारएणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेत्ता एवं खलु जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ॥ (सूत्रं २०४)

'कहण्ण'मित्यादि, 'अप्पाउयत्ताए'त्ति अल्पमायुर्यस्यासावल्पायुष्कस्तस्य भावस्तत्ता तस्यै अल्पायुष्कतायै अल्पजीवितव्यनिबन्धनमित्यर्थः, अल्पायुष्कतया वा, 'कर्म' आयुष्कलक्षणं 'प्रकुर्वन्ति' बध्नन्ति ?, 'पाणे अइवाएत्त'त्ति 'प्राणान्'जीवान् 'अतिपात्य' विनाश्य 'मुसं वइत्त'त्ति मृषावादमुक्त्वा 'तहारूवं'ति तथाविधस्वभावं भक्तिदानोचितपात्रमित्यर्थः 'समणं व'त्ति श्राम्यते–तपस्यतीति श्रमणोऽतस्तं 'माहणं व'त्ति मा हनेत्येवं योऽन्यं प्रति वक्ति स्वयं हननिवृत्तः सन्नसौ माहनः, ब्रह्म वा ब्रह्मचर्यं कुशलानुष्ठानं वाऽस्यास्तीति ब्राह्मणोऽतस्तं, वाशब्दौ समुच्चये, 'अफासुएणं'ति न प्रगता असवः–असुमन्तो यस्मात्तदप्रासुकं सजीवमित्यर्थः 'अणेसणिज्जेणं'ति एष्यत इत्येषणीयं–कल्प्यं तन्निषेधादनेषणीयं तेन, अशनादिना–प्रसिद्धेन 'पडिलाभेत्त'त्ति 'प्रतिलम्भ्य' लाभवन्तं कृत्वा, अथ निगमयन्नाह–'एव'मित्यादि, 'एवम्' उक्तलक्षणेन क्रियात्रयेणेति, अयमत्र भावार्थः–अध्यवसायविशेषादेतत्त्रयं जघन्यायुःफलं भवति, अथवेहापेक्षिकी अल्पायुष्कता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अल्प-दीर्घ-शुभ आयुः



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२२६॥

ग्राह्या, यतः किल जिनागमाभिसंस्कृतमतयो मुनयः प्रथमवयसं भोगिनं कञ्चन मृतं दृष्ट्वा वक्तारो भवन्ति–नूनमनेन भवान्तरे किञ्चिदशुभं प्राणिघातादि वा सेवितमकल्प्यं वा मुनिभ्यो दत्तं येनायं भोग्यप्यल्पायुः संवृत्त इति, अन्ये त्वाहुः– यो जीवो जिनसाधुगुणपक्षपातितया तत्पूजार्थं पृथिव्याद्यारम्भेण स्वभाण्डासत्योत्कर्षणादिनाऽऽधाकर्मादिकरणेन च प्राणातिपातादिषु वर्त्तते तस्य वधादिविरतिनिरवद्यदाननिमित्तायुष्कापेक्षयेयमल्पायुष्कताऽवसेया, अथ नैवं निर्विशेषणत्वात्सूत्रस्य, अल्पायुष्कत्वस्य च क्षुल्लकभवग्रहणरूपस्यापि प्राणातिपातादिहेतुतो युज्यमानत्वाद् अतः कथमभिधीयते सविशेषणप्राणातिपातादिवर्त्ती जीव आपेक्षिकी चाल्पायुष्कता इति ?, उच्यते, अविशेषणत्वेऽपि सूत्रस्य प्राणातिपातादेर्विशेषणमवश्यं वाच्यं, यत इतस्तृतीयसूत्रे प्राणातिपातादित एवाशुभदीर्घायुष्कता वक्ष्यति, न हि सामान्यहेतौ कार्यवैषम्यं युज्यते, सर्वत्रानाश्वासप्रसङ्गात्, तथा '[1]समणोवासयस्स णं भंते ! तहारूवं समणं वा माहणं वा अफासुएणं २ असणं ४ पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ ?, गोयमा ! बहुतरिया निज्जरा कज्जइ अप्पतरे से पावे कम्मे कज्जइ'त्ति वक्ष्यमाणवचनादवसीयते–नैवेयं क्षुल्लकभवग्रहणरूपाऽल्पायुष्कता, न हि स्वल्पपापबहुनिर्जरानिबन्धनस्यानुष्ठानस्य क्षुल्लकभवग्रहणनिमित्तता संभाव्यते, जिनपूजाद्यनुष्ठानस्यापि तथाप्रसङ्गात्, नन्वेवं धर्मार्थं प्राणातिपातमृषावादाप्रासुकदानं च कर्त्तव्यमापन्नमिति, अत्रोच्यते, आपद्यतां नाम भूमिकापेक्षया को दोषः ?, यतो यतिधर्माशक्तस्य गृहस्थस्य द्रव्यस्तवद्वारेण

१–श्रमणोपासकेन भदन्त ! तथारूपं श्रमणं वा प्रासुकेनानेषणीयेनाशनादिना प्रतिलाभयित्वा किं क्रियते ?, गौतम ! बहुतरा निर्जरा क्रियते अल्पतरं च पापं कर्म तेन क्रियते ॥

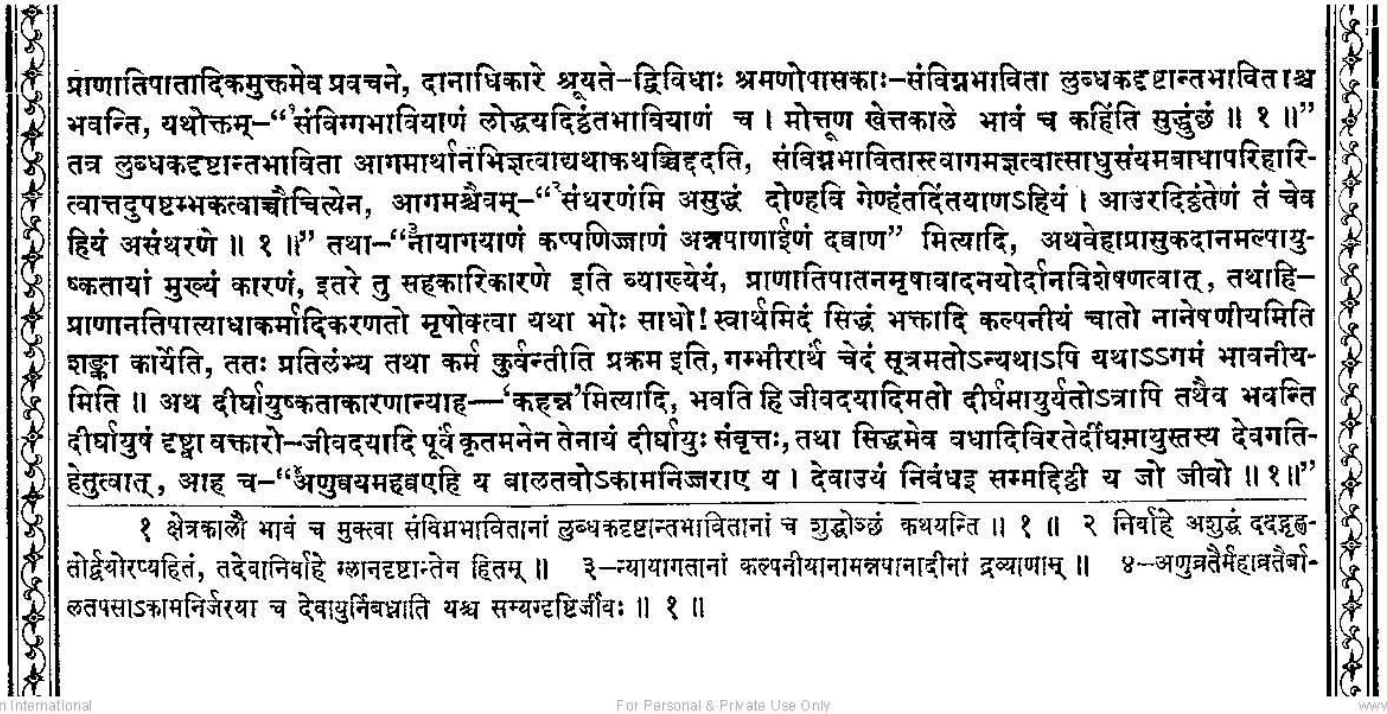
५ शतके उद्देशः ६ अल्पदीर्घ-शुभायूंषि सू २०३

॥२२६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

***एते पृष्ठे सूत्र-क्रमांके एक मुद्रण-दोष: दृश्यते (सू.२०३) ---(यहाँ इस पृष्ठ की बायीं तरफ सू.२०३ लिखा है, वहां सू.२०४ होना चाहिए)

अल्प-दीर्घ-शुभ आयु:



प्राणातिपातादिकमुक्तमेव प्रवचने, दानाधिकारे श्रूयते–द्विविधाः श्रमणोपासकाः–संविग्नभाविता लुब्धकदृष्टान्तभाविताश्च भवन्ति, यथोक्तम्–"[1]संविग्गभावियाणं लोद्धयदिट्ठंतभावियाणं च। मोत्तूण खेत्तकाले भावं च कहिंति सुद्धंछं ॥ १ ॥" तत्र लुब्धकदृष्टान्तभाविता आगमार्थानभिज्ञत्वाद्यथाकथञ्चिद्ददति, संविग्नभावितास्त्वागमज्ञत्वात्साधुसंयमबाधापरिहारित्वात्तदुपष्टम्भकत्वाच्चौचित्येन, आगमश्चैवम्–"[2]संथरणंमि असुद्धं दोण्हवि गेण्हंतदिंतयाणऽहियं। आउरदिट्ठंतेणं तं चेव हियं असंथरणे ॥ १ ॥" तथा–"[3]नायागयाणं कप्पणिज्जाणं अन्नपाणाईणं दव्वाण" मित्यादि, अथवेहाप्रासुकदानमल्पायुष्कतायां मुख्यं कारणं, इतरे तु सहकारिकारणे इति व्याख्येयं, प्राणातिपातनमृषावादनयोर्दानविशेषणत्वात्, तथाहि–प्राणानतिपात्याधाकर्मादिकरणतो मृषोक्त्वा यथा भोः साधो! स्वार्थमिदं सिद्धं भक्तादि कल्पनीयं चातो नानेषणीयमिति शङ्का कार्येति, ततः प्रतिलंभ्य तथा कर्म कुर्वन्तीति प्रक्रम इति, गम्भीरार्थं चेदं सूत्रमतोऽन्यथाऽपि यथाऽऽगमं भावनीयमिति ॥ अथ दीर्घायुष्कताकारणान्याह—'कहन्न'मित्यादि, भवति हि जीवदयादिमतो दीर्घमायुर्यतोऽत्रापि तथैव भवन्ति दीर्घायुषं दृष्ट्वा वक्तारो–जीवदयादि पूर्वं कृतमनेन तेनायं दीर्घायुः संवृत्तः, तथा सिद्धमेव वधादिविरतेर्दीर्घमायुस्तस्य देवगतिहेतुत्वात्, आह च–"[4]अणुवयमहव्वएहि य बालतवोऽकामनिज्जराए य। देवाउयं निबंधइ सम्मद्दिट्ठी य जो जीवो ॥ १ ॥"

१ क्षेत्रकालौ भावं च मुक्त्वा संविग्नभावितानां लुब्धकदृष्टान्तभावितानां च शुद्धोञ्छं कथयन्ति ॥ १ ॥ २ निर्वाहे अशुद्धं ददद्गृहीतोर्द्वयोरप्यहितं, तदेवानिर्वाहे ग्लानदृष्टान्तेन हितम् ॥ ३–न्यायागतानां कल्पनीयानामन्नपानादीनां द्रव्याणाम् ॥ ४–अणुव्रतैर्महाव्रतैर्बालतपसाऽकामनिर्जरया च देवायुर्निबध्नाति यश्च सम्यग्दृष्टिर्जीवः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०४] दीप अनुक्रम [२४४]	
	अल्प-दीर्घ-शुभ आयुः

प्रत सूत्रांक [२०४]

दीप अनुक्रम [२४४]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२२७॥

देवगतौ च विवक्षया दीर्घमेवायुः, दानं चाश्रित्येहैव वक्ष्यति–"[1]समणोवासयस्स णं भंते ! तहारूवं समणं वा २ फासुएणं २ असण ४ मेणं पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ ?, गोयमा ! एगंतसो निज्जरा कज्जइ"त्ति, यच्च निर्जराकारणं तद्विशिष्टदीर्घायुःकारणतया न विरुद्धं महाव्रतवदिति, व्याख्यानान्तरमपि पूर्ववदेवेति ॥ अथायुष एव दीर्घस्य सूत्रद्वयेनाशुभशुभत्वकारणान्याह—'कहन्न'मित्यादि, प्राग्वन्नवरं श्रमणादिकं हीलनादिकरणतः प्रतिलंभ्येत्यक्षरघटना, तत्र हीलनं–जात्यादुद्घट्टनतः कुत्सा निन्दनं–मनसा खिंसनं–जनसमक्षं गर्हणं–तत्समक्षम् 'अपमाननं' अनभ्युत्थानादिकरणं 'अन्यतरेण' बहूनामेकतमेन 'अमनोज्ञेन' स्वरूपतोऽशोभनेन कदन्नादिना, अत एवाप्रीतिकारकेण, भक्तिमतस्त्वमनोज्ञं मनोज्ञमेव मनोज्ञफलत्वात्, इह च सूत्रेऽशनादि प्रासुकाप्रासुकादिना न विशेषितं, हीलनादिकर्त्तुः प्रासुकादिविशेषणस्य दानस्य फलविशेषं प्रत्यकारणत्वेन मत्सरजनितहीलनादिविशेषणानामेव च प्रधानतया तत्कारणत्वेन विवक्षणात्, वाचनान्तरे तु 'अफासुएणं अणेसणिज्जेणं'ति दृश्यते तत्र च प्रासुकदानमपि हीलनादिविशेषितमशुभदीर्घायुःकारणं, अप्रासुकदानं तु विशेषत इत्युपदर्शयता 'अफासुएण' इत्याद्युक्तमिति, प्राणातिपातमृषावादनयोर्दानविशेषणपक्षव्याख्यानमपि घटत एव, अवज्ञादानेऽपि प्राणातिपातादेर्दृश्यमानत्वादिति, भवति च प्राणातिपातादेरशुभदीर्घायुः, तेषां नरकगतिहेतुत्वात्, यदाह–"[2]मिच्छदिट्ठिमहारंभपरिग्गहो तिव्वलोभ निस्सीलो । नरयाउयं निबंधइ पावमई रोद्दपरिणामो ॥ १ ॥" नरकगतौ

१ श्रमणोपासकेन भदन्त ! तथारूपं श्रमणं वा माहनं वा प्रासुकेनाप्रासुकेन वाऽशनादिना ४ प्रतिलाभयता किं क्रियते ?, गौतम ! एकान्ततो निर्जरा क्रियते ॥ २ मिथ्यादृष्टिर्महारम्भपरिग्रहस्तीव्रलोभो निःशीलः पापमतिः रौद्रपरिणामो नरकायुर्निबध्नाति ॥ १ ॥

५ शतके उद्देशः ६ अल्पदीर्घ-शुभायूंषि सू २०३

॥२२७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

***एते पृष्ठे सूत्र-क्रमांके एक मुद्रण-दोषः दृश्यते (सू.२०३) ---(यहाँ इस पृष्ठ की बायीं तरफ सू.२०३ लिखा है, वहां सू.२०४ होना चाहिए)

अल्प-दीर्घ-शुभ आयुः

प्रत सूत्रांक [२०४]

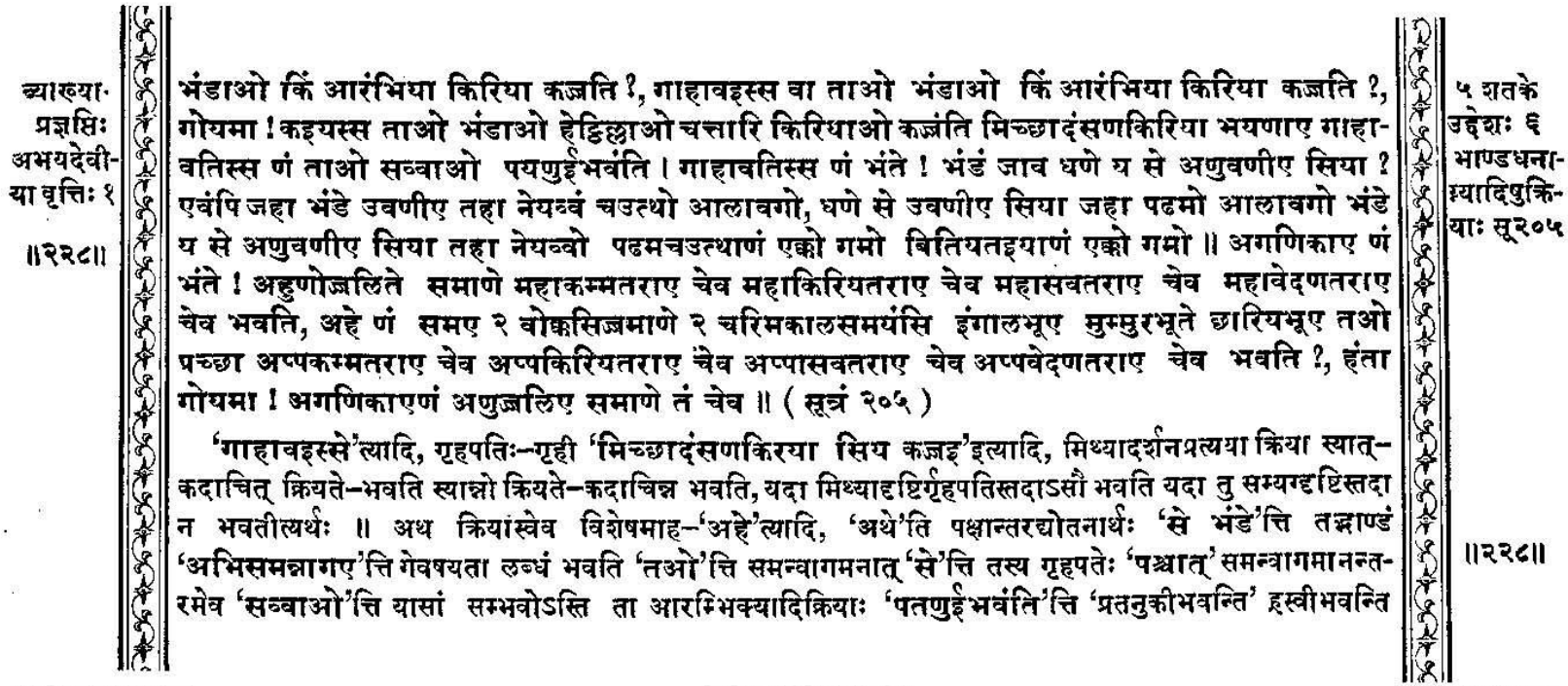
दीप अनुक्रम [२४४]

च विवक्षया दीर्घमेवायुः ॥ विपर्ययसूत्रं प्रागिव, नवरं इहापि प्रासुकाप्रासुकतया दानं न विशेषितं, पूर्वसूत्रविपर्ययत्वाद् अस्य, पूर्वसूत्रस्य चाविशेषणतया प्रवृत्तत्वात्, न च प्रासुकाप्रासुकदानयोः फलं प्रति न विशेषोऽस्ति, पूर्वसूत्रयोस्तस्य प्रतिपादितत्वात्, तस्मादिह प्रासुकैषणीयस्य दानस्य कल्प्याप्राप्तावितरस्य चेदं फलमवसेयं, वाचनान्तरे तु 'फासुएण'-मित्यादि दृश्यत एवेति, इह च प्रथममल्पायुःसूत्रं द्वितीयं तद्विपक्षस्तृतीयमशुभदीर्घायुःसूत्रं चतुर्थं तु तद्विपक्ष इति ॥ अनन्तरं कर्मबन्धक्रियोक्ता, अथ क्रियान्तराणां विषयनिरूपणायाह—

गाहावइस्स णं भंते ! भंडं विक्किणमाणस्स केइ भंडं अवहरेज्जा ? तस्स णं भंते ! तं भंडं अणुगवेसमाणस्स किं आरंभिया किरिया कज्जइ परिग्गहिया० माया० अप० मिच्छा० ?, गोयमा ! आरंभिया किरिया कज्जइ परि० माया० अपच्च० मिच्छादंसणकिरिया सिय कज्जइ सिय नो कज्जइ ॥ अह से भंडे अभिसमन्नागए भवति, तओ से पच्छा सव्वाओ ताओ पयणुईभवंति ॥ गाहावतिस्स णं भंते ! तं भंडं विक्किणमाणस्स कतिए भंडे सातिज्जेज्जा ?, भंडे य से अणुवणीए सिया, गाहावतिस्स णं भंते ! ताओ भंडाओ किं आरंभिया किरिया कज्जइ जाव मिच्छादंसणकिरिया कज्जइ ? कइयस्स वा ताओ भंडाओ किं आरंभिया किरिया कज्जइ जाव मिच्छादंसणकिरिया कज्जइ ?, गोयमा ! गाहावइस्स ताओ भंडाओ आरंभिया किरिया कज्जइ जाव अप-च्चक्खाणिया मिच्छादंसणवत्तिया किरिया सिय कज्जइ सिय नो कज्जइ, कतियस्स णं ताओ सव्वाओ पयणुई भवंति । गाहावतिस्स णं भंते ! भंडं विक्किणमाणस्स जाव भंडे से उवणीए सिया ? कतियस्स णं भंते ! ताओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अल्प-दीर्घ-शुभ आयुः



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥२२८॥

भंडाओ किं आरंभिया किरिया कज्जति ?, गाहावइस्स वा ताओ भंडाओ किं आरंभिया किरिया कज्जति ?, गोयमा ! कइयस्स ताओ भंडाओ हेट्ठिल्लाओ चत्तारि किरियाओ कज्जंति मिच्छादंसणकिरिया भयणाए गाहावतिस्स णं ताओ सव्वाओ पयणुईभवंति । गाहावतिस्स णं भंते ! भंडं जाव धणे य से अणुवणीए सिया ? एवंपि जहा भंडे उवणीए तहा नेयव्वं चउत्थो आलावगो, धणे से उवणीए सिया जहा पढमो आलावगो भंडे य से अणुवणीए सिया तहा नेयव्वो पढमचउत्थाणं एक्को गमो बितियतइयाणं एक्को गमो ॥ अगणिकाए णं भंते ! अहुणोज्जलिते समाणे महाकम्मतराए चेव महाकिरियतराए चेव महासवतराए चेव महावेदणतराए चेव भवति, अहे णं समए २ वोक्कसिज्जमाणे २ चरिमकालसमयंसि इंगालभूए मुम्मुरभूते छारियभूए तओ पच्छा अप्पकम्मतराए चेव अप्पकिरियतराए चेव अप्पासवतराए चेव अप्पवेदणतराए चेव भवति ?, हंता गोयमा ! अगणिकाएणं अणुज्जलिए समाणे तं चेव ॥ (सूत्रं २०५)

'गाहावइस्से'त्यादि, गृहपतिः–गृही 'मिच्छादंसणकिरया सिय कज्जइ'इत्यादि, मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया स्यात्–कदाचित् क्रियते–भवति स्यान्नो क्रियते–कदाचिन्न भवति, यदा मिथ्यादृष्टिर्गृहपतिस्तदाऽसौ भवति यदा तु सम्यग्दृष्टिस्तदा न भवतीत्यर्थः ॥ अथ क्रियास्वेव विशेषमाह–'अहे'त्यादि, 'अथे'ति पक्षान्तरद्योतनार्थः 'से भंडे'त्ति तद्भाण्डं 'अभिसमन्नागए'त्ति गवेषयता लब्धं भवति 'तओ'त्ति समन्वागमनात् 'से'त्ति तस्य गृहपतेः 'पश्चात्' समन्वागमानन्तरमेव 'सव्वाओ'त्ति यासां सम्भवोऽस्ति ता आरम्भिक्यादिक्रियाः 'पतणुईभवंति'त्ति 'प्रतनुकीभवन्ति' ह्रस्वीभवन्ति

५ शतके उद्देशः ६ भाण्डधनाद्यादिपुक्रियाः सू२०५

॥२२८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपहृतभाण्डगवेषणकाले हि महत्यस्ता आसन् प्रयत्नविशेषपरत्वाद्गृहपतेस्तल्लाभकाले तु प्रयत्नविशेषस्योपरतत्वात्ता ह्रस्वीभवन्तीति ॥ 'कइए भंडं साइज्जेज्ज'त्ति क्रयिको–ग्राहको भाण्डं 'स्वादयेत्' सत्यङ्कारदानतः स्वीकुर्यात् 'अणुवणीए सिय'त्ति क्रयिकायासमर्प्पितत्वात्, 'कइयस्स णं ताओ सव्वाओ पतणुईभवंति'त्ति अप्राप्तभाण्डत्वेन तद्गतक्रियाणामल्पत्वादिति, गृहपतेस्तु महत्यो, भाण्डस्य तदीयत्वात्, क्रयिकस्य भाण्डे समर्प्पिते महत्यस्ताः, गृहपतेस्तु प्रतनुकाः २ । इदं भाण्डस्यानुपनीतोपनीतभेदात्सूत्रद्वयमुक्तम्, एवं धनस्यापि वाच्यं, तत्र प्रथममेवम्-'गाहावइस्स णं भंते ! भंडं विक्किणमाणस्स कइए भंडं साइज्जेज्जा ? धणे य से अणुवणीए सिया, कइयस्स णं भंते ! ताओ धणाओ किं आरंभिया किरिया कज्जई ५ ?, गाहावइस्स य ताओ धणाओ किं आरंभिया किरिया कज्जइ ५ ?, गोयमा ! कइयस्स ताओ धणाओ हेट्ठिल्लाओ चत्तारि किरियाओ कज्जंति, मिच्छादंसणकिरिया भयणाए, गाहावतिस्स णं ताओ सव्वाओ पतणुईभवंति,' धनेऽनुपनीते क्रयिकस्य महत्यस्ता भवन्ति, धनस्य तदीयत्वात्, गृहपतेस्तु तास्तनुकाः, धनस्य तदानीमतदीयत्वात्, एवं द्वितीयसूत्रसमानमिदं तृतीयमत एवाह— 'एयंपि जहा भंडे उवणीए तहा णेयव्वं'ति द्वितीयसूत्रसमतयेत्यर्थः ३ । चतुर्थं त्वेवमध्येयम्–'गाहावइस्स णं भंते ! भंडं विक्किणमाणस्स कइए भंडं साइज्जेज्जा धणे य से उवणीए सिया, गाहावइस्स णं भंते ! ताओ धणाओ किं आरंभिया किरिया कज्जइ ५ ? कइयस्स वा ताओ धणाओ किं आरंभिया किरिया कज्जइ ५ ?, गोयमा ! गाहावइस्स ताओ धणाओ आरंभिया ४ मिच्छादंसणवत्तिया किरिया सिय कज्जइ सिय नो कज्जइ, कइयस्स णं ताओ सव्वाओ पयणुईभवंति' धने उपनीते धनप्रत्ययत्वात्तासां गृहपतेर्महत्यः, क्रयिकस्य तु प्रतनुकाः, धनस्य तदानीमतदीयत्वात्; एवं च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०५]

दीप अनुक्रम [२४५]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१ ॥२२९॥

प्रथमसूत्रसममिदं चतुर्थमित्येतदनुसारेण च सूत्रपुस्तकाक्षराण्यनुगन्तव्यानि ॥ क्रियाऽधिकारादिदमाह—'अगणी'त्यादि, 'अहुणोज्जलिए'त्ति 'अधुनोज्वलितः' सद्यःप्रदीप्तः 'महाकम्मतराए'त्ति विध्यायमानानलापेक्षयाऽतिशयेन महान्ति कर्माणि—ज्ञानावरणादीनि बन्धमाश्रित्य यस्यासौ महाकर्म्मतरः, एवमन्यान्यपि, नवरं क्रिया—दाहरूपा आश्रयो—नवकर्मोपादानहेतुः वेदना—पीडा भाविनि तत्कर्मजन्या परस्परशरीरसंबाधजन्या वा 'वोक्कसिज्जमाणे'त्ति 'व्यवकृष्यमाणः' अपकर्षं गच्छन् 'अप्पकम्मतराए'त्ति अङ्गारावस्थामाश्रित्य, अल्पशब्दः स्तोकार्थः, [क्षारावस्थायां त्वभावार्थः] ॥ क्रियाऽधिकारादेवेदमाह—

पुरिसे णं भंते ! धणुं परामुसइ धणुं परामुसित्ता उसुं परामुसइ २ ठाणं ठाइ ठाणं ठिच्चा आयतकण्णायतं उसुं करेंति आयतकण्णायतं उसुं करेत्ता उड्ढं वेहासं उसुं उव्विहइ २ ततो णं से उसुं उड्ढं वेहासं उव्विहिए समाणे जाइं तत्थ पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं अभिहणइ वत्तेति लेस्सेति संघाएइ संघट्टेति परितावेइ किलामेइ ठाणाओ ठाणं संकामेइ जीवियाओ ववरोवेइ तए णं भंते ! से पुरिसे कतिकिरिए ?, गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे धणुं परामुसइ २ जाव उव्विहइ तावं च णं से पुरिसे कातियाए जाव पाणातिवायकिरियाए पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, जेसिंपि य णं जीवाणं सरीरेहिं धणू निव्वत्तिए तेऽवि य णं जीवा काइयाए जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, एवं धणुपुट्ठे पंचहिं किरियाहिं, जीवा पंचहिं, एहारू पंचहिं, उसू पंचहिं, सरे पत्तणे फले एहारू पंचहिं, ॥ (सूत्रं २०६) ॥ अहे णं से उसुं अप्पणो गुरुयत्ताए भारियत्ताए गुरुसंभारियत्ताए अहे वीससाए पचो-

५ शतके उद्देशः ६ धनुरादीनां क्रियावत्त्वं सू २०७

॥२२९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०६--२०७]

दीप अनुक्रम [२४६--२४७]

वयमाणे जाइं तत्थ पाणाइं जाव जीवियाओ ववरोवेइ तावं च णं से पुरिसे कतिकिरिए ?, गोयमा ! जावं च णं से उसुं अप्पणो गुरुयत्ताए जाव ववरोवेइ तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव चउहिं किरियाहिं पुट्ठे, जेसिंपि य णं जीवाणं सरीरेहिं धणू निव्वत्तिए तेवि जीवा चउहिं किरियाहिं, धणूपुट्ठे चउहिं, जीवा चउहिं, पहारू चउहिं, उसू पंचहिं, सरे पत्तणे फले पहारू पंचहिं, जेवि य से जीवा अहे पच्चोवयमाणस्स उवग्गहे चिट्ठंति तेवि य णं जीवा कातियाए जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा ॥ (सूत्रं २०७) ॥

'पुरिसे ण'मित्यादि 'परामुसइ'त्ति 'परामृशति' गृह्णाति 'आययकण्णायतं'ति आयतः–क्षेपाय प्रसारितः कर्णायतः–कर्णं यावदाकृष्टस्ततः कर्मधारयाद् आयतकर्णायतः अतस्तं, 'इषुं' बाणं 'उड्ढं वेहासं'ति ऊर्ध्वमिति वृक्षशिखराद्यपेक्षयाऽपि स्यादत आह–'विहायसि' इत्याकाशे 'उव्विहइ'त्ति 'ऊर्ध्वं विजहाति' ऊर्ध्वं क्षिपतीत्यर्थः, 'अभिहणइ'त्ति अभिमुखमागच्छतो हन्ति 'वत्तेइ'त्ति वर्त्तुलीकरोति शरीरसङ्कोचापादनात् 'लेसेइ'त्ति 'श्लेषयति' आत्मनि श्लिष्टान् करोति 'संघाएइ'त्ति अन्योऽन्यं गात्रैः संहतान् करोति 'संघट्टेइ'त्ति मनाक् स्पृशति 'परितावेइ'त्ति समन्ततः पीडयति 'किलामेइ'त्ति मारणान्तिकादिसमुद्घातं नयति 'ठाणाओ ठाणं संकामेइ' स्वस्थानात्स्थानान्तरं नयति 'जीवियाओ ववरोवेइ'त्ति च्युतजीवितान् करोतीति, 'किरियाहिं पुट्ठे'त्ति क्रियाभिः स्पृष्टः, क्रियाजन्येन कर्मणा बद्ध इत्यर्थः, 'धणु'त्ति धनुः–दण्डगुणादिसमुदायः, ननु पुरुषस्य पञ्च क्रिया भवन्तु, कायादिव्यापाराणां तस्य दृश्यमानत्वात्, धनुरादिनिर्वर्त्तकशरीराणां तु जीवानां कथं पञ्च क्रियाः ?, कायमात्रस्यापि तदीयस्य तदानीमचेतनत्वात्, अचेतनकायमात्रा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०६--२०७]

दीप अनुक्रम [२४६--२४७]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२३०॥

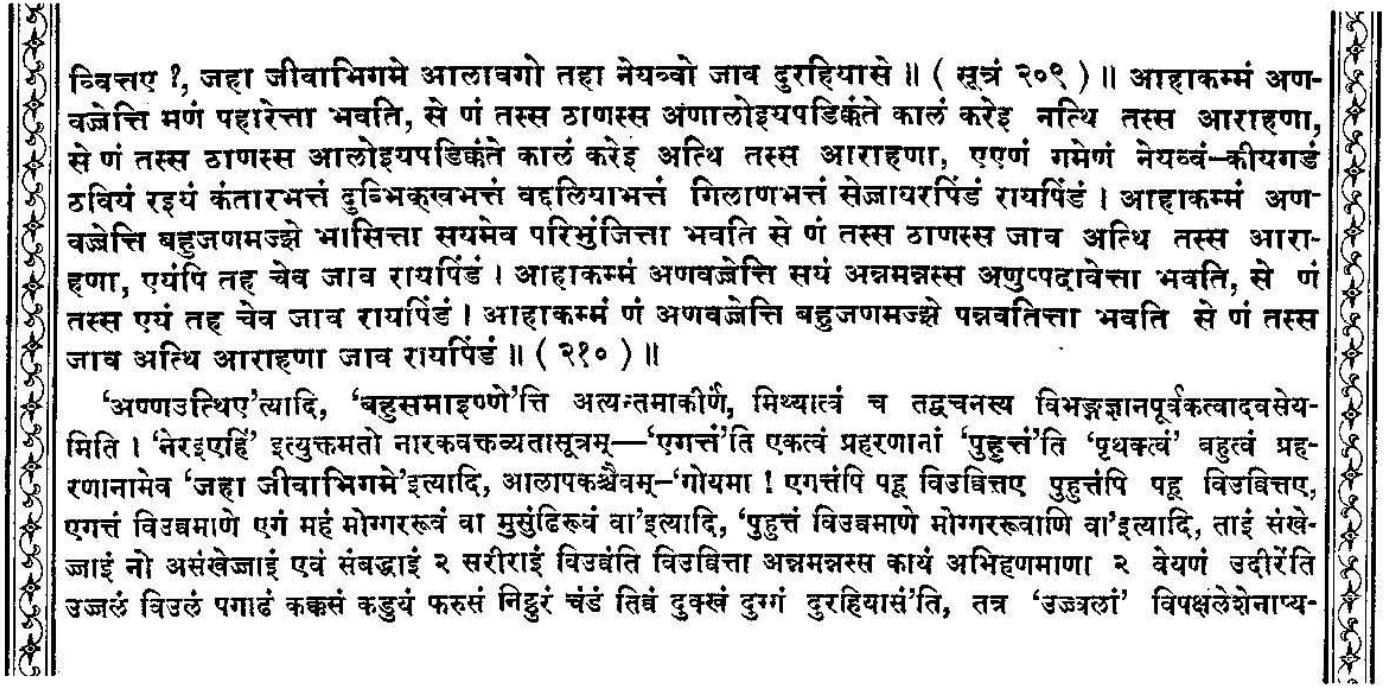
दपि बन्धाभ्युपगमे सिद्धानामपि तत्प्रसङ्गः, तदीयशरीराणामपि प्राणातिपातहेतुत्वेन लोके विपरिवर्त्तमानत्वात्, किञ्च–यथा धनुरादीनि कायिक्यादिक्रियाहेतुत्वेन पापकर्मबन्धकारणानि भवन्ति तज्जीवानामेवं पात्रदण्डकादीनि जीवरक्षाहेतुत्वेन पुण्यकर्मनिबन्धनानि स्युः, न्यायस्य समानत्वाद् इति, अत्रोच्यते, अविरतिपरिणामाद् बन्धः, अविरतिपरिणामश्च यथा पुरुषस्यास्ति एवं धनुरादिनिर्वर्त्तकशरीरजीवानामपीति, सिद्धानां तु नास्त्यसाविति न बन्धः, पात्रादिजीवानां तु न पुण्यबन्धहेतुत्वं, तद्धेतोर्विवेकादेस्तेष्वभावादिति, किञ्च–सर्वज्ञवचनप्रामाण्याद्यथोक्तं तत्तथा श्रद्धेयमेवेति, इषुरिति–शरपत्रफलादिसमुदायः ॥ 'अहे णं से उसू'इत्यादि, इह धनुष्मदादीनां यद्यपि सर्वक्रियासु कथञ्चिन्निमित्तभावोऽस्ति तथाऽपि विवक्षितबन्धं प्रत्यमुख्यप्रवृत्तिकतया विवक्षितवधक्रियायास्तैः कृतत्वेनाविवक्षणाच्छेषक्रियाणां च निमित्तभाव-मात्रेणापि तत्कृतत्वेन विवक्षणाच्चतस्रस्ता उक्ताः, बाणादिजीवशरीराणां तु साक्षाद् वधक्रियायां प्रवृत्तत्वात्पञ्चेति ॥ अथ सम्यक्प्ररूपणाधिकारान्मिथ्याप्ररूपणानिरासपूर्वकं सम्यक्प्ररूपणामेव दर्शयन्नाह—

अण्णउत्थिया णं भंते ! एवमातिक्खंति जाव परूवेंति से जहानामए–जुवतिं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा चक्कस्स वा नाभी अरगा उत्तासिया एवामेव जाव चत्तारि पंच जोयणसयाइं बहुसमाइन्ने मणु-यलोए मणुस्सेहिं, से कहमेयं भंते ! एवं ?, गोयमा ! जण्णं ते अण्णउत्थिया जाव मणुस्सेहिं जे ते एव-माहंसु मिच्छा०, अहं पुण गोयमा ! एवमातिक्खामि जाव एवामेव चत्तारि पंच जोयणसयाइं बहुसमा-इण्णे निरयलोए नेरइएहिं ॥ (सूत्रं २०८) ॥ नेरइया णं भंते ! किं एगत्तं पभू विउव्वित्तए पुहुत्तं पभू विउ-

५ शतके उद्देशः ६ चतुःपञ्चश-तीनारक-णामाकीर्ण-ता सू २०८

॥२३०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



विउत्तए ?, जहा जीवाभिगमे आलावगो तहा नेयव्वो जाव दुरहियासे ॥ (सूत्रं २०९) ॥ आहाकम्मं अणवज्जेत्ति भणं पहारेत्ता भवति, से णं तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालं करेइ नत्थि तस्स आराहणा, से णं तस्स ठाणस्स आलोइयपडिक्कंते कालं करेइ अत्थि तस्स आराहणा, एएणं गमेणं नेयव्वं–कीयगडं ठवियं रइयं कंतारभत्तं दुब्भिक्खभत्तं वद्दलियाभत्तं गिलाणभत्तं सेज्जायरपिंडं रायपिंडं । आहाकम्मं अणवज्जेत्ति बहुजणमज्झे भासित्ता सयमेव परिभुंजित्ता भवति से णं तस्स ठाणस्स जाव अत्थि तस्स आराहणा, एयंपि तह चेव जाव रायपिंडं । आहाकम्मं अणवज्जेत्ति सयं अन्नमन्नस्स अणुप्पदावेत्ता भवति, से णं तस्स एयं तह चेव जाव रायपिंडं । आहाकम्मं णं अणवज्जेत्ति बहुजणमज्झे पन्नवतित्ता भवति से णं तस्स जाव अत्थि आराहणा जाव रायपिंडं ॥ (२१०) ॥

'अण्णउत्थिए'त्यादि, 'बहुसमाइण्णे'त्ति अत्यन्तमाकीर्ण, मिथ्यात्वं च तद्वचनस्य विभङ्गज्ञानपूर्वकत्वादवसेयमिति । 'नेरइएहिं' इत्युक्तमतो नारकवक्तव्यतासूत्रम्—'एगत्तं'ति एकत्वं प्रहरणानां 'पुहुत्तं'ति 'पृथक्त्वं' बहुत्वं प्रहरणानामेव 'जहा जीवाभिगमे'इत्यादि, आलापकश्चैवम्–'गोयमा ! एगत्तंपि पहू विउव्वित्तए पुहुत्तंपि पहू विउव्वित्तए, एगत्तं विउव्वमाणे एगं महं मोग्गररूवं वा मुसुंढिरूवं वा'इत्यादि, 'पुहुत्तं विउव्वमाणे मोग्गररूवाणि वा'इत्यादि, ताइं संखेज्जाइं नो असंखेज्जाइं एवं संबद्धाइं २ सरीराइं विउव्वंति विउव्वित्ता अन्नमन्नस्स कायं अभिहणमाणा २ वेयणं उदीरेंति उज्जलं विउलं पगाढं कक्कसं कडुयं फरुसं निट्ठुरं चंडं तिव्वं दुक्खं दुग्गं दुरहियासं'ति, तत्र 'उज्ज्वलां' विपक्षलेशेनाप्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १ ॥२३१॥

कलङ्कितां 'विपुलां' शरीरव्यापिकां 'प्रगाढां' प्रकर्षवतीं 'कर्कशां' कर्कशद्रव्योपमामनिष्टामित्यर्थः, एवं कटुकां परुषां निष्ठुरां चेति 'चण्डां' रौद्रां 'तीव्रां' झगिति शरीरव्यापिकां 'दुःखाम्' असुखरूपां 'दुर्गां' दुःखाश्रयणीयाम्, अत एव दुरधिसह्यामिति ॥ इयं च वेदना ज्ञानाद्याराधनाविरहेण भवतीत्याराधनाऽभावं दर्शयितुमाह—'आहाकम्मे'त्यादि, 'अणवज्जे'त्ति 'अनवद्य'मिति निर्दोषमिति 'मणं पहारेत्त'त्ति मानसं 'प्रधारयिता' स्थापयिता भवति, 'रइयगं'ति मोदकचूर्णादि पुनर्मोदकादितया रचितमौद्देशिकभेदरूपं 'कंतारभत्तं'ति कान्तारम्–अरण्यं तत्र भिक्षुकाणां निर्वाहार्थं यद्विहितं भक्तं तत्कान्तारभक्तं, एवमन्यान्यपि, नवरं वार्दलिका–मेघदुर्दिनं, 'गिलाणभत्तं'ति ग्लानस्य नीरोगतार्थं भिक्षुकदानाय यत्कृतं भक्तं तद् ग्लानभक्तं, आधाकर्मादीनां सदोषत्वेनागमेऽभिहितानां निर्दोषताकल्पनं तत एव स्वयं भोजनमन्यसाधुभ्योऽनुप्रदानं सभायां निर्दोषताभणनं च विपरीतश्रद्धानादिरूपत्वान्मिथ्यात्वादि, ततश्च ज्ञानादीनां विराधना स्फुटैवेति ॥ आधाकर्म्मादींश्च पदार्थानाचार्यादयः सभायां प्रायः प्रज्ञापयन्तीत्याचार्यादीन् फलतो दर्शयन्नाह—

आयरियउवज्झाए णं भंते ! सविसयंसि गणं अगिलाए संगिण्हमाणे अगिलाए उवगिण्हमाणे कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झति जाव अंतं करेति ?, गोयमा ! अत्थेगतिए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति अत्थेगतिए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झति तच्चं पुण भवग्गहणं णातिक्कमति ॥ (सूत्रं २११) ॥ जे णं भंते ! परं अलिएणं असब्भूतेणं अब्भक्खाणेणं अब्भक्खाति तस्स णं कहप्पगारा कम्मा कज्जंति ?, गोयमा ! जे णं परं अलिएणं असंतवयणेणं अब्भक्खाणेणं अब्भक्खाति तस्स णं तहप्पगारा चेव कम्मा कज्जंति, जत्थेव णं अभि-

५ शतके उद्देशः ६ आचार्यत्वात् सिद्धिः अभ्याख्यानफलं च सू २११-२१२

॥२३१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समागच्छंति तत्थेव णं पडिसंवेदेंति ततो से पच्छा वेदेंति सेवं भंते २ त्ति ॥ (सूत्रं २१२) ॥ पंचमशते षष्ठ उद्देशकः ॥ ५–६ ॥

'आयरिये'त्यादि, 'आयरियउवज्झाए णं'ति आचार्येण सहोपाध्याय आचार्योपाध्यायः 'सविसयंसि'त्ति 'स्वविषये' अर्थदानसूत्रदानलक्षणे 'गणं'ति शिष्यवर्गं 'अगिलाए'त्ति अखेदेन संगृह्णन् 'उपगृह्णन्' उपष्टम्भयन्, द्वितीयः तृतीयश्च भवो मनुष्यभवो देवभवान्तरितो द्रष्टव्यः, चारित्रवतोऽनन्तरो देवभव एव भवति न च तत्र सिद्धिरस्तीति ॥ परानुग्रहस्यानन्तरफलमुक्तं, अथ परोपघातस्य तदाह—'जे ण'मित्यादि, 'अलिएणं'ति 'अलीकेन भूतनिह्नवरूपेण पालितब्रह्मचर्यसाधुविषयेऽपि नानेन ब्रह्मचर्यमनुपालितमित्यादिरूपेण 'असब्भूएणं'ति अभूतोद्भावनरूपेण अचौरेऽपि चौरोऽयमित्यादिना, अथवा 'अलीकेन' असत्येन, तच्च द्रव्यतोऽपि भवति लुब्धकादिना मृगादीन् पृष्टस्य जानतोऽपि नाहं जानामीत्यादि, अत एवाह–'असद्भूतेन' दुष्टाभिसन्धित्वादशोभनरूपेण अचौरेऽपि चौरोऽयमित्यादिना 'अब्भक्खाणेणं'ति आभिमुख्येनाख्यानं–दोषाविष्करणमभ्याख्यानं तेन 'अभ्याख्याति' ब्रूते 'कहप्पगार'त्ति कथंप्रकाराणि किंप्रकाराणीत्यर्थः, 'तहप्पगार'त्ति अभ्याख्यानफलानीत्यर्थः, 'जत्थेव ण'मित्यादि, यत्रैव मानुषत्वादौ 'अभिसमागच्छति' उत्पद्यते तत्रैव प्रतिसंवेदयत्यभ्याख्यानफलं कर्म्म ततः पश्चाद्वेदयति–निर्जरयतीत्यर्थः ॥ पञ्चमशते षष्ठः ॥ ५–६ ॥

षष्ठोद्देशकान्त्यसूत्रे कर्म्मपुद्गलनिर्जरोक्ता, निर्जरा च चलनमिति सप्तमे पुद्गलचलनमधिकृत्येदमाह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पंचम-शतके षष्ठं-उद्देशक: समाप्त:

अथ पंचम-शतके सप्तम-उद्देशक: आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [२१३--२१४]

दीप अनुक्रम [२५३--२५४]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२३२॥

परमाणुपोग्गले णं भंते ! एयति वेयति जाव तं तं भावं परिणमति ?, गोयमा ! सिय एयति वेयति जाव परिणमति सिय णो एयति जाव णो परिणमति । दुपदेसिए णं भंते ! खंधे एयति जाव परिणमइ ?, गोयमा ! सिय एयति जाव परिणमति सिय णो एयति जाव णो परिणमति, सिय देसे एयति देसे नो एयति । तिप्पएसिए णं भंते ! खंधे एयति० ?, गोयमा ! सिय एयति सिय नो एयति, सिय देसे एयति नो देसो एयति सिय देसे एयति नो देसा एयंति सिय देसा एयंति नो देसे एयति । चउप्पएसिए णं भंते ! खंधे एयति० ?, गोयमा ! सिय एयति सिय नो एयति सिय देसे एयति णो देसे एयति सिय देसे एयति णो देसा एयंति सिय देसा एयंति नो देसे एयति सिय देसा एयंति नो देसा एयंति जहा चउप्पदेसिओ तहा पंचपदेसिओ तहा जाव अणंतपदेसिओ ॥ (सूत्रं २१३) ॥ परमाणुपोग्गले णं भंते ! असिधारं वा खुरधारं वा ओगाहेज्जा ?, हंता ! ओगाहेज्जा । से णं भंते ! तत्थ छिज्जेज्ज वा भिज्जेज्ज वा ?, गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कमति, एवं जाव असंखेज्जपएसिओ । अणंतपदेसिए णं भंते ! खंधे असिधारं वा खुरधारं वा ओगाहेज्जा ?, हंता ! ओगाहेज्जा, से णं तत्थ छिज्जेज्ज वा भिज्जेज्ज वा ?, गोयमा ! अत्थेगतिए छिज्जेज्ज वा भिज्जेज्ज वा अत्थेगतिए नो छिज्जेज्ज वा नो भिज्जेज्ज वा, एवं अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं तहिं णवरं झियाएज्जा भाणितव्वं, एवं पुक्खलसंवट्टगस्स महामेहस्स मज्झंमज्झेणं तहिं उल्ले सिया, एवं गंगाए महा-

५ शतके उद्देशः ७ परमाण्वादे-रेजनादिअ-सिधाराद्य-वगाहनादि चसूं २१३-२१४

॥२३२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णदीए पडिसोयं हव्वमागच्छेज्जा, तहिं विणिहायमावज्जेज्जा, उदगावत्तं वा उदगबिंदुं वा ओगाहेज्जा से णं तत्थ परियावज्जेज्जा ॥ (सूत्रं २१४) ॥

'परमाणु'इत्यादि, 'सिय एयइ'त्ति कदाचिदेजते, कादाचित्कत्वात्सर्वपुद्गलेष्वेजनादिधर्म्माणां । द्विप्रदेशिके त्रयो विकल्पाः–स्यादेजनं १ स्यादनेजनं २ स्याद्देशैनैजनं देशेनानेजनं चेति ३, द्व्यंशत्वात्तस्येति । त्रिप्रदेशिके पञ्च–आद्यास्त्रयस्त एव द्व्यणुकस्यापि तदीयस्यैकस्यांशस्य तथाविधपरिणामेनैकदेशतया विवक्षितत्वात्, तथा देशस्यैजनं देशयोश्चानेजनमिति चतुर्थः, तथा देशयोरेजनं देशस्य चानेजनमिति पञ्चमः । एवं चतुःप्रदेशिकेऽपि नवरं षट्, तत्र षष्ठो देशयोरेजनं देशयोरेव चानेजनमिति ॥ पुद्गलाधिकारादेवेदं सूत्रवृन्दम्—'परमाणु'इत्यादि, 'ओगाहेज्ज'त्ति अवगाहेत आश्रयेत 'छिद्येत' द्विधाभावं यायात् 'भिद्येत' विदारणभावमात्रं यायात्, 'नो खलु तत्थ सत्थं कमइ'त्ति परमाणुत्वादन्यथा परमाणुत्वमेव न स्यादिति । 'अत्थेगइए छिज्जेज्ज'त्ति तथाविधबादरपरिणामत्वात् 'अत्थेगइए नो छिज्जेज्ज'त्ति सूक्ष्मपरिणामत्वात् 'उल्ले सिय'त्ति आर्द्रो भवेत् 'विणिहायमावज्जेज्ज'त्ति प्रतिस्खलनमापद्येत 'परियावज्जेज्ज'त्ति 'पर्य्यापद्येत' विनश्येत् ॥

परमाणुपोग्गले णं भंते ! किं सअड्ढे समज्झे सपएसे ? उदाहु अणड्ढे अमज्झे अपएसे ?, गोयमा ! अणड्ढे अमज्झे अपएसे नो सअड्ढे नो समज्झे नो सपएसे ॥ दुपदेसिए णं भंते ! खंधे किं सअड्ढे समज्झे सपदेसे उदाहु अणड्ढे अमज्झे अपदेसे ?, गोयमा ! सअड्ढे अमज्झे सपदेसे णो अणड्ढे णो समज्झे णो अपदेसे ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२१५]

दीप अनुक्रम [२५५]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२३३॥

तिपदेसिए णं भंते ! खंधे पुच्छा, गोयमा ! अणद्धे समज्झे सपदेसे नो सअद्धे णो अमज्झे णो अपदेसे, जहा दुपदेसिओ तहा जे समा ते भाणियव्वा, जे विसमा ते जहा तिपएसिओ तहा भाणियव्वा। संखेज्जपदेसिए णं भंते ! खंधे किं सअद्धे ६ ? पुच्छा, गोयमा ! सिय सअद्धे अमज्झे सपदेसे सिय अणद्धे समज्झे सपदेसे जहा संखेज्जपदेसिओ तहा असंखेज्जपदेसिओऽवि अणंतपदेसिओऽवि ॥ (सूत्रं २१५) ॥

'दुपएसिए'इत्यादि, यस्य स्कन्धस्य समाः प्रदेशाः स साद्धों यस्य तु विषमाः स समध्यः, सङ्ख्येयप्रदेशिकादिस्तु स्कन्धः समप्रदेशिकः इतरश्च, तत्र यः समप्रदेशिकः स साद्धोंऽमध्यः, इतरस्तु विपरीत इति ॥

परमाणुपोग्गले णं भंते ! परमाणुपोग्गलं फुसमाणे किं देसेणं देसं फुसइ १ देसेणं देसे फुसइ २ देसेणं सव्वं फुसइ ३ देसेहिं देसं फुसति ४ देसेहिं देसे फुसइ ५ देसेहिं सव्वं फुसइ ६ सव्वेणं देसं फुसति ७ सव्वेणं देसे फुसति ८ सव्वेणं सव्वं फुसइ ९ ?, गोयमा ! णो देसेणं देसं फुसइ णो देसेणं देसे फुसति णो देसेणं सव्वं फुसइ णो देसेहिं देसं फुसति नो देसेहिं देसे फुसइ नो देसेहिं सव्वं फुसति णो सव्वेणं देसं फुसइ णो सव्वेणं देसे फुसति सव्वेणं सव्वं फुसइ, एवं परमाणुपोग्गले दुपदेसियं फुसमाणे सत्तमणवमेहिं फुसति, परमाणुपोग्गले तिपएसियं फुसमाणे णिप्पच्छिमएहिं तिहिं फु०, जहा परमाणुपोग्गले तिपएसियं फुसाविओ एवं फुसावेयव्वो जाव अणंतपएसिओ॥ दुपएसिए णं भंते ! खंधे परमाणुपोग्गलं फुसमाणे पुच्छा, ततियनवमेहिं फुसति, दुपदेसियं फुसमाणो पढमतइयसत्तमणवमेहिं फुसइ, दुपदेसिओ

५ शतके उद्देशः ७ परमाण्वादेः साधर्द्धिता देशस्पर्शादि च सू २१५-२१६

॥२३३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२१६]

दीप अनुक्रम [२५६]

तिपदेसियं फुसमाणो आदिल्लएहिं य पच्छिल्लएहिं य तिहिं फुसति, मज्झमएहिं तिहिं विपडिसेहेयव्वं, दुपदेसिओ जहा तिपदेसियं फुसावितो एवं फुसावेयव्वो जाव अणंतपएसियं। तिपएसिए णं भंते ! खंधे परमाणुपोग्गलं फुसमाणे पुच्छा, ततियछट्ठणवमेहिं फुसति, तिपएसिओ दुपएसियं फुसमाणो पढमएणं ततिएणं चउत्थछट्ठसत्तमणवमेहिं फुसति, तिपएसिओ तिपएसियं फुसमाणो सव्वेसुवि ठाणेसु फुसति, जहा तिपएसिओ तिपदेसियं फुसावितो एवं तिपदेसिओ जाव अणंतपएसिएणं संजोएयव्वो, जहा तिपएसिओ एवं जाव अणंतपएसिओ भाणियव्वो ॥ (सूत्रं २१६) ॥

'परमाणुपोग्गले णं भंते !' इत्यादि, 'किं देसेणं देस'मित्यादयो नव विकल्पाः, तत्र देशेन स्वकीयेन देशं तदीयं स्पृशति, देशेनेत्यनेन देशं देशान् सर्वमित्येवं शब्दत्रयपरेण त्रयः, एवं देशैरित्यनेन ३, सर्वेणेत्यनेन च त्रय एवेति ३, स्थापना–

	देशेन	देशैः	सर्वेण
१	देशं	देशं	देशं
२	देशान्	देशान्	देशान्
३	सर्वं	सर्वं	सर्वं

अत्र च सर्वेण सर्वमित्येक एव घटते, परमाणोर्निरंशत्वेन शेषाणामसम्भवात्, ननु यदि सर्वेण सर्वं स्पृशतीत्युच्यते तदा परमाण्वोरेकत्वापत्तेः कथमपरापरपरमाणुयोगेन घटादिस्कन्धनिष्पत्तिः ? इति, अत्रोच्यते, सर्वेण सर्वं स्पृशतीति कोऽर्थः ?, स्वात्मना तावन्योऽन्यस्य लगतो, न पुनरर्द्धाद्यंशेन, अर्द्धादिदेशस्य तयोरभावात्, घटाद्यभावापत्तिस्तु तदैव प्रसज्येत यदा तयोरेकत्वापत्तिः, न च तयोः सा, स्वरूपभेदात्। 'सत्तमनवमेहिं फुसइ'त्ति सर्वेण देशं सर्वेण सर्वमित्येताभ्यामित्यर्थः, तत्र यदा द्विप्रदेशिकः प्रदेशद्वयावस्थितो भवति तदा तस्य परमाणुः सर्वेण देशं स्पृशति, परमाणोस्तदेशस्यैव विषय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्याप्रज्ञप्तिः अभयदेवीया वृत्तिः १ ॥२३४॥

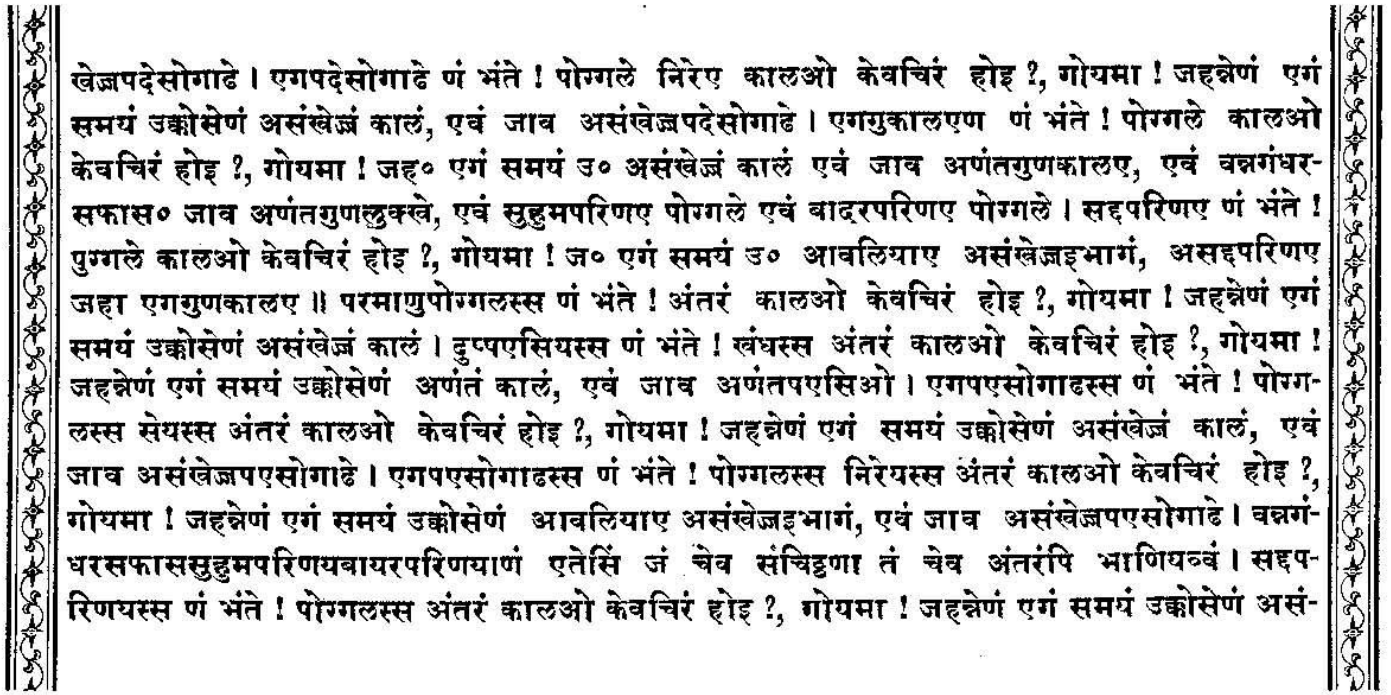
त्वात्, यदा तु द्विप्रदेशिकः परिणामसौक्ष्म्यादेकप्रदेशस्थो भवति तदा तं परमाणुः सर्वेण सर्वं स्पृशतीत्युच्यते, 'पच्छिमएहिं तिहिं फुसइ'त्ति त्रिप्रदेशिकमसौ स्पृशद्भिरन्यैः स्पृशति, तत्र यदा त्रिप्रदेशिकः प्रदेशत्रयस्थितो भवति तदा तस्य परमाणुः सर्वेण देशं स्पृशति परमाणोस्तदेशस्यैव विषयत्वात्, यदा तु तस्यैकत्र प्रदेशे द्वौ प्रदेशौ अन्यत्रैकोऽवस्थितः स्यात्तदा एकप्रदेशस्थितपरमाणुद्वयस्य परमाणोः स्पर्शविषयत्वेन सर्वेण देशौ स्पृशतीत्युच्यते, ननु द्विप्रदेशिकेऽपि युक्तोऽयं विकल्पस्तत्रापि प्रदेशद्वयस्य स्पृश्यमानत्वात्?, नैवं, यतस्तत्र द्विप्रदेशमात्र एवावयवीति कस्य देशौ स्पृशति?, त्रिप्रदेशिके तु त्रयापेक्षया द्वयस्पर्शने एकोऽवशिष्यते ततश्च सर्वेण देशौ त्रिप्रदेशिकस्य स्पृशतीति व्यपदेशः साधुः स्यादिति, यदा त्वेकप्रदेशावगाढोऽसौ तदा सर्वेण सर्वं स्पृशतीति स्यादिति ॥ 'दुपएसिए ण'मित्यादि, 'तइयनवमेहिं फुसइ'त्ति यदा द्विप्रदेशिकः द्विप्रदेशस्थस्तदा परमाणुं देशेन सर्वं स्पृशतीति तृतीयः, यदा त्वेकप्रदेशावगाढोऽसौ तदा सर्वेण सर्वमिति नवमः। 'दुपएसिओ दुपएसिय'मित्यादि, यदा द्विप्रदेशिकौ प्रत्येकं द्विप्रदेशावगाढौ तदा देशेन देशमिति प्रथमः, यदा त्वेक एकत्रान्यस्तु द्वयोस्तदा देशेन सर्वमिति तृतीयः, तथा सर्वेण देशमिति सप्तमः, नवमस्तु प्रतीत एवेति, अनया दिशाऽन्येऽपि व्याख्येया इति॥ पुद्गलाधिकारादेव पुद्गलानां द्रव्यक्षेत्रभावान् कालतश्चिन्तयति, तत्र–

परमाणुपोग्गले णं भंते ! कालतो केवचिरं होति ?, गोयमा ! जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, एवं जाव अणंतपएसिओ। एगपदेसोगाढे णं भंते ! पोग्गले सेए तम्मि वा ठाणेसु अन्नंमि वा ठाणे कालओ केवचिरं होइ ?, गोयमा ! जह० एगं समयं उक्को० आवलियाए असंखेज्जइभागं, एवं जाव असं-

५ शतके उद्देशः ७ परमाण्वादेः साधर्म्यादिता देशस्पर्शादि च सू २१५ २१६

॥२३४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



खेज्जपदेसोगाढे । एगपदेसोगाढे णं भंते ! पोग्गले निरेए कालओ केवचिरं होइ ?, गोयमा ! जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, एवं जाव असंखेज्जपदेसोगाढे । एगगुकालएण णं भंते ! पोग्गले कालओ केवचिरं होइ ?, गोयमा ! जह० एगं समयं उ० असंखेज्जं कालं एवं जाव अणंतगुणकालए, एवं वन्नगंधरसफास० जाव अणंतगुणलुक्खे, एवं सुहुमपरिणए पोग्गले एवं बादरपरिणए पोग्गले । सद्दपरिणए णं भंते ! पुग्गले कालओ केवचिरं होइ ?, गोयमा ! ज० एगं समयं उ० आवलियाए असंखेज्जइभागं, असद्दपरिणए जहा एगगुणकालए ॥ परमाणुपोग्गलस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ?, गोयमा ! जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं । दुप्पएसियस्स णं भंते ! खंधस्स अंतरं कालओ केवचिरं होइ ?, गोयमा ! जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेणं अणंतं कालं, एवं जाव अणंतपएसिओ । एगपएसोगाढस्स णं भंते ! पोग्गलस्स सेयस्स अंतरं कालओ केवचिरं होइ ?, गोयमा ! जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, एवं जाव असंखेज्जपएसोगाढे । एगपएसोगाढस्स णं भंते ! पोग्गलस्स निरेयस्स अंतरं कालओ केवचिरं होइ ?, गोयमा ! जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं, एवं जाव असंखेज्जपएसोगाढे । वन्नगंधरसफाससुहुमपरिणयबायरपरिणयाणं एतेसिं जं चेव संचिट्ठणा तं चेव अंतरंपि भाणियव्वं । सद्दपरिणयस्स णं भंते ! पोग्गलस्स अंतरं कालओ केवचिरं होइ ?, गोयमा ! जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेणं असं-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२१७]

दीप अनुक्रम [२५७]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१

॥२३५॥

खेज्जं कालं । असद्दपरिणयस्स णं भंते ! पोग्गलस्स अंतरं कालओ केवचिरं होइ ?, गोयमा ! जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं ॥ (सूत्रं २१७) ॥

'परमाणु'इत्यादि द्रव्यचिन्ता 'उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं'ति असंख्येयकालात्परः पुद्गलानामेकरूपेण स्थित्यभावात् 'एग-पएसोगाढे ण'मित्यादि क्षेत्रचिन्ता, 'सेए'त्ति 'सैजः' सकम्पः 'तम्मि ठाणे'त्ति अधिकृत एव 'अण्णम्मि व'त्ति अधि-कृतादन्यत्र 'उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं'ति पुद्गलानामाकस्मिकत्वाच्चलनस्य न निरेजत्वादीनामिवासङ्ख्ये-यकालत्वं, 'असंखेज्जपएसोगाढे'त्ति अनन्तप्रदेशावगाढस्यासम्भवादसङ्ख्यातप्रदेशावगाढ इत्युक्तं, 'निरेए'त्ति 'निरेजः' निष्प्रकम्पः ॥ 'परमाणुपोग्गलस्से'त्यादि, परमाणोरपगते परमाणुत्वे यदपरमाणुत्वेन वर्त्तनमापरमाणुत्वपरिणतेः तद-न्तरं–स्कन्धसम्बन्धकालः, स चोत्कर्षतोऽसङ्ख्यात इति । द्विप्रदेशिकस्य तु शेषस्कन्धसम्बन्धकालः परमाणुकालश्चान्तर-कालः, स च तेषामनन्तत्वात् प्रत्येकं चोत्कर्षतोऽसङ्ख्येयस्थितिकत्वादनन्तः, तथा यो निरेजस्य कालः स सैजस्यान्तरमि-तिकृत्वोक्तं सैजस्यान्तरमुत्कर्षतोऽसङ्ख्यातकाल इति, यस्तु सैजस्य कालः स निरेजस्यान्तरमितिकृत्वोक्तं निरेजस्यान्तरमु-त्कर्षत आवलिकाया असङ्ख्यातो भाग इति । एकगुणकालकत्वादीनां चान्तरमेकगुणकालकत्वादिकालसमानमेव, न पुन-र्द्विगुणकालत्वादीनामनन्तत्वेन तदन्तरस्यानन्तत्वं, वचनप्रामाण्यात् । सूक्ष्मादिपरिणतानां स्ववस्थानतुल्यमेवान्तरं, यतो यदेवैकस्यावस्थानं तदेवान्यस्यान्तरं, तच्चासङ्ख्येयकालमानमिति । 'सद्दे'त्यादि तु सूत्रसिद्धम् ॥

एयस्स णं भंते ! दव्वट्ठाणाउयस्स खेत्तट्ठाणाउयस्स ओगाहणट्ठाणाउयस्स भावट्ठाणाउयस्स कयरे २

५ शतके उद्देशः ७ परमाणु-त्वाद्यन्तरं सू २१७

॥२३५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२१८]

दीप अनुक्रम [२५८--२५९]

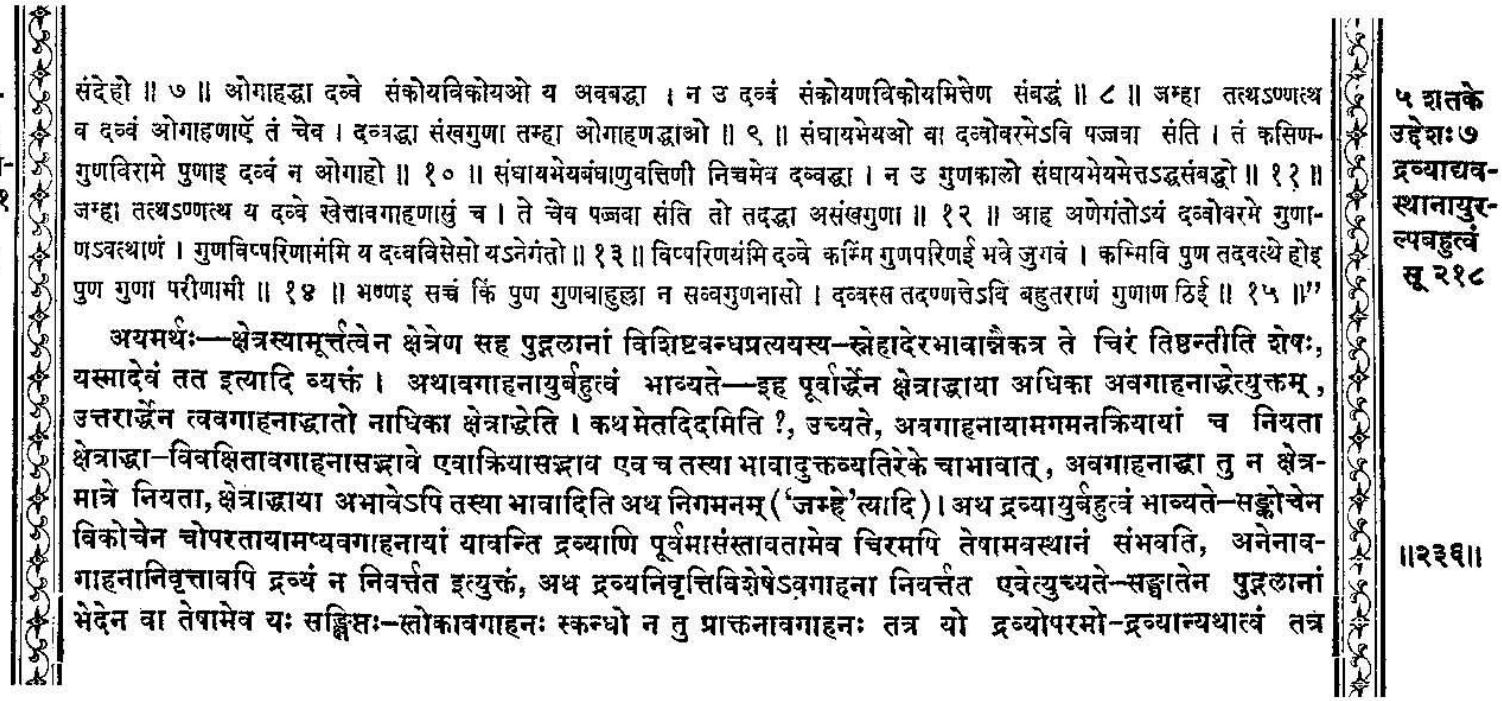
जाव विसेसाहिया वा ?, गोयमा ! सव्वत्थोवे खेत्तट्ठाणाउए ओगाहणट्ठाणाउए असंखेज्जगुणे दव्वट्ठाणाउए असंखेज्जगुणे भावट्ठाणाउए असंखेज्जगुणे–'खेत्तोगाहणदव्वे भावट्ठाणाउयं च अप्पबहुं । खेत्ते सव्वत्थोवे सेसा ठाणा असंखेज्जा ॥ १ ॥' (सूत्रम् २१८)

'एयस्स णं भंते ! दव्वट्ठाणाउयस्स'त्ति द्रव्यं–पुद्गलद्रव्यं तस्य स्थानं–भेदः परमाणुद्विप्रदेशिकादि तस्यायुः–स्थितिः, अथवा द्रव्यस्याणुत्वादिभावेन यत्स्थानं तद्रूपमायुः द्रव्यस्थानायुस्तस्य 'खित्तट्ठाणाउयस्स'त्ति क्षेत्रस्य–आकाशस्य स्थानं–भेदः पुद्गलावगाहकृतस्तस्यायुः–स्थितिः, अथवा क्षेत्रे–एकप्रदेशादौ स्थानं–यत्पुद्गलानामवस्थानं तद्रूपमायुः क्षेत्रस्थानायुः, एवमवगाहनास्थानायुः भावस्थानायुश्च, नवरमवगाहना–नियतपरिमाणक्षेत्रावगाहित्वं पुद्गलानां भावस्तु–कालत्वादिः, ननु क्षेत्रस्यावगाहनायाश्च को भेदः ?, उच्यते, क्षेत्रमवगाढमेव, अवगाहना तु विवक्षितक्षेत्रादन्यत्रापि पुद्गलानां तत्परिमाणावगाहित्वमिति । 'कयरे'इत्यादि कण्ठ्यं, एषां च परस्परेणाल्पबहुत्वव्याख्या गाथानुसारेण कार्या, ताश्चेमाः-

खेत्तोगाहणदव्वेभावट्ठाणाउअप्पबहुयत्ते । थोवा असंखगुणिया तिन्नि य सेसा कहं णेया ? ॥ १ ॥ खेत्तामुत्तत्ताओ तेण समं बंधपच्चयाभावा । तो पोग्गलाण थोवो खेत्तावट्ठाणकालो उ ॥ २ ॥ अण्णक्खेत्तगयस्सवि तं चिय माणं चिरंपि संभवइ । ओगाहणनासे पुण खेत्तण्णत्तं फुडं होइ ॥ ३ ॥ ओगाहणावबद्धा खेत्तद्धा अक्खियावबद्धा य । न उ ओगाहणकालो खेत्तद्धामेत्तसंबद्धो ॥ ४ ॥ जम्हा तत्थऽण्णत्थ य सचिय ओगाहणा भवे खेत्ते । तम्हा खेत्तद्धाओऽवगाहणद्धा असंखगुणा ॥ ५ ॥ संकोयविकोएण व उवरमियाएऽवगाहणाएवि । तत्तियमेत्ताणं चिय चिरंपि दव्वाणऽवत्थाणं ॥ ६ ॥ संघायभेयओ वा दव्वोवरमे पुणाइ संखित्ते । नियमा तद्दव्वोगाहणाएँ नासो न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य-क्षेत्र-काळ-भाव अवस्थानस्य अल्प-बहुत्वं



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवीया वृत्तिः १

॥२३६॥

संदेहो ॥ ७ ॥ ओगाहद्धा दव्वे संकोयविकोयओ य अवबद्धा । न उ दव्वं संकोयणविकोयमित्तेण संबद्धं ॥ ८ ॥ जम्हा तत्थऽण्णत्थ व दव्वं ओगाहणाऍ तं चेव । दव्वद्धा संखगुणा तम्हा ओगाहणद्धाओ ॥ ९ ॥ संघायभेयओ वा दव्वोवरमेऽवि पज्जवा संति । तं कसिण-गुणविरामे पुणाइ दव्वं न ओगाहो ॥ १० ॥ संघायभेयबंधाणुवत्तिणी निच्चमेव दव्वद्धा । न उ गुणकालो संघायभेयमेत्तऽद्धसंबद्धो ॥ ११ ॥ जम्हा तत्थऽण्णत्थ य दव्वे खेत्तावगाहणासुं च । ते चेव पज्जवा संति तो तदद्धा असंखगुणा ॥ १२ ॥ आह अणेगंतोऽयं दव्वोवरमे गुणा-णऽवत्थाणं । गुणविप्परिणामंमि य दव्वविसेसो यऽनेगंतो ॥ १३ ॥ विप्परिणयंमि दव्वे कम्मि गुणपरिणई भवे जुगवं । कम्मिवि पुण तदवत्थे होइ पुण गुणा परीणामी ॥ १४ ॥ भण्णइ सच्चं किं पुण गुणबाहुल्ला न सव्वगुणनासो । दव्वस्स तदण्णत्तेऽवि बहुतराणं गुणाण ठिई ॥ १५ ॥"

अयमर्थः—क्षेत्रस्यामूर्त्तत्वेन क्षेत्रेण सह पुद्गलानां विशिष्टबन्धप्रत्ययस्य–स्नेहादेरभावान्नैकत्र ते चिरं तिष्ठन्तीति शेषः, यस्मादेवं तत इत्यादि व्यक्तं । अथावगाहनायुर्बहुत्वं भाव्यते—इह पूर्वार्द्धेन क्षेत्राद्धाया अधिका अवगाहनाद्धेत्युक्तम्, उत्तरार्द्धेन त्ववगाहनाद्धातो नाधिका क्षेत्राद्धेति । कथमेतदिदमिति ?, उच्यते, अवगाहनायामगमनक्रियायां च नियता क्षेत्राद्धा–विवक्षितावगाहनासद्भावे एवाक्रियासद्भाव एव च तस्या भावादुक्तव्यतिरेके चाभावात्, अवगाहनाद्धा तु न क्षेत्र-मात्रे नियता, क्षेत्राद्धाया अभावेऽपि तस्या भावादिति अथ निगमनम् ('जम्हे'त्यादि)। अथ द्रव्यायुर्बहुत्वं भाव्यते–सङ्कोचेन विकोचेन चोपरतायामप्यवगाहनायां यावन्ति द्रव्याणि पूर्वमासंस्तावतामेव चिरमपि तेषामवस्थानं संभवति, अनेनाव-गाहनानिवृत्तावपि द्रव्यं न निवर्त्तत इत्युक्तं, अथ द्रव्यनिवृत्तिविशेषेऽवगाहना निवर्त्तत एवेत्युच्यते–सङ्घातेन पुद्गलानां भेदेन वा तेषामेव यः सङ्क्षिप्तः–स्तोकावगाहनः स्कन्धो न तु प्राक्तनावगाहनः तत्र यो द्रव्योपरमो–द्रव्यान्यथात्वं तत्र

५ शतके उद्देशः ७ द्रव्याद्यव-स्थानायुर-ल्पबहुत्वं सू २१८

॥२३६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य-क्षेत्र-काळ-भाव अवस्थानस्य अल्प-बहुत्वं

सति, न च सङ्घातेन न सङ्घिसः स्कन्धो भवति, तत्र सति सूक्ष्मतरत्वेनापि तत्परिणतेः श्रवणात् , नियमात्तेषां–द्रव्याणामवगाहनाया नाशो भवति, कस्मादेवमित्यत उच्यते—अवगाहनाद्धा द्रव्येऽवबद्धा–नियतत्वेन संबद्धा, कथं ?, सङ्कोचाद्विकोचाच्च, सङ्कोचविकोचादि परिहृत्येत्यर्थः, अवगाहना हि द्रव्ये सङ्कोचविकोचयोरभावे सति भवति तत्सद्भावे च न भवतीत्येवं द्रव्येऽवगाहनाऽनियतत्वेन संबद्धेत्युच्यते, द्रुमत्वे खदिरत्वमिवेति । उक्तविपर्ययमाह—न पुनर्द्रव्यं सङ्कोचविकोचमात्रे सत्यप्यवगाहनायां नियतत्वेन संबद्धं, सङ्कोचविकोचाभ्यामवगाहनानिवृत्तावपि द्रव्यं न निवर्त्तत इत्यवगाहनायां तन्नियतत्वेनासंबद्धमित्युच्यते, खदिरत्वे द्रुमत्ववदिति । अथ निगमनम् । अथ भावायुर्बहुत्वं भाव्यते—सङ्घातादिना द्रव्योपरमेऽपि पर्यवाः सन्ति, यथा मृष्टपटे शुक्लादिगुणाः, सकलगुणोपरमे तु न तद्द्रव्यं न चावगाहनाऽनुवर्त्तते, अनेन पर्यवाणां चिरं स्थानं द्रव्यस्य त्वचिरमित्युक्तम्, अथ कस्मादेवमिति ?, उच्यते—सङ्घातभेदलक्षणाभ्यां धर्माभ्यां यो बन्धः–सम्बन्धस्तदनुवर्त्तिनी–तदनुसारिणी, सङ्घाताद्यभाव एव द्रव्याद्धायाः सद्भावात्तद्भावे चाभावात्, न पुनर्गुणकालः सङ्घातभेदमात्रकालसंबद्धः, सङ्घातादिभावेऽपि गुणानामनुवर्त्तनादिति । अथ निगमनम्—'द्रव्यविशेषः' द्रव्यपरिणामः । ॥ अनन्तरमायुरुक्तम्, अथायुष्मत आरम्भादिना चतुर्विंशतिदण्डकेन प्ररूपयन्नाह—

नेरइया णं भंते ! किं सारंभा सपरिग्गहा उदाहु अणारंभा अपरिग्गहा ?, गोयमा ! नेरइया सारंभा सपरिग्गहा नो अणारंभा णो अपरिग्गहा । से केणट्ठेणं जाव अपरिग्गहा ?, गोयमा ! नेरइया णं पुढविकायं समारंभंति जाव तसकायं समारंभंति सरीरा परिग्गहिया भवंति कम्मा परिग्गहिया भवंति सचित्ता-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १ ॥२३७॥

चित्तमीसयाइं दव्वाइं परि० भ०, से तेणट्ठेणं तं चेव। असुरकुमारा णं भंते! किं सारंभा ४? पुच्छा, गोयमा! असुरकुमारा सारंभा सपरिग्गहा नो अणारंभा अप० । से केणट्ठेणं० ?, गोयमा ! असुरकुमारा णं पुढविकायं समारंभंति जाव तसकायं समारंभंति सरीरा परिग्गहिया भवंति कम्मा परिग्गहिया भवंति भवणा परि० भवंति देवा देवीओ मणुस्सा मणुस्सीओ तिरिक्खजोणिया तिरिक्खजोणिणीओ परिग्गहियाओ भवंति आसणसयणभंडमत्तोवगरणा परिग्गहिया भवंति सचित्ताचित्तमीसयाइं दव्वाइं परिग्गहियाइं भवंति से तेणट्ठेणं तहेव एवं जाव थणियकुमारा। एगिंदिया जहा नेरइया। बेइंदिया णं भंते! किं सारंभा सपरिग्गहा तं चेव जाव सरीरा परिग्गहिया भवंति बाहिरिया भंडमत्तोवगरणा परि० भवंति सचित्ताचित्त० जाव भवंति एवं जाव चउरिंदिया। पंचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! तं चेव जाव कम्मा परि० भवन्ति टंका कूडा सेला सिहरी पब्भारा परिग्गहिया भवंति जलथलबिलगुहालेणा परिग्गहिया भवंति उज्झरनिज्झरचिल्ललपल्ललवप्पिणा परिग्गहिया भवंति अगडतडागदहनदीओ वाविपुक्खरिणीदीहिया गुंजालिया सरा सरपंतियाओ सरसरपंतियाओ बिलपंतीयाओ परिग्गहियाओ भवंति आरामुज्जाणा काणणा वणाइं वणसंडाइं वणराईओ परिग्गहियाओ भवन्ति देवउलसभापवाथूभाखातियपरिखाओ परिग्गहियाओ भवंति पागारट्टालगचरियदारगोपुरा परिग्गहिया भवंति पासादघरसरणलेणआवणा परिग्गहिता भवंति सिंघाडगतिगचउक्कचच्चरचउम्मुहमहापहा परिग्गहिया भवंति सगडरहजाणजुग्गगिल्लिथिल्लिसीयसंदमाणियाओ परिग्गहियाओ भवंति लोहीलोहकटाहकडुच्छुया परिग्गहिया

५ शतके उद्देशः ७ नारकादीनां सारम्भत्वादि सू २१९

॥२३७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भवंति भवणा परिग्गहिया भवंति देवा देवीओ मणुस्सा मणुस्सीओ तिरिक्खजोणिओ तिरिक्खजोणिणीओ आसणसयणखंभभंडसचित्ताचित्तमीसयाइं दव्वाइं परिग्गहियाइं भवंति से तेणट्ठेणं०, (जहा) तिरिक्खजोणिया तहा मणुस्साणवि भाणियव्वा, वाणमंतरजोतिसवेमाणिया जहा भवणवासी तहा नेयव्वा ॥ (सूत्रं २१९) ॥

'नेरइए'त्यादि, 'भंडमत्तोवगरण'त्ति इह भाण्डानि–मृन्मयभाजनानि मात्राणि–कांस्यभाजनानि उपकरणानि–लौहीकडुच्छुकादीनि, एकेन्द्रियाणां परिग्रहोऽप्रत्याख्यानादवसेयः, 'बाहिरया भंडमत्तोवगरण'त्ति उपकारसाधर्म्याद्वीन्द्रियाणां शरीररक्षार्थं तत्कृतगृहकादीन्यवसेयानि 'टंक'त्ति छिन्नटङ्काः 'कुड'त्ति कूटानि शिखराणि वा हस्त्यादिबन्धनस्थानानि वा 'सेल'त्ति मुण्डपर्वतः 'सिहर'त्ति शिखरिणः–शिखरवन्तो गिरयः 'पब्भार'त्ति ईषदवनता गिरिदेशाः 'लेण'त्ति उत्कीर्णपर्वतगृहाः 'उज्झर'त्ति अवझरः–पर्वततटादुदकस्याधःपतनं 'निज्झर'त्ति निर्झर–उदकस्य श्रवणं 'चिल्लल'त्ति चिक्खल्लमिश्रोदको जलस्थानविशेषः 'पल्लल'त्ति प्रह्लादनशीलः स एव 'वप्पिण'त्ति केदारवान् तटवान् वा देशः केदार एवेत्यन्ये, 'अगड'त्ति कूपः 'वावि'त्ति वापी चतुरस्रो जलाशयविशेषः 'पुक्खरिणि'त्ति पुष्करिणी वृत्तः स एव पुष्करवान् वा 'दीहिय'त्ति सारिण्यः 'गुंजालिय'त्ति वक्रसारिण्यः 'सर'त्ति सरांसि-स्वयंसंभूतजलाशयविशेषाः 'सरपंतियाओ'त्ति सरःपङ्क्तयः 'सरसरपंतियाओ'त्ति यासु सरःपङ्क्तिषु एकस्मात्सरसोऽन्यस्मिन्नन्यस्मादन्यत्र एवं सञ्चारकपाटकेनोदकं संचरति ताः सरःसरःपङ्क्तयः बिलपङ्क्तयः–प्रतीताः 'आराम'त्ति आरमन्ति येषु माधवीलतादिषु दम्पत्यादीनि ते आरामाः 'उज्जाण'–त्ति 'उद्यानानि' पुष्पादिमद्वृक्षसङ्कुलानि उत्सवादौ बहुजनभोग्यानि 'काणण'त्ति 'काननानि' सामान्यवृक्षसंयुक्तानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२१९]

दीप अनुक्रम [२६०]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥२३८॥

नगरासन्नानि 'वण'त्ति वनानि नगरविप्रकृष्टानि 'वणसंडाइं'ति वनषण्डाः–एकजातीयवृक्षसमूहात्मकाः 'वणराइ'त्ति वनराजयो–वृक्षपङ्क्तयः 'खाइय'त्ति 'खातिकाः' उपरिविस्तीर्णाधःसङ्कटखातरूपाः 'परिह'त्ति परिखाः अध उपरि च समखातरूपाः 'अट्टालग'त्ति प्राकारोपर्याश्रयविशेषाः 'चरिय'त्ति 'चरिका' गृहप्राकारान्तरो हस्त्यादिप्रचारमार्गः 'दार'त्ति द्वारं खडकिका 'गोउर'त्ति 'गोपुरं' नगरप्रतोली 'पासाय'त्ति प्रासादा देवानां राज्ञां च भवनानि, अथवा उत्सेधबहुलाः– प्रासादाः 'घर'त्ति गृहाणि सामान्यजनानां सामान्यानि वा 'सरण'त्ति 'शरणानि' तृणमयावसरिकादीनि 'आवण'त्ति 'आपणा' हट्टाः शृङ्गाटकं स्थापना △त्रिकं स्थापना–चतुष्कं स्थापना–चत्वरं स्थापना * चतुर्मुखं–चतुर्मुखदेवकुलकादि 'महापह'त्ति राजमार्गः 'सगडे'त्यादि प्राग्वत् 'लोहि'त्ति 'लौहि' मण्डकादिपचनिका 'लोहकडाहि'त्ति कवेली 'कडुच्छुय'त्ति परिवेषणाद्यर्थो भाजनविशेषः 'भवण'त्ति भवनपतिनिवासः ॥ एते च नारकादयश्छद्मस्थत्वेन हेतुव्यवहारकत्वाद्धेतव उच्यन्ते इति तद्भेदान्निरूपयन्नाह—

पंच हेऊ पण्णत्ता, तंजहा–हेउं जाणइ हेउं पासइ हेउं बुज्झइ हेउं अभिसमागच्छति हेउं छउमत्थमरणं मरइ ॥ पंचेव हेऊ पं०, तंजहा–हेउणा जाणइ जाव हेउणा छउमत्थमरणं मरइ ॥ पंच हेऊ पण्णत्ता, तंजहा–हेउं न जाणइ जाव हेउं अन्नाणमरणं मरइ ॥ पंच हेऊ पन्नत्ता, तंजहा–हेउणा ण जाणति जाव हेउणा मरणं मरति ॥ पंच अहेऊ पण्णत्ता, तंजहा–अहेउं जाणइ जाव अहेउं केवलिमरणं मरइ ॥ पंच अहेऊ पण्णत्ता, तंजहा–अहेउणा जाणइ जाव अहेउणा केवलिमरणं मरइ ॥ पंच अहेऊ पण्णत्ता, तंजहा–

५ शतके उद्देशः ७ हेत्वहेतुज्ञानदर्शनश्रद्धानादि सू २२० ॥२३८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अहेउं न जाणइ जाव अहेउं छउमत्थमरणं मरइ ॥ पंच अहेऊ पण्णत्ता, तंजहा–अहेउणा न जाणइ जाव अहेउणा छउमत्थमरणं मरइ । सेवं भंते २ त्ति (सूत्रं २२०) ॥ पञ्चमशते सप्तमोद्देशकः ॥ ५–७ ॥

'पंच हेउ'इत्यादि, इह हेतुषु वर्त्तमानः पुरुषो हेतुरेव तदुपयोगानन्यत्वात्, पञ्चविधत्वं चास्य क्रियाभेदादित्यत आह–'हेउं जाणइ'त्ति 'हेतुं' साध्याविनाभूतं साध्यनिश्चयार्थं 'जानाति' विशेषतः सम्यगवगच्छति सम्यग्दृष्टित्वात्, अयं पञ्चविधोऽपि सम्यग्दृष्टिर्मन्तव्यो मिथ्यादृष्टेः सूत्रद्वयात्परतो वक्ष्यमाणत्वादित्येकः, एवं हेतुं पश्यति सामान्यत एवावबोधादिति द्वितीयः, एवं 'बुध्यते' सम्यक् श्रद्धत्त इति बोधेः सम्यक्श्रद्धानपर्यायत्वादिति तृतीयः, तथा हेतुम् 'अभिसमागच्छति' साध्यसिद्धौ व्यापारणतः सम्यक् प्राप्नोतीति चतुर्थः, तथा 'हेउं छउमत्थे'त्यादि, हेतुः–अध्यवसानादिमरणकारणं तद्योगान्मरणमपि हेतुरतस्तं हेतुमदित्यर्थः छद्मस्थमरणं, न केवलिमरणं, तस्याहेतुकत्वात्, नाप्यज्ञानमरणमेतस्य सम्यग्ज्ञानित्वात् अज्ञानमरणस्य च वक्ष्यमाणत्वात् म्रियते–करोतीति पञ्चमः ॥ प्रकारान्तरेण हेतूनेवाह–'पंचे'त्यादि, 'हेतुना' अनुमानोत्थापकेन जानाति–अनुमेयं सम्यगवगच्छति सम्यग्दृष्टित्वादेकः, एवं पश्यतीति द्वितीयः, एवं 'बुध्यते' श्रद्धत्त इति तृतीयः, एवम् 'अभिसमागच्छति' प्राप्नोतीति चतुर्थः, तथाऽकेवलित्वात् 'हेतुना' अध्यवसानादिना छद्मस्थमरणं म्रियते इति पञ्चमः ॥ अथ मिथ्यादृष्टिमाश्रित्य हेतूनाह—'पंचे'त्यादि, पञ्च क्रियाभेदात् हेतवो हेतुव्यवहारित्वात्, तत्र 'हेतुं' लिङ्गं न जानाति, नञः कुत्सार्थत्वादसम्यगवैति मिथ्यादृष्टित्वात् १, एवं न पश्यति २, एवं न बुध्यते ३, एवं नाभिसमागच्छति ४, तथा 'हेतुम्' अध्यवसानादिहेतुयुक्तमज्ञानमरणं 'म्रियते' करोति मिथ्यादृष्टि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्वेनासम्यग्ज्ञानत्वादिति ५ ॥ हेतूनेव प्रकारान्तरेणाह—'पंचे'त्यादि, 'हेतुना' लिङ्गेन न जानाति–असम्यगवगच्छति, एवमन्येऽपि चत्वारः ॥ अथोक्तविपक्षभूतानहेतूनाह—'पंचे'त्यादि, प्रत्यक्षज्ञानित्वादिनाऽहेतुव्यवहारित्वादहेतवः–केवलिनः, ते च पञ्च क्रियाभेदात्, तद्यथा–'अहेतुं जाणइ'त्ति अहेतुं–न हेतुभावेन सर्वज्ञत्वेनानुमानानपेक्षत्वाद्धूमादिकं जानाति स्वस्याननुमानोत्थापकतयेत्यर्थः अतोऽसावहेतुरेव, एवं पश्यतीत्यादि, तथा 'अहेतुं केवलिमरणं मरइ'त्ति 'अहेतुं' निर्हेतुकं अनुपक्रमत्वात् केवलिमरणं 'म्रियते' करोतीत्यहेतुरसौ पञ्चम इति ॥ प्रकारान्तरेणाहेतूनेवाह—'पंचे'-त्यादि तथैव नवरम् 'अहेतुना' हेत्वभावेन केवलित्वाज्जानाति योऽसावहेतुरेव, एवं पश्यतीत्यादयोऽपि ३, 'अहेउणा केवलिमरणं मरइ'त्ति 'अहेतुना' उपक्रमाभावेन केवलिमरणं म्रियते, केवलिनो निर्हेतुकस्यैव तस्य भावादिति ॥ अहेतू-नेव प्रकारान्तरेणाह—'पंच अहेऊ'इत्यादि, 'अहेतवः' अहेतुव्यवहारिणः, ते च पञ्च ज्ञानादिभेदात्, तद्यथा–'अहेउं न जाणइ'त्ति, 'अहेतुं' न हेतुभावेन स्वस्यानुमानानुत्थापकतयेत्यर्थः 'न जानाति' न सर्वथाऽवगच्छति, कथञ्चिदेवावगच्छ-तीत्यर्थः, नन्वो देशप्रतिषेधार्थत्वात् ज्ञातुश्चावध्यादिज्ञानवत्त्वात् कथञ्चिज्ज्ञानमुक्तं, सर्वथाज्ञानं तु केवलिन एव स्यादिति, एवमन्यान्यपि ३, तथा 'अहेउं छउमत्थमरणं मरइ'त्ति अहेतुरध्यवसानादेरुपक्रमकारणस्याभावात् छद्मस्थमरणम-केवलित्वात् न त्वज्ञानमरणमवध्यादिज्ञानवत्त्वेन ज्ञानित्वात्तस्येति ॥ अहेतूनेवान्यथाऽऽह—'पंचे'त्यादि, तथैव नवरम् 'अहेतुना' हेत्वभावेन न जानाति कथञ्चिदेवाध्यवस्यतीति ॥ गमनिकामात्रमेवेदमष्टानामप्येषां सूत्राणां, भावार्थं तु बहुश्रुता विदन्तीति ॥ पञ्चमशते सप्तमोद्देशकः ॥ ५–७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पंचम-शतके सप्तम-उद्देशकः समाप्तः

सप्तमे उद्देशके पुद्गलाः स्थितितो निरूपिताः, अष्टमे तु त एव प्रदेशतो निरूप्यन्ते, इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदं प्रस्तावनासूत्रम्–

तेणं कालेणं २ जाव परिसा पडिगया, तेणं कालेणं २ समणस्स ३ जाव अंतेवासी नारयपुत्ते नामं अणगारे पगतिभद्दए जाव विहरति, तेणं कालेणं २ समणस्स ३ जाव अंतेवासी निरयंठिपुत्ते णामं अण० पगतिभद्दए जाव विहरति, तए णं से नियंठीपुत्ते अण० जेणामेव नारयपुत्ते अणगारे तेणेव उवागच्छइ २ नारयपुत्तं अण० एवं वयासी–सव्वा पोग्गला ते अज्जो ! किं सअट्ठा समज्झा सपएसा उदाहु अणट्ठा अमज्झा अपएसा ?, अज्जोत्ति नारयपुत्ते अणगारे नियंठिपुत्तं अणगारं एवं वयासी–सव्वपोग्गला मे अज्जो ! सअट्ठा समज्झा सपदेसा नो अणट्ठा अमज्झा अप्पएसा, तए णं से नियंठिपुत्ते अणगारे नारयपुत्तं अ० एवं वदासि–जति णं ते अज्जो ! सव्वपोग्गला सअट्ठा समज्झा सपदेसा नो अणट्ठा अमज्झा अपदेस किं दव्वादेसेणं अज्जो ! सव्वपोग्गला सअट्ठा समज्झा सपदेसा नो अणट्ठा अमज्झा अपदेसा ? खेत्तादेसेणं अज्जो ! सव्वपोग्गला सअट्ठा समज्झा सपएसा तहेव चेव, कालादेसेणं तं चेव, भावादेसेणं अज्जो ! तं चेव, तए णं से नारयपुत्ते अणगारे नियंठिपुत्तं अणगारं एवं वदासी-दव्वादेसेणवि मे अज्जो ! सव्वपोग्गला सअट्ठा समज्झा सपदेसा नो अणट्ठा अमज्झा अपदेसा खेत्ताएसेणवि सव्वे पोग्गला सअट्ठा तह चेव कालादेसेणवि, तं चेव भावादेसेणवि। तए णं से नियंठीपुत्ते अण०नारयपुत्तं अणगारं एवं वयासी-जति णं हे अज्जो ! दव्वादेसेणं सव्वपोग्गला सअट्ठा समज्झा सपएसा नो अणट्ठा अमज्झा अपएसा, एवं ते परमाणुपोग्गलेवि सअट्ठे समज्झे सपएसे णो अणट्ठे अमज्झे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ पंचम-शतके अष्टम-उद्देशकः आरभ्यते

नारदपुत्र अनगारस्य पुद्गलसंबंधी प्रश्नः

प्रत सूत्रांक [२२१]

दीप अनुक्रम [२६२]

अपएसे, जति णं अज्जो ! खेत्तादेसेणवि सव्वपोग्गला सअ० ३ जाव एवं ते एगपएसोगाढेवि पोग्गले सअट्ठे समज्झे सपएसे, जति णं अज्जो ! कालादेसेणं सव्वपोग्गला सअट्ठा० समज्झा सपएसा, एवं ते एगसमयठितीएवि पोग्गले ३ तं चेव, जति णं अज्जो ! भावादेसेणं सव्वपोग्गला सअट्ठा समज्झा सपएसा ३, एवं ते एगगुणकालएवि पोग्गले सअ० ३ तं चेव, अह ते एवं न भवति तो जं वयसि दव्वादेसेणवि सव्वपोग्गला सअ० ३ नो अणट्ठा अमज्झा अपदेसा एवं खेत्तादेसेणवि कालाः भावादेसेणवि तन्नं मिच्छा, तए णं से नारयपुत्ते अणगारे नियंठीपुत्तं अ० एवं वयासी–नो खलु वयं देवा० एयमट्ठं जाणामो पासामो, जति णं देवा० नो गिलायंति परिकहित्तए तं इच्छामि णं देवा० अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म जाणित्तए, तए णं से नियंठीपुत्ते अणगारे नारयपुत्तं अणगारं एवं वयासी–दव्वादेसेणवि मे अज्जो सव्वे पोग्गला सपदेसावि अपदेसावि अणंता खेत्तादेसेणवि एवं चेव कालादेसेणवि भावादेसेणवि एवं चेव ॥ जे दव्वओ अप्पदेसे से खेत्तओ नियमा अप्पदेसे कालओ सिय सपदेसे सिय अपदेसे भावओ सिय सपदेसे सिय अपदेसे । जे खेत्तओ अप्पदेसे से दव्वओ सिय सपदेसे सिय अपदेसे कालओ भयणाए भावओ भयणाए । जहा खेत्तओ एवं कालओ भावओ ॥ जे दव्वओ सपदेसे से खेत्तओ सिय सपदेसे सिय अपदेसे, एवं कालओ भावओवि, जे खेत्तओ सपदेसे से दव्वतो नियमा सपदेसे कालओ भयणाए भावओ भयणाए जहा दव्वओ तहा कालओ भावओवि ॥ एएसि णं भंते ! पोग्गलाणं दव्वादेसेणं खेत्तादेसेणं कालाः

॥२४०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नारदपुत्र अनगारस्य पुद्गलसंबंधी प्रश्नः

प्रत सूत्रांक [२२१]

दीप अनुक्रम [२६२]

देसेणं भावादेसेणं सपदेसाण य अपदेसाण य कयरे २ जाव विसेसाहिया वा ?, नारयपुत्ता ! सव्वत्थोवा पोग्गला भावादेसेणं अपदेसा कालादेसेणं अपदेसा असंखेज्जगुणा दव्वादेसेणं अपदेसा असंखेज्जगुणा खेत्तादेसेणं अपदेसा असंखेज्जगुणा खेत्तादेसेणं चेव सपदेसा असंखेज्जगुणा दव्वादेसेणं सपदेसा विसेसाहिया कालादेसेणं सपदेसा विसेसाहिया भावादेसेणं सपदेसा विसेसाहिया। तए णं से नारयपुत्ते अणगारे नियंठीपुत्तं अणगारं वंदइ नमंसइ नियंठिपुत्तं अणगारं वंदित्ता णमंसित्ता एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो २ खामेति त्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥ (सूत्रं २२१) ॥

'तेण'मित्यादि, 'दव्वादेसेणं'ति द्रव्यप्रकारेण द्रव्यत इत्यर्थः परमाणुत्वाद्याश्रित्येतियावत् 'खेत्तादेसेणं'ति एकप्रदेशावगाढत्वादिनेत्यर्थः 'कालादेसेणं'ति एकादिसमयस्थितिकत्वेन 'भावादेसेणं'ति एकगुणकालकत्वादिना 'सव्वपोग्गला सपएसावी'त्यादि, इह च यत्सविपर्ययसार्द्धादिपुद्गलविचारे प्रक्रान्ते सप्रदेशाप्रदेशा एव ते प्ररूपिताः तत्तेषां प्ररूपणे सार्द्धत्वादि प्ररूपितमेव भवतीतिकृत्वेत्यवसेयं, तथाहि—सप्रदेशाः सार्द्धाः समध्या वा, इतरे त्वनर्द्धा अमध्याश्चेति, 'अणंत'त्ति तत्परिमाणज्ञापनपरं तत्स्वरूपाभिधानम् ॥ अथ द्रव्यतोऽप्रदेशस्य क्षेत्राद्याश्रित्याप्रदेशादित्वं निरूपयन्नाह—'जे दव्वओ अप्पएसे'इत्यादि, यो द्रव्यतोऽप्रदेशः—परमाणुः स च क्षेत्रतो नियमादप्रदेशो, यस्मादसौ क्षेत्रस्यैकत्रैव प्रदेशेऽवगाहते प्रदेशद्वयाद्यवगाहे तु तस्याप्रदेशत्वमेव न स्यात्, कालतस्तु यद्यसावेकसमयस्थितिकस्तदाऽप्रदेशोऽनेकसमयस्थितिकस्तु सप्रदेश इति, भावतः पुनर्यद्येकगुणकालकादिस्तदाऽप्रदेशोऽनेकगुणकालकादिस्तु

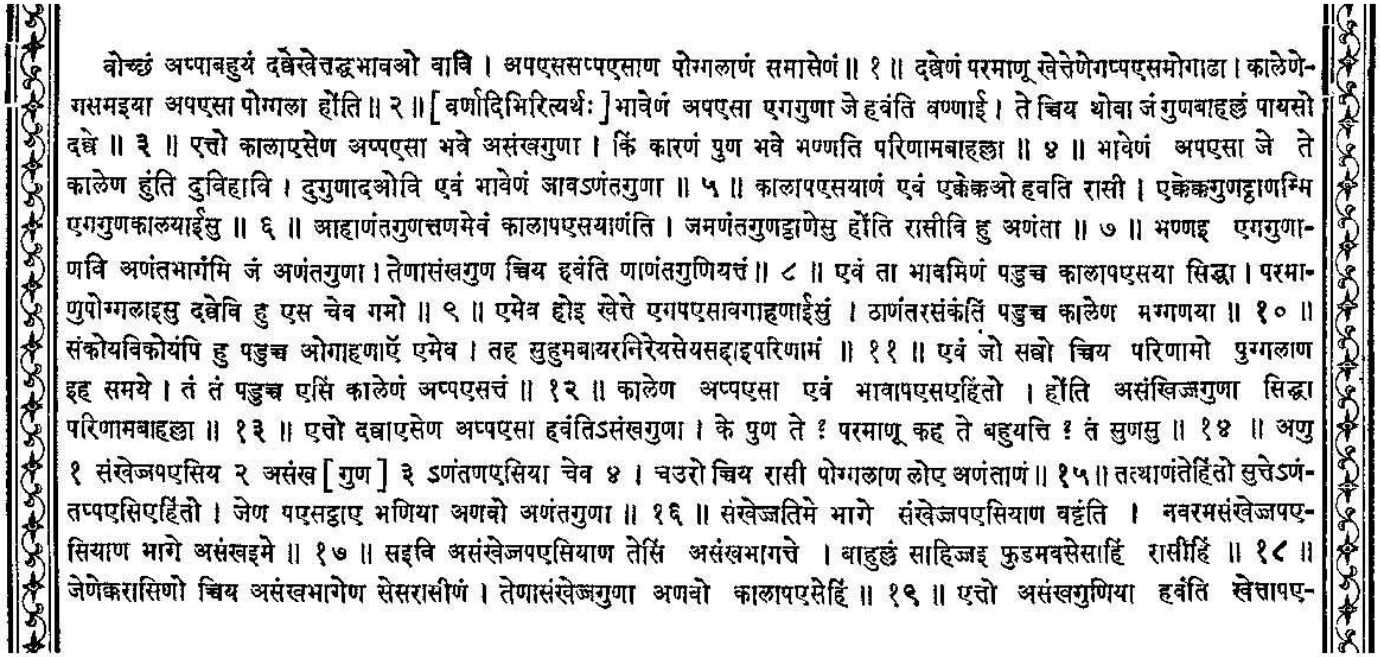
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नारदपुत्र अनगारस्य पुद्गलसंबंधी प्रश्नः

सप्रदेश इति ॥ निरूपितो द्रव्यतोऽप्रदेशोऽथ क्षेत्रतोऽप्रदेशं निरूपयन्नाह—'जे खेत्तओ अप्पएसे'इत्यादि, यः क्षेत्रतोऽप्रदेशः स द्रव्यतः स्यात्सप्रदेशः, द्व्यणुकादेरप्येकप्रदेशावगाहित्वात् स्यादप्रदेशः, परमाणोरप्येकप्रदेशावगाहित्वात्, 'कालओ भयणाए'त्ति क्षेत्रतोऽप्रदेशो यः स कालतो भजनयाऽप्रदेशादिर्वाच्यः, तथाहि–एकप्रदेशावगाढः एकसमयस्थितिकत्वादप्रदेशोऽपि स्यात् अनेकसमयस्थितिकत्वाच्च सप्रदेशोऽपि स्यादिति 'भावओ भयणाए'त्ति क्षेत्रतोऽप्रदेशो योऽसावेकगुणकालकत्वादप्रदेशोऽपि स्यात् अनेकगुणकालकादित्वाच्च सप्रदेशोऽपि स्यादिति ॥ अथ कालाप्रदेशं भावाप्रदेशं च निरूपयन्नाह—'जहा खेत्तओ एवं कालओ भावओ'त्ति यथा क्षेत्रतोऽप्रदेश उक्त एवं कालतो भावतश्चासौ वाच्यः, तथाहि—'जे कालओ अप्पएसे से दव्वओ सिय सप्पएसे सिय अप्पएसे'। एवं क्षेत्रतो भावतश्च, तथा—'जे भावओ अप्पएसे से दव्वओ सिय सप्पएसे सिय अप्पएसे' एवं क्षेत्रतः कालतश्चेति ॥ उक्तोऽप्रदेशोऽथ सप्रदेशमाह—'जे दव्वओ सप्पएसे'इत्यादि, अयमर्थः–यो द्रव्यतो द्व्यणुकादित्वेन सप्रदेशः स क्षेत्रतः स्यात्सप्रदेशो द्व्यादिप्रदेशावगाहित्वात् स्यादप्रदेश एकप्रदेशावगाहित्वात्, एवं कालतो भावतश्च, तथा यः क्षेत्रतः सप्रदेशो द्व्यादिप्रदेशावगाहित्वात् स द्रव्यतः सप्रदेश एव, द्रव्यतोऽप्रदेशस्य द्व्यादिप्रदेशावगाहित्वाभावात् कालतो भावतश्चासौ द्विधाऽपि स्यादिति, तथा यः कालतः सप्रदेशः स द्रव्यतः क्षेत्रतो भावतश्च द्विधाऽपि स्यात्, तथा यो भावतः सप्रदेशः स द्रव्यक्षेत्रकालैर्द्विधाऽपि स्यादिति सप्रदेशसूत्राणां भावार्थ इति ॥ अथैषामेव द्रव्यादितः सप्रदेशाप्रदेशानामल्पबहुत्वविभागमाह—'एएसि ण'मित्यादि सूत्रसिद्धं, नवरमस्यैव सूत्रोक्तालपबहुत्वस्य भावनार्थं गाथाप्रपञ्चो वृद्धोक्तोऽभिधीयते—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नारदपुत्र अनगारस्य पुद्गलसंबंधी प्रश्नः, द्रव्यादि प्रदेशानाम् अल्प-बहुत्वं



वोच्छं अप्पाबहुयं दव्वेखेत्तद्धभावओ वावि । अपएससप्पएसाण पोग्गलाणं समासेणं ॥ १ ॥ दव्वेणं परमाणू खेत्तेणेगप्पएसमोगाढा । कालेणे-गसमइया अपएसा पोग्गला होंति ॥ २ ॥ [वर्णादिभिरित्यर्थः] भावेणं अपएसा एगगुणा जे हवंति वण्णाई । ते चिय थोवा जं गुणबाहल्लं पायसो दव्वे ॥ ३ ॥ एत्तो कालाएसेण अप्पएसा भवे असंखगुणा । किं कारणं पुण भवे भण्णति परिणामबाहल्ला ॥ ४ ॥ भावेणं अपएसा जे ते कालेण हुंति दुविहावि । दुगुणादओवि एवं भावेणं जावऽणंतगुणा ॥ ५ ॥ कालापएसयाणं एवं एक्केक्कओ हवति रासी । एक्केक्कगुणट्ठाणम्मि एगगुणकालयाईसु ॥ ६ ॥ आहाणंतगुणत्तणमेवं कालापएसयाणंति । जमणंतगुणट्ठाणेसु होंति रासीवि हु अणंता ॥ ७ ॥ भण्णइ एगगुणा-णवि अणंतभागंमि जं अणंतगुणा । तेणासंखगुण चिय हवंति णाणंतगुणियत्तं ॥ ८ ॥ एवं ता भावमिणं पडुच्च कालापएसया सिद्धा । परमा-णुपोग्गलाइसु दव्वेवि हु एस चेव गमो ॥ ९ ॥ एमेव होइ खेत्ते एगपएसावगाहणाईसुं । ठाणंतरसंकंतिं पडुच्च कालेण मग्गणया ॥ १० ॥ संकोयविकोयंपि हु पडुच्च ओगाहणाएँ एमेव । तह सुहुमबायरनिरेयसेयसद्दाइपरिणामं ॥ ११ ॥ एवं जो सव्वो चिय परिणामो पुग्गलाण इह समये । तं तं पडुच्च एसिं कालेणं अप्पएसत्तं ॥ १२ ॥ कालेण अप्पएसा एवं भावापएसएहिंतो । होंति असंखिज्जगुणा सिद्धा परिणामबाहल्ला ॥ १३ ॥ एत्तो दव्वाएसेण अप्पएसा हवंतिऽसंखगुणा । के पुण ते ? परमाणू कह ते बहुयत्ति ? तं सुणसु ॥ १४ ॥ अणु १ संखेज्जपएसिय २ असंख [गुण] ३ ऽणंतणएसिया चेव ४ । चउरो चिय रासी पोग्गलाण लोए अणंताणं ॥ १५ ॥ तत्थाणंतेहिंतो सुत्तेऽणं-तप्पएसिएहिंतो । जेण पएसट्ठाए भणिया अणवो अणंतगुणा ॥ १६ ॥ संखेज्जतिमे भागे संखेज्जपएसियाण वट्टंति । नवरमसंखेज्जपए-सियाण भागे असंखइमे ॥ १७ ॥ सइवि असंखेज्जपएसियाण तेसिं असंखभागत्ते । बाहुल्लं साहिज्जइ फुडमवसेसाहिं रासीहिं ॥ १८ ॥ जेणेक्करासिणो चिय असंखभागेण सेसरासीणं । तेणासंखेज्जगुणा अणवो कालापएसेहिं ॥ १९ ॥ एत्तो असंखगुणिया हवंति खेत्तापए-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२२१]

दीप अनुक्रम [२६२]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२४२॥

सिया समए । जं तो ते सव्वेवि य अपएसा खेत्तओ अणवो ॥ २० ॥ दुपएसियाइएसुवि पएसपरिवड्ढिएसु ठाणेसु । लब्भइ इक्किक्को चिय रासी खेत्तापएसाणं ॥ २१ ॥ एत्तो खेत्ताएसेण चेव सपएसया असंखगुणा । एगपएसोगाढे मोत्तुं सेसावगाहणया ॥ २२ ॥ ते पुण दुपएसोगाहणाइया सव्वपोग्गला सेसा । ते य असंखेज्जगुणा अवगाहणठाणबाहुल्ला ॥ २३ ॥ दव्वेण होंति एत्तो सपएसा पोग्गला विसेसहिया । कालेण य भावेण य एमेव भवे विसेसहिया ॥ २४ ॥ भावाईया वट्टा असंखगुणिया जमप्पएसाणं । तो सप्पएसयाणं खेत्ताइविसेसपरिवुड्ढी ॥ २५ ॥ मीसाण संकमं पइ सपएसा खेत्तओ असंखगुणा । भणिया सट्ठाणे पुण थोवचिय ते गहेयव्वा ॥ २६ ॥ खेत्तेण सप्पएसा थोवा दव्वट्ठभावओ अहिया । सपएसप्पाबहुयं सट्ठाणे अत्थओ एवं ॥ २७ ॥ पढमं अपएसाणं बीयं पुण होइ सप्पएसाणं । तइयं पुण मीसाणं अप्पबहुं अत्थओ तिण्णि ॥ २८ ॥ ठाणे ठाणे वड्ढइ भावाईणं जमप्पएसाणं । तं चिय भावाईणं परिहस्सति सप्पएसाणं ॥ २९ ॥ अहवा खेत्ताईणं जमप्पएसाण हायए कमसो । तं चिय खेत्ताईणं परिवड्ढइ सप्पएसाणं ॥ ३० ॥ अवरोपरप्पसिद्धा वुड्ढी हाणी य होइ दोण्हंपि । अपएससप्पएसाण पोग्गलाणं सलक्खणओ ॥ ३१ ॥ ते चेव ते चउहिवि जमुवचरिज्जंति पोग्गला दुविहा । तेण उ वुड्ढी हाणी तेसिं अण्णोण्णसंसिद्धा ॥ ३२ ॥ एएसिं रासीणं निदरिसणमिणं भणामि पच्चक्खं । वुड्ढीए सव्वपोग्गल जावं तावाण लक्खाओ ॥ ३३ ॥ एक्कं च दो य पंच य दस य सहस्साइँ अप्पएसाणं । भावाईणं कमसो चउण्हवि जहोवइट्ठाणं ॥ ३४ ॥ णउई पंचाणउई अट्ठाणउई तहेव नवनवई । एवइयाइं सहस्साइं सप्पएसाण विवरीयं ॥ ३५ ॥ एएसिं जहसंभवमत्थोवणयं करिज्ज रासीणं । सब्भावओ य जाणिज्ज ते अणंते जिणाभिहिए ॥ ३६ ॥

द्रव्ये प्रायेण क्ष्यादिगुणा अनन्तगुणान्ताः कालकत्वादयो भवन्ति एकगुणकालकादयस्त्वल्पा इति भावः ॥ ३ ॥

५ शतके उद्देशः ८ द्रव्यादिसप्रदेशाप्रदेशानामल्पबहुत्वं सू २२१

॥२४२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्यादि प्रदेशानाम् अल्प-बहुत्वं

अयमर्थः—यो हि यस्मिन् समये यद्वर्णगन्धरसस्पर्शसङ्घातभेदसूक्ष्मत्वबादरत्वादिपरिणामान्तरमापन्नः स तस्मिन् समये तदपेक्षया कालतोऽप्रदेश उच्यते, तत्र चैकसमयस्थितिरित्यन्ये, परिणामाश्च बहव इति प्रतिपरिणामं कालाप्रदेशसंभवात्तद्बहुत्वमिति ४ ॥ एतदेव भाव्यते—भावतो येऽप्रदेशा एकगुणकालत्वादयो भवन्ति ते कालतो द्विविधा अपि भवन्ति—सप्रदेशा अप्रदेशाश्चेत्यर्थः, तथा भावेन द्विगुणादयोऽप्यनन्तगुणान्ताः, 'एव'मिति द्विविधा अपि भवन्ति, ततश्च एकगुणकालाद् द्विगुणकालादिषु गुणस्थानकेषु मध्ये एकैकस्मिन् गुणस्थानके कालाप्रदेशानामेकैको राशिर्भवति, ततश्चानन्तत्वाद् गुणस्थानकराशीनामनन्ता एव कालाप्रदेशराशयो भवन्ति ॥५–६॥ अथ प्रेरकः—एवमिति—यदि प्रतिगुणस्थानकं कालाप्रदेशराशयोऽभिधीयन्त इति, अत्रोत्तरम्–, अयमभिप्रायः—यद्यप्यनन्तगुणकालत्वादीनामनन्ता राशयस्तथाऽप्येकगुणकालत्वादीनामनन्तभाग एव ते वर्त्तन्त इति न तद्वारेण कालाप्रदेशानामनन्तगुणत्वं अपि त्वसङ्ख्यातगुणत्वमेवेति ॥७-८॥एवं तावत् 'भावं' वर्णादिपरिणामम् 'इमं' उक्तरूपमेकाद्यनन्तगुणस्थानवर्त्तिनमित्यर्थः प्रतीत्य कालाप्रदेशिकाः पुद्गलाः सिद्धाः, कालाप्रदेशता वा पुद्गलानां 'सिद्धा' प्रतिष्ठिता, 'द्रव्येऽपि' द्रव्यपरिणाममप्यङ्गीकृत्य परमाण्वादिषु 'एष एव' भावपरिणामोक्त एव गमः—व्याख्या॥९॥ 'एवमेव' द्रव्यपरिणामवद् भवति 'क्षेत्रे' क्षेत्रमधिकृत्य एकप्रदेशावगाढादिषु पुद्गलभेदेषु स्थानान्तरगमनं प्रतीत्य कालेन कालाप्रदेशानां मार्गणा॥१०॥यथा क्षेत्रतः एवमवगाहनादितोऽपीत्येतदुच्यते—अवगाहनायाः सङ्कोचं विकोचं च प्रतीत्य कालाप्रदेशाः स्युः, तथा सूक्ष्मबादरस्थिरास्थिरशब्दमनः कर्मादिपरिणामं च प्रतीत्येति ॥११॥ 'एसिं'ति पुद्गलानामित्यर्थः,॥१२-१३-१४-१५॥ अनन्तेभ्यः अनन्तप्रदेशिकस्कन्धेभ्यः प्रदेशार्थतया परमाणवो-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२२१]

दीप अनुक्रम [२६२]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १

॥२४३॥

ऽनन्तगुणाः सूत्र उक्ताः, सूत्रं चेदम् "सव्वत्थोवा अणंतपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए ते चेव पएसट्ठयाए अणंतगुणा परमाणुपोग्गला दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए अणंतगुणा संखेज्जपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा असंखेज्जपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुण"त्ति। सङ्ख्येयतमे भागे सङ्ख्यातप्रदेशिकानामसङ्ख्येयतमे चासङ्ख्यातप्रदेशिकानामणवो वर्त्तन्ते, उक्तसूत्रप्रमाण्यादिति॥१६-१७॥ (रासीहिं) सङ्ख्येयप्रदेशिकानन्तप्रदेशकाभिधानाभ्याम्, इह च सङ्ख्यातप्रदेशिकराशेः सङ्ख्यातभागवर्त्तित्वात्तेषां स्वरूपतो बहुत्वमवगम्यते, अन्यथा तस्याप्यसङ्ख्येयभागेऽनन्तभागे वाऽभविष्यन्निति॥१८॥ 'न शेषराश्यो'रिति, अस्यायमर्थः–अनन्तप्रदेशिकराशेरनन्तगुणास्ते, सङ्ख्यातप्रदेशिकराशेस्तु सङ्ख्यातभागे, सङ्ख्यातभागस्य च विवक्षया नात्यन्तमल्पता, कालतः सप्रदेशेष्वप्रदेशेषु च वृत्तिमतामणूनां बहुत्वात्, कालाप्रदेशानां च सामयिकत्वेनात्यन्तमल्पत्वात् कालाप्रदेशेभ्योऽसङ्ख्यातगुणत्वं द्रव्याप्रदेशानामिति। एतद्भावना च वक्ष्यमाणस्थापनातोऽवसेया॥१९-२०-२१-२२-२३-२४-२५॥ 'मिश्राणा'मित्यप्रदेशसप्रदेशानां मीलितानां सङ्क्रमं प्रति–अप्रदेशेभ्यः सप्रदेशेष्वल्पबहुत्वविचारे सङ्क्रमे क्षेत्रतः सप्रदेशा असङ्ख्येयगुणाः क्षेत्रतोऽप्रदेशेभ्यः सकाशात्, स्वस्थाने पुनः केवलसप्रदेशचिन्तायां स्लोका एव ते क्षेत्रतः सप्रदेशा इति ॥२६॥ एतदेवोच्यते–अर्थत इति व्याख्यानापेक्षया अर्थतो–व्याख्यानद्वारेण त्री-

१–द्रव्यार्थतयाऽनन्तप्रदेशिकाः स्कन्धाः सर्वस्तोकास्त एव प्रदेशार्थतयाऽनन्तगुणाः, परमाणुपुद्गला द्रव्यार्थतया प्रदेशार्थतयाऽनन्तगुणाः, सङ्ख्येयप्रदेशिकाः स्कन्धा द्रव्यार्थतया सङ्ख्येयगुणाः त एव प्रदेशार्थतयाऽसङ्ख्यातगुणा असङ्ख्यातप्रदेशिकाः स्कन्धा द्रव्यार्थतयाऽसङ्ख्यातगुणा त एव प्रदेशार्थतयाऽसङ्ख्यातगुणाः ॥

५ शतके उद्देशः ८ द्रव्यादिसप्रदेशाप्रदेशानामल्पबहुत्वं सू २२१

॥२४३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्यादि प्रदेशानाम् अल्प-बहुत्वं

ण्यल्पबहुत्वानि भवन्ति, सूत्रे त्वेकमेव मिश्राल्पबहुत्वमुक्तमिति॥२७॥ यथा किल कल्पनया लक्षं समस्तपुद्गलास्तेषु भावकाल द्रव्यक्षेत्रतोऽप्रदेशाः क्रमेण एकद्विपञ्चदशसहस्रसङ्ख्याः, सप्रदेशास्तु नवनवत्यष्टनवतिनवतिपञ्चनवतिसहस्रसङ्ख्याः, ततश्च भावाप्रदेशेभ्यः कालाप्रदेशेषु सहस्रं वर्द्धते तदेव भावसप्रदेशेभ्यः कालसप्रदेशेषु हीयत इत्येवमन्यत्रापीति, स्थापना चेयम्—

भावतः	कालतः	द्रव्यतः	क्षेत्रतः
अप्र०१०००	अप्र० २०००	अप्र० ५०००	अप्र०१०००
सप्र०	सप्र०	सप्र०	सप्र०
९९०००	९८०००	९५०००	९००००

॥२८-२९-३०-३१॥ चतुर्भिरिति–भावकालादिभिरुपचर्यन्तां इति–विशेष्यन्ते ॥३२॥ कल्पनया यावन्तः सर्वपुद्गलास्तावत लक्ष इति ॥ ३३ ॥ अनन्तरं पुद्गला निरूपितास्ते च जीवोपग्राहिण इति जीवांश्चिन्तयन्नाह—

भन्तेत्ति भगवं गोयमे जाव एवं वयासी–जीवा णं भंते ! किं वड्ढंति हायंति अवट्ठिया ?, गोयमा ! जीवा णो वड्ढंति नो हायंति अवट्ठिया। नेरइया णं भंते ! किं वड्ढंति हायंति अवट्ठिया ?, गोयमा ! नेरइया वड्ढंतिवि हायंतिवि अवट्ठियावि, जहा नेरइया एवं जाव वेमाणिया । सिद्धा णं भंते ! पुच्छा, गोयमा ! सिद्धा वड्ढंति नो हायंति अवट्ठियावि ॥ जीवा णं भंते ! केवतियं कालं अवट्ठिया [वि] ?, सव्वद्धं । नेरइया णं भंते ! केवतियं कालं वड्ढंति ?, गोयमा ! ज० एगं समयं उक्को० आवलियाए असंखेज्जतिभागं, एवं हायंति, नेरइया णं भंते ! केवतियं कालं अवट्ठिया ?, गोयमा ! जहन्नेणं एगं समयं उक्को० चउवीसं मुहुत्ता, एवं सत्तसुवि पुढवीसु वड्ढंति हायंति भाणियव्वं, नवरं अवट्ठिएसु इमं नाणत्तं, तंजहा–रयणप्पभाए पुढवीए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२२२]

दीप अनुक्रम [२६३]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२४४॥

अडतालीसं मुहुत्ता सक्कर० चोद्दस रातिंदियाणं वालु० मासं पंक० दो मासा धूम० चत्तारि मासा तमाए अट्ठ मासा तम तमाए बारस मासा । असुरकुमारावि वहंति हायंति जहा नेरइया, अवट्ठिया जह० एकं समयं उक्को० अट्ठचत्तालीसं मुहुत्ता, एवं दसविहावि, एगिंदिया वहंतिवि हायंतिवि अवट्ठियावि, एएहिं तिहिवि जहन्नेणं एक्कं समयं उक्को० आवलियाए असंखेज्जतिभागं, बेइंदिया वहंति हायंति तहेव, अवट्ठिया ज० एकं समयं उक्को० दो अंतोमुहुत्ता, एवं जाव चउरिंदिया, अवसेसा सव्वे वहंति हायंति तहेव, अवट्ठियाणं णाणत्तं इमं, तं०– संमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं दो अंतोमुहुत्ता, गब्भवक्कंतियाणं चउव्वीसं मुहुत्ता, संमुच्छिममणुस्साणं अट्ठचत्तालीसं मुहुत्ता, गब्भवक्कंतियमणुस्साणं चउव्वीसं मुहुत्ता, वाणमंतरजोतिससोहम्मीसाणेसु अट्ठचत्तालीसं मुहुत्ता, सणंकुमारे अट्ठारस रातिंदियाइं चत्तालीस य मुहु०, माहिंदे चउवीसं रातिंदियाइं वीस य मु०, बंभलोए पंचचत्तालीसं रातिंदियाइं, लंतए नउति रातिंदियाइं, महासुक्के सट्ठिं रातिंदियसतं, सहस्सारे दो रातिंदियसयाइं, आणयपाणयाणं संखेज्जा मासा, आरणच्चुयाणं संखेज्जाइं वासाइं, एवं गेवेज्जदेवाणं विजयवेजयंतजयंतअपराजियाणं असंखिज्जाइं वाससहस्साइं, सव्वट्ठसिद्धे य पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागो, एवं भाणियव्वं, वहंति हायंति जह० एक्कं समयंउ० आवलियाए असंखेज्जतिभागं, अवट्ठियाणं जं भणियं। सिद्धा णं भंते ! केवतियं कालं वहंति ?, गोयमा ! जह० एक्कं समयं उक्को० अट्ठ समया, केवतियं कालं अवट्ठिया ?, गोयमा ! जह० एक्कसमयं उक्को० छम्मासा ॥ जीवा णं भंते ! किं सोवचया सावचया सोवचय-

५ शतके उद्देशः ८ जीवादीनां वृद्धिहान्यादिसोपचयादिच सू २२२

॥२४४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सावचया निरुवचयनिरवचया ?, गोयमा ! जीवा णो सोवचया नो सावचया णो सोवचयसावचया निरुवचयनिरवचया । एगिंदिया तइयपए, सेसा जीवा चउहिवि पदेहिवि भाणियव्वा, सिद्धा णं भंते ! पुच्छा, गोयमा ! सिद्धा सोवचया णो सावचया णो सोवचयसावचया निरुवचयनिरवचया । जीवा णं भंते ! केवतियं कालं निरुवचयनिरवचया ?, गोयमा ! सव्वद्धं, नेरतिया णं भंते ! केवतियं कालं सोवचया ?, गोयमा ! जह० एक्कं समयं उ० आवलियाए असंखेज्जइभागं । केवतियं कालं सावचया ? एवं चेव । केवतियं कालं सोवचयसावचया ?, एवं चेव। केवतियं कालं निरुवचयनिरवचया ?, गोयमा ! ज० एक्कं समयं उक्को० वारसमु० एगिंदिया सव्वे सोवचयसावचया सव्वद्धं सेसा सव्वे सोवचयावि सावचयावि सोवचयसावचयावि निरुवचयनिरवचयावि जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जतिभागं अवट्ठिएहिं वक्कंतिकालो भाणियव्वो सिद्धा णं भंते ! केवतियं कालं सोवचया ?, गोयमा ! जह० एक्कं समयं उक्को० अट्ठ समया, केवतियं कालं निरुवचय निरवचया ?, जह० एक्कं उ० छम्मासा। सेवं भंते २ ॥ (सूत्रं २२२) ॥ पंचमसए अट्ठमो उद्देसो समत्तो ॥५–८॥

'जीवा ण'मित्यादि, 'नेरइया णं भंते ! केवतियं कालं अवट्ठिया ?, गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं चउवीसमुहुत्तं'ति, कथं ?, सप्तस्वपि पृथिवीषु द्वादश मुहूर्त्तान् यावन्न कोऽप्युत्पद्यते उद्वर्त्तते वा, उत्कृष्टतो विरहकालस्यैवंरूपत्वात्, अन्येषु पुनर्द्वादशमुहूर्त्तेषु यावन्त उत्पद्यन्ते तावन्त एवोद्वर्त्तन्त इत्येवं चतुर्विंशतिमुहूर्त्तान् यावन्नारकाणामेकपरिमाणत्वादवस्थितत्वं वृद्धिहान्योरभाव इत्यर्थः, एवं रत्नप्रभादिषु यो यत्रोत्पादोद्वर्त्तनाविरहकालश्चतु-

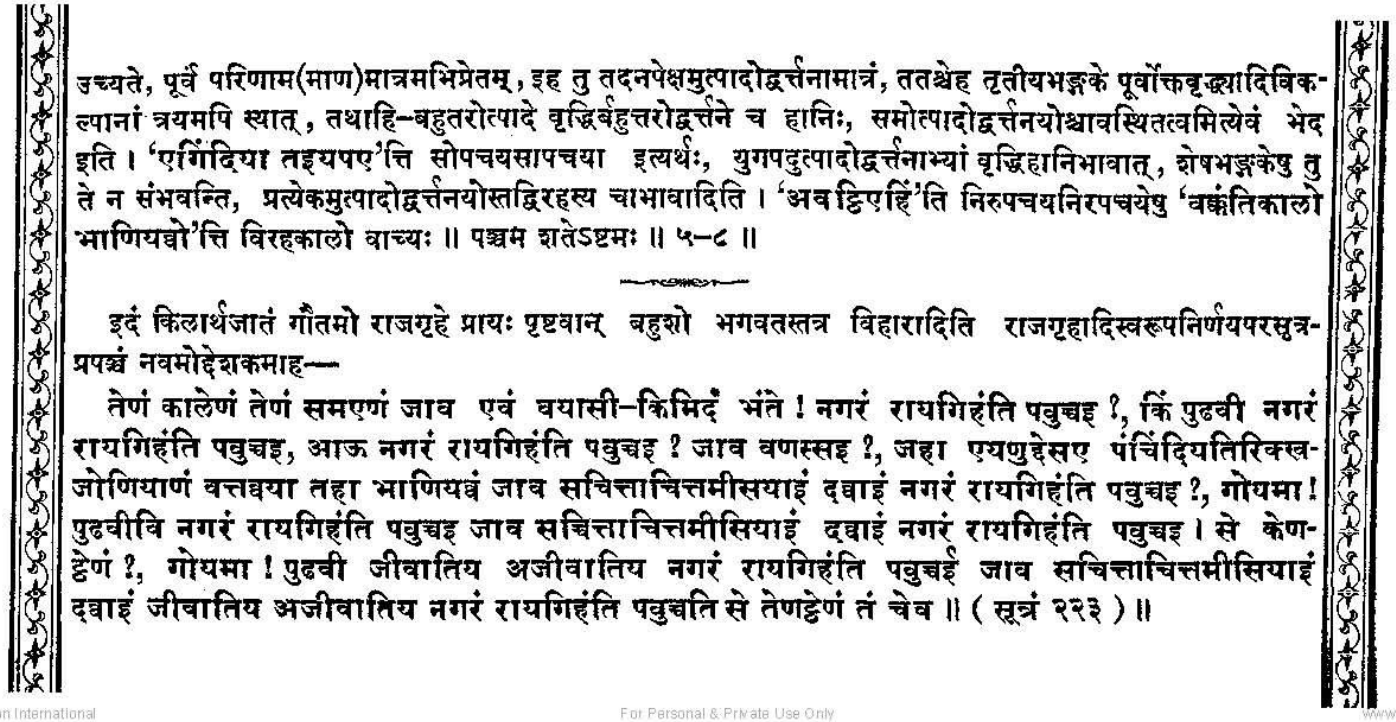
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२२२]

दीप अनुक्रम [२६३]

विंशतिमुहूर्त्तादिको व्युत्क्रान्तिपदेऽभिहितः स तत्र तेषु तत्तुल्यस्य समसङ्ख्यानामुत्पादोद्वर्त्तनाकालस्य मीलनाद् द्विगुणितः सन्नवस्थितकालोऽष्टचत्वारिंशन्मुहूर्त्तादिकः सूत्रोक्तो भवति, विरहकालश्च प्रतिपदमवस्थानकालार्द्धभूतः स्वयमभ्यूह्य इति। 'एगिंदिया वड्ढंतिवि'त्ति तेषु विरहाभावेऽपि बहुतराणामुत्पादादल्पतराणां चोद्वर्त्तनात्, 'हायंतिवि'त्ति बहुतराणामुद्वर्त्तनादल्पतराणां चोत्पादात्, 'अवट्ठियावि'त्ति तुल्यानामुत्पादादुद्वर्त्तनाच्चेति, 'एतेसिं तिण्हिवि'त्ति एतेषु त्रिष्वपि एकेन्द्रियवृद्ध्यादिष्वावलिकाया असङ्ख्येयो भागस्ततः परं यथायोगं वृद्ध्यादेरभावात्, 'दो अंतोमुहुत्त'त्ति एकमन्तर्मुहूर्त्तं विरहकालो द्वितीयं तु समानानामुत्पादोद्वर्त्तनकाल इति। 'आणयपाणयाणं संखेज्जा मासा आरणच्चुयाणं संखेज्जा वास'त्ति, इह विरहकालस्य सङ्ख्यातमासवर्षरूपस्य द्विगुणितत्वेऽपि सङ्ख्यातत्वमेवेत्यतः सङ्ख्याता मासा इत्याद्युक्तम्, 'एवं गेवेज्जदेवाणं'ति इह यद्यपि ग्रैवेयकाधस्तनत्रये सङ्ख्यातानि वर्षाणां शतानि मध्यमे सहस्राणि उपरिमे लक्षाणि विरह उच्यते तथापि द्विगुणितेऽपि च सङ्ख्यातवर्षत्वं न विरुध्यते, विजयादिषु त्वसङ्ख्यातकालो विरहः स च द्विगुणितोऽपि स एव, सर्वार्थसिद्धे पल्योपमसङ्ख्येयभागः सोऽपि द्विगुणितः सङ्ख्येयभाग एव स्यादतएव उक्तं 'विजयवेजयंतजयंतापराजियाणं असंखेज्जाइं वाससहस्साइं'इत्यादीति ॥ जीवादीनेव भङ्गयन्तरेणाह—'जीवाण'मित्यादि, 'सोपचयाः' सवृद्धयः प्राक्तनेष्वन्येषामुत्पादात् 'सापचयाः' प्राक्तनेभ्यः केषाञ्चिदुद्वर्त्तनात्सहानयः 'सोपचयसापचयाः' उत्पादोद्वर्त्तनाभ्यां वृद्धिहान्योर्युगपद्भावात् निरुपचयनिरपचयाः उत्पादोद्वर्त्तनयोरभावेन वृद्धिहान्योरभावात्, ननूपचयो वृद्धिरपचयस्तु हानिः, युगपद्द्वयाभावरूपश्चावस्थितत्वं, एवं च शब्दभेदव्यतिरेकेण कोऽनयोः सूत्रयोर्भेदः ?,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



उच्यते, पूर्वं परिणाम(माण)मात्रमभिप्रेतम्, इह तु तदनपेक्षमुत्पादोद्वर्त्तनामात्रं, ततश्चेह तृतीयभङ्गके पूर्वोक्तवृद्ध्यादिविकल्पानां त्रयमपि स्यात्, तथाहि–बहुतरोत्पादे वृद्धिर्बहुत्तरोद्वर्त्तने च हानिः, समोत्पादोद्वर्त्तनयोश्चावस्थितत्वमित्येवं भेद इति। 'एगिंदिया तइयपए'त्ति सोपचयसापचया इत्यर्थः, युगपदुत्पादोद्वर्त्तनाभ्यां वृद्धिहानिभावात्, शेषभङ्गकेषु तु ते न संभवन्ति, प्रत्येकमुत्पादोद्वर्त्तनयोस्तद्विरहस्य चाभावादिति। 'अवट्ठिएहिं'ति निरुपचयनिरपचयेषु 'वक्कंतिकालो भाणियव्वो'त्ति विरहकालो वाच्यः ॥ पञ्चम शतेऽष्टमः ॥ ५–८ ॥

इदं किलार्थजातं गौतमो राजगृहे प्रायः पृष्टवान् बहुशो भगवतस्तत्र विहारादिति राजगृहादिस्वरूपनिर्णयपरसूत्रप्रपञ्चं नवमोद्देशकमाह—

तेणं कालेणं तेणं समएणं जाव एवं वयासी–किमिदं भंते ! नगरं रायगिहंति पवुच्चइ ?, किं पुढवी नगरं रायगिहंति पवुच्चइ, आऊ नगरं रायगिहंति पवुच्चइ ? जाव वणस्सइ ?, जहा एयणुद्देसए पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं वत्तव्वया तहा भाणियव्वं जाव सचित्ताचित्तमीसियाइं दव्वाइं नगरं रायगिहंति पवुच्चइ ?, गोयमा ! पुढवीवि नगरं रायगिहंति पवुच्चइ जाव सचित्ताचित्तमीसियाइं दव्वाइं नगरं रायगिहंति पवुच्चइ। से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! पुढवी जीवातिय अजीवातिय नगरं रायगिहंति पवुच्चई जाव सचित्ताचित्तमीसियाइं दव्वाइं जीवातिय अजीवातिय नगरं रायगिहंति पवुच्चति से तेणट्ठेणं तं चेव ॥ (सूत्रं २२३) ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	अत्र पंचम-शतके अष्टम-उद्देशकः समाप्तः **अथ पंचम-शतके नवम-उद्देशकः आरभ्यते**

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२४६॥

'तेण'मित्यादि, 'जहा एयणुद्देसए'त्ति एजनोद्देशकोऽस्यैव पञ्चमशतस्य सप्तमः, तत्र पञ्चेन्द्रियतिर्यग्वक्तव्यता 'टङ्का कूडा सेला सिहरी'त्यादिका योक्ता सा इह भणितव्येति, अत्रोत्तरं–'पुढवीवि नगर'मित्यादि, पृथिव्यादिसमुदायो राजगृहं, न पृथिव्यादिसमुदायादृते राजगृहशब्दप्रवृत्तिः, 'पुढवी जीवाइय अजीवाइय नगरं रायगिहंति पवुच्चइ'त्ति जीवाजीवस्वभावं राजगृहमिति प्रतीतं, ततश्च विवक्षिता पृथिवी सचेतनाचेतनत्वेन जीवाश्चाजीवाश्चेति राजगृहमिति प्रोच्यत इति ॥ पुद्गलाधिकारादिदमाह—

से नूणं भंते ! दिया उज्जोए रातिं अंधयारे ?, हंता गोयमा ! जाव अंधयारे। से केणट्ठेणं० ?, गोयमा ! दिया सुभा पोग्गला सुभे पोग्गलपरिणामे रातिं असुभा पोग्गला असुभे पोग्गलपरिणामे से तेणट्ठेणं०। नेरइया णं भंते ! किं उज्जोए अंधयारे?, गोयमा ! नेरइयाणं नो उज्जोए अंधयारे से केणट्ठेणं०?, गोयमा ! नेरइया णं असुहा पोग्गला असुभे पोग्गलपरिणामे से तेणट्ठेणं०। असुरकुमाराणं भंते ! किं उज्जोए अंधयारे ?, गोयमा ! असुरकुमाराणं उज्जोए नो अंधयारे। से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! असुरकुमाराणं सुभा पोग्गला सुभे पोग्गलपरिणामे, से तेणट्ठेणं एवं वुच्चइ, एवं जाव थणिय कुमाराणं, पुढविकाइया जाव तेइंदिया जहा नेरइया। चउरिंदियाणं भंते ! किं उज्जोए अंधयारे ?, गोयमा ! उज्जोएवि अंधयारेवि, से केणट्ठेणं० ?, गोयमा ! चउरिंदियाणं सुभासुभा पोग्गला सुभासुभे पोग्गलपरिणामे, से तेणट्ठेणं एवं जाव मणुस्साणं। वाणमंतरजोतिसवेमाणिया जहा असुरकुमारा ॥ (सूत्रं २२४) ॥ अत्थि णं भंते ! नेरइयाणं तत्थगयाणं एवं पन्नायति–समयाति वा आवलियाति वा जाव ओस-

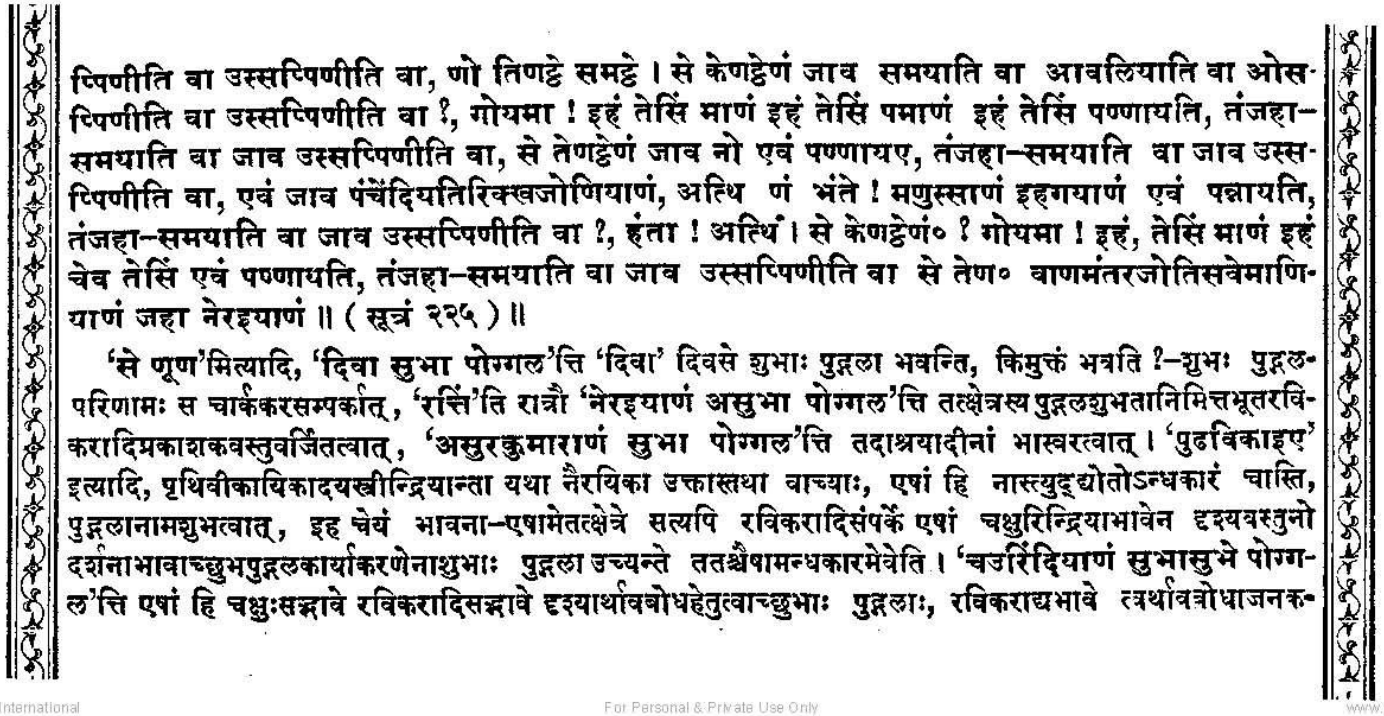
५ शतके उद्देशः ९ पृथ्व्यादीनां राजगृहत्वं सू २२३ नारकादीनां मुद्योतान्धकारौ सू २२४

॥२४६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२२४--२२५]

दीप अनुक्रम [२६५--२६६]



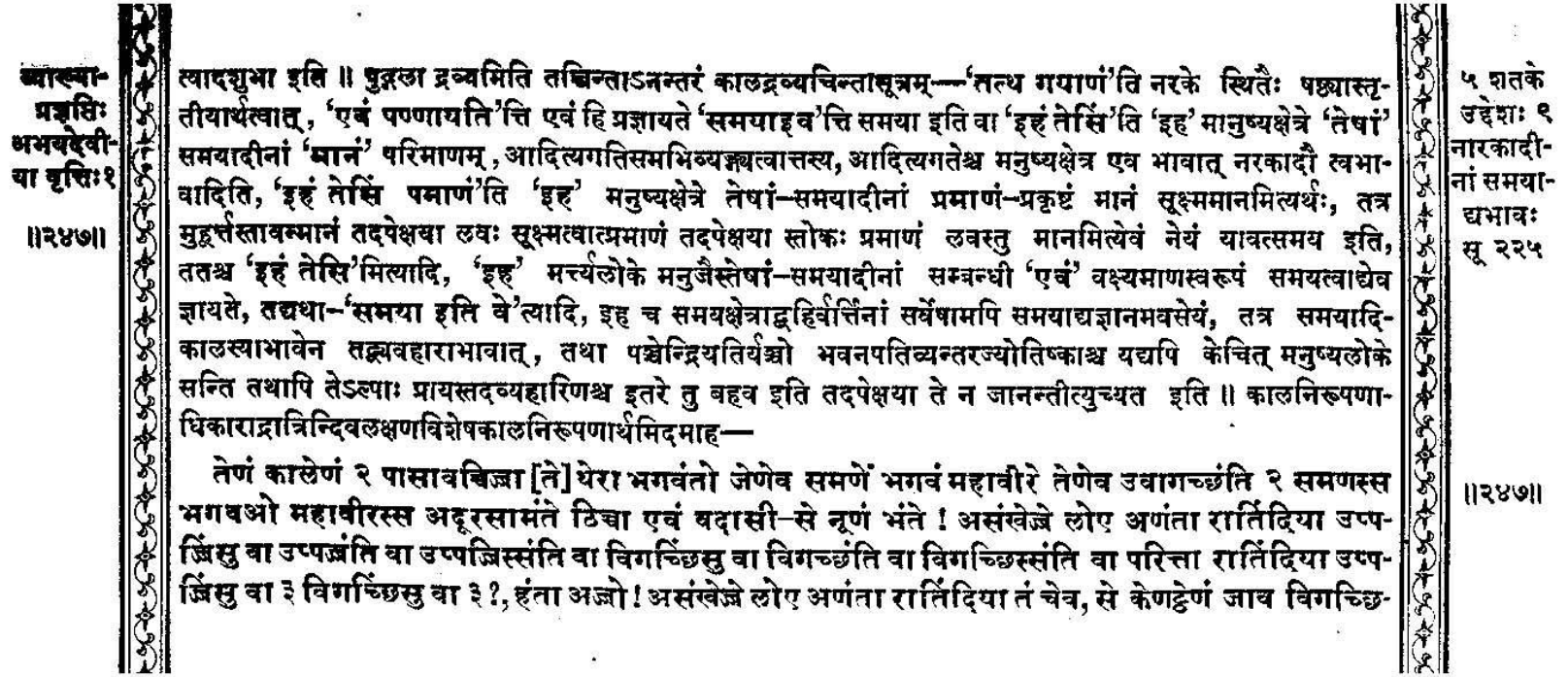
प्पिणीति वा उस्सप्पिणीति वा, णो तिणट्ठे समट्ठे । से केणट्ठेणं जाव समयाति वा आवलियाति वा ओसप्पिणीति वा उस्सप्पिणीति वा ?, गोयमा ! इहं तेसिं माणं इहं तेसिं पमाणं इहं तेसिं पण्णायति, तंजहा–समयाति वा जाव उस्सप्पिणीति वा, से तेणट्ठेणं जाव नो एवं पण्णायए, तंजहा–समयाति वा जाव उस्सप्पिणीति वा, एवं जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं, अत्थि णं भंते ! मणुस्साणं इहगयाणं एवं पन्नायति, तंजहा–समयाति वा जाव उस्सप्पिणीति वा ?, हंता ! अत्थि । से केणट्ठेणं० ? गोयमा ! इहं, तेसिं माणं इहं चेव तेसिं एवं पण्णायति, तंजहा–समयाति वा जाव उस्सप्पिणीति वा से तेण० वाणमंतरजोतिसवेमाणियाणं जहा नेरइयाणं ॥ (सूत्रं २२५) ॥

'से णूण'मित्यादि, 'दिवा सुभा पोग्गल'त्ति 'दिवा' दिवसे शुभाः पुद्गला भवन्ति, किमुक्तं भवति ?–शुभः पुद्गलपरिणामः स चार्ककरसम्पर्कात्, 'रत्तिं'ति रात्रौ 'नेरइयाणं असुभा पोग्गल'त्ति तत्क्षेत्रस्य पुद्गलशुभतानिमित्तभूतरविकरादिप्रकाशकवस्तुवर्जितत्वात्, 'असुरकुमाराणं सुभा पोग्गल'त्ति तदाश्रयादीनां भास्वरत्वात् । 'पुढविकाइए' इत्यादि, पृथिवीकायिकादयस्त्रीन्द्रियान्ता यथा नैरयिका उक्तास्तथा वाच्याः, एषां हि नास्त्युद्द्योतोऽन्धकारं चास्ति, पुद्गलानामशुभत्वात्, इह चेयं भावना–एषामेतत्क्षेत्रे सत्यपि रविकरादिसंपर्के एषां चक्षुरिन्द्रियाभावेन दृश्यवस्तुनो दर्शनाभावाच्छुभपुद्गलकार्याकरणेनाशुभाः पुद्गला उच्यन्ते ततश्चैषामन्धकारमेवेति । 'चउरिंदियाणं सुभासुभे पोग्गल'त्ति एषां हि चक्षुःसद्भावे रविकरादिसद्भावे दृश्यार्थावबोधहेतुत्वाच्छुभाः पुद्गलाः, रविकराद्यभावे त्वर्थावबोधाजनक-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२२४--२२५]

दीप अनुक्रम [२६५--२६६]



आख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१

॥२४७॥

स्यादशुभा इति ॥ पुद्गला द्रव्यमिति तच्चिन्ताऽनन्तरं कालद्रव्यचिन्तासूत्रम्—'तत्थ गयाणं'ति नरके स्थितैः षष्ठ्यास्तृतीयार्थत्वात्, 'एवं पण्णायति'त्ति एवं हि प्रज्ञायते 'समयाइ व'त्ति समया इति वा 'इहं तेसिं'ति 'इह' मानुष्यक्षेत्रे 'तेषां' समयादीनां 'मानं' परिमाणम्, आदित्यगतिसमभिव्यङ्ग्यत्वात्तस्य, आदित्यगतेश्च मनुष्यक्षेत्र एव भावात् नरकादौ त्वभावादिति, 'इहं तेसिं पमाणं'ति 'इह' मनुष्यक्षेत्रे तेषां–समयादीनां प्रमाणं–प्रकृष्टं मानं सूक्ष्ममानमित्यर्थः, तत्र मुहूर्त्तस्तावन्मानं तदपेक्षया लवः सूक्ष्मत्वात्प्रमाणं तदपेक्षया स्तोकः प्रमाणं लवस्तु मानमित्येवं नेयं यावत्समय इति, ततश्च 'इहं तेसि'मित्यादि, 'इह' मर्त्यलोके मनुजैस्तेषां–समयादीनां सम्बन्धी 'एवं' वक्ष्यमाणस्वरूपं समयत्वाद्येव ज्ञायते, तद्यथा–'समया इति वे'त्यादि, इह च समयक्षेत्राद्बहिर्वर्त्तिनां सर्वेषामपि समयाद्यज्ञानमवसेयं, तत्र समयादिकालस्याभावेन तद्व्यवहाराभावात्, तथा पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्काश्च यद्यपि केचित् मनुष्यलोके सन्ति तथापि तेऽल्पाः प्रायस्तदव्यहारिणश्च इतरे तु बहव इति तदपेक्षया ते न जानन्तीत्युच्यत इति ॥ कालनिरूपणाधिकाराद्रात्रिन्दिवलक्षणविशेषकालनिरूपणार्थमिदमाह—

तेणं कालेणं २ पासावच्चिज्जा [ते] थेरा भगवंतो जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति २ समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते ठिचा एवं वदासी–से नूणं भंते ! असंखेज्जे लोए अणंता रातिंदिया उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा विगच्छिंसु वा विगच्छंति वा विगच्छिस्संति वा परित्ता रातिंदिया उप्पज्जिंसु वा ३ विगच्छिंसु वा ३?, हंता अज्जो! असंखेज्जे लोए अणंता रातिंदिया तं चेव, से केणट्ठेणं जाव विगच्छि-

५ शतके उद्देशः ९ नारकादीनां समयाद्यभावः सू २२५

॥२४७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्संति वा ?, से नूणं भंते ! अज्जो ! पासेणं अरहया पुरिसादाणीएणं सासए लोए बुइए अणादीए अणवदग्गे परित्ते परिवुडे हेट्ठा विच्छिण्णे मज्झे संखित्ते उप्पिं विसाले अहे पलियंकसंठिए मज्झे वरवइरविग्गहिते उप्पिं उद्धमुइंगाकारसंठिए तेसिं च णं सासयंसि लोगंसि अणादियंसि अणवदग्गंसि परित्तंसि परिवुडंसि हेट्ठा विच्छिन्नंसि मज्झे संखित्तंसि उप्पिं विसालंसि अहे पलियंकसंठियंसि मज्झे वरवइरविग्गहियंसि उप्पिं उद्धमुइंगाकारसंठियंसि अणंता जीवघणा उप्पज्जित्ता २ निलीयंति परित्ता जीवघणा उप्पज्जित्ता २ निलीयंति से नूणं भूए उप्पन्ने विगए परिणए अजीवेहिं लोक्कति पलोक्कइ, जे लोक्कइ से लोए ?, हंता भगवं [ते]!, से तेणट्ठेणं अज्जो ! एवं वुच्चइ असंखेज्जे तं चेव। तप्पभितिं च णं ते पासावच्चेज्जा थेरा भगवंतो समणं भगवं महावीरं पच्चभिजाणंति सव्वण्णू सव्वदरिसी [ग्रं० ३०००], तए णं ते थेरा भगवंतो समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति २ एवं वदासि–इच्छामि णं भंते ! तुब्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सप्पडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए, अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह, तए णं ते पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो जाव चरिमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं सिद्धा जाव सव्वदुक्खप्पहीणा अत्थेगतिया देवा देवलोएसु उववन्ना ॥ (सूत्रं २२६) ॥ कतिविहा णं भंते ! देवलोगा पण्णत्ता ?, गोयमा ! चउव्विहा देवलोगा पण्णत्ता, तंजहा— भवणवासीवाणमंतरजोतिसियवेमाणियभेदेण, भवणवासी दसविहा वाणमंतरा अट्ठविहा जोइसिया पंचविहा वेमाणिया दुविहा। गाहा–किमियं रायगिहंति य उज्जोए अंधयार समए य। पासंतिवासि पुच्छा रातिं-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२२६--२२७]

दीप अनुक्रम [२६७--२७०]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥२४८॥

दिय देवलोगा य ॥ १ ॥ सेवं भंते ! २ त्ति ॥ (सूत्रं २२७) ॥ पंचमे सए नवमो उद्देसो समत्तो ॥ ५–९ ॥

'तेणं कालेण'मित्यादि, तत्र 'असंखेज्जे लोए'त्ति असङ्ख्यातेऽसङ्ख्यातप्रदेशात्मकत्वात् लोके–चतुर्दशरज्ज्वात्मके क्षेत्र-लोके आधारभूते 'अणंता राइंदिय'त्ति अनन्तपरिमाणानि रात्रिन्दिवानि–अहोरात्राणि 'उप्पज्जिंसु वा'इत्यादि उत्प-न्नानि वा उत्पद्यन्ते वा उत्पत्स्यन्ते वा, पृच्छतामयमभिप्रायः–यदि नामासङ्ख्यातो लोकस्तदा [कथं] तत्रानन्तानि तानि कथं भवितुमर्हन्ति ?, अल्पत्वादाधारस्य महत्त्वाच्चाधेयस्येति, तथा 'परित्ता राइंदिय'त्ति परीत्तानि–नियतपरिमाणानि नानन्तानि, इहायमभिप्रायः–यद्यनन्तानि तानि तदा कथं परीत्तानि ? इति विरोधः, अत्र हन्तेत्याद्युत्तरं, अत्र चायम-भिप्रायः–असङ्ख्यातप्रदेशेऽपि लोकेऽनन्ता जीवा वर्त्तते, तथाविधस्वरूपत्वाद्, एकत्राश्रये सहस्रादिसङ्ख्यप्रदीपप्रभा इव, ते चैकत्रैव समयादिके कालेऽनन्ता उत्पद्यन्ते विनश्यन्ति च, स च समयादिकालस्तेषु साधारणशरीरावस्थायामनन्तेषु प्रत्येकशरीरावस्थायां च परीत्तेषु प्रत्येकं वर्त्तते, तत्स्थितिलक्षणपर्यायरूपत्वात्तस्य, तथा च कालोऽनन्तः परीत्तश्च भव-तीति, एवं चासङ्ख्येयेऽपि लोके रात्रिन्दिवान्यनन्तानि परीत्तानि च कालत्रयेऽपि युज्यन्त इति ॥ एतदेव प्रश्नपूर्वकं तत्सं-मतजिनमतेन दर्शयन्नाह–'से नूण'मित्यादि, 'भे'त्ति भवतां सम्बन्धिना 'अज्जो'त्ति हे आर्याः ! 'पुरिसादाणीएणं'त्ति पुरुषाणां मध्ये आदानीयः–आदेयः पुरुषादानीयस्तेन 'सासए'त्ति प्रतिक्षणस्थायी, स्थिर इत्यर्थः, 'वुइए'त्ति उक्तः, स्थिर-श्चोत्पत्तिक्षणादारभ्य स्यादित्यत आह–'अणाइए'त्ति अनादिकः, स च सान्तोऽपि स्याद्भव्यत्ववदित्याह–'अनव-यग्गे'त्ति अनवदग्रः–अनन्तः 'परित्ते'त्ति परिमितः प्रदेशतः, अनेन लोकस्यासङ्ख्येयत्वं पार्श्वजिनस्यापि संमतमिति

५ शतके उद्देशः ९ पार्श्वापत्य-प्रश्नोरात्रि-न्दिवान-न्त्ये देवलो-काश्च सू २२६-२२७

॥२४८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

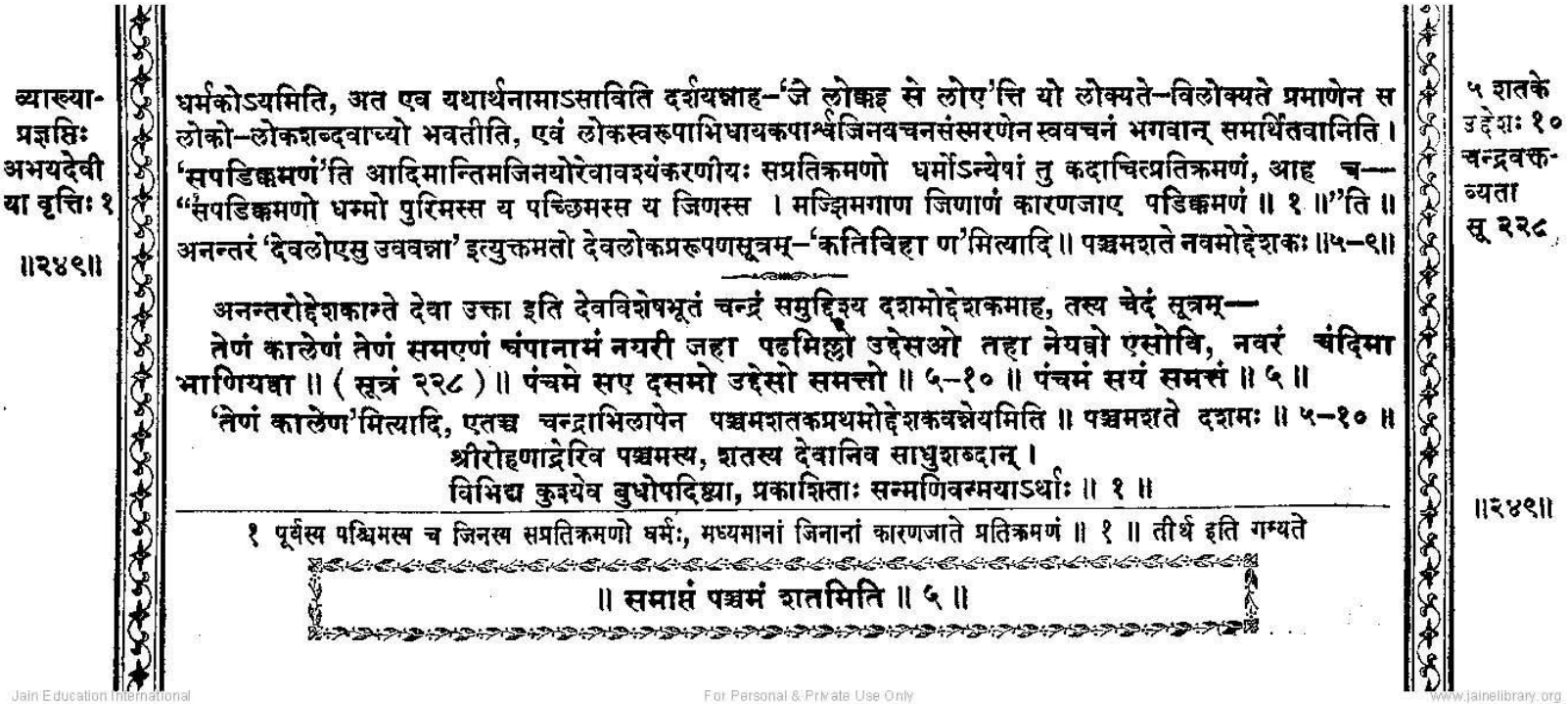
दर्शितम् । तथा 'परिवुडे'त्ति अलोकेन परिवृतः 'हेट्ठा विच्छिन्ने'त्ति सप्तरज्जुविस्तृतत्वात् 'मज्झे संखित्ते'त्ति एकरज्जुविस्तारत्वात् 'उप्पिं विसाले'त्ति ब्रह्मलोकदेशस्य पञ्चरज्जुविस्तारत्वात्, एतदेवोपमानतः प्राह–'अहे पलियंकसंठिए'त्ति उपरिसङ्कीर्णत्वाधोविस्तृतत्वाभ्यां 'मज्झे वरवइरविग्गहिए'त्ति वरवज्रवद्विग्रहः–शरीरमाकारो मध्यक्षामत्वेन यस्य स तथा, स्वार्थिकश्चेकप्रत्ययः, 'उप्पिं उद्धमुइंगागारसंठिए'त्ति ऊर्द्धो न तु तिरश्चीनो यो मृदङ्गस्तस्याकारेण संस्थितो यः स तथा, मल्लकसंपुटाकार इत्यर्थः, 'अणंता जीवघण'त्ति 'अनन्ताः' परिमाणतः सूक्ष्मादिसाधारणशरीराणां विवक्षितत्वात्, सन्तत्यपेक्षया वाऽनन्ताः, जीवसन्ततीनामपर्यवसानत्वात्, जीवाश्च ते घनाश्चानन्तपर्यायसमूहरूपत्वादसङ्ख्येयप्रदेशपिण्डरूपत्वाच्च जीवघनाः, किमित्याह–'उप्पज्जित्ते'ति उत्पद्योत्पद्य 'विलीयन्ते' विनश्यन्ति, तथा 'परीत्ता' प्रत्येकशरीरा अनपेक्षितातीतानागतसन्तानतया वा सङ्ख्यिाः, जीवघना इत्यादि तथैव, अनेन च प्रश्ने यदुक्तम् 'अणंता राइंदिया'इत्यादि तस्योत्तरं सूचितं, यतोऽनन्तपरीत्तजीवसम्बन्धात्कालविशेषा अप्यनन्ताः परीत्ताश्च व्यपदिश्यन्तेऽतो विरोधः परिहृतो भवतीति । अथ लोकमेव स्वरूपत आह–'से (नूणं) भूए'त्ति यत्र जीवघना उत्पद्य २ विलीयन्ते स लोको भूतः–सद्भूतो भवनधर्मयोगात्, स चानुत्पत्तिकोऽपि स्याद् यथा नयमतेनाकाशमत आह–उत्पन्नः, एवंविधश्चानश्वरोऽपि स्याद् यथा विवक्षितघटाभाव इत्यत आह–विगतः, स चानन्वयोऽपि किल भवतीत्यत आह–परिणतः–पर्यायान्तराणि आपन्नो न तु निरन्वयनाशेन नष्टः । अथ कथमयमेवंविधो निश्चीयते ? इत्याह–'अजीवेहिं'ति 'अजीवैः' पुद्गलादिभिः सत्तां बिभ्रद्भिरुत्पद्यमानैर्विगच्छद्भिः परिणमद्भिश्च लोकानन्यभूतैः 'लोक्यते' निश्चीयते 'प्रलोक्यते' प्रकर्षेण निश्चीयते, भूतादि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२२६--२२७, २२८]

दीप अनुक्रम [२६७--२७०, २७१]



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १ ॥२४९॥

धर्मकोऽयमिति, अत एव यथार्थनामाऽसाविति दर्शयन्नाह–'जे लोकइ से लोए'त्ति यो लोक्यते–विलोक्यते प्रमाणेन स लोको–लोकशब्दवाच्यो भवतीति, एवं लोकस्वरूपाभिधायकपार्श्वजिनवचनसंस्मरणेन स्ववचनं भगवान् समर्थितवानिति। 'सपडिक्कमणं'ति आदिमान्तिमजिनयोरेवावश्यंकरणीयः सप्रतिक्रमणो धर्मोऽन्येषां तु कदाचित्प्रतिक्रमणं, आह च— "सपडिक्कमणो धम्मो पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स । मज्झिमगाण जिणाणं कारणजाए पडिक्कमणं ॥ १ ॥"ति ॥ अनन्तरं 'देवलोएसु उववन्ना' इत्युक्तमतो देवलोकप्ररूपणसूत्रम्–'कतिविहा ण'मित्यादि ॥ पञ्चमशते नवमोद्देशकः ॥५–९॥

अनन्तरोद्देशकान्ते देवा उक्ता इति देवविशेषभूतं चन्द्रं समुद्दिश्य दशमोद्देशकमाह, तस्य चेदं सूत्रम्—

तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपानामं नयरी जहा पढमिल्लो उद्देसओ तहा नेयव्वो एसोवि, नवरं चंदिमा भाणियव्वा ॥ (सूत्रं २२८) ॥ पंचमे सए दसमो उद्देसो समत्तो ॥ ५–१० ॥ पंचमं सयं समत्तं ॥ ५ ॥

'तेणं कालेण'मित्यादि, एतच्च चन्द्राभिलापेन पञ्चमशतकप्रथमोद्देशकवन्नेयमिति ॥ पञ्चमशते दशमः ॥ ५–१० ॥

श्रीरोहणाद्रेरिव पञ्चमस्य, शतस्य देवानिव साधुशब्दान् ।
विभिद्य कुक्ष्येव बुधोपदिष्टा, प्रकाशिताः सन्मणिवन्मयाऽर्थाः ॥ १ ॥

१ पूर्वस्य पश्चिमस्य च जिनस्य सप्रतिक्रमणो धर्मः, मध्यमानां जिनानां कारणजाते प्रतिक्रमणं ॥ १ ॥ तीर्थ इति गम्यते

॥ समाप्तं पञ्चमं शतमिति ॥ ५ ॥

५ शतके उद्देशः १० चन्द्रवक्तव्यता सू २२८

॥२४९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पंचम-शतके नवम-उद्देशकः समाप्तः

अथ पंचम-शतके दशम-उद्देशकः

.....अत्र पंचमं शतकं समाप्तं.....

॥ अथ षष्ठं शतकम् ॥

व्याख्यातं विचित्रार्थं पञ्चमं शतं, अथावसरायातं तथाविधमेव षष्ठमारभ्यते, तस्य चोद्देशकार्थसङ्ग्रहणी गाथेयम्—

वेयण १ आहार २ महस्सवे य ३ सपएस ४ तमुए य ५ ।
भविए ६ साली ७ पुढवी ८ कम्म ९ अन्नउत्थी १० दस छट्ठंमि सए ॥ १ ॥

'वेयणे'त्यादि, तत्र 'वेयण'त्ति महावेदनो महानिर्जर इत्याद्यर्थप्रतिपादनपरः प्रथमः १ 'आहार'त्ति आहाराद्यर्थाभिधायको द्वितीयः २ 'महस्सवे य'त्ति महाश्रवस्य पुद्गला बध्यन्ते इत्याद्यर्थाभिधानपरस्तृतीयः ३ 'सपएस'त्ति सप्रदेशो जीवोऽप्रदेशो वा इत्याद्यर्थाभिधायकश्चतुर्थः ४ 'तमुए य'त्ति तमस्कायार्थनिरूपणार्थः पञ्चमः ५ 'भविए'त्ति भव्यो–नारकत्वादिनोत्पादस्य योग्यस्तद्वक्तव्यताऽनुगतः षष्ठः ६ 'साली'त्ति शाल्यादिधान्यवक्तव्यताऽऽश्रितः सप्तमः ७ 'पुढवि'त्ति रत्नप्रभादिपृथिवीवक्तव्यताऽर्थोऽष्टमः ८ 'कम्म'त्ति कर्मबन्धाभिधायको नवमः ९ 'अन्नउत्थि'त्ति अन्ययूथिकवक्तव्यतार्थो दशमः १० इति ।

से नूणं भंते ! जे महावेयणे से महानिज्जरे जे महानिज्जरे से महावेदणे, महावेदणस्स य अप्पवेदणस्स य से सेए जे पसत्थनिज्जराए ?, हंता गोयमा ! जे महावेदणे एवं चेव । छट्ठसत्तमासु णं भंते ! पुढवीसु नेरइया महावेयणा ?, हंता महावेयणा, ते णं भंते ! समणेहिंतो निग्गंथेहिंतो महानिज्जरतरा ?, गोयमा ! णो तिणट्ठे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ षष्ठं-शतकं आरभ्यते

अथ षष्ठं-शतके प्रथम-उद्देशक: आरब्ध:

प्रत सूत्रांक [२२९] + गाथा

दीप अनुक्रम [२७२--२७३]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२५०॥

समट्ठे, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुचइ जे महावेदणे जाव पसत्थनिज्जराए ?, गोयमा ! से जहानामए–दुवे वत्था सिया, एगे वत्थे कद्दमरागरत्ते एगे वत्थे खंजणरागरत्ते, एएसि णं गोयमा ! दोण्हं वत्थाणं कयरे वत्थे दुधोयतराए चेव दुवामतराए चेव दुपरिकम्मतराए चेव कयरे वा वत्थे सुधोयतराए चेव सुवामतराए चेव सुपरिकम्मतराए चेव ?, जे वा से वत्थे कद्दमरागरत्ते जे वा से वत्थे खंजणरागरत्ते ?, भगवं ! तत्थ णं जे से वत्थे कद्दमरागरत्ते से णं वत्थे दुधोयतराए चेव दुवामतराए चेव दुप्परिकम्मतराए चेव, एवामेव गोयमा ! नेरइयाणं पावाइं कम्माइं गाढीकयाइं चिक्कणीकयाइं(अ)सिढिलीकयाइं खिलीभूयाइं भवंति संपगाढंपि य णं ते वेदणं वेदेमाणा णो महानिज्जरा णो महापज्जवसाणा भवंति, से जहा वा केइ पुरिसे अहिगरणं आकोडेमाणे महया २ सद्देणं महया २ घोसेणं महया २ परंपराघाएणं णो संचाएइ तीसे अहिगरणीए केई अहाबायरे पोग्गले परिसाडित्तए एवामेव गोयमा ! नेरइयाणं पावाइं कम्माइं गाढीकयाइं जाव नो महापज्जवसाणाइं भवंति, भगवं ! तत्थ जे से वत्थे खंजणरागरत्ते से णं वत्थे सुधोयतराए चेव सुवामतराए चेव सुपरिकम्मतराए चेव, एवामेव गोयमा ! समणाणं निग्गंथाणं अहाबायराइं कम्माइं सिढिलीकयाइं निट्ठियाइं कम्माइं विप्परिणामियाइं खिप्पामेव विद्धत्थाइं भवंति, जावतियं तावतियंपि णं ते वेदणं वेदेमाणे महानिज्जरा महापज्जवसाणा भवंति, से जहानामए–केइ पुरिसे सुक्कतणहत्थयं जायतेयंसि पक्खिवेज्जा से नूणं गोयमा ! से सुक्के तणहत्थए जायतेयंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव मसमसाविज्जति?, हंता मसमसाविज्जति,

६ शतके उद्देशः १ वस्त्रदृष्टान्तेन महावेदनाल्पनिर्जरे सू २२९

॥२५०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवामेव गोयमा ! समणाणं निग्गंथाणं अहाबायराइं कम्माइं जाव महापज्जवसाणा भवंति, से जहानामए केइ पुरिसे तत्तंसि अयकवल्लंसि उदगबिंदू जाव हंता विद्धंसमागच्छइ, एवामेव गोयमा ! समणाणं निग्गंथाणं जाव महापज्जवसाणा भवंति, से तेणट्ठेणं जे महावेदणे से महानिज्जरे जाव निज्जराए ॥ (सूत्रं २२९) ॥

'से नूणं भंते ! जे महावेयणे'इत्यादि, 'महावेदनः' उपसर्गादिसमुद्भूतविशिष्टपीडः 'महानिर्जरः' विशिष्टकर्मक्षयः, अनयोश्चान्योऽन्याविनाभूतत्वाविर्भावनाय 'जे महानिज्जरे'इत्यादि प्रत्यावर्त्तनमित्येकः प्रश्नः, तथा महावेदनस्य चाल्पवेदनस्य च मध्ये स श्रेयान् यः 'प्रशस्तनिर्जराकः' कल्याणानुबन्धनिर्जर इत्येष च द्वितीयः प्रश्नः, प्रश्नता च काकुपाठादवगम्या, हन्तेत्याद्युत्तरं, इह च प्रथमप्रश्नस्योत्तरे महोपसर्गकाले भगवान् महावीरो ज्ञातं, द्वितीयस्यापि स एवोपसर्गानुपसर्गावस्थायामिति। यो महावेदनः स महानिर्जर इति यदुक्तं तत्र व्यभिचारं शङ्कमान आह—'छट्ठी'त्यादि, 'दुधोयतराए'त्ति दुष्करतरधावनप्रक्रियं 'दुवामतराए'त्ति 'दुर्वाम्यतरकं' दुस्त्याज्यतरकलङ्कं 'दुप्परिकम्मतराए'त्ति कष्टकर्त्तव्यतेजोजननभङ्गकरणादिप्रक्रियम्, अनेन च विशेषणत्रयेणापि दुर्विशोध्यमित्युक्तं, 'गाढीकयाइं'ति आत्मप्रदेशैः सह गाढबद्धानि सनसूत्रगाढबद्धसूचीकलापवत् 'चिक्कणीकयाइं'ति सूक्ष्मकर्मस्कन्धानां सरसतया परस्परं गाढसम्बन्धकरणतो दुर्भेदीकृतानि तथाविधमृत्पिण्डवत् '(अ)सिढिलीकयाइं'ति निधत्तानि सूत्रबद्धाग्नितप्तलोहशलाकाकलापवत् 'खिलीभूतानि' अनुभूतिव्यतिरिक्तोपायान्तरेण क्षपयितुमशक्यानि निकाचितानीत्यर्थः, विशेषणचतुष्टयेनाप्येतेन दुर्विशोध्यानि भवन्तीत्युक्तं भवति, एवं च 'एवामेवे'त्याद्युपनयवाक्यं सुघटनं स्याद्, यतश्च तानि दुर्विशोध्यानि स्युस्ततः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२२९] + गाथा

दीप अनुक्रम [२७२--२७३]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२५१॥

'संपगाढ'मित्यादि 'नो महापज्जवसाणा भवंति'त्ति, अनेन महानिर्जराया अभावस्य निर्वाणाभावलक्षणं फलमुक्तमिति नाप्रस्तुतत्वमित्याशङ्कनीयमिति । तदेवं यो महावेदनः स महानिर्जर इति विशिष्टजीवापेक्षमवगन्तव्यं न पुनर्नारकादिक्लिष्टकर्मजीवापेक्षं, यदपि यो महानिर्जरः स महावेदन इत्युक्तं तदपि प्रायिकं, यतो भवत्ययोगी महानिर्जरो महावेदनस्तु भजनयेति । 'अहिगरणि'त्ति अधिकरणी यत्र लोहकारा अयोघनेन लोहानि कुट्टयन्ति 'आउडेमाणे'त्ति आकुट्टयन् 'सद्देणं'ति अयोघनघातप्रभवेण ध्वनिना पुरुषहुङ्कृतिरूपेण वा 'घोसेणं'ति तस्यैवानुनादेन 'परंपराघाएणं'ति परम्परा–निरन्तरता तत्प्रधानो घातः–ताडनं परम्पराघातस्तेन उपर्युपरिघातेनेत्यर्थः, 'अहाबायरे'त्ति स्थूलप्रकारान्, 'एवामेवे'त्याद्युपनये 'गाढीकयाइं'इत्यादिविशेषणचतुष्केण दुष्परिशाटनीयानि भवन्तीत्युक्तं भवति, 'सुधोयतराए'इत्यादि, अनेन सुविशोध्यं भवतीत्युक्तं स्यात्, 'अहाबायराइं'ति स्थूलतरस्कन्धान्यसाराणीत्यर्थः 'सिढिलीकयाइं'ति श्लथीकृतानि मन्दविपाकीकृतानि 'निट्ठियाइं कयाइं'ति निस्सत्ताकानि विहितानि 'विपरिणामियाइं'ति विपरिणामं नीतानि स्थितिघातरसघातादिभिः, तानि च क्षिप्रमेव विध्वस्तानि भवन्ति, एभिश्च विशेषणैः सुविशोध्यानि भवन्तीत्युक्तं स्यात्ततश्च 'जावइय'मित्यादि ॥ अनन्तरं वेदना उक्ता, सा च करणतो भवतीति करणसूत्रं, तत्र—

कतिविहे णं भंते ! करणे पन्नत्ते ?, गोयमा ! चउव्विहे करणे पन्नत्ते, तंजहा–मणकरणे वइकरणे कायकरणे कम्मकरणे । णेरइयाणं भंते ! कतिविहे करणे पन्नत्ते ?, गोयमा ! चउव्विहे पन्नत्ते, तंजहा–मणकरणे वइकरणे कायकरणे कम्मकरणे ४ [चउ०], पंचिंदियाणं सव्वेसिं चउव्विहे करणे पन्नत्ते। एगिंदियाणं दुविहे–कायकरणे य

६ शतके उद्देशः १ वस्त्रदृष्टान्तेन महावेदनाल्पनिर्जरे सू २२९

॥२५१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२३०--२३१]

दीप अनुक्रम [२७४--२७५]

कम्मकरणे य, विगलेंदियाणं ३–वइकरणे कायकरणे कम्मकरणे। नेरइयाणं भंते ! किं करणओ असायं वेयणं वेयंति अकरणओ असायं वेयणं वेदेंति ?, गोयमा ! नेरइयाणं करणओ असायं वेयणं वेयंति नो अकरणओ असायं वेयणं वेयंति, से केणट्ठेणं० ?, गोयमा ! नेरइयाणं चउविहे करणे पन्नत्ते, तंजहा— मणकरणे वइकरणे कायकरणे कम्मकरणे, इचेएणं चउविहेणं असुभेणं करणेणं नेरइया करणओ असायं वेयणं वेयंति नो अकरणओ, से तेणट्ठेणं०। असुरकुमाराणं किं करणओ अकरणओ ?, गोयमा ! करणओ नो अकरणओ, से केणट्ठेणं० ?, गोयमा ! असुरकुमाराणं चउविहे करणे पण्णत्ते, तंजहा— मणकरणे वयकरणे कायकरणे कम्मकरणे, इचेएणं सुभेणं करणेणं असुरकुमाराणं करणओ सायं वेयणं वेयंति नो अकरणओ, एवं जाव थणियकुमाराणं। पुढविकाइयाणं एवामेव पुच्छा, नवरं इचेएणं सुभासुभेणं करणेणं पुढविकाइया करणओ वेमायाए वेयणं वेयंति नो अकरणओ, ओरालियसरीरा सवे सुभासुभेणं वेमायाए। देवा सुभेणं सायं ॥ (सूत्रं २३०) ॥ जीवा णं भंते ! किं महावेयणा महानिज्जरा १ महावेदणा अप्पनिज्जरा २ अप्पवेदणा महानिज्जरा ३ अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा ४ ?, गोयमा ! अत्थेगतिया जीवा महावेदणा महानिज्जरा १ अत्थेगतिया जीवा महावेयणा अप्पनिज्जरा २ अत्थेगतिया जीवा अप्पवेदणा महानिज्जरा ३ अत्थेगतिया जीवा अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा ४। से केणट्ठेणं० ?, गोयमा ! पडिमापडिवन्नए अणगारे महावेदणे महानिज्जरे छट्ठसत्तमासु पुढवीसु नेरइया महावेदणा अप्पनिज्जरा सेलेसिं पडिवन्नए अण-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२३०--२३२] + गाथा

दीप अनुक्रम [२७४--२७७]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-यावृत्तिः १ ॥२५२॥

गारे अप्पवेदणे महानिज्जरे अणुत्तरोववाइया देवा अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा, सेवं भंते २ त्ति ॥–महवेदणे य वत्थे कद्दमखंजणमए य अहिगरणी । तणहत्थे य कवल्ले करण महावेदणा जीवा ॥ १ ॥ (सूत्रं २३१) ॥ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ॥ छट्ठसयस्स पढमो उद्देसो समत्तो ॥ ६–१ ॥

'कम्मकरणं'ति कर्मविषयं करणं–जीववीर्यं बन्धनसङ्क्रमादिनिमित्तभूतं कर्मकरणं 'वेमायाए'त्ति विविधमात्रया कदाचित्सातां कदाचिदसातामित्यर्थः ॥ 'महावेयणे'इत्यादि सङ्ग्रहगाथा गतार्था ॥ षष्ठे शते प्रथमोद्देशकः ॥ ६–१ ॥

अनन्तरोद्देशके य एते सवेदना जीवा उक्तास्ते आहारका अपि भवन्तीत्याहारोद्देशकः—

रायगिहं नगरं जाव एवं वयासी–आहारुद्देसो जो पन्नवणाए सो सव्वो निरवसेसो नेयव्वो । सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति (सूत्रं २३२) ॥ छट्ठे सए बीओ उद्देसो समत्तो ॥ ६–२ ॥

स च प्रज्ञापनायामिव दृश्यः, एवं चासौ–'नेरइया णं भंते ! किं सचित्ताहारा १ अचित्ताहारा २ मीसाहारा ३ ?, गोयमा ! नो सचित्ताहारा १ अचित्ताहारा २ नो मीसाहारा ३' इत्यादि ॥ षष्ठशते द्वितीयोद्देशकः ॥ ६–२ ॥

अनन्तरोद्देशके पुद्गला आहारतश्चिन्तिताः, इह तु बन्धादित इत्येवंसम्बन्धस्य तृतीयोद्देशकस्यादावर्थसङ्ग्रहगाथाद्वयम्–

बहुकम्मवत्थपोग्गलपयोगसावीससा य सादीए । कम्मट्ठितीत्थिसंजय सम्मद्दिट्ठी य सन्नी य ॥ १ ॥
भविए दंसण पज्जत्ते भासअपरित्त नाणजोगे य । उवओगाहारगसुहुमचरिमबंधी य अप्पबहुं ॥ २ ॥

६ शतके उद्देशः १ करणं वेद-नानिर्जर सू २३०-२३१ उद्देशः २ आहारः सू २३२

॥२५२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र षष्ठं-शतके प्रथम-उद्देशक: समाप्त:

अत्र षष्ठं-शतके द्वितीय-उद्देशक: **आरम्भ: एवं समाप्त:**

अथ षष्ठं-शतके तृतीय-उद्देशक: आरम्भ:

प्रत सूत्रांक [२३२...] + गाथा:

दीप अनुक्रम [२७८--२७९]

'बहुकम्मे'त्यादि, 'बहुकम्म'त्ति महाकर्मणः सर्वतः पुद्गला बध्यन्त इत्यादि वाच्यं, 'वत्थे पोग्गला पयोगसा वीससा य' त्ति यथा वस्त्रे पुद्गलाः प्रयोगतो विश्रसातश्च हीयन्ते किमेवं जीवानामपीति वाच्यं, 'साइए'त्ति वस्त्रस्य सादिः पुद्गलचयः, एवं किं जीवानामप्यसौ ? इत्यादि प्रश्नः, उत्तरं च वाच्यं–'कम्मट्ठिइ'त्ति कर्म्मस्थितिर्वाच्या, 'थिइ'त्ति किं स्त्री पुरुषादिर्वा कर्म बध्नाति ? इति वाच्यं, 'संजय'त्ति किं संयतादिः ? 'सम्मदिट्ठि'त्ति किंसम्यग्दृष्ट्यादिः ?, एवं सञ्ज्ञी भव्यो दर्शनी पर्याप्तको भाषकः परीत्तो ज्ञानी योगी उपयोगी आहारकः सूक्ष्मः चरमः 'बंधे य'त्ति एतानाश्रित्य बन्धो वाच्यः, 'अप्पबहुं'ति एषामेव स्त्रीप्रभृतीनां कर्मबन्धकानां परस्परेणाल्पबहु[त्व]ता वाच्येति। तत्र बहुकर्म्मद्वारे—

से नूणं भंते ! महाकम्मस्स महाकिरियस्स महासवस्स महावेदणस्स सवओ पोग्गला बज्झंति सवओ पोग्गला चिज्जंति सवओ पोग्गला उवचिज्जंति सया समियं च णं पोग्गला बज्झंति सया समियंपोग्गला चिज्जंति सया समियं पोग्गला उवचिज्जंति सया समियं च णं तस्स आया दुरूवत्ताए दुवन्नत्ताए दुगंधत्ताए दुरसत्ताए दुफासत्ताए अणिट्ठत्ताए अकंत० अप्पिय० असुभ० अमणुन्न० अमणामत्ताए अणिच्छियत्ताए अभिज्झियत्ताए अहत्ताए नो उड्ढत्ताए दुक्खत्ताए नो सुहत्ताए भुज्जो २ परिणमंति ?, हंता गोयमा ! महाकम्मस्स तं चेव। से केणट्ठेणं० ?, गोयमा ! से जहानामए–वत्थस्स अहयस्स वा धोयस्स वा तंतुगयस्स वा आणुपुव्वीए परिभुज्जमाणस्स सवओ पोग्गला बज्झंति सवओ पोग्गला चिज्जंति जाव परिणमंति से तेणट्ठेणं०। से नूणं भंते ! अप्पासवस्स अप्पकम्मस्स अप्पकिरियस्स अप्पवेदणस्स सवओ पोग्गला भिज्जंति सवओ पोग्गला

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२३३]

दीप अनुक्रम [२८०]

छिज्जंति सवओ पोग्गला विद्धंसंति सवओ पोग्गला परिविद्धंसंति सया समियं पोग्गला भिज्जंति सवओ पोग्गला छिज्जंति विद्धस्संति परिविद्धस्संति सया समियं च णं तस्स आया सुरूवत्ताए पसत्थं नेयवं जाव सुहुत्ताए नो दुक्खत्ताए भुज्जो २ परिणमंति ?, हंता गोयमा ! जाव परिणमंति । से केणट्ठेणं० ?, गोयमा ! से जहानामए–वत्थस्स जल्लियस्स वा पंकियस्स वा मइल्लियस्स वा रइल्लियस्स वा आणुपुव्वीए परिकम्मिज्जमाणस्स सुद्धेणं वारिणा धोवेमाणस्स पोग्गला भिज्जंति जाव परिणमंति से तेणट्ठेणं० ॥ (सूत्रं २३३)

'महाकम्मस्से'त्यादि, महाकर्मणः स्थित्याद्यपेक्षया 'महाक्रियस्य' अलघुकायिक्यादिक्रियस्य, 'महाश्रवस्य' बृहन्मिथ्यात्वादिकर्मबन्धहेतुकस्य 'महावेदनस्य' महापीडस्य 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु सर्वान् वा जीवप्रदेशानाश्रित्य बध्यन्ते–आसङ्कलनतः चीयन्ते–बन्धनतः उपचीयन्ते–निषेकरचनतः, अथवा बध्यन्ते–बन्धनतः चीयन्ते–निधत्ततः उपचीयन्ते–निकाचनतः 'सया समियं'ति 'सदा' सर्वदा, सदात्वं च व्यवहारतोऽसातत्येऽपि स्यादित्यत आह–'समितं' सन्ततं 'तस्स आय'त्ति यस्य जीवस्य पुद्गला बध्यन्ते तस्यात्मा बाह्यात्मा शरीरमित्यर्थः 'अणिट्ठत्ताए'त्ति इच्छाया अविषयतया 'अकंतत्ताए'त्ति असुन्दरतया 'अप्पियत्ताए'त्ति अप्रेमहेतुतया 'असुभत्ताए'त्ति अमङ्गल्यतयेत्यर्थः 'अमणुन्नत्ताए'त्ति न मनसा–भावतो ज्ञायते सुन्दरोऽयमित्यमनोज्ञस्तद्भावस्तत्ता तया, 'अमणामत्ताए'त्ति न मनसा अम्यते–गम्यते संस्मरणतोऽमनोऽम्यस्तद्भावस्तत्ता तया, प्राप्तुमवाञ्छितत्वेन, 'अणिच्छियत्ताए'त्ति अनीप्सिततया प्राप्तुमनभिवाञ्छितत्वेन 'अज्झियत्ताए'त्ति भिध्या–लोभः सा संजाता यत्र सो भिध्यितो न भिध्यितोऽभिध्यितस्तद्भावस्तत्ता तया 'अहत्ताए'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२३३]

दीप अनुक्रम [२८०]

त्ति जघन्यतया 'नो उट्ठत्ताए'त्ति न मुख्यतया 'अहयस्स व'त्ति अपरिभुक्तस्य 'धोयस्स व'त्ति परिभुज्यापि प्रक्षालितस्य 'तंतुगयस्स व'त्ति तन्त्रात्–तुरीवेमादेरपनीतमात्रस्य, 'बज्झंती'त्यादिना पदत्रयेणेह वस्त्रस्य पुद्गलानां च यथोत्तरं सम्बन्धप्रकर्ष उक्तः, 'भिज्जंति'त्ति प्राक्तनसम्बन्धविशेषत्यागात् 'विद्धंसंति'त्ति ततोऽधः पातात् 'परिविद्धंसंति'त्ति निःशेषतया पातात् 'जल्लियस्स'त्ति 'यल्लितस्य' यानलगनधर्मोपेतमलयुक्तस्य 'पंकियस्स'त्ति आर्द्रमलोपेतस्य 'मइल्लियस्स'त्ति कठिनमलयुक्तस्य 'रइल्लियस्स'त्ति रजोयुक्तस्य 'परिकम्मिज्जमाणस्स'त्ति क्रियमाणशोधनार्थोपक्रमस्य ॥

वत्थस्स णं भंते ! पोग्गलोवचए किं पयोगसा वीससा ?, गोयमा ! पओगसावि वीससावि । जहा णं भंते ! वत्थस्स णं पोग्गलोवचए पओगसावि वीससावि तहा णं जीवाणं कम्मोवचए किं पओगसा वीससा ?, गोयमा ! पओगसा नो वीससा, से केणट्ठेणं० ?, गोयमा ! जीवाणं तिविहे पओगे पण्णत्ते, तंजहा–मणप्पओगे वइ० का०, इचेतेणं तिविहेणं पओगेणं जीवाणं कम्मोवचए पओगसा, नो वीससा, एवं सवेसिं पंचेंदियाणं तिविहे पओगे भाणियवे, पुढविकाइयाणं एगविहेणं पओगेणं एवं जाव वणस्सइकाइयाणं, विगलिंदियाणं दुविहे पओगे पण्णत्ते, तंजहा–वइपओगे य कायप्पओगे य, इचेतेणं दुविहेणं पओगेणं कम्मोवचए पओगसा नो वीससा, से एएणट्ठेणं जाव नो वीससा एवं जस्स जो पओगो जाव वेमाणियाणं॥ (सूत्रं २३४)

वस्त्रेत्यादिद्वारे 'पओगसा वीससा य'त्ति छान्दसत्वात् 'प्रयोगेण' पुरुषव्यापारेण 'विस्रस[त]या' स्वभावेनेति । 'जीवाणं कम्मोवचए पओगसा णो वीसस'त्ति प्रयोगेणैव, अन्यथाऽप्रयोगस्यापि बन्धप्रसङ्गः ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२५४॥

वत्थस्स णं भंते ! पोग्गलोवचए किं सादीए सपज्जवसिए १ सादीए अपज्जवसिते २ अणादीए सपज्ज० ३ अणा०अप० ४ ?, गोयमा ! वत्थस्स णं पोग्गलोवचए सादीए सपज्जवसिए नो सादीए अप० नो अणा० स० नो अणा० अप० । जहा णं भंते ! वत्थस्स पोग्गलोवचए सादीए सपज्ज० नो सादीए अप० नो अणा० सप० नो अणा० अप० तहा णं जीवाणं कम्मोवचए पुच्छा, गोयमा ! अत्थेगतियाणं जीवाणं कम्मोवचए सादीए सपज्जवसिए अत्थे० अणादीए सपज्जवसिए अत्थे० अणादीए अपज्जवसिए नो चेव णं जीवाणं कम्मोवचए सादीए अप० । से केण० ?, गोयमा ! ईरियावहियाबंधयस्स कम्मोवचए सादीए सप० भवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणादीए सपज्जवसिए अभवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणादीए अपज्जवसिए, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति अत्थे० जीवाणं कम्मोवचए सादीए नो चेव णं जीवाणं कम्मोवचए सादीए अपज्जवसिए, वत्थे णं भंते ! किं सादीए सपज्जवसिए चउभंगो ?, गोयमा ! वत्थे सादीए सपज्जवसिए अवसेसा तिन्निवि पडिसेहेयव्वा । जहा णं भंते ! वत्थे सादीए सपज्जवसिए नो सादीए अपज्ज० नो अणादीए सप० नो अनादीए अपज्जवसिए तहा णं जीवाणं किं सादीया सपज्जवसिया ? चउभंगो पुच्छा, गोयमा ! अत्थेगतिया सादीया सपज्जवसिया चत्तारिवि भाणियव्वा । से केणट्ठेणं० ?, गोयमा ! नेरतिया तिरिक्खजोणिया मणुस्सा देवा गतिरागतिं पडुच्च सादीया सपज्जवसिया सिद्धि(द्धा)गतिं पडुच्च सादीया अपज्जवसिया, भवसिद्धिया लद्धिं पडुच्च अणादीया सपज्जवसिया अभवसिद्धिया संसारं पडुच्च अणादीया अपज्जवसिया, से तेणट्ठेणं०॥ (सूत्रं २३५)

६ शतके उद्देशः ३ वस्त्रवत्स-करणानां पुद्गलचयः सू २३४ वस्त्रवत् व-न्धजीवयोः साद्यादिता सू २३५

॥२५४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सादिद्वारे 'ईरियावहियबंधयस्से'त्यादि, ईर्यापथो–गमनमार्गस्तत्र भवमैर्यापथिकं, केवलयोगप्रत्ययं कर्मेत्यर्थः तद्बन्धकस्योपशान्तमोहस्य क्षीणमोहस्य सयोगिकेवलिनश्चेत्यर्थः, ऐर्यापथिककर्मणो हि अबद्धपूर्वस्य बन्धनात् सादित्वं, अयोग्यवस्थायां श्रेणिप्रतिपाते वाऽबन्धनात् सपर्यवसितत्वं, 'गतिरागइं पडुच्च'त्ति नारकादिगतौ गमनमाश्रित्य सादयः-आगमनमाश्रित्य सपर्यवसिता इत्यर्थः 'सिद्धा गइं पडुच्च साइया अपज्जवसिय'त्ति, इहाक्षेपपरिहारावेवम्—"साईअपज्जवसिया सिद्धा न य नाम तीयकालंमि। आसि कयाइवि सुण्णा सिद्धी सिद्धेहिं सिद्धंते ॥ १ ॥ सव्वं साइ सरीरं न य नामादि मय देहसब्भावो। कालाणाइत्तणओ जहा व राइंदियाईणं ॥ २ ॥ सव्वो साई सिद्धो न यादिमो विज्जई तहा तं च। सिद्धी सिद्धा य सया निद्दिट्ठा रोहपुच्छाए॥ ३ ॥"त्ति, 'तं च'त्ति तच्च सिद्धानादित्वमिष्यते, यतः 'सिद्धी सिद्धा ये' त्यादीति। 'भवसिद्धिया लद्धि'मित्यादि, भवसिद्धिकानां भव्यत्वलब्धिः सिद्धत्वेऽपैतीतिकृत्वाऽनादिः सपर्यवसिता चेति ॥

कति णं भंते ! कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ ?, गोयमा ! अट्ठ कम्मप्पगडीओ पण्णत्ता, तंजहा–णाणावरणिज्जं दरिसणावरणिज्जं जाव अंतराइयं। णाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स केवतियं कालं बंधठिती पण्णत्ता ?, गोयमा ! जह० अंतोमुहुत्तं उक्को० तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ तिन्नि य वाससहस्साइं अबाहा,

१ सिद्धाः साद्यपर्यवसिता न च नामातीतकाले सिद्धैः शून्या कदाचित्सिद्धिः सिद्धान्ते आसीदित्युक्तम् ॥ १ ॥ यथा सर्वं शरीरं सादि न च नामादिर्देहोद्भवो मतः कालस्यानादित्वाद्यथा वा रात्रिंदिवानां ॥ २ ॥ सर्वः सिद्धः सादिस्तथा नैवादिमो विद्यते सिद्धानां, व्यक्तेरादिमत्त्वेऽपि समुदायस्यानादित्वात् तत् रोहकपृच्छायां सिद्धिः सिद्धाश्च शाश्वता निर्दिष्टाः ॥ ३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२३६]

दीप अनुक्रम [२८३]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १

॥२५५॥

अबाहूणिया कम्मट्ठिती कम्मनिसेओ, एवं दरिसणावरणिज्जंपि, वेदणिज्जं जह० दो समया उक्को० जहा नाणावरणिज्जं, मोहणिज्जं जह० अंतोमुहुत्तं उक्को० सत्तरि सागरोवमकोडाकोडीओ, सत्त य वाससहस्साणि अबाधा, अबाहूणिया कम्मठिई कम्मनिसेगो, आउगं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाणि पुव्वकोडितिभागमब्भहियाणि, (पुव्वकोडिति भागो अबाहा, अबाहूणिया) कम्मट्ठितीकम्मनिसेओ, नामगोयाणं जह० अट्ठ मुहुत्ता उक्को० वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ दोण्णि य वाससहस्साणि अबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिती कम्मनिसेओ, अंतरातियं जहा नाणावरणिज्जं ॥ (सूत्रं २३६)

कर्मस्थितिद्वारे 'तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा, अबाहाऊणिया कम्मठिई कम्मनिसेगो'त्ति 'बाधृ लोडने' बाधत इति बाधा–कर्मण उदयः न बाधा अबाधा–कर्मणो बन्धस्योदयस्य चान्तरं अबाधया–उक्तलक्षणया ऊनिका अबाधोनिका कर्म्मस्थितिः कर्मावस्थानकाल उक्तलक्षणः कर्म्मनिषेको भवति, तत्र कर्मनिषेको नाम कर्मदलिकस्यानुभवनार्थं रचनाविशेषः, तत्र च प्रथमसमये बहुकं निषिञ्चति द्वितीयसमये विशेषहीनं तृतीयसमये विशेषहीनमेवं यावदुत्कृष्टस्थितिकं कर्मदलिकं तावद्विशेषहीनं निषिञ्चति, तथा चोक्तम्–"मोत्तूण सगमबाहं पढमाइ ठिईइ बहुतरं दव्वं । सेसे विसेसहीणं जा उक्कोसंति सव्वासिं ॥ १ ॥" इदमुक्तं भवति–बद्धमपि ज्ञानावरणं कर्म त्रीणि वर्षसहस्राणि यावदवेद्यमानमास्ते, ततस्तदूनोऽनुभवनकालस्तस्य, स च वर्षसहस्रत्रयन्यूनत्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीमान इति । अन्ये त्वाहुः–अबाधाकालो वर्षसहस्रत्रयमानो, बाधाकालश्च सागरोपमकोटीकोटीत्रिंशल्लक्षणः, तद्द्वितयमपि च कर्मस्थितिकालः, स चाबा-

६ शतके उद्देशः ३ कर्मप्रकृति-स्थितिः सू २३६

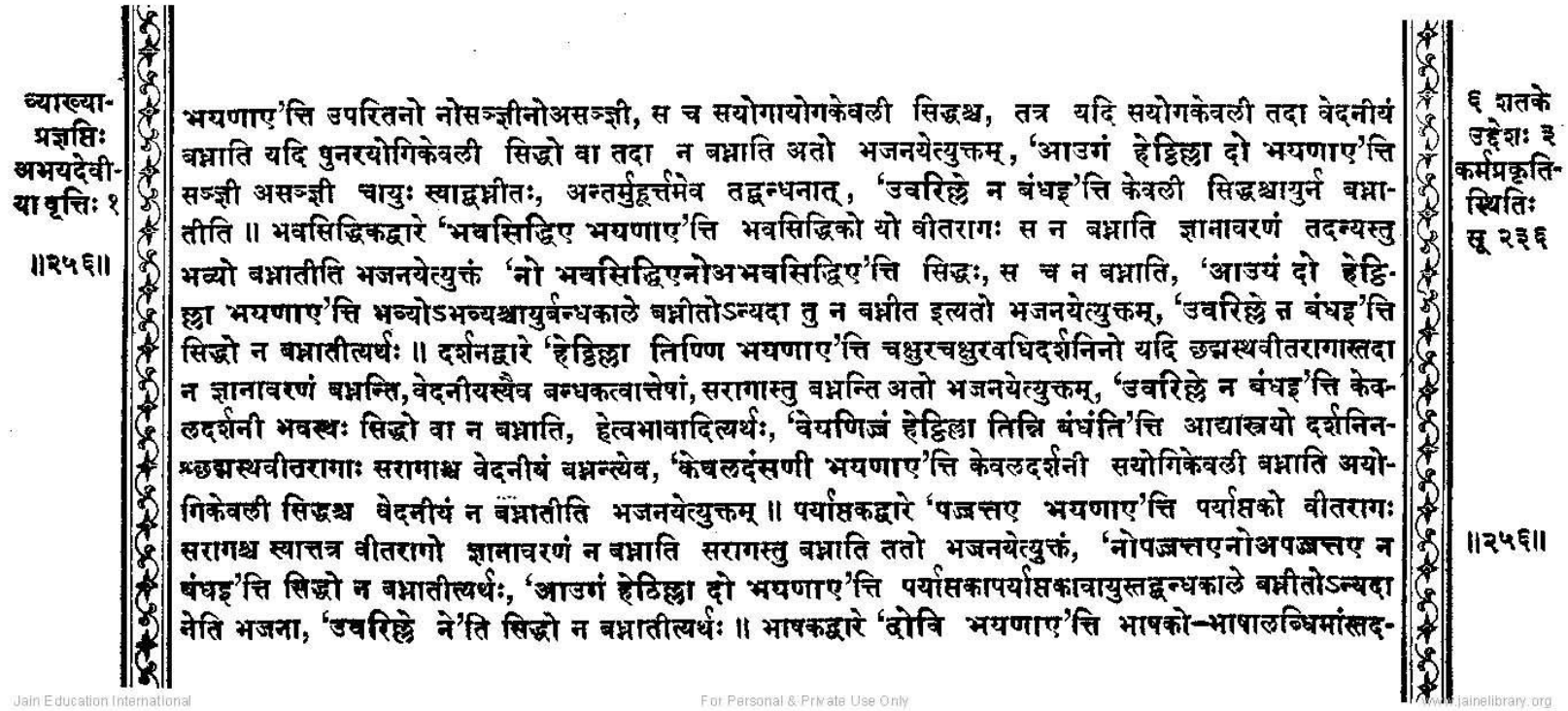
॥२५५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्मप्रकृत्ति:, कर्मस्थिति: इत्यादि:

भ्राति स्यान्न बध्नातीति ॥ 'आउगे णं भंते'इत्यादिप्रश्नः, तत्र रुयादित्रयमायुः स्याद्बध्नाति स्यान्न बध्नाति, बन्धकाले बध्नाति अबन्धकाले तु न बध्नाति, आयुषः सकृदेवैकत्र भवे बन्धात्, निवृत्तरुयादिवेदस्तु न बध्नाति, निवृत्तिबादरसम्परायादिगुणस्थानकेष्वायुर्बन्धस्य व्यवच्छिन्नत्वात् ॥ संयतद्वारे 'णाणावरणिज्ज'मित्यादि, 'संयतः' आद्यसंयमचतुष्टयवृत्तिर्ज्ञानावरणं बध्नाति, यथाख्यातसंयतस्तूपशान्तमोहादिर्न बध्नाति अत उक्तं 'संजए सिये'त्यादि, असंयतो मिथ्यादृष्ट्यादिः संयतासंयतस्तु देशविरतस्तौ च बध्नीतः, निषिद्धसंयमादिभावस्तु सिद्धः, स च न बध्नाति, हेत्वभावादित्यर्थः, 'आउगे हेट्ठिल्ला तिन्नि भयणाए'त्ति संयतोऽसंयतः संयतासंयतश्चायुर्बन्धकाले बध्नाति अन्यदा तु नेति भजनयेत्युक्तं, 'उवरिल्ले ण बंधइ'त्ति संयतादिषूपरितनः सिद्धः स चायुर्न बध्नाति ॥ सम्यग्दृष्टिद्वारे 'सम्मद्दिट्ठी सिय'त्ति सम्यग्दृष्टिः वीतरागस्तदितरश्च स्यात्तत्र वीतरागो ज्ञानावरणं न बध्नाति एकविधबन्धकत्वात् इतरश्च बध्नातीति स्यादित्युक्तं, मिथ्यादृष्टिमिश्रदृष्टी तु बध्नीत एवेति, 'आउए हेट्ठिल्ला दो भयणाए'त्ति सम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टी आयुः स्याद्बध्नीत इत्यर्थः, तथाहि–सम्यग्दृष्टिरपूर्वकरणादिरायुर्न बध्नाति इतरस्तु आयुर्बन्धकाले तद्बध्नाति अन्यदा तु न बध्नाति, एवं मिथ्यादृष्टिरपि, मिश्रदृष्टिस्त्वायुर्न बध्नात्येव तद्बन्धाध्यवसायस्थानाभावादिति ॥ सञ्ज्ञिद्वारे 'सन्नी सिय बंधइ'त्ति 'सञ्ज्ञी' मनःपर्याप्तियुक्तः, स च यदि वीतरागस्तदा ज्ञानावरणं न बध्नाति यदि पुनरितरस्तदा बध्नाति ततः स्यादित्युक्तम्, 'असण्णी बंधइ'त्ति मनःपर्याप्तिविकलो बध्नात्येव 'नोसन्नीनोअसन्नि'त्ति केवली सिद्धश्च न बध्नाति, हेत्वभावात्, 'वेयणिज्जं हेट्ठिल्ला दो बंधंति'त्ति सञ्ज्ञी असञ्ज्ञी च वेदनीयं बध्नीतः, अयोगिसिद्धवर्जानां तद्बन्धकत्वात्, 'उवरिल्ले

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥२५६॥

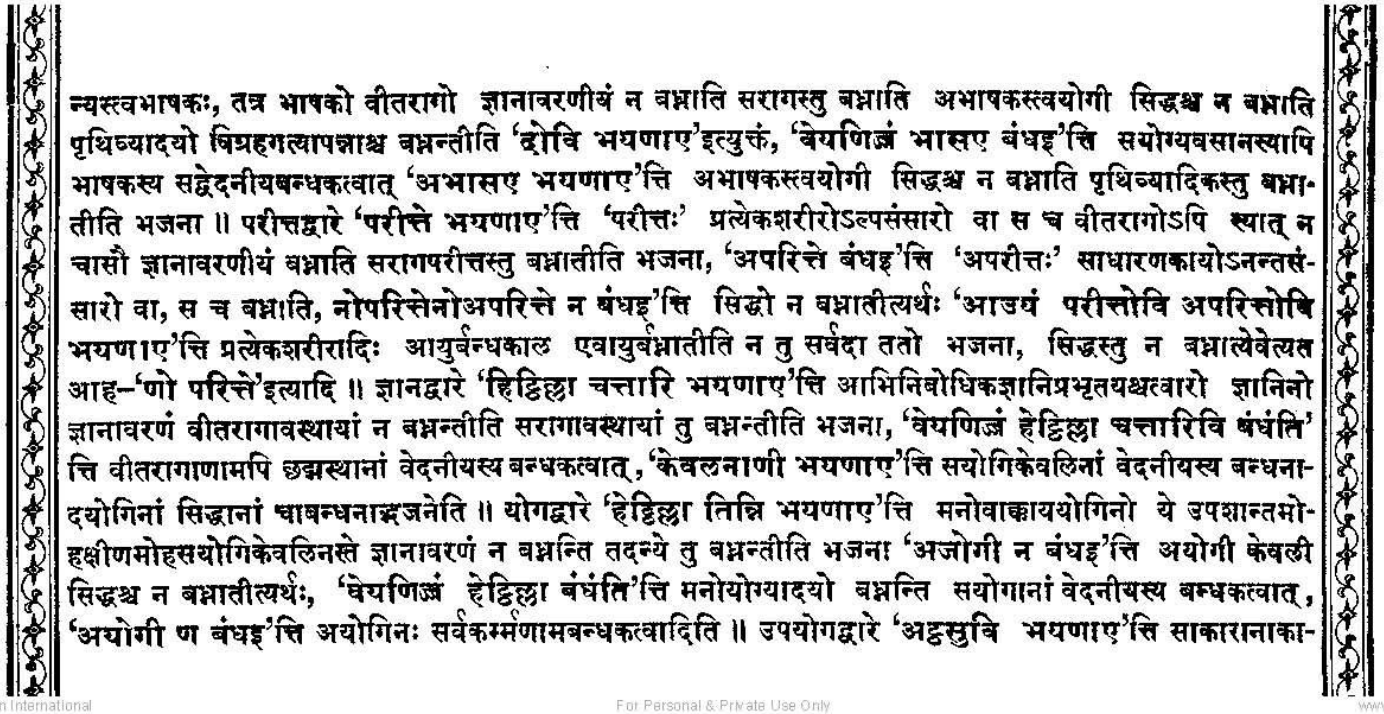
भयणाए'त्ति उपरितनो नोसञ्ज्ञीनोअसञ्ज्ञी, स च सयोगायोगकेवली सिद्धश्च, तत्र यदि सयोगकेवली तदा वेदनीयं बध्नाति यदि पुनरयोगिकेवली सिद्धो वा तदा न बध्नाति अतो भजनयेत्युक्तम्, 'आउगं हेट्ठिल्ला दो भयणाए'त्ति सञ्ज्ञी असञ्ज्ञी चायुः स्याद्बध्नीतः, अन्तर्मुहूर्त्तमेव तद्बन्धनात्, 'उवरिल्ले न बंधइ'त्ति केवली सिद्धश्चायुर्न बध्नातीति ॥ भवसिद्धिकद्वारे 'भवसिद्धिए भयणाए'त्ति भवसिद्धिको यो वीतरागः स न बध्नाति ज्ञानावरणं तदन्यस्तु भव्यो बध्नातीति भजनयेत्युक्तं 'नो भवसिद्धिएनोअभवसिद्धिए'त्ति सिद्धः, स च न बध्नाति, 'आउयं दो हेट्ठिल्ला भयणाए'त्ति भव्योऽभव्यश्चायुर्बन्धकाले बध्नीतोऽन्यदा तु न बध्नीत इत्यतो भजनयेत्युक्तम्, 'उवरिल्ले न बंधइ'त्ति सिद्धो न बध्नातीत्यर्थः ॥ दर्शनद्वारे 'हेट्ठिल्ला तिण्णि भयणाए'त्ति चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनिनो यदि छद्मस्थवीतरागास्तदा न ज्ञानावरणं बध्नन्ति, वेदनीयस्यैव बन्धकत्वात्तेषां, सरागास्तु बध्नन्ति अतो भजनयेत्युक्तम्, 'उवरिल्ले न बंधइ'त्ति केवलदर्शनी भवस्थः सिद्धो वा न बध्नाति, हेत्वभावादित्यर्थः, 'वेयणिज्जं हेट्ठिल्ला तिन्नि बंधंति'त्ति आद्यास्त्रयो दर्शनिनश्छद्मस्थवीतरागाः सरागाश्च वेदनीयं बध्नन्त्येव, 'केवलदंसणी भयणाए'त्ति केवलदर्शनी सयोगिकेवली बध्नाति अयोगिकेवली सिद्धश्च वेदनीयं न बध्नातीति भजनयेत्युक्तम् ॥ पर्याप्तकद्वारे 'पज्जत्तए भयणाए'त्ति पर्याप्तको वीतरागः सरागश्च स्यात्तत्र वीतरागो ज्ञानावरणं न बध्नाति सरागस्तु बध्नाति ततो भजनयेत्युक्तं, 'नोपज्जत्तएनोअपज्जत्तए न बंधइ'त्ति सिद्धो न बध्नातीत्यर्थः, 'आउगं हेट्ठिल्ला दो भयणाए'त्ति पर्याप्तकापर्याप्तकावायुस्तद्बन्धकाले बध्नीतोऽन्यदा नेति भजना, 'उवरिल्ले ने'ति सिद्धो न बध्नातीत्यर्थः ॥ भाषकद्वारे 'दोवि भयणाए'त्ति भाषको–भाषालब्धिमांस्तद-

६ शतके उद्देशः ३ कर्मप्रकृति-स्थितिः सू २३६

॥२५६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	कर्मप्रकृत्तिः, कर्मस्थिति: इत्यादि:



न्यस्त्वभाषकः, तत्र भाषको वीतरागो ज्ञानावरणीयं न बध्नाति सरागस्तु बध्नाति अभाषकस्त्वयोगी सिद्धश्च न बध्नाति पृथिव्यादयो विग्रहगत्यापन्नाश्च बध्नन्तीति 'दोवि भयणाए'इत्युक्तं, 'वेयणिज्जं भासए बंधइ'त्ति सयोग्यवसानस्यापि भाषकस्य सद्वेदनीयबन्धकत्वात् 'अभासए भयणाए'त्ति अभाषकस्त्वयोगी सिद्धश्च न बध्नाति पृथिव्यादिकस्तु बध्नातीति भजना ॥ परीत्तद्वारे 'परीत्ते भयणाए'त्ति 'परीत्तः' प्रत्येकशरीरोऽल्पसंसारो वा स च वीतरागोऽपि स्यात् न चासौ ज्ञानावरणीयं बध्नाति सरागपरीत्तस्तु बध्नातीति भजना, 'अपरित्ते बंधइ'त्ति 'अपरीत्तः' साधारणकायोऽनन्तसंसारो वा, स च बध्नाति, नोपरित्तेनोअपरित्ते न बंधइ'त्ति सिद्धो न बध्नातीत्यर्थः 'आउयं परीत्तोवि अपरित्तोवि भयणाए'त्ति प्रत्येकशरीरादिः आयुर्बन्धकाल एवायुर्बध्नातीति न तु सर्वदा ततो भजना, सिद्धस्तु न बध्नात्येवेत्यत आह–'णो परित्ते'इत्यादि ॥ ज्ञानद्वारे 'हेट्ठिल्ला चत्तारि भयणाए'त्ति आभिनिबोधिकज्ञानिप्रभृतयश्चत्वारो ज्ञानिनो ज्ञानावरणं वीतरागावस्थायां न बध्नन्तीति सरागावस्थायां तु बध्नन्तीति भजना, 'वेयणिज्जं हेट्ठिल्ला चत्तारिवि बंधंति'त्ति वीतरागाणामपि छद्मस्थानां वेदनीयस्य बन्धकत्वात्, 'केवलनाणी भयणाए'त्ति सयोगिकेवलिनां वेदनीयस्य बन्धनादयोगिनां सिद्धानां चाबन्धनाद्भजनेति ॥ योगद्वारे 'हेट्ठिल्ला तिन्नि भयणाए'त्ति मनोवाक्काययोगिनो ये उपशान्तमोहक्षीणमोहसयोगिकेवलिनस्ते ज्ञानावरणं न बध्नन्ति तदन्ये तु बध्नन्तीति भजना 'अजोगी न बंधइ'त्ति अयोगी केवली सिद्धश्च न बध्नातीत्यर्थः, 'वेयणिज्जं हेट्ठिल्ला बंधंति'त्ति मनोयोग्यादयो बध्नन्ति सयोगानां वेदनीयस्य बन्धकत्वात्, 'अयोगी ण बंधइ'त्ति अयोगिनः सर्वकर्म्मणामबन्धकत्वादिति ॥ उपयोगद्वारे 'अट्ठसुवि भयणाए'त्ति साकारानाका-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२३६] दीप अनुक्रम [२८३]	
	कर्मप्रकृत्तिः, कर्मस्थितिः इत्यादिः

प्रत सूत्रांक [२३६]

दीप अनुक्रम [२८३]

धाकालवर्जितः कर्मनिषेककालो भवति, एवमन्यकर्मस्वप्यबाधाकालो व्याख्येयो, नवरमायुषि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि निषेकः, पूर्वकोटीत्रिभागश्चाबाधाकाल इति । 'वेयणिज्जं जहन्नेणं दो समय'त्ति केवलयोगप्रत्ययबन्धापेक्षया वेदनीयं द्विसमयस्थितिकं भवति, एकत्र बध्यते द्वितीये वेद्यते, यच्चोच्यते 'वेयणियस्स जहन्ना बारस नामगोयाण अट्ठ(उ)मुहुत्त'त्ति तत्सकषायस्थितिबन्धमाश्रित्येति वेदितव्यमिति ॥

नाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं इत्थी बंधइ पुरिसो बंधइ नपुंसओ बंधइ ? णोइत्थी नोपुरिसो नोनपुंसओ बंधइ ?, गोयमा ! इत्थीवि बंधइ पुरिसोवि बंधइ नपुंसओवि बंधइ नोइत्थी नोपुरिसो नोनपुंसओ सिय बंधइ सिय नो बंधइ एवं आउगवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ ॥ आउगे णं भंते ! कम्मं किं इत्थी बंधइ पुरिसो बंधइ नपुंसओ बंधइ० ? पुच्छा, गोयमा ! इत्थी सिय बंधइ सिय नो बंधइ, एवं तिन्निवि भाणियव्वा, नोइत्थी नोपुरिसो नोनपुंसओ न बंधइ ॥ णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं संजए बंधइ असंजए० एवं संजयासंजए बंधइ नोसंजयनोअसंजएनोसंजयासंजए बंधति ?, गोयमा ! संजए सिय बंधति सिय नो बंधति असंजए बंधइ संजयासंजएवि बंधइ नोसंजएनोअसंजएनोसंजयासंजए न बंधति, एवं आउगवज्जाओ सत्तवि, आउगे हेट्ठिल्ला तिन्नि भयणाए उवरिल्ले ण बंधइ ॥ णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं सम्मदिट्ठी बंधइ मिच्छदिट्ठी बंधइ सम्मामिच्छदिट्ठी बंधइ ?, गोयमा ! सम्मदिट्ठी सिय बंधइ सिय नो बंधइ मिच्छदिट्ठी बंधइ सम्मामिच्छदिट्ठी बंधइ, एवं आउगवज्जाओ सत्तवि, आऊए हेट्ठिल्ला दो भयणाए सम्मामिच्छदिट्ठी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानावरणियादि: कर्मन: बंधका:

न बंधइ ॥ णाणावरणिज्जं किं सण्णी बंधइ असन्नी बंधइ नोसण्णीनोअसण्णी बंधइ ?, गोयमा ! सन्नी सिय बंधइ सिय नो बंधइ असन्नी बंधइ नोसन्नीनोअसन्नी न बंधइ, एवं वेदणिज्जाउगवज्जाओ छ कम्मप्पगडीओ, वेदणिज्जं हेट्ठिल्ला दो बंधंति, उवरिल्ले भयणाए, आउगं हेट्ठिल्ला दो भयणाए, उवरिल्लो न बंधइ ॥ णाणावरणिज्जं कम्मं किं भवसिद्धीए बंधइ अभवसिद्धीए बंधइ नोभवसिद्धीएनोअभवसिद्धीए बंधति ?, गोयमा ! भवसिद्धीए भयणाए अभवसिद्धीए बंधति नोभवसिद्धीएनोअभवसिद्धीए न बंधइ, एवं आउगवज्जाओ सत्तवि, आउगं हेट्ठिल्ला दो भयणाए उवरिल्लो न बंधइ ॥ णाणावरणिज्जं किं चक्खुदंसणी बंधति अचक्खुदंस० ओहिदंस० केवलदं० ?, गोयमा ! हेट्ठिल्ला तिन्नि भयणाए उवरिल्ले ण बंधइ, एवं वेदणिज्जवज्जाओ सत्तवि, वेदणिज्जं हेट्ठिल्ला तिन्नि बंधंति केवलदंसणी भयणाए ॥ णाणावरणिज्जं कम्मं किं पज्जत्तओ बंधइ अपज्जत्तओ बंधइ नोपज्जत्तएनोअपज्जत्तए बंधइ ?, गोयमा ! पज्जत्तए भयणाए, अपज्जत्तए बंधइ, नोपज्जत्तएनोअपज्जत्तए न बंधइ, एवं आउगवज्जाओ, आउगं हेट्ठिल्ला दो भयणाए उवरिल्ले ण बंधइ ॥ णाणावरणिज्जं किं भासए बंधइ अभासए० ?, गोयमा ! दोवि भयणाए, एवं वेदणियवज्जाओ सत्त, वेदणिज्जं भासए बंधइ अभासए भयणाए ॥ णाणावरणिज्जं किं परित्ते बंधइ अपरित्ते बंधइ नोपरित्तेनोअपरित्ते बंधइ ?, गोयमा ! परित्ते भयणाए अपरित्ते बंधइ नोपरित्तेनोअपरित्ते न बंधइ, एवं आउगवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ, आउए परित्तोवि अपरित्तोवि भयणाए, नोपरित्तोनोअपरित्तो न बंधइ ॥ णाणावरणिज्जं कम्मं किं आभिणिबोहिय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

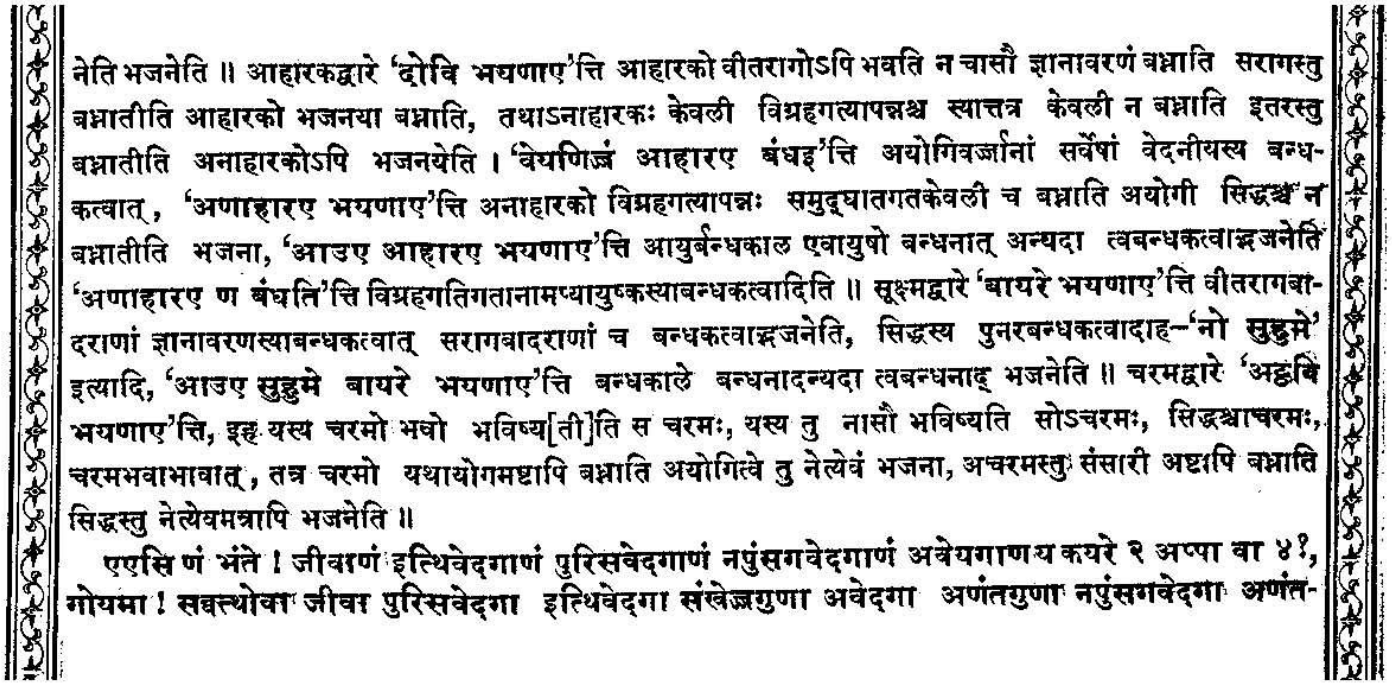
ज्ञानावरणियादिः कर्मनः बंधका:

नाणी बंधइ सुयनाणी ओहिनाणी मणपज्जवनाणी केवलनाणी बं० ?, गोयमा ! हेट्ठिल्ला चत्तारि भयणाए केवलनाणी न बंधइ, एवं वेदणिज्जवज्जाओ सत्तवि, वेदणिज्जं हेट्ठिल्ला चत्तारि बंधंति केवलनाणी भयणाए। णाणावरणिज्जं किं मतिअन्नाणी बंधइ सुय० विभंग० ?, गोयमा ! (सवेवि) आउगवज्जाओ सत्तवि बंधंति, आउगं भयणाए ॥ णाणावरणिज्जं किं मणजोगी बंधइ वय० काय० अजोगी बंधइ ?, गोयमा ! हेट्ठिल्ला तिन्नि भयणाए अजोगी न बंधइ, एवं वेदणिज्जवज्जाओ, वेदणिज्जं हेट्ठिल्ला बंधंति अजोगी न बंधइ ॥ णाणावरणिज्जं किं सागारोवउत्ते बंधइ अणागारोवउत्ते बंधइ ?, गोयमा ! अट्ठसुवि भयणाए ॥ णाणावरणिज्जं किं आहारए बंधइ अणाहारए बंधइ ?, गोयमा ! दोवि भयणाए, एवं वेदणिज्जाआउगवज्जाणं छण्हं, वेदणिज्जं आहारए बंधति अणाहारए भयणाए, आउए आहारए भयणाए, अणाहारए न बंधति ॥ णाणावरणिज्जं किं सुहुमे बंधइ बायरे बंधइ नोसुहुमेनोबादरे बंधइ ?, गोयमा ! सुहुमे बंधइ बायरे भयणाए नोसुहुमेनोबादरे न बंधइ, एवं आउगवज्जाओ सत्तवि, आउए सुहुमे बायरे भयणाए नोसुहुमेनोबायरे ण बंधइ ॥ णाणावरणिज्जं किं चरिमे अचरिमे बं० ?, गोयमा ! अट्ठवि भयणाए ॥ (सूत्रं २३७)

स्त्रीद्वारे 'णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं इत्थी बंधइ'इत्यादि प्रश्नः, तत्र न स्त्री न पुरुषो न नपुंसको वेदोदयरहितः, स चानिवृत्तिबादरसम्परायप्रभृतिगुणस्थानकवर्त्ती भवति, तत्र चानिवृत्तिबादरसम्परायसूक्ष्मसम्परायौ ज्ञानावरणीयस्य बन्धकौ सप्तविधषड्विधबन्धकत्वात्, उपशान्तमोहादिष्व(स्व)बन्धक एकविधबन्धकत्वात्, अत उक्तं स्याद्व-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानावरणियादि: कर्मन: बंधका:



नेति भजनेति ॥ आहारकद्वारे 'दोवि भयणाए'त्ति आहारको वीतरागोऽपि भवति न चासौ ज्ञानावरणं बध्नाति सरागस्तु बध्नातीति आहारको भजनया बध्नाति, तथाऽनाहारकः केवली विग्रहगत्यापन्नश्च स्यात्तत्र केवली न बध्नाति इतरस्तु बध्नातीति अनाहारकोऽपि भजनयेति । 'वेयणिज्जं आहारए बंधइ'त्ति अयोगिवर्ज्जानां सर्वेषां वेदनीयस्य बन्धकत्वात्, 'अणाहारए भयणाए'त्ति अनाहारको विग्रहगत्यापन्नः समुद्घातगतकेवली च बध्नाति अयोगी सिद्धश्च न बध्नातीति भजना, 'आउए आहारए भयणाए'त्ति आयुर्बन्धकाल एवायुषो बन्धनात् अन्यदा त्वबन्धकत्वाद्भजनेति 'अणाहारए ण बंधति'त्ति विग्रहगतिगतानामप्यायुष्कस्यावन्धकत्वादिति ॥ सूक्ष्मद्वारे 'बायरे भयणाए'त्ति वीतरागबादराणां ज्ञानावरणस्यावन्धकत्वात् सरागबादराणां च बन्धकत्वाद्भजनेति, सिद्धस्य पुनरबन्धकत्वादाह–'नो सुहुमे' इत्यादि, 'आउए सुहुमे बायरे भयणाए'त्ति बन्धकाले बन्धनादन्यदा त्वबन्धनाद् भजनेति ॥ चरमद्वारे 'अट्ठविभयणाए'त्ति, इह यस्य चरमो भवो भविष्य[ती]ति स चरमः, यस्य तु नासौ भविष्यति सोऽचरमः, सिद्धश्चाचरमः, चरमभवाभावात्, तत्र चरमो यथायोगमष्टापि बध्नाति अयोगित्वे तु नेत्येवं भजना, अचरमस्तु संसारी अष्टापि बध्नाति सिद्धस्तु नेत्येवमत्रापि भजनेति ॥

एएसि णं भंते ! जीवाणं इत्थिवेदगाणं पुरिसवेदगाणं नपुंसगवेदगाणं अवेयगाणय कयरे २ अप्पा वा ४?, गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा पुरिसवेदगा इत्थिवेदगा संखेज्जगुणा अवेदगा अणंतगुणा नपुंसगवेदगा अणंत-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२३८]

दीप अनुक्रम [२८५]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१ ॥२५९॥

गुणा ॥ एएसिं सवेसिं पदाणं अप्पबहुगाइं उच्चारेयवाइं जाव सवत्थोवा जीवा अचरिमा चरिमा अणंतगुणा। सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति (सूत्रं २३८) ॥ छट्ठसए तइओ उद्देसो समत्तो ॥ ६–३ ॥

अथाल्पबहुत्वद्वारं, तत्र 'इत्थीवेयगा संखेज्जगुणे'ति यतो देवनरतिर्यक्पुरुषेभ्यः तत्स्त्रियः क्रमेण द्वात्रिंशत्सप्तविंशतित्रिगुणा द्वात्रिंशत्सप्तविंशतित्रिरूपाधिकाश्च भवन्तीति, 'अवेयगा अणंतगुण'त्ति अनिवृत्तिबादरसम्परायादयः सिद्धाश्चावेदा अत(द्व)स्त्वात् ,(ते) स्त्रीवेदेभ्योऽनन्तगुणा भवन्ति,'नपुंसगवेयगा अणंतगुण'त्ति अनन्तकायिकानां सिद्धेभ्योऽनंतगुणानामिह गणनादिति। 'एएसिं सवेसि'मित्यादि, 'एतेषां' पूर्वोक्तानां संयतादीनां चरमान्तानां चतुर्दशानां द्वाराणां तद्गतभेदापेक्षयाऽल्पबहुत्वमुच्चारयितव्यं, तद्यथा–'एएसि णं भंते ! संजयाणं असंजयाणं संजयासंजयाणं नोसंजयनोअसंजयनोसंजयासंजयाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा ४ ?, गोयमा ! सवत्थोवा संजया संजयासंजया असंखेज्जगुणा नोसंजयनोअसंजयनोसंजयासंजया अणंतगुणा असंजया अणंतगुणा' इत्यादि प्रज्ञापनानुसारेण वाच्यं यावच्चरमाद्यल्पबहुत्वं, एतदेवाह–'जाव सवत्थोवा जीवा अचरिमे'त्यादि, अत्राचरमा भव्याः चरमाश्च ये भव्याश्चरमं भवं प्राप्स्यन्ति–सेत्स्यन्तीत्यर्थः ते चाचरमेभ्योऽनन्तगुणाः, यस्मादभव्येभ्यः सिद्धा अनन्तगुणा भणिताः, यावन्तश्च सिद्धास्तावन्त एव चरमाः, यस्माद्यावन्तः सिद्धा अतीताद्धायां तावन्त एव सेत्स्यन्त्यनागताद्धायामिति ॥ षष्ठशते तृतीयः ॥ ६–३ ॥

अनन्तरोद्देशके जीवो निरूपितोऽथ चतुर्थोद्देशकेऽपि तमेव भङ्ग्यन्तरेण निरूपयन्नाह—

६ शतके उद्देशः ३ वेदाद्यल्प० सू २३८

॥२५९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र षष्ठं-शतके तृतीय-उद्देशक: समाप्त:

अथ षष्ठं-शतके चतुर्थ-उद्देशक: आरम्भ:

प्रत सूत्रांक [२३९]

दीप अनुक्रम [२८६]

जीवे णं भंते ! कालाएसेणं किं सपदेसे अपदेसे ?, गोयमा ! नियमा सपदेसे । नेरतिए णं भंते ! कालादेसेणं किं सपदेसे अपदेसे ?, गोयमा ! सिय सपदेसे सिय अपदेसे, एवं जाव सिद्धे । जीवा णं भंते ! कालादेसेणं किं सपदेसा अपदेसा ?, गोयमा ! नियमा सपदेसा । नेरइया णं भंते ! कालादेसेणं किं सपदेसा अपदेसा ?, गोयमा ! सव्वेवि ताव होज्जा सपदेसा १ अहवा सपएसा य अपदेसे य २ अहवा सपदेसा य अपदेसा य ३, एवं जाव थणियकुमारा ॥ पुढविकाइया णं भंते ! किं सपदेसा अपदेसा ?, गोयमा ! सपदेसावि अपदेसावि, एवं जाव वणप्फइकाइया, सेसा जहा नेरइया तहा जाव सिद्धा ॥ आहारगाणं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, अणाहारगाणं जीवेगिंदियवज्जा छब्भंगा एवं भाणियव्वा–सपदेसा वा १ अपएसा वा २ अहवा सपदेसे य अप्पदेसे य ३ अहवा सपदेसे य अपदेसा य ४ अहवा सपदेसा य अपदेसे य ५ अहवा सपदेसा य अपदेसा य ६, सिद्धेहिं तियभंगो, भवसिद्धिया अभवसिद्धिया [भवसिद्धिया] जहा ओहिया, नो भवसिद्धियनोअभवसिद्धिया जीवसिद्धेहिं तियभंगो, सण्णीहिं जीवादिओ तियभंगो, असण्णीहिं एगिंदियवज्जो तियभंगो, नेरइयदेवमणुएहिं छब्भंगो, नोसन्निनोअसन्निजीवमणुयसिद्धेहिं तियभंगो सलेसा जहा ओहिया ॥ कण्हलेस्सानीललेस्सा काउलेस्सा जहा आहारओ नवरं जस्स अत्थि एयाओ, तेउलेस्साए जीवादिओ तियभंगो, नवरं पुढविकाइएसु आउवणप्फतीसु छब्भंगा, पम्हलेससुक्कलेस्साए जीवादिओहिओ तियभंगो, अलेसीहिं जीवसिद्धेहिं तियभंगो मणुस्से छभंगा, सम्मद्दिट्ठिहिं जीवाइतियभंगो, विगलिंदिएसु छब्भंगा, मिच्छदिट्ठिहिं एगिंदिय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वज्जो तियभंगो सम्मामिच्छदिट्ठिहिं छब्भंगा, संजएहिं जीवाइओ तियभंगो, असंजएहिं एगिंदियवज्जो तियभंगो, संजयासंजएहिं तियभंगो जीवादिओ, नोसंजयनोअसंजयनोसंजयासंजय जीवसिद्धेहिं तियभंगो, सकसाईहिं जीवादिओ तियभंगो, एगिंदिएसु अभंगकं, कोहकसाईहिं जीवएगिंदियवज्जो तियभंगो, देवेहिं छब्भंगा, माणकसाईमायाकसाई जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, नेरतियदेवेहिं छब्भंगा, लोभकसाईहिं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, नेरतिएसु छब्भंगा, अकसाईजीवमणुएहिं सिद्धेहिं तियभंगो, ओहियनाणे आभिणिबोहियनाणे सुयनाणे जीवादिओ तियभंगो विगलिंदिएहिं छब्भंगा, ओहिनाणे मण० केवलनाणे जीवादिओ तियभंगो, ओहिए अन्नाणे मतिअण्णाणे सुयअण्णाणे एगिंदियवज्जो तियभंगो, विभंगनाणे जीवादिओ तियभंगो, सजोगी जहा ओहिओ, मणजोगी वयजोगी कायजोगी जीवादिओ तियभंगो नवरं कायजोगी एगिंदिया तेसु अभंगकं, अजोगी जहा अलेसा, सागारोवउत्ते अणागारोवउत्ते जीवएगिंदियवज्जो तियभंगो सवेयगा य जहा सकसाई, इत्थिवेयगपुरिसवेयगनपुंसगवेयगेसु जीवादिओ तियभंगो, नवरं नपुंसगवेदे एगिंदिएसु अभंगयं, अवेयगा जहा अकसाई, ससरीरी जहा ओहिओ, ओरालियवेउव्वियसरीराणं जीवएगिंदियवज्जो तियभंगो, आहारगसरीरे जीवमणुएसु छब्भंगा, तेयगकम्मगाणं जहा ओहिया, असरीरेहिं जीवसिद्धेहिं तियभंगो, आहारपज्जत्तीए सरीरपज्जत्तीए इंदियपज्जत्तीए आणापाणुपज्जत्तीए जीवएगिंदियवज्जो तियभंगो, भासमणपज्जत्तीए जहा सण्णी, .आहारअपज्जत्तीए जहा अणाहारगा, सरीरअपज्जत्तीए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२३९] + गाथा

दीप अनुक्रम [२८६--२८७]

इंदियअपज्जत्तीए आणापाणअपज्जत्तीए जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, नेरइयदेवमणुएहिं छब्भंगा, भासामण-अपज्जत्तीए जीवादिओ तियभंगो, णेरइयदेवमणुएहिं छब्भंगा ॥ गाहा–सपदेसा आहारगभवियसन्निलेस्सा दिट्ठी संजयकसाए । णाणे जोगुवओगे वेदे य सरीरपज्जत्ती ॥ १ ॥ (सूत्रं २३९)

'जीवे ण' मित्यादि, 'कालाएसेणं'ति कालप्रकारेण कालमाश्रित्येत्यर्थः 'सपएसे'त्ति सविभागः 'नियमा सपएसे'त्ति अनादित्वेन जीवस्यानन्तसमयस्थितिकत्वात् सप्रदेशता, यो ह्येकसमयस्थितिः सोऽप्रदेशः द्व्यादिसमयस्थितिस्तु सप्रदेशः, इह चानया गाथया भावना कार्या–"जो जस्स पढमसमए वट्टति भावस्स सो उ अपदेसो । अण्णम्मि वट्टमाणो कालाएसेण सपएसो ॥ १ ॥" [यो यस्य प्रथमसमये वर्त्तते भावस्य स त्वप्रदेशः । अन्यस्मिन् वर्त्तमानः कालादेशेन सप्रदेशः ॥ १ ॥] नारकस्तु यः प्रथमसमयोत्पन्नः सोऽप्रदेशः द्व्यादिसमयोत्पन्नः पुनः सप्रदेशोऽत उक्तं 'सिय सप्पएसे सिय अप्पएसे' एष तावदेकत्वेन जीवादिः सिद्धावसानः षड्विंशतिदण्डकः कालतः सप्रदेशत्वादिना चिन्तितः, अथायमेव तथैव पृथक्त्वेन चिन्त्यते–'सव्वेवि ताव होज्ज सपएस'त्ति उपपातविरहकालेऽसङ्ख्यातानां पूर्वोत्पन्नानां भावात्सर्वेऽपि सप्रदेशा भवेयुः, तथा पूर्वोत्पन्नेषु मध्ये यदैकोऽप्यन्यो नारक उत्पद्यते तदा तस्य प्रथमसमयोत्पन्नत्वेनाप्रदेशत्वात् शेषाणां च द्व्यादिसमयोत्पन्नत्वेन सप्रदेशत्वाद् उच्यते–'सप्पएसा य अपएसे य'त्ति, एवं यदा बहव उत्पद्यमाना भवन्ति ते तदोच्यन्ते 'सपएसा य अप्पएसा य'त्ति, उत्पद्यन्ते चैकदैकादयो नारकाः, यदाह–"एगो व दो व तिन्नि व संखमसंखा व एगसमएणं । उववज्जन्तेवइया उव्वट्टंतावि एमेव ॥ १ ॥" [एको वा द्वौ वा त्रयो वा संख्याता असंख्याता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १ ॥२६१॥

वैकसमयेन । उत्पद्यन्त एतावन्त उद्वर्त्तमाना अप्येवमेव ॥ १ ॥] 'पुढविकाइया ण'मित्यादि, एकेन्द्रियाणां पूर्वोत्पन्नानामुत्पद्यमानानां च बहूनां सम्भवात् 'सपएसावि अप्पएसावी'त्युच्यते 'सेसा जहा नेरइए'त्यादि, यथा नारका अभिलापत्रयेणोक्तास्तथा शेषा द्वीन्द्रियादयः सिद्धावसाना वाच्याः, सर्वेषामेषां विरहसद्भावादेकाद्युत्पत्तेश्चेति । एवमाहारकानाहारकशब्दविशेषितावेतावेकत्वपृथक्त्वदण्डकावध्येयौ, अध्ययनक्रमश्चायम्–'आहारए णं भंते ! जीवे कालाएसेणं किं सपएसे ?, गोयमा० सिय सप्पएसे सिय अप्पएसे'इत्यादि स्वधिया वाच्याः, तत्र यदा विग्रहे केवलिसमुद्घाते वाऽनाहारको भूत्वा पुनराहारकत्वं प्रतिपद्यते तदा तत्प्रथमसमयेऽप्रदेशो द्वितीयादिषु तु सप्रदेश इत्यत उच्यते–सिय सप्पएसे सिय अप्पएसे'त्ति, एवमेकत्वे सर्वेष्वपि सादिभावेषु, अनादिभावेषु तु 'नियमा सप्पएसे'त्ति वाच्यं । पृथक्त्वदण्डके त्वेवमभिलापो द्रष्टव्यः–आहारया णं भंते ! जीवा कालाएसेणं किं सप्पएसा अप्पएसा ?, गोयमा ! सप्पएसावि अप्पएसावि'त्ति तत्र बहूनामाहारकत्वेनावस्थितानां भावात्सप्रदेशत्वं तथा बहूनां विग्रहगतेरनन्तरं प्रथमसमये आहारकत्वसम्भवादप्रदेशत्वमप्याहारकाणां लभ्यत इति सप्रदेशा अपि अप्रदेशा अपीत्युक्तं, एवं पृथिव्यादयोऽप्यध्येयाः, नारकादयः पुनर्विकल्पत्रयेण वाच्याः, तद्यथा–'आहारया [णं] भंते ! नेरइया णं किं सप्पएसा अप्पएसा ?, गोयमा ! सव्वेऽवि ताव होज्ज सप्पएसा १ अहवा सप्पएसा य अप्पएसे य २ अहवा सप्पएसा य अप्पएसा ये'ति ३, एतदेवाह–आहारगाणं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो' जीवपदमेकेन्द्रियपदपञ्चकं च वर्जयित्वा त्रिकरूपो भङ्गःत्रिकभङ्गो–भङ्गत्रयं वाच्यमित्यर्थः, सिद्धपदं त्विह न वाच्यं, तेषामनाहारकत्वात्, अनाहारकदण्डकद्वयमप्येवमनुसरणीयं, तत्रानाहारको विग्रहगत्यापन्नः समु-

६ शतके उद्देशः ४ जीवादीनां सप्रदेशत्वादिः सू२३९

॥२६१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२३९] + गाथा

दीप अनुक्रम [२८६--२८७]

दुघातगतकेवली अयोगी सिद्धो वा स्यात्, स चानाहारकत्वप्रथमसमयेऽप्रदेशः द्वितीयादिषु तु सप्रदेशस्तेन स्यात् सप्रदेश इत्याद्युच्यते। पृथक्त्वदण्डके विशेषमाह–'अणाहारगा ण'मित्यादि, जीवानेकेन्द्रियांश्च वर्जयन्तीति जीवैकेन्द्रियवर्जाः, तान् वर्जयित्वेत्यर्थः, जीवपदे एकेन्द्रियपदे च 'सपएसा य अप्पएसा ये'त्येवंरूप एक एव भङ्गको, बहूनां विग्रहगत्यापन्नानां सप्रदेशानामप्रदेशानां च लाभात्, नारकादीनां द्वीन्द्रियादीनां च स्तोकतराणामुत्पादः, तत्र चैकद्वयादीनामनाहारकाणां भावात् षड्भङ्गिकासम्भवः, तत्र द्वौ बहुवचनान्तौ अन्ये तु चत्वार एकवचनबहुवचनसंयोगात्, केवलैकवचनभङ्गकाविह न स्तः, पृथक्त्वस्याधिकृतत्वादिति। 'सिद्धेहिं तियभंगो'त्ति सप्रदेशपदस्य बहुवचनान्तस्यैव सम्भवात्, 'भवसिद्धी य अभवसिद्धी य जहा ओहिय'त्ति, अयमर्थः–औधिकदण्डकवदेषां प्रत्येकं दण्डकद्वयं, तत्र च भव्योऽभव्यो वा जीवो नियमात्सप्रदेशः, नारकादिस्तु सप्रदेशोऽप्रदेशो वा, बहवस्तु जीवाः सप्रदेशा एव, नारकाद्यास्तु त्रिभङ्गवन्तः, एकेन्द्रियाः पुनः सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येकभङ्ग एवेति, सिद्धपदं तु न वाच्यं, सिद्धानां भव्याभव्यविशेषणानुपपत्तेरिति। तथा 'नोभवसिद्धियनोअभवसिद्धिय'त्ति एतद्विशेषणं जीवादिदण्डकद्वयमध्येयं, तत्र चाभिलापः–'नोभवसिद्धीएनोअभवसिद्धिए णं भंते ! जीवे सप्पएसे अप्पएसे ?' इत्यादि, एवं पृथक्त्वदण्डकोऽपि, केवलमिह जीवपदं सिद्धपदं चेति द्वयमेव, नारकादिपदानां नोभव्यनोअभव्यविशेषणस्यानुपपत्तेरिति, इह च पृथक्त्वदण्डके पूर्वोक्तं भङ्गकत्रयमनुसर्त्तव्यमत एवाह–'जीवसिद्धेहिं तियभंगो'त्ति। सञ्ज्ञिषु यौ दण्डकौ तयोर्द्वितीयदण्डके जीवादिपदेषु भङ्गत्रयं भवतीत्यत आह–'सण्णीहि'इत्यादि, तत्र सञ्ज्ञिनो जीवाः कालतः सप्रदेशा भवन्ति चिरोत्पन्नानपेक्ष्य उत्पादविरहानन्तरं चैक-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्योत्पत्तौ तत्प्राथम्ये सप्रदेशाश्चाप्रदेशश्चेति स्यात्, बहूनामुत्पत्तिप्राथम्ये तु सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेति स्यात्, तदेवं भङ्गकत्रय-मिति, एवं सर्वपदेषु, केवलमेतयोर्दण्डकयोरेकेन्द्रियविकलेन्द्रियसिद्धपदानि न वाच्यानि, तेषु सञ्ज्ञिविशेषणस्यासम्भवादिति, 'असन्नीहिं'इत्यादि, अयमर्थः–असञ्ज्ञिषु–असञ्ज्ञिविषये द्वितीयदण्डके पृथिव्यादिपदानि वर्जयित्वा भङ्गकत्रयं प्राग् दर्शितमेव वाच्यं, पृथिव्यादिपदेषु हि सप्रदेशाश्चाप्रदेशश्चेत्येक एव, सदा बहूनामुत्पत्त्या तेषामप्रदेशबहुत्वस्यापि सम्भ-वात्, नैरयिकादीनां च व्यन्तरान्तानां सञ्ज्ञिनामप्यसञ्ज्ञित्वमसञ्ज्ञिभ्य उत्पादाद्भूतभावतयाऽवसेयं, तथा नैरयिकादि-ष्वसञ्ज्ञित्वस्य कादाचित्कत्वेनैकत्वबहुत्वसम्भवात्षड् भङ्गा भवन्ति, ते च दर्शिता एव, एतदेवाह–'नेरइयदेवमणुए' इत्यादि, ज्योतिष्कवैमानिकसिद्धास्तु न वाच्यास्तेषामसञ्ज्ञित्वस्यासम्भवात्, तथा नोसञ्ज्ञिनोअसञ्ज्ञिविशेषणदण्डकयोर्द्वि-तीयदण्डके जीवमनुजसिद्धपदेषूक्तरूपं भङ्गकत्रयं भवति, तेषु बहूनामवस्थितानां लाभादुत्पद्यमानानां चैकादीनां सम्भ-वादिति, एतयोश्च दण्डकयोर्जीवमनुजसिद्धपदान्येव भवन्ति, नारकादिपदानां नोसञ्ज्ञीनोअसञ्ज्ञीतिविशेषणस्याघटना-दिति, सलेश्यदण्डकद्वये औधिकदण्डकवज्जीवनारकादयो वाच्याः, सलेश्यतायां जीवत्ववदनादित्वेन विशेषानुत्पादकत्वात् केवलं सिद्धपदं नाधीयते, सिद्धानामलेश्यत्वादिति, कृष्णलेश्या नीललेश्याः कापोतलेश्याश्च जीवनारकादयः प्रत्येकं दण्डकद्वयेनाहारकजीवादिवदुपयुज्य वाच्याः, केवलं यस्य जीवनारकादेरेताः सन्ति स एव वाच्यः, एतदेवाह–'कण्ह-लेसे'त्यादि, एताश्च ज्योतिष्कवैमानिकानां न भवन्ति सिद्धानां तु सर्वा न भवन्तीति तेजोलेश्याद्वितीयदण्डके जीवा-दिपदेषु त एव त्रयो भङ्गाः पृथिव्यब्वनस्पतिषु पुनः षड् भङ्गाः, यत एतेषु तेजोलेश्या एकादयो देवाः पूर्वोत्पन्ना उत्प-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२३९] + गाथा

दीप अनुक्रम [२८६--२८७]

द्यमानाश्च लभ्यन्त इति सप्रदेशानामप्रदेशानां चैकत्वबहुत्वसम्भव इति, एतदेवाह–'तेउलेसाए'इत्यादि, इह नारक-तेजोवायुविकलेन्द्रियसिद्धपदानि न वाच्यानि, तेजोलेश्याया अभावादिति, पद्मलेश्याशुक्ललेश्ययोर्द्वितीयदण्डके जीवादिषु पदेषु त एव त्रयो भङ्गकास्तदेवाह–'पम्हलेसे'त्यादि, इह च पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्यवैमानिकपदान्येव वाच्यानि, अन्येष्वनयोरभावादिति, अलेश्यदण्डकयोर्जीवमनुष्यसिद्धपदान्येवोच्यन्ते, अन्येषामलेश्यत्वस्यासम्भवात्, तत्र च जीवसिद्धयोर्भङ्गकत्रयं तदेव, मनुष्येषु तु षड् भङ्गाः, अलेश्यतां प्रतिपन्नानां प्रतिपद्यमानानां चैकादीनां मनुष्याणां सम्भवेन सप्रदेशत्वेऽप्रदेशत्वे चैकत्वबहुत्वसम्भवादिति, इदमेवाह–'अलेसीहिं'इत्यादि । सम्यग्दृष्टिदण्डकयोः सम्यग्दर्शन-प्रतिपत्तिप्रथमसमयेऽप्रदेशत्वं द्वितीयादिषु तु सप्रदेशत्वं, तत्र द्वितीयदण्डके जीवादिपदेषु त्रयो भङ्गाः, तथैव विकलेन्द्रियेषु तु षड् यतस्तेषु सासादनसम्यग्दृष्टय एकादयः पूर्वोत्पन्ना उत्पद्यमानाश्च लभ्यन्तेऽतः सप्रदेशत्वाप्रदेशत्वयोरेकत्वबहुत्वसम्भव इति, एतदेवाह–'सम्मदिट्ठीही'त्यादि, इहैकेन्द्रियपदानि न वाच्यानि, तेषु सम्यग्दर्शनाभावादिति, 'मिच्छदिट्ठीहिं'इत्यादि, मिथ्यादृष्टिद्वितीयदण्डके जीवादिपदेषु तु त्रयो भङ्गाः–मिथ्यात्वं प्रतिपन्ना बहवः सम्यक्त्वभ्रंशे तत्प्रतिपद्यमानाश्चैकादयः सम्भवन्तीतिकृत्वा, एकेन्द्रियपदेषु पुनः सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येक एव, तेष्ववस्थितानामुत्पद्यमानानां च बहूनामेव भावादिति, इह च सिद्धा न वाच्याः, तेषां मिथ्यात्वाभावादिति, सम्यग्मिथ्यादृष्टिबहुत्वदण्डके 'सम्मामिच्छदिट्ठीहिं छब्भंगा' अयमर्थः–सम्यग्मिथ्यादृष्टित्वं प्रतिपन्नकाः प्रतिपद्यमानाश्चैकादयोऽपि लभ्यन्त इत्यतस्तेषु षड् भङ्गा भवन्तीति, इह चैकेन्द्रियविकलेन्द्रियसिद्धपदानि न वाच्यान्यसम्भवादिति । 'संजएहिं'इत्यादि, 'संय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२६३॥

तेषु' संयतशब्दविशेषितेषु जीवादिपदेषु त्रिकभङ्गः, संयमं प्रतिपन्नानां बहूनां प्रतिपद्यमानानां चैकादीनां भावात्, इह च जीवपदमनुष्यपदे एव वाच्ये, अन्यत्र संयतत्वाभावादिति, असंयतद्वितीयदण्डके–'असंजएहीं'त्यादि, इहासंयतत्वं प्रतिपन्नानां बहूनां संयतत्वादिप्रतिपातेन तत्प्रतिपद्यमानानां चैकादीनां भावाद्भङ्गकत्रयं, एकेन्द्रियाणां तु पूर्वोक्तयुक्त्या सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चैक एव भङ्गः इति, इह सिद्धपदं नाध्येयमसम्भवादिति । संयतासंयतबहुत्वदण्डके 'संजयासंजएहिं' इत्यादि, इह देशविरतिं प्रतिपन्नानां बहूनां संयमादसंयमाद्वा निवृत्य तां प्रतिपद्यमानानां चैकादीनां भावाद्भङ्गकत्रय-सम्भवः, इह जीवपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्यपदान्येवाध्येयानि, तदन्यत्र संयतासंयतत्वस्याभावादिति । 'नोसंजए'त्यादौ सैव भावना, नवरमिह जीवसिद्धपदे एव वाच्ये अत एवोक्तं 'जीवसिद्धेहिं तियभंगो'त्ति । 'सकसाईहिं जीवाइओ तियभंगो'त्ति, अयमर्थः–सकषायाणां सदाऽवस्थितत्वात्ते सप्रदेशा इत्येको भङ्गः, तथोपशमश्रेणीतः प्रच्यवमानत्वे सक-षायत्वं प्रतिपद्यमाना एकादयो लभ्यन्ते ततश्च सप्रदेशाश्चाप्रदेशश्च तथा सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्यपरभङ्गकद्वयमिति, नार-कादिषु तु प्रतीतमेव भङ्गकत्रयम्, 'एगिंदिएसु अभंगयं'ति अभङ्गकं–भङ्गकानामभावोऽभङ्गकं सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चे-त्येक एव विकल्प इत्यर्थः, बहूनामवस्थितानामुत्पद्यमानानां च तेषु लाभादिति, इह च सिद्धपदं नाध्येयमकषायित्वात्, एवं क्रोधादिदण्डकेष्वपि, 'कोहकसाईहिं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो'त्ति, अयमर्थः–क्रोधकषायिद्वितीयदण्डके जीव-पदे पृथिव्यादिपदेषु च सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येक एव भङ्गः शेषेषु त्रयः, ननु सकषायिजीवपदवत्कथमिह भङ्गत्रयं न लभ्यते ?, उच्यते, इह मानमायालोभेभ्यो निवृत्ताः क्रोधं प्रतिपद्यमाना बहव एव लभ्यन्ते, प्रत्येकं तद्राशीनामनन्तत्वात्, न त्वेका-

६ शतके उद्देशः ४ जीवादीनां सप्रदशत्वा-दिः सू२३९

॥२६३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२३९] + गाथा

दीप अनुक्रम [२८६--२८७]

दयो यथोपशमश्रेणीतः प्रच्यवमानाः सकषायित्वं प्रतिपत्तार इति। 'देवेहिं छब्भंग'त्ति देवपदेषु त्रयोदशस्वपि षड् भङ्गाः, तेषु क्रोधोदयवतामल्पत्वेनैकत्वे बहुत्वे च सप्रदेशाप्रदेशत्वयोः सम्भवादिति, मानकषायिमायाकषायिद्वितीयदण्डके 'नेरइयदेवेहिं छब्भंग'त्ति नारकाणां देवानां च मध्येऽल्पा एव मानमायोदयवन्तो भवन्तीति पूर्वोक्तन्यायात् षड् भङ्गा भवन्तीति, 'लोहकसाईहिं जीवेगेंदियवज्जो तियभंगो'त्ति एतस्य क्रोधसूत्रवद्भावना, 'नेरइएहि छब्भंग'त्ति नारकाणां लोभोदयवतामल्पत्वात्पूर्वोक्ताः षड् भंगा भवन्तीति, आह च—"कोहे माणे माया बोद्धवा सुरगणेहिं छब्भंगा। माणे माया लोभे नेरइएहिंपि छब्भंगा ॥ १ ॥" [१ क्रोधे माने मायायां बोद्धव्याः सुरगणेषु षड् भङ्गाः। माने मायायां लोभे नैरयिकेष्वपि षड् भङ्गाः ॥ १ ॥] देवा लोभप्रचुरा नारकाः क्रोधप्रचुरा इति, अकषायिद्वितीयदण्डके जीवमनुष्यसिद्धपदेषु भङ्गत्रयमन्येषामसम्भवात्, एतदेवाह–'अकसाई' इत्यादि। 'ओहियनाणे आभिनिबोहियणाणे सुयनाणे जीवाईओ तियभंगो'त्ति, औधिकज्ञानं–मत्यादिभिरविशेषितं तत्र मतिश्रुतज्ञानयोश्च बहुत्वदण्डके जीवादिपदेषु त्रयो भङ्गाः पूर्वोक्ता भवन्ति, तत्रौधिकज्ञानमतिश्रुतज्ञानिनां सदाऽवस्थितत्वेन सप्रदेशानां भावात्, सप्रदेशा इत्येकः, तथा मिथ्याज्ञानान्मत्यादिज्ञानमात्रं मत्यज्ञानान्मतिज्ञानं श्रुताज्ञानाच्च श्रुतज्ञानं प्रतिपद्यमानानामेकादीनां लाभात्सप्रदेशाश्चाप्रदेशश्च तथा सप्रदेशाश्च अप्रदेशाश्चेति द्वावित्येवं त्रयमिति। 'विगलेंदिएहिं छब्भंग'त्ति द्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु सासादनसम्यक्त्वसम्भवेनाभिनिबोधिकादिज्ञानिनामेकादीनां सम्भवात्त एव षड् भङ्गाः, इह च यथायोगं पृथिव्यादयः सिद्धाश्च न वाच्याः, असम्भवादिति, एवमवध्यादिष्वपि भङ्ग-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२३९] + गाथा

दीप अनुक्रम [२८६--२८७]

त्रयभावना, केवलमवधिदण्डकयोरेकेन्द्रियविकलेन्द्रियाः सिद्धाश्च न वाच्याः, मनःपर्यायदण्डकयोस्तु जीवा मनुष्याश्च वाच्याः, केवलदण्डकयोस्तु जीवमनुष्यसिद्धा वाच्याः, अत एव वाचनान्तरे दृश्यते 'विण्णेयं जस्स जं अत्थि'त्ति । 'ओहिए अन्नाणे'इत्यादि, सामान्येऽज्ञाने मत्यज्ञानादिभिरविशेषिते मत्यज्ञाने श्रुताज्ञाने च जीवादिषु त्रिभङ्गी भवति, एते हि सदाऽवस्थितत्वात्सप्रदेशा इत्येकः, यदा तु तदन्ये ज्ञानं विमुच्य मत्यज्ञानादितया परिणमन्ति तदैकादिसम्भवेन सप्रदेशाश्चाप्रदेशश्चेत्यादिभङ्गद्वयमित्येवं भङ्गत्रयमिति, पृथिव्यादिषु तु सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येक एवेत्यत आह–'एगिंदियवज्जो तियभंगो'त्ति, इह च त्रयेऽपि सिद्धा न वाच्याः, विभङ्गे तु जीवादिषु भङ्गत्रयं, तद्भावना च मत्यज्ञानादिवत्, केवलमिहैकेन्द्रियविकलेन्द्रियाः सिद्धाश्च न वाच्या इति, 'सजोई जहा ओहिओ'त्ति सयोगी जीवादिदण्डकद्वयेऽपि तथा वाच्यो यथौधिको जीवादिः, स चैवम्–सयोगी जीवो नियमात्सप्रदेशो नारकादिस्तु सप्रदेशोऽप्रदेशो वा, बहवस्तु जीवाः सप्रदेशा एव, नारकाद्यास्तु त्रिभङ्गवन्तः, एकेन्द्रियाः पुनस्तृतीयभङ्गा इति, इह सिद्धपदं नाध्येयं, 'मणजोई' इत्यादि, मनोयोगिनो योगत्रयवन्तः सञ्ज्ञिन इत्यर्थः, वाग्योगिन एकेन्द्रियवर्जाः, काययोगिनस्तु सर्वेऽप्येकेन्द्रियादयः, एतेषु च जीवादिषु त्रिविधो भङ्गः, तद्भावना च मनोयोग्यादीनामवस्थितत्वे प्रथमः, अमनोयोगित्वादित्यागाच्च मनोयोगित्वाद्युत्पादेनाप्रदेशत्वलाभेऽन्यद्भङ्गकद्वयमिति नवरं काययोगिनो ये एकेन्द्रियास्तेष्वभङ्गकं, सप्रदेशा अप्रदेशाश्चेत्येक एव भङ्गक इत्यर्थः, एतेषु च योगत्रयदण्डकेषु जीवादिपदानि यथासम्भवमध्येयानि सिद्धपदं च न वाच्यमिति 'अजोगी जहा अलेस्से'त्ति दण्डकद्वयेऽप्यलेश्यसमवक्तव्यत्वात्तेषां, ततो द्वितीयदण्डकेऽयोगिषु जीवसिद्धपदयोर्भङ्गकत्रयं मनुष्येषु च षड्भङ्गीति ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२३९] + गाथा

दीप अनुक्रम [२८६--२८७]

'सागारे'त्यादि साकारोपयुक्तेष्वनाकारोपयुक्तेषु च नारकादिषु त्रयो भङ्गाः, जीवपदे पृथिव्यादिपदेषु च सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येक एव, तत्र चान्यतरोपयोगादन्यतरगमने प्रथमेतरसमयेष्वप्रदेशत्वसप्रदेशत्वे भावनीये, सिद्धानां त्वेकसमयोपयोगित्वेऽपि साकारस्येतरस्य चोपयोगस्यासकृत्प्राप्त्या सप्रदेशत्वं सकृत्प्राप्त्या चाप्रदेशत्वमवसेयम्, एवं चासकृदवाप्तसाकारोपयोगान् बहूनाश्रित्य सप्रदेशा इत्येको भङ्गः, तानेव सकृदवाप्तसाकारोपयोगं चैकमाश्रित्य द्वितीयः, तथा तानेव सकृदवाप्तसाकारोपयोगांश्च बहूनधिकृत्य तृतीयः, अनाकारोपयोगे त्वसकृत्प्राप्तानाकारोपयोगानाश्रित्य प्रथमः, तानेव सकृत्प्राप्तानाकारोपयोगं चैकमाश्रित्य द्वितीयः,उभयेषामप्यनेकत्वे तृतीय इति। 'सवेयगा जहा सकसाइ'त्ति सवेदानामपि जीवादिपदेषु भङ्गकत्रयभावात्, एकेन्द्रियेषु चैकभङ्गसद्भावात्, इह च वेदप्रतिपन्नान् बहून् श्रेणिभ्रंशे च वेदं प्रतिपद्यमानकादीनपेक्ष्य भङ्गकत्रयं भावनीयम्, 'इत्थीवेयगे'त्यादि, इह वेदाद्वेदान्तरसङ्क्रान्तौ प्रथमे समयेऽप्रदेशत्वमितरेषु च सप्रदेशत्वमवगम्य भङ्गकत्रयं पूर्ववद्योज्यं नपुंसकवेददण्डकयोस्त्वेकेन्द्रियेष्वेको भङ्गः सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येवंरूपः प्रागुक्तयुक्तेरेवेति, स्त्रीदण्डकपुरुषदण्डकेषु देवपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्यपदान्येव, नपुंसकदण्डकयोस्तु देववर्जानि वाच्यानि, सिद्धपदं च सर्वेष्वपि न वाच्यमिति 'अवेयगा जहा अकसाइ'त्ति जीवमनुष्यसिद्धपदेषु भङ्गकत्रयमकषायिवद्वाच्यमित्यर्थः 'ससरीरी जहा ओहिओ'त्ति औधिकदण्डकवत्सशरीरिदण्डकयोर्जीवपदे सप्रदेशतैव वाच्याऽनादित्वात्सशरीरत्वस्य, नारकादिषु तु बहुत्वे भङ्गकत्रयमेकेन्द्रियेषु तृतीयभङ्ग इति, 'ओरालियवेउव्वियसरीराणं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो'त्ति औदारिकादिशरीरिसत्त्वेषु जीवपदे एकेन्द्रियपदेषु च बहुत्वे तृतीयभङ्ग एव, बहूनां प्रतिपन्नानां प्रतिपद्यमानानां चानुक्षणं लाभात्,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१

॥२६५॥

शेषेषु भङ्गकत्रयं, बहूनां तेषु प्रतिपन्नानां तथौदारिकवैक्रियत्यागेनौदारिकं वैक्रियं च प्रतिपद्यमानानामेकादीनां लाभात्, इहौदारिकदण्डकयोर्नारका देवाश्च न वाच्याः, वैक्रियदण्डकयोस्तु पृथिव्यप्तेजोवनस्पतिविकलेन्द्रिया न वाच्याः, यश्च वैक्रियदण्डके एकेन्द्रियपदे तृतीयभङ्गोऽभिधीयते स वायूनामसङ्ख्यातानां प्रतिसमयं वैक्रियकरणमाश्रित्य, तथा यद्यपि पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो मनुष्याश्च वैक्रियलब्धिमन्तोऽल्पे तथाऽपि भङ्गकत्रयवचनसामर्थ्याद् बहूनां वैक्रियावस्थानसम्भवः, तथैकादीनां तत्प्रतिपद्यमानता चावसेया, 'आहारगे'त्यादि, आहारकशरीरे जीवमनुष्ययोः षड् भङ्गकाः पूर्वोक्ता एव, आहारकशरीरिणामल्पत्वात्, शेषजीवानां तु तत्र संभवतीति, 'तेयगे'त्यादि, तैजसकार्मणशरीरे समाश्रित्य जीवादयस्तथा वाच्या यथौघिकास्त एव, तत्र च जीवाः सप्रदेशा एव वाच्याः, अनादित्वात्तैजसादिसंयोगस्य, नारकादयस्तु त्रिभङ्गाः, एकेन्द्रियास्तु तृतीयभङ्गाः, एतेषु च शरीरादिदण्डकेषु सिद्धपदं नाध्येयमिति, 'असरीरे'त्यादि अशरीरेषु जीवादिषु सप्रदेशतादित्वेन वक्तव्येषु जीवसिद्धपदयोः पूर्वोक्ता त्रिभङ्गी वाच्या, अन्यत्राशरीरत्वस्याभावादिति। 'आहारपज्जत्तीए' इत्यादि, इह च जीवपदे पृथिव्यादिपदेषु च बहूनामाहारादिपर्याप्तीः प्रतिपन्नानां तदपर्याप्तित्यागेनाहारपर्याप्त्यादिभिः पर्याप्तिभावं गच्छतां च बहूनामेव लाभात्सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येक एव भङ्गः, शेषेषु तु त्रयो भङ्गा इति, 'भासामणे'त्यादि, इह भाषामनसोः पर्याप्तिर्भाषामनःपर्याप्तिः, भाषामनःपर्याप्त्योस्तु बहुश्रुताभिमतेन केनापि कारणेनैकत्वं विवक्षितं, ततश्च तया पर्याप्तका यथा सञ्ज्ञिनस्तथा सप्रदेशादितया वाच्याः, सर्वपदेषु भङ्गकत्रयमित्यर्थः, पञ्चेन्द्रियपदान्येव चेह वाच्यानि, पर्याप्तीनां चेदं स्वरूपमाहुः–येन करणेन भुक्तमाहारं खलं रसं च कर्तुं समर्थो

६ शतके उद्देशः ४ नारकादीनां सप्रदेशत्वादिः सू २३९

॥२६५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२३९] + गाथा

दीप अनुक्रम [२८६--२८७]

भवति तस्य करणस्य निष्पत्तिराहारपर्याप्तिः, करणं शक्तिरिति पर्यायौ, तथा शरीरपर्याप्तिर्नाम येन करणेनौदारिकवैक्रियाहारकाणां शरीराणां योग्यानि द्रव्याणि गृहीत्वौदारिकादिभावेन परिणमयति तस्य करणस्य निर्वृत्तिः शरीरपर्याप्तिरिति, तथा येन करणेनैकादीनामिन्द्रियाणां प्रायोग्याणि द्रव्याणि गृहीत्वाऽऽत्मीयान् विषयान् ज्ञातुं समर्थो भवति तस्य करणस्य निर्वृत्तिरिन्द्रियपर्याप्तिः, तथा येन करणेनानप्राणप्रायोग्याणि द्रव्याण्यवलम्ब्यावलम्ब्यानप्राणतया निःसृष्टुं समर्थो भवति तस्य करणस्य निर्वृत्तिरानप्राणपर्याप्तिरिति, तथा येन करणेन सत्यादिभाषाप्रायोग्याणि द्रव्याण्यवलम्ब्यावलम्ब्य चतुर्विधया भाषया परिणमय्य भाषानिसर्जनसमर्थो भवति तस्य करणस्य निष्पत्तिर्भाषापर्याप्तिः, तथा येन करणेन चतुर्विधमनोयोग्यानि द्रव्याणि गृहीत्वा मननसमर्थो भवति तस्य करणस्य निष्पत्तिर्मनःपर्याप्तिरिति। 'आहारअप्पज्जत्तीए'इत्यादि, इह जीवपदे पृथिव्यादिपदेषु च सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येक एव भङ्गकोऽनवरतं विग्रहगतिमतामाहारपर्याप्तिमतां बहूनां लाभात्, शेषेषु च षड् भङ्गाः पूर्वोक्ता एवाहारपर्याप्तिमतामल्पत्वात्, 'सरीरअपज्जत्तीए'इत्यादि, इह जीवेष्वेकेन्द्रियेषु चैक एव भङ्गोऽन्यत्र तु त्रयं, शरीराद्यपर्याप्तकानां कालतः सप्रदेशानां सदैव लाभात् अप्रदेशानां च कदाचिदेकादीनां च लाभात्, नारकदेवमनुष्येषु च षडेवेति, 'भासे'त्यादि, भाषामनःपर्याप्त्याऽऽपर्याप्तकास्ते येषां जातितो भाषामनोयोग्यत्वे सति तदसिद्धिः, ते च पञ्चेन्द्रिया एव, यदि पुनर्भाषामनसोऽभावमात्रेण तदपर्याप्तका अभविष्यंस्तदैकेन्द्रिया अपि तेऽभविष्यंस्ततश्च जीवपदे तृतीय एव भङ्गः स्यात्, उच्यते च–'जीवाइओ तियभंगो'त्ति, तत्र जीवेषु पञ्चेन्द्रियतिर्यक्षु च बहूनां तदपर्याप्तिं प्रतिपन्नानां प्रतिपद्यमानानां चैकादीनां लाभात् पूर्वोक्तमेव भङ्गत्रयं, 'नेर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२६६॥

इयदेवमणुएसु छब्भंग'त्ति नैरयिकादिषु मनोऽपर्याप्तिकानामल्पतरत्वेन सप्रदेशानामेकादीनां लाभात्त एव षड् भङ्गाः, एषु च पर्याप्तयपर्याप्तिदण्डकेषु सिद्धपदं नाध्येयमसम्भवादिति ॥ पूर्वोक्तद्वाराणां सङ्ग्रहगाथा—'सपएसे'त्यादि, 'सपएस'त्ति कालतो जीवाः सप्रदेशाः इतरे चैकत्वबहुत्वाभ्यामुक्ताः, 'आहारग'त्ति आहारका अनाहारकाश्च तथैव, 'भविय'त्ति भव्या अभव्या उभयनिषेधाश्च तथैव, 'सन्नि'त्ति सञ्ज्ञिनोऽसञ्ज्ञिनो द्वयनिषेधवन्तश्च तथैव, 'लेस'त्ति सलेश्याः कृष्णादिलेश्याः [ग्रन्थाग्रम् ६०००]६ अलेश्याश्च तथैव, 'दिट्ठि'त्ति दृष्टिः सम्यग्दृष्ट्यादिका ३ तद्वन्तस्तथैव 'संजय'त्ति संयता असंयता मिश्राश्चत्रयनिषेधिनश्च तथैव, 'कसाय'त्ति कषायिणः क्रोधादिमन्तः ४ अकषायाश्च तथैव, 'नाणे'त्ति ज्ञानिनः आभिनिबोधिकादिज्ञानिनः ५ अज्ञानिनो मत्यज्ञानादिमन्तश्च तथैव, 'जोग'त्ति सयोगाः,मनआदियोगिनः अयोगिनश्च तथैव,'उवओगे'त्ति साकारानाकारोपयोगास्तथैव, 'वेद'त्ति सवेदाः स्त्रीवेदादिमन्तः ३ अवेदाश्च तथैव, 'ससरीर'त्ति सशरीरा औदारिकादिमन्तः ५ अशरीराश्च तथैव,'पज्जत्ति'त्ति आहारादिपर्याप्तिमन्तः ५ तदपर्याप्तकाश्च५तथैवोक्ता इति ॥ जीवाधिकारादेवाह

जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणी अपच्चक्खाणी पच्चक्खाणापच्चक्खाणी ?, गोयमा ! जीवा पच्चक्खाणीवि अपच्चक्खाणीवि पच्चक्खाणापच्चक्खाणीवि । सव्वजीवाणं एवं पुच्छा, गोयमा ! नेरइया अपच्चक्खाणी जाव चउरिंदिया, सेसा दो पडिसेहेयव्वा, पंचेंदियतिरिक्खजोणिया नो पच्चक्खाणी अपच्चक्खाणीवि पच्चक्खाणापच्चक्खाणीवि, मणुस्सा तिन्निवि, सेसा जहा नेरतिया ॥ जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणं जाणंति अपच्चक्खाणं जाणंति पच्चक्खाणापच्चक्खाणं जाणंति ?, गोयमा ! जे पंचेंदिया ते तिन्निवि जाणंति अवसेसा पच्च-

६ शतके उद्देशः ४ प्रत्याख्यान ज्ञानादिः सू २४०

॥२६६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२४०] + गाथा

दीप अनुक्रम [२८८--२९०]

क्खाणं न जाणंति ३ ॥ जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणं कुव्वंति अपच्चक्खाणं कुव्वंति पच्चक्खाणापच्चक्खाणं कुव्वंति ?, जहा ओहिया तहा कुव्वणा ॥ जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणनिव्वत्तियाउया अपच्चक्खाणणि० पच्चक्खाणापच्चक्खाणनि० ?, गोयमा ! जीवा य वेमाणिया य पच्चक्खाणणिव्वत्तियाउया तिन्निवि, अवसेसा अपच्चक्खाणनिव्वत्तियाउया ॥ पच्चक्खाणं १ जाणइ २ कुव्वति ३ तिन्नेव आउनिव्वत्ती ४ । सपदेसुद्देसंमि य एमेए दंडगा चउरो ॥ १ ॥ (सूत्रं २४०) ॥ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति छट्ठे सए चउत्थो उद्देसो ॥ ६–४ ॥

'जीवा ण'मित्यादि, 'पच्चक्खाणि'त्ति सर्वविरताः 'अपच्चक्खाणि'त्ति अविरताः 'पच्चक्खाणापच्चक्खाणि'त्ति देशविरता इति 'सेसा दो पडिसेहेयव्वा' प्रत्याख्यानदेशप्रत्याख्याने प्रतिषेधनीये, अविरतत्वान्नारकादीनामिति ॥ प्रत्याख्यानं च तज्ज्ञाने सति स्यादिति ज्ञानसूत्रं, तत्र च 'जे पंचिंदिया ते तिन्निवि'त्ति नारकादयो दण्डकोक्ताः पञ्चेन्द्रियाः, समनस्कत्वात् सम्यग्दृष्टित्वे सति ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानादित्रयं जानन्तीति, 'अवसेसे'त्यादि, एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाः प्रत्याख्यानादित्रयं न जानन्त्यमनस्कत्वादिति ॥ कृतं च प्रत्याख्यानं भवतीति तत्करणसूत्रं, प्रत्याख्यानमायुर्बन्धहेतुरपि भवतीत्यायुःसूत्रं, तत्र च 'जीवा ये'त्यादि, जीवपदे जीवाः प्रत्याख्यानादित्रयनिबद्धायुष्का वाच्याः, वैमानिकपदे च वैमानिका अप्येवं, प्रत्याख्यानादित्रयवतां तेषूत्पादात्, 'अवसेस'त्ति नारकादयोऽप्रत्याख्याननिर्वृत्तायुषो, यतस्तेषु तत्त्वेनाविरता एवोत्पद्यन्त इति ॥ उक्तार्थसङ्ग्रहगाथा–'पच्चक्खाण'मित्यादि, प्रत्याख्यानमित्येतदर्थ एको दण्डकः, एवमन्ये त्रयः ॥ षष्ठे शते चतुर्थः ॥ ६–४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र षष्ठं-शतके चतुर्थ-उद्देशकः समाप्तः

प्रत सूत्रांक [२४१]

दीप अनुक्रम [२९१]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १ ॥२६७॥

अनन्तरोद्देशके सप्रदेशा जीवा उक्ताः, अथ सप्रदेशमेव तमस्कायादिकं प्रतिपादयितुं पञ्चमोद्देशकमाह—

किमियं भंते ! तमुक्काएत्ति पवुच्चइ किं पुढवी तमुक्काएत्ति पवुच्चति आऊ तमुक्काएत्ति पवुच्चति ? गोयमा ! नो पुढवी तमुक्काएत्ति पवुच्चति आऊ तमुक्काएत्ति पवुच्चति । से केणट्ठेणं० ?, गोयमा ! पुढविकाए णं अत्थेगतिए सुभे देसं पकासेति अत्थेगइए देसं नो पकासेइ; से तेणट्ठेणं० । तमुक्काए णं भंते ! कहिं समुट्ठिए कहिं संनिट्ठिए ?, गोयमा ! जंबुद्दीवस्स २ बहिया तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीईवतित्ता अरुणवरस्स दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेतियन्ताओ अरुणोदयं समुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साणि ओगाहित्ता उवरिल्लाओ जलंताओ एकपदेसियाए सेढीए इत्थ णं तमुक्काए समुट्ठिए, सत्तरस एक्कवीसे जोयणसए उड्ढं उप्पइत्ता तओ पच्छा तिरियं पवित्थरमाणे २ सोहम्मीसाणसणंकुमारमाहिंदे चत्तारिवि कप्पे आवरित्ताणं उड्ढंपि य णं जाव बंभलोगे कप्पे रिट्ठविमाणपत्थडं संपत्ते एत्थ णं तमुक्काए णं संनिट्ठिए ॥ तमुक्काए णं भंते ! किंसंठिए पन्नत्ते ?, गोयमा ! अहे मल्लगमूलसंठिए उप्पिं कुक्कडगपंजरगसंठिए पण्णत्ते ॥ तमुक्काए णं भंते ! केवतियं विक्खंभेणं केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?, गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–संखेज्जवित्थडे य असंखेज्जवित्थडे य, तत्थ णं जे से संखेज्जवित्थडे से णं संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं प०, तत्थ णं जे से असंखिज्जवित्थडे से णं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ताइं । तमुक्काए णं भंते ! केमहालए प० ?, गोयमा ! अयं णं जंबुद्दीवे २ सव्वदी-

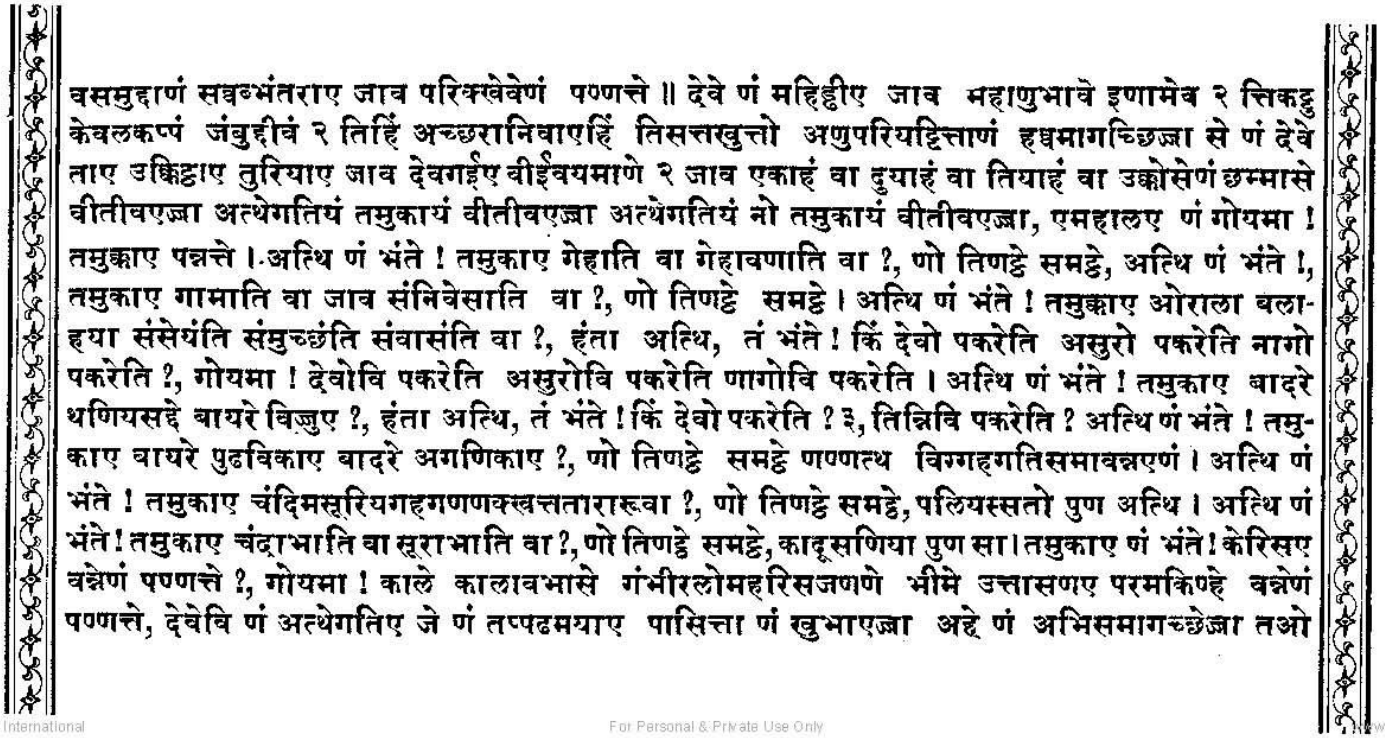
६ शतके उद्देशः ५ तमस्काय-स्व०सू२४१

॥२६७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ षष्ठं-शतके पंचम-उद्देशक: आरम्भः

तमस्काय-स्वरूपं



वसमुद्दाणं सव्वब्भंतराए जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ते ॥ देवे णं महिड्ढीए जाव महाणुभावे इणामेव २ त्तिकट्टु केवलकप्पं जंबुद्दीवं २ तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ताणं हव्वमागच्छिज्जा से णं देवे ताए उक्किट्ठाए तुरियाए जाव देवगईए वीईवयमाणे २ जाव एकाहं वा दुयाहं वा तियाहं वा उक्कोसेणं छम्मासे वीतीवएज्जा अत्थेगतियं तमुकायं वीतीवएज्जा अत्थेगतियं नो तमुकायं वीतीवएज्जा, एमहालए णं गोयमा ! तमुक्काए पन्नत्ते । अत्थि णं भंते ! तमुकाए गेहाति वा गेहावणाति वा ?, णो तिणट्ठे समट्ठे, अत्थि णं भंते !, तमुकाए गामाति वा जाव संनिवेसाति वा ?, णो तिणट्ठे समट्ठे । अत्थि णं भंते ! तमुक्काए ओराला बलाहया संसेयंति संमुच्छंति संवासंति वा ?, हंता अत्थि, तं भंते ! किं देवो पकरेति असुरो पकरेति नागो पकरेति ?, गोयमा ! देवोवि पकरेति असुरोवि पकरेति णागोवि पकरेति । अत्थि णं भंते ! तमुक्काए बादरे थणियसद्दे बायरे विज्जुए ?, हंता अत्थि, तं भंते ! किं देवो पकरेति ? ३, तिन्निवि पकरेति ? अत्थि णं भंते ! तमुकाए बायरे पुढविकाए बादरे अगणिकाए ?, णो तिणट्ठे समट्ठे णण्णत्थ विग्गहगतिसमावन्नएणं । अत्थि णं भंते ! तमुकाए चंदिमसूरियगहगणणक्खत्ततारारूवा ?, णो तिणट्ठे समट्ठे, पलियस्सतो पुण अत्थि । अत्थि णं भंते ! तमुकाए चंदाभाति वा सूराभाति वा ?, णो तिणट्ठे समट्ठे, कादूसणिया पुण सा । तमुकाए णं भंते ! केरिसए वन्नेणं पण्णत्ते ?, गोयमा ! काले कालावभासे गंभीरलोमहरिसजणणे भीमे उत्तासणए परमकिण्हे वन्नेणं पण्णत्ते, देवेवि णं अत्थेगतिए जे णं तप्पढमयाए पासित्ता णं खुभाएज्जा अहे णं अभिसमागच्छेज्जा तओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तमस्काय-स्वरूपं

प्रत सूत्रांक [२४१]

दीप अनुक्रम [२९१]

पच्छा सीहं २ तुरियं २ खिप्पामेव वीतीवएज्जा ॥ तमुकायस्स णं भंते ! कति नामधेज्जा पण्णत्ता ?, गोयमा ! तेरस नामधेज्जा पण्णत्ता, तंजहा–तमेति वा तमुकाएति वा अंधकारेइ वा महांधकारेइ वा लोगंधकारेइ वा लोगतमिस्सेइ वा देवंधकारेति वा देवतमिस्सेति वा देवारन्नेति वा देववूहेति वा देवफलिहेति वा देवपडिक्खोभेति वा अरुणोदएति वा समुद्दे ॥ तमुकाए णं भंते ! किं पुढवीपरिणामे आउपरिणामे जीवपरिणामे पोग्गलपरिणामे ?, गोयमा ! नो पुढविपरिणामे आउपरिणामेवि जीवपरिणामेवि पोग्गलपरिणामेवि । तमुकाए णं भंते ! सव्वे पाणा भूया जीवा सत्ता पुढविकाइयत्ताए जाव तसकाइयत्ताए उववन्नपुव्वा ?, हंता गोयमा ! असतिं अदुवा अणंतखुत्तो णो चेव णं बादरपुढविकाइयत्ताए बादरअगणिकाइयत्ताए वा (सूत्रं २४१)

'किमिय'मित्यादि, 'तमुक्काए'त्ति तमसां–तमिश्रपुद्गलानां कायो–राशिस्तमस्कायः स च नियत एवेह स्कन्धः कश्चिद्विवक्षितः, स च तादृशः पृथ्वीरजःस्कन्धो वा स्यादुदकरजःस्कन्धो वा न त्वन्यस्तदन्यस्यातादृशत्वादिति पृथिव्यबूविषयसन्देहादाह–'किं पुढवी'त्यादि, व्यक्तं, 'पुढविकाए ण'मित्यादि, पृथिवीकायोऽस्त्येककः कश्चिच्छुभो–भास्वरः, यः किंविधः ? इत्याह–देशं विवक्षितक्षेत्रस्य प्रकाशयति भास्वरत्वान्मण्यादिवत्, तथाऽस्त्येककः पृथवीकायो देशं–पृथवीकायान्तरं प्रकाश्यमपि न प्रकाशयत्यभास्वरत्वादन्धोपलवत्, नैवं पुनरप्कायस्तस्य सर्वस्याप्यप्रकाशत्वात्, ततश्च तमस्कायस्य सर्वथैवाप्रकाशकत्वादप्कायपरिणामतैव, 'एगपएसियाए'त्ति एक एव च न द्व्यादय उत्तराधर्यं प्रति प्रदेशो यस्यां सा तथा तया, समभित्तितयेत्यर्थः, न च वाच्यमेकप्रदेशप्रमाणयेति, असङ्ख्यातप्रदेशावगाहस्वभावत्वेन जीवानां तस्यां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तमस्काय-स्वरूपं

जीवावगाहाभावप्रसङ्गात्, तमस्कायस्य च स्तिबुकाकाराप्कायिकजीवात्मकत्वात् बाहल्यमानस्य च प्रतिपादयिष्यमाणत्वादिति, 'इत्थ णं'ति प्रज्ञापकालेख्यलिखितस्यारुणोदसमुद्रादेरधिकरणतोपदर्शनार्थमुक्तत्वात्, 'अहे'इत्यादि, अधः—अधस्तान्मल्लकमूलसंस्थितः–शरावबुध्नसंस्थानः, समजलान्तस्योपरि सप्तदश योजनशतान्येकविंशत्यधिकानि यावद्वलयसंस्थानत्वात्, स्थापना च–□। 'केवइयं विक्खंभेणं'ति विस्तारेण क्वचिद् 'आयामविक्खंभेणं'ति दृश्यते, तत्र चायाम–उच्चत्वमिति। 'संखेज्जवित्थडे'इत्यादि, सङ्ख्यातयोजनविस्तृतः, आदित आरभ्योर्द्धं सङ्ख्येययोजनानि यावत्ततोऽसङ्ख्यातयोजनविस्तृत उपरि तस्य विस्तारगामित्वेनोक्तत्वात्, 'असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं'ति सङ्ख्यातयोजनविस्तृतत्वेऽपि तमस्कायस्यासङ्ख्याततमद्वीपपरिक्षेपतो बृहत्तरत्वात्परिक्षेपस्यासङ्ख्यातयोजनसहस्रप्रमाणत्वम्, आन्तरबहिःपरिक्षेपविभागस्तु नोक्तः, उभयस्याप्यसङ्ख्याततया तुल्यत्वादिति। 'देवे ण'मित्यादि, अथ किंपर्यन्तमिदं देवस्य महर्द्ध्यादिकं विशेषणम्? इत्याह–'जाव इणामेवे'त्यादि, इह यावच्छब्द ऐदम्पर्यार्थः, यतो देवस्य महर्द्ध्यादिविशेषणानि गमनसामर्थ्यप्रकर्षप्रतिपादनाभिप्रायेणैव प्रतिपादितानि 'इणामेवत्तिकट्टु' इदं गमनमेवम्–अतिशीघ्रत्वावेदकचप्पुटिकारूपहस्तव्यापारोपदर्शनपरम्, अनुस्वाराश्रवणं च प्राकृतत्वात् द्विर्वचनं च शीघ्रत्वातिशयोपदर्शनपरमितिः–उपदर्शनार्थः 'कृत्वा' विधायेति 'केवलकप्पं'ति केवलज्ञानकल्पं परिपूर्णमित्यर्थः, वृद्धव्याख्या तु–केवलः–संपूर्णः कल्पत इति कल्पः—स्वकार्यकरणसमर्थो वस्तुरूप इतियावत्, केवलश्चासौ कल्पश्चेति केवलकल्पस्तं 'तिहिं अच्छरानिवाएहिं'ति तिसृभिश्चप्पुटिकाभिरित्यर्थः 'तिसत्तखुत्तो'त्ति त्रिगुणाः सप्त त्रिसप्त त्रिसप्तवारांस्त्रिसप्तकृत्व एकविंशतिवारानित्यर्थः 'हव्वं'ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२४१]

दीप अनुक्रम [२९१]

शीघ्रम् 'अत्थेगइय'मित्यादि, सङ्ख्यातयोजनमानं व्यतिव्रजेदितरं तु नेति। 'ओराला बलाहय'त्ति महान्तो मेघाः 'संसेयंति'त्ति संस्विद्यन्ते तज्जनकपुद्गलस्नेहसम्पत्त्या, संमूर्च्छन्ति तत्पुद्गलमीलनात्तदाकारतयोत्पत्तेः। 'तं भंते'त्ति तत् संस्वेदनं संमूर्छनं वर्षणं च। 'बायरे विज्जुयारे'त्ति, इह न बादरतेजस्कायिका मन्तव्याः, इहैव तेषां निषेत्स्यमाणत्वात्, किन्तु देवप्रभावजनिता भास्वराः पुद्गलास्त इति, 'णण्णत्थ विग्गहगईसमावन्नेणं'ति न इति योऽयं निषेधो बादरपृथिवीतेजसोः सोऽन्यत्र विग्रहगतिसमापन्नत्वाद्विग्रहगत्यैव बादरे ते भवतः, पृथिवी हि बादरा रत्नप्रभाद्यास्वष्टासु पृथिवीषु गिरिविमानेषु, तेजस्तु मनुजक्षेत्र एवेति, तृतीया चेह पञ्चम्यर्थे प्राकृतत्वादिति, 'पलियस्सओ पुण अत्थि'त्ति परिपार्श्वतः पुनः सन्ति तमस्कायस्य चन्द्रादय इत्यर्थः, 'कादूसणिया पुण सा'इति ननु तत्पार्श्वतश्चन्द्रादीनां सद्भावात्तत्प्रभाऽपि तत्रास्ति ?, सत्यं, केवलं कम्–आत्मानं दूषयति तमस्कायपरिणामेन परिणमनात् कदूषणा सैव कदूषणिका, दीर्घता च प्राकृतत्वात्, अतः सत्यप्यसावसतीति, 'काले'त्ति कृष्णः 'कालावभासे'त्ति कालोऽपि कश्चित् कुतोऽपि कालो नावभासत इत्यत आह–कालावभासः कालदीप्तिर्वा 'गंभीरलोमहरिसजणणे'त्ति गम्भीरश्चासौ भीषणत्वाद्रोमहर्षजननश्चेति गम्भीररोमहर्षजननः, रोमहर्षजनकत्वे हेतुमाह–'भीमे'त्ति भीष्मः 'उत्तासणए'त्ति उत्कम्पहेतुः, निगमयन्नाह–'परमे'त्यादि, यत एवमत एवाह–'देवेवि ण'मित्यादि, 'तप्पढमयाए'त्ति दर्शनप्रथमतायां 'खुभाएज्ज'त्ति 'स्कभ्नीयात्' क्षुभ्येत्, 'अहे ण'मित्यादि अथ 'एनं' तमस्कायम् 'अभिसमागच्छेत्' प्रविशेत्ततो भयात् 'सीहं'ति कायगतेरतिवेगेन 'तुरियं तुरिय'ति मनोगतेरतिवेगात्, किमुक्तं भवति ? क्षिप्रमेव, 'वीइवएज्ज'त्ति व्यतिव्रजेदिति॥ 'तमे-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तमस्काय-स्वरूपं

प्रत सूत्रांक [२४१]

दीप अनुक्रम [२९१]

ति वे'त्यादि, तमः अन्धकाररूपत्वात् इत्येतत् 'वा' विकल्पार्थः, तमस्काय इति वाऽन्धकारराशिरूपत्वात्, अन्धकारमिति वा तमोरूपत्वात्, महान्धकारमिति वा महातमोरूपत्वात्, लोकान्धकारमिति वा लोकमध्ये तथाविधस्यान्यस्यान्धकारस्याभावात्, एवं लोकतमिश्रमिति वा, देवान्धकारमिति वा देवानामपि तत्रोद्द्योताभावेनान्धकारात्मकत्वात्, एवं देवतमिश्रमिति वा, देवारण्यमिति वा, बलवद्देवभयान्नश्यतां देवानां तथाविधारण्यमिव शरणभूतत्वात्, देवव्यूह इति वा देवानां दुर्भेदत्वाद्व्यूह इव–चक्रादिव्यूह इव देवव्यूहः, देवपरिघ इति वा देवानां भयोत्पादकत्वेन गमनविघातहेतुत्वात्, देवप्रतिक्षोभ इति वा तत्क्षोभहेतुत्वात्, अरुणोदक इति वा समुद्रः, अरुणोदकसमुद्रजलविकारत्वादिति ॥ पूर्वं पृथिव्यादेस्तमस्कायशब्दवाच्यता पृष्टा अथ पृथिव्यपूकायपर्यायतां पृथिव्यपूकायौ च जीवपुद्गलरूपाविति तत्पर्यायतां च प्रश्नयन्नाह—'तमुक्काए ण'–मित्यादि, बादरवायुवनस्पतयस्त्रसाश्च तत्रोत्पद्यन्तेऽपूकाये तदुत्पत्तिस म्भवान्न त्वितरेऽस्वस्थानत्वात्, अत उक्तं 'नो चेव ण'मित्यादि। तम स्कायसादृश्यात्कृष्णराजिप्रकरणम्–

कति णं भंते ! कण्हराईओ पण्णत्ताओ ?, गोयमा अट्ठ कण्हराईओ पण्णत्ताओ। कहि णं भंते ! एयाओ अट्ठ कण्हराईओ पण्णत्ताओ ?, गोयमा ! उप्पिं सणंकुमारमाहिंदाणं कप्पाणं हिट्ठं बंभलोए कप्पे रिट्ठे विमाणे पत्थडे, एत्थ णं अक्खाडगसमचउरंससंठाणसंठियाओ अट्ठ कण्हरातीओ पण्णत्ताओ, तंजहा–पुरच्छिमेणं दो पच्चत्थिमेणं दो दाहिणेणं दो उत्तरेणं दो, पुरच्छिमब्भंतरा कण्हराई दाहिणं बाहिरं कण्हरातिं पुट्ठा दाहिणब्भंतरा कण्हराती पच्चत्थिमबाहिरं कण्हराइं पुट्ठा पच्चत्थिमब्भंतरा कण्हराई उत्तरबाहिरं कण्हरातिं पुट्ठा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	तमस्काय-स्वरूपं, कृष्णराजी-स्वरूपं

प्रत सूत्रांक [२४२]

दीप अनुक्रम [२९२--२९४]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-यावृत्तिः १

॥२७०॥

उत्तरमब्भंतरा कण्हराती पुरच्छिमबाहिरं कण्हरातिं पुट्ठा, दो पुरच्छिमपच्चत्थिमाओ बाहिराओ कण्हरातीओ छलंसाओ दो उत्तरदाहिणबाहिराओ कण्हरातीओ तंसाओ दो पुरच्छिमपच्चत्थिमाओ अब्भिंतराओ कण्हरातीओ चउरंसाओ दो उत्तरदाहिणाओ अब्भिंतराओ कण्हरातीओ चउरंसाओ 'पुव्वावरा छलंसा तंसा पुण दाहिणुत्तरा बज्झा। अब्भंतर चउरंसा सव्वावि य कण्हरातीओ ॥ १ ॥' कण्हराईओ णं भंते ! केवतियं आयामेणं केवतियं विक्खंभेणं केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ता ?, गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामेणं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ताओ। कण्हरातीओ णं भंते ! केमहालियाओ पण्णत्ता ?, गोयमा ! अयण्णं जंबुद्दीवे २ जाव अद्धमासं वीतीवएज्जा अत्थेगतियं कण्हरातीं वीतीवएज्जा अत्थेगइयं कण्हरातीं णो वीतीवएज्जा, एमहालियाओ णं गोयमा ! कण्हरातीओ पण्णत्ताओ। अत्थि णं भंते ! कण्हरातीसु गेहाति वा गेहावणाति वा ?, नो तिणट्ठे समट्ठे। अत्थि णं भंते ! कण्हरातीसु गामाति वा० ?, णो तिणट्ठे समट्ठे। अत्थि णं भंते ! कण्ह० ओराला बलाहया संमुच्छंति ३ ?, हंता अत्थि, तं भंते ! किं देवो प० ३ ?, गो० देवो पकरेति नो सुरो नो नागो य। अत्थि णं भंते ! कण्हराईसु बादरे थणियसद्दे जहा ओराला तहा। अत्थि णं भंते ! कण्हराईए बादरे आउकाए बादरे अगणिकाए बायरे वणप्फइकाए ?, णो तिणट्ठे समट्ठे, णण्णत्थ विग्गहगतिसमावन्नएणं। अत्थि णं० चंदिमसूरिय ४ प ?, णो तिण०। अत्थि णं कण्ह० चंदाभाति वा २ ?, णो तिणट्ठे समट्ठे। कण्हरातीओ णं भंते ?

६ शतके उद्देशः ५ कृष्णराजी-स्व०सू२४२

॥२७०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

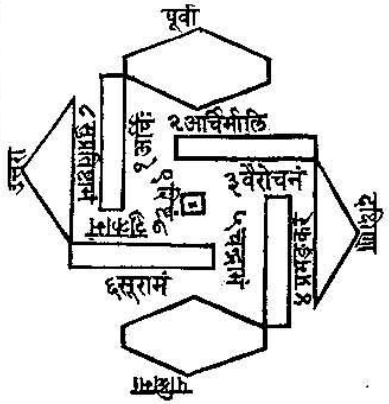
कृष्णराजी-स्वरूपं

प्रत सूत्रांक [२४२]

दीप अनुक्रम [२९२--२९४]

केरिसियाओ वन्नेणं पन्नत्ताओ ?, गोयमा ! कालाओ जाव खिप्पामेव वीतीवएज्जा । कण्हरातीओ णं भंते ! कति नामधेज्जा पण्णत्ता ? गोयमा ! अट्ठ नामधेज्जा पण्णत्ता, तंजहा–कण्हरातित्ति वा मेहरातीति वा मघावती(घे)ति वा माघवतीति वा वायफलिहेति वा वायपलिक्खोभेइ वा देवफलिहेइ वा देवपलिक्खोभेति वा । कण्हरातीओ णं भंते ! किं पुढविपरिणामाओ आउपरिणामाओ जीवपरिणामाओ पुग्गलपरिणामाओ ?, गोयमा ! पुढवीपरिणामाओ नो आउपरिणामाओ जीवपरिणामाओ वि पुग्गलपरिणामाओ वि । कण्हरातीसु णं भंते ! सव्वे पाणा भूया जीवा सत्ता उववन्नपुव्वा ?, हंता गोयमा ! असइंअदुवा अणंतखुत्तो नो चेव णं बादर आउकाइयत्ताए बादरअगणिकाइयत्ताए वा बादरवणप्फतिकाइयत्ताए वा (सूत्रं २४२)

'कण्हराईओ'त्ति कृष्णवर्णपुद्गलरेखाः 'हव्वं'ति समं किलेति वृत्तिकारः प्राह 'अक्खाडगे'त्यादि, इहआखाटकः–प्रेक्षास्थाने आसनविशेषलक्षणस्तत्संस्थिताः, स्थापना चेयम्–'नो असुरो' इत्यादि, असुरनागकुमाराणां तत्र गमनासम्भवादिति ॥ 'कण्हराईति व'त्ति पूर्ववत्, मेघराजीति वा कालमेघरेखातुल्यत्वात्, मघेति वा तमिश्रतया षष्ठनारकपृथवीतुल्यत्वात्, माघवतीति वा तमिश्रतयैव सप्तमनरकपृथिवीतुल्यत्वात्, 'वायफलिहेइ



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कृष्णराजी-स्वरूपं

प्रत सूत्रांक [२४२]

दीप अनुक्रम [२९२--२९४]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१

॥२७१॥

व'त्ति वातोऽत्र वात्या तद्वद्घातमिश्रत्वात् परिघश्च दुर्लङ्घ्यत्वात् सा वातपरिघः, 'वायपरिक्खोभेइ व'–त्ति वातोऽत्रापि वात्या तद्वद्घातमिश्रत्वात् परिक्षोभश्च परिक्षोभहेतुत्वात् सा वातपरिक्षोभ इति, 'देवफलिहेइ व'त्ति क्षोभयति देवानां परिघेव–अर्गलेव दुर्लङ्घ्यत्वाद्देवपरिघ इति 'देवपलिक्खोभेइ व'त्ति देवानां परिक्षोभहेतुत्वादिति ॥

एतेसि णं अट्ठण्हं कण्हराईणं अट्ठसु उवासंतरेसु अट्ठ लोगंतियविमाणा पण्णत्ता, तंजहा–१अची २अचिमाली ३वइरोयणे ४पभंकरे ५चंदाभे ६सूराभे ७सुक्काभे ८सुपतिट्ठाभे मज्झे ९रिट्ठाभे। कहि णं भंते! अचीविमाणे प०?, गोयमा! उत्तरपुरच्छिमेणं, कहि णं भंते ! अचिमालीविमाणे प० ?, गोयमा ! पुरच्छिमेणं, एवं परिवाडीए नेयव्वं जाव कहि णं भंते ! रिट्ठे विमाणे पण्णत्ते?, गोयमा ! बहुमज्झदेसभागे। एएसु णं अट्ठसु लोगंतियविमाणेसु अट्ठविहा लोगंतियदेवा परिवसंति, तंजहा–सारस्सयमाइच्चा वण्ही वरुणा य गद्दतोया य। तुसिया अव्वाबाहा अग्गिच्चा चेव रिट्ठा य ॥ १ ॥ कहि णं भंते ! सारस्सया देवा परिवसंति?, गोयमा ! अच्चिविमाणे परिवसंति, कहि णं भंते ! आदिच्चा देवा परिवसंति ?, गोयमा ! अचिमालिविमाणे, एवं नेयव्वं जहाणुपुव्वीए जाव कहि णं भंते ! रिट्ठा देवा परिवसंति ?, गोयमा ! रिट्ठविमाणे ॥ सारस्सयमाइच्चाणं भंते ! देवाणं कति देवा कति देवसया पण्णत्ता ?, गोयमा ! सत्त देवा सत्त देवसया परिवारो पण्णत्तो, वण्हीवरुणाणं देवाणं चउद्दस देवा चउद्दस देवसहस्सा परिवारो पण्णत्तो, गद्दतोयतुसियाणं देवाणं सत्त देवा सत्त देवसहस्सा पण्णत्ता, अवसेसाणं नव देवा नव देवसया पण्णत्ता–'पढमजुगलम्मि सत्त उ सयाणि बीयंमि चोद्दसस-

६ शतके उद्देशः ५ कृष्णरा।ज्यः सू २४२लो कान्तिकाः सू २४३

॥२७१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कृष्णराजी-स्वरूपं, लोकांतिक-विमान: एवं लोकांतिक-देवा:

प्रत सूत्रांक [२४३]

दीप अनुक्रम [२९५--२९९]

हस्सा । तइए सत्तसहस्सा नव चेव सयाणि सेसेसु ॥ १ ॥' लोगंतिगविमाणा णं भंते ! किंपतिट्ठिया पण्णत्ता ?, गोयमा ! वाउपइट्ठिया तदुभयपतिट्ठिया पण्णत्ता, एवं नेयव्वं ॥ 'विमाणाणं पतिट्ठाणं बाहल्लुच्चत्तमेव संठाणं ।' बंभलोयवत्तव्वया नेयव्वा [जहा जीवाभिगमे देवुद्देसए] जाव हंता गोयमा ! असतिं अदुवा अणंतखुत्तो । नो चेव णं देवित्ताए । लोगंतियविमाणेसु णं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?, गोयमा ! अट्ठ सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता । लोगंतियविमाणेहिंतो णं भंते ! केवतियं अबाहाए लोगंते पण्णत्ते ?, गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं अबाहाए लोगंते पण्णत्ते । सेवं भंते ! सेवं भंते ! ६–५ ॥ (सूत्रं २४३) ॥

'अट्ठसु उवासंतरेसु'त्ति द्वयोरन्तरमवकाशान्तरं तत्राभ्यन्तरोत्तरपूर्वयोरेकं पूर्वयोर्द्वितीयं अभ्यन्तरपूर्वदक्षिणयोस्तृतीयं दक्षिणयोश्चतुर्थं अभ्यन्तरदक्षिणपश्चिमयोः पञ्चमं पश्चिमयोः षष्ठं अभ्यन्तरपश्चिमोत्तरयोः सप्तमं उत्तरयोरष्टमं, 'लोगंतियविमाण'त्ति लोकस्य–ब्रह्मलोकस्यान्ते–समीपे भवानि लोकान्तिकानि तानि च तानि विमानानि चेति समासः, लोकान्तिका वा देवास्तेषां विमानानीति समासः, इह चावकाशान्तरवर्त्तिष्वष्टासु अर्चिःप्रभृतिषु विमानेषु वाच्येषु यत् कृष्णराजीनां मध्यभागवर्त्ति रिष्टं विमानं नवममुक्तं तद्विमानप्रस्तावादवसेयम् ॥ 'सारस्सयमाइच्चाण'–मित्यादि, इह सारस्वतादित्ययोः समुदितयोः सप्त देवाः सप्त च देवशतानि परिवार इत्यक्षरानुसारेणावसीयते, एवमुत्तरत्रापि, 'अवसेसाणं'ति अव्याबाधाग्नेयरिष्टानाम् 'एवं नेयव्वं'ति पूर्वोक्तप्रश्नोत्तराभिलापेन लोकान्तिकविमानवक्तव्यताजातं नेतव्यं, तदेव पूर्वोक्तेन सह दर्शयति–'विमाणाण'मित्यादि गाथार्द्धं, तत्र विमानप्रतिष्ठानं दर्शितमेव, बाहल्यं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोकांतिक-विमान: एवं लोकांतिक-देवा:

प्रत सूत्रांक [२४३]

दीप अनुक्रम [२९५--२९९]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥२७२॥

तु विमानानां पृथिवीबाहल्यं तच्च पञ्चविंशतियोजनशतानि, उच्चत्वं तु सप्त योजनशतानि, संस्थानं पुनरेषां नानाविध-मनावलिकाप्रविष्टत्वात्, आवलिकाप्रविष्टानि हि वृत्तत्र्यस्रचतुरस्रभेदात् त्रिसंस्थानान्येव भवन्तीति ॥ 'बंभलोए'इत्यादि, ब्रह्मलोके या विमानानां देवानां च जीवाभिगमोक्ता वक्तव्यता सा तेषु 'नेतव्या' अनुसर्त्तव्या, कियद्दूरम् ? इत्यत आह–'जावे'त्यादि, सा चेयं लेशतः–'लोयंतियविमाणा णं भंते ! कतिवण्णा पण्णत्ता ?, गोयमा ! तिवण्णा पं०–लोहिया हालिद्दा सुक्किला, एवं पभाए निच्चालोया गंधेणं इट्ठगंधा एवं इट्ठफासा एवं सव्वरयणमया तेसु देवा समचउरंसा अलम-हुगवन्ना पम्हलेसा । लोयंतियविमाणेसु णं भंते ! सव्वे पाणा ४ पुढविकाइयत्ताए ५ देवत्ताए उववन्नपुव्वा ?, 'हंते'त्यादि लिखितमेव, 'केवतियं'ति छान्दसत्वात् कियत्या 'अबाधया' अन्तरेण लोकान्तः प्रज्ञप्त इति ॥ षष्ठशते पञ्चमः ॥ ६–५ ॥

६ शतके उद्देशः ६ ७ पृष्ठ्यः सू२४४मा-रणान्तिक-गस्याहारा-दि सू २४५

व्याख्यातो विमानादिवक्तव्यताऽनुगतः पञ्चमोद्देशकः, अथ षष्ठस्तथाविध एव व्याख्यायते, तत्र—

कति णं भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?, गोयमा ! सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, तंजहा–रयणप्पभा जाव तमतमा, रयणप्पभादीणं आवासा भाणियव्वा(जाव)अहेसत्तमाए, एवं जे जत्तिया आवासा ते भाणियव्वा जाव कति णं भंते ! अणुत्तरविमाणा पण्णत्ता ?, गोयमा ! पंच अणुत्तरविमाणा पण्णत्ता, तंजहा–विजए जाव सव्वट्ठसिद्धे । (सूत्रं २४४) । जीवे णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे भविए इमीसे यरणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु अन्नयरंसि निरयावासंसि नेरइयत्ताए उववज्जित्तए

॥२७२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र षष्ठं-शतके पंचम-उद्देशक: समाप्त:

अथ षष्ठं-शतके षष्ठं-उद्देशक: आरम्भ:

लोकांतिक-विमान: एवं लोकांतिक-देवा:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र- [०५], अंगसूत्र- [०५] "भगवती"मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२४४--२४५]

दीप अनुक्रम [३००--३०१]

से णं भंते ! तत्थगते चेव आहारेज्ज वा परिणामेज्ज वा सरीरं वा बंधेज्जा ?, गोयमा ! अत्थेगतिए तत्थगए चेव आहारेज्ज वा परिणामेज्ज वा सरीरं वा बंधेज्ज वा, अत्थेगतिए तओ पडिनियत्तति, ततो पडिनियत्तित्ता इहमागच्छति २ दोचंपि मारणंतियसमुग्घाएणं समोहणइ २ इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु अन्नयरंसि निरयावासंसि नेरइयत्ताए उववज्जित्तए, ततो पच्छा आहारेज्ज वा परिणामेज्ज वा सरीरं वा बंधेज्जा एवं जाव अहेसत्तमा पुढवी । जीवे णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहए २ जे भविए चउसट्ठीए असुरकुमारावाससयसहस्सेसु अन्नयरंसि असुरकुमारावासंसि असुरकुमारत्ताए उववज्जित्तए जहा नेरइया तहा भाणियव्वा जाव थणियकुमारा । जीवे णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहए २ जे भविए असंखेज्जेसु पुढविकाइयावाससयसहस्सेसु अण्णयरंसि पुढविकाइयावासंसि पुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमेणं केवतियं गच्छेज्जा केवतियं पाउणेज्जा ?, गोयमा ! लोयंतं गच्छेज्जा लोयंतं पाउणिज्जा, से णं भंते ! तत्थगए चेव आहारेज्ज वा परिणामेज्ज वा सरीरं वा बंधेज्जा ?, गोयमा ! अत्थेगतिए तत्थगए चेव आहारेज्ज वा परिणामेज्ज वा सरीरं वा बंधेज्ज अत्थेगतिए तओ पडिनियत्तति २ त्ता इह हव्वमागच्छइ २ त्ता दोचंपि मारणंतियसमुग्घाएणं समोहणति २ त्ता मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमेणं अंगुलस्स असंखेज्जभागमेत्तं वा संखेज्जतिभागमेत्तं वा वालयं वा वालग्गपुहुत्तं वा एवं लिक्खं जूयं जवं-अंगुलं जाव जोयणकोडिं वा जोयणकोडाकोडिं वा संखेज्जेसु वा असंखेज्जेसु वा जोयणसहस्सेसु लोगंते वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १ ॥२७३॥

एगपदेसियं सेढिं मोत्तूण असंखेज्जेसु पुढविकाइयावाससयसहस्सेसु अन्नयरंसि पुढविकाइयत्ताए उववज्जेत्ता तओ पच्छा आहारेज्ज वा परिणामेज्ज वा सरीरं वा बंधेज्जा, जहा पुरच्छिमेणं मंदरस्स पव्वयस्स आलावओ भणिओ एवं दाहिणेणं पच्चत्थिमेणं उत्तरेणं उड्ढे अहे, जहा पुढविकाइया तहा एगिंदियाणं सव्वेसिं, एक्केक्कस्स छ आलावया भाणियव्वा। जीवे णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहए २ त्ता जे भविए असंखेज्जेसु बेंदियावाससयसहस्सेसु अण्णयरंसि बेंदियावासंसि बेइंदियत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! तत्थगए चेव जहा नेरइया, एवं जाव अणुत्तरोववाइया । जीवे णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहए २ जे भविए एवं पंचसु अणुत्तरेसु महतिमहालएसु महाविमाणेसु अन्नयरंसि अणुत्तरविमाणंसि अणुत्तरोववाइयदेवत्ताए उववज्जित्तए, से णं भंते ! तत्थगए चेव जाव आहारेज्ज वा परिणामेज्ज वा सरीरं वा बंधेज्ज ?। सेवं भंते ! सेवं भंते ! ॥ (सूत्रं २४५) ॥ पुढविउद्देसो समत्तो ॥ ६–६ ॥

'कइ ण'मित्यादि सूत्रम्, इह पृथिव्यो नरकपृथिव्य ईषत्प्राग्भाराया अनधिकरिष्यमाणत्वात्, इह च पूर्वोक्तमपि यत् पृथिव्याद्युक्तं तत्तदपेक्षमारणान्तिकसमुद्घातवक्तव्यताऽभिधानार्थमिति न पुनरुक्तता, 'तत्थगए चेव'त्ति नरकावासप्राप्त एव 'आहारेज्ज वा' पुद्गलानादद्यात् 'परिणामेज्ज व'त्ति तेषामेव खलरसविभागं कुर्यात् 'सरीरं वा बंधेज्ज' त्ति तैरेव शरीरं निष्पादयेत्। 'अत्थेगइए'त्ति यस्मिन्नेव समुद्घाते म्रियते 'ततो पडिनियत्तति' ततो–नरकावासात्समुद्घाताद्वा 'इह समागच्छइ'त्ति स्वशरीरे 'केवइयं गच्छेज्ज'त्ति कियद्दूरं गच्छेद् ? गमनमाश्रित्य, 'केवइयं पाउ-

६ शतके उद्देशः ६-मारणान्तिकस्याहारादिसू२४५

॥२७३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णेज्ज'त्ति कियद्दूरं प्रामुयात्? अवस्थानमाश्रित्य, 'अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्तं वे'त्यादि, इह द्वितीया सप्तम्यर्थे द्रष्टव्या, अङ्गुलं इह यावत्करणादिदं दृश्यं–'विहत्थिं वा रयणिं वा कुच्छिं वा धणुं वा कोसं वा जोयणं वा जोयणसयं वा जोयणसहस्सं वा जोयणसयसहस्सं वा' इति 'लोगंते वे'त्यत्र गत्वेति शेषः, ततश्चायमर्थः–उत्पादस्थानानुसारेणाङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रादिके क्षेत्रे समुद्घाततो गत्वा, कथम्? इत्याह–'एगपएसियं सेढिं मोत्तूण'त्ति यद्यप्यसङ्ख्येयप्रदेशावगाहस्वभावो जीवस्तथाऽपि नैकप्रदेशश्रेणीवर्त्यसङ्ख्यप्रदेशावगाहनेन गच्छति तथास्वभावत्वादित्यतस्तां मुक्त्वेत्युक्तमिति ॥ षष्ठशते षष्ठः ॥ ६–६ ॥

षष्ठोद्देशके जीवक्तव्यतोक्ता सप्तमे तु जीवविशेषयोनिवक्तव्यतादिरर्थ उच्यते, तत्र चेदं सूत्रम्—

अह णं भंते ! सालीणं वीहीणं गोधूमाणं जवाणं जवजवाणं एएसि णं धन्नाणं कोट्ठाउत्ताणं पल्लाउत्ताणं मंचाउत्ताणं मालाउत्ताणं ओलित्ताणं लित्ताणं पिहियाणं मुद्दियाणं लंछियाणं केवतियं कालं जोणी संचिट्ठइ ?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि संवच्छराइं तेण परं जोणी पमिलायइ तेण परं जोणि पविद्धंसइ तेण परं बीए अबीए भवति तेण परं जोणीवोच्छेदे पन्नत्ते समणाउसो !। अह भंते ! कलायमसूरतिलमुग्गमासनिप्फावकुलत्थआलिसंदगसतीणपलिमंथगमादीणं एएसि णं धन्नाणं जहा सालीणं तहा एयाणंवि, नवरं पंच संवच्छराइं, सेसं तं चेव। अह भंते ! अयसिकुसुंभगकोद्दवकंगुवरगरालगकोदूसगसणसरिसवमूलगबीयमादीणं एएसि णं धन्नाणं, एयाणिवि तहेव, नवरं सत्त संवच्छराइं, सेसं तं चेव ॥ (सूत्रं २४६)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र षष्ठं-शतके षष्ठं-उद्देशक: समाप्त:

अथ षष्ठं-शतके सप्तम-उद्देशक: आरम्भ:

'अह भंते'इत्यादि, 'सालीणं'ति कलमादीनां 'वीहीणं'ति सामान्यतः 'जवजवाणं'ति यवविशेषाणाम् 'एतेसि ण'–मित्यादि, उक्तत्वेन प्रत्यक्षाणां, 'कोट्ठाउत्ताण'त्ति कोष्ठे–कुशूले आगुप्तानि–तत्प्रक्षेपणेन संरक्षणेन संरक्षितानि कोष्ठागुप्तानि तेषां 'पल्लाउत्ताणं'ति इह पल्यो–वंशादिमयो धान्याधारविशेषः 'मंचाउत्ताणं मालाउत्ताण'मित्यत्र मञ्चमालयोर्भेदः–"अक्कुड्डे होइ मंचो मालो य घरोवरिं होति," [अभित्तिको मञ्चो मालश्च गृहोपरि भवति] 'ओलित्ताणं'ति द्वारदेशे पिधानेन सह गोमयादिनाऽवलिप्तानां 'लित्ताणं'ति सर्वतो गोमयादिनैव लिप्तानां 'पिहियाणं'ति स्थगितानां तथाविधाच्छादनेन 'मुद्दियाणं'ति मृत्तिकादिमुद्रावतां 'लंछियाणं'ति रेखादिकृतलाञ्छनानां, 'जोणि'त्ति अङ्कुरोत्पत्तिहेतुः 'तेण परं'ति ततः परं 'पमिलायइ'त्ति प्रम्लायति वर्णादिना हीयते 'पविद्धंसइ'त्ति क्षीयते, एवं च बीजमबीजं च भवति–उप्तमपि नाङ्कुरमुत्पादयति, किमुक्तं भवति ?—'तेण परं जोणीवोच्छेए पण्णत्ते'त्ति । 'कलाय'त्ति कलाया वृत्तचनका इत्यन्ये 'मसूर'त्ति मिलक्षाः चनकिका इत्यन्ये 'निप्फाव'त्ति वल्लाः 'कुलत्थ'त्ति चवलिकाकाराः चिपिटिका भवन्ति 'आलिसंदग'त्ति चवलकप्रकाराः चवलका एवान्ये 'सइण'त्ति तुवरी 'पलिमंथग'त्ति वृत्तचनकाः कालचनका इत्यन्ये 'अयसि'त्ति भङ्गी 'कुसुंभग'त्ति लट्ठा 'वरग'त्ति वरट्टो, रालग'त्ति कङ्गुविशेषः 'कोदूसग'त्ति कोद्रवविशेषः 'सण'त्ति त्वक्प्रधाननालो धान्यविशेषः 'सरिसव'त्ति सिद्धार्थकाः 'मूलगबीय'त्ति मूलकबीजानि शाकविशेषबीजानीत्यर्थः ॥ अनन्तरं स्थितिरुक्ताऽतः स्थितेरेव विशेषाणां मुहूर्तादीनां स्वरूपाभिधानार्थमाह—

एगमेगस्स णं भंते ! मुहुत्तस्स केवतिया ऊसासद्धा वियाहिया ?, गोयमा ! असंखेज्जाणं समयाणं समुद-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

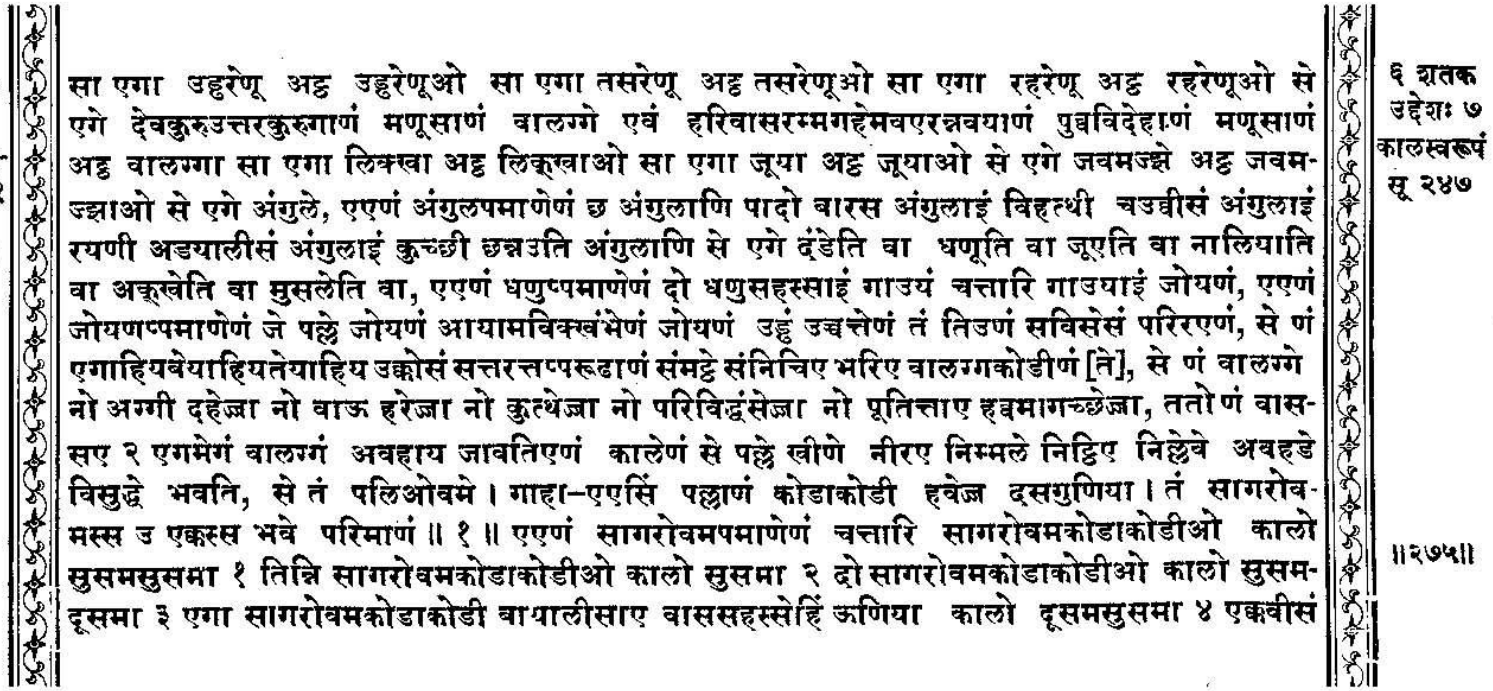
	काळ-स्वरूपं एवं समु-गणितं

यसमितिसमागमेणं सा एगा आवलियत्ति पवुच्चइ, संखेज्जा आवलिया ऊसासो संखेज्जा आवलिया नि-
स्सासो–हट्ठस्स अणवगल्लस्स, निरुवकिट्ठस्स जंतुणो। एगे ऊसासनीसासे, एस पाणुत्ति वुच्चति ॥ १ ॥
सत्त पाणूणि से थोवे, सत्त थोवाइं से लवे। लवाणं सत्तहत्तरिए, एस मुहुत्ते विआहिए ॥ २ ॥ तिन्नि सहस्सा
सत्त य सयाइं तेवत्तरिं च ऊसासा। एस मुहुत्तो दिट्ठो सव्वेहिं अणंतनाणीहिं ॥ ३ ॥ एएणं मुहुत्तपमा-
णेणं तीसमुहुत्तो अहोरत्तो, पन्नरस अहोरत्ता पक्खो दो पक्खा मासे दो मासा उऊ तिन्नि उउए अयणे दो
अयणे संवच्छरे पंचसंवच्छरिए जुगे वीसं जुगाइं वाससयं दस वाससयाइं वाससहस्सं सयं वाससहस्साइं
वाससयसहस्सं चउरासीति वाससयसहस्साणि से एगे पुव्वंगे चउरासीती पुव्वंगसयसहस्साइं से एगे पुव्वे,
[एवं पूव्वे] २ तुडिए २ अडडे २ अववे २ हूहूए २ उप्पले २ पउमे २ नलिणे २ अच्छणिउरे २ अउए २ पउए
य २ नउए य २ चूलिया २ सीसपहेलिया २ एताव ताव गणिए एताव ताव गणियस्स विसए, तेण परं ?
ओवमिए। से कि तं ओवमिए?, २ दुविहे पण्णत्ते तंजहा पलिओवमे य सागरोवमे य, से किं तं पलिओवमे?
से किं तं सागरोवमे ? ॥ सत्थेण सुतिक्खेणवि छेत्तुं भेत्तुं च जं किर न सक्का। तं परमाणुं सिद्धा वयंति
आदिं पमाणाणं ॥ १ ॥ अणंताणं परमाणुपोग्गलाणं समुदयसमितिसमागमेणं सा एगा उस्सण्हसण्हिया-
ति वा सण्हसण्हियाति वा उड्ढरेणूति वा तसरेणूति वा रहरेणूति वा वालग्गेइ वा लिक्खाति वा जूयाति
वा जवमज्झेति वा अंगुलेति वा, अट्ठ उस्सण्हसण्हियाओ सा एगा सण्हसण्हिया अट्ठ सण्हसण्हियाओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२४७--२४८] + गाथा:

दीप अनुक्रम [३०३--३१२]



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२७५॥

सा एगा उड्ढरेणू अट्ठ उड्ढरेणूओ सा एगा तसरेणू अट्ठ तसरेणूओ सा एगा रहरेणू अट्ठ रहरेणूओ से एगे देवकुरुउत्तरकुरुगाणं मणूसाणं वालग्गे एवं हरिवासरम्मगहेमवएरन्नवयाणं पुव्वविदेहाणं मणूसाणं अट्ठ वालग्गा सा एगा लिक्खा अट्ठ लिक्खाओ सा एगा जूया अट्ठ जूयाओ से एगे जवमज्झे अट्ठ जवमज्झाओ से एगे अंगुले, एएणं अंगुलपमाणेणं छ अंगुलाणि पादो बारस अंगुलाइं विहत्थी चउवीसं अंगुलाइं रयणी अडयालीसं अंगुलाइं कुच्छी छन्नउति अंगुलाणि से एगे दंडेति वा धणूति वा जूएति वा नालियाति वा अक्खेति वा मुसलेति वा, एएणं धणुप्पमाणेणं दो धणुसहस्साइं गाउयं चत्तारि गाउयाइं जोयणं, एएणं जोयणप्पमाणेणं जे पल्ले जोयणं आयामविक्खंभेणं जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं तं तिउणं सविसेसं परिरएणं, से णं एगाहियबेयाहियतेयाहिय उक्कोसं सत्तरत्तप्परूढाणं संमट्ठे संनिचिए भरिए वालग्गकोडीणं [ते], से णं वालग्गे नो अग्गी दहेज्जा नो वाऊ हरेज्जा नो कुत्थेज्जा नो परिविद्धंसेज्जा नो पूतित्ताए हव्वमागच्छेज्जा, ततो णं वाससए २ एगमेगं वालग्गं अवहाय जावतिएणं कालेणं से पल्ले खीणे नीरए निम्मले निट्ठिए निल्लेवे अवहडे विसुद्धे भवति, से तं पलिओवमे। गाहा–एएसिं पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया। तं सागरोवमस्स उ एक्कस्स भवे परिमाणं ॥ १ ॥ एएणं सागरोवमपमाणेणं चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमसुसमा १ तिन्नि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमा २ दो सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमदूसमा ३ एगा सागरोवमकोडाकोडी बायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिया कालो दूसमसुसमा ४ एक्कवीसं

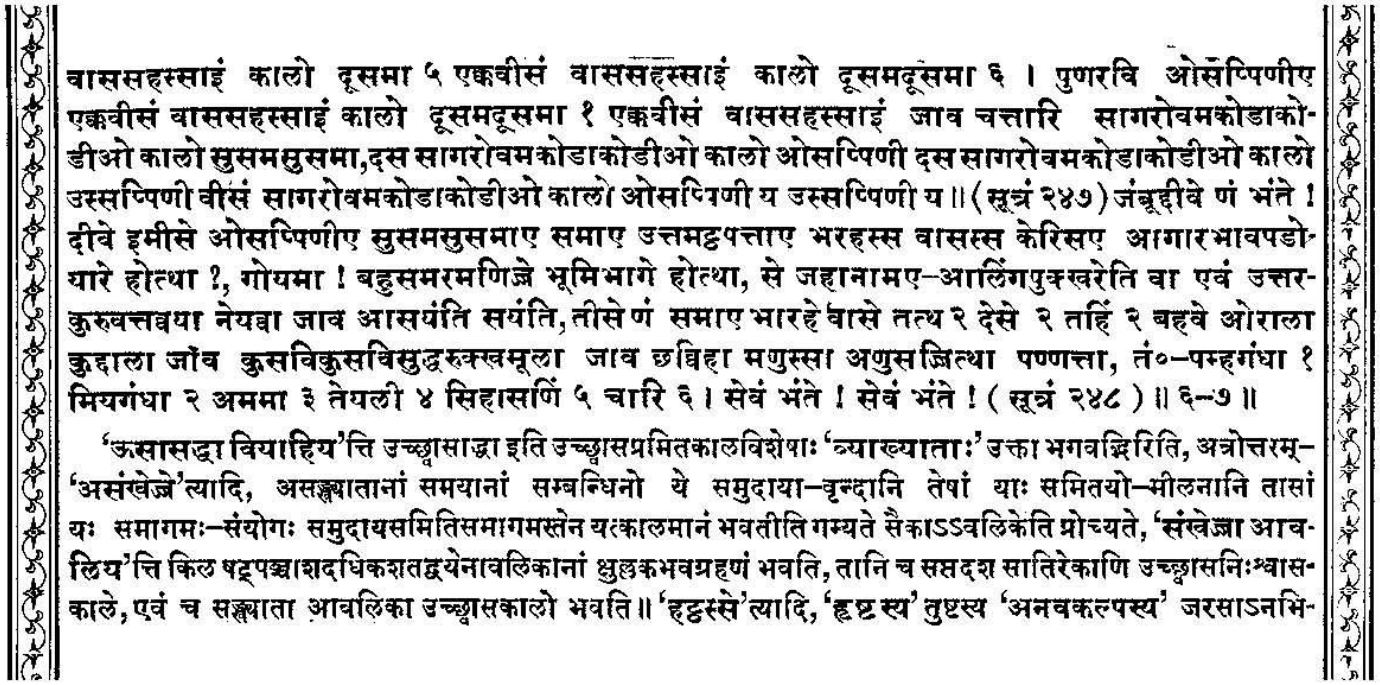
६ शतक उद्देशः ७ कालस्वरूपं सू २४७

॥२७५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काळ-स्वरूपं एवं समु-गणितं

प्रत सूत्रांक [२४७--२४८] + गाथा: दीप अनुक्रम [३०३--३१२]

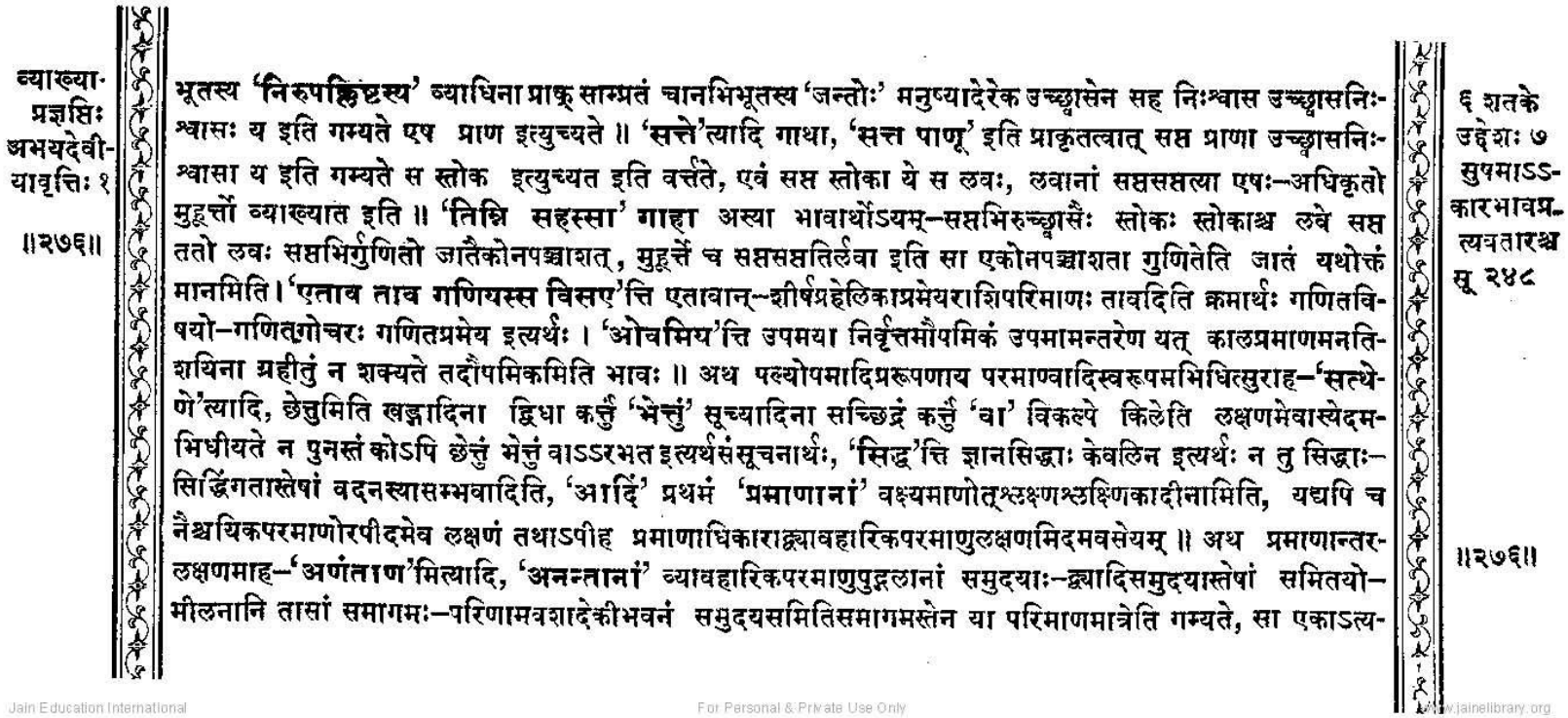


वाससहस्साइं कालो दूसमा ५ एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दूसमदूसमा ६ । पुणरवि ओसप्पिणीए एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दूसमदूसमा १ एक्कवीसं वाससहस्साइं जाव चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमसुसमा,दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणी दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो उस्सप्पिणी वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणी य उस्सप्पिणी य ॥ (सूत्रं २४७) जंबूदीवे णं भंते ! दीवे इमीसे ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए उत्तमट्ठपत्ताए भरहस्स वासस्स केरिसए आगारभावपडोयारे होत्था ?, गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था, से जहानामए–आलिंगपुक्खरेति वा एवं उत्तरकुरुवत्तव्वया नेयव्वा जाव आसयंति सयंति, तीसे णं समाए भारहे वासे तत्थ २ देसे २ तहिं २ बहवे ओराला कुद्दाला जाव कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव छव्विहा मणुस्सा अणुसज्जित्था पण्णत्ता, तं०–पम्हगंधा १ मियगंधा २ अममा ३ तेयली ४ सिहासणिं ५ चारि ६ । सेवं भंते ! सेवं भंते ! (सूत्रं २४८) ॥ ६–७ ॥

'ऊसासद्धा वियाहिय'त्ति उच्छ्वासाद्धा इति उच्छ्वासप्रमितकालविशेषाः 'व्याख्याताः' उक्ता भगवद्भिरिति, अत्रोत्तरम्–'असंखेज्जे'त्यादि, असङ्ख्यातानां समयानां सम्बन्धिनो ये समुदाया–वृन्दानि तेषां याः समितयो–मीलनानि तासां यः समागमः–संयोगः समुदायसमितिसमागमस्तेन यत्कालमानं भवतीति गम्यते सैकाऽऽवलिकेति प्रोच्यते, 'संखेज्जा आवलिय'त्ति किल षट्पञ्चाशदधिकशतद्वयेनावलिकानां क्षुल्लकभवग्रहणं भवति, तानि च सप्तदश सातिरेकाणि उच्छ्वासनिःश्वासकाले, एवं च सङ्ख्याता आवलिका उच्छ्वासकालो भवति ॥ 'हट्ठस्से'त्यादि, 'हृष्टस्य' तुष्टस्य 'अनवकल्पस्य' जरसाऽनभि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काळ-स्वरूपं एवं समु-गणितं



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-यावृत्तिः १

॥२७६॥

भूतस्य 'निरुपक्लिष्टस्य' व्याधिना प्राक् साम्प्रतं चानभिभूतस्य 'जन्तोः' मनुष्यादेरेक उच्छ्वासेन सह निःश्वास उच्छ्वासनिःश्वासः य इति गम्यते एष प्राण इत्युच्यते ॥ 'सत्ते'त्यादि गाथा, 'सत्त पाणू' इति प्राकृतत्वात् सप्त प्राणा उच्छ्वासनिःश्वासा य इति गम्यते स स्तोक इत्युच्यत इति वर्त्तते, एवं सप्त स्तोका ये स लवः, लवानां सप्तसप्तत्या एषः–अधिकृतो मुहूर्त्तो व्याख्यात इति ॥ 'तिन्नि सहस्सा' गाहा अस्या भावार्थोऽयम्–सप्तभिरुच्छ्वासैः स्तोकः स्तोकाश्च लवे सप्त ततो लवः सप्तभिर्गुणितो जातैकोनपञ्चाशत्, मुहूर्त्ते च सप्तसप्ततिर्लवा इति सा एकोनपञ्चाशता गुणितेति जातं यथोक्तं मानमिति। 'एताव ताव गणियस्स विसए'त्ति एतावान्–शीर्षप्रहेलिकाप्रमेयराशिपरिमाणः तावदिति क्रमार्थः गणितविषयो–गणितगोचरः गणितप्रमेय इत्यर्थः । 'ओवमिय'त्ति उपमया निर्वृत्तमौपमिकं उपमामन्तरेण यत् कालप्रमाणमनतिशयिना ग्रहीतुं न शक्यते तदौपमिकमिति भावः ॥ अथ पल्योपमादिप्ररूपणाय परमाण्वादिस्वरूपमभिधित्सुराह–'सत्थेणे'त्यादि, छेत्तुमिति खड्गादिना द्विधा कर्त्तुं 'भेत्तुं' सूच्यादिना सच्छिद्रं कर्त्तुं 'वा' विकल्पे किलेति लक्षणमेवास्येदमभिधीयते न पुनस्तं कोऽपि छेत्तुं भेत्तुं वाऽऽरभत इत्यर्थसंसूचनार्थः, 'सिद्ध'त्ति ज्ञानसिद्धाः केवलिन इत्यर्थः न तु सिद्धाः–सिद्धिंगतास्तेषां वदनस्यासम्भवादिति, 'आदिं' प्रथमं 'प्रमाणानां' वक्ष्यमाणोत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकादीनामिति, यद्यपि च नैश्चयिकपरमाणोरपीदमेव लक्षणं तथाऽपीह प्रमाणाधिकाराद्व्यावहारिकपरमाणुलक्षणमिदमवसेयम् ॥ अथ प्रमाणान्तरलक्षणमाह–'अणंताण'मित्यादि, 'अनन्तानां' व्यावहारिकपरमाणुपुद्गलानां समुदयाः–द्व्यादिसमुदयास्तेषां समितयो–मीलनानि तासां समागमः–परिणामवशादेकीभवनं समुदयसमितिसमागमस्तेन या परिमाणमात्रेति गम्यते, सा एकाऽत्य-

६ शतके उद्देशः ७ सुषमाऽऽ-कारभावप्र-त्यवतारश्च सू २४८

॥२७६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२४७--२४८] + गाथा: दीप अनुक्रम [३०३--३१२]	काळ-स्वरूपं एवं समु-गणितं

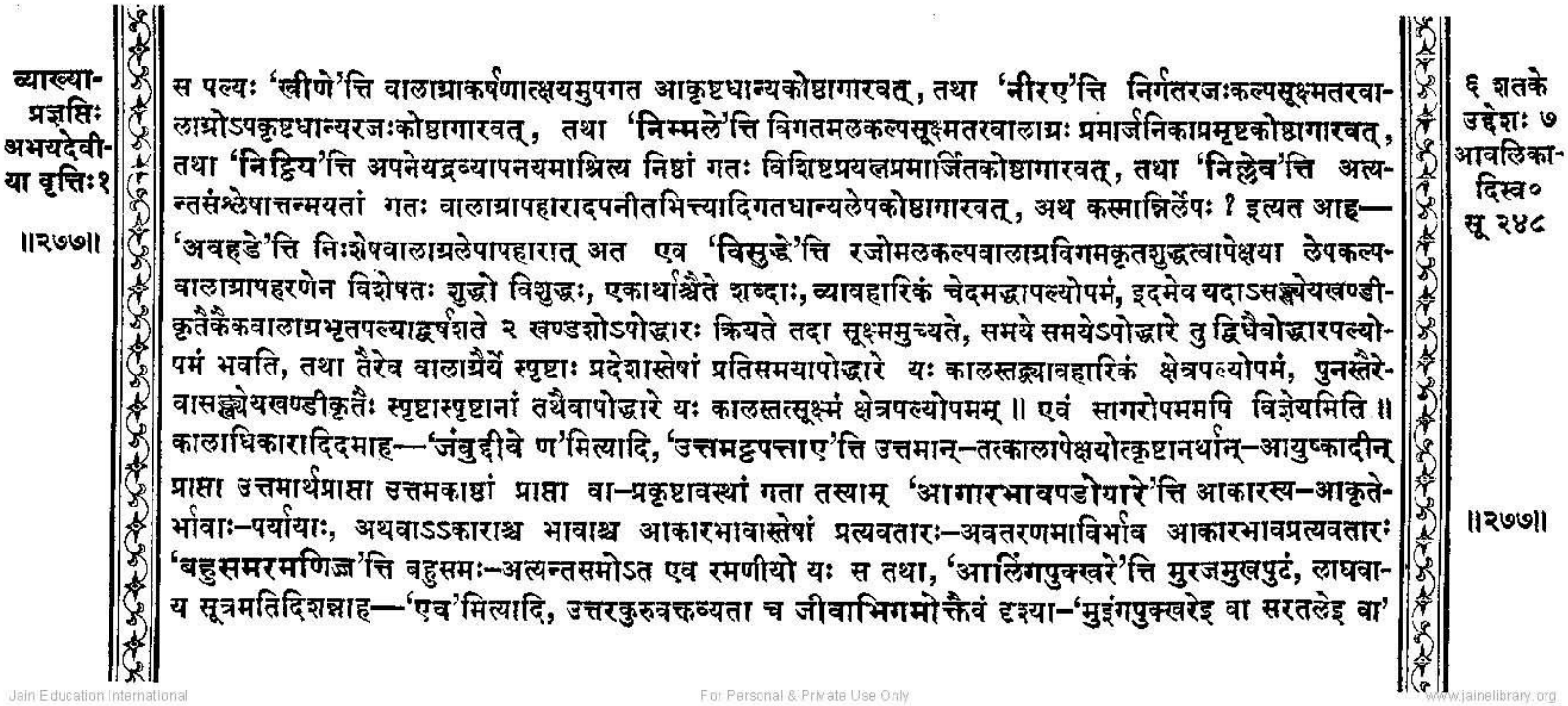
प्रत सूत्रांक [२४७--२४८] + गाथा: दीप अनुक्रम [३०३--३१२]

न्तं श्लक्ष्णा श्लक्ष्णश्लक्ष्णा सैव श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका उत्–प्राबल्येन श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका 'इति' उपदर्शने 'वा' समुच्चये, एते च उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकादयोऽङ्गुलान्ता दश प्रमाणभेदा यथोत्तरमष्टगुणाः सन्तोऽपि प्रत्येकमनन्तपरमाणुत्वं न व्यभिचरन्तीत्यत उक्तम्—'उस्सण्हसण्हियाइ वे'त्यादि, 'सण्हसण्हिय'त्ति प्राक्तनप्रमाणापेक्षयाऽष्टगुणत्वाद् ऊर्द्ध्वरेण्वपेक्षया त्वष्टमभागत्वात् श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका इत्युच्यते, 'उड्ढरेणु'त्ति ऊर्द्ध्वाधस्तिर्यक्चलनधर्मोपलभ्यो रेणुः ऊर्द्ध्वरेणुः 'तसरेणु'त्ति व्यस्यति–पौरस्त्यादिवायुप्रेरितो गच्छति यो रेणुः स त्रसरेणुः 'रहरेणु'त्ति रथगमनोत्खातो रेणू रथरेणुः, वालाग्रलिक्षादयः प्रतीताः 'रयणि'त्ति हस्तः 'नालिय'त्ति यष्टिविशेषः 'अक्खे'त्ति शकटावयवविशेषः 'तं तिउणं सविसेसं परिरएणं'ति तद् योजनं त्रिगुणं सविशेषं, वृत्तपरिधेः किञ्चिन्यूनषड्भागादिकत्रिगुणत्वात् , 'से णं एक्काहियबेहियतेहिय'त्ति षष्ठीबहुवचनलोपाद् एकाहिकद्व्याहिकत्र्याहिकानाम् 'उक्कोस'त्ति उत्कर्षतः सप्तरात्रप्ररूढानां भृतो वालाग्रकोटीनामिति सम्बन्धः, तत्रैकाहिक्यो मुण्डिते शिरसि एकेनाह्ना यावत्यो भवन्तीति, एवं शेषास्वपि भावना कार्या, कथम्भूतः ? इत्याह—'संसट्ठः' आकर्णभृतः संनिचितः प्रचयविशेषान्निबिडः, किंबहुना ?, एवं भृतोऽसौ येन 'तेणं'ति तानि वालाग्राणि 'नो कुत्थेज्ज'त्ति न कुथ्येयुः प्रचयविशेषाच्छुषिराभावाद्वायोरसम्भवाच्च नासारतां गच्छेयुरित्यर्थः, अत एव 'नो परिविद्धंसेज्ज'त्ति न परिविध्वंसेरन्–कतिपयपरिशाटमप्यङ्गीकृत्य न विध्वंसं गच्छेयुः, अत एव च 'नो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्ज'त्ति न पूतितया–न पूतिभावं कदाचिदागच्छेयुः 'तओ णं'ति तेभ्यो वालाग्रेभ्यः 'एगमेगं वालग्गं अवहाय'त्ति एकैकं वालाग्रमपनीय कालो मीयत इति शेषः, ततश्च 'जावइएणं'मित्यादि, यावता कालेन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काळ-स्वरूपं एवं समु-गणितं

प्रत सूत्रांक [२४७--२४८] + गाथा: दीप अनुक्रम [३०३--३१२]



व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१

॥२७७॥

स पल्यः 'खीणे'त्ति वालाग्राकर्षणात्क्षयमुपगत आकृष्टधान्यकोष्ठागारवत्, तथा 'नीरए'त्ति निर्गतरजःकल्पसूक्ष्मतरवालाग्रोऽपकृष्टधान्यरजःकोष्ठागारवत्, तथा 'निम्मले'त्ति विगतमलकल्पसूक्ष्मतरवालाग्रः प्रमार्जनिकाग्रमृष्टकोष्ठागारवत्, तथा 'निट्ठिय'त्ति अपनेयद्रव्यापनयमाश्रित्य निष्ठां गतः विशिष्टप्रयत्नप्रमार्जितकोष्ठागारवत्, तथा 'निल्लेव'त्ति अत्यन्तसंश्लेषात्तन्मयतां गतः वालाग्रापहारादपनीतभित्त्यादिगतधान्यलेपकोष्ठागारवत्, अथ कस्मान्निर्लेपः ? इत्यत आह— 'अवहडे'त्ति निःशेषवालाग्रलेपापहारात् अत एव 'विसुद्धे'त्ति रजोमलकल्पवालाग्रविगमकृतशुद्धत्वापेक्षया लेपकल्पवालाग्रापहरणेन विशेषतः शुद्धो विशुद्धः, एकार्थाश्चैते शब्दाः, व्यावहारिकं चेदमद्धापल्योपमं, इदमेव यदाऽसङ्ख्येयखण्डीकृतैकैकवालाग्रभृतपल्याद्वर्षशते २ खण्डशोऽपोद्धारः क्रियते तदा सूक्ष्ममुच्यते, समये समयेऽपोद्धारे तु द्विधैवोद्धारपल्योपमं भवति, तथा तैरेव वालाग्रैर्ये स्पृष्टाः प्रदेशास्तेषां प्रतिसमयापोद्धारे यः कालस्तद्व्यावहारिकं क्षेत्रपल्योपमं, पुनस्तैरेवासङ्ख्येयखण्डीकृतैः स्पृष्टास्पृष्टानां तथैवापोद्धारे यः कालस्तत्सूक्ष्मं क्षेत्रपल्योपमम् ॥ एवं सागरोपममपि विज्ञेयमिति ॥ कालाधिकारादिदमाह—'जंबुद्दीवे ण'मित्यादि, 'उत्तमट्ठपत्ताए'त्ति उत्तमान्–तत्कालापेक्षयोत्कृष्टानर्थान्–आयुष्कादीन् प्राप्ता उत्तमार्थप्राप्ता उत्तमकाष्ठां प्राप्ता वा–प्रकृष्टावस्थां गता तस्याम् 'आगारभावपडोयारे'त्ति आकारस्य–आकृतेर्भावाः–पर्यायाः, अथवाऽऽकाराश्च भावाश्च आकारभावास्तेषां प्रत्यवतारः–अवतरणमाविर्भाव आकारभावप्रत्यवतारः 'बहुसमरमणिज्ज'त्ति बहुसमः–अत्यन्तसमोऽत एव रमणीयो यः स तथा, 'आलिंगपुक्खरे'त्ति मुरजमुखपुटं, लाघवाय सूत्रमतिदिशन्नाह—'एव'मित्यादि, उत्तरकुरुवक्तव्यता च जीवाभिगमोक्तैवं दृश्या–'मुइंगपुक्खरेइ वा सरतलेइ वा'

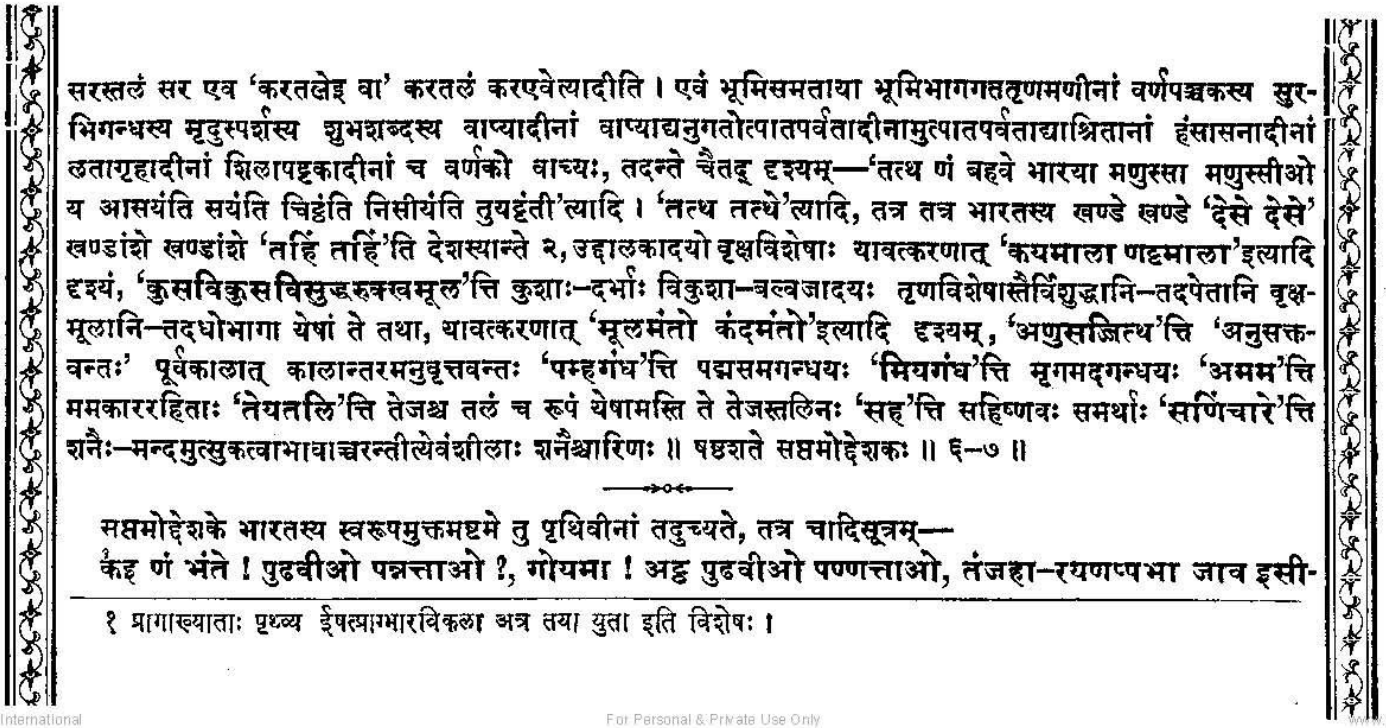
६ शतके उद्देशः ७ आवलिकादिस्व० सू २४८

॥२७७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	काळ-स्वरूपं एवं समु-गणितं

प्रत सूत्रांक [२४७--२४८] + गाथा: दीप अनुक्रम [३०३--३१२]



सरस्तलं सर एव 'करतलेइ वा' करतलं करएवेत्यादीति । एवं भूमिसमताया भूमिभागगततृणमणीनां वर्णपञ्चकस्य सुरभिगन्धस्य मृदुस्पर्शस्य शुभशब्दस्य वाप्यादीनां वाप्याद्यनुगतोत्पातपर्वतादीनामुत्पातपर्वताद्याश्रितानां हंसासनादीनां लतागृहादीनां शिलापट्टकादीनां च वर्णको वाच्यः, तदन्ते चैतद् दृश्यम्—'तत्थ णं बहवे भारया मणुस्सा मणुस्सीओ य आसयंति सयंति चिट्ठंति निसीयंति तुयट्टंती'त्यादि । 'तत्थ तत्थे'त्यादि, तत्र तत्र भारतस्य खण्डे खण्डे 'देसे देसे' खण्डांशे खण्डांशे 'तहिं तहिं'ति देशस्यान्ते २, उद्दालकादयो वृक्षविशेषाः यावत्करणात् 'कयमाला णट्टमाला'इत्यादि दृश्यं, 'कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूल'त्ति कुशाः–दर्भाः विकुशा–बल्वजादयः तृणविशेषास्तैर्विशुद्धानि–तदपेतानि वृक्षमूलानि–तदधोभागा येषां ते तथा, यावत्करणात् 'मूलमंतो कंदमंतो'इत्यादि दृश्यम्, 'अणुसज्जित्थ'त्ति 'अनुसक्तवन्तः' पूर्वकालात् कालान्तरमनुवृत्तवन्तः 'पम्हगंध'त्ति पद्मसमगन्धयः 'मियगंध'त्ति मृगमदगन्धयः 'अमम'त्ति ममकाररहिताः 'तेयतलि'त्ति तेजश्च तलं च रूपं येषामस्ति ते तेजस्तलिनः 'सह'त्ति सहिष्णवः समर्थाः 'सणिंचारे'त्ति शनैः–मन्दमुत्सुकत्वाभावाच्चरन्तीत्येवंशीलाः शनैश्चारिणः ॥ षष्ठशते सप्तमोद्देशकः ॥ ६–७ ॥

सप्तमोद्देशके भारतस्य स्वरूपमुक्तमष्टमे तु पृथिवीनां तदुच्यते, तत्र चादिसूत्रम्—

कइ णं भंते ! पुढवीओ पन्नत्ताओ ?, गोयमा ! अट्ठ पुढवीओ पण्णत्ताओ, तंजहा–रयणप्पभा जाव इसी-

१ प्रागाख्याताः पृथ्व्य ईषत्प्राग्भारविकला अत्र तया युता इति विशेषः ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र षष्ठं-शतके सप्तम-उद्देशकः समाप्तः

अथ षष्ठं-शतके अष्टम-उद्देशकः आरम्भः

प्रत सूत्रांक [२४९] + गाथा: दीप अनुक्रम [३१३--३१४]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥२७८॥

प्पभारा। अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे गेहाति वा गेहावणाति वा ?, गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे। अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए अहे गामाति वा जाव संनिवेसाति वा ? नो तिणट्ठे समट्ठे। अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे उराला बलाहया संसेयंति संमुच्छंति वासं वासंति ?, हंता अत्थि, तिन्निवि पकरेंति देवोवि पकरेति असुरोवि प० नागोवि प०। अत्थि णं भंते ! इमीसे रयण० बादरे थणियसद्दे ?, हंता अत्थि, तिन्निवि पकरेंति। अत्थि णं भंते ! इमीसे रयण० अहे बादरे अगणिकाए ?, गोयमा ! नो तिणट्ठे समट्ठे, नन्नत्थ विग्गहगतिसमावन्नएणं। अत्थि णं भंते ! इमीसे रयण० अहे चंदिम जाव तारारूवा ?, नो तिणट्ठे समट्ठे। अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए चंदाभाति वा २ ?, णो इणट्ठे समट्ठे, एवं दोच्चाएवि पुढविए भाणियव्वं, एवं तच्चाएवि भाणियव्वं, नवरं देवोवि पकरेति असुरोवि पकरेति णो णागो पकरेति, चउत्थाएवि एवं नवरं देवो एक्को पकरेति नो असुरो० नो नागो पकरेति, एवं हेट्ठिल्लासु सव्वासु देवो एक्को पकरेति। अत्थि णं भंते ! सोहम्मीसाणाणं कप्पाणं अहे गेहाइ वा २ ?, नो इणट्ठे समट्ठे। अत्थि णं भंते ! उराला बलाहया ? हंता अत्थि, देवो पकरेति असुरोवि पकरेइ नो नाओ पकरेइ, एवं थणियसद्देवि। अत्थि णं भंते ! बायरे पुढविकाए बादरे अगणिकाए ?, णो इणट्ठे समट्ठे, नण्णत्थ विग्गहगतिसमावन्नएणं। अत्थि णं भंते ! चंदिम० ?, णो तिणट्ठे समट्ठे। अत्थि णं भंते ! गामाइ वा ?, णो तिणट्ठे स०। अत्थि णं भंते ! चंदाभाति वा ?, गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे। एवं सणंकुमारमाहिंदेसु

६ शतके उद्देशः ८ रत्नप्रभ्या-द्यधोगृहा-दिसू २४९ ॥२७८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२४९] + गाथा: दीप अनुक्रम [३१३--३१४]

नवरं देवो एगो पकरेति । एवं बंभलोएवि । एवं बंभलोगस्स उवरिं सव्वहिं देवो पकरेति, पुच्छियव्वो य, बायरे आउकाए बायरे अगणिकाए बायरे वणस्सइकाए अन्नं तं चेव ॥ गाहा—तमुकाए कप्पपणए अगणी पुढवी य अगणि पुढवीसु । आऊतेऊवणस्सइ कप्पुवरिमकण्हराईसु ॥ १ ॥ (सूत्रं २४९) ॥

'कइ ण'मित्यादि, 'बादरे अगणिकाए'इत्यादि, ननु यथा बादराग्नेर्मनुष्यक्षेत्र एव सद्भावान्निषेध इहोच्यते एवं बादरपृथिवीकायस्यापि निषेधो वाच्यः स्यात् पृथिव्यादिष्वेव स्वस्थानेषु तस्य भावादिति, सत्यं, किन्तु नेह यद्यत्र नास्ति तत्तत्र सर्वं निषिध्यते मनुष्यादिवद् विचित्रत्वात् सूत्रगतेरतोऽसतोऽपीह पृथिवीकायस्य न निषेध उक्तः, अप्कायवायुवनस्पतीनां त्विह घनोदध्यादिभावेन भावान्निषेधाभावः सुगम एवेति, 'नो नाओ'त्ति नागकुमारस्य तृतीयायाः पृथिव्या अधोगमनं नास्तीत्यत एवानुमीयते, 'नो असुरो नो नागो'त्ति, इहाप्यत एव वचनाच्च चतुर्थ्यादीनामधोऽसुरकुमारनागकुमारयोर्गमनं नास्तीत्यनुमीयते, सौधर्मेशानयोस्त्वधोऽसुरो गच्छति चमरवत् न नागकुमारः अशक्तत्वात्, अत एवाह—'देवो पकरेइ'इत्यादि, इह च बादरपृथिवीतेजसोर्निषेधः सुगम एवास्वस्थानत्वात्, तथाऽब्वायुवनस्पतीनामनिषेधोऽपि सुगम एव, तयोरुदधिप्रतिष्ठितत्वेनाब्वनस्पतिसम्भवाद् वायोश्च सर्वत्र भावादिति । 'एवं सणंकुमारमाहिंदेसु'त्ति इहातिदेशतो बादराब्वनस्पतीनां सम्भवोऽनुमीयते, स च तमस्कायसद्भावतोऽवसेय इति । 'एवं बंभलोयस्स उवरिं सव्वहिं'ति अच्युतं यावदित्यर्थः परतो देवस्यापि गमो नास्तीति न तत्कृतबलाहकादेर्भावः 'पुच्छियव्वो य'त्ति बादरोऽप्कायोऽग्निकायो वनस्पतिकायश्च प्रष्टव्यः, 'अन्नं तं चेव'त्ति वचनान्निषेधश्च, यतोऽनेन विशेषोक्तादन्यत्सर्वं पूर्वोक्त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२४९] + गाथा: दीप अनुक्रम [३१३--३१४]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १ ॥२७९॥

मेव वाच्यमिति सूचितं, तथा ग्रैवेयकादीषत्प्राग्भारान्तेषु पूर्वोक्तं सर्वं गेहादिकमधिकृतवाचनायामनुक्तमपि निषेधतोऽध्येयमिति ॥ अथ पृथिव्यादयो ये यत्राध्येतव्यास्तां सूत्रसङ्ग्रहगाथयाऽऽह—'तमुकाय'गाहा, 'तमुकाए'त्ति तमस्कायप्रकरणे प्रागुक्ते 'कप्पपणए'त्ति अनन्तरोक्तसौधर्मादिदेवलोकपञ्चके 'अगणी पुढवी य'त्ति अग्निकायपृथिवीकायावध्येतव्यौ—'अत्थि णं भंते ! बादरे पुढविकाए बादरे अगणिकाए ?, नो इणट्ठे समट्ठे, नण्णत्थ विग्गहगतिसमावन्नएणं' इत्यनेनाभिलापेन । तथा 'अगणि'त्ति अग्निकायोऽध्येतव्यः 'पुढवीसु'त्ति रत्नप्रभादिपृथिवीसूत्रेषु, 'अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे बादरे अगणिकाए'इत्याद्यभिलापेनेति । तथा 'आउतेऊवणस्सइ'त्ति अप्कायतेजोवनस्पतयोऽध्येतव्याः–'अत्थि णं भंते ! बादरे आउकाए बायरे तेउक्काए बायरे वणस्सइकाए ?, नो इणट्ठे समट्ठे' इत्यादिनाऽभिलापेन, केषु ? इत्याह–'कप्पुवरिम'त्ति कल्पपञ्चकोपरितनकल्पसूत्रेषु, तथा 'कण्हराईसु'त्ति प्रागुक्ते कृष्णराजीसूत्र इति, इह च ब्रह्मलोकोपरितनस्थानानामधो योऽब्वनस्पतिनिषेधः स यान्यब्वायुप्रतिष्ठितानि तेषामध आनन्तर्येण वायोरेव भावादाकाशप्रतिष्ठितानामाकाशस्यैव भावादवगन्तव्यः, अग्नेस्त्वस्वस्थानादिति ॥ अनन्तरं बादराप्कायादयोऽभिहितास्ते चायुर्बन्धे सति भवन्तीत्यायुर्बन्धसूत्रम्—

कतिविहे णं भंते ! आउयबंधए पन्नत्ता ?, गोयमा ! छव्विहा आउयबंधा पन्नत्ता, तंजहा–जातिनामनिहत्ताउए १ गतिनामनिहत्ताउए २ ठितिनामनिहत्ताउए ३ ओगाहणानामनिहत्ताउए ४ पएसनामनिहत्ताउए ५ अणुभागनामनिहत्ताउए ६ दंडओ जाव वेमाणियाणं ॥ जीवा णं भंते ! किं जाइनामनिहत्ता जाव अणु-

६ शतके उद्देशः ८ रत्नपृथ्व्याद्यधोगृहादिः सू २४९

॥२७९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२५०]

दीप अनुक्रम [३१५]

भागनिहत्ता ?, गोयमा ! जातिनामनिहत्तावि जाव अणुभागनामनिहत्तावि, दंडओ जाव वेमाणियाणं। जीवा णं भंते ! किं जाइनामनिहत्ताउया जाव अणुभागनामनिहत्ताउया ?, गोयमा ! जाइनामनिहत्ताउयावि जाव अणुभागनामनिहत्ताउयावि, दंडओ जाव वेमाणियाणं। एवं एए दुवालस दंडगा भाणियव्वा। जीवा णं भंते ! किं जातिनामनिहत्ता १ जाइनामनिहत्ताउया २?,१२। जीवा णं भंते ! किं जाइनामनिउत्ता ३ जातिनामनिउत्ताउया ४ जाइगोयनिहत्ता ५ जाइगोयनिहत्ताउया ६ जातिगोयनिउत्ता ७ जाइगोयनिउत्ताउया ८ जाइणामगोयनिहत्ता ९ जाइणामगोयनिहत्ताउया १० जाइणामगोयनिउत्ता ११ ? जीवा णं भंते ! किं जाइनामगोयनिउत्ताउया १२ जाव अणुभागनामगोयनिउत्ताउया ?, गोयमा ! जाइनामगोयनिउत्ताउयावि जाव अणुभागनामगोयनिउत्ताउयावि दंडओ जाव वेमाणियाणं॥ (सूत्रं२५०) ॥

तत्र 'जातिनामनिहत्ताउए'त्ति जातिः एकेन्द्रियजात्यादिः पञ्चधा सैव नामेति–नामकर्मण उत्तरप्रकृतिविशेषो जीवपरिणामो वा तेन सह निधत्तं–निषिक्तं यदायुस्तज्जातिनामनिधत्तायुः, निषेकश्च कर्म्मपुद्गलानां प्रतिसमयमनुभवनार्थं रचनेति १, 'गतिनामनिधत्ताउए'त्ति गतिः–नरकादिका चतुर्धा शेषं तथैव २, 'ठिइनामनिधत्ताउए'त्ति स्थितिरिति यत्स्थातव्यं क्वचिद्विवक्षितभवे जीवेनायुःकर्मणा वा सैव नाम–परिणामो धर्मः स्थितिनाम तेन विशिष्टं निधत्तं यदायुर्दलिकरूपं तत् स्थितिनामनिधत्तायुः ३, अथवेह सूत्रे जातिनामगतिनामावगाहनानामग्रहणाज्जातिगत्यवगाहनानां प्रकृतिमात्रमुक्तं, स्थितिप्रदेशानुभागनामग्रहणात्तु तासामेव स्थित्यादय उक्तास्ते च जात्यादिनामसम्बन्धित्वान्नाम-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १ ॥२८०॥

कर्मरूपा एवेति नामशब्दः सर्वत्र कर्मार्थो घटत इति स्थितिरूपं नाम–नामकर्म्म स्थितिनाम तेन सह निधत्तं यदायुस्तत्स्थितिनामनिधत्तायुरिति ३, 'ओगाहणानामनिधत्ताउए'त्ति अवगाहते यस्यां जीवः साऽवगाहना–शरीरं औदारिकादि तस्या नाम–औदारिकादिशरीरनामकर्म्मेत्यवगाहनानाम अवगाहनारूपो वा नाम–परिणामोऽवगाहनानाम तेन सह यन्निधत्तमायुस्तदवगाहनानामनिधत्तायुः ४, 'पएसनामनिहत्ताउए'त्ति प्रदेशानां–आयुःकर्म्मद्रव्याणां नाम–तथाविधा परिणतिः प्रदेशनाम प्रदेशरूपं वा नाम–कर्मविशेष इत्यर्थः प्रदेशनाम तेन सह निधत्तमायुस्तत्प्रदेशनामनिधत्तायुरिति ५, 'अणुभागनामनिधत्ताउए'त्ति अनुभाग–आयुर्द्रव्याणामेव विपाकस्तल्लक्षण एव नाम–परिणामोऽनुभागनाम अनुभागरूपं वा नामकर्म अनुभागनाम तेन सह निधत्तं यदायुस्तदनुभागनामनिधत्तायुरिति ६। अथ किमर्थं जात्यादिनामकर्म्मणाऽऽयुर्विशेष्यते ?, उच्यते, आयुष्कस्य प्राधान्योपदर्शनार्थं यस्मान्नारकाद्यायुरुदये सति जात्यादिनामकर्म्मणामुदयो भवति, नारकादिभवोपग्राहकं चायुरेव, यस्मादुक्तमिहैव–'नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववज्जइ अनेरइए नेरइएसु उववज्जइ ?, गोयमा ! नेरइए नेरइएसु उववज्जइ नो अनेरइए नेरइएसु उववज्जइ'त्ति, एतदुक्तं भवति—नारकायुःप्रथमसमयसंवेदन एव नारका उच्यन्ते तत्सहचारिणां च पञ्चेन्द्रियजात्यादिनामकर्मणामप्युदय इति, इह चायुर्बन्धस्य षड्विधत्वे उपक्षिप्ते यदायुषः षड्विधत्वमुक्तं तदायुषो बन्धाव्यतिरेकाद्बद्धस्यैव चायुर्व्यपदेशविषयत्वादिति। 'दंडओ'त्ति 'नेरइयाणं भंते ! कतिविहे आउयबंधे पन्नत्ते' ? इत्यादिर्वैमानिकान्तश्चतुर्विंशतिदण्डको वाच्योऽत एवाह–'जाव वेमाणियाणं'ति ॥ अथ कर्म्मविशेषाधिकारात्तद्विशेषितानां जीवादिपदानां द्वादश दण्डकानाह—'जीवा णं भंते !' इत्यादि, 'जातिनाम-

६ शतके उद्देशः ८ जातिनाम-निधत्तादिः सू० २५०

॥२८०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निहत्त'त्ति जातिनाम निधत्तं–निषिक्तं विशिष्टबन्धं वा कृतं यैस्ते जातिनामनिधत्ताः १ एवं गतिनामनिधत्ताः २, यावत्करणात् 'ठितिनामनिहत्ता ३ ओगाहणानामनिहत्ता ४ पएसनामनिहत्ता ५ अणुभागनामनिहत्ता ६' इति दृश्यं, व्याख्या तथैव, नवरं जात्यादिनाम्नां या स्थितिर्यें च प्रदेशा यश्चानुभागस्तत्स्थित्यादिनाम अवगाहनानाम शरीरनामेति, अयमेको दण्डको वैमानिकान्तः १, तथा 'जातिनामनिहत्ताउ'त्ति जातिनाम्ना सह निधत्तमायुर्यैस्ते जातिनामनिधत्तायुषः, एवमन्यान्यपि पदानि, अयमन्यो दण्डकः २, एवमेते 'दुवालस दंडग'त्ति अमुना प्रकारेण द्वादश दण्डका भवन्ति, तत्र द्वावाद्यौ दर्शितावपि सङ्ख्यापूरणार्थं पुनर्दर्शयति–जातिनामनिधत्ता इत्यादिरेकः, 'जाइनामनिहत्ताउया' इत्यादिर्द्वितीयः २। 'जीवा णं भंते ! किं जाइनामनिउत्ता'इत्यादिस्तृतीयः ३, तत्र जातिनाम नियुक्तं–नितरां युक्तं–संबद्धं निकाचितं वेदने वा नियुक्तं यैस्ते जातिनामनियुक्ताः, एवमन्यान्यपि ५, 'जाइनामनिउत्ताउया'इत्यादिश्चतुर्थः, तत्र जातिनाम्ना सह नियुक्तं–निकाचितं वेदयितुमारब्धं वाऽऽयुर्यैस्ते तथा, एवमन्यान्यपि ५, 'जाइगोयनिहत्ता' इत्यादिः पञ्चमः, तत्र जातेः–एकेन्द्रियादिकाया यदुचितं गोत्रं–नीचैर्गोत्रादि तज्जातिगोत्रं तन्निधत्तं यैस्ते जातिगोत्रनिधत्ता, एवमन्यान्यपि ५, जाइगोयनिहत्ताउया य इत्यादि षष्ठः, तत्र जातिगोत्रेण सह निधत्तमायुर्यैस्ते जातिगोत्रनिधत्तायुष एवमन्यान्यपि ५ 'जाइगोयनिउत्ता'इत्यादिसप्तमः ७ तत्र जातिगोत्रं नियुक्तं यैस्ते तथा, एवमन्यान्यपि ५, 'जाइगोयनिउत्ताउया'इत्यादिरष्टमः ८ तत्र जातिगोत्रेण सह नियुक्तमायुर्यैस्ते तथा, एवमन्यान्यपि ५, 'जातिनामगोयनिहत्ता'इत्यादिर्नवमः ९ तत्र जातिनाम गोत्रं च निधत्तं यैस्ते तथा, एवमन्यान्यपि ५, 'जीवा णं भंते ! किं जाइ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नामगोयनिहत्ताउया ?' इत्यादिर्दशमः १० तत्र जातिनाम्ना गोत्रेण च सह निधत्तमायुर्यैस्ते तथा, एवमन्यान्यपि ५, 'जाइनामगोयनिउत्ता'इत्यादिरेकादशः ११ तत्र जातिनाम गोत्रं च नियुक्तं यैस्ते तथा, एवमन्यान्यपि ५, 'जीवा णं भंते ! किं जाइनामगोयनिउत्ताउया'इत्यादिर्द्वादशः १२, तत्र जातिनाम्ना गोत्रेण च सह नियुक्तमायुर्यैस्ते तथा, एवमन्यान्यपि ५ ॥ इह च जात्यादिनामगोत्रयोरायुषश्च भवोपग्राहे प्राधान्यख्यापनार्थं यथायोगं जीवा विशेषिताः, वाचनान्तरे चाद्या एवाष्टौ दण्डका दृश्यन्त इति । पूर्वं जीवाः स्वधर्मतः प्ररूपिताः, अथ लवणसमुद्रं स्वधर्मत एव प्ररूपयन्नाह–

लवणे णं भंते ! समुद्दे किं उस्सिओदए पत्थडोदए खुभियजले अखुभियजले ?, गोयमा ! लवणे णं समुद्दे उस्सिओदए नो पत्थडोदए खुभियजले नो अखुभियजले एत्तो आढत्तं जहा जीवाभिगमे जाव से तेण० गोयमा ! बाहिरया णं दीवसमुद्दा पुन्ना पुन्नप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडत्ताए चिट्ठंति संठाणओ एगविहिविहाणा वित्थारओ अणेगविहिविहाणा दुगुणादुगुणप्पमाणओ जाव अस्सिं तिरियलोए असंखेज्जा दीवसमुद्दा सयंभुरमणपज्जवसाणा पन्नत्ता समणाउसो ! । दीवसमुद्दा णं भंते ! केवतिया नामधेज्जेहिं पन्नत्ता ?, गोयमा ! जावतिया लोए सुभा नामा सुभा रूवा सुभा गंधा सुभा रसा सुभा फासा एवतिया णं दीवसमुद्दा नामधेज्जेहिं पन्नत्ता, एवं नेयव्वा सुभा नामा उद्धारो परिणामो सव्वजीवा णं । सेवं भंते ! सेवं भंते ! (सूत्रं २५१) ॥ ६–८ ॥ छट्ठसयस्स अट्ठमो

'लवणे ण'मित्यादि, 'उस्सिओदए'त्ति 'उच्छ्रितोदकः' ऊर्द्ध्ववृद्धिगतजलः, तद्वृद्धिश्च साधिकषोडशयोजनसहस्राणि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'पत्थडोदए'त्ति प्रस्तृतोदक समजल इत्यर्थः 'खुभियजले'त्ति वेलावशात्, वेला च महापातालकलशगतवायुक्षोभादिति, 'एत्तो आढत्त'मित्यादि, इतः सूत्रादारब्धं तद्यथा जीवाभिगमे तथाऽध्येतव्यं, तच्चेदम्—'जहा णं भंते ! लवणसमुद्दे उस्सिओदए नो पत्थडोदए खुभियजले नो अखुभियजले तहा णं बाहिरगा समुद्दा किं उस्सिओदगा ४ ?, गोयमा ! बाहिरगा समुद्दा नो उस्सिओदगा पत्थडोदगा नो खुभियजला अखुभियजला पुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडत्ताए चिट्ठंति । अत्थि णं भंते ! लवणसमुद्दे बहवे ओराला बलाहया संसेयंति संमुच्छंति वासं वासंति ?, हंता अत्थि । जहा णं भंते ! लवणे समुद्दे बहवे ओराला ५ तहा णं बाहिरेसुवि समुद्देसु ओराला ५ ?, नो इणट्ठे समट्ठे । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–बाहिरगा णं समुद्दा पुन्ना जाव घडत्ताए चिट्ठंति ?, गोयमा ! बाहिरएसु णं समुद्देसु बहवे उदगजोणीया जीवा य पोग्गला य उदगत्ताए वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उववज्जंति' शेषं तु लिखितमेवास्ति, व्यक्तं चेदमिति । 'संठाणओ'इत्यादि, एकेन 'विधिना' प्रकारेण चक्रवाललक्षणेन विधानं–स्वरूपस्य करणं येषां ते एकविधिविधानाः, विस्तारतोऽनेकविधिविधानाः, कुतः? इत्याह–'दुगुणे'त्यादि, इह यावत्करणादिदं दृश्यम्—'पवित्थरमाणा २ बहुउप्पलपउमकुमुयनलिणसुभगसोगंधियपुंडरीयसमहापुंडरीयसतपत्तसहस्सपत्तकेसरफुल्लोवइया' उत्पलादीनां केशरैः फुल्लैश्चोपपेता इत्यर्थः 'उब्भासमाणवीइय'त्ति,(अवभासमानवीचयः सामान्यवातस्य सर्वत्र भावात् पातालकलशानामन्यत्राभावेऽपि नासंगतिर्वीचीनां) 'सुभा नाम'त्ति स्वस्तिकश्रीवत्सादीनि 'सुभा रूव'त्ति शुक्लपीतादीनि देवादीनि वा 'सुभा गंध'त्ति सुरभिगन्धभेदाः गन्धवन्तो वा कर्पूरादयः 'सुभा रस'त्ति मधुरादयः रसवन्तो वाः शर्करादयः 'सुभा फास'त्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-यावृत्तिः १

॥२८२॥

मृदुप्रभृतयः स्पर्शवन्तो वा नवनीतादयः 'एवं नेयव्वा सुभानाम'त्ति एवमिति–द्वीपसमुद्राभिधायकतया नेतव्यानि शुभनामानि पूर्वोक्तानि, तथा 'उद्धारो'त्ति द्वीपसमुद्रेषूद्धारो नेतव्यः, स चैवम्—'दीवसमुद्दा णं भंते ! केवइया उद्धारसमएणं पन्नत्ता ?, गोयमा ! जावइया अड्ढाइज्जाणं उद्धारसागरोवमाणं उद्धारसमया एवइया दीवसमुद्दा उद्धारसमएणं पन्नत्ता' येनैकैकेन समयेन एकैकं बालाग्रमुद्धियतेऽसावुद्धारसमयोऽतस्तेन । तथा 'परिणामो'त्ति परिणामो नेतव्यो द्वीप-समुद्रेषु, स चैवम्—'दीवसमुद्दा णं भंते ! किं पुढविपरिणामा आउपरिणामा जीवपरिणामा पोग्गलपरिणामा ?, गोयमा ! पुढवीपरिणामावि आउपरिणामावि जीवपरिणामावि पोग्गलपरिणामावी'त्यादि । तथा 'सव्वजीवाणं'ति सर्व-जीवानां द्वीपसमुद्रेषूत्पादो नेतव्यः, स चैवम्—'दीवसमुद्देसु णं भंते ! सव्वे पाणा ४ पुढविकाइयत्ताए जाव तसकाइ-यत्ताए उववन्नपुव्वा ?, हंता गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो'त्ति ॥ षष्ठशतेऽष्टमोद्देशकः ॥ ६–७ ॥

६ शतके उद्देशः ८ समुद्राणामुत्सृतोदकादि सू. २५२

द्वीपादिषु जीवाः पृथिव्यादित्वेनोत्पन्नपूर्वा इत्यष्टमोद्देशके उक्तं, नवमे तूत्पादस्य कर्मबन्धपूर्वकत्वादसावेव प्ररूप्यत इत्येवं-सम्बन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्—

जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे कति कम्मप्पगडीओ बंधति ?, गोयमा ! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा छव्विहबंधए वा, बंधुद्देसो पन्नवणाए नेयव्वो ॥ (सू० २५२) ॥

'जीवे णं' मित्यादि, 'सत्तविहबंधए' आयुरबन्धकाले 'अट्ठविहबंधए'त्ति आयुर्बन्धकाले 'छव्विहबंधए'त्ति

॥२८२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

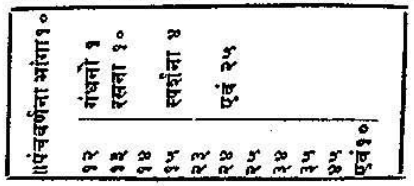
	अत्र षष्ठं-शतके अष्टम-उद्देशक: समाप्त: **अथ षष्ठं-शतके नवम-उद्देशक: आरम्भ:**

प्रत सूत्रांक [२५२]

दीप अनुक्रम [३१७]

सूक्ष्मसम्परायावस्थायां मोहायुषोरबन्धकत्वात् । 'बंधुद्देसो'इत्यादि, बन्धोद्देशकः प्रज्ञापनायाः सम्बन्धी चतुर्विंशतितमपदात्मकोऽत्र स्थाने 'नेतव्यः' अध्येतव्यः, स चायम्–'नेरइए णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?, गोयमा ! अट्ठविहबंधगे वा सत्तविहबंधगे वा एवं जाव वेमाणिए, नवरं मणुस्से जहा जीवे'इत्यादि ॥ जीवाधिकाराद्देवजीवमधिकृत्याह—

देवे णं भंते ! महिड्ढीए जाव महाणुभाए बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू एगवन्नं एगरूवं विउव्वित्तए ?, गोयमा ! नो तिणट्ठे० । देवे णं भंते ! बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू ?, हंता पभू, से णं भंते ! किं इहगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वति तत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वति अन्नत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वति ?, गोयमा ! नो इहगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वति, तत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वति, नो अन्नत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वति, एवं एएणं गमेणं जाव एगवन्नं एगरूवं १ एगवण्णं अणेगरूवं २ अणेगवन्नं एगरूवं ३ अणेगवन्नं अणेगरूवं ४ चउभंगो । देवे णं भंते ! महिड्ढीए जाव महाणुभागे बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू कालयं पोग्गलं नीलगपोग्गलत्ताए परिणामेत्तए नीलगं पोग्गलं वा कालगपोग्गलत्ताए परिणामेत्तए ?, गोयमा ! नो तिणट्ठे समट्ठे, परियाइत्ता पभू । से णं भंते ! किं इहगए पोग्गले तं चेव नवरं परिणामेतित्ति भाणियव्वं, एवं कालगपोग्गलं



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः१ ॥२८३॥

लोहियपोग्गलत्ताए, एवं कालएणं जाव सुक्किलं, एवं णीलएणं जाव सुक्किलं, एवं लोहियपोग्गलं जाव सुक्किलत्ताए, एवं हालिद्दएणं जाव सुक्किलं, तंजहा–एवं एयाए परिवाडीए गंधरसफास० कक्खडफासपोग्गलं मउयफासपोग्गलत्ताए २ एवं दो दो गरुयलहुय २ सीयउसिण २ णिद्धलुक्ख २, वन्नाइ सवत्थ परिणामेइ, आलावगा य दो दो पोग्गले अपरियाइत्ता परियाइत्ता ॥ (सूत्रं २५३) ॥

'देवे णं'इत्यादि, 'एगवन्नं'ति कालाद्येकवर्णम् 'एकरूपम्' एकविधाकारं स्वशरीरादि, 'इहगए'त्ति प्रज्ञापकापेक्षया इहगतान् प्रज्ञापकप्रत्यक्षासन्नक्षेत्रस्थितानित्यर्थः 'तत्थगए'त्ति देवः किल प्रायो देवस्थान एव वर्त्तत इति तत्रगतान्–देवलोकादिगतान् 'अण्णत्थगए'त्ति प्रज्ञापकक्षेत्राद्देवस्थानाच्चापरत्रस्थितान्, तत्र च स्वस्थान एव प्रायो विकुर्वन्ते यतः कृतोत्तरवैक्रियरूप एव प्रायोऽन्यत्र गच्छतीति नो इहगतान् पुद्गलान् पर्यादाय इत्याद्युक्तमिति। 'कालयं पोग्गलं नीलपोग्गलत्ताए'इत्यादौ कालनीललोहितहारिद्रशुक्लक्षणानां पञ्चानां वर्णानां दश द्विकसंयोगसूत्राण्यध्येयानि 'एवं एयाए परिवाडीए गंधरसफास'त्ति इह सुरभिदुरभिलक्षणगन्धद्वयस्यैकमेव, तिक्तकटुकषायाम्लमधुररसलक्षणानां पञ्चानां रसानां दश द्विकसंयोगसूत्राण्यध्येयानि, अष्टानां च स्पर्शानां चत्वारि सूत्राणि, परस्परविरुद्धेन कर्कशमृदुगादिना द्वयेनैकैकसूत्रनिष्पादनादिति ॥ देवाधिकाराद्रिदमाह—

अविसुद्धलेसे णं भंते !.देवे असमोहएणं अप्पाणएणं अविसुद्धलेसं देवं देविं अन्नयरं जाणति पासति १?। णो तिणट्ठे समट्ठे, एवं अविसुद्धलेसे असमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेसं देवं ३, २। अविसुद्धलेसे समो-

६ शतके उद्देशः ९ देवानां पुद्गलानादाने पुद्गलपरिणामाशक्तिः सू २५३

॥२८३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं ३, ३। अविसुद्धलेसे देवे समोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेसं देवं ३, ४। अविसुद्धलेसे समोहयाअसमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं ३, ५। अविसुद्धलेसे समोहया० विसुद्धलेसं देवं ३, ६॥ विसुद्धलेसे असमो० अविसुद्धलेसे देवं ३, १। विसुद्धलेसे असमोहएणं विसुद्धलेसं देवं ३, २। विसुद्धलेसे णं भंते ! देवे समोहएणं अविसुद्धलेसं देवं ३ जाणइ०?, हंता जाणइ०, एवं विसुद्ध० समो० विसुद्धलेसं देवं ३ जाणइ ?, हंता जाणइ ४। विसुद्धलेसे समोहयासमोहएणं अविसुद्धलेसं देवं ३, ५। विसुद्धलेसे समोहयासमोहएणं विसुद्धलेसं देवं ३, ६। एवं हेट्ठिल्लएहिं अट्ठहिं न जाणइ न पासइ उवरिल्लएहिं चउहिं जाणइ पासइ। सेवं भंते ! सेवं भंते ! ॥ (सूत्रं २५४) छट्ठसए नवमो उद्देसो ॥ ६–९॥

'अविसुद्धे'त्यादि, 'अविसुद्धलेसे णं'ति अविसुद्धलेश्यो–विभङ्गज्ञानो देवः 'असमोहएणं अप्पाणेणं'ति अनुपयुक्तेनात्मना, इहाविशुद्धलेश्यः १ असमवहतात्मा देवः २ अविशुद्धलेश्यं देवादिकम् ३, इत्यस्य पदत्रयस्य द्वादश विकल्पा भवन्ति, तद्यथा–'अविसुद्धलेसे णं देवे असमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं ३ जाणइ पासइ ?, नो इणट्ठे समट्ठे'इत्येको विकल्पः १। 'अविसुद्धलेसे असम्मोहएणं विसुद्धलेसं देवं ३ नो इणट्ठे समट्ठे'इति द्वितीयः २। अविसुद्धलेसे समोहएणं अविसुद्धलेसं देवं० नो इणट्ठे समट्ठे'इति तृतीयः ३। 'अविसुद्धलेसे समोहएणं विसुद्धलेसं देवं०, नो इणट्ठे समट्ठे'इति चतुर्थः ४। 'अविसुद्धलेसे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं ३, णो इणट्ठे समट्ठे' इति पञ्चमः५। 'अविसुद्धलेसे समोहयासमोहएणं विसुद्धलेसं देवं ३, नो इणट्ठे समट्ठे'इति षष्ठः ६। 'विसुद्धलेसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२५४]

दीप अनुक्रम [३१९]

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२८४॥

असमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं ३ नो इणट्ठेत्ति सप्तमः ७। विसुद्धलेसे असमोहएणं विसुद्धलेसं देवं ३, नो इणट्ठे समट्ठे'त्ति अष्टमः ८। एतैरष्टभिर्विकल्पैर्न जानाति, तत्र षड्भिर्मिथ्यादृष्टित्वात् द्वाभ्यां त्वनुपयुक्तत्वादिति। 'विसुद्धलेसे समोहएणं अविसुद्धलेसं देवं ३ जाणइ?, हंता जाणइ'इति नवमः ९। 'विसुद्धलेसे संमोहएणं विसुद्धलेसं देवं ३ जाणइ? हंता जाणइ'इति दशमः १०। विसुद्धलेसे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं ३ जाणइ २?, हंता जाणइ'त्ति एकादश ११। 'विसुद्धलेसे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेसं देवं ३ जाणइ २'त्ति द्वादश १२। एभिः पुनश्चतुर्भिर्विकल्पैः सम्यग्दृष्टित्वादुपयुक्तत्वानुपयुक्तत्वाच्च जानाति, उपयोगानुपयोगपक्षे उपयोगांशस्य सम्यग्ज्ञानहेतुत्वादिति। एतदेवाह–'एवं हेट्ठिल्लेहिं'इत्यादि, वाचनान्तरे तु सर्वमेवेदं साक्षाद् दृश्यत इति॥ षष्ठशते नवमोद्देशकः॥ ६–९॥

प्रागविशुद्धलेश्यस्य ज्ञानाभाव उक्तः, अथ दशमोद्देशकेऽपि तमेव दर्शयन्निदमाह—

अन्नउत्थिया णं भंते! एवमाइक्खंति जाव परूवेंति जावतिया रायगिहे नयरे जीवा एवइयाणं जीवाणं नो चक्किया केइ सुहं वा दुहं वा जाव कोलट्ठिगमायमवि निप्फावमायमवि कलममायमवि मासमायमवि मुग्गमायमवि जूयामायमवि लिक्खामायमवि अभिनिवट्टेत्ता उवदंसित्तए, से कहमेयं भंते! एवं?, गोयमा! जन्नं ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति जाव मिच्छं ते एवमाहंसु, अहं पुण गोयमा! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि सव्वलोएवि य णं सव्वजीवाणं णो चक्किया कोई सुहं वा तं चेव जाव उवदंसित्तए। से केणट्ठेणं?, गोयमा! अयन्नं जंबूदीवे २ जाव विसेसाहिए परिक्खेवेणं पन्नत्ते, देवे णं महिड्ढीए जाव महाणुभागे एगं महं सविले-

६ शतके उद्देशः ९ अविशुद्धेतरलेश्यानां देवाद्यनवगमादि सू २५४

॥२८४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र षष्ठं-शतके नवम-उद्देशकः समाप्तः

अथ षष्ठं-शतके दशम-उद्देशकः आरम्भः

वणं गंधसमुग्गगं गहाय तं अवद्दालेति तं अवद्दालेत्ता जाव इणामेव कट्टु केवलकप्पं जंबुद्दीवं २ तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ता णं हव्वमागच्छेज्जा, से नूणं गोयमा ! से केवलकप्पे जंबुद्दीवे २ तेहिं घाणपोग्गलेहिं फुडे ?, हंता फुडे, चक्किया णं गोयमा ! केति तेसिं घाणपोग्गलाणं कोलट्ठियामायमवि जाव उवदंसित्तए ?, णो तिणट्ठे समट्ठे, से तेणट्ठेणं जाव उवदंसेत्तए ॥ (सूत्रं २५५) ॥

'अन्नउत्थी'त्यादि, 'नो चक्किय'त्ति न शक्नुयात् 'जाव कोलट्ठियमायमवि'त्ति आस्तां बहु बहुतरं वा यावत् कुवलास्थिकमात्रमपि, तत्र कुवलास्थिकं–बदरकुलकः 'निप्फाव'त्ति वल्लः 'कल'त्ति कलायः 'जूय'त्ति यूका 'अयन्न'मित्यादिदृष्टान्तोपनयः, एवं यथा गन्धपुद्गलानामतिसूक्ष्मत्वेनामूर्त्तकल्पत्वात् कुवलास्थिकमात्रादिकं न दर्शयितुं शक्यते एवं सर्वजीवानां सुखस्य दुःखस्य चेति ॥ जीवाधिकारादेवेदमाह—

जीवे णं भंते ! जीवे २ जीवे ?, गोयमा ! जीवे ताव नियमा जीवे जीवेवि नियमा जीवे । जीवे णं भंते ! नेरइए नेरइए जीवे ?, गोयमा ! नेरइए ताव नियमा जीवे जीवे पुण सिय नेरइए सिय अनेरइए, जीवे णं भंते ! असुरकुमारे असुरकुमारे जीवे ?, गोयमा ! असुरकुमारे ताव नियमा जीवे जीवे पुण सिय असुरकुमारे सिय णो असुरकुमारे, एवं दंडओ भाणियव्वो जाव वेमाणियाणं। जीवति भंते ! जीवे जीवे जीवति ?, गोयमा ! जीवति ताव नियमा जीवे जीवे पुण सिय जीवति सिय नो जीवति, जीवति भंते ! नेरइए २ जीवति ?, गोयमा ! नेरइए ताव नियमा जीवति २ पुण सिय नेरइए सिय अनेरइए, एवं दंडओ नेयव्वो जाव वेमाणि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-प्रज्ञप्तिः अभयदेवी या वृत्तिः १

॥२८५॥

पाणं । भवसिद्धीए णं भंते ! नेरइए २ भवसिद्धीए ?, गोयमा ! भवसिद्धीए सिय नेरइए सिय अनेरइए नेरइएऽवि सिय भवसिद्धीए सिय अभवसिद्धीए, एवं दंडओ जाव वेमाणियाणं ॥ (सूत्रं २५६) ॥

'जीवे णं भंते ! जीवे जीवे जीवे?' इह एकेन जीवशब्देन जीव एव गृह्यते द्वितीयेन च चैतन्यमित्यतः प्रश्नः, उत्तरं पुनर्जीवचैतन्ययोः परस्परेणाविनाभूतत्वाज्जीवश्चैतन्यमेव चैतन्यमपि जीव एवेत्येवमर्थमवगन्तव्यं, नारकादिषु पदेषु पुनर्जीवत्वमव्यभिचारि जीवेषु तु नारकादित्वं व्यभिचारीत्यत आह—'जीवे णं भंते ! नेरइए'इत्यादि । जीवाधिकारादेवाह—'जीवति भंते ! जीवे जीवे जीवइ'त्ति, जीवति—प्राणान् धारयति यः स जीवः उत यो जीवः स जीवति ? इति प्रश्नः, उत्तरं तु यो जीवति स तावन्नियमाज्जीवः, अजीवस्यायुःकर्म्माभावेन जीवनाभावात्, जीवस्तु स्याज्जीवति स्यान्न जीवति, सिद्धस्य जीवनाभावादिति, नारकादिस्तु नियमाज्जीवति, संसारिणः सर्वस्य प्राणधारणधर्मकत्वात्, जीवतीति पुनः स्यान्नारकादिः स्यादनारकादिरिति, प्राणधारणस्य सर्वेषां सद्भावादिति॥ जीवाधिकारात्तद्व्रतमेवान्यतीर्थिकवक्तव्यतामाह—

अन्नउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति जाव परूवेंति एवं खलु सव्वे पाणा भूया जीवा सत्ता एगंतदुक्खं वेयणं वेयंति, से कहमेयं भंते ! एवं ?, गोयमा ! जन्नं ते अन्नउत्थिया जाव मिच्छं ते एवमाहंसु, अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता एगंतदुक्खं वेयणं वेयंति आहच्च सायं, अत्थेगतिया पाणा भूया जीवा सत्ता एगंतसायं वेयणं वेयंति आहच्च असायं वेयणं वेयंति, अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता वेमायाए वेयणं वेयंति आहच्च सायमसायं । से केणट्ठेणं० ?, गोयमा ! नेरइया

६ शतके उद्देशः१० अन्यकृतसुखाद्यभावः जीवजीवादिभजनापदानि सू २५५-२५६

॥२८५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

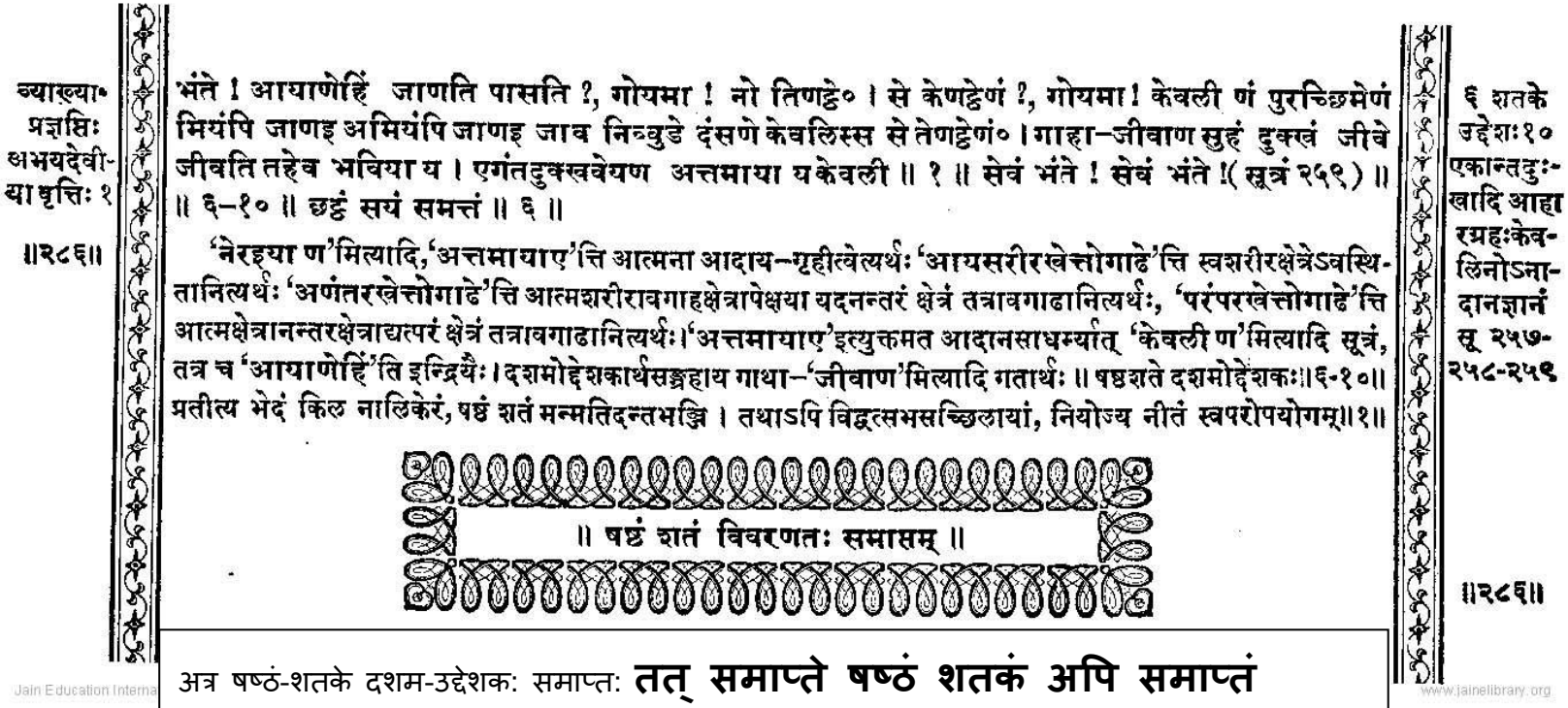
एगंतदुक्खं वेयणं वेयंति [आहच्च सायमसायं] आहच्च सायं, भवणवइवाणमंतरजोइसवेमाणिया एगंतसायं वेदणं वेयंति आहच्च असायं, पुढविक्काइया जाव मणुस्सा वेमायाए वेयणं वेयंति आहच्च सायमसायं, से तेणट्ठेणं० ॥ (सूत्रं २५७) ॥

'अन्नउत्थिया'इत्यादि, 'आहच्च सायं'ति कदाचित्सातां वेदनां, कथम् ? इति चेदुच्यते–"उववाएण व सायं नेरइओ देवकम्मुणा वावि" । 'आहच्च असायं'ति देवा आहननप्रियविप्रयोगादिष्वसातां वेदनां वेदयन्तीति, 'वेमायाए'त्ति विविधया मात्रया कदाचित्सातां कदाचिदसातामित्यर्थः ॥ जीवाधिकारादेवेदमाह—

नेरइया णं भंते ! जे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति ते किं आयसरीरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति अणंतरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति परंपरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति ?, गोयमा ! आयसरीरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति नो अणंतरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति नो परंपरखेत्तोगाढे, जहा नेरइया तहा जाव वेमाणियाणं दंडओ । (सूत्रं २५८) केवली णं

१–उत्पादे वा सातं नैरयिकः देवक्रियया, अपिशब्दात्तीर्थकरजन्मादिदिनेषु वेदयते । २ आगतमपि सूत्रमिदं छद्मस्थानामधोलोकस्य दुरधिगमता प्रतिपादिता शास्त्रे इति भविष्यति केवलिनामपि तथेत्यधोलोकोपलक्षितभावेन पृच्छा, आहारपुद्गलानां वा सुसूक्ष्मत्वात् प्रश्नः पुनः, नारकाणामवधिविभङ्गवत्त्वे यत्ते न वगच्छन्ति स्वकमाहारमिति केवलिनमाश्रित्य प्रश्नः, यद्वा केवलिनां तत्र ज्ञानभावः कथमिन्द्रियाविषयत्वात्तदाहारपुद्गलानामिति शङ्कायां, अन्यद्वा सुधीभिः कारणमूह्यम् ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्या० प्रज्ञप्तिः अभयदेवी-या वृत्तिः १

॥२८६॥

भंते ! आयाणेहिं जाणति पासति ?, गोयमा ! नो तिणट्ठे० । से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! केवली णं पुरच्छिमेणं मियंपि जाणइ अमियंपि जाणइ जाव निव्वुडे दंसणे केवलिस्स से तेणट्ठेणं० । गाहा–जीवाण सुहं दुक्खं जीवे जीवति तहेव भविया य । एगंतदुक्खवेयण अत्तमाया यकेवली ॥ १ ॥ सेवं भंते ! सेवं भंते !(सूत्रं २५९) ॥ ॥ ६–१० ॥ छट्ठं सयं समत्तं ॥ ६ ॥

'नेरइया ण'मित्यादि,'अत्तमायाए'त्ति आत्मना आदाय–गृहीत्वेत्यर्थः 'आयसरीरखेत्तोगाढे'त्ति स्वशरीरक्षेत्रेऽवस्थितानित्यर्थः 'अणंतरखेत्तोगाढे'त्ति आत्मशरीरावगाहक्षेत्रापेक्षया यदनन्तरं क्षेत्रं तत्रावगाढानित्यर्थः, 'परंपरखेत्तोगाढे'त्ति आत्मक्षेत्रानन्तरक्षेत्राद्यत्परं क्षेत्रं तत्रावगाढानित्यर्थः।'अत्तमायाए'इत्युक्तमत आदानसाधर्म्यात् 'केवली ण'मित्यादि सूत्रं, तत्र च 'आयाणेहिं'ति इन्द्रियैः। दशमोद्देशकार्थसङ्ग्रहाय गाथा–'जीवाण'मित्यादि गतार्थः ॥ षष्ठशते दशमोद्देशकः॥६-१०॥ प्रतीत्य भेदं किल नालिकेरं, षष्ठं शतं मन्मतिदन्तभङ्गि । तथाऽपि विद्वत्सभसच्छिलायां, नियोज्य नीतं स्वपरोपयोगम्॥१॥

॥ षष्ठं शतं विवरणतः समाप्तम् ॥

अत्र षष्ठं-शतके दशम-उद्देशकः समाप्तः **तत् समाप्ते षष्ठं शतकं अपि समाप्तं**

६ शतके उद्देशः१० एकान्तदुः-खादि आहा रग्रहःकेव-लिनोऽना-दानज्ञानं सू २५७-२५८-२५९

॥२८६॥

Jain Education Interna

www.jainelibrary.org

भाग 8	**भगवती-अंगसूत्र- (५/१) मूलं एवं अभयदेवसूरिजी रचिता टीका परिसमाप्ता:** मूल संशोधकः सम्पादकश्च पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब **किंचित् वैशिष्ट्य समर्पितेन सह पुनः संकलनकर्ता मुनि दीपरत्नसागरजी** [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
01	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १,२		३१४
02	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- ३ से ९, श्रुतस्कन्ध- २		५८६
03	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १ से १३		४९८
04	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन १४ से १६, श्रुतस्कन्ध-२		३९२
05	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ स्थान- १ से ४		५९४
06	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ स्थान- ५ से १० संपूर्ण		४९४
07	आगम ०४ समवाय मूलं एवं वृत्ति.		३३८
08	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ शतक- १ से ६		५९२
09	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ शतक- ७ से ११		५५२
10	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ शतक- १२ से २०		५१४
11	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ शतक- २१ से ४१ संपूर्ण		३८४
12	आगम ०६ ज्ञाताधर्मकथा मूलं एवं वृत्ति.		५२२
13	आगम-७,८,९,१०उपासकदशा, अंतकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण मूलं एवं वृत्ति.		५३८
14	आगम-११,१२, विपाक, उववाई मूलं एवं वृत्ति.		३८४
15	आगम १३ राजप्रश्नीय मूलं एवं वृत्ति.		३१४
16	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १ से १३८		४८०
17	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १३९ से प्रतिपत्ती-१० संपूर्ण		४८८
18	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. पद- १ से ५		४२६
19	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. पद- ६ से २२		५१४
20	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. पद- २३ से ३६ संपूर्ण		३३६
21	आगम १६ सूर्यप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१०

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
22	आगम १७ चन्द्रप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१४
23	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- १ एवं २.		३७६
24	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ३ एवं ४.		४२६
25	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ५ से ७.		३४४
26	आगम १९ थी ३२ निरयावलिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा, चतु:शरण, आतुरपरत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, तंदुलवैचारिक, संस्तारक, गच्छाचार, गणिविद्या, देवेन्द्रस्तव मूलं एवं छाया		३१२
27	आगम ३३ थी ३९ मरणसमाधि मूलं एवं छाया, निशीथ, ब्रुहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कंध, जीतकल्प/पंचकल्प, महानिशीथ मूलं एव		३३०
28	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, निर्युक्ति- १ से ५२१		४६६
29	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, निर्युक्ति- ५२२ से ९५१		४४२
30	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ निर्युक्ति- ९५२ से १२७३ अपूर्ण, [अध्ययन- १ से ४ अपूर्ण]		४६४
31	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ निर्युक्ति- १२७३ अपूर्ण से १६२३, [अध्ययन- ४ अपूर्ण से ६ संपूर्ण]		४२६
32	आगम ४१/१ ओघनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		४७२
33	आगम ४१/२ पिंडनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		३७६
34	आगम ४२ दशवैकालिक मूलं एवं वृत्ति.		५९०
35	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, अध्ययन- १ से ५		५२२
36	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, अध्ययन- ६ से २१		४८२
37	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-३, अध्ययन- २२ से ३६		४६६
38	आगम ४४ नन्दिसूत्र मूलं एवं वृत्ति.		५२८
39	आगम ४५ अनुयोगद्वार् मूलं एवं वृत्ति.		५६०
40	कल्प(बारसा)सूत्र... चतु:शरण, तन्दुलवैचारिक, गच्छाचार मूलं एवं वृत्ति.		३९४

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

05/1

पूज्य आगमोध्धारक आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरेण संशोधित: संपादितश्च

"भगवती सूत्र"भाग- १ [मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचित वृत्ति:]

(किंचित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित:

"भगवती"भाग-१ मूलं एवं वृत्ति:" नामेण परिसमाप्त:

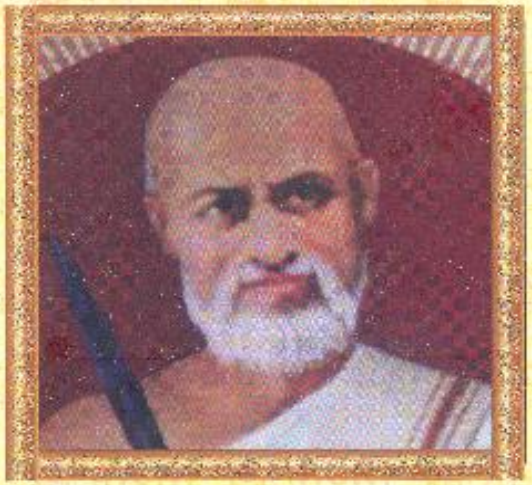
"सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि" श्रेणि, भाग- 8


आगम
वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

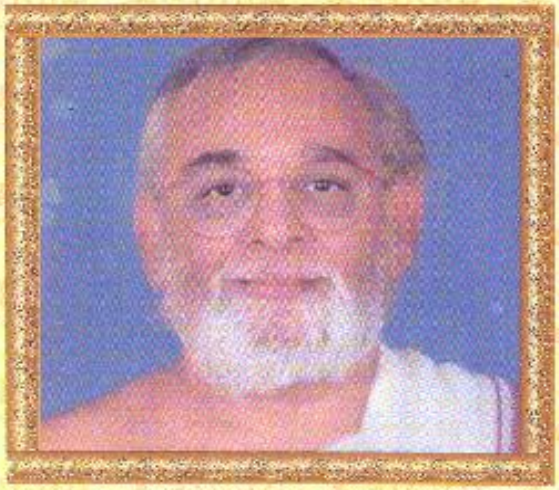
सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

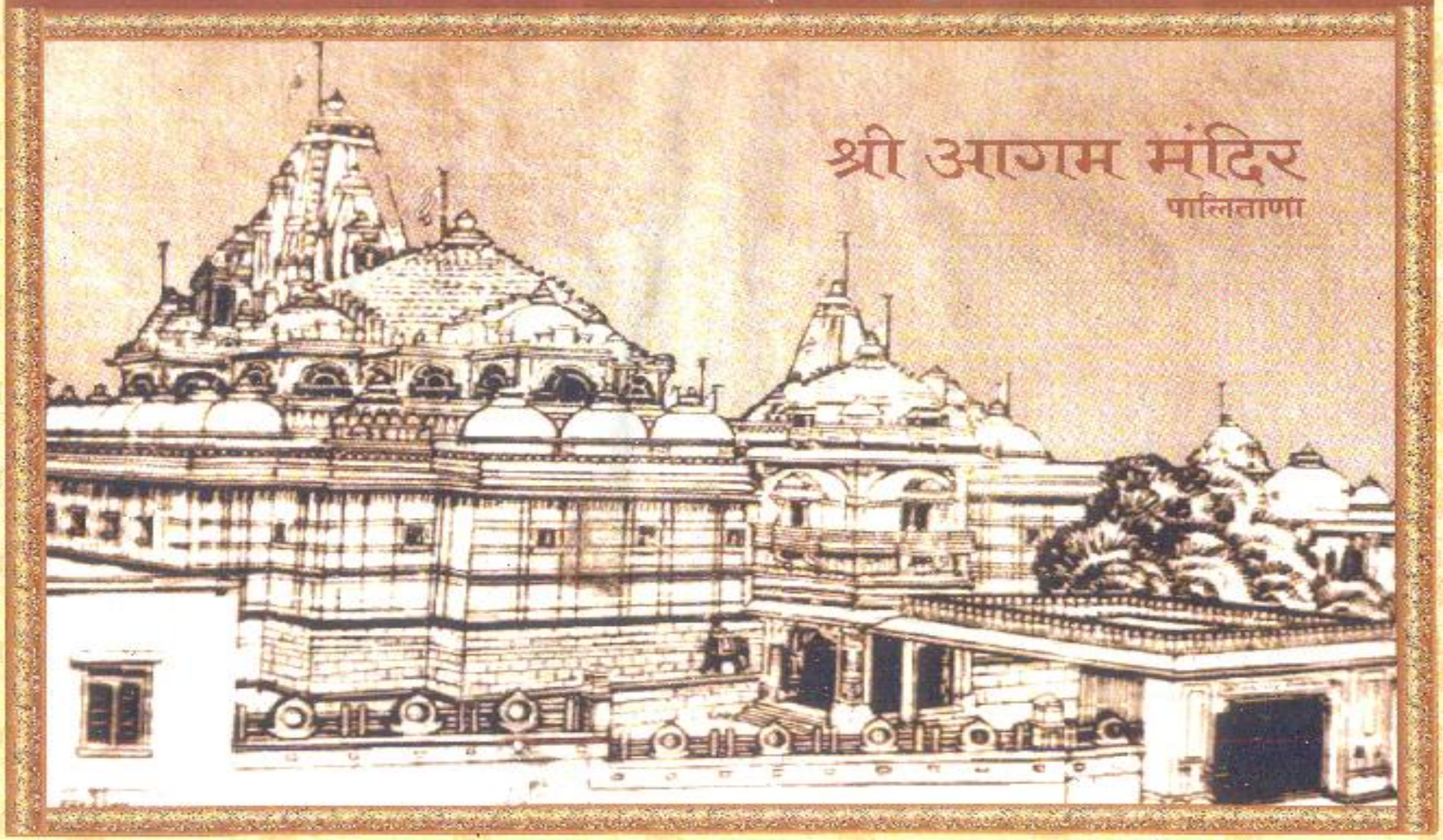
अभिनव-संकलनकर्ता

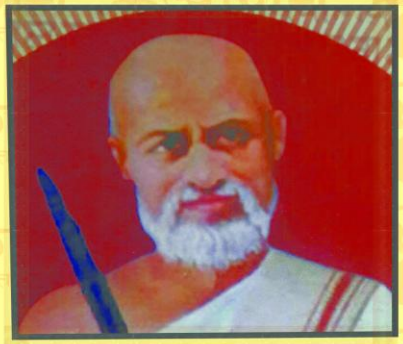


आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता





मूल संशोधक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

आगम - ०५

'भगवति' मूलं एवं वृत्तिः [१]

अभिनव-संकलनकर्ता

आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

